पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।
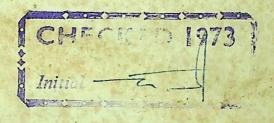
भारत में अङ्गरेज़ी राज्य

पहला भाग

भारत में अंगरेज़ी राज्य

भारत में अङ्गरेज़ों के आगमन, अङ्गरेज़ी सत्ता के विस्तार,
अङ्गरेज़ विजेताओं के साधन, और हमारी
क़ौमी कमज़ोरियों का
इतिहास

पहला भाग

लेखक

सुन्दरलाल

प्रकाशक

'चाँद' कार्यालय,

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, २००० } { दो जिल्दों का मूल्य १६)

प्रकाशक—

'चाँद' कार्यालय,

इलाहाबाद

पहली बार २०००

मुद्रक

आर० सहगल,

फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज,

इलाहाबाद

श्रद्धाञ्जलि

सच्ची हिन्दू-मुसलिम एकता के

आदि-प्रवर्त्तक

कबीर साहब

की पुण्य-स्मृति में

सादर समर्पित

बाद

हिन्दू कहैं राम मोंहि प्यारा,
तुरुक कहैं रहिमाना।
आपस में दोउ लरि लरि मूए,
मर्म न काहू जाना॥

—कबीर

स्वीकृति

सन् १९२६ के शुरू में मैंने कई कारणों से यह निश्चय किया था कि मैं कुछ दिनों तटस्थ बैठ कर देश की प्रधान समस्या, हिन्दू-मुसलिम प्रश्न, पर एकान्त में मनन करूँ। उसी समय अकस्मात् मुझे मेजर वामनदास वसु की निम्नलिखित पुस्तकों के पढ़ने का अवसर मिला—

(१) राइज़ ऑफ़ दी क्रिश्चियन पावर इन इण्डिया—५ जिल्द,

(२) कॉन्सॉलिडेशन ऑफ़ दी क्रिश्चियन पावर इन इण्डिया

(३) रुइन ऑफ़ इण्डियन ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्रीज़, और

(४) एजूकेशन इन इण्डिया अण्डर दी ईस्ट इण्डिया कम्पनी।

मैंने सोचा कि अपने देश के सच्चे इतिहास से अपरिचित होना भी हमारी भ्रान्तियों के कारणों में से एक कारण है। पूर्वोक्त पुस्तकों में मुझे बहुत सी सामग्री ऐसी दिखाई दी जो इतिहास की अन्य पुस्तकों में नहीं मिलती और जिसका ज्ञान अपनी अनेक भूलों के दूर करने में हमारे लिए हितकर हो सकता है। मैंने अपने मुख्य कार्य के साथ साथ इन पुस्तकों

का सार सङ्कलन हिन्दी पढ़ने वालों की सेवा में उपस्थित करने का निश्चय किया। मैं मेजर बसु का अनुगृहीत हूँ कि उन्होंने न केवल मुझे सहर्ष इसकी इजाज़त ही दे दी, वरन् मेरी इस पुस्तक के मसविदे को वे बराबर सुनते रहे और स्थान स्थान पर अपनी अमूल्य सलाहों से मुझे सहायता देते रहे।

पुस्तक के लिखने में स्वभावतः मुझे आशा से अधिक समय लग गया। अन्य अनेक प्रामाणिक ऐतिहासिक पुस्तकों को भी मुझे पढ़ना पड़ा और उनसे सहायता लेनी पड़ी। परिणाम रूप मीर क़ासिम, वारन हेस्टिंग्स, हैदरअली, टीपू सुलतान, सिन्ध पर अङ्गरेज़ों का क़ब्ज़ा और सन् १८५७ के विप्लव के सातों अध्याय, इन बारह अध्यायों की अधिकांश सामग्री मेजर बसु की पुस्तकों से बाहर की है। शेष अध्यायों में भी स्थान स्थान पर अन्य पुस्तकों से सहायता ली गई है।

पुस्तक की प्रस्तावना में मैंने यह आवश्यक समझा कि भारत पर अङ्गरेज़ों से पहले के अन्य आक्रमणों और विशेषकर अङ्गरेज़ों के आने के समय की भारत की स्थिति को पाठकों के सामने रख दिया जाय जिससे उन्हें अपने देश के ऊपर अङ्गरेज़ी राज्य के हितकर अथवा अहितकर प्रभाव को ठीक ठीक समझने में सुगमता हो। इस प्रस्तावना के भाग ४, ५, ७ और ८ की लगभग सम्पूर्ण सामग्री श्रीयुत ताराचन्द एम० ए० डी० फ़िल के अप्रकाशित निबन्ध 'दी इन्फ़्लुएन्स ऑफ़ इसलाम ऑन इण्डियन

कलचर' से ली गई है। मैं श्रीयुत् ताराचन्द का ऋणी हूँ कि उन्होंने मुझे अपने अमूल्य तथा अत्यन्त शिक्षाप्रद निबन्ध के इस प्रकार उपयोग की इजाज़त दी।

हैदरअली और टीपू सुलतान के सम्बन्ध की जो अलभ्य तथा अधिकतर नई सामग्री मुझे मैसूर विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार श्रीयुत बी० एम० श्रीकान्तिया एम० ए० बी० एल० से और मैसूर के पुरातत्व विभाग के विद्वान डाइरेक्टर डॉक्टर आर० शामाशास्त्री से प्राप्त हुई है उसके लिए मैं पूर्वोक्त दोनों सज्जनों का कृतज्ञ हूँ।

इस पुस्तक के अन्दर नगरों इत्यादि के जितने नाम दिए गए हैं उन्हें मैंने यथासम्भव स्थानीय उच्चारण के अनुसार देने का प्रयत्न किया है। मैं डॉक्टर मेघनाथ बन्दोपाध्याय का मशकूर हूँ कि उन्होंने अपने विस्तीर्ण भौगोलिक ज्ञान से इस काम में मुझे सहायता दी। इस विषय में अधिकतर वे ही मेरे प्रमाण हैं।

चित्रों आदिक के संग्रह में श्रीयुत् वासुदेवराव सूबेदार सागर, श्रीयुत् वी० जी० जोशी चित्रशाला प्रेस पूना, डॉक्टर ए० सुहरावर्दी कलकत्ता, टीपू सुलतान के पर-प्रपौत्र शहज़ादे हलीमुज़्ज़माँ, श्रीयुत् बहादुरसिंह सिंघी कलकत्ता, ज्ञानी हीरासिंह जी सम्पादक 'फुलवाड़ी' अमृतसर, श्रीयुत् नरेन्द्रदेव आचार्य काशीविद्यापीठ, पण्डित गोकुलचन्द दीक्षित सम्पादक 'स्टेट गज़ट' भरतपुर, श्रीयुत् रामानन्द चट्टोपाध्याय सम्पादक 'मॉडर्न रिव्यु',

डाक्टर सीताराम क्यूरेटर सेन्ट्रल म्यूज़ियम लाहौर, मिस्टर एफ़० हैरिङ्गटन एफ़० आर० ए० एस० क्यूरेटर विक्टोरिया मेमोरियल कलकत्ता, और श्रीयुत् अमूल्यचरण विद्याभूषण मन्त्री बङ्गला साहित्य परिषद् कलकत्ता ने जो मेरी सहायता की है उसके लिए मैं इन सब सज्जनों का अत्यन्त आभारी हूँ। इनमें विशेषकर जिस प्रेम और परिश्रम के साथ बाबू अमूल्यचरण विद्याभूषण ने मेरी सहायता की उसके लिए कृतज्ञता प्रकट कर सकना मेरे लिए असम्भव है। वयोवृद्ध मिस्टर एफ़० हैरिङ्गटन एफ़० आर० एस० ए० का भी मैं विशेष कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने विक्टोरिया मेमोरियल के चित्रों के फ़ोटो लेने में मुझे हर तरह की सुविधा प्रदान की।

आशा है कि यह नम्र प्रयत्न कुछ देशवासियों को अपने देश की शोचनीय स्थिति तथा उसके वास्तविक उपायों पर गम्भीरता के साथ विचार करने में सहायक होगा।

इलाहाबाद
फ़रवरी १९२९

सुन्दरलाल

विषय-सूची

प्रस्तावना

पहला अध्याय

भारत में यूरोपियन जातियों का प्रवेश

दूसरा अध्याय

सिराजुद्दौला

तीसरा अध्याय

मीर जाफ़र

चौथा अध्याय

मीर क़ासिम

पाँचवाँ अध्याय

फिर मीर जाफ़र

छठा अध्याय

मीर जाफ़र की मृत्यु के बाद

सातवाँ अध्याय

वारन हेस्टिंग्स

[१७७२—८५]

हेस्टिंग्स का प्रारम्भिक जीवन—कम्पनी का बढ़ता हुआ बल—मोहम्मद रज़ा ख़ाँ और राजा शिताबराय पर मुक़दमा—उनकी निर्दोषिता—बङ्गाल और बिहार में दो-अमली का अन्त—दिल्ली सम्राट के साथ छल—इङ्गलिस्तान से धन की माँग—रुहेलखण्ड का मालामाल प्रदेश—रुहेला शासकों की योग्यता—हेस्टिंग्स की अकारण रुहेलखण्ड पर चढ़ाई—रुहेलों का संहार—देश की बरबादी—चालीस लाख रुपए के बदले में रुहेलखण्ड का शुजाउद्दौला के हाथों बेचा जाना—महाराजा नन्दकुमार का अङ्गरेज़ों की आँखों में खटकना—उस पर झूठे इलज़ाम—सर एलाइजाह इम्पे—महाराजा नन्दकुमार को फाँसी—बनारस के महाराजा बलवन्तसिंह का चरित्र—महाराजा चेतसिंह के कम्पनी पर उपकार—कम्पनी का उस पर अन्याय—वारन हेस्टिंग्स की बनारस पर चढ़ाई—चेतसिंह की शान्तिप्रियता—कम्पनी की सेना की हार—और अधिक सेना का बनारस भेजा जाना—चेतसिंह का महल छोड़कर निकल जाना—गृह-विहीन चेतसिंह की मुसीबतें—बनारस राज्य की लूट और बरबादी—इङ्गलिस्तान से धन की नित्य नई माँगें—नवाब आसफ़ुद्दौला की बूढ़ी माता को लूटने की योजना—फ़ैज़ाबाद के महलों पर हेस्टिंग्स की चढ़ाई—फिर एलाइजाह इम्पे—जाली हलफ़नामे—बेगमों के धन, ज़ेवरों आदिक की लूट—महल की औरतों को यातनाएँ दिया जाना—लूट की क़ीमत

आठवाँ अध्याय

पहला मराठा युद्ध

पेशवा माधोराव की मृत्यु—पेशवा नारायणराव की गुप्त हत्या—उसमें कम्पनी के मुलाज़िमों का हाथ—अङ्गरेज़ों का राघोबा को पेशवा नियुक्त कराना—नाना फड़नवीस के प्रयत्न—राघोबा का गुजरात की ओर भागना—राघोबा के साथ पेशवा दरबार के विरुद्ध अङ्गरेज़ों की गुप्त सन्धि—कम्पनी की सेना की पूना पर चढ़ाई—राघोबा को पेशवा बनाने का प्रयत्न—आरस का भयङ्कर संग्राम—अङ्गरेज़ों की हार—गायकवाड़ दरबार में कम्पनी की साज़िशें—हेस्टिंग्स की दोरुख़ी चाल—पेशवा और राघोबा के नाम दोहरे पत्र—सखाराम बापू और नाना फड़नवीस की जागरुकता—पूना पर हमला करने की हेस्टिंग्स की तैयारी—पुरन्धर की सन्धि—अङ्गरेज़ों की ओर से सन्धि का उल्लङ्घन—पूना दरबार में नई साज़िशें—अङ्गरेज़ों का पेशवा के मन्त्री मोरोबा को अपनी ओर फोड़ना—नाना फड़नवीस का मोरोबा को क़ैद करना—मराठों के साथ धोखा—कलकत्ते से कम्पनी की सेना का प्रस्थान—मार्ग के मराठा नरेशों को धोखा देना—मूदाजी भोंसले के साथ साज़िश—तालेगाँव का संग्राम—दूसरी बार अङ्गरेज़ कम्पनी की हार—मराठों के साथ दूसरी बार कम्पनी की सन्धि—उस सन्धि का कम्पनी की ओर से उल्लङ्घन—करनल गॉडर्ड की पूना की ओर यात्रा—महारानी अहल्याबाई—माधोजी सींधिया के साथ कम्पनी की गुप्त साज़िश—नाना फड़नवीस के प्रयत्न—मूदाजी भोंसले का विश्वासघात—गुजरात में गॉडर्ड के अत्याचार—माधोजी के साथ अङ्गरेज़ों की दग़ा—नाना का समस्त भारतीय नरेशों को अङ्गरेज़ों के विरुद्ध मिलाने का प्रयत्न—हैदरअली और नाना में मेल—दिल्ली सम्राट शाहआलम के नाम नाना का पत्र—गॉडर्ड की पूना पर चढ़ाई—तीसरी बार अङ्गरेज़ी सेना की हार—हैदरअली से युद्ध—अङ्गरेज़ों की घबराहट—सालबाई में पेशवा दरबार के

नवाँ अध्याय

हैदरअली

ग्यारहवाँ अध्याय

लॉर्ड कॉर्नवालिस

[१७८६—९३]

बारहवाँ अध्याय

सर जॉन शोर

[१७९३—९८]

माधोजी सींधिया के साथ अङ्गरेज़ों की साज़िशें—दिल्ली सम्राट के विरुद्ध माधोजी को उकसाना—पेशवा माधोराव नारायण के विरुद्ध कम्पनी के षड्यन्त्र—माधोजी सींधिया के विरुद्ध तुकाजी होलकर को भड़काना—कम्पनी के मार्ग में दो सब से प्रबल कण्टक—माधोजी सींधिया और नाना फड़नवीस—पेशवा और माधोजी सींधिया के साथ दिल्ली सम्राट का पत्र व्यवहार—माधोजी सींधिया की अचानक हत्या—कम्पनी के मार्ग से एक ज़बरदस्त कण्टक का दूर होना—नाना फड़नवीस के विरुद्ध साज़िशें—पेशवा माधोराव नारायण की मृत्यु—अङ्गरेज़ों पर सन्देह—अन्तिम पेशवा बाजीराव—अङ्गरेज़ों का बाजीराव का पक्ष लेना—बाजीराव की निर्बलता—नाना फड़नवीस की असफलता—निज़ाम के साथ सर जॉन शोर का व्यवहार—निज़ाम के पुत्र आलीजाह को निज़ाम के विरुद्ध भड़काना—करनाटक के नवाब के साथ सर जॉन शोर का व्यवहार—नवाब पर ज़बरदस्ती के क़रज़े—रुहेलखण्ड के नवाब के साथ ज़्यादती—अवध के नवाब के साथ सन्धि का उल्लङ्घन—सबसीडीयरी सेना का उद्देश—सर जॉन शोर की लखनऊ यात्रा—नवाब आसफ़ुद्दौला के साथ ज़बरदस्ती—आसफ़ुद्दौला की मृत्यु—आसफ़ुद्दौला के बेटे नवाब वज़ीरअली के विरुद्ध उसके चचा सआदतअली को भड़काना—कम्पनी की सेना के बल सआदतअली का मसनद पर बैठाया जाना—सआदतअली

तेरहवाँ अध्याय

अङ्गरेज़ों की साम्राज्य-पिपासा

चौदहवाँ अध्याय

वेल्सली और निज़ाम

पन्द्रहवाँ अध्याय

टीपू सुलतान

सोलहवाँ अध्याय

अवध और फ़र्रुख़ाबाद

सत्रहवाँ ग्रध्याय

तञ्जोर राज्य का ग्रन्त

अठारहवाँ अध्याय

करनाटक की नवाबी का अन्त

उन्नीसवाँ अध्याय

सूरत की नवाबी का खात्मा

बीसवाँ अध्याय

पेशवा को फँसाने के प्रयत्न

इक्कीसवाँ अध्याय

बाजीराव का पुनरभिषेक

बाईसवाँ अध्याय

दूसरे मराठा युद्ध का प्रारम्भ

तेईसवाँ अध्याय

साज़िशों का जाल

चौबीसवाँ अध्याय

साम्राज्य विस्तार

मराठा साम्राज्य पर हमला करने के लिए छै बड़ी बड़ी सेनाएँ—अहमदनगर का संग्राम—झूठा एलान—पेशवा बाजीराव के नाम से झूठी अपील—देशमुख बाबा को रिशवत—अहमदनगर पर कम्पनी का क़ब्ज़ा—बाजीराव के साथ छल—पेशवा के मन्त्रियों को रिशवतें—दौलतराव सींधिया का युद्ध-कौशल—भारतवासियों में राष्ट्रीयता के भावों की कमी—कम्पनी के गुप्तचर—दौलतराव को धोखा—बेगम समरू की सेना का अङ्गरेज़ों से मिल जाना—असाई का संग्राम—विश्वासघातकों की सूची—मैदान में दौलतराव सींधिया की अनुपस्थित—अङ्गरेज़ों की विजय—वेल्सली के नाम बालाजी कुञ्जर का पत्र—बरहानपुर और असीरगढ़ की लड़ाइयाँ—विश्वासघात द्वारा अङ्गरेज़ी सेना की विजय—वेल्सली का सुलह की बातचीत द्वारा सींधिया और भोंसले दोनों को धोखा देना—वेल्सली के पत्र—सुलहनामा—दोनों ओर के हस्ताक्षर—सींधिया और भोंसले में फूट डालने की चेष्टा—वेल्सली का अरगाँव के क़िले पर हमला—सुलहनामे की शर्तों का उल्लङ्घन—अरगाँव और गाविलगढ़ पर अङ्गरेज़ी सेना का क़ब्ज़ा—गुजरात पर अङ्गरेज़ी सेना का हमला—सींधिया के भील सामन्तों को लोभ देकर अपनी ओर फोड़ना—महाराजा आनन्दराव गायकवाड़ के साथ अन्याय—भड़ोच के क़िले पर अङ्गरेज़ी सेना का क़ब्ज़ा—मराठों के साथ अरबों की वफ़ादारी—रिशवत द्वारा पवनगढ़ पर अङ्गरेज़ी सेना की विजय—उड़ीसा पर भोंसले राजाओं का आधिपत्य—करनल कैम्पबेल

पचीसवाँ अध्याय

जसवन्तराव होलकर

होलकर से झूठे वादे—होलकर का नाश करने के लिए उत्सुकता—वेल्सली भाइयों के गुप्त पत्र—जसवन्तराव के साथ छल—भारतीय नरेशों और प्रजा के दिलों में अङ्गरेज़ों पर अविश्वास—होलकर के अफ़सरों के साथ जनरल लेक की गुप्त साज़िश—होलकर का उन अफ़सरों को प्राण-दण्ड देना—होलकर का वेल्सली से अपने वादे पूरे करने के लिए कहना—उसके विरुद्ध युद्ध की तैयारी—अङ्गरेज़ों का अपने वादे पूरा करने से साफ़ इनकार—होलकर के इलाक़े पर कम्पनी का हमला—होलकर की सेना के अन्दर विश्वासघातक पैदा करने में असफलता—जनरल वेल्सली की कठिनाइयाँ—भारतीय प्रजा का होलकर के विरुद्ध अङ्गरेज़ों की सहायता न करना—सींधिया के साथ सन्धि का उल्लङ्घन—सींधिया की सेना में जनरल लेक और वेल्सली की रिशवतें—ग्वालियर, गोहद और अहमदनगर के विषय में कम्पनी का विश्वासभङ्ग—सींधिया से झूठे वादे—होलकर के विरुद्ध सींधिया की सेना—होलकर के विरुद्ध मरे, लेक और वेल्सली की सेनाओं की असफलता—बुन्देलखण्ड में अङ्गरेज़ी सेना पर होलकर की सेना का हमला—अङ्गरेज़ी सेना की पूर्ण पराजय—जसवन्तराव पर अङ्गरेज़ों का भयङ्कर हमला—तीन ओर से तीन सेनाएँ—होलकर के विरुद्ध अङ्गरेज़ों के युद्ध की गम्भीरता—जनरल मॉनसन का एक विशाल सेना सहित होलकर के इलाक़े पर चढ़ाई करना—जसवन्तराव का मुक़ाबले के लिए आगे बढ़ना—मॉनसन की सेना की पराजय और

चित्रसूची

पहला भाग

प्रस्तावना

१

वर्तमान इतिहास-कला बहुत दरजे तक अर्वाचीन पाश्चात्य सभ्यता की पैदाइश है। प्राचीन चीन, भारत, ईरान, मिश्र इत्यादि में भी इस कला का सर्वथा अभाव न था। इनमें से प्रत्येक देश में उन देशों की प्राचीन सभ्यताओं के थोड़े बहुत लेखबद्ध इतिहास मिलते हैं। अनेक प्राचीन यूनानी तथा रोमन विद्वानों के उस समय के लिखे हुए इतिहास आज तक प्रामाणिक माने जाते हैं। ईसा की ११ वीं शताब्दी में प्रसिद्ध मुसलमान इतिहास-लेखक अलबेरूनी ने इतिहास-कला पर बड़ी सुन्दर वैज्ञानिक विवेचना की है और इतिहास के विद्यार्थियों को इतिहास-लेखक की स्वाभाविक प्रवृत्तियों से उत्पन्न होने वाली अनेक भ्रान्तियों की ओर से सावधान किया है। और भी अनेक प्रामाणिक इतिहास लेखकों तथा इतिहास-कला-विशारदों के नाम उस समय के अरबों में मिलते हैं। तथापि हमें यह स्वीकार करना होगा कि विस्तृत इतिहास लिखने की जो प्रथा वर्त्तमान समय में प्रचलित है वह प्राचीन देशों में न थी। प्राचीन संसार में और विशेष कर प्राचीन भारत में आजकल के अर्थों में अपने अपने देशों अथवा जातियों के इतिहास लिखने का कार्य न इतना आवश्यक समझा जाता था और न उसे इतना महत्व दिया जाता था। यही कारण है कि

प्राचीन भारत का कोई सिलसिलेवार इतिहास नहीं मिलता, और अधिकांश प्राचीन सभ्यताओं के इतिहास का पता लगाने के लिए जिज्ञासुओं को पौराणिक कथाओं, प्राचीन साहित्य, परम्परागत गाथाओं और प्राचीन समय के खुदे हुए अवशेषों इत्यादि की शरण लेनी पड़ती है।

वास्तव में इतिहास लिखने की कला को जितना अधिक महत्व आजकल दिया जाता है वह इस समय की अन्तर्राष्ट्रीय मानसिक स्थिति का एक विशेष परिणाम है, और शायद मानव जाति की वास्तविक उन्नति की दृष्टि से इतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं है जितना समझा जाता है। वर्त्तमान इतिहास का अधिकतर सम्बन्ध अपने समय की राजनैतिक अवस्था से होता है। प्रायः कोई भी मनुष्य अपने समय की राजनैतिक अवस्था की ओर से सर्वथा पक्षपात-शून्य नहीं हो सकता। जाने अथवा अनजाने प्रत्येक लेखक के विचार किसी न किसी ओर अधिक झुकते ही हैं। कोई दो लेखक ऐसे भी नहीं मिल सकते जो अपने समय की किसी एक घटना को या किसी विशेष प्रकार की घटनाओं को एक समान महत्व देते हों। व्यक्तिगत पक्षपात अथवा व्यक्तिगत प्रवृत्तियों के अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य के चित्त में सामाजिक, जातीय अथवा साम्प्रदायिक प्रवृत्तियाँ भी अपना स्थान ग्रहण करती ही हैं, और उस मनुष्य की लेखनी पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकतीं। इसलिए आम तौर पर सर्वथा निष्पक्ष इतिहास का मिल सकना यदि असम्भव नहीं तो लगभग असम्भव अवश्य है। इस तरह के पक्षपात से रँगे हुए इतिहास पाठकों में भी उसी प्रकार के पक्षपात को बनाए रखने का एक अनन्त साधन होते हैं। मनुष्य की परिमित मानसिक शक्तियों पर अनन्त तिथियों और व्यक्तियों के वर्णन अथवा चरित्र-निरूपण का भार डालने की भी विशेष आवश्यकता नहीं

है। अपने अथवा परायों के दोषों को याद रखने की अपेक्षा सञ्चित पुण्य विचारों पर दृष्टि रखना ही मनुष्य के लिए अधिक श्रेयस्कर है, विशेष कर राजनीति में जहाँ पर कि मानव प्रेम और आत्मोत्सर्ग की अपेक्षा द्वेष और स्वार्थ ही हमारे कृत्यों को अधिक प्रभावित करते हों। यही कारण है कि प्राचीन समय के विद्वान अपने अपने राष्ट्रों के विस्तृत और सच्चे इतिहास लिखने के स्थान पर कल्पित अथवा अर्ध-ऐतिहासिक कथाओं द्वारा अपने समय के उच्च से उच्च नैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक आदर्शों को चित्रित कर देना अधिक उत्तम समझते थे। यही कारण है कि अनेक उच्च से उच्च कोटि के प्राचीन ग्रन्थों में लेखक का नाम तक नहीं मिलता। यही कारण है कि भारत के प्राचीन साहित्य से तिथियों का कोई ठीक ठीक पता नहीं चलता। इसी में साधारण इतिहास के ऊपर रामायण और महाभारत जैसे ग्रन्थों की श्रेष्ठता अथवा उनकी न्यूनता का भेद मिलता है।

जो कठिनाइयाँ मनुष्य को अपने समय का इतिहास लिखने में होती हैं उससे अधिक कठिनाइयाँ भूतकाल के इतिहास के लिखने में होती हैं। पिछले समय का इतिहास लिखने वाले को इन्हीं पक्षपात से रँगे हुए उल्लेखों के आधार पर अपनी रचना करनी पड़ती है। काल और वस्तु-स्थिति की दूरी के कारण उसे और भी अधिक अँधेरे में टटोलना पड़ता है। भारत का और विशेषकर अङ्गरेज़ी काल के भारत का इतिहास लिखने वाले के लिए ये कठिनाइयाँ कई गुनी अधिक बढ़ जाती हैं। ब्रिटिश भारत का इतिहास लिखने वाले को अधिकतर अङ्गरेज़ों के लिखे हुए ग्रन्थों का आश्रय लेना पड़ता है। भारतवासियों के हाथ का लिखा हुआ कोई सिलसिलेवार इतिहास इस समय का नहीं मिलता। जो अधूरे वृत्तान्त किसी किसी भारतवासी के हाथ के लिखे हुए मिलते भी हैं, उनमें से भी

अनेक के लेखकों का अङ्गरेज़ों के धनक्रीत होना उन्हीं के लेखों पर से साबित है।

संसार के इतिहास में जहाँ पर भी एक क़ौम दूसरी क़ौम के शासन में आ जाती है, वहाँ पर शासक क़ौम के लेखकों का लक्ष्य अपनी रचनाओं द्वारा अपनी क़ौम के लोगों में देशभक्ति, आत्मविश्वास और साहस का जाग्रत करना और शासित क़ौम वालों में इन्हीं गुणों को कम करना अथवा उत्पन्न न होने देना स्वाभाविक है। अङ्गरेज़ों के लिखे हुए भारतीय इतिहास प्रायः आद्योपान्त इसी दोष से दूषित होते हैं। वास्तव में शायद संसार के किसी भी देश का इतिहास इस नैसर्गिक दोष द्वारा इतना अधिक विकृत नहीं किया गया जितना भारत का। भारत तथा इङ्गलिस्तान का सम्बन्ध ही इस प्रकार का है कि इस सम्बन्ध के एक बार शुरू हो जाने के बाद निष्पक्ष भारतीय इतिहास का लिखा जाना लगभग असम्भव हो गया। एक ओर अङ्गरेज़ लेखकों की साम्राज्य-प्रिय दृष्टि और दूसरी ओर अङ्गरेज़ी काल के अधिकांश भारतीय लेखकों की विदेशी शिक्षा, मानसिक दासता और आजीविका की विकट परिस्थिति। परिणाम यह है कि भारतीय इतिहास की जो पुस्तकें आजकल हमें मिलती हैं, उनमें से अधिकांश में निरर्थक तुच्छ बातों पर ज़ोर दिया जाता है और इतिहास के महत्वपूर्ण पहलुओं की अवहेलना की जाती है, ऐतिहासिक घटनाओं के सम्पूर्ण सिलसिले ग़लत बयान किए जाते हैं और अनेक व्यक्तियों के चरित्र को सफ़ेद की जगह काला और काले की जगह सफ़ेद रँग कर हमारे सामने उपस्थित किया जाता है, अनेक सच्ची घटनाओं का इतिहास में पता तक नहीं चलता और इसके विपरीत अनेक कल्पित घटनाएँ सच्ची कह कर बयान की जाती हैं। इसी लिए भारतवासियों और

विशेष कर सरकारी विश्वविद्यालयों के भारतीय प्रोफ़ेसरों के लिखे इतिहास इस विषय में प्रायः और भी अधिक दूषित तथा लज्जास्पद दिखाई देते हैं। यह सब भारत की वर्तमान अप्राकृतिक परिस्थिति का प्राकृतिक परिणाम है।

अपने इन विचारों के समर्थन में हम केवल थोड़े से यूरोपियन विद्वानों की सम्मति नीचे उद्धृत करते हैं।

प्रसिद्ध फ़्रान्सीसी विद्वान हरवे लिखता है—

"इतिहास अभी तक साहित्य की सब से अधिक पापमय और भ्रष्टकारी शाखा रहा है। जब कभी क़ौमों के नाम पर धन-लोलुपता और रक्त-पिपासा को तृप्त किया जाता है, इतिहास इस प्रकार की लोलुपता और सार्वजनिक हत्या को सराहनीय ठहराता है। इतिहास के पृष्ठों में छल और कपट को चतुर राज-नीति का प्रमाण माना जाता है। जो चीज़ साधारण मनुष्यों में पाप समझी जाती है वह राज-दरबारों में और सिंहासनों पर प्रशंसनीय मानी जाती है।"*

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक लैकी लिखता है—

"राजनीतिज्ञों का लक्ष्य अपना हितसाधन रहता है।

* "History, so far, has been the most immoral and perverting branch of literature. It exalts greed and wholesale murder when greedy and murderous lusts are satisfied in the names of nations. Fraud is taken as evidence of clever diplomacy. What is counted immoral down low is held admirable in Courts and on Thrones."—M. Herve.

× × × सत्य का निस्स्वार्थ प्रेम और प्रबल राजनैतिक प्रवृत्ति दोनों साथ साथ नहीं चल सकतीं। उन तमाम देशों में, जहाँ पर कि लोगों का मानसिक स्वभाव अधिकतर राजनैतिक जीवन के आधार पर बना हो, हमें यह दिखाई देता है कि लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि को ही सत्य की कसौटी बना बैठते हैं।"*

प्रसिद्ध अङ्गरेज़ तत्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर ने लिखा है कि फ़्रान्स का एक बादशाह जब इतिहास की कोई पुस्तक पढ़ना चाहता था तो अपने लाइब्रेरियन से कहता था,—"मेरे झूठ बोलने वाले को ले आओ।" स्पेन्सर लिखता है कि फ़्रान्सीसी बादशाह का यह कथन अनुचित न था। इसके बाद आजकल के इतिहास की अविश्वास्यता का ज़िक्र करते हुए स्पेन्सर लिखता है—

"राजाओं के शासन-कालों, लड़ाइयों और इस तरह की घटनाओं के वृत्तान्तों के अतिरिक्त, जो कि समस्त वर्त्तमान राष्ट्रों के इतिहास में मिलती हैं, हमें सिवाय उन सन्धियों के जो तोड़ने ही की ग़रज़ से की जाती हैं, उन सरकारी पत्रों के जो बेईमान और झूठे कर्मचारियों द्वारा लिखे जाते हैं, उन गप्पों से भरे हुए पत्रों के जो दरबारियों के लिखे होते हैं, और इसी तरह की

---

* "The object of the politician is expediency . . . a disinterested love of truth can hardly co-exist with a strong political spirit. In all countries where the habits of thought have been mainly formed by political life, we may discover a disposition to make expediency the test of truth."—Lecky in his *Rationalism in Europe*.

अन्य सामग्री के, और कोई ऐसी बात नहीं मिलती जिसपर हम विश्वास कर सकें। इस तरह की सामग्री से हम सत्य को अलग कैसे कर सकते हैं? × × ×"*

भारत में अङ्गरेज़ी राज्य का इतिहास अधिकतर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रिपोर्टों और काग़ज़ों से ही संग्रह करना पड़ता है, किन्तु कम्पनी के प्रकाशित पत्रों के विषय में प्रसिद्ध अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक जेम्स मिल, जो इङ्गलिस्तान में कम्पनी के 'पत्र-व्यवहार विभाग' का प्रमुख रह चुका था और जिसका ब्रिटिश भारत का इतिहास सब से अधिक प्रामाणिक माना जाता है, लिखता है—

"कम्पनी के डाइरेक्टरों ने शुरू से आख़ीर तक इस तरह की बातों को दबा देने में, जिन्हें वे प्रकाशित करना न चाहते थे, बड़ी चतुरता दिखाई है।"†

कप्तान कनिङ्घम के प्रसिद्ध ग्रन्थ "सिखों के इतिहास" के सन् १८५३ के संस्करण के विज्ञापन में पीटर कनिङ्घम लिखता है—

"हाल के भारत के इतिहास के लिए जो प्रकाशित सामग्री

---

* "Beyond accounts of kings' reigns, of battles, and of incidents named in the chronicles of all the nations concerned, we have nothing to depend on but treaties made to be broken, despatches of corrupt and lying officials, gossiping letters of courtiers and so forth. How from these materials shall we distil the truth? . . ."—Herbert Spencer's *Facts and Comments.*

† "Under the skill which the Court of Directors have all along displayed in suppressing such information as they wished not to appear."—James Mill.

मिलती है वह इस प्रकार की नहीं है जिस पर कोई इतिहास-लेखक विश्वास कर सके। पार्लिमेण्ट के दोनों भागों, हाउस ऑफ़ कॉमन्स और हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स, द्वारा जो सरकारी उल्लेख जनता के सामने उपस्थित किए जाते हैं, उनमें राजनैतिक दलबन्दी की क्षणिक दृष्टि से उलट फेर हुई है, अथवा इस ग़लत ख़याल से कि लोगों के भावों को आघात न पहुँचे, उनमें काट छाँट की गई है।"*

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक सर जॉन के, जो इङ्गलिस्तान के इण्डिया ऑफ़िस के 'राजनैतिक और गुप्त विभाग' का सेक्रेटरी रह चुका था, अफ़ग़ान युद्ध को वर्णन करते हुए एक स्थान पर लिखता है—

"पार्लिमेण्ट के सरकारी काग़ज़ों के संग्रह में अलेक्ज़ेण्डर बर्न्स का चरित्र और जीवनी दोनों को ग़लत बयान किया गया है। समझा जाता है कि पार्लिमेण्ट के काग़ज़ इतिहास के लिए सबसे अच्छी सामग्री हैं। किन्तु वास्तव में ये सरकारी काग़ज़ प्रायः केवल काट छाँट की हुई दस्तावेज़ों और जाली काग़ज़ों का एक ऐसा एकतर्फ़ा संग्रह होता है जिसे कि राजमन्त्रियों की

* "The printed materials for the recent History of India are not of that character on which historians can rely. State Papers, presented to the people by both Houses of Parliament, have been altered to suit the temporary views of political warfare, or abridged out of mistaken regard to the tender feelings of survivors."—P. Cunningham in the advertisement to the 2nd edition of *History of the Sikhs*, by Captain J. D. Cunningham. 1853.

मोहर सच्चा कह कर चला देती है, जिससे मौजूदा नसल के लोग धोखे में आ जाते हैं, और आइन्दा नसलों को भयङ्कर झूठों का एक सिलसिला उत्तराधिकार में मिलता है।"*

पार्लिमेण्ट के काग़ज़ों की इस विशेष जालसाज़ी का अधिक हाल पाठकों को इस पुस्तक के अन्दर अफ़ग़ान युद्ध के वृत्तान्त में पढ़ने को मिलेगा। जब कि स्वयं ब्रिटिश पार्लिमेण्ट के काग़ज़ों की यह दशा है तो अङ्गरेज़ों के लिखे हुए साधारण ऐतिहासिक उल्लेखों पर कहाँ तक विश्वास किया जा सकता है?

इतिहास-लेखक फ़्रीमैन स्वीकार करता है कि सरकारी एलानों, पत्रों और राजनैतिक दस्तावेज़ों का सारा क्षेत्र "झूठ का मनोवाञ्छित क्षेत्र है।" वह लिखता है—

"तथापि ये झूठ शिक्षाप्रद झूठ हैं,—ये उन लोगों के कहे हुए झूठ हैं, जो सच्चाई से परिचित हैं। कई तरह के उपायों से झूठ के अन्दर से भी सच्चाई का निष्कर्ष किया जाना सम्भव है, किन्तु इन झूठों पर विश्वास करके इनसे सच्चाई का पता नहीं लगाया जा सकता। वास्तव में वह मनुष्य बालक की तरह

---

* "The character and career of Alexander Burnes have both been mis-represented in those collections of State Papers which are supposed to furnish the best materials of history but which are often only one-sided compilations of garbled documents,—counterfeits, which the ministerial stamp forces into currency, defrauding a present generation, and handing down to prosterity a chain of dangerous lies."—*History of the Afghan War*, by Kaye, vol. ii, p. 13.

भोला है, जो प्रत्येक शाही एलान अथवा पार्लिमेण्ट के प्रत्येक एक्ट की भूमिका पर विश्वास करता हो, और उनसे यह अन्दाज़ा लगाता हो कि अमुक अमुक बड़े लोगों ने क्या क्या किया और उसके करने में उनकी क्या नीयत थी ।"*

इस पुस्तक के लेखक को आज से चार साल पहले तक इस बात का अनुमान न हो सकता था कि अङ्गरेज़ विद्वानों के लिखे हुए भारत के अधिकांश इतिहासों में झूठ की मात्रा कितनी अधिक और कितनी भयङ्कर है। सिन्ध के अङ्गरेज़ विजेता सर चार्ल्स नेपियर के भाई मेजर-जनरल विलियम नेपियर की पुस्तक "दी काँक्वेस्ट ऑफ़ सिन्ध" की गणना सिन्ध के ऊपर सबसे अधिक प्रामाणिक अङ्गरेज़ी पुस्तकों में की जाती है। अङ्गरेज़ों की सिन्ध-विजय को मनुष्य जाति के ऊपर एक उपकार साबित करने के लिए विलियम नेपियर ने सिन्धियों और उनके मुसलमान शासकों के चरित्र पर जो अनेक कलङ्क लगाए हैं उनमें से एक शिशु-हत्या है। नेपियर लिखता है—

"और ये राक्षस स्वयं अपने बच्चों की किस प्रकार हत्या करते थे? पहले तो वे भ्रूणहत्या के उद्देश से दवाइयाँ पिलाते थे; यदि

---

* ". . . Here we are in the very chosen region of lies. . . yet they are instructive lies; they are lies told by people who know the truth; truth may even, by various processes, be got out of the lies; but it will not be got out of them by the process of believing them. He is of childlike simplicity indeed who believes every royal proclamation or the preamble of every Act of Parliament, as telling us, not only what certain august persons did, but the motives which led them to do it."—Freeman.

उससे काम न चलता था तो कभी कभी वे बच्चों के पैदा होते ही अपने हाथों से काट कर उनके टुकड़े टुकड़े कर डालते थे; किन्तु अधिकतर वे इन बच्चों को गद्दों के नीचे डाल कर उन पर स्वयं बैठ जाते थे, और जब कि उनके बच्चों का उनके नीचे घुट कर दम निकलता था, वे स्वयं उनके ऊपर बैठे हुए तम्बाकू पीते रहते थे, शराब पीते रहते थे और अपने इस नारकीय कृत्य पर एक दूसरे से मज़ाक़ करते रहते थे।"*

कप्तान ईस्टविक, जिसे ठीक उन्हीं दिनों कई वर्ष सिन्ध में रहने और सिन्ध के देशी शासकों तथा वहाँ की प्रजा में मिलने जुलने का अवसर प्राप्त हुआ और जो सिन्ध की भाषाओं तथा वहाँ के रस्मोरिवाज से भली प्रकार परिचित था, इस लज्जाजनक झूठ की आलोचना करते हुए एक दूसरे यूरोपियन विद्वान ग्रैटन का निम्नलिखित वाक्य उद्धृत करता है—

"इतिहास में अनेक बातें ऐसी लिखी मिलती हैं, जिनको साबित करने या जिनका खण्डन करने का कोई विशेष मूल्य नहीं है। सार्वजनिक सदाचार के इस तरह के उज्वल (किन्तु असत्य) चित्र इतिहास में मिलते हैं, जिन्हें यदि एक बार लोगों

---

* "And how did these monsters destroy their own children? First they gave potions, called *Odalisques*, to procure abortion; if these failed, they sometimes chopped the children to pieces with their own hands immediately after birth; but more frequently placed them under cushions and sat down, smoking and drinking and jesting with each other about their hellish work, while their children were being suffocated beneath them."—*The Conquest of Sindh*, part ii, p. 348.

ने सच्चा मान लिया है तो प्रायः उनसे भला ही हुआ है, किन्तु जब किसी व्यक्ति अथवा जाति के निजी चरित्र पर कलङ्क लगाए जाते हैं और जब हम यह देखते हैं कि कितनी आसानी से झूठे कलङ्कों का प्रचार किया जाता है, कितने कौतूहल के साथ लोग उन्हें पढ़ते और सुनते हैं, और जिन बातों को गढ़ लेने या फैलाने में कुछ भी ख़र्च नहीं होता, किन्तु जिनका पूरी तरह खण्डन करने में आजीवन परिश्रम और इस प्रकार की परिस्थिति की आवश्यकता होती है, जिसका मिलना लगभग असम्भव हो जाता है, और उन पर लोग सहज ही में और बेपरवाही के साथ विश्वास कर लेते हैं, तो प्रत्येक विवेकी लेखक या पाठक का इस तरह के 'इतिहास पर सन्देह' करना स्वाभाविक है।"*

यह दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि स्वयं अङ्गरेज़ साक्षियों ही के कथनानुसार विलियम नेपियर का पूर्वोक्त बयान सर्वथा कल्पित, झूठा और निराधार है। आज से केवल ८९ वर्ष पूर्व जिस समय सिन्ध पर ईस्ट

* "There are many statements of history which it is immaterial to substantiate or disprove. Splendid pictures of public virtue have often produced their good if once received as fact. But, when private character is at stake, every conscientious writer or reader will cherish his 'historic doubts,' when he reflects on the facility with which calumny is sent abroad, the avidity with which it is received, and the careless ease with which men credit what it costs little to invent and propogate, but requires an age of trouble, and an almost impossible conjunction of opportunities, effectually to refute."—Grattan's *History of the Netherlands*, vol. ii, p. 242

इण्डिया कम्पनी का क़ब्ज़ा हुआ, उस समय सिन्ध के अमीरों और सिन्ध की प्रजा का सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत सदाचार नेपियर और उसके देश-वासियों के सदाचार की अपेक्षा कहीं अधिक पवित्र और उच्चतर था। नेपियर ने अपने ग्रन्थ में जिस प्रकार सिन्ध-निवासियों के चरित्र पर निरा-धार कलङ्क लगाए हैं, उसी प्रकार सिन्ध के अमीरों को भी बदनाम करने के भरसक प्रयत्न किए हैं। जिन अमीरों ने कभी जीवन भर किसी मादक द्रव्य को अपने पास नहीं आने दिया, जो तम्बाकू के धुएँ तक से बचते थे, और जो स्त्री जाति के सतीत्व की रक्षा की ओर असाधारण ध्यान रखते थे, उनको नेपियर ने शराबी और कुचरित्र चित्रित किया है। हम ये सब बातें सर्वथा विश्वस्त अङ्गरेज़ लेखकों ही के आधार पर लिख रहे हैं। इन सब बातों का विस्तृत हाल पाठकों को इस पुस्तक के अन्दर सिन्ध के अध्याय में पढ़ने को मिलेगा।

ठीक इसी प्रकार जिस सिराजुद्दौला ने अपने नाना अलीवर्दी ख़ाँ की अन्तिम आज्ञा के अनुसार तख़्त पर बैठने के दिन से मरने की घड़ी तक कभी मदिरा को हाथ नहीं लगाया,* और जिसके व्यक्तिगत चरित्र में कोई ऐसा विशेष दोष न था, जो उस समय के ९९ प्रतिशत भारतीय नरेशों अथवा अङ्गरेज़ शासकों में न पाया जाता हो, उसे परले दरजे का दुराचारी बयान किया जाता है। यही अन्याय मीरक़ासिम, हैदरअली, टीपू सुलतान, नन्द-कुमार, लक्ष्मीबाई इत्यादि अन्य भारतीय वीरों के चरित्र के साथ किया गया है। इन सब बातों का विस्तृत वृत्तान्त इस पुस्तक के अन्दर स्थान स्थान पर दिया गया है। इतिहास-लेखक सर जॉन के बिलकुल स्पष्ट लिखता है—

---

* Scrafton's *Reflections*, as quoted in "बाङ्गलार इतिहास, नवाबी आमल," लेखक कालीप्रसन्न बन्द्योपाध्याय।

"××× हम लोगों में यह एक रिवाज है कि पहले किसी देशी नरेश का राज्य उससे ले लेते हैं और फिर पदच्युत नरेश को अथवा उस मनुष्य को, जो उसका उत्तराधिकारी बनने वाला हो, झूठ मूठ बदनाम करते हैं।"*

जिस प्रकार व्यक्तियों के चरित्र उसी प्रकार घटनाओं के वृत्तान्त और यहाँ तक कि अनेक पुस्तकों में भारतीय नरेशों के चित्र तक ग़लत रङ्ग में रँगे हुए अथवा कहीं कहीं आद्योपान्त झूठे देखने को मिलते हैं। जिस हैदरअली ने होश सँभालने के बाद से कभी डाढ़ी या मूँछ नहीं रक्खी उसका डाढ़ी और मूँछों वाला चित्र अनेक अङ्गरेज़ी इतिहासों में मिलता है! कैसल की 'हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया' में जो अत्यन्त प्रामाणिक मानी जाती है, हमने सम्राट बहादुरशाह का एक चित्र देखा, जिसके पैरों में राजपूती जूता, डाढ़ी चढ़ी हुई और धोती मारवाड़ के तर्ज़ पर बँधी हुई है! सच यह है कि जो पुस्तकें भारत के इतिहास पर विशेषकर स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाई जाती हैं, उनमें तारीख़ों, राजाओं के नामों अथवा अत्यन्त मोटी मोटी घटनाओं को छोड़ कर शेष में से कम से कम ६० फ़ी सदी का मूल्य एक साधारण उपन्यास से अधिक नहीं है।

निस्सन्देह कुछ भारतीय विद्वानों के लिखे हुए इसी समय के ऐतिहासिक वृत्तान्त एक दरजे तक अधिक सच्चे और विश्वसनीय हैं। किन्तु एक तो इस तरह के वृत्तान्त हैं ही बहुत कम और फुटकर, और दूसरे

---

* ". . . It is a custom among us. . . to take a native ruler's kingdom and then to revile the deposed ruler or his would be successor."—Sir John Kaye's *History of the Sepoy War*, vol. iii, pp. 361, 362.

इनके सम्बन्ध में हमें एक और गहरी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। फ़ारसी का ग्रन्थ 'सेअरुल मुताख़रीन' भारतीय मुग़ल साम्राज्य के अन्तिम दिनों का ख़ासा विश्वस्त इतिहास माना जाता है और है भी। तथापि इस ग्रन्थ का विद्वान रचयिता सय्यद ग़ुलाम हुसेन अपने ग्रन्थ में स्वीकार करता है कि सम्राट शाहआलम और अङ्गरेज़ों के संग्रामों के दिनों में उसे लोभ देकर अङ्गरेज़ों ने अपनी ओर मिला लिया था। निस्सन्देह उस समय का उसका समस्त वृत्तान्त अङ्गरेज़ों के एक धनक्रीत लेखक का लिखा वृत्तान्त है। और भी अनेक भारतीय तथा अन्य लेखकों को फ़ारसी तथा अन्य भाषाओं में झूठे ऐतिहासिक वृत्तान्त लिखने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से समय समय पर धन मिलता रहा है। उदाहरण के लिए लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क ने ऐबे दुबॉय का प्रसिद्ध फ़ान्सीसी ग्रन्थ, जिसमें हिन्दुओं के उस समय के रहन सहन इत्यादि का ज़िक्र है, आठ हज़ार रुपए देकर, दुबॉय से ख़रीदा, कम्पनी की ओर से उसे अङ्गरेज़ी में प्रकाशित कराया और अन्त में कम्पनी ने उसके लिए दुबॉय को आजीवन पेनशन दी। हैदरअली की एक फ़ारसी जीवनी लिखने के लिए मिरज़ा इक़बाल को कम्पनी की ओर से रुपए दिए गए। हैदरअली की यह जीवनी झूठे कलङ्कों और पक्षपात से भरी हुई है। करनल माइल्स ने हैदरअली की एक जीवनी अङ्गरेज़ी में लिखी है, जिसके विषय में करनल माइल्स का बयान है कि वह पुस्तक मीर हुसेनअली ख़ाँ किरमानी कृत फ़ारसी पुस्तक 'निशाने-हैदरी' का अनुवाद है और 'निशाने-हैदरी' का मूल फ़ारसी मसविदा मलका विक्टोरिया के निजी पुस्तकालय में मौजूद था। हमने करनल माइल्स की पुस्तक को पढ़ा। हम यह देख कर चकित रह गए कि उस पुस्तक के अन्दर पृष्ठ के पृष्ठ ऐसे हैं, जिनका

एक एक शब्द एक फ़ान्सीसी लेखक एम० एम० डी० एल० टी० के ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑफ़ हैदरशाह' के एक अङ्गरेज़ी संस्करण के कुछ पृष्ठों से मिलता है। यह फ़ान्सीसी किताब हैदरअली के जीवनकाल में लिखी गई थी। मीर हुसेनअली ख़ाँ किरमानी की किताब ज़ाहिरा उसके बाद की लिखी हुई है। यदि फ़ारसी लेखक ने फ़ान्सीसी किताब से या उसके अङ्गरेज़ी अनुवाद से ये पृष्ठ लिए होते तो यह असम्भव था कि फ़ारसी से अङ्गरेज़ी तर्जुमा करने में ठीक वही शब्द लिखे जा सकते। ज़ाहिर है कि मीर हुसेनअली ख़ाँ का फ़ारसी मसविदा या तो कहीं है ही नहीं, या कम से कम जिसे करनल माइल्स ने उस मसविदे का अनुवाद कह कर प्रकाशित किया है, वह उसका अनुवाद नहीं है।

इसी तरह के और भी अनेकानेक उदाहरण ब्रिटिश भारत के लिखे हुए इतिहास से दिए जा सकते हैं। सच यह है कि अर्वाचीन पाश्चात्य सभ्यता में और विशेष कर पाश्चात्य राजनीति में ईमानदारी या सत्य के लिए कोई स्थान नहीं, और पाश्चात्य इतिहास-कला बहुत दरजे तक पाश्चात्य राजनीति का केवल एक अङ्ग है। प्रोफ़ेसर सीली, प्रोफ़ेसर गोल्डविन स्मिथ और इतिहास-लेखक फ़ीमैन जैसे यूरोपियन विद्वानों ने इतिहास को केवल राजनीति का एक अङ्ग स्वीकार किया है। और 'Politics has no conscience,' अर्थात् 'राजनीति में पाप-पुण्य के विवेक का कोई स्थान नहीं', अङ्गरेज़ी की एक प्रसिद्ध कहावत है।*

---

* गत वर्ष एच० डी० लैसवेल की लिखी हुई 'प्रोपेगैण्डा टैकनीक इन वर्ल्ड वार' नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में साफ़ लिखा है कि आगामी महायुद्ध के लिए युद्धविद्या, शस्त्राभ्यास इत्यादि के साथ साथ समस्त राजनीतिज्ञों, शासकों और सेनापतियों को झूठ बोलने की विद्या का भी विधिवत्

इस प्रकार के झूठे तथा कल्पित इतिहास का परिणाम हमारे राष्ट्रीय जीवन पर और विशेष कर हमारे शिक्षित देशवासियों की मानसिक अवस्था पर इतना गहरा पड़ा है कि आज हमारे राष्ट्रीय उद्धार के मार्ग में यही सब से प्रबल बाधा दिखाई दे रही है। इसके अतिरिक्त अनेक भयङ्कर ऐतिहासिक भ्रान्तियों तथा झूठों का स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों तथा अन्य उपायों द्वारा इतना ज़बरदस्त प्रचार किया गया है कि आज हमारे असंख्य विचारवान देशवासी इन ऐतिहासिक भ्रान्तियों की भूलभुलइयों में पड़ कर अपने कल्याण के उपायों को सोच सकने के सर्वथा असमर्थ हो रहे हैं।

कहा जाता है, अनादिकाल से भारत पर पश्चिमोत्तर सीमा की ओर से विदेशियों अथवा विदेशी जातियों के हमले होते रहे हैं, भारत कभी

वैज्ञानिक अध्ययन करना चाहिए। लेखक के अनुसार पिछले महायुद्ध के दिनों में झूठ बोलने की कला में सब से अधिक सफलता आरम्भ में इंगलिस्तान ने दिखाई उसके बाद अमरीका इस कला में इंगलिस्तान से भी बढ़ गया। वह लिखता है—"राष्ट्रपति विलसन ने इस कला में जो दक्षता दिखलाई वह संसार के इतिहास में अद्वितीय है।" लेखक ने गत महायुद्ध के समय के अंगरेज़ों के कई प्रसिद्ध झूठों की मिसालें दी हैं! उदाहरण के लिए संसार के अख़बारों में छपा था कि जरमन सिपाहियों ने बेल्जियम वालों के अनेक बच्चों के हाथ काट डाले। यह बात आद्यो-पान्त झूठी थी। इस ख़बर के सम्बन्ध में युद्ध के समाप्त होने पर इतालिया के प्रधान मन्त्री सीन्योर निती ने लिखा था—

"युद्ध के बाद एक धनाढ्य अमरीकन ने अपना एक दूत इस उद्देश से बेल्जियम भेजा कि जिन ग़रीब बालकों के नन्हे नन्हे हाथ काट डाले गए हैं, उनकी जीविका का प्रबन्ध कर दिया जाय। इस दूत को एक भी इस तरह का बालक नहीं मिल सका। जिन दिनों मैं इतालिया सरकार का प्रधान था, मैंने और मिस्टर लॉयड जॉर्ज ने मिल कर इन भीषण इलज़ामों की सत्यता का पता लगाने के लिए विस्तृत

भी इन हमलों से अपनी रक्षा नहीं कर सका और एक दूसरे के बाद लगातार विविध विदेशी शासनों का शिकार होता रहा है। कहा जाता है कि इस तरह के विदेशी हमलों में भारत के ऊपर सब से अधिक भयङ्कर हमला मुसलमानों का था। भारत के मुसलमान आक्रमक असभ्य, धर्मान्ध और अन्यायी थे, जिन्होंने अङ्गरेज़ों के आने से पहले लगभग एक हज़ार वर्ष तक भारतवर्ष को अपने अत्याचारों से कुचले रक्खा, प्राचीन हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति का सत्यानाश कर डाला और हमारे करोड़ों देशवासियों को तलवार के ज़ोर से धर्मभ्रष्ट कर मुसलमान बना लिया। हमसे कहा

छान बीन की। इनमें से कम से कम कई इलज़ामों के साथ मनुष्यों और स्थानों के नाम तक हमें बताए गए थे। किन्तु हमारी छान बीन करने पर ये तमाम क़िस्से झूठे निकले।"—"विशाल भारत", अगस्त १९२८।

एक दूसरी बात यह भी कही गई थी कि जरमनी में एक कारख़ाना खुला है जिसमें सिपाहियों की लाशों को उबाल कर उनसे साबुन और ग्लिसरीन बनाया जाता है। इस कारख़ाने के फ़ोटो तक अंगरेज़ी अख़बारों में छपे थे। "सन् १९२५ में जाकर इस असत्य समाचार की पोल खुली। जरमन सरकार ने घोषणा की कि यह एक बिलकुल झूठा क़िस्सा है और इसमें सत्य का नामोनिशान नहीं। आख़िर इंगलिस्तान के वैदेशिक विभाग के मन्त्री सर ऑस्टिन चैम्बरलेन को जरमनी का यह कथन स्वीकार कर लेना पड़ा और उसने कहा भी—'I trust that this false report will not again be revived.' अर्थात् 'मैं विश्वास करता हूँ कि इस झूठी अफ़वाह को अब कोई न दोहराएगा।,"

इसी तरह के और भी असंख्य झूठ उन दिनों जरमनों के विरुद्ध अंगरेज़ों और मित्र राष्ट्रों की ओर से प्रकाशित होते रहते थे।

ऐसी ही एक दूसरी पुस्तक "फ़ाल्सहूड इन वार टाइम" इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट के मेम्बर आर्थर पॉन्सन्बी ने हाल में प्रकाशित की है। पॉन्सन्बी

जाता है कि भारत के इन मुसलमान शासकों में सिवाय अय्याशी, लूट मार और धर्मान्धता के और कोई विशेषता न थी। यहाँ तक कि बड़े से बड़े अथवा अच्छे से अच्छे मुग़ल बादशाहों को हिन्दुओं और हिन्दोस्तान के लिए अधिक से अधिक 'मीठी छुरी' कह कर बयान किया जाता है। हमें विश्वास दिलाया जाता है कि मुसलमानों ने कोई भी उपकार भारत पर नहीं किया, उनके शासन में कोई बात तारीफ़ की न थी, उन्होंने भारत के राष्ट्रीय जीवन को हर तरह से नुक़सान पहुँचाया और आज तक हिन्दुओं तथा मुसलमानों में कभी भी वास्तविक मेल न हुआ और न हो सकता है। जो इतिहास स्कूलों में पढ़ाए जाते हैं उनमें दिखाया जाता है कि अङ्गरेज़ों के आने से पहले भारत में चारों ओर कुशासन और अराजकता फैली हुई थी, और आए दिन आपसी लड़ाइयाँ होती रहती थीं, अङ्गरेज़ों

इंगलिस्तान के मन्त्रिमण्डल में वैदेशिक विभाग का उपमन्त्री रह चुका है। इस पुस्तक की आलोचना करते हुए पार्लिमेण्ट के एक दूसरे प्रसिद्ध सदस्य विलफ़्रेड वेलॉक ने अगस्त सन् १९२८ के "विशाल-भारत" में लिखा है—

"इस पुस्तक में यह बात अकाट्य प्रमाणों द्वारा सिद्ध की गई है कि पिछले महायुद्ध का सञ्चालन झूठ और फ़रेब के द्वारा किया गया था और आरम्भ से लेकर अन्त तक उसके उद्देशों के विषय में संसार की जनता धोखे में रक्खी गई।

"यदि संसार में कोई युद्ध ऐसा हुआ है, जो ऊपर से देखने में धर्म के भावों से प्रेरित मालूम होता था, तो वह पिछला महायुद्ध था। कम से कम मित्र दल वाले तो यही कहते थे कि हम धार्मिक युद्ध कर रहे हैं। मित्रों की ओर से यह घोषणा की गई थी कि हम लोग छोटी छोटी जातियों की स्वाधीनता के लिए और सन्धियों की पवित्रता की रक्षा के लिए युद्ध कर रहे हैं। हमारा उद्देश सैनिक शासन (Militarism) को दूर करना है!

"कैसी धोखेबाज़ी थी! कैसा पाखण्ड था! कैसा झूठ था!"

ने, जो उस समय भारतवासियों से कहीं अधिक सभ्य थे, भारत में आकर शान्ति तथा सुशासन स्थापित किया और देश को सभ्यता की ओर ले जाना शुरू किया। इन्हीं सब बातों के आधार पर और वर्तमान अङ्गरेज़ी सत्ता के सच्चे रूप को हमसे छिपा कर हमें यह यक़ीन दिलाया जाता है कि अङ्गरेज़ों का भारतीय शासन भारतवासियों के लिए एक बहुत बड़े सौभाग्य की चीज़ है और हमारी सारी भावी उन्नति तथा देश की शान्ति अङ्गरेज़ी शासन के इस देश में बने रहने पर निर्भर है। यदि आज दुर्भाग्य-वश अङ्गरेज़ी शासन भारत से मिट जाय तो सम्भव है कि या तो पश्चिमोत्तर की ओर से कोई दूसरी शक्ति आकर भारत पर क़ब्ज़ा कर ले अथवा हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से लड़ लड़ कर देश को फिर बरबादी की ओर ले जायँ !

इन सब बातों के जवाब में हम यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि अङ्गरेज़ों के आने से पहले भारत के ऊपर अन्य विदेशियों के हमले कितने, कब कब और किस ढङ्ग के हुए और भारत ने उनका कहाँ तक सफलता के साथ मुक़ाबला किया। हम यह भी दिखलाएँगे कि बाहर से इस तरह के आक्रमणों का होना भारत ही की एक विशेषता है अथवा संसार के अन्य देशों के इतिहास में भी यह एक सामान्य घटना है। हम यह भी दिखाएँगे कि यूरोप के विविध देशों और स्वयं इङ्गलिस्तान के ऊपर इस तरह के हमले कभी हुए हैं या नहीं, यदि हुए हैं तो कितने, और यूरोप के देशों ने उन हमलों का भारत की अपेक्षा अधिक सफलता के साथ मुक़ाबला किया है या नहीं। हम यह भी बयान करेंगे कि भारत पर मुसलमानों के हमले से पहले यूरोप के विविध देशों पर भी मुसलमानों के हमले हुए थे या नहीं, और यदि हुए थे तो यूरोपियन देशों ने भारत

की तुलना में उनका किस तरह मुक़ाबला किया। हम इस बात की भी पूरी जाँच करना चाहेंगे कि भारत के ऊपर मुसलमानों के हमले किस ढङ्ग के थे, भारत के लिए उनके परिणाम क्या हुए, भारत के अन्दर इसलाम मत का प्रचार वास्तव में किस ढङ्ग से और किन उपायों द्वारा किया गया, हिन्दुओं के साथ भारत के मुसलमान शासकों का व्यवहार आद्योपान्त किस ढङ्ग का रहा, दोनों धर्मों के लगभग एक हज़ार वर्ष के सम्पर्क में भारत भर के अन्दर हिन्दुओं और मुसलमानों में किस तरह का सम्बन्ध रहा, शिल्प, विज्ञान, शिक्षा, चित्रकला, कृषि, व्यापार, उद्योग धन्धों, सुशासन और समृद्धि की दृष्टि से भारत ने मुसलमानों के शासन में कहाँ तक उन्नति अथवा अवनति की, अङ्गरेज़ों के सम्पर्क के समय सभ्यता के विविध अङ्गों में भारत की क्या अवस्था थी, इङ्गलिस्तान की उस समय क्या हालत थी, किन कारणों से तथा किन उपायों द्वारा अङ्गरेज़ों का राज्य भारत में क़ायम हुआ, भारत के लिए उसके क्या परिणाम हुए और भविष्य में उससे छुटकारा पाने की किस प्रकार आशा की जा सकती है।

२

वास्तव में भारत और इङ्गलिस्तान का सम्पर्क दो पृथक पृथक सभ्यताओं तथा दो भिन्न भिन्न आदर्शों का एक दूसरे से टकराना था। इसलिए और बातों से पहले हम उस समय की इङ्गलिस्तान की अवस्था का, जब कि भारत तथा इङ्गलिस्तान का पहली बार सम्पर्क हुआ, संक्षिप्त वृत्तान्त दे देना चाहते हैं।

१६ वीं और १७ वीं शताब्दी के इङ्गलिस्तान की अवस्था को वर्णन करते हुए प्रसिद्ध इतिहासज्ञ ड्रेपर लिखता है—

"किसानों की झोपड़ियाँ नरसलों और छड़ियों की बनी हुई होती थीं जिनके ऊपर गारा फेर दिया जाता था। घर में आग घास जला कर तैयार की जाती थी और धुएँ के निकलने के लिए कोई जगह न होती थी। जिस तरह की चीज़ें उस समय के एक अङ्गरेज़ किसान के घर में होती थीं, और जिस प्रकार से वह जीवन व्यतीत करता था, उससे मालूम होता था कि गाँव के पास नदी के किनारे जो ऊदबिलाव मेहनत से माँद बना कर रहता था, उस ऊदबिलाव की अवस्था में और उस किसान की अवस्था में अधिक अन्तर न था। सड़कों पर डाकू फिरते थे, नदियों पर समुद्री लुटेरे और लोगों के कपड़ों और बिस्तरों में जुएँ। आम तौर पर लोगों की ख़ूराक मटर, उड़द, जड़ें और दरख़्तों की छालें होती थीं। कोई ऐसा व्यापार न था जिससे वर्षा न होने की सूरत में किसान दुष्काल से बच सकें। आबादी बहुत कम थी, महामारी और दरिद्रता से आबादी घटती रहती थी। शहर के लोगों की हालत गाँव के लोगों से कुछ अच्छी न थी। शहर वालों का बिछौना भुस का एक थैला होता था और तकिये की जगह लकड़ी का एक गोल टुकड़ा। जो शहर वाले ख़ुशहाल होते थे वे खाल के कपड़े पहनते थे, जो ग़रीब होते थे वे अपने हाथ पैरों पर पवाल की पूलियाँ लपेट कर अपने को सरदी से बचाते थे। × × × जिन शहरों में कोई शीशे की या तैलपत्र की खिड़की तक न होती

थी, वहाँ किसी कारीगर के लिए कहाँ गुञ्जाइश थी। कोई कारखाना न था, जिसमें कोई कारीगर आराम से बैठ सके। ग़रीबों के लिए कोई वैद्य न था। × × × सफ़ाई का कहीं कोई इन्तज़ाम था ही नहीं।"

आगे चल कर उस समय के यूरोप के सदाचार को वर्णन करते हुए ड्रेपर लिखता है—

"जिस तेज़ी के साथ गरमी की बीमारी उन दिनों तमाम यूरोप में फैली उससे इस बात का साफ़ पता चलता है कि लोगों में कितना भयङ्कर दुराचार फैला हुआ था। यदि हम उस समय के लेखकों पर विश्वास करें तो विवाहित अथवा अविवाहित, पादरी अथवा साधारण गृहस्थ, पोप लियो दसवें से लेकर गली के भिखमङ्गे तक—कोई वर्ग ऐसा न था जो इस रोग से बचा रहा हो। × × × इङ्गलिस्तान की आबादी उस समय पचास लाख से अधिक न थी। × × × किसान अपनी ज़मीन का मालिक न होता था। ज़मीन ज़मींदार की होती थी और किसान केवल उसका मज़दूर और रक्षक होता था। ऐसी स्थिति में बाहर के व्यापार ने समाज में हलचल मचाना शुरू किया। आबादी इधर से उधर आने जाने लगी। दूसरे देशों से व्यापार करने के लिए कम्पनियाँ बनाई गईं। ये अफ़वाहें अथवा ख़बरें सुन कर कि दूसरे देशों में जाकर जल्दी से ख़ूब धन कमाया जा सकता है, लोगों के दिमाग़ फिरने लगे × × × सारी अङ्गरेज़ क़ौम इतनी अशिक्षित थी कि पार्लिमेण्ट के बहुत से लॉर्ड मेम्बर न लिख सकते थे और न पढ़ सकते थे × × × पादरियों में भयङ्कर दुराचार फैला हुआ

था। खुले तौर पर कहा जाता था कि इङ्गलिस्तान में एक लाख औरतें ऐसी हैं, जिन्हें पादरियों ने ख़राब कर रक्खा है।××× कोई पादरी यदि बुरे से बुरा भी जुर्म करता था तो उसे केवल थोड़ा सा जुरमाना देना पड़ता था। मनुष्य-हत्या के लिए पादरियों को केवल छै शिलिङ्ग आठ पेन्स (लगभग पाँच रुपए) जुरमाना देना पड़ता था।×××सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में लन्दन का शहर गन्दा था, मकान भद्दे थे और सफ़ाई का कोई प्रबन्ध न था।×××जङ्गली जानवर हर जगह फिरते थे। ×××बरसात में सड़कें इतनी ख़राब होती थीं कि उन पर से चलना मुशकिल था।×××देहात में प्रायः जब लोग रास्ता भूल जाते थे तो रात रात भर बाहर ठण्ढी हवा में रहना पड़ता था। ख़ास ख़ास नगरों के बीच में भी कभी कभी सड़कों का पता न चलता था, पहियेदार गाड़ियों का चल सकना इतना कठिन था कि लोग ज़्यादातर लद्दू टट्टुओं के पालानों में दाएँ और बाएँ असबाब की तरह लद कर एक जगह से दूसरी जगह आते जाते थे।×××सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में तेज़ से तेज़ गाड़ी दिन भर में तीस मील से पचास मील तक चल सकती थी×××टाइन नदी के मुख पर जो लोग रहते थे वे अमरीका के आदिमवासियों से कम जङ्गली न थे। उनकी स्त्रियाँ आधी नङ्गी जङ्गली गाने गाती फिरती थीं, और पुरुष अपनी कटार घुमाते हुए लड़ाइयों के नाच नाचते थे।×××जब कि पुरुषों की ही यह हालत थी कि उनमें से बहुत थोड़े ठीक ठीक लिखना जानते थे तो यह सोचा जा सकता है कि स्त्रियाँ कितनी

अशिक्षित रही होंगी। × × × सामाजिक व्यवस्था में जिसे हम सदाचार कहते हैं उसका कहीं पता न था। × × × पति अपनी पत्नी को कोड़ों से पीटता था × × × अपराधियों को टिकटिकी से बाँध कर पत्थर मार मार कर मार डाला जाता था। औरतों की टाँगों को सरे बाज़ार शिकञ्जों में कस कर छोड़ दिया जाता था। × × × लोगों के दिल अत्यन्त सख़्त हो गए थे × × × गाँव के लोगों के मकान झोपड़े होते थे जिन पर फूस छाया हुआ होता था। × × × लन्दन में मकान अधिकतर लकड़ी और प्लासटर के होते थे, गलियाँ इतनी गन्दी थीं कि बयान नहीं किया जा सकता। शाम होने के बाद डर के मारे कोई अपने घर से न निकलता था, क्योंकि जो चाहे अपने ऊपर के कमरे से खिड़की खोल कर बेखटके गन्दा पानी नीचे फेंक देता था। × × × लन्दन की गलियों में लालटेनों का निशान न था। उच्च श्रेणी के लोगों में सदाचार की आमतौर पर यह अवस्था थी कि यदि कोई भी मनुष्य मरता था तो लोग यही समझते थे कि किसी ने ज़हर देकर मार डाला × × × दुराचार की एक बाढ़ थी।"

उस समय की मानसिक उदारता इत्यादि के विषय में ड्रेपर लिखता है—

"ऑक्सफ़ोर्ड की विद्यापीठ ने यह आज्ञा दे दी कि बकेनन, मिलटन और बेक्सटर की राजनैतिक पुस्तकें स्कूलों के आँगनों में खुले जला दी जायँ। × × × राजनैतिक अथवा धार्मिक अपराधों के बदले में जिस तरह की कड़ी सज़ाएँ दी जाती थीं उन पर विश्वास होना कठिन है। लन्दन में टेम्स नदी के पुराने टूटे हुए पुल पर अपराधियों के डरावने सिर काट कर लटका दिए जाते थे,

इसलिए कि उस भयङ्कर दृश्य को देख कर जन सामान्य क़ानून के विरुद्ध जाने से रुके रहेंगे। उस समय की उदारता का अन्दाज़ा उस एक क़ानून से लगाया जा सकता है, जो ८ मई सन् १६८५ को स्कॉटलैण्ड की पार्लिमेण्ट ने पास किया। क़ानून यह था कि जो कोई सिवाय बादशाह की सम्प्रदाय के दूसरी किसी ईसाई सम्प्रदाय के गिरजे में जाकर उपदेश देगा या उपदेश सुनेगा, उसे मौत की सज़ा दी जायगी, और उसका माल ज़ब्त कर लिया जायगा। इस बात के काफ़ी से ज़्यादा सुबूत हमारे पास मौजूद हैं कि इस तरह के निन्दनीय भाव केवल क़ानूनों के अक्षरों में ही बन्द न रह जाते थे। × × × स्कॉटलैण्ड के कवेनेण्टर (एक ईसाई सम्प्रदाय) लोगों के घुटनों को शिकञ्जों के अन्दर कुचल कर तोड़ दिया जाता था और वे दुःख से चिल्लाते रहते थे; स्त्रियों को लकड़ियों से बाँध कर समुद्र के किनारे रेत पर छोड़ दिया जाता था और धीरे धीरे बढ़ती हुई लहरें उन्हें डुबा देती थीं, केवल इस अपराध में कि वे सरकार के माने हुए गिरजे में जाने से इनकार करती थीं, अथवा उनके गालों को दाग़ कर जहाज़ों में बन्द करके अमरीका भेज दिया जाता था। × × × राजकुल की स्त्रियाँ यहाँ तक कि स्वयं इङ्गलिस्तान की मलका स्त्रियोचित दयाभाव और सामान्य मनुष्यत्व को इतना भूल गईं थीं कि ग़ुलामों के क्रय-विक्रय के नारकीय व्यापार में हिस्सा लेती थीं × × ×।"*

---

* "The peasant's cabin was made of reeds or sticks plastere

ऊपर के लम्बे उद्धरण से उस समय के इङ्गलिस्तान के ग्रामों और शहरों की अवस्था, सड़कों, रहन सहन, धन्धों, न्यायशासन, धार्मिक विचारों, शिक्षा, निर्माणकला और सदाचार इत्यादि का पूरा पता चलता है। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि यह वह समय था, जब कि भारत में कबीर और दादू के धार्मिक विचार, अकबर की उदारता, जहाँगीर का न्यायशासन, शाहजहाँ के समय की सुख-समृद्धि और आश्चर्यजनक कलाकौशल संसार भर के यात्रियों को चकाचौंध कर रहे थे, जब कि भारत में दरजनों नगर सुन्दर से सुन्दर इमारतों से सुसज्जित और अत्यन्त घने बसे हुए थे, जब कि दिल्ली और आगरे के क़िले और ताजमहल जैसी इमारतें बन चुकी थीं, और जबकि औरङ्गज़ेब तक के शासनकाल में भारत के पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से

---

over with mud. His fire was chimney-less—often it was made of peat. In the objects and manner of his existence he was but a step above the industrious beaver who was building his dam in the adjacent stream. There were highwaymen on the roads, pirates on the rivers, vermin in abundance in the clothing and beds. The common food was peas, vetches, fern roots and even the bark of trees. There was no commerce to put off famine. Man was altogether at the mercy of the seasons. The population, sparse as it was, was perpetually thinned by pestilence and want. Nor was the state of the townsman better than that of the rustic; his bed was a bag of straw, with a hard round log for his pillow. If he was in easy circumstances, his clothing was of leather, if poor, a wisp of straw wrapped round his limbs kept off the cold. . . . As to the mechanic, how was it possible that he could exist where there were no windows made of glass, not even of

उत्तर तक प्रजा के लिए चारों ओर अलौकिक सुख-समृद्धि और सुशासन दिखाई देता था। निस्सन्देह धर्म के नाम पर इङ्गलिस्तान के अन्दर जिन भयङ्कर अत्याचारों का ऊपर ज़िक्र आया है, उनके सामने औरङ्ग़ज़ेब की धार्मिक सङ्कीर्णता भी उदारता थी। यही हालत उस समय शेष अधिकांश यूरोप की थी। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इङ्गलिस्तान की यह अवस्था १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक जारी रही। इसी उद्धरण में यह भी साफ़ लिखा है, किस प्रकार भारत जैसे देशों के धन का चरचा निर्धन तथा अर्धसभ्य अङ्गरेज़ों को यहाँ तक खींच कर लाया, और किस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी जैसी कम्पनियाँ बनीं।

वास्तव में इङ्गलिस्तान के पीछे कोई इस प्रकार की सभ्यता का इतिहास न था, जिस प्रकार की सभ्यता भारत में सहस्रों वर्ष पूर्व से चली

---

oiled paper, no workshop warmed by a fire. For the poor there was no physician . . . Sanitary provisions there were none. . . the rapidity of its (syphilis') spread all over Europe is a significant illustration of the fearful immorality of the times. If contemporary authors are to be trusted, there was not a class, married or unmarried, clergy or laity, from the holy father, Leo X, to the begger by the wayside, free from it. . . . Its (England's) population hardly reached five millions . . . It was a system of organized labour, the possession of land being a trust, not a property. But now commerce was begining to disturb the foundations on which all these arrangements had been sustained, and to compel a new distribution of population: trading companies were being established ; men were unsettled by the rumours or realities of immense fortunes rapidly gained in foreign adventure . . . A nation so illiterate that many of its

आती थी, और जिसका हम आगे चलकर थोड़ा बहुत ज़िक्र करेंगे। इङ्गलिस्तान के लोग ईसाई मत स्वीकार कर चुके थे, किन्तु अभी तक अपनी अनुन्नत अवस्था के कारण ईसाई मत से भी साम्प्रदायिक कलह के अतिरिक्त उन्होंने बहुत कम शिक्षा ग्रहण की थी। कोई पाप पुण्य अथवा धर्म अधर्म के इस प्रकार के नैतिक आदर्श, जो प्राचीन वैदिक मत, बौद्धमत, जैन मत इत्यादि के कारण भारत में सहस्रों वर्षों से स्थिर हो चुके थे, और जो भारतवासी मात्र की पैतृक मानसिक सम्पत्ति थे, इङ्गलिस्तान में अभी तक स्थिर होने न पाए थे। इसके अतिरिक्त यह बता देना भी आवश्यक है कि १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक इङ्गलिस्तान के जन सामान्य न केवल भयङ्कर दरिद्रता ही में डूबे हुए थे, वरन् थोड़े से रईसों और ज़मींदारों को छोड़कर ९० फ़ीसदी इङ्गलिस्ताननिवासियों की अवस्था अनेक बातों में

---

peers in Parliament could neither read nor write, . . . to so great an extent had these immoralities gone that it was openly asserted that there were one hundred thousand women in England made dissolute by the clergy. . . . The vilest crime in an ecclesiastic might be commuted for money, six shillings and eight pence being sufficient in the case of mortal sin. . . . the close of the seventeenth century . . . London . . . was dirty, ill—built, without sanitary provisions. . . . Wild animals roamed here and there. . . . In the rainy seasons the roads were all but impassable . . . It was no uncommon thing for persons to lose there way, and have to spend the night out in the air. Between places of considerable importance the roads were sometimes very little known, and such was the difficulty for wheeled carriages that a principal mode of transport was by pack-horses, of which passengers took advantage, stowing them-

गुलामों की अवस्था से बेहतर न थी। जिस पार्लिमेण्टरी शासन की इतनी अधिक डींग हाँकी जाती है, उसका जन्म भी इस आपसी कलह और प्रतिस्पर्धा ही में हुआ था, जिसके लिए सुसभ्य, सुसङ्गठित, ख़ुशहाल भारत में कभी कोई गुञ्जाइश ही न थी। सुसङ्गठित ग्राम-पञ्चायतों के रूप में ग्रामवासियों के सच्चे स्वराज्य अथवा ग्रामतन्त्र का इङ्गलिस्तान-निवासियों को कभी अनुमान तक न हो सकता था। न राजा और प्रजा के बीच वह सुन्दर धार्मिक सम्बन्ध वहाँ कभी क़ायम हो पाया था जो हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों के शासनकाल में भारत में कम से कम दो हज़ार वर्ष से ऊपर तक क़ायम रहा। इन सब बातों को हम आगे चल कर अधिक विस्तार के साथ बयान करेंगे।

सच यह है कि इस प्रकार के नैतिक आदर्श केवल सदियों के सुसभ्य

---

selves away between the packs . . . Toward the close of the century what were termed 'flying coaches' . . . could move at the rate of from thirty to fifty miles in a day . . . near the sources of the Tyne there were people scarcely less savage than American Indians. their half-naked women chanting a wild measure, while the men, with brandished dirks, danced a war-dance. . . . It might be expected that the women were ignorant enough when very few men knew how to write correctly . . . Social discipline was very far from being of that kind which we call moral . . . the husband (whipped) his wife . . . A culprit was set in the pillory to be pelted with brickbats . . . women were fastened by the legs in the stocks at the market—place . . . Such a hardening of heart . . . The houses of the rural population were huts covered with straw-thatch . . . In London the houses were mostly of wood and

जीवन द्वारा ही पैदा हो सकते हैं और इङ्गलिस्ताननिवासियों को इस तरह के सुसभ्य जीवन का कभी भी सौभाग्य प्राप्त न हुआ था।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस प्रकार की एक जाति के साथ भारत जैसे प्राचीन देश का पहली बार सम्पर्क हुआ। लगभग सौ वर्ष उन्हें केवल व्यापार द्वारा धन कमाने में बीते। अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में औरङ्ग़ज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल साम्राज्य की संहति में अन्तर पड़ा। इन सौ वर्ष के अन्दर विदेशियों की लालसा और आकांक्षा बेहद बढ़ चुकी थी। न्याय अन्याय अथवा ईमानदारी बेईमानी का कोई प्रश्न उस समय उनकी आकांक्षाओं और उनकी पूर्ति के उपायों में बाधा डालने वाला न था। तिजारती कोठियों के बहाने इन लोगों ने क़िलेबन्दी शुरू की। उदार भारतीय नरेशों ने इसकी तनिक भी परवा न की। देश में व्यापार की उन्हें खुली

---

plaster, the streets filthy beyond expression. After nightfall a passenger went at his peril, for chamber windows were opened and slop-pails unceremoniously emptied down. There were no lamps in the streets. . . .Hardly any personage died who was not popularly suspected to have been made away with by poison, an indication of the morality generally supposed to prevail among the higher classes . . . flood of immorality. . . The University of Oxford had ordered the political works of Buchanan, Milton, and Baxter to be publicly burnt in the court of the schools . . . In administering the law, whether in relation to political or religious offences, there was an incredible atrocity. In London, the crazy old bridge over the Thames was decorated with grinning and mouldering heads of criminals, under an idea that these ghastly apectacles would fortify the common people in their resolves to act according to law. The toleration of the

इजाज़त और अनेक सुविधाएँ दी ही जा चुकी थीं। विदेशियों का बल बढ़ता गया। भारतीय व्यापार से उचित तथा अनुचित तरीक़ों से उन्होंने बेहद धन कमाना शुरू किया। धन से फ़ौजें रक्खी गईं। फ़ौजों की मदद से उन्होंने मद्रास तथा बङ्गाल में भारतीय नरेशों के आपसी झगड़ों में कभी एक का और कभी दूसरे का पक्ष लेना शुरू किया। इस कूट-नीति और इन साज़िशों द्वारा विदेशियों का बल और बढ़ता चला गया। दिल्ली साम्राज्य की निर्बलता के कारण कोई केन्द्रीय शक्ति इस समस्त स्थिति को समझने और उसका उपाय कर सकने वाली बाक़ी न रह गई थी। भारतीय नरेशों को एक दूसरे से लड़ा कर इलाक़े पर इलाक़ा विदेशियों के शासन में आता गया। अब हम कुछ अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ही के विचार इस विषय में दे देना चाहते हैं कि मोटे तौर पर किन

---

times may be understood from a law enacted by the Scotch Parliament, May 8, 1685, that whoever preached or heard in a conventicle should be punished with death and the confiscation of his goods. That such an infamous spirit did not content itself with mere dead-letter laws there is too much practical evidence to permit anyone to doubt. . . . Shrieking Scotch Covenanters were submitted to torture by crushing their knees flat in the boot ; women were tied to stakes on the sea-sands and drowned by the slowly advancting tide because they would not attend Episcopal worship, or branded on their cheeks and then shipped to America . . . The court ladies, and even the Queen of England herself, were so utterly forgetful of womanly mercy and common humanity as to join in this infernal traffic."—*The Intellectual Development of Europe*, by John William Draper, vol. ii, pp. 230-244.

किन उपायों द्वारा उस समय से धीरे धीरे अङ्गरेज़ों ने भारत में एक इतना बड़ा साम्राज्य क़ायम कर लिया, और इस देश के समृद्ध तथा लहलहाते हुए जीवन का अन्त कर दिया।

एक यूरोपियन विद्वान लिखता है—

"किसी भारतीय सन्त ने अपने देश के अन्दर यूरोपनिवासियों की तुलना दीमकों के साथ की है। आरम्भ में दीमकों की क्रियाएँ या तो अँधेरे में ज़मीन के नीचे से शुरू होती हैं या कम से कम दिखाई नहीं देतीं। किन्तु इन दीमकों का लक्ष्य निश्चित होता है और वे चुपचाप और अज्ञात उस लक्ष्य को पूरा करने में लगी रहती हैं, बन के हरे वृक्षों को नष्ट कर डालती हैं और उन्हें भीतर ही भीतर खाकर उनके खोखले तनों में अपनी इमारतें खड़ी कर लेती हैं जिन तक पास की तथा दूर की कड़ी मिट्टी की बामियों से आने जाने के लिए वे अनेक गुप्त रास्ते बना लेती हैं। जहाँ पहले दूर तक फैले हुए देवदार के वृक्ष लहराते थे वहाँ बामियाँ ही बामियाँ दिखाई देने लगती हैं। ये दीमकें हर चीज़ पर धावा करती हैं, हर चीज़ को खा जाती हैं, भीतर ही भीतर जड़ों को खोद डालती हैं, खोखला कर देती हैं और सब वीरान कर डालती हैं। इस उपमा पर हम अधिक गर्व नहीं कर सकते, यद्यपि उपमा एक दरजे तक फबती हुई है। × × × किन्तु कुछ हो, इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि भारतवर्ष के साथ हमारे शुरू के सम्बन्ध में बहुत सी ऐसी बातें हुई हैं जिनका चिन्तन करने से कोई भी सदाचार को समझने वाला मनुष्य एक बार काँप उठेगा और कोई भी

सच्चा ईसाई जिनका घृणा के साथ निषेध किए बिना नहीं रह सकता।"*

एक और अङ्गरेज़ विद्वान लिखता है—

"कम्पनी ने बङ्गाल का राज्य अथवा अरकाट का राज्य अथवा अन्य किसी भी प्रान्त का राज्य और किन उपायों से प्राप्त किया, सिवाय झूठी क़समें खाने और जालसाज़ियाँ करने के?"†

विलियम हॉविट नामक एक अङ्गरेज़ लिखता है—

"जिस तरीक़े से ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने हिन्दोस्तान पर क़ब्ज़ा किया उससे अधिक बीभत्स और ईसाई सिद्धान्तों के

---

* "Some native sage has compared the Europeans in India to *dimaks* or white ants, which from dark or scarcely visible beginnings, pursue their determined objects insidiously and silently, destroying green forest trees and in their excavated trunks building edifices, communicating by numerous galleries with the hardened clay pyramids, far and near, that denote where formerly flourished the far-spreading cedars. Attacking everything, devouring everything, they undermine and sap and desolate. The simile is not a very flattering one, though it is not in some measure without its aptitude either, . . . After all, however, there can be no question that in our early connection with India, there was much, from the contemplation of which, the moralist will shrink, and the Christian protest against, with abhorrence."—*The Calcutta Review*, vol, vii (1847), p. 226.

† "How did the Company acquire Bengal, but by perjury and forgery? Or Arcot, or any other principality?"—*The British Friend of India*—March, 1843.

विरुद्ध किसी दूसरे तरीक़े की कल्पना तक नहीं की जा सकती। ××× यदि कोई कुटिल से कुटिल तरीक़ा हो सकता था—जिसमें नीच से नीच अन्याय के प्रयत्नों पर न्याय का बढ़िया मुलम्मा फेरने की कोशिश की गई हो—यदि कोई तरीक़ा अधिक से अधिक निष्ठुर, क्रूर, गर्वयुक्त और दयाशून्य हो सकता था, तो वह वह तरीक़ा है जिससे भारतवर्ष की अनेक देशी रियासतों का शासन देशी राजाओं के हाथों से छीन छीन कर ब्रिटिश सत्ता के चङ्गुल में इकट्ठा कर दिया गया है ××× जब कभी हम दूसरी क़ौमों के सामने अङ्गरेज़ क़ौम की सचाई और ईमानदारी का ज़िक्र करते हैं तो वे भारत की ओर इशारा करके ख़ूब हिक़ारत के साथ हमारा मज़ाक़ उड़ा सकते हैं। ××× जिस तरीक़े पर चल कर, लगातार सौ वर्ष से ऊपर तक, देशी राजाओं से उनके इलाक़े छीने जाते रहे, और वह भी न्याय और औचित्य की पवित्रतम आड़ में, उस तरीक़े से बढ़ कर दूसरों को यन्त्रणा पहुँचाने का तरीक़ा राजनैतिक अथवा मज़हबी मैदान में किसी भी ज़ालिम हुकूमत ने कभी पहले ईजाद न किया था; संसार में उसके मुक़ाबले की कोई दूसरी मिसाल नहीं मिल सकती।"*

---

* ". . . the mode by which the East India Company has possessed itself of Hindostan, as the most revolting and un-Christian that can possibly be conceived . . . if ever there was one system more Machiavelian, more appropriative of the show of justice where the basest injustice was attempted, more cold, cruel, haughty and unrelenting than another, it is the system by which the Government of the different states of India has been

प्रसिद्ध अङ्गरेज़ तत्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर सन् १८५१ में लगभग पिछले सौ वर्ष के ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारतीय शासन का सिंहावलोकन करते हुए लिखता है—

"पिछली शताब्दी में भारत में रहने वाले अङ्गरेज़, जिन्हें बर्क ने 'भारत में शिकार की ग़रज़ से जाने वाले फ़सली परिन्दे' बतलाया है, अपने मुक़ाबले के पेरू और मेक्सिको निवासी यूरोपियनों* से कुछ ही कम ज़ालिम साबित हुए। कल्पना कीजिए कि उनके कृत्य कितने कलुषित रहे होंगे, जब कि कम्पनी के डाइरेक्टरों तक ने यह स्वीकार किया कि 'भारत के आन्तरिक व्यापार में जो बड़ी बड़ी धनराशियाँ कमाई गई हैं वे इतने ज़बरदस्त अन्यायों और अत्याचारों द्वारा प्राप्त की गई हैं, जिनसे बढ़ कर अन्याय और अत्याचार कभी किसी देश अथवा किसी ज़माने में भी सुनने में नहीं आए।' अनुमान कीजिए कि वन्सीटार्ट ने समाज की

---

wrested from the hands of their respective princes and collected into the grasp of the British power. . . . Whenever we talk to other nations of British faith and integrity, they may well point to India in derisive scorn. . . . The system which for more than a century, was steadily at work to strip the native princes of their dominions, and that too under the most sacred pleas of right and expediency, is a system of torture more exquisite than regal or spiritual tyranny ever before discovered ; such as the world has nothing similar to show."—*The English in India—System of Territorial Acquistion*, by William Howitt.

* जिन्होंने वहाँ के लाखों आदिमनिवासियों को अंग भंग कर डाला और उनका शिकार खेल खेल कर उन्हें निर्मूल कर दिया—लेखक।

जिस दशा को बयान किया है वह कितनी बीभत्स रही होगी, जब कि वन्सीटार्ट हमें बतलाता है कि अङ्गरेज़ भारतवासियों को विवश करके जिस भाव चाहते थे, उनसे माल ख़रीदते थे और जिस भाव चाहते थे उनके हाथ बेचते थे, और जो कोई इनकार करता था उसे बेत लगाने अथवा क़ैदख़ाने की सज़ा देते थे। विचार कीजिए कि उस समय देश की क्या हालत रही होगी जब कि अपनी किसी यात्रा को वर्णन करते हुए वारन हेस्टिंग्स लिखता है कि, 'हमारे पहुँचते ही लोग अधिकांश छोटे क़स्बों और सरायों को छोड़ छोड़ कर भाग जाते थे।' इन शासकों की निश्चित नीति उस समय बिना किसी कोपकारण के देशवासियों के साथ दग़ा करना था। देशी नरेशों को धोखा दे देकर उन्हें एक दूसरे से लड़ा दिया गया; पहले उनमें से किसी एक को उसके विपत्ती के विरुद्ध मदद दी गई, और फिर किसी न किसी दुर्व्यवहार का बहाना लेकर उसी को तख़्त से उतार दिया गया। इन सरकारी भेड़ियों को किसी न किसी गँदले नाले का बहाना सदैव मिल जाता था। जिन मातहत सरदारों के पास इस तरह के इलाक़े होते थे, जिन पर इन लोगों के दाँत होते थे उनसे बड़ी बड़ी अनुचित रक़में बतौर ख़िराज के लेकर उन्हें निर्धन कर दिया जाता था, और अन्त में जब वे इन माँगों को पूरा करने के नाक़ाबिल हो जाते थे तो इसी सङ्गीन जुर्म के दण्ड रूप उन्हें गद्दी से उतार दिया जाता था। यहाँ तक कि हमारे समय।(१८५१) तक भी उसी तरह के ज़ुल्म जारी हैं। आज दिन तक भी नमक का कष्टकर ठेका और वह निर्दय लगान की प्रथा जारी है, जो कि

ग़रीब रय्यत से ज़मीन की लगभग आधी पैदावार चूस लेती है। आज दिन तक भी वह धूर्ततापूर्ण स्वेच्छाशासन जारी है, जो देश को पराधीन बनाए रखने और उस पराधीनता को बढ़ाने के लिए देशी सिपाहियों का ही बतौर साधनों के उपयोग करता है। इसी स्वेच्छाशासन के नीचे अभी बहुत वर्ष नहीं गुज़रे कि भारतीय सिपाहियों की एक रेजिमेण्ट का इसलिए जान बूझ कर संहार कर डाला गया, क्योंकि उस रेजिमेण्ट ने पहरने के कपड़ों की कमी के कारण कूच करने से इनकार कर दिया था। आज दिन तक पुलिस के कर्मचारी धनवान लफ़ङ्गों के साथ मिल कर ग़रीबों से धन चूसने के लिए समस्त क़ानूनी संस्था को काम में लाते हैं। आज के दिन तक साहब लोग हाथियों पर बैठ कर निर्धन किसानों की खड़ी फ़सलों में से जाते हैं और गाँव के लोगों से बिना क़ीमत दिए रसद वसूल करते हैं। आज के दिन तक यह एक आम बात है कि दूर के ग्रामों में रहने वाले लोग किसी यूरोपियन की शकल देखते ही जङ्गल में भाग जाते हैं।"*

* "The Anglo-Indians of the last century whom Burke described as 'Birds of prey and passage in India' showed themselves only a shade less cruel than their prototypes of Peru and Mexico. Imagine how black must have been their deeds, when even the Directors of the Company admitted 'That the vast fortunes acquired in the inland trade have been obtained by a scene of the most tyrannical and oppressive conduct, that was ever known in any age or country.' Conceive the atrocious state of society described by Vansittart, who tells us that the English compelled the natives to buy or sell at just what rates they pleased on pain

एक और अङ्गरेज़ लेखक डॉक्टर रसल लिखता है—

"ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारतीय शासन को आरम्भ से ही बड़े बड़े पापों ने कलुषित कर रक्खा था, × × × लगातार अनेक पीढ़ियों तक बड़े से बड़े सिविल और फ़ौजी अफ़सरों से लेकर छोटे से छोटे कर्मचारियों तक, कम्पनी के मुलाज़िमों का एक मात्र महान लक्ष्य और उद्देश यह रहता था कि जितनी जल्दी हो सके और जितनी बड़ी से बड़ी धनराशि हो सके, इस देश से

---

of flogging or confinement. Judge to what a pass things must have come when, in describing a journey, Warren Hastings says 'Most of the petty towns and serais were deserted at our approach.' A cold-blooded treachery was the established policy of the authorities. Princes were betrayed into war with each other; and one of them having been helped to overcome his antagonist, was then himself dethroned for some alleged misdemeanour. Always some muddied stream was at hand as a pretext for official wolves. Dependent chiefs possessing coveted lands were impoverished by exorbitant demands, for tribute and their ultimate inability to meet these demands was construed into a treasonable offence, punished by deposition. Even down to our own day kindred iniquities are continued. Down to our own day, too are continued the grievous salt monopoly and the pitiless taxation, that wring from the poor ryots nearly half the produce of the soil. Down to our own day continues the cunning despotism which uses natives soldiers to maintain and extend native subjection, a despotism under which, not many years since, a regiment of sepoys was deliberately massacred, for refusing to march without proper clothing. Down to our own

निचोड़ ली जाय और फिर अपना मतलब पूरा करते ही सदा के लिए इस देश को छोड़ दिया जाय। × × × यह बात बिलकुल सच्चाई के साथ कही गई है कि × × × पराजित प्रजा को अपने बुरे से बुरे और अय्याश से अय्याश देशी नरेशों के अत्याचार अपने लिए इतने घातक मालूम न होते थे जितने कम्पनी के ये सूक्ष्म अन्याय।"*

इससे अधिक उद्धरण इस विषय में देने की आवश्यकता नहीं है। सन् १७५७ से १८५७ तक सौ वर्ष के कम्पनी के शासन में हिन्दोस्तानी

---

day, the police authorities league with wealthy scamps, and allow the machinery of the law to be used for the purposes of extortion. Down to our own day, so-called gentlemen will ride their elephants through the crops of impoverished peasants and will supply themselves with provisions from the native villages without paying for them. And down to our own day it is common with the people in the interior to run into the woods at sight of a European." —*Social Statics*, by Herbert Spencer.

* ". . . the Government of the East India Company in India was tainted from the very first with mighty vices, . . . for generation after generation, the great aim and object of the servants of the Company, from the high, civil and military functionaries downwards was to squeeze as large as possible a fortune out of the country as quickly as might be, and turn their backs upon it for ever, so soon as that object had been attained, . . . In perfect truth has it been said . . . that the subjugated race found the little finger of the Company thicker than the loins of the worst and most dissolute of their native princes."—Dr. Russell.

सिपाहियों का अपने देश तथा देशवासियों के विरुद्ध जाँनिसारी के साथ विदेशी अफ़सरों की फ़रमाँबरदारी करना, भारतीय नरेशों का अङ्गरेज़ों के साथ सन्धियों की शर्तों को ईमानदारी से निबाहना, अङ्गरेज़ों का बार बार जान बूझ कर अपनी सन्धियों और वादों का उल्लङ्घन करना, देशी रियासतों के यूरोपियन नौकरों का पद पद पर अपने मालिकों के साथ विश्वासघात करना, अङ्गरेज़ रेज़िडेण्टों का देशी दरबारों में रह कर वहाँ फूट डलवाना, रिशवतें देना, गुप्त साज़िशें करना, हत्याएँ कराना और जाल-साज़ियाँ करना, देशी नरेशों का कम्पनी के साथ 'सन्धि' और 'मित्रता' के जाल में एक बार फँस कर उससे बिना अपना मान और सर्वस्व दिए बाहर न निकल सकना, ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अपनी निर्धारित नीति के अनुसार भारत की प्राचीन ग्राम-पञ्चायतों, शिक्षा-प्रणाली, सहस्रों और लाखों पाठशालाओं, और सहस्रों वर्ष के उन्नत उद्योग धन्धों का नाश कर डालना, तथा इन सब के परिणाम रूप भारत का सौ सवा सौ वर्ष के अन्दर संसार के सब से अधिक प्रबल, उन्नत तथा समृद्ध देशों की श्रेणी से निकल कर सब से अधिक निर्बल, अवनत तथा दरिद्र देशों की श्रेणी तक पहुँचा दिया जाना—इस सब की अत्यन्त दुखकर कहानी इस पुस्तक के विविध अध्यायों में वर्णन की जायगी।

३

भारत में अङ्गरेज़ी राज्य के इतिहास को ठीक ठीक समझने के लिए यह आवश्यक है कि उससे ठीक पहले की भारत की अवस्था, अर्थात् मुग़ल साम्राज्य के समय की अवस्था, का पूरा चित्र हमारे सामने हो। किन्तु

मुग़ल साम्राज्य के समय की अवस्था को वर्णन करने से पहले हम आदि काल से लेकर मुसलमानों के हमले के समय तक भारत पर जितने और विदेशी हमले हुए हैं उन सब पर भी एक सरसरी नज़र डालना आवश्यक समझते हैं। साथ ही हम यह भी दिखाना चाहेंगे कि इस प्रकार के हमले यूरोप के विविध देशों पर भी हुए थे या नहीं, और यदि हुए थे तो भारत के मुक़ाबले में यूरोपियन देशों ने उनका कहाँ तक सफलता के साथ सामना किया। हमारे इस संक्षिप्त विवरण से पाठकों को मालूम हो जायगा कि इस तरह के आक्रमण भारत पर अन्य देशों की अपेक्षा अधिक नहीं हुए और न उन्हें भारत में अधिक सफलता ही प्राप्त हुई। इन आक्रमणों के समय अपनी रक्षा न कर सकने के स्थान पर भारत ने ऐसे अवसरों पर यूरोपियन देशों के मुक़ाबले में अपनी कहीं अधिक सफलता के साथ रक्षा की और प्रायः अपने आक्रमकों पर भौतिक तथा नैतिक दोनों प्रकार से विजय प्राप्त की।

भारत के ऊपर सब से पहला विदेशी आक्रमण आर्य जाति का आक्रमण बताया जाता है, जिसका समय पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार ईसा से लगभग २,५०० वर्ष पूर्व* था।

समस्त इतिहास-लेखक इस बात को स्वीकार करते हैं कि आजकल के भारतवासी, ईरानी तथा यूरोपनिवासी सब उसी प्राचीन आर्य जाति की सन्तान हैं। कहा जाता है कि आज से चार पाँच हज़ार साल पहले इन आर्य जाति के लोगों ने मध्य-एशिया के किसी भाग से निकल निकल कर भारत, ईरान तथा समस्त यूरोप को विजय तथा आबाद किया था।

* *The Cambridge History of India*, vol. 1. p. 697.

अर्थात् यदि उस प्राचीन आर्य जाति द्वारा विजय किया जाना किसी देश के लिए भी अकीर्तिकर माना जा सकता है तो वह भारत के लिए केवल उतना ही अकीर्तिकर हो सकता है, जितना ईरान, रूस, जरमनी, फ्रान्स, इङ्गलिस्तान, यूनान, रोम इत्यादि के लिए, जिनकी भाषा और जिनकी सभ्यता पर प्राचीन आर्यों की भाषा तथा सभ्यता की वैसी ही गहरी छाप पड़ी जैसी भारत में। इतना ही नहीं, बल्कि इतिहासज्ञ स्वीकार करते हैं कि जिस आर्य जाति के लोग अपने मध्य-एशिया के आदि स्थानों से निकल कर अधिकांश यूरोपियन महाद्वीप के ऊपर सहस्रों वर्ष तक अर्धसभ्य अवस्था में रहते रहे, उसी जाति के लोगों ने भारत में पहुँच कर, यूरोपियन विद्वानों के अनुसार ही, हज़रत ईसा से कम से कम हज़ारों साल पहले एक विशाल तथा दैदीप्यमान सभ्यता की नींव रक्खी। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि आर्यों के आगमन से पहले भी भारत सर्वथा असभ्य न था। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में हमें भारत के उन आदिम-वासियों की सभ्यता की उच्चता के भी अनेक वर्णन मिलते हैं।

आर्यों के हमले के बाद भारत के ऊपर जो विदेशी हमले गिनाए जाते हैं, उनकी असलीयत को समझने के लिए हमें एक और बात ध्यान में रखनी होगी। मध्य-एशिया के दक्षिण में अफ़ग़ानिस्तान, बलूचिस्तान और उसके आस पास का कुछ प्रदेश ईसा से लगभग एक हज़ार वर्ष पहले से लेकर औरङ्गज़ेब की मृत्यु के समय तक भारत तथा ईरान और उसके पश्चिमी देशों के बीच विवाद-ग्रस्त भूमि रहा है। भारत के अनेक हिन्दू और मुसलमान सम्राटों ने भारत से बैठ कर सीसतान, हिरात और अफ़ग़ानिस्तान पर शासन किया है। यहाँ तक कि प्राचीन समय के अनेक ईरानी और यूनानी लेखकों ने हिन्दोस्तान की सीमाएँ अफ़ग़ानिस्तान

और बलूचिस्तान के पश्चिम में बयान की हैं और उस समस्त पहाड़ी प्रदेश को हिन्दोस्तान ही का एक अङ्ग माना है। आर्यों के हमले के बाद जो अनेक हमले भारत पर गिनाए जाते हैं, उनमें से अधिकांश में भारत का अर्थ यही लिया जाता है। इस प्रकार उन आक्रमकों को भी, जिन्होंने कभी सिन्धु नदी का किनारा नहीं देखा, भारत के आक्रमक बता कर इन आक्रमणों की संख्या को बढ़ाया जाता है। कहा जाता है कि ईरान के प्रसिद्ध बादशाह दारा के विशाल साम्राज्य में, जिसने ईसा से ५२२ वर्ष पूर्व से लेकर ४८६ वर्ष पूर्व तक शासन किया, उत्तरीय भारत का कुछ भाग भी शामिल था। किन्तु दारा के शिलालेखों से साफ़ पता चलता है कि उसका साम्राज्य भी कभी सिन्धु नदी से आगे नहीं बढ़ा।

वास्तव में आर्यों के हमले के बाद से सिकन्दर के हमले के समय तक भारत के ऊपर केवल दो हमलों का थोड़ा बहुत विश्वस्त इतिहास मिलता है। इनमें पहला हमला असीरिया की जगत्प्रसिद्ध सम्राज्ञी मलका सेमिरामिस का है, जिसने ईसा से लगभग चार सौ वर्ष पहले बलूचिस्तान को पार कर भारत विजय करने का प्रयत्न किया। इस हमले के विषय में यूनानी इतिहास-लेखक नियारकस लिखता है कि सेमिरामिस को अपनी सेना के केवल बीस बचे हुए आदमियों सहित सिन्धु नदी से जान बचा कर भागना पड़ा। दूसरा हमला ईरान के प्रसिद्ध विजेता साइरस का हमला था। यह वह साइरस था जिसकी गणना मध्य-एशिया के बड़े से बड़े विजेताओं में की जाती है। काबुल से लेकर इराक़, शाम, टरकी, बैबिलोन, मिश्र और कुछ भाग यूनान का भी इस ईरानी विजेता की अधीनता स्वीकार कर चुका था। सेमिरामिस के बाद साइरस ने भारत पर हमला किया। किन्तु उसे भी केवल सात आदमियों सहित जान बचा

कर सिन्धु नदी से पीछे लौट जाना पड़ा, और अन्त में किसी भारतवासी के वार से ज़ख़्मी होकर ही उसकी मृत्यु हुई।*

इसके बाद ईसा से ३२६ वर्ष पूर्व जगत के प्रसिद्ध विजेता सिकन्दर के भारत पर हमले का समय आता है। पश्चिमी यूरोप से लेकर अफ़ग़ानिस्तान और बलूचिस्तान तक कोई देश इस अलौकिक विजेता की सेना के सामने न ठहर सका। स्वभावतः उत्तर-पश्चिम की ओर से आकर सिकन्दर ने अपनी सेना सहित सिन्धु तथा झेलम को पार किया। सिकन्दर को पूरी आशा थी कि वह भारत के समस्त उर्वर मैदानों को अपने विशाल साम्राज्य में मिला कर भारतीय महाद्वीप को पार करता हुआ पूर्वीय सागर तक जा पहुँचेगा। भारत की राजनैतिक अवस्था भी उस समय सिकन्दर के सौभाग्य से कुछ अव्यवस्थित थी। सरहद के ऊपर झेलम के उस पार तक्षशिला के राजा और इस पार पञ्जाब के राजा पौरव में, जिसे यूनानी पोरस कहते थे, बहुत दिनों से वैमनस्य चला आता था। तक्षशिला का राजा अपने प्रतिस्पर्धी पौरव के विरुद्ध सिकन्दर से मिल गया। सिकन्दर ने पौरव से अधीनता स्वीकार कराने के लिए उसके पास अपने दूत भेजे। पौरव ने दूतों को उत्तर दिया कि मैं अपनी सेना सहित युद्ध के मैदान में सिकन्दर और उसकी सेना के साथ बात चीत करूँगा। सिकन्दर की जिस सेना ने झेलम को पार कर पौरव पर हमला किया उसमें तक्षशिला के राजा की भारतीय सेना भी शामिल थी।† कुल आक्रमक सेना पौरव की सेना से संख्या में कहीं अधिक थी। पौरव के दो पुत्र मैदान में काम आए। स्वयं पौरव ज़ख़्मी होकर सिकन्दर

---

* *The Cambridge History of India*, vol. i, pp. 330-31.

† *The Cambridge History of India*, vol i, p 361.

के सामने लाया गया। विजय सिकन्दर की ओर रही। किन्तु यूनानी इतिहास-लेखक सब इस बात के साक्षी हैं कि पौरव के सौन्दर्य, उसकी वीरता और उसके साहस को देखकर सिकन्दर मुग्ध हो गया। सिकन्दर ने मुक्त कण्ठ से पौरव की प्रशंसा की और उसका सारा राज्य फिर से उसके हवाले कर दिया।

भारत की राजशक्तियों में उस समय मगध का साम्राज्य सबसे मुख्य था। पञ्जाब से चल कर सिकन्दर ने मगध पर चढ़ाई करने का इरादा किया। किन्तु सिकंन्दर की सेना ने, जिसे पौरव के साथ के संग्राम में भारतीय वीरता का काफ़ी परिचय मिल चुका था, व्यास नदी को पार करने से साफ़ इनकार कर दिया। यूनानी इतिहास-लेखक लिखते हैं कि सिकन्दर ने अपनी सेना को प्रोत्साहित करने का भरसक प्रयत्न किया, किन्तु उसकी एक न चल सकी। मजबूर होकर बिना भारत को विजय करने का अपना स्वप्न पूरा किए, उस अलौकिक जगत् विजेता को भी व्यास नदी के उस पार से ही पीछे लौट जाना पड़ा।

यूनानी इतिहास-लेखक मेगेस्थनीज़ साफ़ लिखता है कि सिकन्दर के आगमन से पहले भारतवासियों पर कभी भी कोई विदेशी आक्रमक विजय प्राप्त न कर पाया था।*

सिकन्दर के समय से लेकर मुसलमानों के हमले के समय तक भारत पर और भी कई हमले हुए, जिनमें कुछ असफल रहे और कुछ को सफलता भी प्राप्त हुई। इन सफल हमलों की एक विशेषता यह थी कि जो लोग भारत के किसी भाग को इस प्रकार विजय कर पाते थे वे अपने

---

* *The Cambridge History of India*, p. 331.

पुराने देशों से सर्वथा नाता तोड़ कर भारत ही में बस जाते थे, भारत ही को अपना घर बना लेते थे, भारत के हित और भारत की उन्नति में अपना हित और अपनी उन्नति समझने लगते थे, और थोड़े ही दिनों के अन्दर भारतवासियों में मिल जुल कर सर्वथा एक हो जाते थे।

सिकन्दर के बाद सबसे पहले दो हमले, जो असफल रहे, सेल्यूकस और एण्टिओकस के थे।

सिकन्दर के लगभग २० वर्ष बाद सिकन्दर के सेनापति और उत्तराधिकारी सेल्यूकस प्रथम ने भारत पर हमला किया। किन्तु इस समय तक मौर्य कुल के संस्थापक सम्राट चन्द्रगुप्त की सत्ता समस्त उत्तरीय भारत में क़ायम हो चुकी थी। लिखा है कि चन्द्रगुप्त अपने लड़कपन में सिकन्दर से मिल चुका था। सेल्यूकस के मुक़ाबले के लिए चन्द्रगुप्त ने पाँच लाख सेना और नौ हज़ार हाथी मैदान में जमा किए। सेल्यूकस घबरा गया। दोनों में सन्धि होगई। सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को न केवल सिन्धु नदी के पूर्व के समस्त प्रदेश का अधिराज ही स्वीकार किया, वरन् काबुल, क़न्धार, हिरात और बलूचिस्तान भी उसी के हवाले कर दिए। इस प्रकार अफ़ग़ानिस्तान और बलूचिस्तान दोनों, जिन पर सिकन्दर ने २० वर्ष पूर्व अपने नायब शासक नियुक्त कर दिए थे, अब चन्द्रगुप्त के भारतीय साम्राज्य में शामिल होगए। यूनानियों के उल्लेखों से यह भी पता चलता है कि चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस की लड़की के साथ शादी कर ली। इस सब के बदले में चन्द्रगुप्त ने पाँच सौ हाथी सेल्यूकस की भेंट किए और सेल्यूकस ने भारत की सरहद को पार कर अपने देश का रास्ता लिया।

चन्द्रगुप्त के पौत्र जगत्प्रसिद्ध सम्राट अशोक की मृत्यु के बाद जब मौर्यकुल की सत्ता कुछ निर्बल होती हुई दिखाई दी तो फिर एक यूनानी

सेनापति एण्टिओकस ने हिन्दुकुश को पार कर किसी छोटे से सरहदी नरेश के राज्य में प्रवेश किया। किन्तु सिवाय अपनी फ़ौज के लिए रसद और कुछ हाथियों के एण्टिओकस को और कुछ न मिल सका और केवल इतने ही से सन्तुष्ट होकर एण्टिओकस को भी सिन्धु नदी के उस पार से ही पीछे लौट जाना पड़ा।

किन्तु एण्टिओकस के बाद भारत पर कुछ इस तरह के आक्रमणों का ज़िक्र किया जाता है जिन्हें वास्तव में सफल आक्रमण कहा जा सकता है। इन हमलों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है (१) बख़्तियारी यूनानियों के हमले और (२) शक (सीदियन), हुण इत्यादि मध्य-एशिया की अर्धसभ्य जातियों के हमले।

बख़्तियारी, सिकन्दर ही के साथियों में से, वे यूनानी थे, जो पश्चिम एशिया में बस गए थे। आरम्भ में इन्हें सिकन्दर ने अपनी ओर से कुछ एशियाई प्रान्तों के शासक नियुक्त किया था। सिकन्दर की मृत्यु के कुछ समय बाद इन लोगों ने इराक़ में और उसके आस पास एक सुन्दर सल्तनत क़ायम की, जो बख़्तियारी सल्तनत के नाम से प्रसिद्ध हुई। बख़्तियारियों ने सेल्यूकस की पराजय को धोने के लिए सबसे पहले हेरात, अफ़ग़ानिस्तान और बलूचिस्तान को फिर से विजय किया। इसके बाद सिन्धु नदी के इस पार इन लोगों के हमले शुरू हुए। ये हमले पञ्जाब, सिन्ध और सौराष्ट्र (कठियावाड़) तक पहुँचे।* इन हमलों के बाद

* कालिदास के नाटक 'मालविकाग्नि मित्र' में एक संग्राम का ज़िक्र आता है जिसमें सिन्धु नदी के तट पर राजा पुष्यमित्र के पौत्र वसुमित्र ने यवन सेना को परास्त कर पीछे हटाया। 'यवन' शब्द से उस समय के संस्कृत ग्रन्थों में इन्हीं यूनानियों का अभिप्राय है। Ibid, p. 512.

मालूम होता है कि अनेक यूनानी भारत ही में बस गए। शाकल (सियालकोट) का राजा मिलिन्द, जिसका बौद्ध-ग्रन्थ 'मिलिन्द पन्ह' में ज़िक्र आता है, इन्हीं यूनानियों में से था।

जो यूनानी भारत में बस गए थे उनका किसी तरह का सम्बन्ध फिर यूनान अथवा इराक़ इत्यादि से न रह गया था। वे न केवल भारतवासियों के साथ मिल जुल कर एक हो गए, वरन् उन्होंने भारत की भाषा, भारत के साहित्य, भारत के धर्म, और भारत की सभ्यता को पूरी तरह अपना लिया। प्रसिद्ध बौद्ध प्रचारक नागसेन ने मिलिन्द को बौद्ध धर्म की दीक्षा दी, और मिलिन्द भारत के अत्यन्त धर्मनिष्ठ, न्यायप्रिय और प्रजापालक नरेशों में गिना जाता है, जिसकी प्रजा अत्यन्त समृद्ध तथा ख़ुशहाल थी।

इसी प्रकार की दूसरी मिसाल यूनानी राजदूत हेलियोडोरस की है, जिसने तक्षशिला से विदिशा (भीलसा) पहुँच कर वैष्णव मत स्वीकार किया और वहीं पर श्रीकृष्ण की स्मृति में एक स्तम्भ खड़ा करवाया।*

ये यूनानी जिस प्राचीन यूनानी चित्रकारी को अपने साथ भारत लाए थे उसे उन्होंने बौद्ध चित्रकारी की सहायता से ख़ासी उन्नति दी। इसी प्रकार बौद्ध चित्रकारी ने भी यूनानी चित्रकारी से उस समय कई नई बातें ग्रहण कीं। ज्योतिष, विज्ञान, दर्शन तथा अन्य कला-कौशल में भी यूनानियों ने भारतवासियों से और भारतवासियों ने यूनानियों से बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण की। यहाँ तक कि उस समय के बसे हुए 'यवन' (यूनानी) आज भारतवासियों में इस तरह घुल मिल गए हैं कि उनका कहीं पता तक नहीं रहा।

* *The Cambridge History of India*, p. 558.

इन यूनानियों के बाद, जैसा हम अभी ऊपर कह चुके हैं, शक, पहलव, और हुण जातियों के हमलों का समय आता है। ये हमले भी बख्तियारी यूनानियों के हमलों के समान एक दरजे तक भारत के सफल हमले कहे जा सकते हैं, और ये जातियाँ भी ठीक उसी प्रकार भारत में आकर बस गईं जिस प्रकार कि यवन बस गए थे।

सिन्धु नदी के पश्चिम में गन्धार और पुष्कलावती और पूर्व में तक्षशिला हज़रत ईसा के जन्म की शताब्दी में शक (सीदियन) जाति के शासन में आ गए। कहा जाता है कि पश्चिमी पञ्जाब और सिन्ध के कुछ भाग पर कुछ दिनों के लिए शक जाति का शासन हो गया। उसी शताब्दी में पहलव (पार्थियन) जाति के लोगों ने भी सिन्ध को विजय किया। इसके बाद इन लोगों ने दक्षिण की ओर बढ़ना शुरू किया। किन्तु आन्ध्र कुल के सम्राटों ने कई संग्रामों में इन जातियों पर विजय प्राप्त कर मध्य तथा दक्षिण भारत को उनके आक्रमणों से बचाए रक्खा। इसी लिए शक जाति के लोगों का शासन विन्ध्या तक परिमित रहा।

यह बात इतिहास से स्पष्ट है कि इस बीच जिन शक तथा पहलव जातियों ने उत्तरीय भारत के विविध भागों पर शासन किया और जो इस देश में आकर बस गए वे विदेशी आक्रमक रहने के स्थान पर इस देश की उच्चतर सभ्यता से प्रभावित होकर सर्वथा भारतवासी बन गए। उन्होंने भारतीय रहन सहन, भारतीय ढङ्ग के नाम, भारतीय धर्म, भारतीय भाषा, और भारतीय सभ्यता को पूरी तरह अपना लिया। उदाहरण के लिए शक जाति का सबसे प्रसिद्ध सम्राट, जिसने भारत में कुशान साम्राज्य की नींव रक्खी, और जिसने सन् ७८ ईसवी के लगभग अफ़ग़ानिस्तान तथा सरहदी प्रदेश पर शासन किया, सुप्रसिद्ध सम्राट कनिष्क था। कनिष्क ने

बौद्धमत स्वीकार किया। उसके सिंहासन पर बैठने के समय से ही, उसी की यादगार में शाका सम्वत् का प्रारम्भ हुआ, जिसका अभी तक भारत में उपयोग किया जाता है। सम्राट कनिष्क का राज्य दक्षिण में विन्ध्या तक और उत्तर में मध्य-एशिया के अलताई नामक पहाड़ तक फैला हुआ बताया जाता है। कनिष्क की राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी। बौद्ध धर्म के प्रचार में उसने बहुत बड़ा भाग लिया। अन्तिम और सबसे विशाल बौद्ध 'सङ्गति' अर्थात् महासभा का वह संयोजक था। बौद्धमत की महायान सम्प्रदाय की उसने नींव रक्खी। संस्कृत के प्रचार में उसने बहुत बड़ा भाग लिया। कनिष्क ही के प्रचारकों ने अधिकतर चीन, तातार, तिब्बत और उत्तर-एशिया में बौद्धमत का प्रचार किया।

शक जाति के लोग उस समय अपने को हिन्दू-क्षत्रिय कहते थे और क्षत्रिय ही स्वीकार किए जाते थे। उनके नाम प्रायः 'वर्मन्' और 'दत्त' इत्यादि से समाप्त होते थे। धीरे धीरे उनका अस्तित्व भी 'यवनों' के अस्तित्व की तरह शेष भारतवासियों के अस्तित्व में मिल कर एक हो गया।

शक और पहलव जातियों के हमलों के बाद मुसलमानों के हमले से पहले भारत पर अब केवल एक हमला और 'हुण' जाति का बाक़ी रह जाता है। यह हमला वास्तव में प्राचीन भारत पर सब से वहशी हमला था। एशिया अथवा यूरोप का प्रायः कोई भी देश इनके भयङ्कर हमलों से नहीं बचा। इसी हुण जाति के हमलों से अपनी रक्षा करने के लिए चीन के सम्राटों ने दो हज़ार मील लम्बी और अलौकिक चौड़ाई तथा उँचाई की चीन की प्रसिद्ध 'बड़ी दीवार' को निर्माण कराया था। इन्हीं हुण जाति के हमलों ने ईसा से लगभग डेढ़ दो सौ वर्ष पहले बख़्तियारी साम्राज्य को तहस नहस कर दिया। रूस तथा यूरोप को भी इन्हीं हमलों ने बरबाद

किया और लगभग एक हज़ार वर्ष तक वीरान बनाए रक्खा। भारत का भी इन हमलों से बच सकना असम्भव था। ईसा के जन्म से पूर्व इराक़ से लेकर भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा तक समस्त प्रदेश इसी जाति के अधीन था।

ईसा की पाँचवीं शताब्दी के मध्य में इस हुण जाति के लोगों ने भारत पर हमला किया। पन्जाब, मध्य-भारत और मालवा तक एक बार उनका शासन जम गया। हुण सरदार तुरामान ने भारत के सम्राट बुद्ध-गुप्त को परास्त कर दिया। किन्तु उसके बाद ही सम्राट यशोधर्मदेव ने, जिसकी राजधानी उज्जयनी थी, और जिसका साम्राज्य हिमालय से पूर्वीय घाट तक और ब्रह्मपुत्र से अरब समुद्र तक फैला हुआ था, तुरामान के पुत्र मिहिरकुल को मुलतान के निकट कोरूर नामक स्थान पर सन् ५७३ ईसवी में परास्त कर भारत से हुण जाति की राजसत्ता को मिटा दिया। इसके बाद राज्यवर्धन ने शेष उत्तरीय भारत से हुण जाति के रहे सहे प्रभाव का भी अन्त कर दिया।

अब हम उन सब हमलों को एक एक कर बयान कर चुके हैं जो मुसल-मानों के हमले से पहले भारत पर हुए थे। हमने यह सारा वृत्तान्त यूरोपियन इतिहास लेखकों के उल्लेखों से ही लिया है। इससे पूरी तरह अनुमान किया जा सकता है कि भारत पर उस समय तक कितने और किस तरह के हमले हुए, भारत ने कहाँ तक सफलता के साथ उनका मुक़ाबला किया, उन हमलों से भारत को अन्त में कहाँ तक हानि अथवा लाभ हुआ, और इन सब हमलों में तथा भारत पर अङ्गरेज़ों के हमले में कितना ज़बरदस्त अन्तर था।

सच यह है कि कम या अधिक बाहर से आक्रमणों का होना प्रत्येक

देश के इतिहास में एक सामान्य घटना है। भारत पर कदापि इतने अधिक आक्रमण नहीं हो पाए जितने शेष संसार के अधिकांश देशों और विशेष कर यूरोप के लगभग समस्त देशों पर। इसके प्रमाण में अब हम यूरोप के विविध देशों पर बाहर के आक्रमणों और उनके परिणामों का संक्षिप्त वृत्तान्त यूरोपियन लेखकों ही के आधार पर इस जगह देते हैं, जिससे यह भी मालूम हो जायगा कि भारत में कभी इस तरह के हमलों के कारण उस बरबादी का सहस्रांश भी देखने में नहीं आया, जो बरबादी कि उनके कारण समस्त यूरोप में एक हज़ार वर्ष से ऊपर तक फैली रही।

अनेक यूरोपियन इतिहास-लेखक स्वीकार करते हैं कि यूरोप के ऊपर एशियाई जातियों के हमले ईसा से सहस्रों वर्ष पहले से जारी थे। इनमें से आर्य जाति के हमले का ज़िक्र हम इससे ऊपर कर चुके हैं। इसके बाद ईसा से ८०० वर्ष पहले यूरोप पर अन्य एशियाई जातियों के हमलों का भी यूरोपियन इतिहास में ज़िक्र आता है। वास्तव में इस तरह के हमले समय समय पर बराबर होते रहे। किन्तु इस स्थान पर हम उन सब हमलों को छोड़ कर केवल हज़रत ईसा के जन्म के बाद के हमलों को ही संक्षेप में वर्णन कर देना चाहते हैं।

हज़रत ईसा की दूसरी शताब्दी से लेकर पूर्वीय तथा मध्य-एशिया की अनेक जातियाँ जैसे हुण, अवार, बलगर, ख़ज़ार, पज़ेनाक, मगियार, मङ्गोल इत्यादि बराबर अपनी एशियाई बस्तियों से निकल निकल कर यूरोप पर हमला करती रही हैं। इस तरह के हमले एक हज़ार वर्ष तक, रूस से लेकर जरमनी, इतालिया, इङ्गलिस्तान और

स्पेन तक बराबर होते रहे। इनमें से शुरू की आक्रमक जातियों ने पूर्वी तथा मध्य यूरोप में जाकर अपनी बस्तियाँ बनाईं। बाद के आक्रमकों ने इन अपने से पहले आए हुए लोगों को उत्तर और पश्चिम की ओर भगा कर स्वयं उनका स्थान ग्रहण किया।

ये हमले यूरोप के ऊपर इतने लगातार और इतने अधिक देशों पर हुए कि उन्हें एक दूसरे के बाद तरतीबवार बयान करना हमारे लिए अनावश्यक है। इसलिए हम इन सब लगभग एक हज़ार वर्ष के हमलों का सार वृत्तान्त यूरोपियन इतिहास-लेखकों ही के शब्दों में थोड़े से में दे देना चाहते हैं।

ईसा की पाँचवीं शताब्दी में लगभग एक चौथाई यूरोप, जिसमें यूनान, बलकान, इतालिया, स्पेन और स्वयं इङ्गलिस्तान—सब शामिल थे, रोमन लोगों के अधीन था। इसके बाद एशिया की इन्हीं आक्रमक जातियों ने यूरोप पहुँच कर सारे रोमन साम्राज्य को तहस नहस कर दिया।

इङ्गलिस्तान के ऊपर चार सौ वर्ष तक रोमन लोगों का राज्य रहा। उसके बाद ईसा की पाँचवीं शताब्दी में इन्हीं आक्रमक जातियों में से एक सैक्सन ने, जिसका उत्पत्ति-स्थान कहीं पर मध्य-एशिया में समझा जाता है, रोमन लोगों को निकाल कर बाहर किया, और इङ्गलिस्तान के असली बाशिन्दे ब्रिटनों को अपने अधीन कर लिया। आज कल की अङ्गरेज़ जाति, जो अपने देश के अन्दर सर्वथा स्वाधीन है, इन्हीं ब्रिटनों, सैक्सनों तथा इसी प्रकार की अनेक जातियों से मिल कर बनी हुई है।

जब कि विशाल तथा बलवान रोमन साम्राज्य भी इन लगातार आक्रमणों का मुक़ाबला न कर सका तो फिर शेष यूरोप की अवस्था का

केवल अनुमान कर लेना ही काफ़ी है। ईसा की पाँचवीं शताब्दी में हुण जाति ने, जिसका ज़िक्र भारत के सम्बन्ध में ऊपर किया जा चुका है, कास्पियन समुद्र तथा डेन्यूब नदी के बीच अपना एक स्वतन्त्र साम्राज्य क़ायम कर लिया था, जिसे रोम के निर्बल सम्राट तक ख़िराज अदा करते थे। इसी तरह का इन लोगों का एक दूसरा साम्राज्य ईसा की पाँचवीं और छठी शताब्दियों में पश्चिमी यूरोप में भी क़ायम हुआ। इन आक्रमणों के कारण यूरोपियन समाज की जो अवस्था हुई उसे बयान करते हुए एक फ़्रान्सीसी इतिहास-लेखक बुइसोनेद लिखता है—

"पुराने रोमन समाज की उच्च तथा मध्यम श्रेणियाँ उस तूफ़ान में मिट गईं, अथवा असभ्य आक्रमकों ने इन्हें लूट लिया। उनमें से जो बचे वे आक्रमकों में मिल कर एक हो गए × × × ब्रिटेन में एङ्गलो सेक्सन जाति ने ब्रिटन जाति को बिलकुल बरबाद कर दिया × × × इन क्रूर आक्रमकों ने न केवल बड़े बड़े रोमन ज़मींदारों की ज़मीनें छीन कर उन पर स्वयं अपने कुटुम्बों सहित रहना ही शुरू कर दिया, बल्कि उन्होंने उन तमाम ज़मींदारों को मार डाला, गिरजों को बरबाद कर दिया × × × ब्रिटेन में जो ब्रिटन जाति के लोग बचे उन्हें उन्होंने ग़ुलाम बना लिया × × × चारों तरफ़ इतना दुःख फैल गया कि अनेक निराश लोगों को केवल ग़ुलामी में ही एक प्रकार का आश्रय मिला। डेन्यूब और राइन के ज़िलों में गॉल (फ़्रान्स) में, बेल्जियम में और इतालिया में रोमन आबादी के जिन लोगों की आक्रमकों ने जान बख़्श दी उन्हें उन्होंने इस प्रकार ग़ुलाम बना लिया। × × × ब्रिटेन में इन लोगों ने इस तरह के अत्याचार किए कि वहाँ के पुराने

उच्च घरानों के लोग मौत से बचने के लिए अरमोरिका (पश्चिमोत्तर फ़ान्स) चले गए और ब्रिटन लोगों की बहुत बड़ी संख्या को क़त्ल कर डाला गया। × × × एक्वीटेन में और स्पेन में धर्मपरायण लोगों को और पादरियों को पीटा गया, उन्हें ज़ञ्जीरों से बाँध दिया गया और ज़िन्दा जला दिया गया। हर जगह, जब कि शहरों और क़स्बों को लूटा जाता था, स्त्रियों को बड़ी बेइज़्ज़ती सहनी पड़ती थी। रोम विजय करने के बाद ऐलेरिक के अधीन विसीगॉथ लोगों ने दरख़्तों के साए में लेट कर वहाँ की राजसभा के सदस्यों (सेनेटर्स) के बेटों और बेटियों को, जिन्हें उन्होंने अपने अन्तःपुरों में क़ैद कर लिया था, इस बात के लिए मजबूर किया कि वे सोने के प्यालों में शराब भर भरकर उन्हें पिलाएँ। प्रत्येक आक्रमण के बाद आक्रमकों की स्त्रियों की संख्या बढ़ जाती थी। × × × मकदूनिया में, थिसेली में, यूनान में, इज़ीरिया में, एपाइरस और डेन्यूब के प्रान्तों में आक्रमक तूरानियों, जरमनों और स्लैव लोगों ने पुरुषों को क़त्ल कर डाला और स्त्रियों और बच्चों को गिरफ़्तार कर लिया! × × × एक्वीटेन का प्रॉसपर अपनी एक कविता में लिखता है कि—'ईश्वर के मन्दिर जला डाले गए और मठ लूट लिए गए! यदि गॉल (फ़ान्स) की भूमि पर से समुद्र की लहरें फिर जातीं तो उनसे हमें इतना अधिक नुक़सान न होता।' × × × हुण जाति के लोगों ने सब चीज़ों का नाश कर डाला और जहाँ से निकले, मुल्क को वीरान बना दिया। × × × इतिहास-लेखक इडेसियस लिखता है कि पाँचवीं सदी के स्पेन का 'केवल नाम' बाक़ी रह

गया था। पूर्व में और पश्चिम में दोनों जगह असंख्य समृद्ध नगर मिट गए और फिर कभी न उभर सके। अकेले हुण जाति ने पूर्व में सत्तर नगरों को बरबाद कर दिया × × × ब्रिटेन में लन्दीनियम (लन्दन), इबोरेकम (यार्क), कैमेलोडूनम (कालचेस्टर), डोरोवरनम (कैण्टरबरी), वेण्टाइसेनोरम (नारविच), एक्कासालिस (बाथ) के ख़ुशहाल छोटे छोटे नगर, जिनकी रोमन लोगों ने बुनियाद रक्खी थी, खण्डहर होकर ढेर होगए। × × × पोप ग्रिगरी प्रथम चिल्लाने लगा, 'मालूम होता है कि दुनिया का अन्त होने वाला है। × × × पैनोनिया, नारिकम, रेटिया, हैलवेशिया (स्वीज़रलैण्ड), गॉल (फ़्रान्स), बेलजियम, ब्रिटेन, स्पेन और उत्तर तथा मध्य इतालिया को ख़ास तौर पर तीव्र कष्ट भोगने पड़े, और बलक़ान प्रायद्वीप को शायद इनसे भी अधिक कष्ट भोगने पड़े। उस समय के इतिहास-लेखक सब एक मत से यह बयान करते हैं कि पूर्व (यूनान इत्यादि) में तथा पश्चिम (इतालिया इत्यादि) में, दुनिया पर एक समान वीरानी छा रही थी और उनके अपने चित्तों पर निर्जनता तथा वीरानी का असर रह जाता था; और कोई कोई यह भी मानने लगे थे कि ईसाइयों के धर्मग्रन्थों में संसार के जिस अन्त की पेशीनगोई की गई है उसका समय आ गया है।"*

यह कहानी अधिकतर यूरोप के ऊपर ईसा की पाँचवीं, छठी और सातवीं शताब्दियों के आक्रमणों की है। आठवीं, नवीं और दसवीं

---

* *Life and Work in Meideval Europe*, by P. Boissonade, book i, chap, i, ii.

शताब्दियों के इसी प्रकार के आक्रमणों के विषय में इतिहास-लेखक बुइसोनेद लिखता है—

"नवीं और दसवीं शताब्दियों में नए हमलों ने पश्चिम यूरोप को बरबादी से ढक लिया। स्कैनडिनेविया के डाकुओं ने, जिन्हें 'नॉर्थमैन' कहते थे, सन् ८३० से ६११ तक, लगभग एक शताब्दी तक, वही जरमनों के से दुष्ट पराक्रम जारी रक्खे, उन्होंने जनता का संहार किया, लोगों को ग़ुलाम बना लिया, नगरों को जला डाला, और ईसाई जरमनी, लो-कन्ट्रीज़ (हॉलेण्ड तथा बेल्जियम), पश्चिमी फ़्रान्स, स्कॉटलैण्ड, आयरलैण्ड और इङ्गलिस्तान को लूट लिया अथवा बरबाद कर डाला। पूर्व यूरोप में हुण तथा अवार जातियों के भाईबन्द मगियार जाति ने डेन्यूब के मैदानों में, और मध्य-यूरोप, उत्तर इतालिया तथा पूर्वीय फ़ान्स में बरबादी फैला दी। दक्षिण यूरोप में बर्बर और अरब जाति के लुटेरों, सैरेसेन लोगों ने इतालिया के समुद्रतट और पास के टापुओं में, प्रावेन्स में और डोफ़ाइन (दक्षिण-पूर्वीय फ़ान्स) में लूट मार जारी रक्खी।"*

इन समस्त लगभग एक हज़ार वर्ष के हमलों के परिणाम का ज़िक्र करते हुए बुइसोनेद अन्त में लिखता है—

"असभ्य जातियों के हमलों ने एक सच्ची आफ़त बरपा कर दी। दो सौ वर्ष के अन्दर ही रोमन तथा ईसाई साम्राज्य का वह व्यवस्थित भवन, जिसकी छाया के नीचे श्रमजीवियों ने

* *Life and Work in Medieval Europe*, by P. Boissonade, book i, chapter x. p. 115.

उन्नति की थी और वे मालामाल हो गए थे, पश्चिमी यूरोप में नींव से लेकर शिखर तक उलट गया और पूर्वीय यूरोप में भी उसकी बुनियादें बेहद खोखली हो गईं। हर तरफ़ खण्डहर दिखाई देते थे, व्यवस्था की जगह अव्यवस्था और अराजकता का राज्य था, और क़ानून की जगह जिसकी लाठी उसकी भैंस का दौर था, प्रत्येक रूप में धन की उत्पत्ति रुक गई थी, जो ख़ज़ाने पिछली नसलों ने जमा कर रक्खे थे वे तितर बितर हो गए थे और आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति बन्द हो गई थी।"*

हमने यूरोपियन लेखकों ही के शब्दों में यूरोप के विविध देशों के ऊपर एशियाई जातियों के इन हमलों के परिणामों को संक्षेप में वर्णन कर दिया है। इस वृत्तान्त को पढ़ कर बहुत आसानी से देखा जा सकता है कि भारत अथवा यूरोप दोनों में से किसकी सरहदें अधिक कमज़ोर रही हैं, अथवा दोनों में से किसने बाहर के हमलों से अधिक सफलता के साथ अपनी सरहद की रक्षा की है। इसके बाद भारत तथा यूरोप दोनों के ऊपर मुसलमानों के हमलों को वर्णन करना बाक़ी है।

४

अब हम भारत के ऊपर मुसलमान जातियों के हमलों की ओर आते हैं।

कहा जाता है कि भारत के ऊपर मुसलमानों का आक्रमण अन्तिम

---

* *Life and Work in Medieval Europe*, by P. Boissonade, conclusion, p. 233.

और सबसे अधिक नाशकर आक्रमण था, जिसने देश के सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक जीवन का अनन्त काल के लिए नाश कर दिया और समस्त देश को दो अलग अलग परस्पर विरोधी दलों में विभक्त कर दिया। इस देश के ऊपर मुसलमानों के आक्रमण को देश की घोरतम आपत्ति बताया जाता है, मुसलमानों के इस देश पर शासन को देशवासियों की निर्बलता का प्रमाण बताया जाता है, और इसी आधार पर यह साबित करने की कोशिश की जाती है कि अङ्गरेज़ों ने इस देश में आकर उस घोरतम आपत्ति के दुष्परिणामों से भारतवासियों की रक्षा की।

निस्सन्देह कोई भी विदेशी आक्रमण किसी भी देश के लिए यशस्कर नहीं माना जा सकता। तथापि जिस तरह इससे पहले के आक्रमणों के विषय में, उसी तरह इस आक्रमण के विषय में भी हमें यह देखना होगा कि मुसलमानों का दूसरे देशों पर आक्रमण भारत ही की एक विशेषता थी अथवा संसार के अन्य देशों को भी इस आक्रमण का सामना करना पड़ा। हमें यह भी देखना होगा कि मुसलमानों का आक्रमण पहले भारत पर हुआ अथवा पहले किसी अन्य देश पर, अन्य देशों की तुलना में भारत ने इस आक्रमण का कहाँ तक सफलता के साथ मुक़ाबला किया, और मुसलमानों के आक्रमण के अन्तिम परिणाम भारत के लिए कहाँ तक हितकर रहे अथवा अहितकर।

हज़रत मोहम्मद का जन्म सन् ५६६ ईसवी में हुआ था। सन् ६०९ ईसवी में उन्होंने अपने नए मज़हब का प्रचार शुरू किया, जिसका मुख्य रूप था—अरब के सैकड़ों क़बीलों और घरानों के अलग अलग सहस्रों देवी देवताओं और उनकी मूर्तियों का अन्त कर उनकी जगह मनुष्यमात्र

के लिए एक निराकार अल्लाह की पूजा सिखाना, अलग अलग क़बीलों को तोड़ कर अरबनिवासियों को एक संयुक्त क़ौम बनाना, अरबों की असंख्य धार्मिक तथा सामाजिक कुरीतियों और अहितकर रूढ़ियों को तोड़ कर उनके सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन को पवित्र तथा उच्च करना, और इन सब से बढ़ कर मनुष्यमात्र की समता और भ्रातृत्व का उपदेश देना। इसलाम के गौण, विवादास्पद, अथवा अहितकर पहलू से इस स्थान पर हमें कोई सम्बन्ध नहीं है। वास्तव में मोहम्मद साहब के उपदेश धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक तीनों क्षेत्रों पर एक समान प्रभाव रखते थे। इन उपदेशों ने अरब लोगों के अन्दर एक नई रूह फूँक दी। वे धार्मिक तथा राजनैतिक दिग्विजय के लिए अपने देश से निकल पड़े और मोहम्मद साहब की मृत्यु के लगभग सौ वर्ष के अन्दर ही उन्होंने सभ्य संसार के एक बहुत बड़े हिस्से पर अपना प्रभुत्व क़ायम कर लिया।

सन् ६२९ ईसवी में मक्का नगर ने मोहम्मद साहब की अधीनता स्वीकार की। सन् ६२९ से ६३२ तक दो वर्ष के अन्दर समस्त अरब मोहम्मद साहब के अधीन हो गया। ६३२ में मोहम्मद साहब की मृत्यु हुई। सन् ६३६ में इराक़ (मैसोपोटेमिया) और शाम (सीरिया) पर अरबों ने विजय प्राप्त की। सन् ६३७ में उन्होंने बैतुलमुक़द्दस (जेरूसेलम) पर क़ब्ज़ा किया। सन् ६३७ से ६५१ तक समस्त ईरान अरबों के शासन में आ गया। सन् ७०१ से ७१५ तक मुसलमानों ने पूर्व में चीन की सरहद तक धावा किया और समस्त तातार और तुर्किस्तान को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

इसके साथ ही साथ इस साहसी जाति की नज़र पश्चिम की ओर गई। सन् ६३८ से ६४१ तक समस्त मिश्र (इजिप्ट) अरबों के शासन में आ गया। ६४७ से ७०९ तक कारथेज तथा शेष समस्त उत्तरीय

अफ़रीका पर अरबों का साम्राज्य क़ायम हो गया। यूरोप का विशाल रोमन साम्राज्य भी इन लोगों के हमलों से न बच सका। यहाँ तक कि सन् ७०० ईसवी से ७१३ ईसवी तक स्पेन अरबों की हुकूमत में आ गया।

यह सब इसलाम की पहली शताब्दी की विजयों का इतिहास है। किन्तु इसके बाद भी अरबों तथा अन्य मुसलमान क़ौमों की फ़तूहात जारी रहीं। धीरे धीरे समस्त रूस, यूनान, बलकान, पोलैण्ड, दक्षिण इतालिया, सिसली इत्यादि, आधे यूरोप पर मुसलमानों की हुकूमत क़ायम होगई और कई सौ वर्ष तक रही।

भारत में सब से पहले सन् ६३६ ईसवी में ख़लीफ़ा उमर के ज़माने में आज कल के बम्बई टापू के निकट ताना नामक स्थान पर पहली बार मुसलमानों की कुछ जलसेना दिखाई दी। यह सेना बहरायन (इराक़) के मुसलमान शासक सकैफ़ी की आज्ञा से भेजी गई थी। ख़लीफ़ा उमर की इसमें इजाज़त न ली गई थी। लिखा है कि जब ख़लीफ़ा उमर को इस बात का पता लगा, वह बहरायन के गवरनर पर नाराज़ हुआ। जलसेना बिना किसी तरह की भी लड़ाई इत्यादि के वापस बुला ली गई, और ख़लीफ़ा ने यह हुकुम दे दिया कि यदि फिर हिन्दोस्तान पर चढ़ाई की जायगी तो चढ़ाई करने वालों को कड़ी सज़ाएँ दी जायँगी।

इस छोटी सी घटना से मालूम होता है कि उस समय के अरब मुसलमानों और भारतवासियों के बीच किस प्रकार के प्रेम तथा परस्पर आदर का सम्बन्ध क़ायम था। हम अरबों तथा भारतवासियों के इस शुरू के सम्बन्ध को आगे चल कर और अधिक विस्तार के साथ बयान

करेंगे। किन्तु इससे पहले यहाँ पर हम भारत के ऊपर मुसलमानों के पहले बाज़ाब्ता हमले, उसके कारणों और परिणामों को वर्णन कर देना चाहते हैं।

ईसा की आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कुछ अरब सौदागरों की सिंहलद्वीप में मृत्यु हुई। ये अरब सौदागर इराक़ के रहने वाले थे। सिंहलद्वीप के राजा ने इन अरबों की कुछ अनाथ लड़कियों को एक जहाज़ में बैठा कर इराक़ के मुसलमान शासक हज्जाज के पास भेजा। मार्ग में कच्छ के कुछ डाकुओं ने, जिन्हें बावरिज कहते थे, जहाज़ पर हमला करके अरब लड़कियों को छीन लिया। हज्जाज ने काठियावाड़ के हिन्दू राजा दाहिर से लड़कियाँ तलब कीं। दाहिर हज्जाज की माँग पूरी न कर सका। इस पर हज्जाज ने बलूचिस्तान के रास्ते ख़ुश्की से मोहम्मद-बिन-क़ासिम के नेतृत्व में एक सेना सन् ७१२ ईसवी के लगभग भारत पर हमला करने के लिए भेजी।* यही भारत के ऊपर मुसलमानों का सब से पहला हमला था। भारत की राजनैतिक अवस्था उस समय कुछ निर्बल थी जिसका अधिक वृत्तान्त हम आगे चल कर देंगे। मोहम्मद बिन क़ासिम ने सिन्ध और मुलतान को विजय करके उन पर अपना शासन जमा लिया।

इस हमले के सम्बन्ध में हमें चार बातें ध्यान में रखनी चाहिएँ। पहली यह कि भारत पर मुसलमानों का पहला हमला उस समय हुआ जब कि पूर्व में तातार तक और पश्चिम में स्पेन तक मुसलमानों की हुकूमत क़ायम हो चुकी थी। दूसरी यह कि इतिहास-लेखक विल्कस के अनुसार इराक़ का शासक हज्जाज अपने देश में भी इतना अत्याचारी प्रसिद्ध था कि इराक़ के अनेक मुसलमानों ने उसके अत्याचारों से भाग कर

* Elliot's *History of India*, vol. i, p. 118.

भारत के दक्षिण में कोकण तथा रासकुमारी आदिक स्थानों में आश्र लिया था। तीसरी यह कि इतिहास से पता चलता है मोहम्मद बिन क़ासि सिन्ध के अन्दर अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा के साथ एक समा निष्पक्ष व्यवहार करता था। डॉक्टर बेनीप्रसाद ने अपनी पुस्तक 'जहाँगी के इतिहास' में लिखा है कि—"८ वीं शताब्दी में मोहम्मद बिन क़ासि का सिन्ध का शासन मृदुता और धार्मिक उदारता का एक ज्वलन्त उदाहरण था।"* चौथी बात हमें यह याद रखनी चाहिए कि इसके बा महमूद ग़ज़नवी के समय तक अर्थात् तीन सौ वर्ष तक फिर न कोई औ हमला मुसलमानों का भारत पर हुआ और न सिन्ध अथवा मुलतान से आगे उनका राज्य बढ़ा।

अब हम उस समय के अरबों तथा भारतवासियों के परस्पर सम्बन्ध को थोड़े विस्तार के साथ बयान कर देना चाहते हैं। अरबों तथा भारत वासियों का सम्बन्ध अरबों के मुसलमान होने से बहुत पहले से अर्थात हज़रत मोहम्मद के जन्म से कम से कम पाँच सौ साल पहले से चला आता था। हज़रत ईसा के जन्म के समय से ही सैकड़ों बल्कि सहस्रों अरब सौदागर भारत के पश्चिमी तथा पूर्वी बन्दरगाहों पर आकर उतरते थे। विशेष कर पश्चिम में चाल, कल्याण, सुपारा, और मलबार तट पर अरबों की अनेक बड़ी बड़ी बस्तियों का उस समय के इतिहास में ज़िक्र आता है। हज़रत ईसा के जन्म से पहले ही लङ्का तथा दक्षिणी भारत में अरबों और ईरानियों की अनेक बस्तियाँ मौजूद थीं। ईरान, अरब, अफ़रीका और

* "Mohammad Bin Qasim's administration of Sindh in the 8th century was a shining example of moderation and tolerance" —*History of Jehangir*, by Dr. Beniprasad, p. 89.

यूरोप के विविध देशों के साथ भारत का उस समय जितना व्यापार था, अधिकतर अरब और ईरानी सौदागरों ही के हाथों में था। रोमन इतिहास-लेखक लिखते हैं कि रोम और यूनान के जो जहाज़ उन दिनों भारत आते जाते थे उनके भी नाविक अधिकतर अरब ही होते थे। भारत तथा चीन के बीच की तिजारत का भी एक ख़ासा हिस्सा इन्हीं अरबों के हाथ में था, जिसके कारण भारत के पूर्वीय तट से भी ये लोग पूरी तरह परिचित थे, और वहाँ भी स्थान स्थान पर इनकी अनेक बस्तियाँ आबाद थीं।

उस समय के अरबों का मज़हब एक प्राचीन ढङ्ग का सीधा सा मज़हब था। वे अपने अलग अलग क़बीलों के अनेक देवी देवताओं को मानते थे और उनकी मूर्तियों की पूजा करते थे। उस समय के अनेक यात्रा-वृत्तान्तों से साबित है कि ये अरब अत्यन्त सरल स्वभाव और उदार-चित्त होते थे, भारतवासियों से उनका मेल जोल ख़ूब बढ़ा हुआ था और भारत में उनकी बस्तियाँ ख़ूब ख़ुशहाल थीं।

इसके बाद मोहम्मद साहब के जन्म और इसलाम के प्रचार का समय आया। अरबों और विशेषकर अरब व्यापारियों का भारत आना जाना पूर्ववत् जारी रहा। अन्तर केवल यह पड़ा कि पुराने मूर्तिपूजक अरबों के स्थान पर अब नए मुसलमान अरब भारत आने लगे। उनके साथ ही साथ अब एक नए मज़हब और इसलाम के नए विचारों और नए आदर्शों ने भी भारत में प्रवेश किया। हमें स्मरण रखना चाहिए कि अरब मुसल-मानों तथा उनके साथ इसलाम के इस प्रकार भारत में प्रवेश करने से किसी सैनिक आक्रमण का कोई सम्बन्ध न था।

इस स्थान पर आगे बढ़ने से पहले उस समय के भारत की अवस्था को संक्षेप में वर्णन कर देना भी आवश्यक है। ईसा की सातवीं शताब्दी

के मध्य में सम्राट हर्षवर्धन की सत्ता का अन्त हुआ। उत्तरीय भारत टुकड़े टुकड़े होकर अनेक छोटी छोटी रियासतों में बँट गया। राजपूतों ने पश्चिम से चल कर उत्तर-पूर्वीय तथा मध्य भारत में अनेक छोटी छोटी रियासतें क़ायम कर लीं। अनेक नई जातियाँ अपने को राजपूत कहने लगीं। यहाँ तक कि मुसलमानों के आने से ठीक पहले पञ्जाब से दक्षिण तक और बङ्गाल से अरब सागर तक लगभग समस्त देश राजपूतों के शासन में आगया। कोई प्रधान शक्ति इन समस्त छोटी बड़ी रियासतों को वश में रखने वाली न थी, और आए दिन इन तमाम रियासतों के बीच अपनी अपनी सत्ता बढ़ाने के लिए परस्पर संग्राम होते रहते थे। अर्थात् एक प्रधान और प्रबल भारतीय साम्राज्य के स्थान पर अनेक परस्पर प्रतिस्पर्धी और एक दूसरे से स्वतन्त्र छोटे बड़े राजा भारत पर शासन करते थे, और राष्ट्रीय एकता केवल स्वप्नमात्र थी। पुराने साम्राज्यों के केन्द्र मगध, पाटिलीपुत्र, गया इत्यादि खण्डहर दिखाई दे रहे थे। वैशाली, कुशीनगर, केड़िया, रामग्राम, कपिलवस्तु और श्रावस्ती, जिनके नाम बौद्ध इतिहास में प्रसिद्ध हो चुके थे, अब बरबाद दिखाई देते थे और देश के राजनीतिज्ञ तथा आर्थिक जीवन के दूसरे केन्द्रों ने उनका स्थान ले लिया था।

धर्म के क्षेत्र में भी भारत का वह समय एक बहुत बड़े परिवर्तन और अवनति का समय था। बुद्ध की मृत्यु से ढाई सौ वर्ष के अन्दर, अर्थात् हज़रत ईसा के जन्म से लगभग ढाई सौ वर्ष पहले, उस समय के अष्ट हिन्दूधर्म को भारत से निकाल कर बौद्ध धर्म उसका स्थान ग्रहण कर चुका था। किन्तु जिन ब्राह्मण पुरोहितों तथा उच्च जातियों के विशेषाधिकारों पर बौद्ध धर्म ने हमला किया था, उनकी ओर से विद्रोह की

आग बराबर सुलगती रही। धीरे धीरे प्रतिमा पूजा तथा अन्य प्राचीन हिन्दू कर्मकाण्ड ने बौद्ध धर्म में भी प्रवेश करना शुरू किया। उत्तरीय भारत में महायान सम्प्रदाय की नींव रक्खी गई, जिसमें बुद्ध भगवान के अतिरिक्त अनेक बोधिसत्वों की और विशेषकर अमिताभ की पूजा होने लगी। बौद्ध मन्दिरों का समस्त कर्मकाण्ड हिन्दू मन्दिरों के ढङ्ग पर ढल गया। प्रारम्भ के बौद्ध मत ने जो स्थान संस्कृत से छीन कर देश की भाषा प्राकृत अथवा पाली को दिया था, वह अब महायान सम्प्रदाय में फिर से संस्कृत को प्रदान किया गया। ज्ञान का मार्ग बहुत दरजे तक कर्मकाण्ड और भक्ति ने ग्रहण कर लिया।

धीरे धीरे आजकल के वैष्णव मत, शैवमत और तान्त्रिक सम्प्रदाय ने मिलकर बौद्ध मत को भारत से निकाल कर बाहर कर दिया और प्राचीन हिन्दू धर्म को फिर से उसका स्थान प्रदान कर दिया। निस्सन्देह उच्च श्रेणी के थोड़े से लोगों के लिए उपनिषद और दर्शनशास्त्र के सूक्ष्म उपदेश उस समय भी मौजूद थे, किन्तु सर्वसाधारण के लिए धर्म का पथ ख़ासा अन्धकारमय और गन्दा हो चला था। जिस जातिभेद को बौद्ध-धर्म ने नष्ट कर स्त्रियों और शूद्रों को मनुष्यत्व के अधिकार प्रदान करना चाहा था, वह जातिभेद फिर अपने पूरे ज़ोर के साथ क़ायम हो चुका था। ब्राह्मणों की श्रेष्ठता और अन्य वर्णों, विशेषकर शूद्रों, की हीनता ने फिर से भारतीय समाज को जकड़ कर उसके विकाश को असम्भव कर दिया था। पण्डों और पुरोहितों के विशेषाधिकार फिर से क़ायम होगए थे। और अधिकांश जनता के लिए सिवाय जात पाँत और ऊँच नीच के नियमों का पालन करने, असंख्य देवी देवताओं, भयङ्कर 'रुद्र' और प्रचण्ड 'शक्ति' की मूर्तियों को पूजने, जप, तप, यज्ञ, हवन, पूजा पाठ, ब्राह्मणों को दान,

तीर्थयात्रा, मन्तर, जन्तर और जटिल कर्मकाण्ड के और कोई धर्म न रह गया था। ज्ञान का सन्तोष केवल चोटी के इने गिने लोगों के लिए था। शेष जन समुदाय के लिए कर्मकाण्ड और अन्धविश्वास। उस समय के भारतीय साहित्य, चीनी तथा अरब यात्रियों के वृत्तान्तों, सिक्कों और शिलालेखों, सबसे इसी शोचनीय अवस्था का पता चलता है।

चीनी यात्री फ़ाहियान के समय पाँचवीं शताब्दी में उत्तर-पश्चिमी भारत के अन्दर काबुल से मथुरा तक बौद्धमत के हीनयान सम्प्रदाय का प्रचार अभी बाक़ी था, किन्तु शेष भारत से बौद्धधर्म मिटता जा रहा था। दो सौ वर्ष बाद जबकि प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूनत्साँग भारत पहुँचा तो उसने देखा कि उत्तर में हीनयान का स्थान महायान ने ग्रहण कर लिया था। ह्यूनत्साँग के बयान से मालूम होता है कि विशेषकर शिव की पूजा उस समय समस्त भारत में ज़ोरों के साथ फैलती जा रही थी। अयोध्या के निकट उसे इस तरह के मनुष्य मिले जो प्रतिवर्ष दुर्गा की मूर्ति के सामने मनुष्य की बलि चढ़ाया करते थे। बङ्गाल के शैव राजा सशङ्क ने अनेक बौद्ध मन्दिरों को तोड़ फोड़ कर उनमें बुद्ध की मूर्तियों के स्थान पर शिव की मूर्ति को स्थापित करना और बौद्ध मतावलम्बियों को यन्त्रणाएँ दे देकर अपने राज्य से निकालना शुरू कर दिया था। अन्य स्थानों पर नरमुण्डों की मालाएँ पहिने कापालिकों से ह्यूनत्साँग की भेंट हुई, इत्यादि। ह्यूनत्साँग लिखता है कि ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और मध्य-एशिया तक उस समय बौद्धमतावलम्बी तथा शैव मतावलम्बी दोनों पाए जाते थे। इसके बाद के अरब यात्रियों, मोहम्मद इब्ने इसहाक़ अन्नदीम, अलूशहरस्तानी इत्यादि की पुस्तकों से भी इन्हीं बातों का समर्थन होता है और पता चलता है कि मुसलमानों के आने के समय

तक भारत से बौद्धमत का लगभग लोप हो चुका था और शैवमत इत्यादि ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया था। अलबेरूनी लिखता है कि शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के अतिरिक्त, शक्ति, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, स्कन्ध, गणेश, यम और कुबेर की मूर्तियों की पूजा भी भारत में शुरू हो गई थी, और इन सब की अलग अलग सम्प्रदाएँ थीं। बौद्ध और जैन मतों ने मांस और मदिरा का उपयोग एक बार सर्वथा बन्द कर दिया था, किन्तु कापालिकों तथा शाक्तों दोनों के द्वारा इन चीज़ों का उपयोग स्थान स्थान पर फिर से धर्म का एक अङ्ग बन गया था। सारांश यह कि राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक, तीनों दृष्टि से भारत उस समय एक प्रकार की अन्धकारमय तथा अराजकता की अवस्था में था,—असंख्य छोटी बड़ी रियासतें, सैकड़ों मत मतान्तर, और अगणित सदाचार-विरुद्ध कुरीतियाँ तथा अन्धविश्वास।

ठीक उस समय, जब कि देश की यह अवस्था थी, इसलाम का इस देश में पदार्पण हुआ। हम लिख चुके हैं कि इसलाम के जन्म से पहले अरबों की इस देश में विशेष कर दक्षिणी भारत में अनेक बस्तियाँ थीं। उस समय के समस्त इतिहास से यह भी साबित है कि अरबों तथा भारतवासियों में बड़ा प्रेम था, और अरब सौदागर इस देश के अन्दर आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। ईसा की सातवीं शताब्दी से ही, मुसलमानों के सैनिक आक्रमण से बहुत पहले, अरब सौदागरों के साथ साथ नवीन धर्म इसलाम ने भी दक्षिण की ओर से भारत के अन्दर प्रवेश किया। इतिहास से पता चलता है कि इस नए धर्म का भी भारतवासियों ने उसी प्रेम के साथ स्वागत किया, जिस प्रेम के साथ कि वे सैकड़ों वर्ष

पूर्व से अरब सौदागरों का स्वागत करते रहे थे। एक बार भारतवर्ष की सीमाओं के अन्दर प्रवेश करते ही इसलाम भी भारत की असंख्य सम्प्रदायों में से एक गिना जाने लगा। इतिहास-लेखक रॉलैण्डसन लिखता है कि सातवीं शताब्दी के अन्त में मुसलमान अरब मलबार तट पर आकर बसने लगे थे। इतिहास-लेखक स्टररॉक लिखता है कि—"सातवीं शताब्दी से लेकर ईरानी और अरब सौदागर भारत के पश्चिमी तट पर भिन्न भिन्न बन्दरगाहों में बड़ी बड़ी संख्या में आकर बसने लगे। ये लोग इसी देश की स्त्रियों के साथ शादियाँ कर लेते थे। इनकी बस्तियाँ मलबार में ख़ास तौर पर बड़ी और महत्वपूर्ण थीं, क्योंकि वहाँ पर बहुत शुरू ज़माने से मालूम होता है राज्य की यह एक नीति चली आती थी कि बन्दरगाहों में व्यापारियों को हर प्रकार की उत्तेजना दी जाय।"*

धीरे धीरे दक्षिण में मुसलमानों का प्रभाव बढ़ता गया। राज्य की ओर से उन्हें तिजारत करने और ज़मीन ख़रीदने के साथ साथ अपने नए धर्म का प्रचार करने की भी पूरी सुविधाएँ दी जाने लगीं। नवीं शताब्दी तक ये लोग समस्त पश्चिमी तट पर फैल गए। हम लिख चुके हैं कि भारत में उस समय बौद्ध मत और जैन मत का हिन्दू मत और उसकी नवीन सम्प्रदायों के साथ संग्राम जारी था। स्वभावतः इन अनेक नई हिन्दू सम्प्रदायों के मुक़ाबले में, जिनका हम ऊपर ज़िक्र कर आए हैं और जिनका ज़ोर उस समय बढ़ता जा रहा था, इसलाम के सरल तथा स्पष्ट सिद्धान्तों और उसके अन्दर मनुष्यमात्र की समता के विचार की ओर लोगों का ध्यान ज़ोरों के साथ आकर्षित हुआ। इसलाम के विरुद्ध पक्षपात अथवा घृणा का कोई कारण उस समय तक मौजूद न था। नवीं शताब्दी के

* Sturrock : *S. Kanara, Madras District Manuals* ; p. 180.

शुरू में ही मलबार के हिन्दू राजा चेरामन पेरूमल ने, जिसकी राजधानी कोडङ्गलूर थी, इसलाम मत स्वीकार कर लिया।* राजा का नाम अब्दुर-रहमान सानीनी रक्खा गया। इसलाम मत स्वीकार करने के बाद अब्दुर-रहमान अरब गया। चार साल बाद अरब में ही उसकी मृत्यु हुई। अरब से उसने कई मुसलमान विद्वानों और प्रचारकों को भारत भेजा, उनके द्वारा अपने उत्तराधिकारियों को शासन प्रबन्ध के लिए हिदायतें कीं, और यह भी हिदायत की कि देश के अन्दर नए मत के प्रचार में अरब विद्वानों को पूरी सहायता दी जाय। राजा चेरामन पेरूमल के उत्तराधिकारियों ने बड़े हर्ष के साथ अरब विद्वानों का स्वागत किया और उनके आदेशानुसार मलबार तट पर ११ नई मसजिदें बनवाईं।

कालीकट के सामुरी राजा और त्रिवानकुर के महाराजा उसी चेरामन पेरूमल के वंशज और उत्तराधिकारी हैं। इन दोनों स्थानों पर उस १,१०० वर्ष पूर्व की घटना के स्मरण में आज तक यह रिवाज चला आता है कि जिस समय नया सामुरी अपनी गद्दी पर बैठता है तो मुसलमानों की तरह उसका मुण्डन किया जाता है, मुसलमानों के से उसे कपड़े पहनाए जाते हैं, एक मोपला उसके सिर पर ताज रखता है,† राजतिलक के बाद से उसे जातिच्युत की तरह समझा जाता है, अपने घर के लोगों के साथ भी फिर वह सहभोज नहीं कर सकता और कोई नय्यर उसे स्पर्श नहीं करता। समझा यह जाता है कि प्रत्येक सामुरी चेरामन पेरूमल के अरब से लौटने के इन्तज़ार में केवल उसके एक प्रतिनिधि की हैसियत से तख़्त

---

* Logan : *Malabar*, vol. i, p. 245.

† Quadir Husain Khan : South Indian Mussalmans, *Madras Christian College Magazine* (1912-13), p. 241.

पर बैठता है। त्रिवानकुर के महाराजाओं को गद्दी पर बैठते समय जब खड्ग हाथ में दी जाती है, तब आज पर्यन्त उन्हें यह कहना पड़ता है— "मैं इस खड्ग को उस समय तक रक्खूँगा, जब तक कि मेरा वह चचा, जो मक्का गया है, लौट न आए।"*

सामुरी ने अपने राज्य में मुसलमानों को हर तरह की सहायता दी। कोई नय्यर किसी नम्बूतरी ब्राह्मण के बराबर में न बैठ सकता था, किन्तु कोई भी मुसलमान बैठ सकता था। मुसलमानों का धर्मगुरु थङ्गल सामुरी के साथ साथ पालकी में निकलता था। अरबों और मुसलमानों की मदद से सामुरी ने अपने राज्य की सीमाओं को ख़ूब बढ़ाया, और राज्य की समृद्धि में बहुत बड़ी उन्नति हुई। वर्त्तमान कालीकट का नगर उस समय के एक मुसलमान क़ाज़ी ही का बसाया हुआ है। मलबार के राजाओं की जलसेना के सेनापति प्रायः मुसलमान होते थे, जो 'अलीराजा' कहलाते थे। इसलाम धर्म के प्रचार में भी सामुरी ने ख़ूब सहायता दी। यहाँ तक कि उसने आज्ञा दे दी कि प्रत्येक हिन्दू मल्लाह के घर के कम से कम एक लड़के को बचपन से मुसलमानों की तरह शिक्षा दी जाय। यही आजकल के मोपलों की उत्पत्ति है। मोपला शब्द का अर्थ महापिल्ला अर्थात् ज्येष्ठ पुत्र है।†

इसी बीच समय समय पर असंख्य मुसलमान फ़क़ीर और विद्वान अरब तथा ईरान से कुछ समुद्र के रास्ते और कुछ अफ़ग़ानिस्तान के रास्ते आ आकर भारत के अनेक भागों में बसते गए। हर जगह उनका ख़ूब आदर सत्कार होता था।

भारत के पूर्वीय तट पर भी मुसलमानों की बस्तियाँ और उनका

---

* Logan : *Malabar*, vol. i, p. 231.

† Innes : *Malabar and Anjengo District Gazetter*, p. 190.

महत्व बढ़ता चला गया। इन बस्तियों के अलग अलग नाम, हवाले और मुसलमानों की बढ़ती हुई संख्या को वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। एक मुसलमान फ़क़ीर नज़द वली (Nathad Vali) के प्रभाव से ग्यारहवीं शताब्दी में मदुरा और त्रिचन्नपल्ली के इलाक़ों में अनेक लोगों ने इसलाम मत स्वीकार किया। यह नज़द वली टरकी का एक शहज़ादा था, जो फ़क़ीर हो गया था, और अरब, ईरान तथा उत्तर-भारत से होता हुआ त्रिचन्नपल्ली पहुँचा था, जिसे उस समय त्रिसूर कहते थे। बारहवीं शताब्दी में एक दूसरे फ़क़ीर सय्यद इब्राहीम शहीद के प्रभाव से अनेक लोगों ने इसलाम मत स्वीकार किया। इसी प्रकार बाबा फ़ख़रुद्दीन इत्यादि अनेक अन्य इसलाम धर्म प्रचारकों के नाम उस समय के इतिहास में मिलते हैं। बाबा फ़ख़रुद्दीन के प्रभाव से पेन्नुकोण्डा के हिन्दू राजा ने इसलाम मत स्वीकार किया। यह भी साफ़ पता चलता है कि इन अरबों और मुसलमानों की सहायता से भारत और विशेष कर दक्षिणी भारत के व्यापार और समृद्धि में बहुत बड़ी उन्नति हुई। दक्षिण के हिन्दू राजाओं की ओर से चीन जैसे दूर दूर के देशों में मुसलमान एलची और राजदूत नियुक्त करके भेजे जाते थे। अनेक दरबारों में मुसलमान मन्त्री और प्रधान मन्त्री थे। अनेक प्रान्तों के शासक मुसलमान नियुक्त किए जाते थे। हिन्दू राजाओं के अधीन बड़ी बड़ी मुसलमान सेनाएँ थीं।

इसी तरह गुजरात के वल्लभी राजा बलहार ने अपने राज्य के अन्दर मुसलमानों का बड़े हर्ष और आदर के साथ स्वागत किया। काठियावाड़, कोकण और मध्यभारत के अन्य हिन्दू राजाओं ने भी मुसलमान फ़क़ीरों और प्रचारकों का बड़े प्रेम के साथ स्वागत किया और उन्हें अपने अपने राज्यों में इसलाम के प्रचार के लिए हर तरह की सहायता दी।

ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग खम्भात में कुछ हिन्दुओं ने मुसलमानों की एक मसजिद पर हमला करके उसे गिरा दिया। राजा सिन्धराज ने तहक़ीक़ात करके अपराधियों को दण्ड दिया और मुसलमानों को अपने धन से एक नई मसजिद बनवा दी। सोमनाथ के हिन्दू राजा के अधीन मुसलमान सेना और अनेक मुसलमान अफ़सर थे। ग्यारहवीं शताब्दी में बोहरों के शिया धर्माचार्य ने यमन (अरब) से आकर गुजरात में रहना शुरू किया। उसी समय के निकट नूरुद्दीन ने गुजरात के कुनबियों, खेरवाओं और काड़ियों को इसलाम धर्म में शामिल किया। उन असंख्य मुसलमान सन्तों और फ़क़ीरों के नाम गिनाने की आवश्यकता नहीं है, जो आठवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक बराबर उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूर्व से लेकर पश्चिम तक भारत के विविध भागों में आकर बसते रहे और जिनके चरित्र के प्रभाव तथा इसलाम के सरल धार्मिक सिद्धान्तों के कारण उस धार्मिक अव्यवस्था के युग में स्थान स्थान पर सहस्रों और लाखों भारतवासियों ने इसलाम धर्म स्वीकार करना शुरू कर दिया। अभी तक यदि उत्तरीय भारत के उन ग्रामों में घूमा जाय, जिनकी अधिकांश आबादी मुसलमान है, तो दरियाफ़्त करने पर मालूम होगा कि वहाँ के लोगों के इसलाम मत स्वीकार करने का कारण किसी न किसी समय किसी न किसी त्यागी और संयमी मुसलमान फ़क़ीर का उनके अन्दर सहवास था। हमें फिर यह स्मरण रखना चाहिए कि यह कहानी अधिकतर उस ज़माने की है, जब कि अधिकांश भारत के ऊपर मुसलमानों का राजनैतिक प्रभुत्व या तो शुरू ही न हुआ था और या कम से कम अभी जमने न पाया था।

हमारा कदापि यह अर्थ नहीं कि मुसलमानों की राजसत्ता का इस

देश के अन्दर इसलाम के प्रसार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। निस्सन्देह हर युग और हर देश में प्रजा के ऊपर राजा अथवा शासकों के धार्मिक विचारों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक और अनिवार्य है। यदि सम्राट अशोक न होता तो बौद्ध धर्म का भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक इस प्रकार फैल सकना शायद इतना आसान न होता। इसी प्रकार यदि सम्राट समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त (दूसरा) वैष्णव मत के पोषक तथा सम्राट यशोधर्मदेव (विक्रमादित्य) शैव मत के पोषक न होते तो हिन्दू मत का बौद्ध मत को भारत से निकाल बाहर कर सकना इतना सरल न होता। हम यह भी नहीं कहते कि भारतवासियों से इसलाम मत के स्वीकार कराने में कहीं पर किसी प्रकार की भी ज़बरदस्ती का उपयोग नहीं किया गया। दुर्भाग्यवश धार्मिक मामलों में थोड़ी बहुत ज़बरदस्ती संसार के प्रत्येक देश के इतिहास में पाई जाती है। हिन्दू मतों के साथ बौद्ध मत तथा जैन मत के सङ्घर्ष के दिनों में भी इस प्रकार की ज़बरदस्तियों के अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं। किन्तु इतिहास से बिलकुल साफ़ पता चलता है कि इस देश के अन्दर मुसलमानों के आक्रमणों से बहुत पहले इसलाम मत प्रवेश कर चुका था, इसलाम इस देश में महमूद ग़ज़नवी के हमले से भी पहले काफ़ी उन्नति कर चुका था, और इसलाम के भारत में फैलने का मुख्य कारण उस समय के इसलाम के प्रचारकों का त्याग, उनकी सच्चरित्रता, और इसलाम मत के वे स्पष्ट तथा सीधे सादे सिद्धान्त थे, जो कम से कम उस समय के भारत की अनेक हिन्दू सम्प्रदायों के मुक़ाबले में जन सामान्य के लिए अधिक हितकर और क्रियात्मक थे। भारत के जिन लोगों ने उस समय इसलाम मत स्वीकार किया, उनमें से अधिकांश संख्या उन छोटी जाति के लोगों की थी जो उस समय की भारतीय वर्ण व्यवस्था को अपने

लिए अन्याय अनुभव करते थे, और भारतवासियों की किसी संख्या का इस-लाम मत स्वीकार करना ठीक वैसा ही था जैसा उनका वैदिक मत को छोड़ कर बौद्ध मत स्वीकार करना अथवा बौद्ध मत को छोड़ कर वैष्णव मत या शैव मत स्वीकार करना अथवा चीनियों तथा बरमियों का अपने अपने मतों को छोड़ कर भारतीय बौद्ध मत को स्वीकार करना, इत्यादि।

भारतवासियों और भारतीय नरेशों का अरब सौदागरों के साथ सुन्दर व्यवहार, उनका अपने अपने राज्य में इसलाम मत को पूरी स्वतन्त्रता प्रदान करना, और उस शुरू ज़माने के भारतवर्ष में हिन्दुओं तथा मुसलमानों का परस्पर प्रेम सम्बन्ध ही वह बात थी जिसके कारण ख़लीफ़ा उमर ने अरब सेना को हिदायत की थी कि भारत पर सैनिक आक्रमण न किया जाय, और जिसके कारण एशिया, अफ़रीका तथा यूरोप में अरब साम्राज्य के पूरा विस्तार पा जाने के वर्षों बाद तक भी मुसलमानों की ओर से भारत पर हमला नहीं किया गया।

भारत की लगभग एक चौथाई आबादी के धीरे धीरे इसलाम मत स्वीकार करने में राजनैतिक दबाव अथवा ज़बरदस्ती का हिस्सा कहाँ तक था, इसके सुबूत में हम केवल दो एक इतिहास-लेखकों की सम्मतियाँ नीचे उद्धृत करते हैं। भारतीय मुसलमानों का ज़िक्र करते हुए इतिहास-लेखक आरनॉल्ड लिखता है—

> "इनमें से एक बहुत बड़ा अधिकांश भाग ऐसे लोगों का है, जिन्होंने अपनी स्वतन्त्र इच्छा से इसलाम मत स्वीकार किया।"*

---

* "By far the majority of them entered the pale of Islam of their own free will."—*The Preaching of Islam*, by T. W. Arnold, 1913, p. 255.

एक दूसरा इतिहास-लेखक टाउन्सेण्ड लिखता है—

"इस मत के यहाँ पर फैलने का मुख्य कारण ज़बरदस्ती नहीं है।"*

एक दूसरे स्थान पर यही लेखक भारतीय मुसलमानों के विषय में लिखता है—

"इन तमाम मुसलमानों में से ९० फ़ीसदी में भारतीय रक्त है, वे इस देश के वैसे ही बच्चे हैं जैसे हिन्दू। उनमें बहुत से पुराने हिन्दू अन्धविश्वास भी अभी तक मौजूद हैं। वे केवल इसलिए मुसलमान हैं, क्योंकि उनके पूर्वजों ने अरब के उस महापुरुष का मत स्वीकार किया था।"†

और आगे चल कर यही विद्वान लिखता है कि भारत में मुसलमानों की राजसत्ता क़ायम हो जाने के बाद भी प्रजा को ज़बरदस्ती मुसलमान करना अधिकांश नए मुसलमान शासकों के हित तथा उनकी रुचि दोनों के विरुद्ध था। वह लिखता है—

"इसलाम का प्रचारक बलप्रयोग न कर सकता था और × × जिन आक्रमकों ने यहाँ पर विजय प्राप्त की और जो यहाँ बस गए, उन्होंने भी बहुत ही कम अथवा कभी भी बलप्रयोग

---

* "Its spread as a faith is not due mainly to compulsion."—*Asia and Europe*, London, 1911, by M. Townsend, p. 44.

† "Ninety per cent of the whole body of the Muslims are Indians by blood, as much children of the soil as the Hindoos, retaining many of the old pagan superstitions, and only Mussal mans because their ancestors embraced the faith of the Great Arabian."—Ibid, p. 43.

करना नहीं चाहा। इसकी वजह भी काफ़ी थी और वह वजह यह थी कि बलप्रयोग करने में उनका हित न था। वे राज्य, बादशाहतें अथवा साम्राज्य क़ायम करना चाहते थे; न कि अपनी ही टैक्स देने वाली प्रजा के साथ घरेलू युद्ध छेड़ना अथवा इस विशाल द्वीपप्राय की युद्धप्रेमी जातियों की अदम्य शत्रुता को अपने विरुद्ध भड़का लेना; ये जातियाँ हिन्दू थीं और हिन्दू रहीं।"*

तेरहवीं शताब्दी के अन्त से सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक जब भारत में अपना साम्राज्य स्थापन करने के लिए मुसलमानों के प्रयत्न जारी थे, उस समय के विषय में सर अलफ्रेड लॉयल लिखता है कि मुसलमान नरेश-

"आम तौर पर लड़ाई में इतने मशग़ूल रहते थे कि वे मत प्रचार की ओर अधिक ध्यान न दे सकते थे अथवा यह कि उन्हें लोगों को मुसलमान बनाने की अपेक्षा उनसे कर वसूल करने की अधिक चिन्ता रहती थी।"†

---

* "The missionary of Islam could not use force and . . ., as to the invaders who conquered and remained, they seldom or never wished to use it, for the sufficient reason that it was not their interest. They wanted to found principalities, or kingdoms, or an empire, not to wage an internecine war with their own taxpaying subjects or to arouse against themselves the unconquerable hostility of the warrior races of the gigantic peninsula, who were and who remain Hindoos."—Ibid, p. 45.

† ". . . generally too busily engaged in fighting to pay much regard to the interests of religion, or else thought more of the exaction of tribute than of the work of conversion."—*Asiatic Studies*, by Sir Alfred Lyall, London, 1882, p. 288.

निस्सन्देह कहीं कहीं इस तरह के उदाहरण भी मिलते हैं जिनमें राजनैतिक अथवा अन्य कारणों से प्रेरित होकर भारत के किसी किसी मुसलमान नरेश ने इसलाम मत के प्रचार के हित में अपने अधिकारों का अनुचित प्रयोग किया, किन्तु इसके विपरीत केवल बाबर और अकबर ही नहीं, वरन् अधिकांश और असंख्य अन्य मुसलमान शासकों के लेख और उनकी आज्ञाएँ इस विषय की उद्धृत की जा सकती हैं, जिनसे मालूम होता है कि वे अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा को एक दृष्टि से देखते थे और राजशासन में किसी प्रकार का धार्मिक पक्षपात अपने लिए हितकर न समझते थे। इतिहास से यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि वर्त्तमान भारतीय मुसलमानों में से ९० नहीं, वरन् ९९ फ़ीसदी के इसलाम मत स्वीकार करने का कारण केवल उस समय के असंख्य मुसलमान फ़क़ीरों, पीरों, और दरवेशों की सच्चरित्रता और इसलाम की आन्तरिक सामाजिक तथा अन्य विशेषताएँ थीं।

५

भारत के ऊपर अरब के इस नए मत का प्रभाव केवल उन लाखों अथवा करोड़ों भारतवासियों तक ही परिमित न था, जिन्होंने इस नए मत को ग्रहण किया। उस सामाजिक अराजकता के दिनों में, जिसका चित्र हम ऊपर खींच चुके हैं, शेष भारतवासियों के विचारों, उनके धर्म, उनके साहित्य, उनकी चित्रकारी, उनके विज्ञान, उनकी निर्माण-कला, अर्थात् समस्त भारतीय सभ्यता पर इसलाम के नए विचारों का गहरा और अमिट प्रभाव पड़ा। किन्तु इस प्रभाव को वर्णन करने से पूर्व यह

आवश्यक है कि हम मोहम्मद साहब के बाद की अरबों के अन्दर की नई धार्मिक लहरों और उनकी सभ्यता के अन्य पहलुओं को भी संक्षेप में वर्णन कर दें।

इसलाम मत आरम्भ से ही एक ईश्वर को मानने वाला था। उसके सिद्धान्त अत्यन्त सरल थे और पूजा-विधि अत्यन्त सुसाध्य। तथापि मोहम्मद साहब की मृत्यु के थोड़े दिनों बाद से ही इसलाम के अन्दर नई नई शाखाएँ फूटने लगीं। जिस प्रकार अरब नीतिज्ञों ने पूर्व तथा पश्चिम में अपने साम्राज्य को विस्तार देना प्रारम्भ किया, उसी प्रकार अरब विद्वानों ने संसार के चारों कोनों से दर्शन, विज्ञान और विद्याओं की खोज कर अपने भण्डार को बढ़ाना शुरू किया।

ईसाई धर्म-ग्रन्थों के अरबी में अनुवाद किए गए। सुक़रात, अफ़लातून और अरस्तू जैसों के गम्भीर दर्शनशास्त्रों, और विज्ञान, वैद्यक, ज्योतिष इत्यादि विषयों के यूनानी ग्रन्थों के अरबी में अनुवाद किए गए। भारत के साथ अरबों का घनिष्ठ सम्बन्ध पहले से था ही। भारतीय माल के साथ साथ भारतीय संस्कृति का लेन देन भी शीघ्र ही प्रारम्भ हो गया। शुरू के ख़लीफ़ाओं के दिनों में अनेक हिन्दू बसरा में ऊँचे ऊँचे पदों पर नियुक्त थे।* शाम, काशग़र इत्यादि में हिन्दुओं की अनेक बस्तियाँ थीं। ख़ुरासान, अफ़ग़ानिस्तान, सीसतान और बलूचिस्तान इसलाम मत स्वीकार करने से पहले बौद्ध अथवा हिन्दू थे। बलख़ में एक बहुत बड़ा बौद्ध विहार था, जिसके बौद्ध मठाधीश अब्बासी ख़लीफ़ाओं के वज़ीर हुआ करते थे।† बौद्धमत की समस्त मुख्य मुख्य पुस्तकों के अरबी में अनुवाद

---

* Jean Perier: *Vie d'al Hadjdjadg Ibn Yusuf*, p. 249-52.
† Nicholson: *A Literary History of the Arabs*, p. 259.

किए गए। 'किताबुल बुद' और 'बिल बहर वा बुदसिफ़' उन्हीं दिनों की लिखी हुई अरबी भाषा में बौद्धमत की प्रामाणिक पुस्तकें हैं। इसी प्रकार सुश्रुत, चरक, पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, चाणक्य इत्यादि अगणित संस्कृत ग्रन्थों के अरबी में अनुवाद किए गए। विशेषकर बुद्ध के जीवन और उसके सिद्धान्तों का अरब के मुसलमानों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। धीरे धीरे जिज्ञासु अरबों में तरह तरह के स्वतन्त्र विचार, नए नए दार्शनिक, और नई नई सम्प्रदाएँ पैदा होनी शुरू हुईं। इसी परिस्थिति के अन्दर इसलाम में अद्वैतवाद और सुप्रसिद्ध सूफ़ी विचारों का जन्म हुआ।

उदाहरण के लिए उन्हीं दिनों शिया मुसलमानों की सम्प्रदाय 'ग़ुलात' के आचार्यों ने अवतारवाद (हुलूल, तशबीह), आवागमन (तनासुख़) इत्यादि को अपने सिद्धान्तों में स्थान दिया और यह प्रतिपादन किया कि मनुष्य की आत्मा भी बढ़ते बढ़ते ख़ुदा के रुतबे तक पहुँच सकती है। 'अली इलाही' सम्प्रदाय के लोगों ने एक से अधिक स्त्री के साथ विवाह और तलाक़ की प्रथा दोनों को नाजायज़ क़रार दिया। मसजिद में जाना और शारीरिक 'शरई' पवित्रता को भी उन्होंने अनावश्यक बताया। अनेक सम्प्रदायों ने क़ुरान के ज़ाहिरा अर्थों को न मान कर उसे अलङ्कार के रूप में मानना शुरू किया।* अव्यक्त, निर्गुण ब्रह्म और सगुण ईश्वर में भेद किया जाने लगा। इस तरह की अनेक सम्प्रदाएँ क़ायम हुईं, जिनमें लोगों को विशेष 'दीक्षा' देकर भरती किया जाता था। इनमें से कोई कोई सम्प्रदाय यह मानती थी कि दीक्षित मनुष्य अभ्यास

* Frielhander: *Heterodoxies of Shiites*, J. A. O. S. No, 23 and 29.

करते करते नबी और स्वयं ख़ुदा के रुतबे तक पहुँच सकता है। गुरु (पी
को ईश्वर और कहीं कहीं ईश्वर से भी बढ़ कर रुतबा दिया जाने लगा
मोतज़ली सम्प्रदाय के लोगों ने इस बात का खुले प्रतिपादन किया
क़ुरान सदा के लिए निर्भ्रान्त ईश्वर-वाक्य नहीं है, बल्कि मनुष्य जा
की उन्नति के साथ साथ प्रत्येक मनुष्य की आत्मा के अन्दर बरा
समय समय पर इलहाम होता रहता है। अलग़िज़ाली (१०५७-११
ने क़ुरान, शरीयत और सामान्य मुसलिम कर्मकाण्ड से असन्तुष्ट हो
संसार से पृथक तप (रियाज़त), अभ्यास (शग़ल) और ध्यान (ज़िक्र) शु
किया और अपनी आत्मा के अन्दर शान्ति अनुभव की। इस तरह
स्वाधीन विचार के सूफ़ियों के अनेक मठ (ख़ानक़ाहें) क़ायम हुए, जि
अद्वैत (वहदतुलवजूद) का उपदेश दिया जाता था, संयम (नफ़्सकुशी)
ज़ोर दिया जाता था और भक्ति (इश्क़) तथा योग (शग़ल) को मुक्ति
एक मात्र मार्ग बताया जाता था। कवियों और वैज्ञानिकों में अनेक तरह
अविश्वासी पैदा होने लगे, जो नबी तथा क़ुरान से इनकार करते थे, दोज़
और बहिश्त तथा रोज़े और नमाज़ का मज़ाक़ उड़ाते थे और स
ईश्वर के अस्तित्व को तर्क-विरुद्ध बतलाते थे, यहाँ तक कि ख़लीफ़ा य
(मृत्यु सन् ७४४) को भी इन्हीं नास्तिकों में गिना जाने लगा। प्रसि
विद्वान और महात्मा अबुल अला-अलमआरी (मृत्यु सन् १०५७) के विचा
पर बुद्ध के विचारों की छाप साफ़ दिखाई देती है। अबुल-अला आत्मा
आवागमन में विश्वास करता था, कड़ा निरामिषभोजी था, यहाँ त
कि दूध और शहद अथवा चमड़े के उपयोग को भी पाप मानता था
प्राणिमात्र के साथ दया का उपदेश देता था, आहार और वस्त्रों में अत्य
परहेज़गार था और ब्रह्मचर्य को आत्मा की उन्नति के लिए आवश्यक बता

था, मसजिद, नमाज़, रोज़े और दिखावटी मज़हब का वह कड़ा विरोधी था।* अपने एक पद में वह लिखता है—

"ला इलाह इल्लल्लाह ! सच है, किन्तु जो मनुष्य कि अँधेरे में भी उस स्वर्ग को खोजता है, जो स्वर्ग कि मेरे अन्दर और तुम्हारे अन्दर मौजूद है, उसकी अपनी आत्मा के सिवाय कोई और रसूल भी नहीं है।"

अबुलअला संसार को माया मानता था।

उमरख़य्याम के स्वतन्त्र विचार प्रसिद्ध हैं। रतजगे रखना, लम्बे लम्बे उपवास रखना, और कई तरह के नियम और तप सूफ़ियों ने मोहम्मद साहब की ज़िन्दगी से सीखे, किन्तु सूफ़ियों के सिद्धान्तों पर ईसाई मत, प्राचीन ईरान के ज़रतुस्त मत और भारतीय हिन्दू तथा बौद्धमतों की छाप भी साफ़ दिखाई देती थी। मोहम्मद साहब ने संसार से पृथक रहने को मना किया था, तथापि उनके अनुयायियों में आरम्भ से ही इस तरह के लोग पैदा हो गए थे जिनका सिद्धान्त संसार से भागना (अल-फ़िरारो मिनद्दुनिया) था। यद्यपि कट्टर मौलवियों और इन स्वतन्त्र विचार के सूफ़ियों में बराबर विरोध चला आता था, तथापि इसमें सन्देह नहीं, सैकड़ों वष तक हज़ारों और लाखों मनुष्य चारों ओर से आ आकर इन सूफ़ियों की ख़ानक़ाहों में जमा होते थे और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस ज़माने के मुसलमानों के जीवन और विचारों पर इनका बहुत गहरा प्रभाव था।

प्रसिद्ध सूफ़ी मनसूर का नाम संसार भर में प्रसिद्ध है। मनसूर ने भारत की भी यात्रा की थी। उसका मुख्य सिद्धान्त और वाक्य 'अनल हक़'

* Baerlein : *Abul-Ala, the Syrian.*

अर्थात 'सोऽहं' अथवा 'अहं ब्रह्म' था। अपने स्वाधीन विचारों के कारण मनसूर को क़ैद किया गया और सन् ९२२ ईसवी में यातनाएँ दे देकर सूली पर चढ़ा दिया गया। कबीर, दादू, नानक तथा अन्य भारतीय महात्माओं के वचनों में मनसूर के वाक्य के वाक्य इधर से उधर तक भरे हुए हैं। मनसूर सबको ख़ुदा मानता था और हर प्रकार की दुई को धोखा बतलाता था। इस अद्वैतवाद ने स्वभावतः उस समय के असंख्य मुसलमानों में सब मज़हबों की एकता और एक दूसरे की ओर उदारता के विचार भी पैदा किए। सूफ़ियों के साहित्य में अभ्यास के मुक़ामात, समाधि, सत्सङ्ग की महिमा, गुरु के महत्व, प्राणायाम इत्यादि का ख़ूब ज़िक्र आता है और भक्ति के उन्माद में गाने, बजाने और नाचने की तारीफ़ की गई है। शेख़ बदरुद्दीन के विषय में, जो तेरहवीं शताब्दी में भारत में आकर रहने लगा था, लिखा है कि जब वह इतना बूढ़ा हो गया था कि हिल डुल न सकता था तब भी हरि भजन की आवाज़ पर वह तुरन्त अपने बिस्तर से कूद कर जवान मनुष्य की तरह नाचने लगता था। जब उससे पूछा जाता था कि इस निर्बल अवस्था में शेख़ कैसे नाच सकता है तो वह जवाब देता था, "शेख़ कहाँ है? इश्क़ नाच रहा है।"*

निस्सन्देह सूफ़ियों का मार्ग भक्तिमार्ग था, उनका सिद्धान्त अद्वैत था, इश्क़ उनकी पूजा थी और ब्रह्म में लीन होकर तद्वत् हो जाना उनकी निजात (मोक्ष) थी।

ईसा की आठवीं शताब्दी के पूर्व भारत की धार्मिक अव्यवस्था का ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं। बौद्ध मत समाप्त हो चुका था और शैव मत, वैष्णव मत तथा शाक्त मत ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया था। बौद्ध मत

* Blochman and Jarrett: *Ayeen-i-Akbari*, vol, iii, p. 368.

के उच्च सदाचार और मानव समता के सिद्धान्तों के स्थान पर फिर से असंख्य देवी देवताओं, मत मतान्तरों, कर्मकाण्ड, जात पाँत, ऊँच नीच तथा सहस्रों अन्य पाखण्डों ने अपना साम्राज्य जमा लिया था। मदुरा के जैन राजा ने जब शैव प्रचारक तिरुज्ञान के उपदेश से जैन मत त्याग कर शैव मत ग्रहण किया और मदुरा की शेष प्रजा ने जैन मत को छोड़ने से इनकार किया तो राजा ने तिरुज्ञान की सलाह से अनेक जैनों को फाँसी पर लटका दिया। इस प्रकार के धर्म के नाम पर अत्याचार उस समय जैनों और बौद्धों के विरुद्ध स्थान स्थान पर सुनने में आते थे। ऐसी स्थिति में उन सहस्रों मुसलमान फ़क़ीरों और सूफ़ियों के सिद्धान्तों और चरित्र का भारतीय जनता पर हितकर प्रभाव पड़ना, जो शुरू की शताब्दियों में अधिकतर दक्षिण और पश्चिम में आकर बसने लगे थे, एक स्वाभाविक घटना थी। अनेक हिन्दू विद्वानों के चित्त में भी उस समय अपने देश की जटिल धार्मिक स्थिति को सुलझाने की चिन्ता उत्पन्न हुई। एक दूसरे के बाद शङ्कर, रामानुज, निम्बादित्य, वासव, वल्लभाचार्य, माधव इत्यादि अनेक सन्त, महात्मा भारत के दक्षिण में पैदा हुए, जिन्होंने अपने अपने ढङ्ग से अपने दुखित देशवासियों को फिर से शान्ति, प्रेम और आशा का सन्देश सुनाया।

शुरू से लेकर ईसा की आठवीं शताब्दी तक भारत में जितने धार्मिक तथा सामाजिक सुधार के आन्दोलनों का जन्म हुआ, वे प्रायः सब उत्तर ही से शुरू हुए। किन्तु आठवीं शताब्दी के समय से यह एक नई बात देखने में आती है कि इस प्रकार के सुधारों को जन्म देने का श्रेय उत्तर के स्थान पर अब दक्षिण को मिलने लगा। आठवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी तक दक्षिण भारत का यह श्रेष्ठत्व क़ायम रहा। शङ्कर, रामानुज, निम्बादित्य,

बासव, वल्लभाचार्य और माधव सब दक्षिण के रहने वाले थे। इसका एक कारण निस्सन्देह यह था कि उन दिनों अधिकांश मुसलमान सन्त सूफ़ी और दरवेश दक्षिण और पश्चिम में ही जा जाकर बसते थे। इन भारतीय आचार्यों के उपदेशों और सिद्धान्तों पर इसलाम की साफ़ छाप दिखाई देती है। एक विद्वान इतिहासज्ञ लिखता है—

"इसलाम के अनुयायियों की उपस्थिति ने जाति भेद, आत्मिक जन्म और ईश्वर के व्यक्तित्व, इत्यादि विषयों पर लोगों को विचार करने के लिए उत्तेजित किया।"*

इतिहास-लेखक बार्थ लिखता है—

"अफ़ग़ानों, तुरकों अथवा उनके सहधर्मी मुग़ल आक्रमकों के इस देश में आने से बहुत पहले ख़िलाफ़त के अरब लोग यात्रियों के रूप में इन तटों पर पहुँच चुके थे और देशवासियों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध तथा मेल जोल पैदा कर चुके थे। अब देश के ठीक इन्हीं हिस्सों में नवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक वे ज़बरदस्त धार्मिक तहरीकें शुरू हुईं जो शङ्कर, रामानुज, आनन्दतीर्थ और वासव के नामों के साथ सम्बन्ध रखती हैं। ऐतिहासिक सम्प्रदायों में से अधिकांश इन्हीं तहरीकों से पैदा हुईं और बहुत दिनों तक हिन्दोस्तान में इनसे मिलती जुलती और कोई चीज़ न थी।"†

---

* "The presence of the followers of Islam stimulated thought on such subjects as caste, spiritual birth and the personality of God."—*Kabir and Kabir Panth*, by H. G. Westcott, London, 1907, p. 45.

† Barth: *Religions of India.*

थोड़ी सी सरसरी तुलना से मालूम हो सकता है कि उस समय के लगभग समस्त हिन्दू आचार्यों ने अपने समय के इसलाम से काफ़ी विचार ग्रहण किए।

अब हम आठवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक के मुख्य मुख्य भारतीय आचार्यों और महात्माओं के उपदेशों की इसलाम और सूफ़ियों के उपदेशों के साथ थोड़ी सी संक्षिप्त तुलना इस स्थान पर करते हैं। हमारा कदापि यह अभिप्राय नहीं है कि इन महात्माओं ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, वे सब किसी न किसी रूप में अथवा कम से कम बीज रूप में भारत के उससे पहले के धार्मिक साहित्य में मौजूद न थे, इसमें भी सन्देह नहीं कि विशेषकर शङ्कर जैसे विद्वानों ने अधिकतर भारत के प्राचीन ज्ञान भण्डार से ही अपनी ज्ञान पिपासा को तृप्त किया और उसी आधार पर अपने शेष देशवासियों को सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया। तथापि नीचे की तुलना से यह स्पष्ट हो जायगा कि कम से कम उस समय इन आचार्यों ने बहुत दरजे तक इसलाम से अपने सिद्धान्तों में सहायता और पुष्टि प्राप्त की, और एक दरजे तक भारत ही के अनेक प्राचीन विचारों ने अरब और ईरान से टक्कर खाकर एक नए वेश और पुनरुज्जीवित रूप में फिर भारत के अन्दर प्रवेश किया।

सब से पहले हमारा ध्यान शङ्कराचार्य की ओर जाता है। शङ्कराचार्य ने बौद्ध मत के विरुद्ध उस समय की अनेक हिन्दू सम्प्रदायों को मिला कर उन्हें दार्शनिक नींव और एक सुन्दर व्यवस्थित रूप देने का ज़बरदस्त प्रयत्न किया। शङ्कर ने अपने से पहले के हिन्दू धर्म में अनेक नवाचार किए। उसने सब वर्णों के लोगों के लिए संन्यास की दीक्षा को जायज़ क़रार दिया। 'मनुष्य-पञ्चक' में उसने एक स्थान पर लिखा है—"कोई

भी तत्वदर्शी मनुष्य मेरा सच्चा गुरु है, चाहे वह द्विज हो और चाहे चाण्डाल। वैष्णव तथा शैव आचार्यों ने अनेक स्थानों पर शङ्कर का कड़ा विरोध किया। शङ्कर का अद्वैतवाद निस्सन्देह भारतीय था, किन्तु उस समय के मुसलमान सूफ़ियों के अद्वैतवाद के साथ उसमें गहरी समानता थी। कम से कम शङ्कर से पहले भारत में किसी ने भी अद्वैतवाद को इस प्रकार का रूप न दिया था। इसलाम के कठोर एक ईश्वरवाद और शङ्कर के अद्वैतवाद में भी थोड़ी सी समानता अवश्य है। शङ्कर के समय में इसलाम भारत में पहुँच चुका था। लिखा है कि जिस प्रदेश में शङ्कर का जन्म हुआ था, वहाँ का हिन्दू राजा तक इसलाम मत स्वीकार कर चुका था।*

रामानुज तथा अन्य आचार्यों के उपदेशों में एक ईश्वरवाद पर ज़ोर, भक्ति का उन्माद, प्रपत्ति, गुरुभक्ति, जातिभेद का ढीलापन, इत्यादि अनेक बातें इसलाम के साथ मिलती हुई हैं। इनमें से अनेक विद्वानों के ग्रन्थों में अनेक मुसलमान सूफ़ियों के ग्रन्थों के साथ कहीं कहीं आश्चर्य-जनक समानता दिखाई देती है।

लिङ्गायत सम्प्रदाय की स्थापना बारहवीं शताब्दी के लगभग हुई। वासव, चन्न वासव और एकान्त रमय्या तीनों आचार्य इस सम्प्रदाय के संस्थापक माने जाते हैं। लिङ्गायत सम्प्रदाय एक शैव सम्प्रदाय है। लिङ्गा-यत लोग एक ईश्वर (पर शिव) को मानते हैं। अपने गुरु अल्लमा प्रभु को वे ईश्वर का अवतार मानते हैं। मुसलमानों के 'चार पीरों' के समान वे भी चार आराध्य मानते हैं। दीक्षा के नियम बिलकुल वैसे ही हैं जैसे सूफ़ियों में। लिङ्गायत लोग जातिभेद को नहीं मानते। पैरिया ठीक उसी प्रकार उनकी सम्प्रदाय में लिया जा सकता है जिस प्रकार ब्राह्मण।

* Fawcett : *Anthropology*, Bulletin vol. iii, No. I.

दोनों में कोई अन्तर नहीं माना जाता। विवाह में कन्या की स्वीकृति आवश्यक समझी जाती है। बाल विवाह की मनाही है। तलाक़ की इजाज़त है। विधवाओं को पुनर्विवाह की इजाज़त है। मुर्दे बजाय फूँकने के दफ़न किए जाते हैं। श्राद्ध इत्यादि नहीं किए जाते। लिङ्गायत लोग आवागमन के सिद्धान्त को नहीं मानते। सब लिङ्गधारी एक दूसरे के साथ खा पी सकते हैं, विवाह सम्बन्ध कर सकते हैं। ये लोग अपने को 'जङ्गम' अथवा 'वीर शैव' भी कहते हैं। बेलगाम, बीजापुर और धारवाड़ ज़िलों में ३५ फ़ीसदी और मैसूर तथा कोल्हापुर रियासतों में १० फ़ीसदी आबादी लिङ्गायतों की है। निस्सन्देह लिङ्गायतों के सिद्धान्तों में अनेक बातें ऐसी हैं जो इसलाम में पाई जाती हैं, और उससे पहले की किसी भी भारतीय सम्प्रदाय में नहीं थीं। 'अल्लम' और अल्लाह शब्द भी निस्सन्देह एक दूसरे से मिलते हुए हैं।

इसी प्रकार सिद्धर सम्प्रदाय के लोगों ने एक ईश्वर को माना, आवागमन के सिद्धान्त से इनकार किया, वेद और शास्त्रों के प्रमाण को अस्वीकार किया, मूर्तिपूजा को निन्दनीय ठहराया, जाति भेद को झूठा माना, सत्गुरु की आवश्यकता पर ज़ोर दिया, इत्यादि। इन लोगों के ग्रन्थों में इसलाम के शब्द और सूफ़ियों की परिभाषाएँ स्थान स्थान पर पाई जाती हैं।

६

अब हम फिर भारतीय जीवन के विविध पहलुओं पर इसलाम तथा मुसलमानों के प्रभाव से थोड़ी देर के लिए हट कर मोहम्मद बिन क़ासिम के बाद के समस्त मुसलमानी हमलों और भारत में मुसलमानों के शासन

क़ायम होने और मुसलमान आक्रमकों के भारत ही में बस जाने पर एक दृष्टि डाल लेना चाहते हैं।

सिन्ध पर मोहम्मद बिन क़ासिम के हमले के तीन सौ वर्ष बाद महमूद ग़ज़नवी के हमलों का समय आया। ग़ज़नी के शासक महमूद ने कुछ नगरों को बरबाद किया, कुछ हिन्दू नरेशों के साथ सुलह करके उन्हें सुरक्षित छोड़ दिया, कुछ मन्दिरों को लूटा, सोमनाथ की मूर्ति को तोड़ा और लूट का बहुत सा माल लेकर ग़ज़नी वापस चला गया। किन्तु कोई स्थायी प्रभाव भारत पर उसके हमलों का न रहा। उसकी सेना में सहस्रों सिपाही हिन्दू थे। उसका एक प्रसिद्ध सेनापति हिन्दू था, जिसका नाम तिलक था और जिसने एक बार महमूद के मुसलमान सेनापति के विद्रोह को दमन किया था। महमूद के हमलों का मूल्य एक सामान्य धन लोलुप आक्रमक के हमलों से अधिक नहीं किया जा सकता। भारत पर उसका प्रभाव भी क्षणभङ्गुर था।

सौ वर्ष बाद तुरकों ने अफ़ग़ानिस्तान के ग़ोरी राजकुल को दबाना शुरू किया, जिसके फलरूप मोहम्मद ग़ोरी को भारत पर हमला करने के लिए लगभग विवश होना पड़ा। मोहम्मद ग़ोरी के समय से पञ्जाब पर भी मुसलमानों का शासन जम गया। मोहम्मद ग़ोरी के भारत आने के समय तक भारत की राजनैतिक अव्यवस्था हद को पहुँच गई थी। तेरहवीं शताब्दी तक उत्तरीय भारत पर मुसलमानों का राज्य जम गया। राजपूत नरेशों ने अलग अलग ख़ासी वीरता के साथ मुक़ाबला किया। किन्तु उनमें किसी प्रकार का ऐक्य अथवा नीतिज्ञता बाक़ी न रह गई थी। इसके बाद सौ वर्ष के अन्दर मैसूर तक अधिकांश भारत पर मुसलमानों की हुकूमत क़ायम हो गई।

ज़ाहिरा देखने में भारतीय जीवन को एक बार गहरा धक्का पहुँचा। किन्तु जिन मुसलमानों ने भारत पर हमला किया वे भारत में बस गए और भारत ही के होकर रह गए। भारत पर मुसलमानों की राजसत्ता जमने से पहले जो लाखों भारतवासी इसलाम मत ग्रहण कर चुके थे, उनके कारण और उस आदर के कारण जो, हम ऊपर दिखा चुके हैं अधिकांश भारतवासियों के चित्त में इसलाम की ओर पैदा हो चुका था, इन आगन्तुक मुसलमान आक्रमकों को भारत के अन्दर बसने तथा मिल जुल जाने में काफ़ी सुगमता हुई। एक नसल के अन्दर ही वे सर्वथा भारतवासी बन गए। और उन्हें देशवासियों के हित में अपना हित और उनके सुख में अपना सुख दिखाई देने लगा। भारत को उस अन्धकार-मय युग में एक प्रधान राजनैतिक शक्ति की आवश्यकता थी। जिन मुसलमानों ने विदेशी रूप में इस देश पर हमला किया था, उन्होंने स्वदेशी और भारतीय बन कर भारत की इस आवश्यकता को बड़ी सुन्दरता के साथ पूरा किया।

हम कदापि किसी भी व्यक्ति अथवा क़ौम के दूसरे व्यक्ति अथवा क़ौम पर हमला करने को जायज़ क़रार नहीं देते। किसी भी विदेशी आक्रमक के सामने सिर झुका देना अथवा विदेशी सेना से पराजित हो जाना किसी भी देश के लिए यशस्कर नहीं कहा जा सकता। किन्तु इसके साथ ही हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि कोई जाति विशेष किसी देश विशेष का ठेका लेकर पृथ्वी पर नहीं उतरी। सच यह है कि बहुत दरजे तक मानव समाज का जातियों अथवा देशों में बटवारा एक कृत्रिम बटवारा है। मानव समाज एक विशाल कुटुम्ब है, जिसका घर पृथ्वी है। वर्त्तमान राष्ट्रीयता के भाव भी जो मानव समाज की आजकल की स्थिति में

प्रत्येक देश के जीवित रहने के लिए आवश्यक प्रतीत होते हैं, वास्तव में एक अनिवार्य रोग ही हैं। इस विषय को अधिक विस्तार देना हमारे इस समय के प्रसङ्ग से बाहर है। तथापि हम इतना अवश्य कहेंगे कि कोई मनुष्य किसी देश के अन्दर विदेशी केवल उस समय तक ही कहा जा सकता है, जब तक कि वह उस देश की सीमाओं से बाहर किसी दूसरे देश को अपना घर मानता हो, अथवा उस पहले देश से धन बटोर कर दूसरे देश को ले जाता हो। किन्तु जिस समय कोई मनुष्य किसी देश को अपना घर बना लेता है, वहीं पर बस जाता है, देशवासियों के सुख में अपना सुख और दुख में अपना दुख समझने लगता है, तो फिर चाहे वह किसी भी धर्म का मानने वाला हो, अच्छे आचरण का हो या बुरे आचरण का, उसे विदेशी नहीं कहा जा सकता।

अङ्गरेज़ों के आने से पहले तक अधिकांश समय में अफ़ग़ानिस्तान भारत का एक प्रान्त रहा है। तथापि यदि अफ़ग़ानिस्तान को भारत से बाहर मान लिया जाय तो महमूद ग़ज़नवी के हमले भारत पर विदेशी हमले थे। मुहम्मद बिन क़ासिम का सिन्ध पर हमला निस्सन्देह विदेशी हमला था। मोहम्मद ग़ोरी का भारत पर हमला भी विदेशी हमला था। किन्तु जो मुसलमान ईरान अथवा अफ़ग़ानिस्तान से आकर एक बार भारत में बस गए, उनकी सत्ता किसी प्रकार विदेशी सत्ता नहीं कही जा सकती। तेरहवीं शताब्दी के अन्त से लेकर सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक ढाई सौ वर्ष का समय लगातार संग्रामों का समय था। इसके बाद भारत पर केवल मुग़लों का हमला बाक़ी रह जाता है। जिस बाबर ने तुर्किस्तान से आकर भारत पर हमला किया वह विदेशी था। पानीपत के मैदान में सन् १५२६ ईसवी में स्वदेशी तथा भारतीय

इब्राहीम लोधी ने विदेशी बाबर का मुक़ाबला किया। इब्राहीम लोधी हार गया। बाबर हिन्दोस्तान में बस गया। मुग़ल साम्राज्य भारत में क़ायम हो गया।

मुग़ल साम्राज्य से भारत को क्या लाभ हुआ अथवा क्या हानि हुई, यह विषय एक दूसरे स्थान का विषय है। यहाँ पर हमें केवल यह दिखाना है कि जिस प्रकार इसलाम एक बार भारत में आकर भारत की अनेक सम्प्रदायों में से एक सम्प्रदाय बन गया, उसी प्रकार मुसलमान आक्रमक एक बार भारत में बस कर अन्य भारतवासियों के समान भारतवासी बन गए। भारत पर मुसलमानों के शासन के समय के अगणित ही उदाहरण इस बात के मिलते हैं जब कि भारत के मुसलमान शासकों ने बाहर से हमला करने वाले मुसलमानों का वीरता के साथ मुक़ाबला किया, अथवा स्वयं भारत की सीमा से बाहर निकल कर बाहर के मुसलमान देशों को विजय किया, उन्हें अपने भारतीय साम्राज्य का एक अङ्ग बनाया और कभी कभी भारत के हिन्दू नरेशों को वहाँ का शासक नियुक्त किया।

अपने धार्मिक विचारों के कारण भी कोई मनुष्य किसी देश में विदेशी नहीं कहा जा सकता। धार्मिक स्वतन्त्रता प्रत्येक सभ्य देश का एक आवश्यक गुण है, और भारत ने अपने पिछले सहस्रों वर्ष के इतिहास में इस गुण को अन्य देशों की अपेक्षा ख़ासी सुन्दरता के साथ निबाहा है। हम ऊपर एक स्थान पर दिखा चुके हैं कि यदि स्वदेशी और विदेशी की इस परिभाषा को स्वीकार न किया जाय तो भारत, इङ्गलिस्तान, जरमनी, फ़्रान्स अथवा संसार का कोई भी देश इस समय ऐसा नहीं है, जो पूरी तरह विदेशियों से बसा हुआ न हो। सारांश यह कि जिस बाबर ने पानीपत में इब्राहीम लोधी को परास्त किया वह बाबर विदेशी था, किन्तु

जिस बाबर ने दिल्ली में अपना साम्राज्य क़ायम करके भारत को अपना देश बना लिया और भारतवासियों के सुख और समृद्धि के उपाय सोचने शुरू कर दिए, वह बाबर भारतवासी था। बाद के मुग़ल सम्राटों में से चाहे किसी की नीति भारत के लिए हितकर रही हो अथवा अहितकर, चाहे सम्राट अकबर के समान उनमें से किसी ने हिन्दू और मुसलमानों को एक दृष्टि से देखा हो, अथवा चाहे औरङ्गज़ेब के समान धार्मिक पक्षपात द्वारा अपने शासन को कलङ्कित किया हो, तथापि वे सब सम्राट भारतवासी थे और उनका साम्राज्य स्वाधीन भारतीय साम्राज्य था।

७

अब हम फिर भारत की उस समय की धार्मिक प्रवृत्तियों की ओर आते हैं।

रामानुज के धार्मिक विचारों और उसके भक्तिमार्ग को दक्षिण-भारत से लाकर उत्तर में उनके प्रचार करने का कार्य रामानन्द ने किया। रामानन्द ने विष्णु के स्थान पर राम की भक्ति का उपदेश दिया और हर जाति के लोगों को अपनी सम्प्रदाय में शामिल किया। मैकॉलिफ़ लिखता है कि—"इसमें कोई सन्देह नहीं कि बनारस में विद्वान मुसलमानों के साथ रामानन्द की भेंट हुई।"* रामानन्द के शिष्यों तथा अनुयायियों में अनेक मुसलमान भी शामिल थे। उसके शिष्यों में दो नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं, एक तुलसीदास और दूसरा कबीर। गोस्वामी तुलसीदास की

* Macauliffe : *The Sikhs*, vol. vi, p. 102.

रामभक्ति समस्त उत्तरीय भारत में प्रसिद्ध है। यहाँ पर अधिक सम्बन्ध हमें कबीर से है।

निस्सन्देह कबीर की गणना भारत के महान से महान तत्वदर्शियों, धर्माचार्यों और समाज सुधारकों में की जानी चाहिए। कबीर एक अत्यन्त स्वतन्त्र विचार का महापुरुष था। वह मत मतान्तरों के भेद और हर प्रकार के कर्मकाण्ड तथा रूढ़ियों का कट्टर विरोधी था। हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता का इस देश के अन्दर वह सब से पहला प्रचारक और सब से महान समर्थक था। उसका जन्म सन् १३९८ ईसवी में हुआ और मृत्यु सन् १५१८ ईसवी में।* कहा जाता है कि कबीर किसी विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। बनारस के एक मुसलमान जुलाहे नीरू और उसकी स्त्री ने कबीर का पालन पोषण किया। बनारस में रह कर कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों मतों के सिद्धान्तों से पूरी तरह परिचित हो गया। मोहसिन फ़ानी लिखता है कि कबीर ने लड़कपन ही में अनेक हिन्दू तथा मुसलमान विद्वानों और सन्तों से भेंट की। बहुत दिनों वह जौनपुर, झूँसी, इत्यादि में शेख़ तक़ी तथा अन्य मुसलमान सूफ़ियों और पीरों के साथ रहा, जिनका ज़िक्र कबीर साहब ने अपनी रमैनी में किया है। इसके बाद कबीर ने बनारस में अपना सत्सङ्ग शुरू कर दिया। कबीर के विचार इतने स्वतन्त्र थे कि आरम्भ में मुसलमान मौलवी और हिन्दू पण्डित दोनों उससे बेहद नाराज़ हुए। इन लोगों ने हर तरह से कबीर को कष्ट पहुँचाने और दिक़ करने का प्रयत्न किया। अन्त में हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों में से कबीर के सहस्रों अनुयायी हो गए। जीवन

---

* 'सन्तबानी संग्रह' जिल्द १, पृष्ठ १, also *Kabir and Kabirpanth*, by Westcott, and *Vaishnavism and Saivism*, by Bhandarkar.

भर कबीर ने अपने पिता का कार्य अर्थात् कपड़े बुनने का धन्धा नहीं छोड़ा। हिन्दुओं में यह एक बात सदा से प्रसिद्ध रही है कि काशी में मरने से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होती है। इसके विपरीत कहा जाता है कि गोरखपुर से १५ मील पश्चिम में मघ्घर में मरने वाले को गधे की योनि में जन्म लेना पड़ता है। कबीर ने अन्त समय निकट आने पर जान बूझ कर इस प्राचीन अन्धविश्वास की अवहेलना प्रकट करने के लिए काशी से मघ्घर के लिए प्रस्थान किया और मघ्घर ही में अपने सहस्रों हिन्दू तथा मुसलमान अनुयायियों की उपस्थिति में चोला छोड़ा। कहा जाता है कि कबीर के मरने के बाद उसके कुछ हिन्दू और मुसलमान अनुयायियों में झगड़ा हुआ, हिन्दू उसे हिन्दू कहते थे और उसके शरीर को जलाना चाहते थे, मुसलमान उसे मुसलमान कह कर दफ़न करना चाहते थे।

कबीर हिन्दुओं के वर्णाश्रम धर्म या जातिभेद का कट्टर विरोधी था। वेदों, शास्त्रों अथवा क़ुरान में से किसी को भी वह निर्भ्रान्त अथवा प्रामाणिक न मानता था। सूफ़ियों के समान, प्रेम, इश्क़ अथवा भक्ति उसका मुख्य धर्म था। अपनी रमैनी, शब्दों और साखियों के ज़रिए उसने हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक समान धर्म का उपदेश दिया, निर्भीकता के साथ दोनों मतों की रूढ़ियों का एक समान खण्डन किया, और प्राणिमात्र के साथ प्रेम तथा एक ईश्वर की भक्ति का सबको एक समान उपदेश दिया।

कबीर ने हिन्दू मत और इसलाम दोनों में से सामान्य सच्चाइयों को एक समान ग्रहण किया। संस्कृत और फ़ारसी, उर्दू तथा हिन्दी, चारों भाषाओं के शब्दों का अपने पद्यों में उसने एक समान उपयोग किया।

हिन्दू और मुसलमान धर्मों की झूठी पृथकता पर दुख प्रकट करते

हुए, दोनों को एक सार्वजनिक धर्म दर्शाते हुए और दोनों को प्राणिमात्र पर दया का उपदेश देते हुए, कबीर कहता है—

भाई रे दुइ जगदीश कहाँ ते आया, कहु कौने बौराया।
अल्लाह राम करीमा केशव, हरि हजरत नाम धराया॥
गहना एक कनकते गहना, या में भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुइ कर थापे, एक निमाज एक पूजा॥
वोही महादेव वोही महम्मद, ब्रह्मा आदम कहिए।
को हिन्दू को तुरुक कहावे, एक जिमी पर रहिए॥
वेद कितेब पढ़े वै कुतुबा, वै मुलना वै पड़ोँ।
बेगर बेगर नाम धराए, एक मी के भाँड़े॥
कहहिं कबीर वै दूनों भूले, रामहि किनहु न पाया।
वै खसी वै गाय कटावें, बादिहि जन्म गमाया॥

अर्थात्—हे भाई दो ईश्वर कहाँ से आगए! तुम्हें किसने बहका दिया? अल्लाह और राम, करीम और केशव, हरि और हज़रत, एक ही स्वर्ण के बने आभूषणों के अलग अलग नाम हैं। इनमें दुई का भाव नहीं है। कहने सुनने को तुमने दो नाम रख लिए हैं—एक नमाज़ और एक पूजा। वही महादेव है और वही मोहम्मद, वही ब्रह्मा है और वही आदम। हिन्दू और मुसलमान में कोई भेद नहीं, दोनों एक ज़मीन पर रहते हैं। एक वेद पढ़ते हैं और दूसरे क़ुरान पढ़ते हैं। एक मौलाना कहलाते हैं और दूसरे पण्डित। ये सब अलग अलग नाम धर लिए हैं। वास्तव में सब एक ही मिट्टी के बरतन हैं। कबीर कहता है, ये दोनों भूले हुए हैं। इनमें से किसी

ने राम को नहीं पाया। एक बकरा काटते हैं और दूसरे गाय का हैं—दोनों वृथा जन्म खोते हैं।

कबीर कहता है—

हिन्दू कहूँ तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।
पाँच तत्व का पूतला, ग़ैबो खेले माहिं॥

अर्थात्—मैं न हिन्दू हूँ और न मुसलमान, मैं पञ्च तत्वों का बना हुआ पुतला हूँ जिसके अन्दर ग़ैबी (आत्मा) क्रीड़ा करता है।

कबीर के उपदेशों पर मुसलमान सूफ़ी फ़क़ीरों के उपदेशों का प्रभाव बिलकुल स्पष्ट दिखाई देता है। हिन्दुओं में कबीर से पहले कोई ऐसा महात्मा न था जिसका वह अनुसरण करता; इसलिए उसके लिए मुसलमानों का अनुसरण स्वाभाविक और अनिवार्य था। फ़रीदुद्दीन अत्तार के पन्दनामे और जलालुद्दीन रूमी और शेख़सादी शीराज़ी की कविताओं से कबीर निस्सन्देह भलीभाँति परिचित था। कबीर के पद्यों में इन महापुरुषों तथा अन्य सूफ़ियों के उपदेशों की बार बार झलक आती है। कबीर का निम्नलिखित पद्य—

जब तू आयो जगत में, जगत हँसे तू रोय।
अब तो ऐसो कर चलो, तू हाँसे जग रोय॥

शेख़सादी के इस प्रसिद्ध पद्य का साफ़ भाषान्तर है—

याद दारी के वक़्ते ज़ादने तो,
हमा ख़न्दाँ बुदन्दो तू गिरियाँ।
आँचुना ज़ी के बाद मुर्दने तो,
हमा गिरियाँ शवन्दो तू ख़न्दाँ॥

इसी तरह के और भी अनेक उदाहरण कबीर के पद्यों में से दिए जा सकते हैं। कबीर के पद्यों में फ़ारसी और अरबी के शब्द और सूफ़ियों की उपमाएँ और उनके अलङ्कार इधर से उधर तक भरे पड़े हैं। अहमद-शाह ने कबीर के बीजक में हबीब, महबूब, आशिक़, माशूक़, मुसाफ़िर, मुक़ाम, हाल, जमाल, जलाल, साक़ी, शराब, क़हर, मेहर, ग़ैबत, हुज़ूर, हैरत, नासूत, मलकूत, जबरुत, लाहूत, हाहूत, हक़ इत्यादि, इस तरह के दो सौ से ऊपर अरबी और फ़ारसी के शब्द चुने हैं, जिन्हें कबीर ने ठीक उन्हीं माइनों में उपयोग किया है जिनमें सूफ़ियों ने, और जिनसे साफ़ मालूम होता है कि कबीर अपने विचारों और उपदेशों के लिए मुसलमान सूफ़ियों का किस दरजे तक ऋणी था।

कबीर ने संस्कृत की अपेक्षा भाषा में अपने पद्यों को लिखना पसन्द किया। उसका उद्देश जन सामान्य तक अपने विचारों को फैलाना था। कबीर ने अपनी साखी में एक स्थान पर लिखा है—

संस्किरत है कूप जल, भाषा बहता नीर।

अर्थात्—संस्कृत कुएँ का पानी है, किन्तु भाषा (हिन्दी) बहती हुई नदी के समान है।

कबीर के पद्यों में कहीं संस्कृत भरी हिन्दी और कहीं फ़ारसी भरी उर्दू, दोनों मिलती हैं। कबीर ने ईश्वर के लिए स्थान स्थान पर—राम, हरी, गोविन्द, ब्रह्म, समरथ, साईं, सत्पुरुष, रँगरेजवा, बेचूँ (अनिर्वचनीय), अल्लाह और ख़ुदा—सब शब्दों का उपयोग किया है; किन्तु ईश्वर के लिए उसका सब से प्यारा नाम 'साहेब' है। कबीर को इस बात का दावा है कि उसने 'तुममें और मुझमें' प्राणिमात्र में, और सब पदार्थों में व्यापक 'ज़ाते पाक' का साक्षात दर्शन किया था। सूफ़ियों के समान ही कबीर ने स्थान

स्थान पर ख़ुदा को 'नूर' बतलाया है और हर चीज़ को ख़ुदा माना है। रमैनी में बदरुद्दीन शहीद, इब्न सीना और जिली के अनेक पद्यों का बिल्कुल अनुवाद सा दिखाई देता है। सूफ़ियों ही के समान कबीर ने गुरु को गोविन्द बतलाया है और अपनी साखी में लिखा है—

हरि के रूठे ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर।

अर्थात्—यदि हरी नाराज़ हो जाय तब भी कुछ बचत हो सकती है, किन्तु यदि गुरु नाराज़ हो जाय तब फिर कोई बचत नहीं। कबीर का यह पद्य मौलाना रूम के एक पद्य का अनुवाद प्रतीत होता है।

कबीर ने गुरु को 'सिकलीगर' लिखा है। कबीर प्रेम का परम विश्वासी था। वह लिखता है कि—एक प्रेम समस्त संसार में व्यापक है। ईश्वर की खोज के विषय में वह लिखता है—

मोको काहाँ ढूँढ़ो बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में॥
खोजी होय तो तुरते मिलिहों, पल भर की तालास में।
कहें कबीर सुना भई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में॥

अर्थात्—ऐ बन्दे! तू मुझे कहाँ ढूँढ़ता है? मैं तेरे पास हूँ। मैं न मन्दिर में हूँ न मसजिद में, न काबे में हूँ न कैलाश में। यदि तू सच्चा खोजी है तो मैं तुरन्त एक पल भर की खोज में तुझे मिल जाऊँगा। कबीर कहता है—हे साधो! सुनो, साहेब सब के प्राणों का प्राण है।

सूफ़ियों की तरह कबीर ने लोगों को इश्क़ की शराब पीने की दावत दी है। अभ्यास द्वारा ब्रह्मत्व की ओर रूह की यात्रा को कबीर ने ठीक उन्हीं शब्दों में वर्णन किया है जिन शब्दों में कबीर से पाँच सौ वर्ष पहले

मनसूर ने वर्णन किया था। अपनी पुस्तक 'दस मुक़ामी रेख़्ता' में कबीर ने हज़रत मोहम्मद के मेराज के क़िस्से को अपने ढङ्ग से बयान किया है।

वास्तव में कबीर ने भारत का ध्यान एक ऐसे सार्वजनिक धर्म की ओर दिलाया जो न हिन्दू था, न मुसलमान। इसी लिए उसने हिन्दू और मुसलमान दोनों के पृथक पृथक कर्मकाण्डों, दोनों के मतभेदों, दोनों के धार्मिक ग्रन्थों की निर्भ्रान्तता इत्यादि की अत्यन्त कड़े से कड़े शब्दों में निर्भीकता के साथ आलोचना की है। ब्राह्मणों के प्रभुत्व, जात पाँत और छुआछूत का वह कट्टर विरोधी था ही। राम शब्द को उसने ईश्वर के अर्थों में उपयोग किया है, किन्तु उसने स्पष्ट लिखा है कि उसका राम दशरथ का पुत्र राम नहीं है। वह लिखता है—

सिरजनहार न ब्याही सीता, जल पषाण नहिं बन्धा।

अर्थात्—सिरजनहार ने सीता से विवाह नहीं किया था और न उसने समुद्र के ऊपर पत्थरों का पुल बाँधा।

कबीर ने अनेक स्थान पर दसों अवतारों का खण्डन किया है। वह ईश्वर के विषय में कहता है—

दशरथ कुल अवतरि नहिं आया, नहिं लङ्का के राव सताया।
नहीं देवकी गर्भहि आया, नहीं यशोदा गोद खेलाया।
पृथ्वी रवन धवन नहिं करिया, पैठि पताल नाहिं बलि छलिया।
नहिं बलिराज सो माँडल रारी, नहिं हरनाकुश बधल पछारी।
बराह रूप धरणि नहिं धरिया, क्षत्री मारि निक्षत्री नहिं करिया।
नहिं गोवर्धन कर गहि धरिया, नहिं ग्वालन सँग बन बन फिरिया।

गण्डुकि शालिग्राम नहिं कूला, मच्छ कच्छ होय नहिं जल डोला।
द्वारावती शरीर नहिं छाँड़ा, ले जगन्नाथ पिण्ड नहिं गाड़ा।

जात पाँत और छुआछूत के विषय में कबीर ने कहा है—

गुप्त प्रकट है एकै दूधा, का को कहिए ब्राह्मण शूद्रा।
झूठे गर्भ भूलो मति कोई, हिन्दू तुरुक झूठ कुल दोई।
और के छिए लेत हो छींचा, तुमसों कहहु कौन है नीचा।

कबीर ने अनेक पदों में आवागमन के सिद्धान्त का विरोध किया है, कम से कम इस विषय में उसके विचार अत्यन्त सन्दिग्ध हैं।

सारांश यह कि कबीर ने मुसलमानों से क़ुरान तथा मोहम्मद साहब में अन्धविश्वास, हज्ज, रोज़े और नमाज़ इत्यादि छोड़ देने के लिए ज़ोर दिया है, हिन्दुओं को उसने उतने ही ज़ोर के साथ जात पाँत, मूर्तिपूजा, अवतार, और छुआछूत तथा वेद और शास्त्रों में अन्धविश्वास छोड़ देने की सलाह दी है, दोनों को उसने प्राणिमात्र पर दया रखने, सबको एक खुदा की औलाद और भाई भाई समझने, अहङ्कार त्यागने और सब की सेवा करने का उपदेश दिया। कबीर के निम्नलिखित पद्य इस विषय में स्मरण रखने योग्य हैं—

पूरब दिशा हरी को बासा, पश्चिम अलह मुकामा।
दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा॥

जेते औरत मर्द उपानी, सो सब रूप तुम्हारा।
कबीर पोंगरा अलह राम का, सो गुरु पीर हमारा॥

हिन्दू तुरुक की एक राय है, सतगुरु सोइ लखाई।
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, राम न कहूँ खुदाई॥

हिन्दू कहें राम मोंहि प्यारा, तुरुक कहें रहिमाना।
आपस में दोउ लरि लरि मूए, मर्म न काहू जाना॥

अर्थात्—लोग कहते हैं हरि पूरब में रहता है और अल्लाह पश्चिम में, लेकिन कबीर कहता है अपने दिल के अन्दर खोजो, वहीं करीम है और वहीं राम है।

जितने पुरुष और स्त्री रचे गए हैं सब तुम्हारा ही रूप हैं, कबीर अल्लाह का और राम का बेटा है, वही कबीर का गुरु और पीर है।

हिन्दू और तुरुक की एक ही राह है, जो सत्गुरु ने बताई है, कबीर कहता है सुनो भाई सन्तो ! राम और खुदा में कोई भेद नहीं है।

हिन्दू राम कहते हैं, मुसलमान रहीम कहते हैं। आपस में दोनों लड़ लड़ कर मरते हैं, मर्म को कोई नहीं जानता।

कबीर पहला भारतवासी था, जिसने हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए बल्कि समस्त मानव जाति के लिए एक सामान्य धर्म का निर्भीकता के साथ प्रतिपादन किया। उसके अनुयायियों में हज़ारों हिन्दू और मुसलमान शामिल थे। अभी तक कबीरचौरा (काशी) में कबीर के हिन्दू अनुयायी और मघहर में कबीर के मुसलमान अनुयायी प्रति वर्ष जमा होकर कबीर की स्मृति में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। कबीर-पन्थियों की संख्या इस समय शायद दस लाख से अधिक नहीं है, किन्तु कबीर का प्रभाव इससे कहीं अधिक है, और पञ्जाब, गुजरात और बङ्गाल

तक फैला हुआ है। मुग़ल साम्राज्य के दिनों में कबीर के विचार बराबर फैलते गए, यहाँ तक कि दूरदर्शी सम्राट अकबर ने 'दीने इलाही' के रूप में उन्हें सर्वस्वीकृत कराने का प्रयत्न किया। वास्तव में कबीर ही अकबर का मानसिक पिता था। विधि ने अथवा देश की भीतर तथा बाहर की परिस्थिति ने कबीर और अकबर को पूरी तरह सफल होने न दिया, किन्तु भारत की अन्तरात्मा भीतर से पुकार रही है—यदि सत्य है तो यही है, और यदि भविष्य के लिए कोई मार्ग है तो केवल यही है।

कबीर के विचारों की मौलिकता और महानता के कारण कबीर के समय से फिर एक बार उत्तर ने धार्मिक विचारों के क्षेत्र में शेष भारत का नेतृत्व ग्रहण किया और कबीर ही के विचार अनेक सन्तों और महात्माओं द्वारा एक बार उत्तर से दक्षिण तक समस्त भारत में फैलने लगे।

जिस प्रकार शुरू की शताब्दियों में दक्षिण भारत, उसी प्रकार पन्द्र-हवीं शताब्दी में समस्त पञ्जाब के ग्राम तथा नगर मुसलमान सूफ़ियों और फ़क़ीरों से भरे हुए थे। पानीपत, सरहिन्द, पाकपट्टन, मुलतान और उच्छ में अनेक प्रसिद्ध सूफ़ी शेख़ों ने अपनी ज़िन्दगियाँ गुज़ारीं, जिनमें से बाबा फ़रीद, अला उलहक़, जलालुद्दीन बुख़ारी, मख़दूम जहा-नियाँ, शेख़ इसमाइल बुख़ारी इत्यादि के नाम अपनी सच्चाई और ईश्वर-भक्ति के लिए देश भर में प्रसिद्ध थे। जो प्रबल क्रान्ति इन महात्माओं ने देशवासियों के विचारों में उत्पन्न की, उसी का फल अथवा फूल गुरु नानक का वह सुन्दर प्रयत्न था जो उस महा पुरुष ने ठीक कबीर ही के समान और उसी की सरणी पर हिन्दू और मुसलमान धर्मों को मिलाने के लिए किया।

गुरु नानक का जन्म सन् १४६९ ईसवी में वैशाख शुक्ला तृतीया को

हुआ था। उसने फ़ारसी और संस्कृत दोनों की शिक्षा पाई थी। नानक नाम उन दिनों हिन्दू और मुसलमान दोनों का नाम होता था। कुछ दिनों उसने नवाब दौलत ख़ाँ लोधी के यहाँ नौकरी की। तीस वर्ष की आयु में उसने फ़क़ीरी ली। अपने मुसलमान शिष्य मरदाना के साथ उसने भारत, लङ्का, ईरान, अरब इत्यादि में भ्रमण किया। लिखा है कि पानीपत के शेख़ शरफ़, मुलतान के पीरों, बाबा फ़रीद के उत्तराधिकारी शेख़ ब्रह्म (इब्राहीम) इत्यादि सूफ़ियों के साथ उसने बहुत दिनों तक धर्म-चर्चा किया। कबीर के समान नानक के मरने पर भी उसके हिन्दू और मुसलमान शिष्यों में झगड़ा हुआ। अन्त में हिन्दुओं ने उसकी स्मृति में एक समाधि बनाई और मुसलमानों ने एक अलग क़ब्र, किन्तु दोनों इमारतें रावी की बाढ़ में आकर बह गईं।

नानक का धर्म भी एकता और प्रेम का धर्म था, उसकी सम्प्रदाय में भी हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल हुए। नानक मक्के पहुँचा। वहाँ पर मोहम्मद साहब के समान उसने एक ख़ुदा का प्रतिपादन किया और अपने को उसका 'ख़लीफ़ा' बताया—

ला इलाह इल्लल्लाह, गोविन्द नानक ख़लफ़ल्लाह।*

अर्थात्—अल्लाह केवल एक है, वही गोन्विद है, नानक उसका ख़लीफ़ा है।

नानक के पदों में भी संस्कृत, फ़ारसी और अरबी तीनों भाषाओं के पदों की भरमार है। दोनों धर्मों की पृथकता को मिथ्या बताते हुए उसने लिखा—

---

* गुरु नानक की जन्मसाखी, न० ३६, पाकनामा।

बन्दे इक्क ख़ुदाय दे, हिन्दू मूसलमान,
दावा राम रसूल कर, लड़दे बेईमान।

ना हम हिन्दू ना मूसलमान,
दोनों बीच बसे शैतान।
एकै, एकी, एक सुभान,
गुरु जी कहिया सुन अब्दुर्रहमान।
दावा भूलो ताँ इक्क पिछान।

हिन्दू जपते राम राम, मूसलमान ख़ुदाय,
इक्को राम रहीम है, मन में देखो लाय।

अर्थात्—हिन्दू मुसलमान दोनों एक ख़ुदा के बन्दे हैं, किन्तु दोनों बेईमान, एक राम का और दूसरा रसूल का, झूठा दावा करके लड़ते हैं।

हम न हिन्दू हैं और न मुसलमान, इन दोनों के दिलों में शैतान बसा है। गुरु नानक कहते हैं, ऐ अब्दुर्रहमान! सुनो, ईश्वर एक ही है मत मतान्तरों की हठ छोड़ दो, तब उस एक ईश्वर को पहचान सकोगे।

हिन्दू राम राम जपते हैं, मुसलमान ख़ुदा कहते हैं, किन्तु यदि अपनी आत्मा के अन्दर ध्यान से देखोगे तो मालूम होगा कि राम और रहीम एक ही हैं।

एक दूसरे स्थान पर—

तग्ग न हिन्दू पाइया, तग्ग न मूसलमान।
दोए भूले राह ते, ग़ालिब भया शतान॥

जित दर लख्ख मोहम्मदाँ, लख ब्रह्मा बिश्न महेश।
लख लख राम वडीरिएँ, लख राहें लख वेश।

अर्थात्—मार्ग न हिन्दू को मिला और न मुसलमान को—दोनों मार्ग से भटक गए, दोनों पर शैतान ग़ालिब हो गया।

मालिक के दर पर लाखों मोहम्मद, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और राम खड़े लाखों तरीक़े से स्तुति करते रहते हैं।

मोहम्मद साहब की तरह नानक ने भी ईश्वर की इच्छा पर अपने आपको पूरी तरह छोड़ देने का उपदेश दिया।

गङ्गास्नान, तीर्थयात्रा, जप, पूजा पाठ इत्यादि को नानक ने फ़ज़ूल बताया, अठारह पुराण और चारों वेदों को निरर्थक बतलाया, प्रतिमा पूजा का विरोध किया, कबीर के समान राम के अवतार का खण्डन किया, और जाति भेद को मिथ्या और हानिकारक बताया।

ऊँच नीच के विचार के विरुद्ध नानक ने कहा है—

ज़ोर न कीजे किसी पर, उत्तम मधम न कोय,
हिन्दू मूसलमान नूँ, दोहाँ नसीहत होय।

नीचाँ अन्दर नीच ज़ात, नीचे हों अत नीच,
जित्थे नीच सम्हालिए, उत्थे नज़र तेरी बख़शीस।

नीचाँ अन्दर नीच जात, सतगुरु रहे बोलाय।

अर्थात्—किसी पर ज़बरदस्ती नहीं करनी चाहिए, कोई ऊँच नीच नहीं है। हिन्दू और मुसलमान दोनों को यही नसीहत है।

ईश्वर की बख़्शीस उन्हीं को मिलेगी जो नीचों से भी नीच को, और सब से अति नीच को अपनाते हैं।

सत्गुरु उन्हें बुलाते हैं, जो नीच से भी नीच जाति के समझे जाते हैं।

नानक ने मुसलमानों को उपदेश देते हुए कहा—

मेहर मसीत, सिद्क़ मुसल्ला, हक़ हलाल क़ुरआन,
शर्म सुन्नत, सील रोज़ा, होय मूसलमान ।
करनी काबा, सच्च पीर कलमा करम नेवाज़,
तसबीह सातिश भावसी नानक रक्खे लाज ।

अर्थात्—दया को अपनी मसजिद बना, सचाई का मुसल्ला बना, इन्साफ़ को अपनी क़ुरान बना, विनय को ख़तना समझ, सुजनता का रोज़ा रख, तब तू सच्चा मुसलमान होगा। सच्चरित्रता को अपना काबा बना, सच्चाई को अपना पीर बना, परोपकार को कलमा समझ, ख़ुदा की मरज़ी को अपनी तसबीह, तब ऐ नानक! ख़ुदा तेरी लाज रक्खेगा।

ठीक इसी तरह का उपदेश नानक ने हिन्दुओं को भी दिया।

संयम और सदाचार पर नानक ने बहुत अधिक ज़ोर दिया है। अन्य सूफ़ियों के समान नानक ने आत्मा की उन्नति के लिए गुरु की परमावश्यकता पर ज़ोर दिया है। सूफ़ियों की शरीयत, मारफ़त, उक़्वा और लाहूत के मुक़ाबले में नानक ने धर्मखण्ड, ज्ञानखण्ड, कर्मखण्ड और सचखण्ड का उपदेश दिया। इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि नानक सूफ़ी साहित्य से पूरी तरह परिचित था। उस साहित्य का उसने अपने पद्यों में भरपूर उपयोग किया और उसी के आधार पर हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक मालिक और एक मार्ग का उपदेश दिया।

मुग़ल साम्राज्य के अन्त की शोकजनक परिस्थिति में नानक के अनुयायियों ने बेहद पलटा खाया। वे नानक के सिद्धान्तों के अनुरूप न चल सके। किन्तु संसार के अधिकांश महापुरुषों के सिद्धान्तों की उनके अनुयायियों द्वारा उनके बाद इसी प्रकार अवहेलना होती रही है।

कबीर और नानक के अतिरिक्त धन्ना जाट, पीपा, सेना नाई और रैदास चमार इत्यादि महात्माओं के उपदेश भी ठीक इसी ढङ्ग के हैं। इन सबके पद्यों और उपदेशों में सूफ़ी विचार, सूफ़ी शब्द और हिन्दू तथा इसलाम धर्मों की एकता का वर्णन है। रैदास ने एक स्थान पर राम के अवतार से साफ़ इनकार किया, उसके कोई कोई पद्य फ़ारसी भाषा में भी हैं। रैदास ने ईश्वर को 'सुलतानों का सुलतान' और अपने को उसका 'शिकस्ता बन्दा' बताया है, मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, जात पाँत इत्यादि का इन सब ने विरोध किया है।

कबीर के अन्य अनेक शिष्य देश के अनेक भागों में प्रसिद्ध हैं, जिनमें एक मशहूर नाम अकबर के समय में दादू का था। कहते हैं कि सम्वत् १६४२ में दादू की मुलाक़ात फ़तेहपुर सीकरी में सम्राट अकबर के साथ हुई जिसमें अकबर ने सवाल किया कि ख़ुदा की ज़ात, अङ्ग, वजूद और रङ्ग क्या है, दादू ने जवाब दिया—

इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अङ्ग।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रङ्ग॥

अर्थात्—प्रेम (इश्क़) अल्लाह की जाति है, प्रेम ही उसका शरीर है, प्रेम ही उसका अस्तित्व है, और प्रेम ही उसका रङ्ग है।

दादू के पाँच हज़ार पद्यों में से अनेक उर्दू और कोई कोई अशुद्ध फ़ारसी में हैं, मसलन्—

बे मेहर गुमराह ग़ाफ़िल गोश्त .खुरदनी,
बे दिल बदकार आलम हयात मुरदनी।

अथवा—

कुल आलम यके दीदम अरवाहे इख़लास,
बद अमल बदकार दुई पाक याराँ पास।

दादू ने भी शरीयत और मारिफ़त इत्यादि पर दरजे बदरजे ज़ोर दि[ya]
है। दादू लिखता है—

हौद हजूरी दिल ही भीतर, गुस्ल हमारा सारं।
उजू साजि अलह के आगे, तहाँ निमाज गुजारं॥
काया मसीत करि पञ्च जमातो, मन ही मुला इमामं।
आप अलेख इलाहो आगे, तहँ सिजदा करै सलामं॥
सब तन तसबी कहै करीमं, ऐसा करले जापं।
रोज़ा एक दूर करि दूजा, कलमा आपै आपं॥
अठे पहर अलह के आगे, इकटग रहिबा ध्यानं।
आपै आप अरस के ऊपर, जहाँ रहै रहमानं॥

अर्थात्—ऐ दादू, मालिक की मौजूदगी का तालाब दिल के अन्दर है
उसी तालाब में मैं स्नान करता हूँ, अल्लाह के सामने वज़ू करके वहीं प[र]
मैं नमाज़ पढ़ता हूँ।

दादू का शरीर उसकी मसजिद है, जमात के पञ्च उसके मन के अन्द[र]
हैं, वहीं पर उसका मुल्ला इमाम है, अलख ईश्वर को सामने खड़ा कर[के]
वहीं पर वह सिजदा करता है और सलाम करता है।

दादू अपने समस्त शरीर को तसबीह (माला) बना कर उस प[र]

'करीम' का नाम जपता है, उसका केवल एक रोज़ा है। और वह स्वयं अपना 'कलमा' है।

इस प्रकार दादू अल्लाह के सामने एकाग्र होकर आठ पहर खड़ा रहता है और अर्श के ऊपर 'रहमान' के रहने की जगह पहुँच जाता है।

नीचे के पद्यों में दादू का धार्मिक सङ्कीर्णता से ऊपर होना, उसका हिन्दू मुसलिम एकता का प्रतिपादन करना और सूफ़ियों से उसका भरपूर शिक्षा ग्रहण करना, साफ़ ज़ाहिर है। वह लिखता है—

सब घट एकै आतमा, क्या हिन्दू मूसलमान।

❧

अलह राम छूटा भ्रम मोरा।
हिन्दू तुरुक भेद कछु नाहीं, देखौं दरसन तोरा॥

❧

ब्रह्मा बिस्नु महेस को कौन पन्थ गुरुदेव।

❧

मुहम्मद किसके दीन में, जबराइल किस राह।
इनके मुर्शिद पीर को, कहिए एक अलाह॥
ये सब किसके ह्वै रहे, यह मेरे मन माँहि।
अलख इलाही जगत गुरु, दूजा कोई नाँहि॥

❧

दोनों भाई हाथ पग, दोनों भाई कान।
दोनों भाई नैन हैं, हिन्दू मूसलमान॥

अर्थात्—सब घट के अन्दर चाहे वे हिन्दू हों या मुसलिम, आत्मा एक ही है।

ऐ अल्लाह, राम! मेरा भ्रम दूर होगया, हिन्दू और मुसलमान में कोई भी भेद नहीं है। सब में तू ही दिखाई देता है।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पन्थ क्या है, मोहम्मद का दीन क्या है, जिबराईल का क्या मार्ग है, एक अल्लाह उनका पीर और मुर्शिद है। दादू अपने दिल में जानता है कि वे सब किसके भक्त हैं, अलख इलाही सारी दुनिया का गुरु है, उसके सिवाय और कोई नहीं।

हिन्दू और मुसलमान दोनों भाई हाथ और पैर हैं, दोनों दो कान हैं, दोनों भाई दो आँखें हैं।

पण्डितों, मुल्लाओं, जातपाँत, मूर्तिपूजा, तीर्थस्थान, हज्ज इत्यादि के विषय में दादू के विचार ठीक वैसे ही थे जैसे कबीर के। पुनर्जन्म अथवा आवागमन के सिद्धान्त को दादू ने एक अलङ्कार की तरह माना है। गुरु को उसने वेद और क़ुरान दोनों से बड़ा बताया है।

एक और प्रसिद्ध महात्मा मलूकदास अकबर के समय में सन् १५७[illegible] ईसवी में कड़ा, इलाहाबाद, में पैदा हुआ और औरङ्गज़ेब के समय में सन् १६८२ ईसवी में १०८ वर्ष की उम्र में मरा। उसके मठ नैपाल और काबुल तक में मौजूद थे। उसके विचार मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, अन्य कर्मकाण्ड इत्यादि के विषय में ठीक कबीर और दादू के से थे। परसेवा, सब धर्मों की एकता, हिन्दू मुसलमानों के परस्पर प्रेम, इत्यादि पर उसके विचार सर्वथा अपने समय के अन्य महात्माओं के समान थे वह लिखता है—

माला कहाँ औ कहाँ तसबीह,
अब चेत इनहिं कर टेक न टेकै।
काफ़िर कौन मलेच्छ कहावत,
सन्ध्या निवाज समय करि देखै।
है जमराज कहाँ जबरील है,
काजी है आप हिसाब के लेखै।
पाप औ पुण्य जमा कर बूझत,
देत हिसाब कहाँ धरि फेकै।
दास मलूक कहा भरमौ तुम,
राम रहीम कहावत एकै।

अर्थात्—कहाँ माला और कहाँ तसबीह ! जागो और उनके भरोसे न रहो, कौन काफ़िर और कौन म्लेच्छ। वही सन्ध्या और वही नमाज़। यम कहाँ है और जिबराईल कहाँ पर है। ख़ुदा ही आप क़ाज़ी है, और कोई हिसाब नहीं रखता। वही सब के पाप पुण्य को समझता है और हिसाब रखता है। मलूकदास ! तू क्यों भूला है, राम और रहीम एक ही के नाम हैं।

सत्तनामी सम्प्रदाय का संस्थापक बीरभान दादू का समकालीन था। सत्तनामी अपने को साध भी कहते हैं। बीरभान ने केवल एक ईश्वर का उपदेश दिया, जिसका नाम उसने सत्तनाम रक्खा। सत्तनामी जात पाँत और छुआछूत के विरुद्ध हैं। वे एक दूसरे के साथ खाते पीते हैं, और आपस ही में विवाह करते हैं। सत्तनामियों में तलाक़ की इजाज़त है, वे मूर्तिपूजा के विरुद्ध हैं, ध्यान और सदाचार और मनुष्य मात्र की समता पर ज़ोर देते

हैं, मांस मदिरा का निषेध करते हैं। औरङ्ग़ज़ेब के समय में ईश्वरदा नागर ने सम्राट से इस बात की शिकायत की थी कि सत्तनामी हिन्दू औ मुसलमानों में किसी तरह का भेद नहीं करते। सत्तनामियों के 'आदि उपदेश' में 'बारह हुकुम' दिए हुए हैं, जिनका सार इस प्रकार है—

(१) केवल एक ही ईश्वर को मानो, मिट्टी, पत्थर, लकड़ी या कि और बनी हुई चीज़ की पूजा न करो।

(२) दीनता से रहो।

(३) कभी झूठ मत बोलो, कभी किसी की निन्दा न करो, कभी चो न करो, दूसरे की चीज़ को कभी लालच की निगाह से न देखो

(४) कभी बुरी बात न सुनो, सिवाय मालिक के भजनों के औ कुछ न गाओ।

(५) ईश्वर पर विश्वास करो।

(६) जात पाँत को मत मानो, किसी से बहस मत करो।

(७) साफ़ कपड़े पहनो, किसी तरह का तिलक न लगाओ, औ न माला पहनो।

(८) तम्बाकू और मादक द्रव्यों से बचो। किसी मूर्ति के सामने सि मत झुकाओ।

(९) किसी की जान मत लो, किसी को कष्ट मत पहुँचाओ।

(१०) एक पुरुष के लिए केवल एक स्त्री और एक स्त्री के लिए केवल एक पुरुष।

(११) साधुओं की सङ्गत ही तीर्थ है। और

(१२) किसी तरह के अन्ध विश्वासों, नजूम, शकुन, इत्यादि को न मानो।

निस्सन्देह इन हुक्मों पर उस समय के इसलाम की साफ़ छाप दिखाई देती है।

औरङ्गज़ेब के भाई दाराशिकोह का गुरु बाबालाल भी इसी तरह के विचारों का मनुष्य था। दाराशिकोह और बाबालाल की बातचीत एक फ़ारसी किताब 'नादिर-उन-निकात' में दर्ज है। बाबालाल ने अपने सिद्धान्तों के समर्थन में जगह जगह फ़ारसी कवि हाफ़िज़ के हवाले दिए हैं।

इसी तरह उस समय की और भी अनेक सम्प्रदायों ने हिन्दुओं और मुसलमानों को मिलाने की पूरी कोशिश की। नारायणी सम्प्रदाय में हिन्दू और मुसलमान दोनों एक समान लिए जाते थे। ये लोग पूर्व की तरफ़ मुँह करके दिन में पाँच बार ईश्वर प्रार्थना करते थे। उनके ईश्वर के नामों में एक नाम अल्लाह भी था। वे अपने मुरदों को दफ़न करते थे, इत्यादि।

औरङ्गज़ेब के अन्त के दिनों में प्राणनाथ और धरनीदास के नाम भी विख्यात हैं। प्राणनाथ ने अपनी गुजराती पुस्तक 'क़ुलज़ुम सरूप' में वेदों और क़ुरान दोनों से हवाले देकर दोनों के सिद्धान्तों की समानता दर्शाई है। प्राणनाथ जाति-भेद, मूर्तिपूजा और ब्राह्मणों के प्रभुत्व के विरुद्ध था। उसके अनुयायियों में हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। और, प्रत्येक नए दीक्षा लेने वाले को हिन्दू और मुसलमान दोनों के साथ बैठ कर भोजन करना पड़ता था। यही उनकी दीक्षा थी। प्राणनाथ की एक ख़ास पुस्तक 'क़यामत नामा' है, जिसमें उसने साफ़ लिखा है कि—"तुम सब का, चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, एक ईमान होना चाहिए।" इस पुस्तक में उसने यहूदी, ईसाई, मुसलमान और हिन्दू सब के पीर, पैग़म्बरों और महात्माओं की जीवनियाँ दी हैं और सब में मौलिक समानता दर्शाई है। ईश्वर के लिए उसने अल्लाह और ख़ुदा दोनों नामों का उपयोग किया है।

जगजीवनदास, बुल्ला साहब, केशव, चरनदास, सहजो, दयाबाई, ग़रीबदास, शिवनारायण, रामसनेही इत्यादि के उपदेशों का भी ठीक यही अभिप्राय था। जगजीवन के शिष्यों में ब्राह्मण, ठाकुर, चमार और मुसलमान, सब जातियों के लोग शामिल थे। बुल्ला साहब के उपदेशों में फ़ारसी के शब्द और सूफ़ी परिभाषाएँ भरी हुई हैं। बुल्ला साहब और केशव दोनों, दिल्ली के एक मुसलमान फ़क़ीर यारी साहब के शिष्य थे। मुसलमान फ़क़ीरों के हिन्दू शिष्य और हिन्दू फ़क़ीरों के मुसलमान शिष्य उन दिनों लाखों की संख्या में पाए जाते थे। सहजो और दयाबाई दोनों स्त्रियाँ थीं और चरनदास की शिष्य थीं। चरनदास ने मूर्तिपूजा का विरोध किया, गुरु की महिमा और भक्ति का उपदेश दिया। ग़रीबदास कबीर का अनुयायी था, उसके पद्यों में भी फ़ारसी के शब्द और सूफ़ी परिभाषाएँ भरी हुई हैं।

रामसनेही सम्प्रदाय का संस्थापक रामचरन भी मूर्तिपूजा का कट्टर विरोधी था। ये लोग भी दिन में पाँच मरतबा प्रार्थना करते थे और हर जाति और हर मज़हब के लोगों को अपने में ले लेते थे। स्वामी नारायनसिंह द्वारा स्थापित शिवनारायनी सम्प्रदाय में भी सब जाति और सब मज़हबों के लोग लिए जाते थे। जब कोई शिवनारायनी मरता था तो उसकी अन्तिम इच्छा के अनुसार उसके शरीर को दफ़न कर दिया जाता था, या फूँक दिया जाता था और या दरिया में बहा दिया जाता था। मुग़ल सम्राट मोहम्मदशाह स्वामी नारायनसिंह का शिष्य था। मोहम्मदशाह की सहायता से यह सम्प्रदाय कुछ दिनों ख़ूब फैली। यद्यपि पिछले दो तीन सौ वर्ष के अन्दर इनमें से अनेक सम्प्रदायों के रूप में आकाश पाताल का अन्तर पड़ गया और कहीं कहीं उनके अनुयायियों का रहन

सहज सम्प्रदाय के संस्थापकों की इच्छा और उनके उपदेशों के ठीक विपरीत साँचे में ढल गया, तथापि सम्राट मोहम्मदशाह का दस्तख़ती परवाना अभी तक शिवनारायनियों के मुख्य मठ बलिया ज़िले में मौजूद है।

अठारहवीं शताब्दी में सहजानन्द, दुलनदास, गुलाल, भीका और पल्टूदास के नाम काफ़ी मशहूर हैं।

जगजीवन के शिष्य दुलनदास ने अपने पद्यों में मनसूर, शम्स तबरेज़, निज़ामुद्दीन, हाफ़िज़, बूअली क़लन्दर और फ़रीद की ख़ूब तारीफ़ें की हैं और ईश्वर को "अल्लाह ला मकाँ" बताया है। गुलाल, भीका और पल्टूदास के कोई कोई पद्य कविता, भाव और भक्तिरस, तीनों की दृष्टि से अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। इन सब में सूफ़ी परिभाषाएँ भरी हुई हैं। ख़ुदा को उन्होंने प्रायः 'हक़' कह कर पुकारा है। पल्टूदास का एक पद है—

पूरब में राम है पच्छिम खुदाय है,
उत्तर औ दक्खिन कहो कौन रहता।
साहिब वह कहाँ है, कहाँ फिर नहीं है,
हिन्दू औ तुरुक तोफान करता॥
हिन्दू औ तुरुक मिलि परे हैं खैंचि में,
आपनी वर्ग दोउ दीन बहता।
दास पलटू कहै साहिब सब में रहै,
जुदा ना तनिक मैं साच कहता॥

अर्थात्—वे कहते हैं राम पूरब में है और ख़ुदा पश्चिम में है, तब फिर उत्तर और दक्षिण में कौन रहता है? ख़ुदा कहाँ है, और कहाँ नहीं

है ? हिन्दू और मुसलिम क्यों तूफ़ान खड़ा करते हैं ? हिन्दू और मुसलि लड़ते हैं और दोनों मज़हब एक दूसरे के विरुद्ध हो जाते हैं। दा पलटू कहता है, ख़ुदा सब में है, वह हरगिज़ बटा हुआ नहीं है। य सच है।

जिस प्रकार उत्तर भारत में हिन्दू और मुसलमानों के धार्मिक मे की ये लहरें चल रही थीं, उसी प्रकार बङ्गाल और महाराष्ट्र में भी उन प्रतिबिम्ब दिखाई देने लगे। बारहवीं शताब्दी के बङ्गाल में हिन्दु का मुसलमानों की दरगाहों में मिठाई चढ़ाना, क़ुरान पढ़ना, औ मुसलमानों के त्योहार मनाना और इसी प्रकार मुसलमानों का हिन्दु के धार्मिक रिवाजों की ओर क्रियात्मक आदर दिखलाना एक आम बा थी। इसी मेल जोल में से बङ्गाल के अन्दर एक नए देवता की पूजा शुरू हुई, जिसे 'सत्यपीर' कहते थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों सत्यपीर की पूजा करते थे। कहा जाता है कि गौड़ का बादशाह हुसेनशाह इस नई सम्प्रदाय का संस्थापक था। निस्सन्देह सत्यपीर की पूजा सम्राट अकबर के 'दीने इलाही' का एक प्रारम्भिक रूप था।

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में बङ्गाल के अन्दर महाप्रभु चैतन्य का जन्म हुआ। दिनेशचन्द्र सेन ने बङ्गला भाषा और बङ्गला साहित्य के इतिहास पर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। उसमें वह है लिखता है कि चैतन्य के जन्म से पूर्व—

> "ब्राह्मणों का प्रभुत्व अति कष्टकर हो गया था। कुलीनता के दृढ़ होने के साथ साथ जाति-भेद अधिकाधिक कड़ा होता गया। ब्राह्मण लोग कहने के लिए अपने धर्म में उच्च आदर्शों का प्रतिपादन करते थे, किन्तु जाति बन्धन के कारण मनुष्य

मनुष्य में अन्तर बढ़ता जा रहा था। नीची जातियों के लोग ऊँची जातियों के लोगों के स्वेच्छाचार के नीचे आहें भर रहे थे। इन ऊँची जाति के लोगों ने नीची जाति वालों के लिए विद्या के द्वार बन्द कर रक्खे थे। इन लोगों के लिए उच्चतर जीवन में प्रवेश करने की मनाही थी और नए पौराणिक धर्म पर ब्राह्मणों का ठेका हो गया था, मानो वह कोई बाज़ारी चीज़ हो।"†

इसलाम के सरल धार्मिक सिद्धान्तों और मनुष्य मात्र की समता के आदर्श ने उस समय के बङ्गाली समाज में तहलका मचा दिया। चैतन्य ने इस स्थिति पर गम्भीरता के साथ विचार किया। वह घर बार छोड़ कर देशाटन करने लगा। अनेक साधुओं और फ़क़ीरों से उसकी भेंट हुई। चैतन्य के जीवन चरित्र का रचयिता कृष्णदास लिखता है कि वृन्दावन में एक मुसलमान पीर के साथ चैतन्य की भेंट हुई और पीर ने अपनी धार्मिक पुस्तक के आधार पर चैतन्य को एक ख़ुदा की पूजा का उपदेश दिया। जदु भट्टाचार्य लिखता है—"चैतन्य के जीवन की अनेक घटनाएँ ऐसी हैं जिनसे पूरी तरह साबित है कि वह यवनों से बड़ा प्रेम करता था।"* इसमें सन्देह नहीं कि मुसलमानों के विचारों का चैतन्य के उपदेशों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा।

चैतन्य ने गुरु की सेवा और भक्ति का उपदेश दिया। जाति भेद का उसने कड़ा विरोध किया। ब्राह्मणों के समस्त कर्मकाण्ड को उसने त्याज्य बताया। चैतन्य के शिष्यों में हिन्दू और मुसलमान, उच्च जाति के

---

* *History of Bengali Language and Literature,* by Dinesh Chandra Sen.

† Jadu Bhattacharya : *Hindoo Castes and Sects.* p. 464.

लोग तथा नीच जाति के लोग, सब शामिल थे। उसके मुख्य शिष्यों में
तीन, रूप, सनातन और हरिदास, मुसलमान थे।

चैतन्य की सम्प्रदाय की एक शाखा का नाम कार्तभज था। उसका
संस्थापक कार्तबाबा एक मुसलमान फ़क़ीर की भविष्यद्वाणी के अनुसार
पैदा हुआ था और उस फ़क़ीर ने ही उसे पाला था। कार्तबाबा के बाईस
मुख्य शिष्य 'बाईस फ़कीर' के नाम से विख्यात हुए। इनमें से एक राम-
दुलाल की बाबत, जो कार्तबाबा का उत्तराधिकारी हुआ, कहा जाता है कि
उसके अन्दर उसी मुसलमान फ़क़ीर की रूह आ गई थी। इस सम्प्रदाय
के आचार्यों में से अनेक हिन्दू हुए और अनेक मुसलमान। ये लोग केवल
एक ईश्वर को मानते थे, गुरु को ईश्वर का अवतार मानते थे, दिन में
पाँच बार गुरुमन्त्र का जाप करते थे, मांस मदिरा से परहेज़ करते थे,
शुक्रवार को पवित्र दिन मानते थे और उसे धर्म चर्चा में व्यतीत करते थे,
जात पाँत, ऊँच नीच, अथवा हिन्दू, मुसलमान, ईसाई का उनमें कोई
भेद न था, साल में कम से कम एक दो बार सम्प्रदाय के सब लोग एक
साथ मिल कर भोजन करते थे, इत्यादि।

बङ्गाल में जिन दिनों कि बौद्धों के ऊपर शैवों के अत्याचार जारी थे,
मालूम होता है, एक दर्जे तक बौद्धों को मुसलमानों से सहायता और
उत्तेजना मिली। बङ्गाल के उस समय के बौद्ध ग्रन्थों, 'शून्य पुराण', 'धर्मपूजा-
पद्धति', 'धर्म गजन', 'बाद जननी,' इत्यादि में और बौद्ध गीतों में ब्राह्मणों
के प्रति क्रोध और प्रतिकार का भाव और मुसलमानों, मुसलिम विचारों
और मुसलमान ग्रन्थों के प्रति प्रेम भरा हुआ है। इन काव्यों से कुछ
विचित्र बातों का पता लगता है। मसलन् यह कि उस समय बङ्गाल जाने
वाले बहुत से मुसलमान मांस से परहेज़ करते थे, एक जगह लिखा है—

"खोंकड़ (?) पश्चिम की तरफ़ को मुँह किए ईश्वर से प्रार्थना कर रहा है।

"कोई अल्लाह की पूजा करता है, कोई अली की और कोई ममूद साईं की।

"मियाँ किसी जीव की हत्या नहीं करता और न मुरदार खाता है।

"धीमी आँच के ऊपर वह अपना भोजन पका रहा है।

"जात पाँत के भेद अब धीरे धीरे टूट जायँगे, क्योंकि देखो, हिन्दू कुटुम्ब के अन्दर एक मुसलमान है।

* * *

"ऐ ख़ुदा ! मैं जानता हूँ तू और सब से बड़ा है। मैं बहुत चाहता हूँ कि तेरे मुँह से क़ुरान सुनूँ।"

उत्तर भारत की तरह महाराष्ट्र के हिन्दू महात्माओं ने भी हिन्दू और मुसलमान धर्मों को मिलाने का प्रयत्न किया। प्रसिद्ध महाराष्ट्र विद्वान महादेव गोविन्द रनाडे लिखता है—

"इसलाम का कठोर एक ईश्वरवाद कबीर, नानक इत्यादि सन्तों के चित्तों में साफ़ घर कर गया था। हिन्दू त्रिमूर्ति दत्तात्रय के उपासक प्रायः अपने देवता को मुसलमान फ़क़ीर के से कपड़े पहनाते थे। यही प्रभाव महाराष्ट्र की जनता के चित्तों पर और भी अधिक ज़ोरों के साथ काम कर रहा था। वहाँ पर ब्राह्मण और अब्राह्मण दोनों तरह के प्रचारक लोगों को उपदेश दे रहे थे कि राम और रहीम को एक समझो, कर्मकाण्ड और जाति-भेद

के बन्धनों को तोड़ दो और ईश्वर में विश्वास और मनुष्य मात्र के साथ प्रेम को सब मिलकर अपना एक समान धर्म बनाओ।"*

महाराष्ट्र का पहला सन्त, जिसने लोगों को जातिभेद, कर्मकाण्ड और धार्मिक सङ्कीर्णता के बन्धन से हटा कर स्वतन्त्रता, प्रेम और भक्ति का उपदेश दिया, नामदेव था। रनाडे लिखता है कि नामदेव तथा अन्य सन्तों के उपदेशों का परिणाम यह हुआ कि—मराठी भाषा के साहित्य की उन्नति हुई, जातिभेद ढीला हुआ, स्त्रियों का पद ऊँचा हुआ, उदारता और दयालुता फैली, इसलाम के साथ हिन्दू मत का एक दरजे तक मेल हो गया, कार्मकाण्ड, तीर्थयात्रा इत्यादि का महत्व घटा, प्रेम का महत्व बढ़ा, अनेक देवी देवताओं की पूजा घटी, और विचार तथा कर्म दोनों के क्षेत्र में राष्ट्र की क्षमता बढ़ी। †

नामदेव के गुरु खेचर ने नामदेव को जो उपदेश दिया उससे स्पष्ट है कि खेचर मूर्तिपूजा का कट्टर विरोधी था। उसने कहा कि—

"पत्थर का देवता कभी नहीं बोलता, तो फिर वह हमारे ऐहिक जीवन के दुखों को कैसे दूर कर सकता है? पत्थर की मूर्ति को लोग ईश्वर समझ बैठते हैं, किन्तु सच्चा ईश्वर बिलकुल दूसरा ही है। यदि पत्थर का देवता हमारी इच्छाएँ पूरी कर सकता तो गिराने पर वह टूट क्यों जाता? जो लोग पत्थर के बने हुए देवता की पूजा करते हैं वे अपनी मूर्खता से सब कुछ खो बैठते हैं। जो लोग ये कहते हैं और जो ये सुनते हैं कि पत्थर का

---

* Ranade : *Rise of the Maratha Power*, pp. 50, 51.
† Ibid

देवता अपने भक्तों से बातचीत करता है, वे दोनों मूर्ख हैं। इत्यादि।"*

नामदेव के अनेक शिष्यों और अनुयायियों में पुरुष और स्त्री, हिन्दू और मुसलमान, ब्राह्मण और मराठा, कुनबी, दरज़ी और कुम्हार यहाँ तक कि अन्त्यज, महार और धर्मनिष्ठ वेश्याएँ तक शामिल थीं।†

नामदेव का एक महार शिष्य चोखमेला जिस समय पण्ढरपुर के मन्दिर में जाने लगा और ब्राह्मण पुरोहित ने उसे मना किया तो चोखमेला ने उत्तर दिया—

> "उच्च जाति में पैदा होने से क्या लाभ × × × चाहे मनुष्य नीच जाति का भी हो, किन्तु यदि वह दिल का सच्चा है, ईश्वर से प्रेम करता है, सब प्राणियों को अपने समान समझता है, अपने तथा दूसरों के बच्चों में कोई भेद भाव नहीं रखता, और सच बोलता है, तो उसकी जाति पवित्र है और ईश्वर उससे प्रसन्न है। जिस मनुष्य के हृदय में ईश्वर पर विश्वास है और मनुष्य के साथ प्रेम है, उससे जाति कभी न पूछो। ईश्वर अपने बच्चों से प्रेम और भक्ति चाहता है, वह उनकी जाति की परवा नहीं करता।"‡

बहिराम भट्ट सत्य की खोज में दो दफ़े हिन्दू से मुसलमान और मुसलमान से हिन्दू हुआ। अन्त में उसने कहा—"न मैं हिन्दू हूँ और न मुसलमान।"

---

* Bhandarkar : *Vaishnavism and Shaivism.*
† Ranade : *Rise of the Maratha Power*, p. 146
‡ Ibid p. 154.

दक्षिण के अन्दर शेख़ मोहम्मद एक बहुत बड़ा भक्त हुआ है। उसके अनुयायी रमज़ान के रोज़े भी रखते हैं और एकादशी का व्रत भी, मक्के की भी यात्रा करते हैं और पण्ढरपुर के मन्दिर की भी।

सन्त तुकाराम दक्षिण का शायद सब से अधिक सर्वमान्य भक्त था। तुकाराम कबीर इत्यादि के समान जात पाँत, मूर्तिपूजा, यज्ञ, हवन तथा अन्य कर्मकाण्ड का कट्टर विरोधी और एक हरि की भक्ति का प्रचारक था। प्रत्येक प्राणी के रूप में उसे हरि ही दिखाई देता था। इसलाम और हिन्दू धर्म को मिलाने का तुकाराम का प्रयत्न उसके एक पद्य से प्रकट है जिसका भाषान्तर यह है—

जो 'अल्लाह' चाहता है, ऐ मेरे बाबा! वही होता है। सब का बनाने वाला सब का बादशाह है। पशु और मित्र, बग़ीचे और माल, सब जाते रहेंगे। ऐ बाबा! मेरा चित्त मेरे 'साहेब' पर लगा है। वही मेरा बनाने वाला है। मैं मन के घोड़े पर सवार हूँ और आत्मा सवारी करती है। ऐ बाबा! अल्लाह का ज़िक्र करो, सब उसी के रूप हैं। तुका कहता है, जो मनुष्य इस बात को समझे, वही दरवेश है।

बड़े नामों में सब से पहला नाम 'अल्लाह' है। उसे सदा दोहराते रहो, भूलो नहीं। सचमुच अल्लाह एक है, सचमुच नबी एक है, वहाँ तू भी एक है, वहाँ तू भी एक है, वहाँ तू भी एक है! वहाँ न मैं हूँ और न तू है!*

निस्सन्देह हिन्दूमत, बौद्धमत और इसलाम के मेल से उस समय

* Tukaram's *Abhanga*, p. 85, 86, Godbole's edition.

भारत के अन्दर उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक एक सुन्दर सार्वजनिक मानव धर्म की नींव रक्खी जा रही थी, जिसका मूल मन्त्र एकता और प्रेम था।

८

जिस प्रकार धार्मिक विचारों पर उसी प्रकार भारतीय निर्माणकला और भारतीय चित्रकारी पर भी मुसलमानों के सम्पर्क का बहुत गहरा तथा हितकर प्रभाव पड़ा। प्रोफ़ेसर जादुनाथ सरकार लिखता है कि मुसलमानों के समय में भारतीय निर्माणकला ने स्पष्ट उन्नति की।

ईसा की आठवीं शताब्दी तक भारतीय शिल्पकला पर बौद्धमत की विशेष छाप थी। आठवीं से तेरहवीं शताब्दी तक इस कला में हिन्दू आदर्शों की प्रधानता रही, तथापि बौद्धमत का प्रभाव उस पर साफ़ दिखाई देता रहा। हम इस विषय की वैज्ञानिक बारीकियों में पड़ना नहीं चाहते। किन्तु एक दो बातें स्पष्ट हैं। प्रत्येक देश के लोगों के कला सम्बन्धी आदर्शों पर एक बहुत बड़ा प्रभाव देश की भौगोलिक स्थिति का पड़ता है। भारत अभेद्य जङ्गलों, प्रचण्ड ऋतुओं, बड़ी बड़ी नदियों, पहाड़ों और घनी वनस्पतियों का देश है। यही कारण है कि भारतीय शिल्पकला में सदा से विशालता, स्थूलता, और विस्तार पर अधिक ज़ोर दिया जाता रहा है। भारतीय वनों में अगणित प्रकार की फूल पत्तियाँ इधर से उधर तक गुथी हुई दिखाई देती हैं, नीचे की ओर अथवा ऊपर की ओर कहीं भी दृष्टि डाली जाय, एक गज़ भर ज़मीन सूनी दिखाई नहीं देती। यही कारण है कि प्राचीन भारतीय मन्दिरों और प्रासादों में दीवारों

के ऊपर, और कोनों में प्रायः एक फ़ुट ज़मीन भी ख़ाली दिखाई नहीं देती। पुराने समय के हिन्दू मन्दिरों में नींव के ऊपर नींव, मन्ज़िल के ऊपर मन्ज़िल, कङ्गूरे के ऊपर कङ्गूरा और कलश के ऊपर कलश आकाश तक पहुँचते हुए दिखाई देते हैं, और इसके साथ साथ कोई कोना या दीवार का हिस्सा ऐसा नहीं रहता जो मूर्तियों अथवा चित्रों से न भरा हो। शिल्पकला-विशारदों की राय है कि संसार के किसी भी अन्य देश की निर्माणकला विस्तार-बाहुल्य और अति-शोभा में हिन्दू-निर्माणकला का मुक़ाबला नहीं कर सकती।

इसके विपरीत अरब एक विशाल मरुभूमि है, जिसमें दूर दूर और कहीं कहीं थोड़े से हरे भरे भूभाग दिखाई देते हैं। इसके ऊपर अरब की तेज़ गरमी, भोजन और वस्त्र के लिए परिमित और इनी गिनी सामग्री और रेत के पहाड़। स्वभावतः मुसलमानों की शुरू की निर्माणकला में बड़े बड़े भवन, सादी साफ़ दीवारें और ऊँचे मीनार तथा गुम्बद अधिक देखने में आते हैं। इसलाम के एक-ईश्वरवाद और मूर्तिभञ्जकता ने भी मुसलिम कला के इस आदर्श को अपना एक ख़ास रूप दिया और उसे और अधिक पक्का कर दिया। जिस मनुष्य की आँखें प्राचीन हिन्दू मन्दिरों के विस्तार-प्रपञ्च से उकता गई हों उसे एक सीधी साधी मुसलिम मसजिद की साफ़ दीवारों में विश्राम मिलना स्वाभाविक है। इसी प्रकार जो मनुष्य प्राचीन मुसलिम मसजिदों या प्रासादों की अभिन्नता से ऊब गया हो, उसके लिए हिन्दू-निर्माणकला का बाहुल्य एक दरजे तक अवश्य आकर्षक होगा।

यह भी स्पष्ट है कि इन दोनों आदर्शों के मेल से एक इस प्रकार की निर्माणकला को जन्म दिया जा सकता था, जो दोनों की अपेक्षा अधिक

सुन्दर और अधिक आकर्षक हो। धार्मिक तथा जातीय पक्षपात इस तरह के सम्मिश्रण के मार्ग में बाधक होते हैं। किन्तु फिर भी दो पृथक पृथक आदर्शों के मिलने से जाने अथवा अनजाने इस प्रकार का सम्मिश्रण हुए बिना नहीं रह सकता। इसके अतिरिक्त हम ऊपर दिखला चुके हैं कि मुसलमानों के भारत आगमन के समय से ही इस धार्मिक अथवा जातीय पक्षपात के नाश के लिए भी अनेक आन्दोलन जारी थे। स्वभावतः जिस प्रकार धार्मिक विचारों के क्षेत्र में उसी प्रकार निर्माणकला और चित्रकारी के क्षेत्र में भी भारत ने नए आदर्शों को जन्म देना शुरू किया, जो दोनों पृथक पृथक आदर्शों से उच्चतर थे और जिनके परिणाम उन दोनों के परिणामों से अधिक सुन्दर थे। इन तीनों प्रकार के आदर्शों को साक्षात करने के लिए हमें एक ओर दक्षिण के प्राचीन मन्दिर अथवा जगन्नाथपुरी का मन्दिर, दूसरी ओर अजमेर और दिल्ली इत्यादि की पुरानी मसजिदों, और तीसरी ओर मुग़ल समय के आगरे और दिल्ली के शाही महल अथवा भारतीय निर्माणकला के सब से अधिक उत्कृष्ट और सब से अधिक सुन्दर नमूने, आगरे के ताज, की ओर दृष्टि डाल लेना काफ़ी है। निस्सन्देह आगरे का ताज संसार की सब से अधिक सुन्दर इमारतों में गिना जाता है, भारतीय निर्माणकला के मस्तक पर वह झूमर का काम देता है, देश की इस पतित अवस्था में भी प्रत्येक भारतवासी के सच्चे अभिमान और गौरव का पात्र है, और शिल्प के क्षेत्र में इसलाम से पूर्व के भारतीय आदर्शों तथा बाद के मुसलिम आदर्शों, दोनों के प्रेमालिङ्गन का सबसे सुन्दर नमूना है।

शिल्पकला के पण्डित हमें बताते हैं कि ईसा की तेरहवीं शताब्दी से पहले की भारत की हिन्दू और मुसलमान इमारतें साफ़ दो पृथक पृथक

आदर्शों के अनुसार बनी हुई दिखाई देती हैं, किन्तु उसके बाद की हि
इमारतों पर मुसलिम छाप और मुसलिम इमारतों पर हिन्दू छाप भी स
दिखाई देती है और दोनों के सौन्दर्य को बढ़ाती हुई प्रतीत होती है। य
कारण है कि भारत की मुसलिम शिल्पकला, मिश्र की मुसलिम शिल्पकला
शाम की मुसलिम शिल्पकला, ईरान की मुसलिम शिल्पकला और ता
की मुसलिम शिल्पकला, इन सब में बहुत बड़ा अन्तर है।

दिल्ली और आगरे के अतिरिक्त राजपूताना और काशमीर इत्या
में भी इस मिश्रित कला-आदर्श के काफ़ी नमूने अभी तक मौजूद हैं,
सोलहवीं शताब्दी के बने हुए कुछ वृन्दावन के वैष्णव मन्दिर, सोनाग
के कुछ जैन मन्दिर, विजयनगर की अनेक इमारतें और सत्रहवीं शताब्
का बना हुआ मदुरा का तिरूमलाई नायक का प्रसिद्ध महल भी इस
मिश्रित कला-आदर्श के नमूने हैं।

सोलहवीं शताब्दी के लगभग 'समाधियाँ' अथवा 'छतरियाँ' बनान
हिन्दुओं में पहली बार शुरू हुआ और निस्सन्देह यह रिवाज हिन्दुओं
मुसलमानों से पड़ा। इमारतों में महराब का उपयोग, डाट की गोल छ
और वर्तमान उद्यान-कला की शिक्षा भी भारत ने मुसलमानों ही से ग्रहण
की। वर्तमान भारत के सुन्दर से सुन्दर बाग़ मुग़ल सम्राटों के समय के
बने हुए हैं, जिनमें जहाँगीर के समय का बना हुआ काशमीर का शालामार
बाग़ अभी तक संसार का सब से सुन्दर बाग़ स्वीकार किया जाता है।

जिस प्रकार निर्माणकला में उसी प्रकार चित्रकारी में भी दो भिन्न
भिन्न आदर्शों के मेल से मुग़ल सम्राटों के अधीन भारत ने एक अधिक
उच्च और अधिक सुन्दर चित्रकला को जन्म दिया। हुमायूँ, अकबर,
जहाँगीर और शाहजहाँ के महलों में सैकड़ों हिन्दू चित्रकार केवल अपनी

कला को उन्नति देने के लिए बड़ी बड़ी तनख़ाहें पाते थे। शीराज़, तब्रेज़ यहाँ तक कि चीन के बड़े बड़े चित्रकार भी वहाँ पर मौजूद रहते थे और निस्सन्देह ये सब एक दूसरे की सहायता से अपनी अपनी कला को उन्नति देते थे। उस समय की फ़ारसी पुस्तकों और हस्तलिपियों में जयपुर, ग्वालियर, गुजरात, काशमीर इत्यादि के रहने वाले मुग़ल दरबार के अनेक हिन्दू और मुसलमान चित्रकारों के नाम मिलते हैं, जिनमें से कुछ के हाथ के खिंचे हुए सुन्दर चित्र अभी तक चित्रकला-विशारदों को चकित करते रहते हैं। दिल्ली और आगरे से लेकर जयपुर, जम्मू, चम्बा, काँगड़ा, लाहौर, अमृतसर और दक्षिण में तञ्जोर तक उस समय एक सुन्दर भारतीय चित्रकला फैलती और उन्नति करती हुई दिखाई देती थी। दिल्ली और आगरे में जिन आदर्शों को जन्म दिया जाता था, राजपूताना तथा शेष भारत के हिन्दू दरबारों में उन्हीं का अनुसरण किया जाता था। प्रोफ़ेसर जादुनाथ सरकार लिखता है—

> "चित्रकला के क्षेत्र में हमारे चित्रकारों ने जो असाधारण उन्नति मुग़लों के ज़माने में की वह और कभी नहीं की।"*

उस समय के अनेक अङ्गरेज़ यात्री स्वीकार करते हैं कि जहाँगीर के उदार प्रोत्साहन के प्रताप से जहाँगीर के समय की भारतीय चित्रकला संसार भर में सब से अधिक उन्नत चित्रकला थी।†

---

* ". . . the highest genius was displayed by our artists in this field in the Mughal age."—*Mughal Administration* by J. N. Sarkar, p. 128.

† *History of Jehangir*, by Dr. Beniprasad, M A., pp. 92-94.

९

अब हम यह देखना चाहते हैं कि धार्मिक विचारों, शिल्प तथा शि... कारी से बाहर शेष भारतीय जीवन पर आगन्तुक मुसलमानों का क... प्रभाव पड़ा। हम ऊपर लिख चुके हैं कि मोहम्मद ग़ोरी के हमले के सम... से लेकर ३०० वर्ष तक भारत में लगातार संग्रामों और छोटी छो... सल्तनतों का समय था। इसके बाद दिल्ली के मुग़ल साम्राज्य का सम... आया। वास्तव में मुग़ल साम्राज्य के दिनों में ही भारत के अन्दर मुस... मानों की सत्ता, उनकी सभ्यता और उनका प्रभाव अपनी पराकाष्ठा ... पहुँचा। किन्तु मुग़लों के शासन तथा भारत के ऊपर मुग़ल साम्राज्य ... उपकारों अथवा अपकारों को वर्णन करने से पहले हम मुग़लों द्वारा संस... के अन्य देशों की विजय पर भी एक दृष्टि डालना चाहते हैं।

ईसा की तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में चङ्गेज़ ख़ाँ ने पूर्वीय एशि... से निकल कर उत्तरीय चीन, तातार तथा शेष अधिकांश एशिया ... विजय कर लिया था। सन् १२२७ ईसवी में चङ्गेज़ ख़ाँ की मृत्यु हुई... इसके ६८ वर्ष के अन्दर चङ्गेज़ ख़ाँ के उत्तराधिकारियों ने भारत ... छोड़ कर लगभग शेष समस्त एशिया और यूरोप के एक बहुत ब... हिस्से को मुग़ल साम्राज्य में शामिल कर लिया। यूरोप पर उनका ... हमला सन् १२३८ ईसवी में हुआ। यूरोपियन इतिहास-लेखक कहते ... कि इससे पूर्व ईसा की आठवीं शताब्दी में जब अरबों ने यूरोप पर हमला ... किया था उस समय से सन् १२३८ तक कोई और इतनी भयङ्कर आपत्ति ... यूरोप पर न आई थी। कुछ वर्षों के अन्दर ही समस्त रूस, पोलैण्ड ... बलक़ान, हङ्गेरी यहाँ तक कि उत्तर में बाल्टिक समुद्र और पश्चिम ...

जरमनी तक, आधे से अधिक यूरोप मुग़लों के अधीन हो गया। रूस के ऊपर दो सौ वर्ष तक इन मुग़लों का शासन रहा। शुरू के मुग़ल बौद्ध थे। स्वयं चङ्गेज़ ख़ाँ बौद्धमत का अनुयायी था और साथ ही अपने देश मङ्गोलिया के कुछ प्राचीन धार्मिक विचारों को भी मानता था। इन्हीं मुग़लों ने अधिकांश एशिया तथा यूरोप को विजय किया। बौद्ध मुग़लों ने मुसलिम ईरान तथा मुसलिम इराक़ को फ़तह किया और उसके बाद चङ्गेज़ ख़ाँ के पौत्र हुलाकू ख़ाँ तथा उसके साथ के अन्य मुग़लों ने अपने पराजित ईरानियों तथा अरबों से इसलाम मत ग्रहण किया।

भारत पर मुग़लों का सब से पहला हमला सन् १३९८ ईसवी में तैमूर का हमला था। महमूद तुग़लक उस समय दिल्ली के तख़्त पर था। किन्तु सिवाय चन्द रोज़ की लूट खसोट और संहार के और कोई प्रभाव उस हमले का भारत पर न रह सका। तैमूर १५ दिन से अधिक दिल्ली में न ठहर सका।

मुग़लों का दूसरा हमला इस देश के ऊपर सन् १५२६ ईसवी में बाबर का हमला था। उस समय तक मुग़ल अपनी जन्मभूमि मङ्गोलिया से कहीं अधिक सभ्य देश ईरान में वर्षों रह चुकने के कारण चङ्गेज़ तथा तैमूर के मुक़ाबले में कहीं अधिक सभ्य और सभ्यताप्रेमी बन चुके थे। पानीपत के मैदान में बाबर ने इब्राहीम लोधी को शिकस्त दी और भारत में मुग़ल साम्राज्य की नींव रक्खी।

पानीपत की विजय के बाद ही बाबर ने भारत को अपना घर बना लिया। हुमायूँ के अतिरिक्त उसके शेष वशंज भारत ही में पैदा हुए।

सम्राट हर्षवर्धन के बाद से अर्थात् ईसा की सातवीं शताब्दी के मध्य से सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक लगभग ९०० वर्ष के समय में भारत

के अन्दर कोई भी प्रधान राजनैतिक शक्ति ऐसी उत्पन्न होने न पाई जो समस्त भारत को एक शासन के सूत्र में बाँध सकती। इन १०० के अन्दर भारत छोटी बड़ी एक दूसरे की प्रतिस्पर्धी रियासतों का युद्ध क्षेत्र बना हुआ था। वह समय भारत के इतिहास में राजनैतिक निर्बलता अनैक्य और अव्यवस्था का समय था। भारत को उस समय एक ऐसी प्रधान शक्ति की प्रबल आवश्यकता थी जो सारे देश के ऊपर एक समान शासन क़ायम कर सके, देश की बिखरी हुई शक्तियों को एक सूत्र में बाँध सके, और शान्ति तथा सुशासन द्वारा राष्ट्रीय जीवन के विविध क्षेत्रों में देश को अग्रसर होने का मौक़ा दे सके। इतिहास इस बात का साक्षी है कि ईसा की सोलहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक दिल्ली के मुग़ल साम्राज्य ने भारत की इस कमी को ख़ासी सुन्दरता के साथ पूरा किया। निस्सन्देह राजनीति, सामाजिक व्यवस्था, उद्योग धन्धे, कला-कौशल, समृद्धि, शिक्षा और सुशासन की दृष्टि से भारत के समस्त इतिहास में मुग़ल साम्राज्य का समय सबसे अधिक गौरवान्वित समय था।

मुग़लों के आने से पहले सम्राट अशोक और सम्राट समुद्रगुप्त के साम्राज्य भारत में सब से अधिक विशाल साम्राज्य रह चुके थे। किन्तु प्रोफ़ेसर जादुनाथ सरकार लिखता है कि मुग़ल साम्राज्य अपनी पराकाष्ठा के समय अशोक तथा समुद्रगुप्त, दोनों के साम्राज्यों से कहीं बड़ा था। इसके अतिरिक्त अशोक अथवा समुद्रगुप्त के अधीन साम्राज्यान्तर्गत विविध प्रान्तों का जीवन एक दूसरे से इतना अच्छा गुथा हुआ न था। सबकी अलग अलग भाषाएँ, अलग अलग शासन पद्धति और अलग अलग प्रान्तीय जीवन। किन्तु जादुनाथ सरकार लिखता है—

"इसके विपरीत, अकबर के सिंहासन पर बैठने के समय से मोहम्मदशाह की मृत्यु के समय तक (१५५६—१७४९), मुग़ल शासन के इन दो सौ वर्षों ने समस्त उत्तरीय भारत और अधिकांश दक्षिण को भी, एक सरकारी भाषा, एक शासन पद्धति, एक समान सिक्के, और हिन्दू पुरोहितों तथा निश्चल ग्रामीण जनता को छोड़ कर शेष समस्त श्रेणियों के लोगों के लिए एक सार्वजनिक सर्वप्रिय भाषा प्रदान की। जिन प्रान्तों पर मुग़ल सम्राटों का बराहरास्त शासन था (अर्थात् जिनके सूबेदार दिल्ली सम्राट की ओर से नियुक्त किए जाते थे), उनसे बाहर भी आसपास के हिन्दू राजा, कम या अधिक, मुग़लों की शासन प्रणाली, उनकी सरकारी परिभाषाओं, उनके दरबारी शिष्टाचार, और उनके सिक्कों का अनुकरण करते थे।

"मुग़ल साम्राज्य के अन्तर्गत बीस भारतीय 'सूबे' थे। इन सब सूबों पर ठीक एक समान प्रणाली के अनुसार शासन किया जाता था, सब में एक शासन विधि का पालन किया जाता था, और विविध सरकारी ओहदों के नाम और उपाधियाँ सब में एक समान थीं। तमाम सरकारी मिसलों, फ़रमानों, सनदों, माफ़ियों, राहदारी के परवानों, पत्रों, और रसीदों में एक फ़ारसी भाषा का उपयोग किया जाता था। साम्राज्य भर में एक समान वज़न, एक से मूल्य, एक नाम और एक सी धातु के सिक्के प्रचलित थे, केवल जिस टकसाल का कोई सिक्का बना होता था वहाँ के शहर का नाम उस पर और खुदा होता था। सरकारी कर्मचारियों और सिपाहियों का प्रायः एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त

में तबादला होता रहता था। इस प्रकार एक प्रान्त के रहने वाले दूसरे प्रान्त में पहुँच कर उसे अपने घर के समान अनुभव करते थे। व्यापारी और यात्री निहायत आसानी से एक शहर से दूसरे शहर और एक सूबे से दूसरे सूबे आ जा सकते थे, और एक साम्राज्य के अधीन सब लोग इस विशाल देश की एकता को अनुभव करते थे।"*

मुसलमानों के आने से पहले का हिन्दुओं का लिखा हुआ ऐतिहासिक साहित्य अव्वल तो है ही बहुत कम, और जो है भी उसमें तिथियों का लगभग अभाव है। इसके विपरीत अरबों के लिखे हुए इतिहासों, यात्रा-वृत्तान्तों और जीवन चरित्रों में सदा ठीक ठीक तिथि दर्ज होती है। प्रोफ़ेसर जादुनाथ सरकार का कथन है कि भारतवासियों को दूसरा लाभ जो मुसलमानों से पहुँचा वह इस देश के अन्दर ऐतिहासिक साहित्य का प्रारम्भ था।

---

* " . . . . On the other hand, the two hundred years of Mughal rule, from the accession of Akbar to the death of Mohammad Shah (1556-1749), gave to the whole of Northern India and much of the Deccan also, oneness of the official language, administrative system and coinage and also a popular, *lingua franca* for all classes except the Hindoo priests and the stationary village folk. Even outside the territory directly administered by the Mughal Emperors, their administrative system, official nomenclature, court etiquette and monetary type were borrowed, more or less, by the neighbouring Hindoo Rajas.

"All the twenty Indian *subahs* of the Mughal Empire were governed by means of exactly the same administrative machinery,

बौद्धमत के अन्त के समय से बाहर के देशों के साथ भारत का सम्बन्ध भी कम होता जा रहा था। तिजारत गिरती जा रही थी। मुग़लों के शासन काल में भारत का सम्बन्ध बाहर के अन्य देशों के साथ फिर से क़ायम हुआ। मुग़ल साम्राज्य के लगभग अन्त तक अफ़ग़ानिस्तान दिल्ली के सम्राट के अधीन था। और अफ़ग़ानिस्तान के ज़रिए बुख़ारा, समरक़न्द, बलख़, ख़ुरासान, ख़्वारज़िम और ईरान से सहस्रों यात्री तथा व्यापारी भारत आते जाते थे। सम्राट जहाँगीर के दिनों में तिजारती माल से लदे हुए चौदह हज़ार ऊँट प्रति वर्ष केवल बोलन दर्रे से भारत आते जाते थे। इसी प्रकार पश्चिम में ठट्ठा, भड़ोच, सूरत, चाल, राजापुर, गोआ और कारवार, और पूर्व में मछलीपट्टन तथा अन्य बन्दरगाहों से सहस्रों जहाज़ प्रतिवर्ष अरब, ईरान, टरकी, मिश्र, अफ़रीका, लङ्का, सुमात्रा, जावा, स्याम और चीन आते जाते रहते थे। जादुनाथ सरकार इसे भारत के ऊपर मुग़ल साम्राज्य का तीसरा उपकार बताता है।

---

with exactly the same procedure and official titles. Persian was the one language used in all office records, farmans, sanads, land-grants, passes, despatches and receipts. The same monetary standard prevailed throughout the Empire, with coins having the same names, the same purity and the same denominations, and differing only in the name of the mint-town. Officials and soldiers were frequently transferred from one province to another. Thus, the native of one province felt himself almost at home in another province; traders and travellers passed most easily from city to city, *subah* to *subah*, and all realised the imperial oneness of this vast country."—*Mughal Administration*, by Jadunath Sarkar, pp. 129, 130.

चौथा उपकार प्रोफ़ेसर सरकार की राय में भारत की उन धार्मिक तथा सामाजिक लहरों का और अधिक ज़ोरों के साथ फैलना था, जिनका हम ऊपर विस्तार के साथ ज़िक्र कर चुके हैं। पाँचवाँ शिल्पकला और चित्रकारी की अपूर्व उन्नति और उसका विस्तार।

युद्ध विद्या, सैनिक व्यवस्था और क़िलेबन्दी के कामों ने भी जो उन्नति मुग़लों के समय में की उतनी पहले कभी न की थी। बन्दूक़ों और तोपों का रिवाज समस्त भारत में अधिकतर मुग़लों ही के समय से फैला।

विशेष कर उत्तरीय भारत के रहन सहन और वेश भूषा में मुसलमानों का साफ़ प्रभाव दिखाई देता है। हिन्दी, बङ्गला तथा मराठी भाषाओं में इस समय तक असंख्य फ़ारसी, अरबी तथा तुरकी शब्द भरे हुए हैं। उत्तरीय भारत में यदि किसी हलवाई की दूकान पर मिठाइयों के नाम गिने जायँ तो उनमें बालूशाही, गुलाब जामुन, बरफ़ी, हलवा, क़लाक़न्द इत्यादि अधिकांश नाम मुसलमानी हैं और इनमें से अधिकांश मिठाइयाँ मुग़ल समय की ईजाद हैं। यहाँ तक कि हिन्दुओं के विवाह जैसे संस्कार में भी सेहरा, और जामा जैसी चीज़ों का अभी तक उपयोग किया जाता है।

भारत की प्राचीन ग्राम पञ्चायतों और उनके अधिकारों में मुसलमानों ने किसी तरह का भी हस्तक्षेप नहीं किया। जादुनाथ सरकार लिखता है—

"उन्होंने बुद्धिमत्ता के साथ ग्राम शासन की पुरानी पद्धति को और लगान वसूल करने के पुराने हिन्दुओं के तरीक़े को ज्यों का त्यों जारी रक्खा, यहाँ तक कि लगान के मोहकमे में अधिकतर केवल हिन्दू कर्मचारियों को ही नियुक्त रक्खा। परिणाम यह हुआ कि राजधानी में राजकुल के बदल जाने से

हमारे करोड़ों ग्रामवासियों के जीवन पर किसी तरह का अहित-कर प्रभाव न पड़ता था।"*

किसानों तथा रय्यत को मुग़ल सम्राटों के समय में विशेष सहायता दी जाती थी और उनकी हर प्रकार रक्षा की जाती थी। जिस समय कोई नया सूबेदार नियुक्त किया जाता था तो उसे और बातों के साथ साथ यह आदेश दिया जाता था—

"रय्यत को इस बात के लिए प्रोत्साहन देना कि वे कृषि को उन्नति दें और अपने पूरे दिल से खेती बाड़ी को बढ़ाएँ। कोई चीज़ उनसे ज़बरदस्ती न छीनना। याद रखना कि रय्यत ही राज्य की आमदनी का एक मात्र स्थायी स्रोत हैं। × × ×

* * *

"× × × इस बात का ख़याल रखना कि बलवान निर्बलों पर अत्याचार न करें।"†

इसी प्रकार जब किसी प्रान्त के लिए नया सूबेदार नियुक्त होता था तो सम्राट का वज़ीर, जिसे दीवाने आला कहते थे, उसे जो हिदायतें करता था, उनमें से एक यह थी—

---

* Ibid, p. 139.

† "Encourage the ryots to extend the cultivation and carry on agriculture with all their hearts. Do not screw anything out of them. Remember that the ryots are permanent that is the only permanent source of income to the State. . . .

* * *

" . . . See that the strong may not oppress the weak."—Ibid, p. 85, 86.

"ख़याल रखना कि बलवान निर्बलों पर अत्याचार न करें। तमाम अत्याचारियों को दबा कर रखना।"*

प्रत्येक प्रान्त में सूबेदार अथवा नाज़िम के अतिरिक्त एक दीवान होता था। सूबेदार का काम फ़ौज का प्रबन्ध, शासन प्रबन्ध और न्याय प्रबन्ध होता था। दीवान का काम लगान वसूल करना। प्रत्येक दीवान की नियुक्ति की सनद में लिखा होता था कि उसका सब से मुख्य काम "खेती के काम को और ग्रामों की आबादी को बढ़ाना" है। लगान की वसूली में खेतिहरों के साथ किसी प्रकार की ज़बरदस्ती की इजाज़त न थी। एक हिदायत प्रत्येक सनद में यह होती थी कि—

"यदि किसी आमिल के इलाक़े में कई साल की लगान की बक़ाया चली आती है, तो तुम उस रक़म को किसानों से बहुत आसान किश्तों में वसूल करना, यानी बक़ाया का केवल पाँच फ़ीसदी हर फ़सल के मौक़े पर वसूल करना।"†

इसी प्रकार फ़ौजदारों, थानेदारों, करोड़ियों, तहसीलदारों इत्यादि सब को हिदायत होती थी कि किसानों को किसी तरह का कष्ट न पहुँचाएँ।

जादुनाथ सरकार, मुग़ल साम्राज्य के दिनों के भारतीय किसानों की फ़्रान्स और आयरलैण्ड के किसानों से तुलना करते हुए, लिखता है—

"किन्तु अन्तर यह था कि अङ्गरेज़ों के आने से पहले (मुग़ल-भारत में) किसी किसान को लगान अदा न करने के कारण ज़मीन से बेदख़ल न किया जाता था, कोई किसान भूखा न मरता

* Ibid, p. 81.
† Ibid, p. 88.

था।××× बटाई की प्रणाली के अनुसार चूँकि लगान पैदावार की शकल में लिया जाता था, किसान को बड़ा फ़ायदा रहता था, क्योंकि लगान की अदायगी हर साल की असली पैदावार पर निर्भर होती थी, इसके विपरीत आज कल का लगान रुपयों की शकल में नियत होता है जिसका उस वर्ष की पैदावार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता।"

प्रत्येक मुग़ल सम्राट की ओर से तमाम सूबों के कर्मचारियों और सामन्त नरेशों के नाम बार बार इस विषय की आज्ञाएँ प्रकाशित होती रहती थीं कि किसी किसान के साथ लगान की वसूली में अथवा किसी मामले में किसी तरह की ज़बरदस्ती न की जाय और कोई नाजायज़ रक़म या 'अबवाब' उनसे वसूल न किया जाय।

इतिहास-लेखक फ़्रेडरिक आगस्टस लिखता है कि—

"जब कभी सम्राट की सेना ग्रामों में से होकर निकलती थी और उनके कूच के कारण किसान के माल को हानि पहुँचती थी या उसकी बरबादी होती थी, तो विश्वस्त आदमी इस बात के लिए नियुक्त किए जाते थे कि वे उस हानि या बरबादी के मूल्य का ठीक ठीक तख़मीना लगाएँ। तख़मीना लगाने के बाद ये लोग या तो उस रक़म को किसान के सरकारी लगान में से कम कर देते थे या व्यर्थ को शिकायतों और बहसों से बचने के लिए तत्त्वण किसानों के दावे के अनुसार उन्हें रक़म अदा कर देते थे।"*

* *The Emperor Akbar, etc.*, by Frederick Augustus, translated by A. S. Beveridge, pp. 273-77.

सन् १६७३ में सम्राट औरङ्गज़ेब ने अपने साम्राज्य भर में एक ए प्रकाशित किया, जिसमें ५४ चीज़ों की एक सूची दी गई थी और लि था कि इनमें से किसी के ऊपर प्रजा से किसी तरह का महसूल आदि न लिया जाय। इसी एलान में सम्राट ने राज-कर्मचारियों तथा ज़मीं दारों को आज्ञा दी कि किसी किसान से किसी तरह की भी 'भेंट बेगार' न ली जाय। इन ५४ चीज़ों में मछली, तेल, घी, दूध, दही, उपले तरकारियाँ, घास, ईंधन, मिट्टी के बरतन, ऊँट, गाड़ियाँ, चरागाह, सड़कों की रहदारी का महसूल, नदियों के घाटों का महसूल, रूई, गल्ला, र कपड़े की छपाई, इत्यादि भी शामिल थीं। इसी एलान में लिखा था कि गङ्गा अथवा अन्य तीर्थों में नहाने वालों से अथवा मरे हुए लोगों की अस्थियाँ गङ्गा में ले जाने वाले हिन्दुओं से किसी तरह का महसूल न लिया जाय।

इस तरह की आज्ञाएँ सम्राट अकबर के समय से लेकर बराबर प्रका शित होती रहती थीं। प्रत्येक नए सम्राट को अपने तख़्त पर बैठने के समय अथवा कभी कभी अपने शासन काल में एक से अधिक बार उन्हें इसलिए दोहराते रहना अथवा कभी कभी बदलना पड़ता था ताकि कोई सामन्त अथवा कर्मचारी इस विषय में असावधान न हो जाय। जादु नाथ सरकार लिखता है—

"उस समय के इतिहासों और पत्रों से स्पष्ट है कि मुग़ल साम्राज्य के अधिराज की नीति यही होती थी कि रय्यत पर किसी तरह का अत्याचार न होने पाए। यह बात साबित की जा सकती है कि यह नीति केवल एक शुभ कामना ही न थी, वरन् यही उस समय की सच्ची परिस्थिति थी। शाहजहाँ और

औरङ्ग़ज़ेब के समय की अनेक ऐसी घटनाएँ उस समय के इति-हास में मिलती हैं, जिनमें कि माल के मोहकमे के किसी कर्म-चारी, अथवा किसी प्रान्त के सूबेदार की सख़्ती या ज़बरदस्ती की प्रजा की ओर से कोई शिकायत ज्योंही कि सम्राट के कानों तक पहुँची, तुरन्त उन राजकर्मचारियों को अथवा उन सूबेदारों तक को बरख़ास्त कर दिया गया।"*

पूर्वोक्त लेखक ने एक फ़ारसी हस्तलिपि से मिसाल के तौर पर एक घटना उद्धृत की है, जिससे "साफ़ पता चलता है कि शाहजहाँ किसानों के साथ इन्साफ़ करने, बल्कि उदारता का व्यवहार करने के लिए कितना उत्सुक था।"

एक दिन शाहजहाँ साम्राज्य के माल के काग़ज़ात का निरीक्षण कर रहा था। उसने देखा कि किसी गाँव की उस साल की मालगुज़ारी पिछले वर्षों की मालगुज़ारी से कई हज़ार अधिक दर्ज है। तुरन्त माल के मोहकमे के प्रधान अफ़सर दीवाने आला सादुल्ला ख़ाँ को तलब किया गया। सम्राट ने दीवान से मालगुज़ारी के बढ़ने का कारण पूछा। तहक़ीक़ात करने पर मालूम हुआ कि उस साल गाँव के पास की नदी कुछ पीछे को हट गई थी

---

* "The policy of the supreme head of the Mughal Government not to commit any exaction on the ryot is manifest from the contemporary histories and letters, and can be proved to have been a reality and not merely a pious wish. Several instances are recorded in the reigns of Shah Jahan and Aurangzeb in which harsh and exacting revenue collectors and even provincial viceroys were dismissed on the complaints of their subjects reaching the Emperor's ears."—Ibid, p. 108.

जिससे गाँव की ज़मीन बढ़ गई थी। इसी लिए लगान बढ़ाया गया। सम्राट ने फिर दरियाफ़्त किया कि जो ज़मीन बढ़ी है, वह मामूली ज़मीन के पास की है या माफ़ी की ज़मीन के पास की। मालूम हुआ कि पास ज़मीन माफ़ी की ज़मीन है। यह बात सुनते ही शाहजहाँ गुस्से में भर चिल्ला पड़ा—

"उस जगह के यतीमों, बेवाओं और ग़रीबों की आहोज़ारी पर वहाँ की ज़मीन का पानी सूख गया है। यह उनको ख़ुदा की एक देन थी, तुमने उसे राज्य के लिए छीनने का साहस किया! यदि ख़ुदा के बन्दों के लिए दया का भाव मुझे न रोकता तो मैं उस दूसरे शैतान को यानी उस ज़ालिम फ़ौजदार को, जिसने इस नई ज़मीन से लगान वसूल किया है, फाँसी का हुकुम देता। अब उसे केवल बरख़ास्त कर देना उसके लिए काफ़ी सज़ा होगी, ताकि दूसरे लोग भी आगाह हो जायँ, और इस तरह की बेइन्साफ़ी के बदकार न करें। हुकुम जारी कर दो कि तुरन्त जितना ज़्यादा लगान वसूल किया गया है वह सब जिन किसानों से लिया गया है, उन्हें फ़ौरन वापस कर दिया जाय।"*

सन् १६६२ में उड़ीसा प्रान्त के दीवान मोहम्मद हाशिम ने कुछ नए 'करोड़ी' (लगान वसूल करने वाले कर्मचारी) इसलिए नियुक्त किए क्योंकि इन लोगों ने पुराने करोड़ियों की अपेक्षा अपने इलाक़ों से अधिक लगान वसूल करके भेजने का वादा किया। तुरन्त समाचार मिलते ही मोहम्मद हाशिम को बरख़ास्त कर दिया गया।

* India Office Library, *Persian Manuscript*, No. 370, in leaf facing folio 68.

'अबवाब' की वसूली के विरुद्ध आज्ञाएँ फ़ीरोज़शाह तुग़लक (सन् १३७५) के समय से सम्राट अकबर (१५६०) के समय तक और उसके बाद लगभग प्रत्येक मुग़ल सम्राट के समय में बराबर जारी होती रहती थीं।

मुग़ल सम्राट अपनी विशाल प्रजा के सुख दुख से अपरिचित भी न रहते थे। मुग़ल समय में 'वाक़े नवीसों', 'सवाने नवीसों', 'अख़बार नवीसों', 'खुफ़िया नवीसों' इत्यादि का एक ज़बरदस्त मोहकमा था, जिसके ज़रिए साम्राज्य के कोने कोने की ख़बरें दिल्ली सम्राट के कानों तक पहुँचती रहती थीं।

निस्सन्देह किसानों के सुख और उनकी समृद्धि का भारत के लिखे हुए इतिहास में किसी समय भी इतना अच्छा और व्यवस्थित प्रबन्ध न था जितना मुग़ल सम्राटों के समय में। यही कारण है कि उस समय के अनेक यूरोपियन तथा अन्य यात्री भारतीय ग्रामों की समृद्धि की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते हैं और अनेक लिखते हैं कि संसार के अन्य किसी भी देश में उस समय किसानों की अवस्था इतनी अच्छी न थी।*

मुग़ल साम्राज्य के अन्दर प्रत्येक शहर में अन्य कर्मचारियों के अतिरिक्त एक कोतवाल होता था, जिसके कर्तव्यों में से एक कर्तव्य यह भी होता था—

> "कोतवाल का यह काम है कि शराब का खिंचना बिलकुल बन्द कर दे। वह इसके लिए ज़िम्मेवार होता है कि शहर में कोई वेश्या न रहे × × ×"†

यह बयान एक विद्वान् यूरोपियन यात्री का है, जिसने औरङ्गज़ेब के

* e. g. *Bengal in 1756-57*, by S. C. Hill, vol. i.
† Manucci, vol. ii, pp. 420, 421

समय में स्वयं मुग़ल साम्राज्य की अवस्था को देखा था। प्रत्येक कोतवाल की सनद में यह लिखा होता था कि तुम्हारी यह ज़िम्मेदारी है कि तुम्हारे शहर में कोई चोरी न होने पाए, शहर के लोग सुरक्षित रहें, और अमन के साथ अपने व्यापार आदिक कर सकें।

प्रत्येक इलाक़े के लिए एक 'मुहतसिब' होता था, जिसका ख़ास काम यह होता था कि शहर की हर गली में जाकर शराब बनने और बिकने के स्थानों, जुआख़ानों आदिक को ज़बरदस्ती बन्द कर दे। सम्भवतः हिन्दू फ़क़ीरों की प्रथा का आदर करते हुए सूखे मादक द्रव्यों जैसे गाँजा, भाँग इत्यादि की इतनी कड़ी मनाही न थी। मुहतसिब की हिदायतों में लिखा होता था कि, "शहरों के अन्दर शराब इत्यादि मादक द्रव्यों के बिकने की इजाज़त न दो और न 'तवायफ़ों' को शहरों के अन्दर रहने दो।"*

इतिहास-लेखक मोरलैण्ड लिखता है कि सम्राट अकबर ने साम्राज्य भर के शहर-कोतवालों को यह आज्ञा दे दी थी कि बिना किसी के घर में ज़बरदस्ती घुसे, शराब का बनना जहाँ तक सम्भव हो, बन्द करा दिया जाय, इसके बाद सम्राट जहाँगीर ने शराब का बनाना क़ानूनन् बन्द कर दिया, किन्तु शाहजहाँ के समय में इस आज्ञा का बहुत अधिक कड़ाई के साथ पालन कराया गया।† औरङ्गज़ेब के समय में भी यह कड़ाई जारी रही। किन्तु बाद के निर्बल सम्राटों के समय में इस शाही आज्ञा का यथोचित पालन न हो सका।

अब हम अत्यन्त संक्षेप में मुग़ल समय के न्यायशासन को वर्णन

* *Mughal Administration*, by Jadunath Sarkar, p. 41.
† *India at the Death of Akbar*, by Moreland, p. 159.

करना चाहते हैं। अत्यन्त प्राचीन काल से भारत के प्रत्येक ग्राम के अन्दर एक ग्राम पञ्चायत होती थी जिसके पञ्चों का चुनना सर्वथा ग्रामनिवासियों के हाथों में होता था। इस ग्राम पञ्चायत को न केवल अपने ग्राम के म्युनिसिपल अधिकार ही प्राप्त होते थे, वरन् ग्राम वालों की जान माल की रक्षा और आस पास की सड़कों पर यात्रियों और व्यापारियों की हिफ़ाज़त का काम भी इन्हीं के सुपुर्द होता था। प्रत्येक पञ्चायत के मातहत चौकीदार होते थे, जो पञ्चायत से वेतन पाते थे और जिन पर राज्य को किसी प्रकार का अधिकार न होता था। अपने यहाँ के दीवानी और फ़ौजदारी के मुक़दमों को तय करने और अपराधियों को दण्ड देने का भी इस पञ्चायत को अधिकार होता था। यह पञ्चायत ही ग्राम के बालकों और बालिकाओं की शिक्षा का प्रबन्ध करती थी, जिसका अधिक ज़िक्र हमने इस पुस्तक में एक दूसरे स्थान पर किया है। अधिकांश नगरों और विशेष कर छोटे नगरों में भी इसी प्रकार की पञ्चायतें होती थीं जिन्हें इसी प्रकार के विस्तृत अधिकार प्राप्त होते थे।

मुग़ल सम्राटों ने इन सहस्रों भारतीय ग्राम पञ्चायतों के प्राचीन अधिकारों में किसी प्रकार का भी हस्तक्षेप नहीं किया, वरन् उन्हें ज्यों का त्यों क़ायम रक्खा, जिसका मतलब यह है कि अङ्गरेज़ों के आने से पहले सिवाय राज्य का लगान अदा कर देने के भारतीय ग्रामवासियों को स्वराज्य के अन्य लगभग समस्त अधिकार प्राप्त थे।

इन पञ्चायतों को साधारण पुलिस के काम में मदद देने के लिए हर ज़िले में एक फ़ौजदार होता था, जिसका काम केवल बड़ी बड़ी डकैतियों, उपद्रवों आदिक में पञ्चायतों की मदद करना होता था। न्यायशासन में पञ्चायतों की सहायता और उनके काम को पूरा करने के लिए हर इलाक़े

में फ़ौजदारी के मुक़दमों को तै करने के लिए एक 'क़ाज़ी' और दीवानी के मुक़दमों के लिए एक 'सद्र' होता था। साम्राज्य भर के क़ाज़ियों का अफ़सर एक 'काज़िउलक़ुज़्ज़ात' होता था, जो साम्राज्य की राजधानी में रहता था। इसी प्रकार तमाम सद्रों के ऊपर एक 'सद्रुस्सुदूर' होता था। प्रत्येक नए क़ाज़ी की नियुक्ति के समय राज्य की ओर से उसे निम्न लिखित हिदायत की जाती थी—

"सदा इन्साफ़ करना, ईमानदार रहना और किसी की रू रियायत न करना। मुक़दमे या तो अदालत की जगह और या सरकारी दफ़्तर में हमेशा दोनों फ़रीक़ की मौजूदगी में करना।

"जिस जगह तुम्हारी नियुक्ति हो वहाँ के किसी आदमी से किसी तरह का उपहार स्वीकार न करना, और न किसी के जलसे इत्यादि में जाना।

"अपने फ़ैसले, दस्तावेज़ इत्यादि बड़ी सावधानी से लिखना ताकि कोई विद्वान उनमें नुक़्स निकाल कर तुम्हें शरमिन्दा न करे।

"दरिद्रता (फ़क्र) को अपने लिए गौरव (फ़ख़्र) जानना।"*

केवल सुचरित्र तथा विद्वान लोगों को ही क़ाज़ी और सद्र की पदवियों पर नियुक्त किया जाता था। इतिहास लेखक फ्रेडरिक आगस्टस इस बात की गवाही देता है कि भारतीय मुग़ल साम्राज्य के "अधिकांश मुलाज़िम और कर्मचारी ईमानदार और योग्य होते थे।"†

* *Mughal Administration*, by Jadunath Sarkar, p. 37.

† ". . . the mass of the employees were both scrupulous and capable."—*The Emperor Akbar, A Contribution Towards the*

मुक़दमों का फ़ैसला करने में देश के प्राचीन रस्मोरिवाज और धर्म-शास्त्रों का पूरा ख़याल रखा जाता था। सम्राट अकबर ने अनेक योग्य ब्राह्मणों को न्यायाधीश के अधिकार प्रदान किए और आज्ञा दे दी कि न्यायालयों में मनुस्मृति तथा अन्य हिन्दू धर्मशास्त्रों की आज्ञाओं का पालन किया जाय। प्रत्येक सम्राट सप्ताह में कम से कम एक दिन (प्रायः मङ्गल या बुध का दिन) ख़ास ख़ास मुक़दमों और अपीलों को सुनने में व्यय करता था। प्रजा में प्रत्येक छोटे से छोटे मनुष्य को अपनी शिकायत लेकर सम्राट तक पहुँचने का अधिकार होता था। सम्राट जहाँगीर ने, जो अपने इन्साफ़ के लिए प्रसिद्ध था, आगरे में अपने क़िले की दीवार के ऊपर से एक सोने की ज़न्जीर लटका रक्खी थी जो ज़मीन तक लटकती थी। किसी भी छोटे से छोटे फ़रियादी को उस ज़न्जीर को खींचने और अर्ज़दास्त उसमें बाँध देने का अधिकार होता था और तुरन्त उसे सम्राट के सामने लाकर पेश कर दिया जाता था।

धार्मिक उदारता के सम्बन्ध में अकेले औरङ्गज़ेब को छोड़ कर भारतीय मुग़ल सम्राटों का समय वास्तव में आदर्श समय था। बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और उनके अधिकांश उत्तराधिकारियों के समय में हिन्दू और मुसलमानों के साथ राज्य की ओर से एक समान व्यवहार किया जाता था, दोनों धर्मों को एक समान आदर की दृष्टि से देखा जाता था और किसी के साथ किसी प्रकार का भी पक्षपात न किया जाता था। अङ्गरेज़ एलची सर टॉमस रो ने सन् १६१६ ईसवी में सम्राट

History of India in the 16th Century, by Frederick Augustus, Count of Noer, translated by Annette S. Beveridge, 1890, p. 293.

जहाँगीर के शासन काल में उस समय की अवस्था को देखते हुए लि[खा]
था—

"तैमूरलङ्ग की सन्तान अपने साथ मोहम्मद का मज़हब भारत में लाई, किन्तु उन्होंने अपनी विजय के बल किसी को ज़बरदस्ती उस मज़हब में शामिल नहीं किया, और धर्म के मामले में सब को आज़ाद छोड़ दिया।"*

औरङ्गज़ेब और उसके उत्तराधिकारियों के समय की (१६८८—१७२[३]) बङ्गाल की अवस्था को वर्णन करते हुए एक दूसरा अङ्गरेज़ कप्तान अलेक्[ज़े]एडर हैमिल्टन लिखता है—

"यहाँ पर एक सौ से ऊपर मत मतान्तरों के लोग हैं, किन्तु वे अपने उसूलों अथवा उपासना विधियों के विषय में कभी नहीं लड़ते-झगड़ते हर शख़्स को आज़ादी है कि अपने तरीक़े के अनुसार ईश्वर की सेवा और पूजा करे। मज़हब के नाम पर दूसरे को किसी प्रकार की यातनाएँ देने का यहाँ कोई नाम भी नहीं जानता × × ×

"बङ्गाल के शासकों का मज़हब इसलाम है, किन्तु हर मुसलमान पीछे वहाँ सौ से ऊपर हिन्दू हैं और। तमाम सरकारी नौकरियाँ और ओहदे बिना किसी भेद भाव के दोनों मज़हब के लोगों को दिए जाते हैं।"*

* "Tamerlain's offspring brought in the knowledge of Mohammad, but imposed it on none by the law of conquest, leaving consciences at liberty."—*A General Collection of the Best and Most Interesting Voyages etc.*, edited by John Pinkerton, London 1811, vol viii. p. 46.

† "There are above one hundred different sects . . . but

डॉक्टर बेनीप्रसाद ने अपनी पुस्तक जहाँगीर के इतिहास में लिखा है कि भारतीय मुग़ल सम्राटों के दरबारों में हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के मुख्य मुख्य त्योहार एक सामान उत्साह और वैभव के साथ मनाए जाते थे। दशहरे के दिन सम्राट के हाथी और घोड़े सज धज कर जुलूस में निकाले जाते थे। रक्षाबन्धन के दिन ब्राह्मण लोग और हिन्दू सामन्त सरदार सम्राट की कलाई में आकर राखी बाँधते थे, दीपावली की रात को महल में रोशनी होती थी और जुआ तक खिलता था। शिवरात्रि को महलों के अन्दर ख़ास रौनक़ दिखाई देती थी। ठीक इसी प्रकार मुसलमानों की ईद और शबेबरात भी उतने ही उत्साह से साथ मनाए जाते थे।* प्रत्येक सम्राट की सालगिरह वर्ष में दो बार मनाई जाती थी, एक मुसलमान चाँद की तारीख़ों के अनुसार और दूसरे हिन्दू तिथियों के अनुसार।

निस्सन्देह धार्मिक उदारता ही भारतीय मुग़ल साम्राज्य की आधार शिला थी। सम्राट बाबर ने अपने बेटे हुमायूँ के नाम अपने अन्तिम

---

they never have any hot disputes about their doctrine or way of worship. Every one is free to serve and worship God in their own way, and persecutions for religions, sake are not known among them."

Further, " The religion of Bengal is established, is Mohammadan, yet for one Mommadan there are above one hundred pagans and the public offices and posts are filled promiscuously with men of both persuations."—Ibid, pp. 321, 415.

* *History of Jehangir*, by Beniprasad, M. A., D. Sc., Ph. D., p. 100.

आदेश में इस धार्मिक उदारता की नींव रक्खी। हुमायूँ ने ईमानदारी के साथ उस पर अमल किया। सम्राट अकबर ने इस उदारता को उस अलौकिक पराकाष्ठा तक पहुँचाया जो संसार के धार्मिक इतिहास में सदा के लिए एक सीमा चिन्ह रहेगी। जहाँगीर और शाहजहाँ ने आश्चर्यजनक सफलता के साथ उसका पालन किया।

हमें स्मरण रखना चाहिए कि यह ठीक वह समय था जब कि यूरोप के अन्दर धर्म के नाम पर अत्याचार और ज़बरदस्तियाँ एक सामान्य घटना थीं। आयरलैण्ड में उस समय न किसी रोमन कैथलिक को अपने पूर्वजों की जागीर मिल सकती थी, न कोई कैथलिक फ़ौज का अफ़सर हो सकता था और न जजी की बेञ्च पर बैठ सकता था। फ़्रान्स में ह्यूगेनाट सम्प्रदाय के एक एक आदमी को देश से समुद्र पार निर्वासित कर दिया गया था। स्वीडन में सिवाय लूथर की सम्प्रदाय के शेष किसी ईसाई को जूरी का मेम्बर होने का अधिकार न था। स्पेन में प्रॉटेस्टेण्ट सम्प्रदाय के लोगों के मरने के समय किसी पादरी को उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करने की इजाज़त न थी। इतना ही नहीं, वरन् यूरोप के एक एक देश में उस समय 'ऐक्टस् ऑफ़ यूनिफ़ॉर्मिटी' पास हो रहे थे जिनका अर्थ यह था कि सिवाय ईसाई मत की उस सम्प्रदाय विशेष के मानने वालों के, जिस सम्प्रदाय के कि वहाँ के शासक होते थे, किसी दूसरी सम्प्रदाय के लोग देश में सुख चैन से रहने न पाएँ। इन्हीं अत्याचारी क़ानूनों के फलरूप यूरोप के प्रत्येक देश में सहस्त्रों कैथलिक, सहस्त्रों एङ्गलिकन, सहस्त्रों लूथरेन, सहस्त्रों प्युरिटेन, सहस्त्रों प्रेसबिटेरियन, सहस्त्रों लेवेलर, सहस्त्रों एनेबेप्टिस्ट, और सहस्त्रों कवेनेण्टर ज़िन्दा जला दिए गए, तलवार के घाट उतारे गए, अथवा यातनाएँ दे देकर मार डाले गए।

उस समय के भारत तथा यूरोप की तुलना करते हुए अङ्गरेज़ इतिहास लेखक टॉरेन्स लिखता है—

"दिल्ली के शुरू के सम्राटों के दिनों में, सत्रहवीं सदी के मध्य तक, सब धर्मों के लोगों के साथ पूर्ण उदारता का व्यवहार किया जाता था। ठीक उसी समय यूरोपनिवासी धर्म के नाम पर अत्याचारों द्वारा अपने महाद्वीप को एक विशाल श्मशान भूमि बनाने के ज़ोरदार प्रयत्नों में लगे हुए थे, अपने अपने धर्म की रक्षा के लिए लोग यूरोप के विविध देशों से भाग भागकर अमरीका में जा जाकर बस रहे थे। क्या आज उन्हीं लोगों के वंशज, उनकी क़बरें बनाने वाले भारत पर दोषारोपण करने का साहस कर सकते हैं? क्या वे धृष्टता के साथ इस बात का दम भर कर इतिहास को कलङ्कित कर सकते हैं कि उस समय उनकी सभ्यता भारत की सभ्यता से अधिक सच्ची थी? यदि उन्हीं के लिखे इतिहास पर विश्वास करके उन्हीं की गवाही ली जाय, और जो कट्टर ईसाई उस तमाम समय में धर्म के नाम पर फाँसियाँ खड़ी कर रहे थे, बेड़ियाँ कस रहे थे और दूसरी सम्प्रदाय के ईसाइयों को दण्ड देने के लिए 'ऐक्टस ऑफ़ यूनिफ़ार्मिटी' पास कर रहे थे, जिनकी उँगलियों से कवेनेण्टर सम्प्रदाय के लोगों का रक्त, कैथलिक लोगों का रक्त और प्यूरिटन लोगों का रक्त लगातार टपक रहा था, यदि उन्हीं को बुला कर उनकी गवाही ली जाय, तो वे क्या मुँह दिखला सकेंगे?"*

---

* "During the reigns of the earlier Emperors of Delhi, to

इस पुस्तक में कई स्थान पर यह दिखलाया गया है कि मुसलमानों और विशेष कर मुग़लों के शासनकाल में राज्य की ऊँची से ऊँची पदवियाँ हिन्दुओं को मिली हुई थीं। प्रत्येक सम्राट की ओर से असंख्य हिन्दू मन्दिरों को जागीरें और माफ़ियाँ प्रदान की गईं। औरङ्गज़ेब मुतास्सिब तथा श्रदुदार था, तथापि औरङ्गज़ेब के दरबार में भी हिन्दू मन्त्री और उसकी सेना में हिन्दू सेनापति मौजूद थे। औरङ्गज़ेब की मृत्यु को आज दो सौ वर्ष से ऊपर हो चुके, किन्तु अभी तक अनेक हिन्दू मन्दिरों के पास, उदाहरण के लिए इलाहाबाद के निकट अरैल में सोमेश्वरनाथ के मन्दिर के हिन्दू पुजारियों के पास, औरङ्गज़ेब के दस्तख़ती परवाने मौजूद हैं जिनमें उन मन्दिरों को राज्य की ओर से जागीरें प्रदान की गई हैं।

सुशासन और समृद्धि की दृष्टि से मुग़ल साम्राज्य का समय भारत के इतिहास में निस्सन्देह स्वर्ण युग था। असंख्य यूरोपियन तथा एशियाई

---

the middle of the seventeenth century, complete tolerance was shown to all religions. Shall they who build the tombs of those who at that very time, were busily employed in making Europe one mighty charnel-house of persecution, and in colonising America with fugitives for conscience sake, rise up in judgment against India, or load the breath of history with the insolent pretence of having then enjoyed a truer civilization? What if they were taken at their word, and called forth with the Covenanters' blood, and the Catholic's blood, and the Puritan's blood dripping quick from the orthodox hands that all that time were building scaffolds, riveting chains, and penning penal 'Acts of Uniformity'?"—*Empire in Asia, How We Came by It. A Book of Confessions* by W. M. Torrens, M. P., Panini Office reprint, pp. 96, 97.

यात्रियों की गवाहियाँ और समकालीन ऐतिहासिक उल्लेख इस विषय में उद्धृत किए जा सकते हैं। धन धान्य, और सुख सम्पत्ति की जो रेल पेल भारत के अन्दर सम्राट शाहजहाँ के शासनकाल में देखने में आती थी वह संसार के इतिहास में शायद ही कभी किसी दूसरे देश को नसीब हुई हो।

इतिहास-लेखक मोरलैण्ड लिखता है कि विदेशी व्यापारी तथा यात्री उन दिनों इस बात को देख कर चकित रह जाते थे कि भारतीय नगरों में लोगों के माल की रक्षा का कितना सुन्दर प्रबन्ध था। अनेक यात्री इस बात की गवाही देते हैं कि अव्वल तो चोरियाँ होती ही बहुत कम थीं, और यदि किसी नगर में चोरी हो जाती थी और माल बरामद न हो पाता था तो नगर के कोतवाल को स्वयं अपने पास से माल की क़ीमत भर देनी पड़ती थी।*

हुमायूँ के दो शासनकालों के बीच में कुछ वर्षों तक शेरशाह का दिल्ली में शासन रहा। किन्तु फ्रेडरिक आगस्टस लिखता है कि "शेरशाह का चन्दरोज़ा शासन भी हिन्दोस्तान की उन्नति के लिए अहितकर साबित न हुआ, सड़कों के ऊपर आने जाने, माल के लाने ले जाने और व्यापारियों की रक्षा का उसने इतना सुन्दर प्रबन्ध कर दिया कि जितना पहले न था।†"

सम्राट जहाँगीर ने तख़्त पर बैठते ही सब से पहले जो आज्ञाएँ जारी कीं उनमें से एक यह थी कि साम्राज्य भर में सड़कों और सड़कों के ऊपर सरकारी कुओं, सरायों आदिक की मरम्मत की जाय और यात्रियों की

* *India at the Death of Akbar*, by Moreland, pp. 38, 39.
† *The Emperor Akbar, etc.*, by Frederick Augustus, p. 277

हिफ़ाज़त का पूरा प्रबन्ध किया जाय, और दूसरी यह थी कि कोई राजकर्मचारी अथवा ज़मींदार किसी कारण भी किसी किसान की ज़मीन से उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे बेदख़ल न करे,* तीसरी यह थी कि किसी व्यापारी का माल चुङ्गी इत्यादि के लिए चौकियों और सड़कों पर खोल कर न देखा जाय। जहाँगीर ने साम्राज्य भर में अनेक मुसाफ़िरख़ाने मदरसे और अस्पताल, तालाब, कुएँ और पुल बनवाए, तमाम बड़े बड़े नगरों में राज्य के ख़र्च पर हकीम तथा वैद्य नियुक्त किए, शराब और तम्बाकू का बनना और पिया जाना क़ानूनन् बन्द किया। संसार के किसी भी देश में उस समय राज्य की ओर से प्रजा की शिक्षा का बाज़ाब्ता इन्तज़ाम न था। मुग़ल सम्राटों ने इस कमी को पूरा करने के लिए साम्राज्य भर में सहस्रों विद्वान पण्डितों और मौलवियों को पाठशालाएँ और मकतब जारी रखने के लिए माफ़ियाँ और वज़ीफ़े अता किए।† अनेक अङ्गरेज़ यात्री स्वीकार करते हैं कि मुग़ल सम्राटों के उदार प्रोत्साहन के प्रताप से उस समय की भारत में शिक्षितों की संख्या आबादी के हिसाब से संसार भर में सब से अधिक थी।

उद्योग धन्धों में भारत उस समय न केवल अपनी समस्त आवश्यकताओं को ही पूरा करता था, वरन् शेष अधिकांश संसार की मण्डियों में भी अधिकतर भारत का बना हुआ माल ही दिखाई देता था। आज से लगभग सवा सौ वर्ष तक अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक भारत के बने हुए जहाज़ उस समय के इङ्गलिस्तान तथा अन्य

---

* *India at the Death of Akbar*, by Moreland, p, 46 and 129.

† *History of Jehangir*, by Beniprasad, M. A., D. Sc., Ph. D., pp. 92-94.

यूरोपियन देशों के बने हुए जहाज़ों से कहीं अधिक सुन्दर, कहीं अधिक मज़बूत और कहीं अधिक टिकाऊ होते थे।*

ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी में यूरोपियन यात्री काउण्टी लिखता है कि जितने बड़े जहाज़ भारत में बनते थे उतने यूरोप में कहीं देखने को न मिलते थे। मुग़ल साम्राज्य के शुरू के दिनों में जो अङ्गरेज़ भारत आए उन्होंने और भी अधिक बड़े बड़े सुन्दर तथा मज़बूत भारतीय जहाज़ों का हाल अपने यात्रा वृत्तान्तों में लिखा है। मुग़ल साम्राज्य के दिनों में चीन और जापान से लेकर अफ़रीका के दक्षिण तक जितने जहाज़ आते जाते थे, उनमें से अधिकांश भारत के और विशेषकर गुजरात के बने हुए होते थे। बङ्गाल से सिन्ध तक का समस्त व्यापार केवल भारतीय जहाज़ों द्वारा किया जाता था। मुसाफ़िरों के आने जाने के लिए जितने बड़े जहाज़ भारत में बनते थे उतने और कहीं न बनते थे। पूर्व में मेक्सिको (अमरीका) तक और पश्चिम में इङ्गलिस्तान तक भारत का बना हुआ माल भारतीय जहाज़ों में लद कर दूसरे देशों को जाता था। हज के लिए जाने वाले भारतीय मुसलमान भारतीय जहाज़ों ही में भारत से अरब तक आते जाते थे।†

बारबोसा लिखता है कि सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गुजरात के बने हुए रेशम के कपड़े अफ़रीका तथा पगू तक जाते थे। वारथेमा लिखता है कि उन दिनों गुजरात "समस्त ईरान, तातार, टरकी, शाम, बारबरी, अरब, ईथियोपिया (अफ़रीका) और अन्य कई देशों" को अपने यहाँ के बने हुए "रेशमी तथा सूती वस्त्र" मुहय्या करता था। उस समय के

* *Prosperous British India*, by William Digby, pp. 86-88.
† *India at the Death of Akbar*, pp. 67-71.

यात्री लिखते हैं कि स्वयं भारत के अन्दर कपड़े की खपत उस समय मामूली न थी। लगभग समस्त उच्च तथा मध्य श्रेणी के लोग रेशम पहनते थे और बड़े बड़े चोग़े पहनते थे।

विशेष कर रेशम के धन्धे ने सम्राट अकबर के समय में अपूर्व उन्नति की। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि अकबर ने स्वयं रेशम के धन्धे का परिश्रम के साथ अध्ययन किया, चीन तथा अन्य देशों से कारीगर बुला कर नौकर रक्खे और लाहौर, आगरा, फ़तहपुर, अहमदाबाद इत्यादि में राज्य के ख़र्च पर बड़े बड़े कारख़ाने खुलवाए। अकबर के समय में जब कि गेहूँ आज-कल के वज़न के हिसाब से एक रुपए का एक मन बारह सेर आता था, चार आने में एक सुन्दर ख़ालिस ऊन का कम्बल ख़रीदा जा सकता था। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि लाहौर के अन्दर उस समय शाल बनाने के एक हज़ार सरकारी कारख़ाने थे, काशमीर तथा अन्य स्थानों में अलग रहे। आगरा और लाहौर में दरियों और क़ालीनों के अनेक सरकारी कार-ख़ाने थे।

सौ सवा सौ वर्ष पूर्व तक के ईष्ट इण्डिया कम्पनी के प्रतिनिधि बार-बार अपने पत्रों में लिख कर भेजते थे कि इङ्गलिस्तान के बने हुए कपड़ों की भारतीय कपड़ों के मुक़ाबले में भारत में कोई खपत नहीं हो सकती।

पुर्तगाली यात्री पिरार्ड लिखता है कि सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बङ्गाल के अन्दर जो अत्यन्त घना बसा हुआ था सूती वस्त्रों का धन्धा घर घर फैला हुआ था और "केप ऑफ़ गुडहोप (अफ़रीका) से लेकर चीन तक प्रत्येक स्त्री और पुरुष सिर से पाँव तक कपड़े पहनता है और ये सब कपड़े भारतीय करघों के बने हुए होते थे।" अरब के सौदागर मिश्र में और यूरोप में भारत के बने हुए कपड़े ले जाकर

बेचते थे। लङ्का, बरमा, मलाका, चीन, जापान, फ़िलिप्पाइन और मेक्सिको में उन दिनों भारत के कपड़ों की बेहद खपत थी। इस पुस्तक के अन्दर 'भारतीय उद्योग धन्धों का नाश' शीर्षक अध्याय में हमने अङ्गरेज़ों के आने से पूर्व की भारतीय उद्योग धन्धों की अवस्था को बयान किया है।

समकालीन इतिहास तथा उस समय के यूरोपियन तथा अन्य यात्रियों के वृत्तान्तों से यह भी पता चलता है कि मुग़ल समय का भारत न केवल उस समय के यूरोपियन देशों से ही कहीं अधिक घना बसा हुआ था, वरन् इस समय के भारत से भी उस समय के भारत की आबादी कम से कम ख़ास ख़ास प्रान्तों में कहीं अधिक घनी थी। कलकत्ता, बम्बई और कराची का उस समय निशान न था। किन्तु आगरा, क़न्नौज, विजयनगर, गोलकुण्डा, बीजापुर, मुलतान, लाहौर, दिल्ली, इलाहाबाद, पटना, उज्जैन, अहमदाबाद, अजमेर और सूरत अत्यन्त घने बसे हुए सुन्दर और बड़े बड़े नगर थे, जिनमें से प्रत्येक उस समय के लन्दन अथवा पेरिस से कई गुना बड़ा था। यूरोप में कहीं भी उस समय आजकल के समान मर्दुमशुमारी की विधिवत् संस्था न थी। तथापि भारत में जगह जगह घरों के हिसाब से आबादी की गणना की जाती थी। फ़ान्स की आबादी मोरलैण्ड के अनुसार उस समय इस समय से आधी थी, इङ्गलिस्तान की आबादी इस समय का आठवाँ हिस्सा थी। विजयनगर के विषय में कॉण्टी, अबुलरज़ाक़, पेज़ तथा अन्य यात्री लिखते हैं कि वहाँ की आबादी उस समय "इतनी अधिक थी कि जिस पर विश्वास करना कठिन है।" विजयनगर के हिन्दू राजाओं के पास बीस लाख फ़ौज तैयार रहती थी। इतनी ही घनी आबादी दखन, गुजरात, पञ्जाब तथा शेष उत्तरीय भारत की बताई जाती

है। आगरे शहर से लिखा है कि किसी भी समय दो लाख सशस्त्र यो[illegible] जमा किए जा सकते थे। बङ्गाल की राजधानी गौड़ के मकानों की सं[illegible] बारह लाख थी, जिसका अर्थ यह है कि उस समय के गौड़ की आबा[illegible] इस समय के लन्दन की आबादी से अधिक कम न थी। सूरत से लाहौर त[illegible] लाहौर से आगरे तक और आगरे से गौड़ तक जिन घने बसे हुए ग्रा[illegible] तथा नगरों से होकर यूरोपियन यात्रियों को जाना पड़ता था उन्हें देख [illegible] वे आश्चर्य चकित रह जाते थे। निस्सन्देह आबादी और ख़ुशहाली दो[illegible] की दृष्टि से मुग़ल समय का भारत केवल एक चीन को छोड़ कर संसा[illegible] के अन्य समस्त देशों से कहीं अधिक बढ़ा चढ़ा था।

मुग़लों तथा उन अन्य मुसलमानों के ऊपर भी जो बाहर से आक[illegible] भारत में बसे भारतीय जीवन, भारतीय रहन सहन, तथा भारतीय विचारों की छाप लगे बग़ैर न रह सकी। यहाँ तक कि भारत के मुसलमान अन्य देशों के मुसलमानों से पृथक सर्वथा भारतीय मुसलमान बन गए। भारत-वासियों से मुग़लों ने पान खाना सीखा। हिन्दोस्तानी भाषा को, जिसे वे पहले ज़बानेहिन्दवी कहते थे, उन्होंने अपनी भाषा बनाया। बाबर और उसके साथी आरम्भ में ईरानी ज़बान बोलते थे। थोड़े ही दिनों में उन्होंने अपने घरों में, दफ़्तरों में और दरबारों में हिन्दोस्तानी बोलनी शुरू की, हिन्दोस्तानी उनकी मातृभाषा बन गई, किन्तु उनका साहित्य तथा सरकारी पत्र व्यवहार फ़ारसी में जारी रहा। सन् १७५० के लगभग उन्होंने साहित्य के लिए भी हिन्दोस्तानी ही को अपनाना शुरू कर दिया। इस हिन्दोस्तानी में फ़ारसी तथा तुरकी के अधिक शब्द मिल जाने और उसके शाही दरबार में मजने से ही मुग़ल शासन के दिनों में उर्दू की नींव रखी गई। अन्तिम सम्राट बहादुरशाह उर्दू का सुन्दर कवि था।

अन्य भारतीय भाषाओं ने भी मुग़ल समय में अपूर्व उन्नति की। जादुनाथ सरकार लिखता है—

"अकबर ही के अधीन हिन्दी में तुलसीदास और बङ्गला में वैष्णव लेखकों के प्रताप एक ज़बरदस्त हिन्दू साहित्य देशी भाषाओं में पैदा हुआ। सम्राट अकबर ही ने एक सच्चे राष्ट्रीय दरबार को जन्म दिया और उसके अधीन भारतीय मस्तिष्क का बहुत बड़ा उत्थान हुआ।"*

मुग़ल साम्राज्य से पहले भी बङ्गाल तथा दक्षिण के मुसलमान शासकों के अधीन वहाँ के देशी साहित्य ने अपूर्व उन्नति की थी। दिनेश-चन्द्र सेन, बङ्गला भाषा और बङ्गला साहित्य के इतिहास पर जिसका ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है, लिखता है—

"बङ्गला भाषा को साहित्य के पद तक पहुँचाने में कई प्रभावों ने काम किया है, जिनमें निस्सन्देह एक सब से अधिक महत्व-पूर्ण प्रभाव मुसलमानों का बङ्गाल विजय करना था। यदि हिन्दू राजा स्वाधीन बने रहते तो बङ्गला भाषा को राजाओं के दरबारों तक पहुँचने का मुशकिल से ही मौक़ा मिल सकता था।"†

बङ्गाल के मुसलमान शासकों ने विद्वान पण्डितों को नियुक्त करके रामायण और महाभारत का संस्कृत से बङ्गला में अनुवाद कराया। बङ्गाल के मुसलमान शासक नसीरशाह ने चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में महाभारत का बङ्गला में अनुवाद कराया। मैथिल कवि विद्यापति ने इस

* *Mughal Administration*, p. 146.

† Dinesh Channdra Sen *History of Bengali Language and Lurearture*, p 10.

विषय में नसीरशाह और सुलतान ग़यासुद्दीन की ख़ूब प्रशंसा की है। राजा कंस के उत्तराधिकारी ने इसलाम मत स्वीकार किया। कंस के दरबार में मुसलमानों का प्रभाव बहुत अधिक था। रामायण के अनुवादक कृत्तिवास को उस दरबार से पूरी सहायता मिलती थी। सम्राट हुसेनशाह ने मलधर वसु द्वारा भागवत का बङ्गला में अनुवाद कराया और इसके इनाम में मलधर वसु को गुनराज ख़ाँ का ख़िताब दिया। हुसेनशाह के सेनापति परङ्गल ख़ाँ ने महाभारत का एक दूसरा बङ्गला अनुवाद कवीन्द्र परमेश्वर से कराया। परङ्गल ख़ाँ के बेटे चट्टग्राम के शासक छोटे ख़ाँ ने श्रीकरण नन्दी से महाभारत के अश्वमेध पर्व का अनुवाद कराया। एक मुसलमान अलाउल ने मलिक मोहम्मद जायसी की हिन्दी पुस्तक पद्मावत का बङ्गला में अनुवाद किया। अलाउल ने कुछ फ़ारसी किताबों का भी बङ्गला में अनुवाद किया। दिनेशचन्द्र सेन लिखता है—

"इस तरह की मिसालें बेहद मिलती हैं जिनमें कि मुसलमान सम्राटों और सरदारों ने संस्कृत और फ़ारसी के ग्रन्थों का अपनी ओर से बङ्गला में अनुवाद कराया, और दूसरों को इस तरह के कामों में मदद दी × × × जब कि बङ्गाल के बलवान मुसलमान बादशाहों ने देश की भाषा को अपने दरबारों में यह उच्च स्थान प्रदान किया तो क़ुदरती तौर पर हिन्दू राजाओं ने उनका अनुसरण किया × × × इस प्रकार हिन्दू राजाओं के दरबारों में बङ्गाली कवियों की नियुक्ति का रिवाज मुसलमान बादशाहों की देखा देखी शुरू हुआ।"*

---

* *History of Bengali Language and Literature*, by Dinesh Chandra Sen, pp. 13, 14.

बङ्गाल के मुसलमान बादशाहों के समान दक्षिण के बहमनी बादशाहों ने भी वहाँ के साहित्य और कलाकौशल को ख़ूब उन्नति दी। आदिलशाही बादशाहों के दफ़्तरों में मराठी भाषा का उपयोग किया जाता था और मराठों को माल तथा सेना विभाग के उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता था। क़ुतुबशाह स्वयं दक्षिणी भाषा का सुन्दर कवि था और साहित्य का बड़ा प्रेमी था। मराठी भाषा में हिन्दी और फ़ारसी दोनों भाषाओं के शब्दों ने ख़ूब प्रवेश किया।

हिन्दी, उर्दू, बङ्गला और मराठी के अतिरिक्त और उन्हीं के समान पञ्जाबी और सिन्धी भाषाओं तथा उनके साहित्य ने भी मुसलमानों के समय में भारत में अपूर्व उन्नति की। वास्तव में वह समय प्राचीन संस्कृत के स्थान पर देशी भाषाओं के उत्थान का समय था। हिन्दुओं और मुसलमानों का जीवन इस विषय में इतना गुथा हुआ था कि मिश्र-बन्धुओं ने अपनी पुस्तक में अनेक मुसलमान हिन्दी कवियों की और दिल्ली के मुन्शी श्रीराम ने अपनी पुस्तक में उर्दू के अनेक हिन्दू कवियों की सूची दी है। हिन्दी, मराठी, बङ्गला इत्यादि समस्त भारतीय भाषाओं पर मुसलिम शासन, फ़ारसी तथा तुरकी शब्दों और मोहावरों का अभी तक अमिट प्रभाव मौजूद है।

विज्ञान में भी वैद्यक, गणित और ज्योतिष ने आरम्भ के दिनों में अरब विचारों और अरब पुस्तकों द्वारा यूनानी वैज्ञानिक विचारों से अपने ज्ञान-कोष को ख़ासी उन्नति दी। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त अथवा अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में महाराजा जयसिंह ने हिन्दू पञ्चाङ्ग का सुधार करने के लिए जयपुर, मथुरा, देहली और बनारस में मान मन्दिर बनवाए और अरबी ग्रन्थ 'आलमजस्ती' का संस्कृत में अनुवाद कराया। हिन्दू

वैद्यक ने अनेक नई चीज़ें, विशेष कर तेज़ाबों और कीमिया के क्षेत्र में अरबों से सीखीं। कई तरह के नए धन्धे मसलन काग़ज़ बनाना, कलई करना, चीनी मिट्टी के बरतन और कई तरह के धातों के काम भारत में मुसलमानों के समय से प्रचलित हुए। इसी प्रकार वस्त्रों, भोजन, सङ्गीत, रहन सहन इत्यादि में भी मुसलमानों के समय में भारतीय जीवन में गहरे और बहुमूल्य परिवर्त्तन हुए।

वास्तव में, जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, भारत के अन्दर उस समय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक नई सङ्कलनात्मक सभ्यता का विकास हो रहा था, जो न हिन्दू थी न मुसलमान, न वैदिक थी न बौद्ध, वरन् जो शुद्ध भारतीय थी, इन समस्त पृथक पृथक सभ्यताओं के मेल से बनी थी और जो प्राचीन भारतीय सभ्यताओं अथवा अरब और ईरान की विदेशी सभ्यताओं दोनों के सर्वोच्च गुण लिए हुए, उन सब से ऊँची थी। हिन्दू अपने प्राचीन जातपाँत के भेदों, अनेक तरह के देवी देवताओं की पूजा, आडम्बरयुक्त कर्मकाण्ड, पुरोहितों के प्रभुत्व, असंख्य अन्धविश्वासों और सदियों की सङ्कीर्णता को तिलाञ्जलि दे, मानव समता, एक-ईश्वरवाद और प्रेम तथा सदाचार के महत्व की ओर बढ़ते हुए दिखाई दे रहे थे। भारत का इसलाम अरब के प्रारम्भिक इसलाम से भिन्न नई ही सुन्दर वस्तु बन रहा था और मुसलमान सूफ़ी हिन्दुओं के अनेक उच्च दार्शनिक सिद्धान्तों तथा योग प्राणायाम जैसी विधियों को अपनाकर उन्हें इसलाम का एक अङ्ग बना रहे थे। कबीर, दादू, नानक और बाबा फ़रीद जैसे सैकड़ों हिन्दू तथा मुसलमान फ़क़ीर महात्मा पृथक पृथक धर्मों और सम्प्रदायों की कृत्रिम तथा हानिकर दीवारों को तोड़ कर मनुष्य मात्र को प्रेम तथा एक सार्वजनिक उच्चतम सच्चे मानव धर्म का उपदेश दे रहे थे।

शिल्प, विज्ञान, कला-कौशल, साहित्य और सामाजिक रहन सहन में नए तथा उच्चतर आदर्शों का प्रादुर्भाव हो रहा था। भारत की विविध प्रान्तीय भाषाएँ पहली बार अपने अन्दर उच्च तथा स्फूर्तिदायक साहित्य को जन्म दे रही थीं। समस्त देश सुख चैन और खुशहाली की ओर बढ़ रहा था। एक देश और एक राष्ट्र के भाव मानव प्रेम के रँग में रङ्ग कर समस्त भारत को एक समान उच्चतर तथा पवित्रतर जीवन की ओर ले जा रहे थे।

लगातार कई सौ वर्ष से बढ़ते हुए और लहलहाते हुए इस राष्ट्रीय वृक्ष का सब से सुन्दर, सब से महान और सब से गौरवान्वित पुष्प सोलहवीं शताब्दी के मध्य में सुप्रसिद्ध सम्राट अकबर के रूप में आकर खिला। प्रसिद्ध अङ्गरेज़ विद्वान एच० जी० वेल्स सम्राट अकबर के विषय में लिखता है—

"इस तरह के हर पक्षपात से शून्य—जो समाज के टुकड़े टुकड़े करके मतभेद पैदा करते हैं, दूसरे धर्मों के लोगों की ओर उदार, हिन्दू अथवा द्रविड़, समस्त जातियों के लोगों की ओर समदर्शी, वह स्पष्ट एक इस तरह का मनुष्य था जो अपने साम्राज्य के अन्तर्गत परस्पर विरोधी जातियों और श्रेणियों को एक प्रबल, संयुक्त तथा समृद्ध राष्ट्र बना देने के लिए पैदा हुआ था।"*

* "Free from all those prejudices which separate society and create dissensions, tolerant to men of other beliefs, impartial to men of other races, whether Hindoo or Dravidian, he was a man obviously marked out to weld the conflicting clements of his kingdom into a strong and prosperous whole."—*The Outline of History*, by H. G. Wells, London, p. 455.

एक दूसरे स्थान पर एच०जी० वेल्स लिखता है—

"एक सच्चे नीतिज्ञ के समान उसमें सत्य-सङ्कलन की स्वाभाविक प्रवृत्ति मौजूद थी। उसने निश्चय किया कि मेरा साम्राज्य न मुसलिम होगा न मुग़ल, न राजपूत होगा न आर्य, न द्रविड़ होगा न हिन्दू, न उच्च जातियों का होगा न नीच जातियों का, मेरा साम्राज्य भारतीय साम्राज्य होगा।"*

निस्सन्देह अकबर केवल उन राष्ट्रीय लहरों का मूर्तिमान फल था जो अकबर के सैकड़ों वर्ष पूर्व से भारत में चल रही थीं और जो अकबर के बाद तक भी अपना काम करती रहीं। धार्मिक विषय में अकबर ने कबीर के ज्वलन्त उपदेशों से शिक्षा और प्रोत्साहन ग्रहण किया। सम्राट हर्ष अकबर से कई सौ वर्ष पहले प्रयाग में शिव, बुद्ध, तथा सूर्य तीनों के मन्दिरों में जाकर बारी बारी पूजा किया करता था। बङ्गाल में सम्राट हुसेनशाह द्वारा 'सत्यपीर' की पूजा का प्रचार जिसे सहस्रों हिन्दू और मुसलमान एक समान मानते थे, अकबर के धार्मिक विचारों का एक प्रारम्भिक रूप था। तथापि अकबर का व्यक्तित्व और उसका लक्ष्य दोनों निराले तथा अत्यन्त महान थे।

धार्मिक क्षेत्र में अपने 'अल्लाह उपनिषद्' और 'दीने इलाही' द्वारा उसने एक नए सरल सार्वजनिक धर्म की नींव रखने का प्रयत्न किया। सामाजिक जीवन में उसने सहस्रों वर्षों की उस पुरानी प्रथा को, जिसके अनु

* "His instinct was the true statesman's instinct for synthesis. His Empire was to be neither a Moslem nor a Mughal one, nor was it to be Rajput or Ariyan or Dravidian, or Hindoo or high or low caste, it was to be Indian."—Ibid, p. 454.

सार प्रत्येक विजेता अपने युद्ध के क़ैदियों को ग़ुलाम बना लिया करता था, सन् १५७३ में क़ानूनन् बन्द कर दिया। बलात् वैधव्य, बालविवाह, बहुविवाह, और सती की क्रूर प्रथा को उसने यथाशक्ति बन्द करने का प्रयत्न किया। किन्तु उसने अपने किसी सुधार को भी तलवार के ज़ोर से चलाने की चेष्टा नहीं की। फ़्रेडरिक आगस्टस लिखता है कि अकबर प्रति दिन ग़रीबों में जितना भोजन वस्त्र इत्यादि वितरण किया करता था और अपनी तीर्थ यात्राओं में जितना दान दिया करता था उसमें साम्राज्य की आय का एक ख़ासा हिस्सा ख़र्च हो जाया करता था। स्त्री जाति की स्वतन्त्रता का वह सच्चा पक्षपाती था। उसके हिन्दू मुसलिम विवाहों ने निस्सन्देह हिन्दू मुसलिम सम्मिश्रण को और भी अधिक पक्की नींव पर क़ायम करने की चेष्टा की। अकबर ने एक संयुक्त भारतीय राष्ट्र को अपनी आँखों के सामने साक्षात करने का प्रयत्न किया। वास्तव में उसने एक नए भारत की रचना करना चाहा। अकबर के स्वप्न सर्वथा पूरे न हो सके, किन्तु "उदारता और खोज की जिस महान प्रवृत्ति" को उसने जन्म दिया वह अभी तक क़ायम है और इसमें सन्देह नहीं कि जिस भारतीय राष्ट्रीयता को इस समय भारत में जन्म देने का प्रयत्न किया जा रहा है उसका सब से पहला प्रवर्त्तक तथा प्रचारक सम्राट अकबर ही था।

फ़्रेडरिक आगस्टस लिखता है—

"बहैसियत एक सेनापति के अकबर महान था, बहैसियत शासक के वह नए मानव समाज का निर्माणकर्ता था और सच्चे मानवधर्म के एक क्रियात्मक व्याख्याता की हैसियत से आज पर्यन्त कोई उससे बढ़कर नहीं हुआ।"*

---

* "Akbar was great as a general, as a statesman creative and

सम्राट अकबर के बाद उसके दोनों उत्तराधिकारियों, जहाँगीर तथा शाहजहाँ, ने एक दूसरे के बाद इसी नीति का अनुसरण किया और इस राष्ट्रीय प्रगति को बड़ी सुन्दरता के साथ जारी रखा। प्रगति और उसका बल बढ़ता गया, यहाँ तक कि जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, शाहजहाँ का समय भारतीय इतिहास में सबसे अधिक समृद्ध समय और अनेक अर्थों में भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग था। किन्तु एकता, समता, उदारता तथा मानव-प्रेम की जो लहरें उस समय भारत के अन्दर काम कर रही थीं वे अभी तक भारतीय जीवन के समस्त क्षेत्र को पूरी तरह अपने वश में न कर पाई थीं। निस्सन्देह उस समय इन शक्तियों का प्राधान्य था और यह प्राधान्य दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा था। किन्तु दूसरी ओर हिन्दू धर्म तथा इसलाम की प्राचीन सङ्कीर्ण प्रवृत्तियाँ भी अभी तक सर्वथा समाप्त न हुई थीं। रामानन्द ही के चेलों में यदि एक कबीर था तो दूसरा तुलसीदास भी मौजूद था। दोनों महान थे, दोनों ईश्वर भक्त थे, किन्तु एक की प्रवृत्ति भावी सार्वजनिक मानव धर्म की ओर थी और दूसरे की जातपाँत युक्त, मध्यमकालीन हिन्दू सङ्कीर्णता की ओर। एक मनुष्यमात्र की एकता का प्रतिपादक था, दूसरा अभी तक स्त्रियों और शूद्रों को भी शेष उच्च हिन्दुओं के समान पद देने को तैयार न था। बल्लभाचार्य, सूरदास इत्यादि और भी अनेक इस प्रकार की शक्तियाँ और विशेष कर अनेक शैव तथा वैष्णव आचार्य इस तरह के समस्त भारत में मौजूद थे जो राष्ट्र को भविष्य की ओर ले जाने के बजाय उसे अभी तक भूतकाल

---

down to the present day he is unsurpassed as a practical exponent of genuine humanity."—*The Emperor Akbar. etc.*, by Frederick Augustus, p. 296

ही की उलझनों में फँसाए रखने की ओर लगे हुए थे। मुसलमानों में भी जब कि एक ओर शरीयत के कर्मकाण्ड की परवा न करने वाले सूफ़ी और दरवेश मौजूद थे, जो कबीर के समान एक मानवधर्म के प्रचारक थे, दूसरी ओर इस प्रकार के सङ्कीर्णचित्त मुल्लाओं का भी अभी तक सर्वथा अभाव न हुआ था जो अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ तीनों को काफ़िर बतलाते थे। इन्हीं सङ्कीर्ण मुल्लाओं के पूर्वजों ने मनसूर को सूली पर चढ़ाया था और शम्स तबरेज़ की खाल खिचवाई थी। निस्सन्देह संसार को किसी भी दूसरी श्रेणी के लोगों से इतनी हानि नहीं पहुँची जितनी किसी भी धर्म के उन पुरोहितों, पादरियों तथा मुल्लाओं से जो अपने धर्म के अन्तर्गत सच्चे भावों, सदाचार तथा मानव-प्रेम की अवहेलना कर केवल कर्मकाण्ड तथा रूढ़ियों में जन सामान्य को फँसाए रखना और विविध मत मतान्तरों तथा सम्प्रदाओं को एक दूसरे से पृथक करने वाली, मानव समाज के टुकड़े करने वाली, कृत्रिम दीवारों को बनाए रखना ही अपना सबसे बड़ा कर्तव्य समझते हैं। दुर्भाग्यवश पृथक पृथक मत मतान्तरों के पुरोहितों अथवा मुल्लाओं का व्यक्तिगत हित भी इसी में होता है कि ये दीवारें सदा के लिए क़ायम रहें। जिस समय भारत के अन्दर कबीर और अकबर जैसों की चलाई हुई लहरें इन विरोधी शक्तियों को सदा के लिए अन्त करने वाली ही थीं, ठीक उस समय, आज से पौने तीन सौ वर्ष पहले, वह दुर्घटना हुई जिसने इस समस्त राष्ट्रीय प्रगति को उलट पुलट कर दिया।

शाहजहाँ का ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामह के समान इस राष्ट्रीय प्रगति का सच्चा प्रतिनिधि, उसका भक्त तथा अनुयायी था। दाराशिकोह प्रसिद्ध हिन्दू सन्त बाबालाल का शिष्य

था। दाराशिकोह की फ़ारसी पुस्तक 'नादिरुन्निकात,' जिसमें दारा ने अपने गुरु बाबालाल के साथ अपने वार्तालाप को वर्णन किया है, वेदान्त के ऊपर फ़ारसी के सर्वोत्तम ग्रन्थों में गिनी जाती है। दारा के छोटे भाई औरङ्गज़ेब ने दारा को हटा कर पिता की गद्दी पर बैठना चाहा। देश की समस्त उन्नत शक्तियाँ स्वभावतः दारा की ओर थीं। विशेष कर भारत का समस्त हिन्दू समाज दारा के पक्ष में था। दारा को शिकस्त देने के लिए औरङ्गजेब को कट्टर मुल्लाओं तथा इसलाम की सङ्कीर्ण प्रवृत्तियों को अपनी ओर एकत्रित करना पड़ा। स्वभावतः देश की उन्नति में बाधा डालने वाली इन शक्तियों को नया जीवन मिल गया। वास्तव में भारत की क़िस्मत का फ़ैसला कम से कम आयन्दा तीन सौ वर्ष के लिए ३० मई सन् १६५८ को सामूगढ़ के मैदान में उस समय हुआ जबकि अनुदार, सङ्कीर्णचित्त तथा अदूरदर्शी औरङ्गज़ेब ने उदार, विशालहृदय तथा दूरदर्शी दाराशिकोह पर विजय प्राप्त की।

सम्भव है कि औरङ्गज़ेब के स्वभाव में ही धार्मिक सङ्कीर्णता छिपी रही हो। कहीं अधिक सम्भव है कि जैसा हमने ऊपर लिखा है, यह धार्मिक सङ्कीर्णता उसके लिए एक राजनैतिक आवश्यकता रही हो। किन्तु हमारे वर्तमान प्रसङ्ग अथवा भारत के भाग्य में इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

सिंहासन पर बैठते ही औरङ्गज़ेब ने देश की समस्त उन्नतिनाशक, कट्टर मुसलिम प्रवृत्तियों को अपनी ओर जमा करना शुरू किया। राष्ट्र के समझदार लोगों ने, जो पूर्व की हितकर राष्ट्रीय प्रगति से परिचित थे, इसका विरोध किया। उन्हें दिखाई दे गया कि औरङ्गज़ेब की नीति बने बनाए राष्ट्रीय जीवन के टुकड़े कर देश को नाश की ओर ले जाने वाली है। इन लोगों ने औरङ्गज़ेब को समझाने का प्रयत्न किया। जिस समय

औरङ्गज़ेब ने हिन्दू और मुसलमानों में भेद करने वाले 'जज़िए' के कर को, जिसे सम्राट अकबर ने बन्द कर दिया था, फिर से जारी करना चाहा तो महाराजा सवाई जयसिंह ने सन् १६७८ में औरङ्गज़ेब से कहा—

"ख़ुदा केवल मुसलमानों ही का ख़ुदा नहीं, बल्कि तमाम इनसानों का ख़ुदा है। उसके सामने हिन्दू और मुसलमान सब एक समान हैं। हिन्दुओं के धार्मिक रिवाजों का अनादर करना उस सर्वशक्तिमान परमात्मा की इच्छा की अवहेलना करना है।"*

अदूरदर्शी औरङ्गज़ेब ने इस सलाह की परवा न की। स्वभावतः राजपूत, मराठे, सिख तथा अन्य हिन्दू राजे, महराजे एक एक कर औरङ्गज़ेब के विरूद्ध खड़े हो गए। जिस प्रकार औरङ्गज़ेब ने सङ्कीर्ण मुसलिम शक्तियों को अपनी ओर किया, उसी प्रकार मराठों तथा सिखों को हिन्दू सङ्कीर्णता का आश्रय लेना पड़ा। समस्त देश दो विरोधी दलों में बँट गया। कुछ वर्षों के अन्दर ही कबीर और अकबर जैसों के महान प्रयत्नों और सदियों की राष्ट्रीय प्रगति का सत्यानाश हो गया। औरङ्गज़ेब संयमी तथा बलवान था। वह जब तक जिया केवल उस सङ्गठित शक्ति के सहारे, जो बाबर से लेकर शाहजहाँ तक के शासनकालों में मुग़ल साम्राज्य ने प्राप्त कर ली थी, चारों ओर के विद्रोहों को दमन करता रहा। किन्तु जिस साम्राज्य की नींवदेश वासियों के हित तथा उनकी सहानुभूति पर क़ायम की गई थी वह अब केवल पाशविक बल के सहारे चलाया जाने लगा। दुर्भाग्यवश औरङ्गज़ेब का शासनकाल भी बहुत लम्बा था। पृथक पृथक धार्मिक

* *Rise of the Maratha Power*, by Ranade, p. 81.

सङ्कीर्णता को दोनों ओर बल प्राप्त करने और समता, उदारता तथा एक की शक्तियों को तितर बितर हो जाने का काफ़ी मौक़ा मिल गया। औरङ्गज़ेब के मरते ही साम्राज्य के टुकड़े टुकड़े होने लगे। प्रधान राजनैतिक सत्ता निर्बल होने के साथ साथ देश के समस्त उद्योग धन्धों, व्यापार, साहित्य और सुख समृद्धि के भी नाश के बीज बोए गए।

बहुत सम्भव है कि औरङ्गज़ेब के बाद देश फिर अपनी ग़लती अनुभव कर उसके दुष्परिणामों को दूर कर लेता और शीघ्र ही फिर एक बार पूर्व के समान ऐक्य, स्वस्थता तथा उन्नति के पथ पर चलने लगता। बहुत दरजे तक देश ने ऐसा किया भी। औरङ्गज़ेब के अनेक उत्तराधिकारियों ने औरङ्गज़ेब की सङ्कीर्ण तथा नाशकर नीति को छोड़ कर फिर धार्मिक उदारता तथा निष्पक्षता का सुबूत देना शुरू कर दिया। सम्राट शाहआलम ने पूना के पेशवा को अपनी सल्तनत का 'वकील' क़रार दिया, और माधो जी सींधिया को देहली तथा आगरे का सूबेदार नियुक्त किया। शाह आलम के पुत्र अकबरशाह ने ब्रह्मसमाज के जन्मदाता प्रसिद्ध राममोहन राय को राजा का ख़िताब देकर और अपना वकील नियुक्त कर के इङ्गलिस्तान भेजा। अन्तिम सम्राट बहादुरशाह के जीवन की अनेक घटनाएँ और उसके अनेक वाक्य इस प्रकार के मौजूद हैं जिनसे प्रकट है कि वह हिन्दू और मुसलमानों को एक आँख से देखता था। साम्राज्य के केन्द्र की इस हितकर नीति का प्रभाव भारत के शेष प्रान्तों में भी जगह जगह स्पष्ट देखने में आता था। प्लासी के युद्ध के बाद तक बङ्गाल के मुसलमान सूबेदारों के अधीन बड़े से बड़े प्रान्तों की दीवानी हिन्दुओं को मिली हुई थी, और सूबेदार के दरबार में हिन्दू और मुसलमानों के साथ व्यवहार में किसी प्रकार का भेद भाव न किया था। सिराजुद्दौला का स

से विश्वस्त अनुयायी राजा मोहनलाल था जिसने प्लासी के मैदान में सिराजुद्दौला के लिए अपने प्राण दिए। मीरजाफ़र ने दीवान रज़ा ख़ाँ के स्थान पर महाराजा नन्दकुमार को अपना दीवान नियुक्त करने की ज़िद की। उत्तर में महाराजा रणजीत सिंह के मुख्य मन्त्रियों में कई नाम मुसलमानों के थे। होलकर और सींधिया दोनों के सेनापति तथा कभी कभी प्रधान मन्त्री तक मुसलमान होते थे। हैदरअली और टीपू सुलतान के मुख्य मन्त्री पूर्निया और कृष्णराव थे। प्रसिद्ध मराठा नीतिज्ञ नाना फ़ड़नवीस हैदरअली को अपना दाहिना हाथ कहा करता था और दोनों में गहरी मित्रता थी। हमने इस पुस्तक में आगे चलकर दिखलाया है कि हैदरअली की सारी नीति ही इस विषय में ठीक सम्राट अकबर की नीति का प्रतिबिम्ब थी। जगद्गुरु शङ्कराचार्य और टीपू सुलतान में गहरा प्रेम था। अवध के मुसलमान नवाबों के अधीन अधिकांश बड़े बड़े ताल्लुक़ेदार और प्रायः उनके मुख्य मुख्य मन्त्री तक हिन्दू होते थे। ठीक इसी तरह की असंख्य और मिसालें उस समय के इतिहास से दी जा सकती हैं। इस पुस्तक में भी स्थान स्थान पर इस तरह की अनेक मिसालें मिलेंगी। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि भारत को मौक़ा मिलता तो वह शीघ्र ही औरङ्गज़ेब की ग़लती के परिणामों से पनप कर अपना पूर्व गौरव प्राप्त कर लेता।

किन्तु भारत के दुर्भाग्य से ठीक उस सङ्कट के समय जब कि औरङ्गज़ेब की ग़लती के परिणाम अभी ताज़े थे और दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता एक बार निर्बल हो चुकी थी, एक ऐसी तीसरी शक्ति ने भारत के राजनैतिक मञ्च पर प्रवेश किया जिस का हित हर प्रकार भारतवासियों के हित के विरुद्ध था।

१०

अङ्गरेज़ों के भारत आगमन और उस समय के इङ्गलिस्तान तथा भारत दोनों की अवस्था का चित्र ऊपर दिया जा चुका है। भारत में उनके १०० वर्ष से ऊपर के प्रयत्नों और काररवाइयों का विस्तृत वृत्तान्त प्रामाणिक अङ्गरेज़ लेखकों ही के आधार पर पाठकों को इस पुस्तक में मिलेगा। औरङ्गज़ेब के समय तक भारत के अन्दर अङ्गरेज़ व्यापारियों की स्थिति लगभग वैसी ही थी जैसी आजकल के भारत में हींग बेचने वाले काबुलियों अथवा काग़ज़ के खिलौने बेचने वाले चीनियों की। औरङ्गज़ेब की अनुदार और अदूरदर्शी नीति ने थोड़े ही दिनों में चारों ओर छोटी छोटी और परस्पर प्रतिस्पर्धी रियासतें पैदा कर दी, साम्राज्य की केन्द्रीय शक्ति को निर्बल कर दिया, और देश के अन्दर हिन्दू और मुसलमानों के परस्पर प्रेम तथा एकता की उन अलौकिक राष्ट्रीय लहरों को एक समय के लिए पीछे हटा दिया जो कबीर के समय से लेकर लगभग तीन सौ वर्ष के लगातार प्रयत्नों द्वारा देश को चिरस्थायी सुख तथा समृद्धि की ओर ले जाती हुई दिखाई दे रही थीं।

औरङ्गज़ेब की मृत्य के चन्द वर्ष के अन्दर ही मद्रास और बङ्गाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की साज़िशें शुरू हो गईं जो बढ़ते बढ़ते औरङ्गज़ेब की मृत्यु के पचास वर्ष बाद प्लासी के मैदान में अपना रङ्ग लाईं। स्वभावतः अङ्गरेज़ों का हित इस बात में था कि भारतीय जीवन की उस समय की अव्यवस्था तथा अनैक्य को जिस तरह हो सके चिरस्थायी बना दें और राष्ट्रीय ऐक्य की उन कल्याणकर प्रवृत्तियों को, जिनका बढ़ना औरङ्गज़ेब के समय में रुक गया था, फिर से पनपने न दें।

किन्तु यहाँ पर एक गम्भीर प्रश्न हमारे सामने यह उपस्थित होता है कि क्या कारण हुए जिनसे अधिक सभ्य, अधिक बलवान और अधिक उन्नत भारतवासी अपने से कम सभ्य, कम बलवान और अनुन्नत इङ्गलिस्तान निवासियों की चालों में लगातार इस आसानी से आते चले गए, यहाँ तक कि अन्त में अपना सर्वस्व खो बैठे । यही प्रश्न इस पुस्तक को पढ़ने से प्रत्येक पाठक के चित्त में उत्पन्न होगा। वास्तव में इतिहास की यह एक कठिनतम पहेलियों में से है।

सब से पहले कुशाग्रधी फ़्रान्सीसी सेनापति डूप्ले ने मालूम किया कि पाश्चात्य अर्थों में 'राष्ट्रीयता' अथवा 'देशभक्ति' का उस समय भारत में अभाव था। डूप्ले के अनुसार यूरोपनिवासियों के लिए भारतवासियों को एक दूसरे से लड़ा देना अत्यन्त सरल था और इसी लिए भारत अपनी आज़ादी खो बैठा। निस्सन्देह डूप्ले के कथन में एक दरजे तक सत्य अवश्य है। किन्तु हमें इस पर और अधिक गम्भीरता के साथ विचार करना होगा। अङ्गरेज़ विद्वान करनल मालेसन लिखता है कि अपने क़ौमी चरित्र की जिन त्रुटियों के कारण भारतवासी इस तरह पराधीन किए जा सके उनमें एक यह थी कि उन्हें "स्वभाव से ही ईमानदारी का व्यवहार करने और ग़ैरों पर विश्वास कर लेने की आदत" थी।* करनल मालेसन का कथन डूप्ले के कथन की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट है।

सबसे पहली बात हमें इस सम्बन्ध में यह समझनी होगी कि किसी एक कम सभ्य जाति का अपने से अधिक सभ्य जाति पर विजय प्राप्त कर लेना अथवा उसे पराजित कर लेना कोई नई घटना नहीं है। संसार के

* ". . . the trusting and faithful nature . . ."—*The Decisive Battles of India*, by Colonel Malleson, chap. i.

इतिहास में अनेक बार अधिक सभ्य जातियाँ अपने से कम सभ्य जाति का इस प्रकार शिकार होती रही हैं। यूरोप में गॉल तथा वेण्डाल जाति के जिन लोगों ने उत्तर तथा पूर्व से जाकर विशाल रोमन साम्राज्य पर हमला किया और उस साम्राज्य के सदा के लिए टुकड़े टुकड़े कर डाले, रोमन लोगों की अपेक्षा कहीं कम सभ्य थे। जिन तातारियों और मुग़लों ने आज से हज़ार डेढ़ हज़ार वर्ष पहले पूर्व तथा मध्य एशिया से निकल कर बग़दाद तथा ईरान के गौरवान्वित साम्राज्यों का अन्त किया वे उस समय के अरबों तथा ईरानियों की अपेक्षा सर्वथा असभ्य थे। मध्य-एशिया की असभ्य जातियों ने ही समृद्ध यूनानी साम्राज्य का ख़ात्मा कर डाला। भारतवासियों का भी अपने से किसी कम सभ्य जाति के इस प्रकार अधीन हो जाना इसी प्रकार की एक घटना थी। इस विचित्र ऐतिहासिक घटना के आम तौर पर दो कारण होते हैं। एक तो अधिक उच्च सभ्यता लोगों में थोड़ी बहुत आरामतलबी की आदत पैदा कर देती है और असभ्य क़ौमों की उद्दण्ड पराक्रमशीलता प्रायः उनमें नहीं रह जाती। दूसरे यह कि असभ्य अथवा कम सभ्य लोग जिस निस्सङ्कोच भाव के साथ अपनी पाशविक प्रवृत्तियों और शक्तियों का उपयोग कर सकते हैं, अधिक सभ्य लोग अपने यहाँ के नैतिक आदर्शों के अधिक स्थिर हो जाने के कारण उस प्रकार नहीं कर सकते।

भारत की इस दुर्घटना के भी हमें तीन मुख्य कारण साफ़ दिखाई देते हैं—

पहला यह कि अपने और पराए का भाव जिसे आज कल 'राष्ट्रीयता' का भाव कहा जाता है उदार भारतवासियों के चित्तों में कभी भी अधिक स्थान न कर पाया था। हम ऊपर लिख चुके हैं कि १८ वीं शताब्दी के

प्रारम्भ में भारत के अन्दर कोई प्रबल केन्द्रीय शक्ति न रही थी। अनेक शक्तियाँ उस समय देश के अन्दर प्राधान्य प्राप्त करने के लिए उत्सुक और प्रयत्नशील थीं। मुसलमानों और हिन्दुओं में भी पूर्वोक्त कारणों से जगह जगह एक प्रकार की पृथकता पैदा हो गई थी। स्वभावतः ऐसी स्थिति में एक तीसरी बाहर की ताक़त अनेक लोगों को निष्पक्ष मध्यस्थ की तरह दिखाई दी। इससे पूर्व जितने लोगों ने बाहर से आकर भारत में प्रवेश किया उनमें से, उन थोड़े सों को छोड़ कर, जो महमूद ग़ज़नवी अथवा नादिरशाह के समान लूट मार कर चार दिन के अन्दर वापस चले गए, शेष किसी से भारतवासियों को किसी प्रकार का कड़वा अनुभव न हुआ था। हम ऊपर दिखा चुके हैं कि इन सब लोगों ने भारत में बस कर भारत को अपना घर बना लिया और समस्त भारतवासियों की उन्नति तथा विकास में पूरा पूरा भाग लिया। ऐसी सूरत में अपने और ग़ैर का भेद भारतवासियों के लिए कोई विशेष अर्थ ही न रखता था। भारत-वासियों के धार्मिक तथा नैतिक आदर्श भी उनके अन्दर इस तरह का विचार पैदा होने न दे सकते थे। स्वभावतः भारतवासियों ने सात समुद्र पार के यूरोपनिवासियों के साथ उसी तरह के प्रेम और सत्कार का व्यवहार किया जिस तरह का वे आपस में एक दूसरे के साथ करने के आदी थे। ऐसी सूरत में अङ्गरेज़ों का विविध भारतीय नरेशों के परस्पर संग्रामों में कभी एक और कभी दूसरे का साथ देना अथवा अपनी साज़िशों द्वारा इस तरह के संग्राम खड़े कर के उनसे पूरा लाभ उठाना अत्यन्त सरल हो गया।

दूसरा यह कि यद्यपि भारत का व्यापार उस समय इङ्गलिस्तान के व्यापार से सहस्रों गुणा अधिक बढ़ा हुआ था, तथापि 'व्यापार' को जो

स्थान उस समय यूरोपियन और विशेष कर अङ्गरेज़ क़ौम के जीवन
दिया जाता था वह भारत में कभी न दिया गया था। अङ्गरेज़ क़ौम
व्यापारी क़ौम थी। इङ्गलिस्तान के बड़े से बड़े लॉर्ड्स के व्यापारी कम्पनि
में हिस्से होते थे, यहाँ तक कि जैसा हम अभी ऊपर दिखला चुके
इङ्गलिस्तान की मलका तक ग़ुलामों के क्रय विक्रय जैसे निकृष्ट व्या
में हिस्सा लेना अथवा उससे हज़ार दो हज़ार गिन्नी कमा लेना अ
लिए अयशस्कर न समझती थी।* इसके विपरीत भारत में कोई
राजा, नवाब अथवा ज़मींदार व्यापार में कभी किसी प्रकार का हिस्
न लेता था, न राजदरबार से सम्बन्ध रखने वाले किसी आदमी की कि
कम्पनी में पत्ती होती थी। व्यापार द्वारा धनोपार्जन का कार्य इस दे
में एक गौण अथवा छोटा कार्य समझा जाता था और अनादिकाल
एक श्रेणी विशेष के लिए छोड़ दिया गया था। यहाँ तक कि खेती
उद्यम भी वाणिज्य से उच्चतर समझा जाता था। इस कारण किसी
भारतीय नरेश के लिए अपने देश के साथ अङ्गरेज़ों के व्यापार
भावी राजनैतिक अथवा राष्ट्रीय परिणामों को सोच सकना उस समय
असम्भव था।

इसके साथ ही व्यापारी मात्र की रक्षा करना और अपने राज्य
व्यापार को जहाँ तक हो सके, उत्तेजना और सहायता देना प्रत्येक भारतीय
नरेश सदा से अपना धर्म समझता था। बड़े से बड़े और छोटे से छोटे
भारतीय नरेशों के इतिहास में एक ख़ास बात यह देखने को मिलती है
कि उन्हें इस बात की चिन्ता रहती थी कि किसी व्यापारी को हमारे
राज्य के अन्दर नुक़सान न होने पाएँ। यही कारण था कि मुग़ल सम्राट

* *The Intellectual Development of Europe*, vol. ii, p. 244.

शाहजहाँ ने एशियाई नरेशों की मर्यादा के अनुसार उदारता और दरिया दिली में आकर अङ्गरेज़ क़ौम के व्यापारियों को भारत में रहने और व्यापार करने के लिए इस प्रकार की रिआयतें अता कर दीं जो आजकल का कोई नरेश किसी भी दूसरी क़ौम के लोगों को अपने देश में देने का कभी विचार तक न करेगा। भारतीय सम्राट को यह गुमान तक न हो सकता था कि उसकी यह नृपोचित उदारता एक दिन बढ़ते बढ़ते भारतीय व्यापार, भारतीय उद्योग धन्धों और भारत की राजनैतिक स्वाधीनता, तीनों के सर्वनाश का बीज साबित होगी।

व्यापार की आड़ में राजनैतिक कुचक्र एक ऐसी चीज़ थी जिसका भारतवासियों को उस समय तक अपने सहस्रों वर्ष के इतिहास में कभी अनुभव न हुआ था, और जो किसी भी भारतीय नरेश के दिमाग़ में न आ सकती थी। सम्राट औरङ्गज़ेब भारत के सबसे अधिक निष्ठुर सम्राटों में गिना जाता है। औरङ्गज़ेब ही ने अङ्गरेज़ कम्पनी की प्रार्थना पर कालीकाता, सूतानटी और गोविन्दपुर, तीन गाँव, अपने व्यापार के लिए एक कोठी बनाने को बतौर जागीर कम्पनी को प्रदान किए थे। थोड़े ही दिनों में अङ्गरेज़ों ने वहाँ पर क़िलेबन्दी शुरू कर दी। औरङ्गज़ेब के कर्मचारियों ने उससे शिकायत की। औरङ्गज़ेब यदि चाहता तो केवल एक शब्द द्वारा उसी समय उस क़िलेबन्दी को बन्द कर सकता था। अथवा विदेशी व्यापारियों को भारत से निकाल बाहर कर सकता था। किन्तु इस शिकायत के पहुँचने पर उस भारतीय सम्राट ने बजाय क़िलेबन्दी को बन्द करने के उलटा अपने ही आदमियों को डाँटा और कहा—"मुमकिन है, मेरी आस पास की देशी रिआया ने हसद के कारण फ़िरङ्गियों से कुछ झगड़ा किया हो। क्यों न फ़िरङ्गी जिस तरह हो सके, अपनी हिफ़ाज़त का

इन्तज़ाम करें ? ये बेचारे परदेशी बहुत दूर से आए हैं और बड़े मेहनती हैं। मैं हरगिज़ दख़ल न दूँगा।"*

भारत के व्यापारियों को भी उस समय तक कभी किसी दूसरे देश के व्यापारियों से किसी प्रकार का कड़ुआ अनुभव न हुआ था। व्यापारी अथवा आक्रमक, अङ्गरेज़ों से पहले के किसी भी विदेशी के कारण भारतीय व्यापारियों को किसी प्रकार की हानि न पहुँची थी। इसके विपरीत विविध देशों के व्यापारियों के मेल जोल से सदा एक दूसरे को लाभ ही पहुँचता रहा था। इसलिए यह भी असम्भव था कि भारतीय व्यापारी, जिनको अन्त में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कारण सबसे अधिक हानि पहुँची, कम्पनी के कुचक्रों का मुक़ाबला करने या उसे देश से बाहर निकालने का मिल कर कोई प्रयत्न करने की सोचते। इसके विपरीत उस समय के अङ्गरेज़ व्यापारी आयरलैण्ड तथा स्कॉटलैण्ट के व्यापारों का हाल ही में नाश करके इन परस्पर नाशकारी उपायों का पूरा अनुभव प्राप्त कर चुके थे। परिणाम रूप स्कॉटलैण्ड तक को, 'बिल ऑफ़ सिक्यूरिटी' पास करके इङ्गलिस्तान के इन नाशकर प्रयत्नों से, अपने व्यापार की रक्षा करनी पड़ी थी।

तीसरा यह कि भारतवासियों को इससे पूर्व किसी विदेशी के वचनों पर अविश्वास करने का कोई कारण न था। भारत में सन्धिपत्रों और राजकीय एलानों को सदा से पवित्र माना जाता था और यूरोपियनों के आगमन से पूर्व एशियाई नरेशों के सन्धिपत्र तथा एलान अधिकतर सच्चे होते भी थे। वास्तव में इस विषय में अङ्गरेज़ों तथा भारतवासियों के चरित्र में बहुत बड़ा अन्तर है। इस देश में मराठे सबसे अधिक च...

* *Empire in Asia*, by Torrens, pp. 14, 15.

राजनीतिज्ञ माने जाते थे। मराठों ने कई बार बङ्गाल पर हमला किया। तथापि बङ्गाल के मुसलमान सूबेदार अलीवर्दी ख़ाँ ने कहा था कि मराठों ने कभी भी अपनी सन्धियों का उल्लङ्घन नहीं किया। अङ्गरेज़ों और भारतीय नरेशों के लगभग सौ वर्ष के सम्बन्ध में शायद एक भी मौक़ा ऐसा नहीं हुआ जिसमें किसी भी भारतीय नरेश ने अङ्गरेज़ों के साथ अपनी सन्धि का उल्लङ्घन किया हो। वास्तव में अनेक भारतीय नरेशों की आपत्ति का मुख्य कारण यही हुआ कि उन्होंने ऐसे ऐसे मौक़ों पर कम्पनी के साथ अपनी सन्धियों का ईमानदारी के साथ पालन किया, जब कि उन सन्धियों का पालन उनके और उनके देश के लिए स्पष्ट अहितकर दिखाई दे रहा था। हम इस विषय के विस्तार में इस स्थान पर पड़ना नहीं चाहते। हमारे कथन के प्रमाण में असंख्य उदाहरण पाठकों को स्थान स्थान पर इस पुस्तक में मिलेंगे। किन्तु इसके विपरीत अङ्गरेज़ों के अपनी सन्धियाँ पालन करने या न करने के विषय में प्रसिद्ध अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक सर जॉन के जो इङ्गलिस्तान के इण्डिया ऑफ़िस के 'पोलिटिकल और गुप्त विभाग' का सेक्रेटरी रह चुका था, लिखता है—

"मालूम होता है कि अङ्गरेज़ सरकार ने सन्धियों के तोड़ने का ठेका ले रक्खा था। यदि मौजूदा अहदनामों के तोड़ने की सज़ा में किसी से उसका इलाक़ा छीना जा सकता है, तो इस समय ब्रह्मपुत्र से लेकर सिन्धु नदी तक एक चप्पा ज़मीन भी भारत में अङ्गरेज़ों के पास नहीं बच सकती।"*

* "It would seem as though the British Government claimed to itself the exclusive right of breaking through engagements. If

एडमण्ड बर्क ने इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने वारन हेस्टिंग्स के मुक़दमे के समय कहा था कि—"एक भी ऐसी सन्धि नहीं है जो अङ्गरेज़ों ने भारतवर्ष में किसी के साथ की हो और जिसे उन्होंने बाद में तोड़ा न हो।"

अङ्गरेज़ों तथा भारतवासियों के सम्बन्ध की अनेक छोटी मोटी घटनाएँ इस प्रकार की मिलती हैं जिनसे पता चलता है कि दोनों जातियों के चरित्र में इस विषय में कितना ज़बरदस्त अन्तर था। इस विषय में एक दो उदाहरण यहाँ पर अप्रासङ्गिक न होंगे। हैदरअली और अङ्गरेज़ों की लड़ाइयों में अनेक ही बार ऐसा हुआ कि हैदरअली ने पराजित अङ्गरेज़ सैनिकों तथा सेनापतियों को उनसे यह वादा लेकर छोड़ दिया कि हम इसके बाद कम से कम बारह महीने तक आपके विरुद्ध कहीं न लड़ेंगे। किन्तु फिर चन्द दिन के बाद ही वे ही अङ्गरेज़ सैनिक तथा सेनापति किसी दूसरी जगह के संग्राम में हैदरअली के विरुद्ध लड़ते हुए दिखाई दिए। इसके विपरीत हैदरअली ने एक बार जब कि वह अङ्गरेज़ी इलाक़े में विजय पर विजय प्राप्त करता हुआ बढ़ा चला जा रहा था, कम्पनी के अङ्गरेज़ दूत से यह वादा किया कि मद्रास के फाटक पर पहुँचकर मैं आपकी ओर से सुलह की बातचीत सुन लूँगा। विजयी हैदर मद्रास के फाटक तक पहुँच गया। वह चाहता तो बात की बात में मद्रास के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लेता और कम से कम दक्षिण भारत से उसी समय

---

the violation of existing covenants ever involved *ipso facto* a loss of territory, the British Government in the East would not now possess a rood of land between the Brahmaputra and the Indus."—Sir John Kaye in the *Calcutta Review*, vol. i, p. 219.

अङ्गरेज़ों को निकाल कर बाहर कर देता। किन्तु मद्रास पहुँचते ही उसने अपने वचन का पालन किया। सुलह की बातचीत हुई और विजयी हैदरअली ने पराजित अङ्गरेज़ों के साथ सुलह स्वीकार कर ली।

सन् ५७ के विप्लव में अवध के अन्दर अगणित ही उदाहरण इस बात के मिलते हैं, जिनमें कि अवध के उन ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों ने, जो अपने अपने इलाक़े में विप्लव के खुले नेता थे, मुसीबतज़दा अङ्गरेज़ पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को अपने क़िलों के अन्दर आश्रय दिया, और उनकी प्रार्थना पर उन्हें अपनी किश्तियों में बैठा कर इलाहाबाद और बनारस भेज दिया। किन्तु चन्द महीने के बाद ये ही अङ्गरेज़ पुरुष अवध वापस जाकर उन्हीं ताल्लुक़ेदारों के विरुद्ध लड़ते हुए दिखाई दिए। इस तरह के और अधिक उदाहरण देना केवल इस विषय को विस्तार देना होगा।

जिन भारतवासियों ने अङ्गरेज़ों और भारत के सम्बन्ध में समय समय पर देशघातकता का परिचय दिया उनमें भी शायद विरले ही ऐसे होंगे जिन्होंने अङ्गरेज़ों के साथ अपने वचनों का पालन न किया हो। सच यह है कि यदि मध्यम कालीन तथा आर्वाचीन यूरोप के इतिहास को ध्यान से पढ़ा जाय तो मालूम होगा कि देशीयता अथवा राष्ट्रीयता के सङ्कीर्ण भाव यूरोप की विशेष सामाजिक परिस्थिति का एक परिणाम हैं। मध्यम कालीन यूरोप में ज़मींदारों और काश्तकारों, रईसों और ग़रीबों के बीच वह ज़बरदस्त संग्राम लगभग एक हज़ार वर्ष तक जारी रहा कि जिसके कारण वहाँ की जनता में अपने पराए का भेद ज़ोरों से जम जाना स्वाभाविक था। धार्मिक पक्षपात का भी यूरोप में सदियों तक साम्राज्य रहा, जिससे इस तरह की सङ्कीर्णता के बढ़ने को और अधिक मौक़ा मिला। इसके अतिरिक्त यूरोप भर में अनेक छोटे छोटे देश, लगभग प्रत्येक देश में भोजन और

वस्त्र के सामान की कमी, और इस पर श्रेणी श्रेणी के बीच ला आर्थिक कलह और प्रतिस्पर्धा, इन सब कारणों से भी यूरोप के मेरे और तेरे देश के भाव ज़ोर पकड़ते चले गए।

किन्तु भारत के दो हज़ार वर्ष के इतिहास में इस प्रकार के कोई कारण उपस्थित न थे। यदि प्रान्तीय नरेशों में यदा कदा लड़ाइयाँ होती थीं; अथवा बाहर से चन्द रोज़ के लिए कोई हमला भी होता था करोड़ों जनता के रहन सहन, उनके जीवन, उनके धन्धों और उनकी खु हाली पर उन लड़ाइयों का कोई किसी तरह का भी प्रभाव न पड़ता था

निस्सन्देह वर्त्तमान राष्ट्रीयता वर्त्तमान राष्ट्रों के स्वार्थमय और संग्राम का फल है। हम स्वीकार करते हैं कि यह राष्ट्रीयता का मनुष्य को एक दरजे तक व्यक्तिगत स्वार्थ के भाव से ऊपर उठा कर के नाम पर अपनी आहुति देने के लिए प्रतुत कर देता है। इस दरजे तक यह भाव निस्सन्देह मनुष्य को ऊँचा उठाने वाला भी है। किन्तु यदि मानव प्रेम तथा मानव जाति के हित की दृष्टि से देखा जाय तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि वर्त्तमान 'राष्ट्रीयता' का भाव अधिक से अधिक एक अनि वार्य आपत्ति है और इस समय भी समस्त मानव समाज के विकास एक बहुत बड़ी बाधा साबित हो रहा है। जो हो, भारत में इस भाव पैदा होने के लिए अङ्गरेज़ों के आने से पहले कोई गुञ्जाइश ही न थी। कारण है कि भारतवासियों में अपने और पराए का भेदभाव मौजूद न था

इसी लिए यदि निष्पक्षता के साथ देखा जाय तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सौ वर्ष के इतिहास में जिन लोगों ने अङ्गरेज़ों के साथ मिलकर अपने देश तथा देशवासियों को हानि पहुँचाई, उनमें से थोड़े सों को छोड़ कर शेष का पाप केवल इतना ही था जितना किसी भी दो राजाओं

के संग्राम में एक मनुष्य का एक पक्ष से हट कर दूसरे पक्ष की ओर चला जाना। यही कारण था कि इनमें से अधिकांश देशघातकों ने विदेशियों के साथ अपनी प्रतिज्ञाओं का सदा सच्चाई के साथ पालन किया।

हमें यह लज्जा के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि उन सौ वर्ष के इतिहास में हमें अपनी ओर कई अक्षम्य देशघातकता और विश्वास-घातकता के उदाहरण भी मिलते हैं। किन्तु इस तरह के उदारण किसी भी देश के इतिहास में इस प्रकार की परिस्थिति में थोड़े बहुत मिलना स्वाभाविक है।

इतिहास से स्पष्ट है कि अन्य अनेक दोषों के होते हुए भी भारत-वासियों में अपने वचन का पालन एक सामान्य नियम था जिसके कहीं कहीं सम्भव है अपवाद मिल सकते हों, दूसरी ओर कम्पनी के अङ्गरेज़ प्रतिनिधियों में अपनी प्रतिज्ञाओं का निस्सङ्कोच उल्लङ्घन एक सामान्य नियम था, जिसका शायद एक भी अपवाद मिलना कठिन है। इसी लिए सन् १७५७ से लेकर १८५७ तक बार बार के प्रतिकूल अनुभवों के होते हुए भी भारतवासियों ने सदा अङ्गरेज़ों की प्रतिज्ञाओं पर विश्वास कर लिया।

इन सौ वर्ष के इतिहास से यह भी स्पष्ट है कि वीरता, साहस अथवा युद्ध-कौशल में भारतवासी कहीं भी अङ्गरेज़ों से पीछे नहीं रहे। अङ्गरेज़ों के भारतीय संग्राम अङ्गरेज़ों ने नहीं जीते, वरन् भारतवासियों ने अङ्गरेज़ों के लिए जीत कर अपनी विजय का नतीजा अङ्गरेज़ों के हवाले कर दिया। करनल मालेसन ने अपनी पुस्तक 'दी डिसाइसिव बैटिल्स ऑफ़ इण्डिया' में स्वीकार किया है कि सन् १७५७ से १८५७ तक जो असंख्य लड़ाइयाँ अङ्गरेज़ों और भारतवासियों के बीच लड़ी

गईं उनमें एक भी ऐसी नहीं हुई जिसमें अङ्गरेज़ी सेना एक ओर हो और हिन्दोस्तानी सेना दूसरी ओर, और फिर अङ्गरेज़ों ने विजय प्राप्त की हो। इस तरह के संग्राम, जिनमें अङ्गरेज़ एक ओर थे और हिन्दोस्तानी दूसरी ओर, अनेक बार हुए, किन्तु उनमें सदा अङ्गरेज़ों को ज़िल्लत के साथ हार खानी पड़ी। जहाँ कहीं किसी संग्राम में अङ्गरेज़ों ने विजय प्राप्त की है वहाँ सदा हिन्दोस्तानियों में दो दल दिखाई दिए हैं, एक विदेशियों के विरुद्ध और दूसरा उनके पक्ष में। यह एक अकाट्य, किन्तु लज्जाजनक सत्यता है कि अङ्गरेज़ों ने भारतवर्ष को तलवार से नहीं जीता, वरन् भारतवासियों ने अपनी ही तलवार से अपने देश को जीत कर विदेशियों के हवाले कर दिया। हमारे इस कथन के यथेच्छ प्रमाण पाठकों को इस पुस्तक के प्रायः प्रत्येक अध्याय में मिलेंगे।

किन्तु जो हो, अब हमें इस भीषण सत्यता की ओर ध्यान देना होगा कि अपनी इन दो सौ वर्ष की लगातार ग़लतियों अथवा कमज़ोरियों ने हमें कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया। केवल दो सौ वर्ष पूर्व जो देश संसार का सब से अधिक समृद्ध तथा सब से अधिक बलवान देश स्वीकार किया जाता था, वह आज संसार का सब से अधिक दरिद्र तथा सब से अधिक निर्बल और असहाय देश माना जाता है। केवल डेढ़ सौ वर्ष पहले जिस देश में एक भी पुरुष अथवा स्त्री किसी ग्राम के अन्दर ऐसा न मिल सकता था जो लिखना पढ़ना न जानता हो, वहाँ आज ६४ प्रति शत आबादी सर्वथा अशिक्षित है। केवल सवा सौ वर्ष पहले अर्थात् १६ वीं शताब्दी के शुरू तक जो देश अपने उद्योग धन्धों की दृष्टि से शायद केवल एक चीन को छोड़ कर संसार का सब से अधिक उन्नत देश स्वीकार किया जाता था और जो उस समय तक आधे से अधिक सभ्य संसार की, और

स्वयं इङ्गलिस्तान तथा फ़्रान्स की कपड़े इत्यादि की आवश्यकता को पूरा करता था, वह आज अपने जीवन की एक एक आवश्यकता के लिए, यहाँ तक कि अपना तन ढकने के लिए दूसरों का मोहताज है। इन सब बातों के अकाट्य प्रमाण इस पुस्तक में उचित स्थान पर दिए जायँगे।

पूर्वोक्त हानियों से कहीं अधिक भयङ्कर हानि जो दूसरे देश की राजनैतिक अधीनता किसी भी देश को पहुँचा सकती है, वह उस देश के चरित्र का नाश है। समाज-विज्ञान का प्रसिद्ध अमरीकन विद्वान् ई० ए० रॉस लिखता है।

"किसी राष्ट्र के चरित्र के अधःपतन के सब से प्रबल कारणों में से एक कारण उस राष्ट्र का किसी विदेशी क़ौम के अधीन हो जाना है।"*

अपने समय के भारतवासियों के चरित्र को वर्णन करते हुए यूनानी इतिहास-लेखक एरियन लिखता है कि—

"इन लोगों में अद्भुत वीरता है, युद्ध-विद्या में वे समस्त एशिया-निवासियों से बढ़ कर हैं। सरलता और सच्चाई के लिए वे विख्यात हैं। वे इतने समझदार हैं कि उन्हें कभी मुक़द्दमेंबाज़ी की शरण नहीं लेनीपड़ती और इतने ईमानदार हैं कि न उन्हें अपने दरवाज़ों में ताले लगाने पड़ते हैं और न लेन देन में उन्हें

* "Subjugation to a foreign yoke is one of the most potent causes of the decay of national character."—Professor E. A. Ross: *Principles of Sociology*, pp. 132, 133.

लिखा पढ़ी की ज़रूरत होती है। कभी भी किसी भारतवासी को झूठ बोलते हुए नहीं सुना गया।"†

उस समय के भारतवासियों के चरित्र की इस समय के भारतवासि के चरित्र से तुलना करना अत्यन्त दुखकर है। इस तुलना पर टीका करते और मिश्र यूनान इत्यादि की मिसालें देते हुए ई० ए० रॉस लिखता है

"भारतवासियों के उच्चतर जीवन के ऊपर विदेशी शासन का प्रभाव ऐसा ही है जैसा किसी चीज़ को पाला मार जाना।"*

निस्सन्देह गत पौने दो सौ वर्ष से यह प्राचीन देश वेग के स मानसिक, नैतिक तथा भौतिक सर्वनाश की ओर बढ़ता चला जा रहा है

११

सब से अन्तिम, किन्तु सब से अधिक गम्भीर प्रश्न हमारे सामने है कि इस घातक विपत्ति से निकलने का हमारे लिए क्या उपाय हो सकता है। इस सम्बन्ध में हमें सब से पहले दो बातों की ओर से विशे सावधान रहना होगा। एक यह कि घबराहट अथवा किसी प्रकार के आवे में आकर हम मानव जीवन के उन उच्च नैतिक सिद्धान्तों से न डिगें

---

† "They are remarkably brave, superior in war to a Asiatics; they are remarkable for simplicity and integrity; s reasonable as never to have recourse to a law suit and so hone as neither to require locks to their doors nor writings to bi their agreement. No Indian was ever known to tell an untruth."—The Greek Historian Arrian, as quoted in Ibid, pp. 132, 133.

* ". . . the alien dominion has a blighting effect up the higher life of the people of India."—Ibid.

पाएँ जिनके बिना मानव समाज का सुख से रह सकना सर्वथा असम्भव है और जो मनुष्य के ऐहिक जीवन के आध्यात्मिक आधार-स्तम्भ हैं। दूसरे यह कि नैराश्य अथवा अकर्मण्यता को हमें एक क्षण के लिए भी अपने पास नहीं फटकने देना चाहिए। इन दोनों बातों में से हम पहले दूसरी के विषय में कुछ कहना चाहते हैं।

आज से पौने दो सौ वर्ष पूर्व भारतवर्ष की एक चप्पा ज़मीन पर भी अङ्गरेज़ों का किसी प्रकार का अधिकार न था। आज से केवल ८७ वर्ष पूर्व तक (१८४२) वे दिल्ली सम्राट को अपना सम्राट स्वीकार करते थे, अपने तईं उसकी विनम्र और आज्ञाकारी प्रजा कहा करते थे, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सिक्कों में दिल्ली सम्राट का नाम खुदा होता था और कम्पनी के भारतीय इलाक़ों के अङ्गरेज़ गवरनर-जनरल की मोहर में 'दिल्ली के बादशाह का फ़िदविए ख़ास' ये शब्द खुदे रहते थे। निस्सन्देह अनभ्यस्त और भोले भारतवासी विदेशियों की इन चालों से धोखे में आते रहे। दिल्ली दरबार की निर्बलता ने धीरे धीरे उन्हें और भी अपाहिज कर दिया। किन्तु ज्योंही भारतवासियों ने यह अनुभव करना शुरू किया कि इस नए राजनैतिक प्रयोग के परिणाम विविध प्रान्तों में देश की रियासतों तथा देश के जीवन के लिए कितने घातक साबित हो रहे हैं, ज्योंही सम्राट शाहआलम की मृत्यु (१८०६) के बाद कम्पनी के प्रतिनिधियों ने सम्राट अकबरशाह और उसके बाद सम्राट बहादुरशाह के पद की अवहेलना शुरू की, उनकी आँखें खुल गईं। उन्होंने सन् ५७ में विदेशी सत्ता से अपने तईं स्वाधीन करने का वह ज़ोरदार प्रयत्न किया जिसने एक बार वास्तव में अङ्गरेज़ी राज्य की जड़ों को हिला दिया और उसके अस्तित्व को ख़तरे में डाल दिया। सन् ५७ का विप्लव हमारी पराधीनता के इतिहास की उस समय तक की सब

से महत्वपूर्ण घटना था। उसकी प्रगति और असफलता के कारणों को हमने इस पुस्तक में विस्तार के साथ दूसरे स्थान पर वर्णन किया है।

वास्तव में अङ्गरेज़ी सत्ता भारतवर्ष में पूरी तरह सन् १८५८ ही से जमी। उस समय ही भारतीय साम्राज्य की बाग विधिवत् उस व्यापारी कम्पनी के हाथों से नहीं, जो अन्त समय तक दिल्ली सम्राट की प्रजा होने का बनावटी दावा करती रही, वरन् स्वयं भारत के अन्तिम सम्राट बहादुर शाह के हाथों से इङ्गलिस्तान की मलका विक्टोरिया के हाथों में दी गई। ७० वर्ष का समय अथवा १७० वर्ष का समय भी किसी देश के इतिहास में और विशेष कर भारत जैसे प्राचीन तथा सुसभ्य देश के इतिहास में कोई लम्बा समय नहीं होता। विप्लव के बाद भी भारत ने अपनी स्वाधीनता के प्रयत्नों को एक क्षण के लिए भी ढीला होने नहीं दिया। सन् ५७ के विप्लव में और पञ्जाब के कूका विद्रोह में केवल १५ वर्ष का अन्तर था, विप्लव में तथा कॉङ्ग्रेस के जन्म में २८ वर्ष का, कॉङ्ग्रेस के जन्म तथा बङ्गभङ्ग के बाद के आन्दोलन में २० वर्ष का, बङ्गभङ्ग तथा उस असहयोग आन्दोलन में, जिसने फिर एक बार सन् ५७ के विप्लव से भी अधिक और उससे उच्चतर उपायों द्वारा अङ्गरेज़ी राज्य के अस्तित्व को ख़तरे में डाल दिया, और जिसके विषय में तत्कालीन गवरनर-जनरल को स्वीकार करना पड़ा कि 'उस आन्दोलन की सफलता में केवल एक इञ्च की कसर बाक़ी रह गई थी,' और 'मैं हैरान और परेशान था,'* केवल १५ वर्ष का।

---

* 'His programme came within an inch of success,' 'I stood puzzled and perplexed,'—Lord Reading at Calcutta on the Non-Cooperation Movement of 1921.

स्वयं इङ्गलिस्तान के ऊपर रोमन लोगों की हुकूमत चार सौ वर्ष तक जारी रही। उसके बाद सदियों नॉर्मन जाति के लोगों ने इङ्गलिस्तान को अपने अधीन रक्खा। इङ्गलिस्तानिवासियों को रोमन लोगों अथवा नॉर्मन लोगों के राजनैतिक चङ्गुल से अपने को मुक्त करने में, आइरिश जाति को अङ्गरेज़ों के पञ्जे से अपने को आज़ाद करने में, अमरीका को इङ्गलिस्तान का जुआ अपने ऊपर से उखाड़ कर फेंकने में, इतालिया को ऑस्ट्रिया की पराधीनता से छुटकारा पाने में अथवा अपने ही देश में रूस को ज़ार की अत्याचारी सत्ता का अन्त करने में इत्यादि, यदि ध्यान से देखा जाय तो इससे कम समय नहीं लगा। भारत जैसे प्राचीन और विशाल देश का अपने प्रियतम आदर्शों के विरुद्ध नई परिस्थिति के अनुसार अपने जीवन को ढाल सकना और इस नए ढङ्ग के संग्राम के लिए अपने तईं सुसन्नद्ध कर सकना आसान काम नहीं है। तथापि इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता कि इस विषय में भारत की जनता के अन्दर जागृति और तत्परता दिन प्रतिदिन वेग के साथ बढ़ती जा रही है। हर नया आन्दोलन पिछले आन्दोलन की अपेक्षा हमें साफ़ सैकड़ों क़दम आगे पहुँचा देता है। दूसरी ओर जिन लोगों ने संसार के विविध साम्राज्यों के बनने और बिगड़ने के इतिहासों को ध्यान से पढ़ा है और उनके कारणों का अध्ययन किया है, वे पूरी तरह समझ रहे हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य की अवस्था इस समय बिलकुल उस विशाल वृक्ष के समान है जिसका तना ऊपर से देखने में मोटा है, जिसकी शाखें लम्बी हैं, जिस पर कहीं कहीं घने पत्ते भी नज़र आते हैं, किन्तु जिसकी जड़ों को आन्तरिक दोषों ने दीमक की तरह इधर से उधर तक खोखला कर रक्खा है, और जिसका किसी समय भी हवा के एक झोंके से उन्मूल हो जाना असन्दिग्ध है।

हम केवल अलङ्कार की भाषा का उपयोग नहीं कर रहे हैं। इतिहास के एक विनम्र विद्यार्थी की हैसियत से हमारा अनुमान है कि जितने लक्षण भी किसी साम्राज्य के नाश के समय उसमें पैदा हो जाते हैं और जो उसे मृत्यु की ओर ले जाए बिना नहीं रह सकते वे इस समय ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर ज़ोरों के साथ उभर रहे हैं। इङ्गलिस्तान के प्रसिद्ध दार्शनिक और तत्ववेत्ता एडवर्ड कारपेण्टर ने अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दों में अपने देश की तुलना एक ऐसे मरणासन्न व्यक्ति के साथ की है जिसकी नाड़ियों में जगह-जगह 'स्वर्ण रज' के अटक जाने के कारण उन नाड़ियों से रक्त का प्रवाह लगभग बन्द हो चुका।

दूसरी बात हमने ऊपर यह कही थी कि किसी प्रकार की घबराहट अथवा आवेश में आकर हम मानव जीवन के उच्चतर नैतिक सिद्धान्तों से न डिगने पाएँ। वास्तव में भारतवासियों के लिए सब से पहला कार्य अपने धार्मिक तथा नैतिक आदर्शों को स्थिर करना है। उसके बाद उन्हें अपने कर्तव्य की ओर अग्रसर होना होगा। हमें यह पूरी तरह ध्यान में रखना होगा कि जिन सदाचार शून्य-स्वार्थमय नींवों पर यूरोप ने अपनी अर्वाचीन सभ्यता को क़ायम करना चाहा और जिनके बल उसने भारतीय जीवन को इतनी भयङ्कर हानि पहुँचाई, उनका परिणाम अन्त में क्या हुआ। समस्त अर्वाचीन यूरोपियन सभ्यता अपने अद्भुत विज्ञान, विशाल पुतली-घरों, विचित्र साम्राज्यवाद और नवीन भयङ्कर पूँजीवाद को लेकर दो सौ वर्ष भी सुख चैन से न जी सकी। आज यूरोप मनुष्य मनुष्य के बीच कलह, श्रेणी श्रेणी के बीच कलह, और देश देश के बीच कलह का मक़तल बना हुआ है। यूरोप ही के प्रत्येक देश की ९० फ़ीसदी आबादी के लिए यह अन्तर्वर्गीय और अन्तर्राष्ट्रीय कलह तथा प्रतिस्पर्धा, दुख, विपत्तियों तथा

सार्वजनिक नाश का कारण साबित हो रही है। गत यूरोपियन महायुद्ध ने यूरोप के कुछ विचारवान लोगों की आँखें इस विषय में खोल दी हैं। वे अपने नैतिक आदर्शों को बदलने अथवा यूँ कहना चाहिए कि अपने यहाँ के जीवन में नैतिक आदर्श उत्पन्न करने की आवश्यकता को अनुभव करने लगे हैं। रूस जैसे देशों के पैर उस ओर को थोड़े बहुत बढ़ते हुए भी दिखाई दे रहे हैं। किन्तु विविध यूरोपियन देशों के जिन शासकों को पूँजीवाद तथा नवीन साम्राज्यवाद के नशे ने उन्मत्त कर रक्खा है वे अभी तक अपनी इस घातक प्रवृत्ति से पीछे हटने के लिए तैयार नहीं हैं, और न शायद वे अभी तक उसे घातक अनुभव करते हैं। परिणाम रूप पिछले महायुद्ध से एक कहीं अधिक भयङ्कर तथा विकराल नया महायुद्ध इस समय संसार की आँखों के सामने फिर रहा है, जो सम्भव है, वर्त्तमान यूरोपियन सभ्यता के लिए ताण्डव नृत्य साबित हो। वास्तव में समस्त अर्वाचीन यूरोप ही इस समय एक कठिन परीक्षा के तापदिव्य में से निकल रहा है।

इसके विपरीत जिन नैतिक आदर्शों पर प्राचीन भारत तथा प्राचीन चीन जैसे देशों ने अपने सामाजिक जीवन को क़ायम किया था उन आदर्शों के सहारे ये देश सहस्रों वर्ष तक सुख चैन से रह सके और न्यूनाधिक अपने से सम्बन्ध रखने वाले संसार के अन्य देशों को भी सुख चैन से रख सके।

ऐसी स्थिति में हमें सब से अधिक ध्यान इस बात का रखना होगा कि हम अपने परीक्षित तथा मानव समाज के लिए कहीं अधिक कल्याण-कर आदर्शों को हाथ से न खो बैठें। जो स्थान भटके हुए यूरोप ने आज बिजली और कूटनीति को दे रक्खा है वह हमें मानवप्रेम तथा सत्यता को देना होगा, और प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तिगत 'अधिकारों' पर ज़ोर देने के

स्थान पर हमें मनुष्यमात्र के लिए 'कर्तव्यपालन' को अधिक महत्व देना होगा।

इसके बाद हमें अपने भीतर के घातक सामाजिक पापों की ओर दृष्टि डालनी होगी और साहस के साथ उन्हें अपने राष्ट्रीय जीवन से उखाड़ कर फेंकना होगा। असत्य को छोड़ कर हमें फिर से अपने राष्ट्रीय जीवन को सत्य की नींव पर क़ायम करने का महान प्रयत्न करना होगा। हमारा पथ इस विषय में बिलकुल स्पष्ट है। आज से लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व जिस मार्ग से विचलित हो जाने के कारण धीरे धीरे हमारी राष्ट्रीय विपत्तियों का प्रारम्भ हुआ, अपने कल्याण के उसी एक मात्र मार्ग को हमें फिर से ग्रहण करना होगा। हमें यह स्वीकार करना होगा कि मानव समाज के टुकड़े करने वाली पृथक पृथक धर्मों और सम्प्रदायों की दीवारें कृत्रिम तथा हानिकर हैं। कबीर के शब्दों में हमें यह मानना पड़ेगा कि इस संसार में 'दो जगदीश' नहीं हो सकते। हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि किसी देश, किसी काल, किसी जाति अथवा किसी भाषा विशेष ने, चाहे वह कितनी भी प्राचीन क्यों न हो, ईश्वरीय ज्ञान का ठेका नहीं ले रक्खा। वास्तव में इस प्रकार के मूढ़ विश्वास ही मानव समाज की आधी से अधिक विपत्तियों की जड़ हैं। सारांश यह कि हमें हिन्दू, मुसलमान, जैन, पारसी और ईसाई के झूठे भेदों को सदा के लिए तोड़ देना होगा। जात पाँत अथवा छुआछूत जैसी रूढ़ियों की अनर्गलता और अन्याय्यता को तो आज अधिकांश विचारवान भारतवासी अनुभव करने लगे हैं। इन समस्त भेदभावों को हमें अपने राष्ट्रीय जीवन से समूल उखाड़ कर फेंक देना होगा। इस सब के स्थान पर हमें मानव समता, मानव प्रेम, परसेवा, स्वार्थत्याग, न्याय और सत्यता के उस सार्वजनिक धर्म को अपना एक मात्र

धर्म स्वीकार करना होगा, जिस तक मनसूर और कबीर जैसे अनेक सूफ़ियों और महात्माओं ने हमें लाने का प्रयत्न किया।

निस्सन्देह यदि दो सौ वर्ष पूर्व ही हमने अपने जीवन को इन सच्ची नींवों पर क़ायम कर लिया होता, यदि औरङ्गज़ेब के साथ साथ पृथक पृथक धर्मों की झूठी सङ्कीर्णता ने फिर से देशवासियों के विचारों को पथ-भ्रष्ट न कर दिया होता तो आज इस देश की यह दशा होना असम्भव था। और किसी भी तरह का परिवर्त्तन, सामाजिक अथवा राजनैतिक, केवल रोग की जड़ों को छोड़ कर पत्तियों और डालियों के साथ काट छाँट करना है। इस तरह का कोई परिवर्त्तन चिरस्थायी नहीं हो सकता। वास्तव में यदि सत्य है तो यही है और यदि भारत के अथवा संसार के भावी कल्याण का कोई सच्चा मार्ग है तो यही है।

इसके साथ साथ हमें प्रेम तथा सत्य के पवित्र सिद्धान्तों से न डिगते हुए राजनैतिक क्षेत्र में 'सत्याग्रह' की अजेयता को अनुभव करना होगा और सत्याग्रह के अनन्त बल का अपने अन्दर सञ्चार करना होगा। हमें यह समझना होगा कि प्रत्येक अन्याय अन्यायी तथा अन्याय पीड़ित दोनों को आत्माओं के एक समान पतन का कारण होता है। कोई सच्चा प्रेमी किसी अन्याय को अपनी आँखों के सामने देखते हुए निश्चेष्ट नहीं बैठ सकता। घृणा और द्वेष की अपेक्षा प्रेम, सच्चा और क्रियात्मक प्रेम, एक कहीं अधिक प्रबल शक्ति है। जो मनुष्य किसी भी अन्याय को दूर करने के लिए सच्चे प्रेम के साथ अपने स्वार्थ, अपने सर्वस्व और अपने प्राणों की आहुति देने के लिए प्रस्तुत हो जाता है और हँसते हँसते कर्त्तव्य के नाम पर अनन्त कष्टों का सामना करने के लिए मैदान में निकल पड़ता है, उसकी शक्ति तोपों और बन्दूक़ों की शक्ति के मुक़ाबले में सर्वथा अजेय होती है। इस

शक्ति का थोड़ा बहुत अनुभव हमें अपने हाल के राष्ट्रीय संग्रामों में मि[illegible] चुका है। इसी एक मात्र अमोघ शक्ति का हमें अपने इस दुखित देश [illegible] उद्धार के लिए आश्रय लेना होगा।

तीसरी बात हमें यह भी स्पष्ट दिखाई दे रही है कि अपनी पराधी[illegible] नता के एक-एक विभाग में हमारी ही शक्तियाँ हमारे विरुद्ध का[illegible] कर [illegible] हैं। विदेशी व्यापार के प्रत्येक मद में और विदेशी शासन के प्रत्येक मोहक[illegible] में हम स्वयं ही अपनी बेड़ियों के वास्तविक गढ़ने वाले हैं। बि[illegible] भारतवासियों की सहायता के न विदेशी शासन भारत में क़ायम हो सक[illegible] था और न एक क्षण के लिए इस समय चल सकता है। जाने अथ[illegible] अनजाने, हमारा यह स्वार्थ, हमारा यह पाप ही देश की समस्त वर्तमा[illegible] आपत्तियों की जड़ है और उसी के द्वारा ये आपत्तियाँ क़ायम हैं[illegible] इलाज स्पष्ट है। हमें अपने विनाश के साधनों से सहयोग करने के इ[illegible] महापाप से अपने को मुक्त करना होगा।

निस्सन्देह मार्ग सर्वथा निष्कण्टक नहीं है। किन्तु संसार का कोई [illegible] महान कार्य बिना स्वार्थत्याग और कष्टसहन के सिद्ध नहीं हो सकता। [illegible] कोई मनुष्य अथवा राष्ट्र बिना अपने पिछले पापों का प्रायश्चित्त किए ध[illegible] और कल्याण के मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता। भारत के उद्धार [illegible] इस समय यही और यही एक मात्र मार्ग है। प्रत्येक भारतवासी [illegible] लिए यही सच्चे धर्म अथवा कर्त्तव्य का एक मात्र पथ है।

जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य से उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र से अपने जीव[illegible] में भूलों का होना स्वाभाविक तथा अनिवार्य है। अपनी इन भूलों [illegible] दुष्परिणाम भी प्रत्येक व्यक्ति अथवा राष्ट्र को सहने ही पड़ते हैं। कि[illegible] भविष्य के लिए हमारा हृदय आशा और विश्वास से भरा हुआ है। [illegible]

बार अपने कर्त्तव्य को समझ लेने पर हमें अपने देशवासियों के साहस तथा उनकी शक्ति में भी पूर्ण विश्वास है। हमें विश्वास है कि आजकल का आदर्शशून्य सन्तप्त संसार इन सब बातों में भारत ही के सच्चे मार्ग-प्रदर्शन की बाट जोह रहा है। अपने देश के गत १० वर्ष के इतिहास को ध्यान से देखते हुए हमें निकटवर्ती भविष्य में भारत तथा स्वाधीन भारत के पग उस भावी अपूर्व विजय की ओर साफ़ बढ़ते हुए दिखाई दे रहे हैं।

पहला अध्याय

भारत में यूरोपियन जातियों का प्रवेश

चार सौ वर्ष पूर्व भारत तथा यूरोप का सम्बन्ध

त्यन्त प्राचीन काल से भारतवर्ष मानव जाति की सभ्यता और उसकी उन्नति का एक विशेष स्रोत रहा है और पृथ्वी की विविध जातियों के विकास में एक महत्वपूर्ण भाग लेता रहा है। आज से दो तीन सौ वर्ष पूर्व तक यह देश हर तरह स्वाधीन् था और ज्ञान, विज्ञान, विद्या-प्रचार, कला-कौशल, शासन-प्रबन्ध इत्यादि में संसार के समस्त देशों का शिरोमणि बना हुआ था। उस समय यूरोप का कोई देश सभ्यता के किसी अङ्ग में भी भारत की बराबरी न कर सकता था। धनधान्य की दृष्टि से भारतवर्ष उस समय संसार का सब से अधिक धनवान देश माना जाता था। ईसा की अठारहवीं शताब्दी तक यह देश संसार भर के यात्रियों के लिए एक अपूर्व चमत्कार की जगह, कवियों के लिए उनकी उच्चतम कल्पनाओं का

एक विषय, और धन-लोलुप जातियों के लिए उनकी लालसा का मुख्यतम पदार्थ बना हुआ था। सैकड़ों और हज़ारों वर्षों तक समस्त यूरोप, बल्कि समस्त संसार के बाज़ारों और मण्डियों में अच्छे से अच्छे रेशमी और सूती वस्त्र, आभूषण, बरतन और अनेकानेक अन्य अद्भुत पदार्थ हिन्दोस्तान के बने हुए ही दिखाई पड़ते थे। संसार के व्यापारियों को उस समय भारतीय धन और भारतीय वैभव के ही स्वप्न दिखाई देते थे; और इस भारतीय धन का लालच ही यूरोपनिवासियों को इस प्राचीन देश की ओर खींचकर लाया। वास्तव में बहुत दरजे तक भारत का यह प्राचीन धन-वैभव ही इस देश की समस्त भावी आपत्तियों का मूल कारण हुआ।

चार सौ वर्ष पूर्व तक भारत तथा यूरोप के बीच समस्त व्यापार अरब और ईरान (फ़ारिस) के सौदागरों के ज़रिए होता था। ये साहसी सौदागर भारत के पश्चिमी तट पर भारत के क़ीमती माल से अपने जहाज़ लादते थे, फिर अरब और ईरान की खाड़ियों से होकर उस माल को अपने देशों में ले जाते थे और फिर वहाँ से अधिकतर ख़ुश्की के रास्ते ऊँटों और गाड़ियों पर लादकर उसे यूरोप और अफ़रीका के तमाम देशों में पहुँचाते थे। यूरोप में व्यापार की सबसे बड़ी मण्डियाँ उस समय इतालिया (इटली) देश के वेनिस, जेनोआ आदिक बन्दरगाहों में थीं और वहाँ ही से जमा होकर भारत, ईरान आदिक एशियाई देशों का बना हुआ माल यूरोप के समस्त देशों में पहुँचता था। समुद्र के रास्ते यूरोप से भारतवर्ष आने जाने का मार्ग उस समय किसी को मालूम न था।

न उस समय कोई यूरोपियन जाति इतनी बलवान या इतनी धन-वान थी और न यूरोप से बाहर का कोई ग़ैर-ईसाई मुल्क उस समय किसी यूरोपियन ईसाई जाति के अधीन था।

ईसा की पन्द्रहवीं सदी में कुछ साहसी यूरोप-निवासियों के दिलों में भारत का जल-मार्ग ढूँढ निकालने की उत्कण्ठा उत्पन्न हुई। इसके दो मुख्य कारण थे। एक यह कि स्थल-मार्ग से माल के लाने लेजाने में अनेक असुविधाएँ झेलनी पड़ती थीं। बीच में कई जगह माल को उतारना और फिर से लादना पड़ता था। कई कई जगह पुलों पर, सड़कों पर और मण्डियों में चुङ्गी देनी होती थी। सड़कें भी कहीं अच्छी थीं, तो कहीं ख़राब, और कहीं बिलकुल न थीं। मार्ग में डाकुओं और जङ्गली जानवरों का भय रहता था। देर अधिक लगती थी। और लागत इतनी आ जाती थी कि विशेषकर यूरोप के उत्तर और पश्चिम के हिस्सों तक पहुँचते पहुँचते माल के दाम बहुत बढ़ जाते थे। दूसरा यह कि यूरोप के अन्दर एशियाई माल का समस्त व्यापार उन दिनों प्रायः इतालिया के सौदागरों के हाथों में था, जिनकी कमाई को देख देख कर उत्तर और पश्चिम की यूरोपियन जातियों की स्पर्धा और उनकी धन-लोलुपता और अधिक भड़कती थी।

सबसे पहले स्पेन, पुर्तगाल, हॉलैण्ड (ओलन्दाज़), इङ्गलिस्तान और फ़ान्स इन पाँच देशों के लोगों ने एक दूसरे के बाद जल-मार्ग से भारत पहुँचने के प्रयत्न प्रारम्भ किए। ये प्रयत्न एक सौ वर्ष से ऊपर तक जारी रहे। भूगोल और दिशाओं का बोध भी उन दिनों

यूरोप-निवासियों को इतना अच्छा न था। भारत पहुँचने के लिए कोई वीर अपना जहाज़ लेकर उत्तर की ओर बढ़ा चला जाता था, कोई उत्तर-पूर्व की ओर, कोई उत्तर-पश्चिम की ओर, कोई पश्चिम की ओर, और कोई दक्षिण की ओर। परिणाम यह हुआ कि इनमें से अधिकांश प्रयत्न निष्फल गए, जिनमें असंख्य जानें गईं, अनेक जहाज़ बरबाद हुए और काफ़ी धन नष्ट हुआ। तथापि इन कष्टों और विपत्तियों से साहसी यूरोप-निवासियों ने हिम्मत न हारी, और स्पेन, पुर्तगाल, हॉलैण्ड, इङ्गलिस्तान तथा फ्रान्स के नाविकों के दरमियान भारत का जल-मार्ग ढूँढ निकालने के लिए प्रतिस्पर्धा बराबर बढ़ती गई।

सब से पहला यूरोपियन नाविक, जिसने इस बात का बीड़ा उठाया, इतालिया का रहनेवाला सुप्रसिद्ध कोलम्बस था। स्पेन के राजा ने कोलम्बस को विशेष सहायता दी। भारत पहुँचने के लिए वह यूरोप से ठीक पश्चिम की ओर बढ़ा चला गया। उसका जहाज़ अमरीका के किनारे जा लगा। अमरीका महाद्वीप का पता लगाने और उससे अर्वाचीन यूरोप का सम्बन्ध क़ायम करने का श्रेय कोलम्बस को प्राप्त हुआ, जिसका प्रभाव यूरोप तथा संसार के बाद के जीवन पर ख़ासा ज़बरदस्त पड़ा। किन्तु भारत का जल-मार्ग ढूँढ निकालने की दृष्टि से कोलम्बस का प्रयत्न बिलकुल निष्फल गया। यह एक ख़ास बात है कि कोलम्बस मरते समय तक अमरीका ही को हिन्दोस्तान समझता रहा और उसी भ्रम के सिलसिले में आज तक यूरोप-निवासी अमरीका के आदिम-

निवासियों को "इण्डियन्स" वा "रेड इण्डियन्स" और अमरीका के पास के टापुओं को "वेस्ट इण्डीज़" कहते हैं।

पुर्तगाल-निवासी

सब से पहला यूरोप-निवासी, जिसे इस प्रयत्न में सफलता प्राप्त हुई, पुर्तगाल का रहनेवाला वास्को-दे-गामा नामक एक नाविक था। वास्को-दे-गामा का जहाज़ अफ़रीका के नीचे से केप-आफ़-गुडहोप नामक अन्तरीप का चक्कर लगाता हुआ २२ मई सन् १४९८ ईसवी को मलबार तट पर कालीकट के निकट आकर ठहरा।* कालीकट का राजा उस समय एक हिन्दू था, जिसे सामुद्रिक वा सामुरी (ज़ामोरिन) कहते थे। इस राजा ने वास्को-दे-गामा और उसके ईसाई साथियों का बड़े हर्ष के साथ स्वागत किया और इनकी ख़ूब ख़ातिरदारी की। पुर्तगालियों की प्रार्थना पर सामुरी ने उन्हें अपने राज्य में रहने और व्यापार करने की इजाज़त दे दी। पुर्तगाल से आना जाना बढ़ता गया। सन् १५०० ईसवी में पुर्तगालियों ने अपने व्यापार के लिए कालीकट में एक कोठी बनाई। तीन वर्ष पीछे उन्होंने सामुरी की इजाज़त से अपनी कोठी की क़िलेबन्दी कर ली और अल्बुकर्क नामक एक सेनानी को उसका रक्षक नियुक्त किया। अल्बुकर्क ने किनारे किनारे उत्तर की ओर बढ़कर सन् १५०६ में गोआ प्रदेश पर क़ब्ज़ा कर लिया। भोले भारतवासी उस समय तक इन विदेशियों के वास्तविक चरित्र वा उनके इरादों से सर्वथा

* नहर सुएज़ का रास्ता पहली बार सन् १८६९ में खुला। इससे पूर्व लोग कई महीने ख़र्च करके इसी चक्कर के रास्ते यूरोप से भारत आते जाते थे।

अपरिचित थे। होते होते सन् १५१० ईसवी में पुर्तगालियों का कालीकट के राजा के साथ कुछ झगड़ा हो गया, जिसमें पुर्तगालियों ने कालीकट के राजमहल को आग लगा दी और नगर को लूट लिया। निरपराध तथा उदार सामुरी को केवल बारह वर्ष पूर्व इन परदेसियों पर अनुग्रह करने का यह फल मिला।

राज-शासन की दृष्टि से भारतवर्ष उस समय अनेक छोटी बड़ी रियासतों में बँटा हुआ था, जो एक दूसरे के साथ बहुत कम सम्बन्ध रखती थीं। कोई एक प्रधान शक्ति इन रियासतों को वश में रखने अथवा देश को एक सूत्र में बाँधने वाली न थी। पुराने हिन्दू साम्राज्य बहुत काल पूर्व टुकड़े टुकड़े हो चुके थे, और दिल्ली का मुग़ल साम्राज्य अभी तक क़ायम न हुआ था। प्रतीत होता है कि इस बात का विचार तक कि भारत "एक देश" है उस समय किसी के दिल में मौजूद न था। इसके अतिरिक्त भारतवासी उस समय तक तोप, बन्दूक़ आदिक आग्नेय अस्त्रों का बनाना जानते हुए भी आमतौर पर उसके उपयोग को मानवधर्म के विरुद्ध समझते थे, और पुर्तगाल-निवासी इन हथियारों के इस्तेमाल में निपुण थे। इन सब से बढ़कर भारतवासियों का राजनैतिक भोलापन। परिणाम यह हुआ कि पुर्तगालियों ने लगभग सौ सवा सौ वर्ष के अन्दर भारतीय व्यापार से इतना अधिक धन कमाया कि जिसे देख अन्य यूरोप-निवासी दङ्ग रह गए, और साथ ही इसी समय के अन्दर ये लोग मङ्गलोर, कचिन, लङ्का, दिव, गोआ, बम्बई के टापू और नेगापट्टन के मालिक बन बैठे।

पुर्तगालियों के उस समय के व्यापार में दो बातें ख़ास तौर पर वर्णन करने योग्य हैं। एक यह कि इन लोगों के कुछ जहाज़ भारत के पूर्वीय और पश्चिमीय तटों के बराबर बराबर घूमते रहते थे और किसी भी भारतीय जहाज़ को पास से निकलते हुए देखकर उसे पकड़कर लूट लेते थे। अपने जहाज़ों में बैठकर ये लोग किनारे की आबादियों पर भी धावा कर देते थे, उन्हें लूट लेते थे और कभी कभी मौक़ा पाकर वहाँ के पुरुष स्त्रियों को ग़ुलाम बनाकर पकड़ ले जाते थे। दूसरे ये लोग अफ़रीका तथा अन्य इसी तरह के देशों से अपने जहाज़ों में ग़ुलाम भर भरकर लाते थे और भारत के बाज़ारों में, विशेषकर उन स्थानों में, जो उनके अधीन थे, अत्यन्त सस्ते दामों पर बेच डालते थे।

भारत के जिन प्रदेशों पर पुर्तगालियों का क़ब्ज़ा होगया था, वहाँ की प्रजा के साथ इन लोगों का व्यवहार अत्यन्त अनुदार था। ये लोग कट्टर ईसाई थे और जिस देश पर इनका राज्य होता था वहाँ की प्रजा को ज़बरदस्ती ईसाई बना लेना वे अपना धर्म समझते थे। गोआ में उन्होंने अपनी ग़ैर-ईसाई प्रजा को पकड़कर और उन्हें ला-मज़हब कहकर मार डालने और ज़िन्दा जला देने के लिए एक अदालत क़ायम कर रक्खी थी, जिसे "इंकिज़िशन" कहते थे। इसी लिए आज तक गोआ की अधिकांश आबादी ईसाई है। अपनी भारतीय प्रजा की बेहतरी के लिए पुर्तगालियों ने कभी किसी तरह के प्रयत्न नहीं किए।

१७ वीं शताब्दी के आरम्भ में पुर्तगालियों का व्यापार बङ्गाल

की ओर फैलने लगा। बङ्गाल का कोई भाग पुर्तगालियों के शासन में न आया ; तथापि वहाँ भी वही लूट मार, वही ज़्यादतियाँ, वही ग़ुलाम और बाँदियों का व्यापार चल पड़ा। किन्तु इस समय तक मुग़ल साम्राज्य की जड़ें पक्की हो चुकी थीं। शाहजहाँ अब दिल्ली के तख़्त पर था। बङ्गाल का शासन दिल्ली-सम्राट के अधीन एक सूबेदार के हाथ में था। सूबेदार ने अपने अहलकारों के ज़रिए पुर्तगालियों को उनकी ज़्यादती के विरुद्ध आगाह किया। पुर्तगालियों ने सूबेदार की आज्ञाओं की ख़ाक परवा नहीं की। इन बातों की शिकायत शाहजहाँ के कानों तक पहुँची। उसने तुरन्त पुर्तगालियों के दमन के लिए एक सेना भेजी। पुर्तगाली हरा दिए गए। उनकी हुगली की कोठियाँ गिरा दी गईं। उनके जहाज़ जला डाले गए और बचे खुचे पुर्तगाली क़ैद करके आगरे पहुँचा दिए गए। यहीं से पुर्तगालियों की भारतीय सत्ता का अन्त शुरू होता है।

भारत से पुर्तगालियों की सत्ता के मिटने का एक कारण यह भी बताया जाता है कि बहुत अधिक धनाढ्य हो जाने के कारण धीरे धीरे ये लोग भोग-विलास में पड़ गए थे। एक पुर्तगाली लेखक लिखता है—"पुर्तगाल-निवासियों ने एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में सलीब (क्रॉस) लेकर भारतवर्ष में प्रवेश किया, किन्तु जब उन्हें यहाँ बहुत अधिक सोना नज़र आया तो उन्होंने सलीब को अलग रखकर उस हाथ से अपनी जेबें भरनी शुरू कर दीं। और जब उनकी जेबें इतनी भारी हो गईं कि वे उन्हें एक हाथ से न सँभाल सके तो उन्होंने तलवार भी फेंक दी। इस

हालत में जो लोग उनके बाद आए वे आसानी से उन पर हावी हो सकें।"*

पुर्तगालियों के लगभग सौ वर्ष पीछे, १६ वीं सदी के अन्त में, एक दूसरे यूरोपियन देश हॉलैण्ड के रहनेवाले, जिन्हें "डच" कहते हैं, भारत पहुँचे। इन लोगों ने आसानी से पुर्तगालियों के रहे सहे जहाज़ आदिक जलाकर उनकी शेष सत्ता अपने हाथों में ले ली।

आज दिन पुर्तगालियों का राज्य हिन्दोस्तान के अन्दर केवल गोआ और दो एक छोटे छोटे टापुओं पर बाक़ी रह गया है।

डच

यूरोप में डच लोगों ने भारत के धन वैभव का ज़िक्र पहले पहल पुर्तगालियों से सुना। उनके दिल में भी भारत पहुँचकर धन कमाने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। जल-मार्ग से भारत आने के इन्होंने अनेक निष्फल प्रयत्न किए। अन्त में सन् १५९८ ईसवी तक इनके जहाज़ अफ़रीका के नीचे से जावा होकर भारत पहुँचने लगे।

डच जाति के लिखे हुए इतिहास से मालूम होता है कि भारत के नरेशों ने इनका वैसा ही अच्छा स्वागत किया जैसा कि शुरू में पुर्तगालियों का किया था। पुर्तगालियों से इनकी प्रतिस्पर्धा थी। जिस प्रकार पुर्तगालियों ने अरब सौदागरों की रोज़ी छीनी थी उसी प्रकार डच अब पुर्तगालियों की रोज़ी छीनने या कम से कम

* Alfonzo-de-Souza, Governor of Portuguese India, 1545.

उसमें हिस्सा बटाने के लिए उत्सुक थे। इन लोगों ने भारतवासियों से पुर्तगालियों की ख़ूब बुराइयाँ कीं। मुग़ल सम्राट ने इन्हें अब व्यापार के लिए कोठियाँ बनाने और अपनी रक्षा के लिए क़िलेबन्दी करने की इजाज़त दे दी।

सब से प्रथम पुलीकट और मद्रास नामक स्थानों पर इन्होंने अपनी कोठियाँ बनाईं और क़िले खड़े किए। पुलीकट मौजूदा मद्रास के उत्तर में, और मद्रास उसके दक्षिण में है। बढ़ते बढ़ते सन् १६६३ ईसवी में उनकी एक कोठी आगरे में थी जिसमें जौ सड़ाकर उससे शराब तैयार की जाती थी। इसी तरह की उनकी कोठियाँ सूरत, अहमदाबाद और पटने में मौजूद थीं। धीरे धीरे बङ्गाल में भी उनका व्यापार बढ़ने लगा और सन् १६७५ में उन्होंने चिनसुरा में एक कोठी क़ायम की।

जब तक डच लोगों की दृष्टि केवल व्यापार पर रही, उन्होंने भारत से ख़ूब धन कमाया, किन्तु इसके बाद उनमें भारत के अन्दर अपना राज्य क़ायम करने की इच्छा उत्पन्न हुई। इस बीच अङ्गरेज़ जाति भी भारत पहुँच गई और इस देश को अपने अधीन करने के लिए हर तरह के उपाय करने लगी। डच जाति को अधिक चतुर अङ्गरेज़ों के साथ टक्कर खानी पड़ी। प्लासी के संग्राम के दो वर्ष बाद अगस्त सन् १७५९ ईसवी में डच लोगों के सात जङ्गी जहाज़ एकाएक चुँचड़ा के नीचे आ धमके। अङ्गरेज़ों का प्रभाव उस समय ख़ासा जम चुका था। अङ्गरेज़ों ने उन्हें चुँचड़ा तक पहुँचने भी न दिया और बङ्गाल के नवाब की सहा-

यता से पूरी तरह शिकस्त देकर पीछे हटा दिया। उसी समय से डच लोगों का भारतीय व्यापार घटने लगा। अन्त में सन् १८०५ ईसवी में अङ्गरेज़ों ने चुँचड़ा (चिनसुरा) और मलाका के बदले में उन्हें सुमात्रा का टापू देकर डच जाति के अन्तिम चिह्न को इस देश से मिटा दिया।

अङ्गरेज़

१६ वीं शताब्दी के आरम्भ में पुर्तगालियों का भारतीय व्यापार बढ़ने के कारण पुर्तगाल की राजधानी लिसबन का महत्व और उसका वैभव यूरोप में दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था। इङ्गलिस्तान के रहनेवालों को इससे ईर्षा होना स्वाभाविक था। इङ्गलिस्तान में उस समय ब्रिस्टल का बन्दरगाह व्यापार की दृष्टि से सब से आगे था। प्रत्येक यूरोपियन क़ौम के लोग उन दिनों दूसरी क़ौम के माल से लदे जहाज़ों को पकड़कर लूट लेना अपने लिए एक न्याय्य व्यापार समझते थे। भारत तथा एशियाई समुद्रों में भी इन लोगों ने इस तरह की लूट का बाज़ार ख़ूब गरम कर रक्खा था। ब्रिस्टल के नाविक अनेक पुश्तों से बड़े मशहूर समुद्री डाकू गिने जाते थे। सब से पहले ब्रिस्टल ही के एक सौदागर ने इङ्गलिस्तान के बादशाह आठवें हेनरी को भारत के मार्ग की खोज कराने की सलाह दी।

पचास वर्ष से कुछ ऊपर तक इङ्गलिस्तान के बड़े बड़े नाविक उत्तर-पश्चिम से होकर भारत पहुँचने के निष्फल प्रयत्न करते रहे।

सन् १५७८ में, जबकि इङ्गलिस्तान का एक मशहूर नाविक सर फ्रैन्सिस ड्रेक भारत से लिसबन जाने वाले एक पुर्तगाली जहाज़ को पकड़कर लूट रहा था, उस लूट में उसे कुछ नक़्शे मिले, जिनसे अङ्गरेज़ों को पहली बार भारत के उस समय के जल-मार्ग का कुछ पता चला।

सन् १६०० ईसवी में इङ्गलिस्तान की रानी एलिज़ेबेथ ने सुप्रसिद्ध "ईस्ट इण्डिया कम्पनी" की रचना की। यह कम्पनी उन अङ्गरेज़ व्यापारियों की एक मण्डली थी, जो हिन्दोस्तान के साथ व्यापार करने की इच्छा रखते थे। यह बात स्मरण रखने योग्य है कि जो फ़रमान रानी एलिज़ेबेथ ने इस अवसर पर जारी किया, उसमें इस कम्पनी को इस प्रकार के साहसी लोगों की मण्डली (Society of Adventurers) कहा गया है जो लूट, सट्टे आदिक के लिए निकलते हैं और जो अपने धन कमाने के उपायों में सच-झूठ, ईमानदारी-बेईमानी अथवा न्याय-अन्याय का अधिक ख़याल नहीं रखते। कम्पनी के डाइरेक्टरों ने आरम्भ ही में इस बात का निश्चय कर लिया था कि हम "किसी ज़िम्मेवारी की जगह किसी शरीफ़ (ख़ान्दानी) आदमी को नियुक्त न करेंगे।"* और मलका के नाम अपने प्रार्थनापत्र में लिख दिया था कि—"हमें अपना व्यापार अपने ही जैसे आदमियों द्वारा चलाने

* "Not to employ any gentleman in any place of charge." —Bruce's *Annals of the Hon'ble East India Company*, vol. i, p. 128.

की इजाज़त होनी चाहिए, क्योंकि यदि लोगों को इस बात का सन्देह भी हो गया कि हम ख़ान्दानी आदमियों को अपने यहाँ नौकर रक्खेंगे तो सम्भव है, हमारे बहुत से साहसिक पत्तीदार अपनी पत्तियाँ वापस ले लें।"* यही भारत के अन्दर इस अङ्गरेज़ कम्पनी के ढाई सौ वर्ष के कारनामों और उसकी समस्त नीति की कुञ्जी है। इन ढाई सौ वर्ष के अन्दर कम्पनी के मेम्बरों, मुलाज़िमों आदिक में विरले ही ऐसे हुए होंगे जिन्हें 'शरीफ़' कहा जा सके।

नक़्शे मिलने के तीस वर्ष बाद अर्थात् सन् १६०८ ईसवी में पहला अङ्गरेज़ी जहाज़ हिन्दोस्तान पहुँचा। इस जहाज़ का नाम 'हेक्टर' था। 'हेक्टर' प्राचीन यूनान के एक वीर योद्धा का नाम था। अङ्गरेज़ी में हेक्टर शब्द का अर्थ 'झगड़ालू' या 'छेड़-बाज़' है। यह जहाज़ सूरत के बन्दरगाह में आकर लगा। सूरत उस समय भारतीय व्यापार का एक विशेष केन्द्र था। जहाज़ का कप्तान हॉकिन्स पहला अङ्गरेज़ था, जिसने समुद्र के रास्ते आकर भारत की भूमि पर क़दम रखा। इङ्गलिस्तान के बादशाह जेम्स अव्वल की ओर से दिल्ली के मुग़ल सम्राट के नाम हॉकिन्स अपने साथ एक पत्र लाया जो उसने आगरे पहुँचकर सम्राट जहाँगीर के सामने पेश किया। यह बात केवल तीन सौ वर्ष पूर्व की है। उस समय के इङ्गलिस्तान के बादशाह जेम्स अव्वल के राज्य और भारत के मुग़ल साम्राज्य की—क्षेत्रफल, आबादी, धन, वैभव, तिजारत, कला-कौशल, दस्तकारी, ख़ुशहाली, शासन-प्रबन्ध, विद्या, बल—

* *Ibid.*

किसी बात में भी किसी प्रकार की तुलना नहीं की जा सकती। जहाँगीर के दरबार में उस समय किसी को इस बात का अनुमान भी न हो सकता था कि दूरवर्ती पश्चिम की एक छोटी सी निर्बल, असभ्य अथवा अर्द्ध-सभ्य जाति का जो दूत उस समय दरबार में दोज़ानू होकर ज़मीन चूम रहा था उसी के वंशज एक रोज़ मुग़ल साम्राज्य के अङ्ग भङ्ग हो जाने पर हिन्दोस्तान के ऊपर शासन करने लगेंगे। जहाँगीर ने हॉकिन्स की ख़ूब ख़ातिर की। किन्तु पुर्तगाली पहले से दरबार में मौजूद थे, उन्होंने जहाँगीर से अङ्गरेज़ों की ख़ूब बुराइयाँ कीं। सन् १६१२ ईसवी में अङ्गरेज़ों ने सूरत के निकट कुछ पुर्तगाली जहाज़ों पर हमला करके उन्हें गिरफ़्तार कर लिया। उसी समय से सूरत में पुर्तगालियों का प्रभाव घटने और अङ्गरेज़ों का प्रभाव बढ़ने लगा।

६ फ़रवरी सन् १६१३ को जहाँगीर ने एक शाही फ़रमान के ज़रिए अङ्गरेज़ों को अपने व्यापार के लिए सूरत में एक कोठी बनाने की इजाज़त दे दी; और यह भी इजाज़त दे दी कि मुग़ल दरबार में इङ्गलिस्तान का एक एलची रहा करे।

इङ्गलिस्तान के बादशाह ने सर टॉमस रो को मुग़ल दरबार में अपना पहला एलची नियुक्त करके भेजा। सर टॉमस रो सन् १६१५ ईसवी में भारत पहुँचा और अपनी नम्रता तथा सौजन्य द्वारा उसने अङ्गरेज़ी व्यापार के लिए सम्राट से अनेक नई रिआयतें हासिल कर लीं।

मिसाल के तौर पर सन् १६१६ में अङ्गरेज़ों को कालीकट

और मछलीपट्टन में कोठियाँ बनाने की इजाज़त मिल गई। उस समय भारत में रहनेवाले अङ्गरेज़ चूँकि भारत-सम्राट की प्रजा थे, इसलिए यदि उनमें कोई झगड़ा होता था तो देशी अदालतों में ही उसकी सुनाई होती थी और वहीं से उन्हें दण्ड आदिक दिए जाते थे। सन् १६२४ ईसवी में अङ्गरेज़ों की प्रार्थना पर जहाँगीर ने एक शाही फ़रमान इस मज़मून का जारी कर दिया कि आयन्दा अपनी कोठी के अन्दर रहनेवाले कम्पनी के किसी मुलाज़िम के क़सूर करने पर अङ्गरेज़ उसे स्वयं दण्ड दे सकते हैं। इस घटना की आलोचना करते हुए टॉरेन्स नामक एक विद्वान अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है —

"बादशाह न्यायशील और बुद्धिमान था। वह उनकी आवश्यकताओं को समझता था। जो उन्होंने माँगा उसने मन्ज़ूर कर लिया। उसे यह स्वप्न में भी नज़र न आ सकता था कि एक दिन अङ्गरेज़ इसी छोटी सी जड़ से बढ़ते बढ़ते बादशाह की प्रजा और उसके उत्तराधिकारियों तक को दण्ड देने का दावा करने लगेंगे; और यदि उनका विरोध किया जायगा तो प्रजा का संहार कर डालेंगे और बादशाह के उत्तराधिकारी को बाग़ी कह-कर आजीवन क़ैद कर लेंगे।"*

इसके बाद शाहजहाँ का समय आया। सन् १६३४ ई० में पुर्तगालियों को बङ्गाल से निकालने के बाद शाहजहाँ ने अङ्गरेज़ों को बङ्गाल में तिजारत करने की इजाज़त दे दी। सन् १६३९ ई० में अङ्गरेज़ों ने मद्रास में अपनी एक कोठी क़ायम की। उन दिनों

* "The Padishah, being a just man and wise, understood

बङ्गाल में अङ्गरेज़ों को अन्य देशी व्यापारियों के समान अपने माल पर चुङ्गी देनी पड़ती थी ; और उनके जहाज़ शाही फ़रमान के अनुसार हुगली के बहुत नीचे पिपली नामक स्थान पर रुक जाते थे। हुगली तक जहाज़ लाने की उन्हें इजाज़त न थी।

सन् १६४० ई० में शाहजहाँ की एक लड़की किसी तरह जल गई। एक अङ्गरेज़ डॉक्टर ने उसका इलाज किया और अच्छा कर दिया। इनाम में अङ्गरेज़ डॉक्टर की प्रार्थना पर शाहजहाँ ने बङ्गाल भर के अन्दर अङ्गरेज़ों के माल पर चुङ्गी माफ़ कर दी, और उन्हें उस प्रान्त में कोठियाँ बनाने तथा उनके जहाज़ों को हुगली तक आने की इजाज़त दे दी। इसी फ़रमान के अनुसार १६४० ई० में कलकत्ते की कोठी बनी। शाह शुजा उस समय बङ्गाल का सूबेदार था। उसने सम्राट के फ़रमान के अनुसार 'परदेसी' अङ्गरेज़ों को अपना व्यापार जमाने में हर तरह की मदद दी।

इसके बाद औरङ्गज़ेब का समय आया। बम्बई का टापू, जहाँ पर उस समय केवल एक छोटी सी पुर्तगाली बस्ती थी, सन् १६६१ ई० में इङ्गलिस्तान के बादशाह को पुर्तगालियों से दहेज़ में मिला और सन् १६८८ ईसवी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उसे अपने बादशाह से ख़रीद लिया। सन् १६६४ ईसवी के निकट शिवाजी का

their needs, and yielded what they asked, little dreaming that the time would come, when, from such root of title, they would claim jurisdiction over his subjects and successors, and, as the penalty of resistance, decimate the one, and imprison the other for life as guilty of rebellion."—Torrens' *Empire in Asia*, pp. 10, 11. *Allahabad.*

बल बढ़ने लगा। सूरत के अङ्गरेज़ कोठीवालों ने औरङ्गज़ेब को शिवाजी के विरुद्ध मदद देने और मुग़ल साम्राज्य की ओर से सूरत की रक्षा करने का औरङ्गज़ेब से वादा किया। खुश होकर औरङ्गज़ेब ने उनके साथ कई तरह की नई रिआयतें कर दीं।

किन्तु शुरू के इन अङ्गरेज़ व्यापारियों का सदाचार और व्यवहार अत्यन्त गिरा हुआ था। किसी भी दूसरी क़ौम के माल से लदे जहाज़ को पकड़कर लूट लेना इनके लिए एक साधारण बात थी। स्वयं अपने अङ्गरेज़ तथा अन्य यूरोपियन भाइयों के साथ इनके सुलूक की यह हालत थी कि जो मनुष्य इनसे सस्ता माल बेचता था या किसी और तरह उससे इनके व्यापार में बाधा पड़ती थी उसे ये मौक़ा पाकर पकड़ लेते थे और या तो कोड़े मार मार कर मार डालते थे और या अपनी कोठी में बन्द करके भूखों मार देते थे। *

भारतवासियों के साथ इनका व्यवहार हद दर्जे की ज़्यादती और बेईमानी का था। सूरत की कोठी के अङ्गरेज़ों के विषय में फ़िलिप एण्डरसन नामक एक विद्वान अङ्गरेज़ पादरी लिखता है:—

"ज्यों ज्यों इन साहसिक आगन्तुकों की संख्या बढ़ती गई, उनसे अङ्गरेज़ क़ौम की नेकनामी नहीं बढ़ी। इनमें से बहुत ज़्यादा लोग ज़बर-दस्तियाँ और बेईमानियाँ करते थे × × × हिन्दू और मुसलमान दोनों

* " . . . they made it a rule to whip to death or starve to death those of whom they wished to get rid, . . . to murder private traders."—*Mill, Wilson's note, vol. i., Chap. ii*

अङ्गरेज़ों को गाय खानेवाले और आग पीनेवाले नीच दरिन्दे समझते थे और कहते थे कि ये लोग उन बड़े बड़े कुत्तों से भी ज़्यादा जङ्गली हैं जिन्हें ये अपने साथ लाते हैं, ये शैतान की तरह लड़ते हैं, अपने बाप को भी धोखा दे लेते हैं और गोलियों की बौछार तथा भालों की मार, अथवा माल की गठरी तथा रुपयों की थैली कुछ भी अदल बदल करने के लिए हरदम एक समान तैयार रहते हैं।"*

अङ्गरेज़ों के इस व्यवहार को देखकर भारतवासियों का ख़याल ईसाई धर्म के विषय में भी उन दिनों बहुत ख़राब हो गया था। पूर्वोक्त विद्वान आगे चलकर लिखता है—

"किन्तु टेरी साहब का बयान है कि भारतवासी ईसाई धर्म को बहुत गिरी हुई चीज़ ख़याल करते थे। सूरत में लोगों के मुँह से इस प्रकार के वाक्य प्रायः सुनने में आते थे—'ईसाई मज़हब शैतान का मज़हब है, ईसाई बहुत शराब पीते हैं, ईसाई बहुत बदमाशी करते हैं, बहुत मार-पीट करते हैं, दूसरों को बहुत गालियाँ देते हैं।' टेरी ने इस बात को स्वीकार किया है कि भारतवासी स्वयं बड़े सच्चे और ईमानदार थे, और अपने तमाम वादों को पूरा करने में पक्के थे; किन्तु यदि कोई हिन्दोस्तानी

* "As the number of adventurers increased the reputation of the English was not improved. Too many committed deeds of violence and dishonesty. . . . Hindus and Musalmans considered the English a set of cow-eaters and fire-drinkers, vile brutes, fiercer than the mastiffs which they brought with them, who would fight like Eblis, cheat their own fathers, and exchange with the same readiness a broadside of shot and thrusts of boarding pikes, or a bale of goods and a bag of rupees."—*The English in Western India, by Rev. Philip Anderson, p. 22.*

सौदागर अपने माल की कुछ क़ीमत बताता था और उस क़ीमत से बहुत कम ले लेने के लिए उससे कहा जाता था तो वह प्रायः जवाब में कह पड़ता था—'क्या तुम मुझे ईसाई समझे हो, जो मैं तुम्हें धोखा देता फिरूँगा ?' "*

यदि अङ्गरेज़ सब से पहले सूरत में पहुँचे तो सब से अन्त में बङ्गाल पहुँचे ; किन्तु वहाँ भी उनका व्यवहार वैसा ही रहा। इतिहास लेखक सी० आर० विलसन लिखता है—

"बङ्गाल में भी अङ्गरेज़ अपने झगड़ालूपन के लिए उतने ही बदनाम थे××× वहाँ का बूढ़ा सूबेदार नवाब शाइस्ता ख़ाँ उन्हें 'नीच, झगड़ालू लोगों और जुआचोरों की कम्पनी' कहा करता था; और आजकल का कोई ज़बरदस्त प्रामाणिक इतिहासज्ञ इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि नवाब के पास अपने इस कथन के लिए काफ़ी अच्छे प्रमाण थे। उस समय के तमाम उल्लेखों की पूरी तरह छान बीन करने के बाद सर हेनरी यूल के दिल पर यह असर पड़ा कि बङ्गाल की खाड़ी के अन्दर

---

* "But, according to Terry, the natives had formed a mean estimate of Christianity. It was not uncommon to hear them at Surat giving utterance to such remarks as—Christian religion, devil religion, Christian much drunk, Christian much do wrong much beat, much abuse others. Terry admitted that the natives themselves were 'very square' and exact to make good all their engagements; but if a dealer was offered much less for his articles than the price which he had named, he would be apt to say, 'What! dost thou think me a Christian, that I would go about to deceive thee?' "—*Ibid.*, *p. 32*

कम्पनी के मुलाज़िमों की नैतिक और सामाजिक अवस्था 'निस्सन्देह भयङ्कर' थी।"*

थोड़े ही दिनों में ख़ासकर बम्बई के अन्दर अङ्गरेज़ सौदागरों के अत्याचार इतने बढ़ गए कि उनकी शिकायत औरङ्गज़ेब के कानों तक पहुँची। फ़ौरन औरङ्गज़ेब ने हुकुम जारी कर दिया कि इन लोगों की कोठियाँ ज़ब्त कर ली जायँ और इन्हें मार कर हिन्दोस्तान से बाहर निकाल दिया जाय। सूरत, विशागपट्टन आदिक कई स्थानों की अङ्गरेज़ी कोठियाँ ज़ब्त कर ली गईं और वहाँ से अङ्गरेज़ों को निकालकर बाहर कर दिया गया। बम्बई को घेर लिया गया। किन्तु ये लोग काफ़ी चालाक थे। वे फ़ौरन औरङ्गज़ेब के क़दमों पर गिर पड़े। उन्होंने कान पकड़कर अपनी पिछली ख़ताओं के लिए माफ़ी चाही, आयन्दा के लिए नेक चलनी का वादा किया और मुग़ल सम्राट से जाँबख़्शी की प्रार्थना की। † औरङ्गज़ेब ने उदारता में आकर और उन पर विश्वास करके उन्हें बख़्श

* "The English in Bengal were equally notorious for their quarrels. . . . The old Viceroy, Shayista Khan, called them 'a company of base, quarrelling people and foul dealers;' and our great modern authority will not gainsay that the noble had good grounds for his assertion. The impression of the moral and social tone of the Company's servants in the Bay which has been left on the mind of Sir Henry Yule by his exhaustive study of the records of the time is 'certainly a dismal one'"—*Dr. C. R Wilson's Early Annals of the English in Bengal, vol. i. p. 66.*

† "Stooped to the most abject submission"—*Mill, book i, chap v.*

दिया और सूरत आदिक की कोठियाँ उन्हें वापस दे दीं। सन् १६९९ में औरङ्गज़ेब ने उन्हें कई नई कोठियाँ क़ायम करने और वहाँ पर अपनी हिफ़ाज़त के लिए क़िलेबन्दी करने तक की इजाज़त दे दी।

औरङ्गज़ेब ही के समय में उसके पौत्र अज़ीमशाह ने बङ्गाल के सूबेदार की हैसियत से हुगली नदी के ऊपर छूतानटी, कलकत्ता, और गोविन्दपुर नाम के तीन गाँव बतौर जागीर कम्पनी को दे दिए। उसी समय फ़ोर्ट विलियम क़िले की बुनियाद डाली गई। टॉरेन्स लिखता है कि उस समय दिल्ली सम्राट की दृष्टि में अङ्गरेज़ एक इतनी तुच्छ चीज़ थे कि उसे उनकी इन कार्रवाइयों में दख़ल देना इन ग़रीब परदेसियों के साथ अन्याय करना मालूम होता था। * वह हर तरह उनके साथ दया और उदारता का ही व्यवहार करता रहता था।

औरङ्गज़ेब के बाद मुग़ल साम्राज्य की निर्बलता का समय आया। कम्पनी के अङ्गरेज़ों को मौक़ा मिला। उनके अत्याचारों ने और अधिक गम्भीर तथा भयङ्कर रूप धारण किया। इस बीच धीरे धीरे भारत के पूर्वीय तथा पश्चिमीय तटों पर ईस्ट इण्डिया

* "If he (The Mogul) was told of their planting stockade and putting a sort of fortification there, why should he trouble himself regarding it? Likely enough his native subjects around them were jealous and disposed to be quarrelsome. Why should not Firanghees defend themselves as best they might? Poor people! they had come a long way, and seemed to work hard—he would not interfere."—*Torrens' Empire in Asia, p. 4, 5.*

कम्पनी की अनेक नई कोठियाँ बन गईं। अङ्गरेज़ी व्यापार भारत में बढ़ता गया और कम्पनी के पत्तीदार तथा छोटे बड़े मुलाज़िम सभी भारत के धन से मालामाल होगए। औरङ्गज़ेब की मृत्यु के ठीक पचास वर्ष पश्चात् बङ्गाल में अङ्गरेज़ों के राज-शासन की नींव रक्खी गई, जिसकी कहानी एक दूसरे स्थान पर बयान की जायगी।

फ़ान्सीसी

सब से अन्तिम यूरोपियन क़ौम, जो उस सिलसिले में भारत आई, फ़ान्सीसी थी। फ़ान्सीसी अथवा फ्रेञ्च फ़ान्स देश के रहनेवालों को कहते हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मुक़ाबले की एक फ़ान्सीसी कम्पनी ठीक उसी उद्देश से सन् १६६४ ईसवी में क़ायम हुई। फ़ान्सीसियों ने सन् १६६८ में सूरत, सन् १६६९ में मछली-पट्टन, और सन् १६७४ में पुद्दुचरी (पाण्डिचेरी) में अपनी कोठियाँ बनाईं।

फ़ान्सीसियों की नीति आरम्भ से यह थी कि वे भारतीय शासकों की ख़ुशामद करके जिस तरह हो, उन्हें अपने पक्ष में रखने की कोशिश करते थे। पुद्दुचरी का नगर उस समय करनाटक के राज्य में था। दिल्ली-सम्राट का एक सूबेदार दक्षिण में रहता था। करनाटक का नवाब और कई अन्य राजा नवाब, इस सूबेदार के अधीन थे। पुद्दुचरी के फ़ान्सीसी मुखिया दूमास ने करनाटक के नवाब दोस्तअली ख़ाँ को ख़ूब ख़ुश कर रक्खा था। यह समय १८वीं सदी के शुरू का समय था, जबकि औरङ्गज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल साम्राज्य का बल घटना शुरू हो गया था।

इसी बीच मराठों ने करनाटक पर हमला किया। दूमास ने मौक़ा पाकर नवाब को सहायता देने का वादा किया। नवाब से इजाज़त लेकर उसने पुद्दुचरी में क़िलेबन्दी कर ली और १२०० यूरोपियन तथा ५००० हिन्दोस्तानियों की सेना उसमें जमा कर ली। यूरोप-निवासियों के हाथों में यह पहली हिन्दोस्तानी सेना थी। दूमास की सहायता काम कर गई। मराठों का करनाटक विजय करने का प्रयत्न निष्फल गया। करनाटक का नवाब तथा दिल्ली का सम्राट दोनों दूमास से ख़ुश हो गए। सम्राट ने प्रसन्न होकर दूमास को 'नवाब' की उपाधि प्रदान की और मुग़ल साम्राज्य के अधीन दो हज़ार सवारों का सेनापति नियुक्त कर दिया। पुद्दुचरी के इलाक़े पर अब फ़्रान्सीसियों का पूरा क़ब्ज़ा हो गया।

सन् १७४१ में दूमास की जगह दूप्ले फ़्रान्सीसी कम्पनी की ओर से पुद्दुचरी का शासक नियुक्त हुआ। दूप्ले एक अत्यन्त योग्य और चतुर सेनापति था। उसके पूर्वाधिकारी दूमास को दिल्ली से नवाब का ख़िताब मिल चुका था। दूप्ले ने ख़ुद अपने तईं 'नवाब दूप्ले' कहना शुरू कर दिया। दूप्ले पहला यूरोपनिवासी था जिसके मन में भारत के अन्दर यूरोपियन साम्राज्य क़ायम करने की आकांक्षा उत्पन्न हुई। इस आकांक्षा को पूरा करने के लिए दो बातों के पता लगाने का श्रेय दूप्ले को दिया जाता है। एक यह कि भारत के विविध नरेशों की उस समय की पारस्परिक ईर्षा और प्रतिस्पर्धा के दिनों में विदेशियों के लिए कभी एक और कभी दूसरे का पक्ष लेकर धीरे धीरे अपना बल बढ़ा लेना कुछ कठिन न था,

और दूसरे यह कि इस कार्य के लिए यूरोप से सेनाएँ लाने की आवश्यकता न थी। बल, वीरता अथवा सहनशक्ति में भारतवासी यूरोपनिवासियों से कहीं बढ़कर थे। अपने सामयिक अफ़सरों की वफ़ादारी का भाव भी भारतीय सिपाहियों में ज़बरदस्त था। किन्तु राष्ट्रीयता के भाव अथवा 'स्वदेश' के विचार तक का उनमें सर्वथा अभाव था। उन्हें बहुत आसानी से यूरोपियन ढङ्ग की सैनिक शिक्षा दी जा सकती थी, और यूरोपियन अफ़सरों के अधीन रक्खा जा सकता था। इसलिए विदेशियों का यह सारा कार्य बड़ी सुन्दरता के साथ हिन्दोस्तानी सिपाहियों से चल सकता था। डूप्ले को अपनी इस महत्वाकांक्षा की पूर्त्ति में केवल एक बाधा नज़र आती थी; और वह थी अङ्गरेज़ों की प्रतिस्पर्धा।

यूरोप के अन्दर भी उन दिनों फ़्रान्स और इङ्गलिस्तान एक दूसरे के शत्रु थे। थोड़े दिनों बाद वहाँ फ़्रान्स तथा इङ्गलिस्तान के बीच युद्ध शुरू हो गया। करनाटक में लगभग सौ वर्ष से मद्रास की बस्ती अङ्गरेज़ों के अधिकार में थी, और यही उस समय उनके भारतीय व्यापार का मुख्य केन्द्र था। डूप्ले ने मद्रास अङ्गरेज़ों से छीन लेने का विचार किया। दोस्तअली ख़ाँ का उत्तराधिकारी अनवरुद्दीन इस समय करनाटक का नवाब था। डूप्ले ने अङ्गरेज़ों के विरुद्ध नवाब के ख़ूब कान-भरे, लाबूरदौने नामक एक फ़्रान्सीसी के अधीन कुछ जलसेना मद्रास विजय करने के लिए भेजी और नवाब को यह समझाया कि अङ्गरेज़ों को मद्रास से निकालकर मैं नगर आपके हवाले कर दूँगा। लाबूरदौने ने मद्रास

विजय कर लिया, किन्तु इसके साथ ही अङ्गरेज़ों से चालीस हज़ार पाउण्ड नक़द लेकर मद्रास फिर उनके हवाले कर देने का वादा कर लिया। इसके बाद दूप्ले ने अपने वादे के अनुसार मद्रास नवाब के हवाले कर देने की कोई चेष्टा न की और न लाबूरदौने के वादे के अनुसार उसे अङ्गरेज़ों को वापस किया। नवाब को जब इस छल का पता चला, वह फ़ौरन सेना लेकर मद्रास की ओर रवाना हुआ। दूप्ले अपनी सेना सहित नवाब को रोकने के लिए बढ़ा। ४ नवम्बर सन् १७४६ को मद्रास के निकट दूप्ले की सेना और नवाब करनाटक की सेना दोनों में संग्राम हुआ। दूप्ले की सेना में भी अधिकतर भारतीय सिपाही ही थे। इस सेना तथा अपने तोपख़ाने के बल दूप्ले ने विजय प्राप्त की। इतिहास में यह पहली विजय थी जो किसी यूरोपियन ने किसी भारतीय शासक के विरुद्ध प्राप्त की। विदेशियों के हौसले और अधिक बढ़ गए।

अङ्गरेज़ों और नवाब करनाटक दोनों को फ़्रान्सीसी धोखा दे चुके थे। इसलिए ये दोनों अब फ़्रान्सीसियों के विरुद्ध मिल गए। सन् १७४८ ईसवी में अङ्गरेज़ी सेना ने पुद्दुचरी पर हमला किया, किन्तु दूप्ले की सेना ने इस बार भी अङ्गरेज़ों को हरा दिया। इसी समय यूरोप के अन्दर फ़्रान्स और इङ्गलिस्तान के बीच सन्धि हो गई, जिसमें एक बात यह तय हुई कि मद्रास फिर से अङ्गरेज़ों के सुपुर्द कर दिया जाय। इस प्रकार करनाटक से अङ्गरेज़ों को निकाल देने के विषय में दूप्ले की आशा को एक ज़बरदस्त धक्का पहुँचा, और फ़्रान्सीसियों की बरसों की मेहनत पर पानी फिर गया।

किन्तु डूप्ले का हौसला इतनी जल्दी टूटनेवाला न था। फ़्रान्सीसी और अङ्गरेज़ी कम्पनियों में प्रतिस्पर्धा बराबर जारी रही। ये दोनों कम्पनियाँ इस देश में अपनी अपनी सेनाएँ रखती थीं, और जहाँ कहीं किसी दो भारतीय नरेशों में लड़ाई होती थी तो एक एक का और दूसरी दूसरे का पक्ष लेकर लड़ाई में शामिल हो जाती थी। भारतीय नरेशों की सहायता के बहाने इनका उद्देश्य अपने यूरोपियन प्रतिस्पर्धी को समाप्त करना होता था।

दक्षिण भारत की राजनैतिक अवस्था इस समय अत्यन्त बिगड़ी हुई थी। मुग़ल सम्राट की ओर से नाज़िरजङ्ग दक्षिण का सूबेदार था। नाज़िरजङ्ग का एक भतीजा मुज़फ़्फ़रजङ्ग अपने चचा को मसनद से उतारकर स्वयं सूबेदार बनना चाहता था। इसीलिए नाज़िरजङ्ग ने अपने भतीजे मुज़फ़्फ़रजङ्ग को क़ैद कर रक्खा था। उधर अनवरुद्दीन करनाटक का नवाब था, किन्तु उससे पहले नवाब दोस्तअली ख़ाँ का दामाद चन्दासाहब अनवरुद्दीन को गद्दी से उतारकर ख़ुद करनाटक का नवाब बनना चाहता था। साहूजी तञ्जोर का राजा था और एक दूसरा हक़दार प्रताप-सिंह साहूजी को हटाकर तञ्जोर का राज्य लेना चाहता था। इनमें करनाटक का नवाब सूबेदार के अधीन था और तञ्जोर का राजा करनाटक के नवाब का बाजगुज़ार था। इन तीनों शाही घरानों की इस आपसी फूट से अङ्गरेज़, फ़्रान्सीसी और मराठे तीनों फ़ायदा उठाने की कोशिशें कर रहे थे। दिल्ली के मुग़ल दरबार में इतना बल न रह गया था कि साम्राज्य के एक दूर के कोने में इस

तरह के झगड़ों को दबाकर सच्चे हक़दारों के हक़ की हिफ़ाज़त कर सके। इस सम्बन्ध में अनेक साज़िशें और लड़ाइयाँ हुईं जिनमें अङ्गरेज़ों ने नाज़िरजङ्ग और अनवरुद्दीन का पक्ष लिया, और फ़ान्सीसियों ने मुज़फ़्फ़रजङ्ग तथा चन्दासाहब का। किन्तु इन झगड़ों का सूत्रपात तञ्जोर से हुआ।

सब से पहले चन्दासाहब ने तञ्जोर के राजा साहूजी को गद्दी से उतारकर वहाँ का राज्य अपने अधीन कर लिया। मराठों ने तञ्जोर पर चढ़ाई करके चन्दासाहब को क़ैद कर लिया और प्रतापसिंह को वहाँ की गद्दी पर बैठा दिया। कहते हैं, तञ्जोर की प्रजा साहूजी की अपेक्षा प्रतापसिंह से ख़ुश थी। अङ्गरेज़ों ने अब साहूजी का पक्ष लिया और साहूजी को फिर से गद्दी पर बैठाने के बहाने कम्पनी की सेना फ़ौरन मौक़े पर पहुँच गई, किन्तु वहाँ पहुँचने पर अङ्गरेज़ों ने देखा कि प्रतापसिंह का पक्ष अधिक मज़बूत है, इसलिए ऐन मौक़े पर साहूजी के साथ दग़ा करके वे प्रतापसिंह से मिल गए। देवीकोट का नगर और क़िला प्रतापसिंह ने इस कृपा के बदले में अङ्गरेज़ों को दे दिया। साहूजी को सदा के लिए पेन्शन देकर अलग कर दिया गया और प्रतापसिंह तञ्जोर का राजा बना रहा। करनाटक में नवाब अनवरुद्दीन अङ्गरेज़ों पर मेहरबान था ही। इसीलिए फ़ान्सीसी अनवरुद्दीन की जगह चन्दासाहब को नवाब बनाना चाहते थे। डूप्ले ने चन्दासाहब की ओर से मराठों को नक़द धन देकर चन्दासाहब को क़ैद से छुड़वा लिया और फिर अनवरुद्दीन की जगह चन्दासाहब को करनाटक की गद्दी पर

बैठाने का प्रयत्न किया। ३ अगस्त सन् १७४९ को आम्बूर की लड़ाई में फ़्रान्सीसियों की सहायता से अनवरुद्दीन का काम तमाम कर चन्दासाहब करनाटक का नवाब बन गया। यहाँ तक दूप्ले को ख़ासी सफलता प्राप्त हुई।

किन्तु तञ्जोर अभी तक प्रतापसिंह के अधिकार में था और प्रतापसिंह अङ्गरेज़ों के पक्ष में था। दूप्ले ने इसके लिए दक्षिण के सूबेदार ही को बदलना चाहा। उसने नाज़िरजङ्ग के विरुद्ध मुज़फ़्फ़रजङ्ग के साथ साज़िश की। चचा की क़ैद से भागकर मुज़फ़्फ़रजङ्ग ने फ़्रान्सीसियों की सहायता से अपने तईं दक्षिण का सूबेदार एलान कर दिया, और चन्दासाहब के साथ मिलकर सब से पहले तञ्जोर पर चढ़ाई की। सूबेदार नाज़िरजङ्ग ने अपने आयत्त राज्य तञ्जोर और वहाँ के राजा प्रतापसिंह की सहायता के लिए सेना भेजी। दोनों पक्षों के बीच एक गहरा संग्राम हुआ जिसमें मुज़फ़्फ़रजङ्ग फिर से क़ैद कर लिया गया। चन्दासाहब की जगह अनवरुद्दीन का बेटा मोहम्मद अली करनाटक का नवाब बना दिया गया और नाज़िरजङ्ग सूबेदारी की मसनद पर क़ायम रहा। दूप्ले की सब कार्रवाई निष्फल गई। इस पर भी उसके प्रयत्न जारी रहे। जब खुले संग्राम में न जीत सका तो उसने अपने गुप्त अनुचरों द्वारा सूबेदार नाज़िरजङ्ग को क़त्ल करवा दिया और एक बार फिर मुज़फ़्फ़रजङ्ग को दक्षिण का सूबेदार और चन्दासाहब को करनाटक का नवाब एलान करवा दिया।

किन्तु त्रिचनापल्ली का मज़बूत क़िला मोहम्मद अली के

हाथों में था। त्रिचन्नपल्ली पर ही वह ज़बरदस्त और अन्तिम संग्राम हुआ जिसमें दक्षिण के इन तीनों राजकुलों और अङ्गरेज़ों तथा फ़्रान्सीसियों—सब की क़िस्मत का फ़ैसला हो गया। त्रिचन्न-पल्ली ही वह चट्टान मानी जाती है जिससे टकराकर इस देश के अन्दर दूप्ले और फ़्रान्सीसियों की समस्त आकांक्षाएँ चूर चूर हो गईं। चन्दासाहब और फ़्रान्सीसियों की सेनाएँ एक ओर थीं, मोहम्मद अली और अङ्गरेज़ों की सेनाएँ दूसरी ओर। एक फ़्रान्सीसी सेना इस समय यूरोप से दूप्ले की सहायता के लिए भेजी गई, किन्तु वह भी सम्भवतः अङ्गरेज़ों के इक़बाल से कहीं मार्ग ही में डूबकर ख़तम होगई। त्रिचन्नपल्ली के संग्राम में फ़्रान्सीसियों के पक्ष की हार रही। मजबूर होकर सन् १७५४ ईसवी में फ़्रान्स की सरकार ने दूप्ले को फ़्रान्स वापस बुला लिया। फ़्रान्स ने इसके बाद भारत के राजनैतिक झगड़ों से तटस्थ रहना ही अपने लिए हितकर समझा। दोनों यूरोपियन कम्पनियों में यह सन्धि हो गई कि आयन्दा भारत की "देशी रियासतों के आपसी झगड़ों में दोनों में से कोई कभी दख़ल न दे।" फ़्रान्स ने इस शर्त पर अमल किया; किन्तु अङ्गरेज़ों ने बार बार उसे उल्लङ्घन करना ही अपने लिए अधिक लाभदायक समझा। सन् १७६९ ईसवी में फ़्रान्सीसी कम्पनी तोड़ दी गई। आज भारत में केवल पुद्दुचरी, चन्दरनगर और एक दो और छोटे छोटे स्थान फ़्रान्स के क़ब्ज़े में बाक़ी हैं।

अङ्गरेज़ों का राज्य

अब हम १८वीं सदी के मध्य तक पहुँच चुके। पुर्तगालियों, डच

और फ़्रान्सीसियों तीनों में से किसी की भी सत्ता भारत में क़ायम न हो सकी। इसके बाद केवल अङ्गरेज़ों की कहानी बाक़ी रह जाती है। हिन्दोस्तान में अङ्गरेज़ सौदागरों के राजनैतिक प्रभुत्व की नींव सन् १७५७ में प्लासी के प्रसिद्ध संग्राम में रक्खी गई, जिसका विस्तृत वृत्तान्त अगले अध्याय में दिया जायगा।

दूसरा अध्याय

सिराजुद्दौला

नवाब अलीवर्दी ख़ाँ

सन् १७०७ ई० में सम्राट औरङ्गज़ेब की मृत्यु हुई। मुग़ल साम्राज्य का बल और उसका विस्तार उस समय अपनी पराकाष्ठा पर था, किन्तु साम्राज्य के नाश के बीज बोए जा चुके थे। औरङ्गज़ेब के बाद ही दिल्ली के शाही दरबार का दबदबा घटना शुरू होगया। चारों ओर छोटी छोटी बादशाहतें साम्राज्य से टूट टूट कर अलग होने लगीं और विविध प्रान्तों के सूबेदार नाममात्र को साम्राज्य के अधीन रहे, किन्तु वास्तव में अपने अपने विशाल राज्यों के स्वतन्त्र शासक बन गए।

नवाब अलीवर्दी ख़ाँ इस समय मुग़ल सम्राट के अधीन बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा तीन प्रान्तों का सूबेदार था। मराठों की शक्ति बढ़ रही थी। मराठों ने बङ्गाल पर हमले शुरू किए। इन हमलों से अपने सूबों की रक्षा करने के लिए अलीवर्दी ख़ाँ ने दिल्ली से मदद की प्रार्थना की, किन्तु दिल्ली दरबार से उसे किसी प्रकार की

सहायता न मिल सकी। मजबूर होकर नवाब अलीवर्दी खाँ ने दिल्ली को सालाना मालगुज़ारी भेजना बन्द कर दिया; किन्तु इस पर भी वह अपने तईं सम्राट का एक सेवक और उसकी प्रजा ही मानता रहा और उसके अधीन केवल एक सूबेदार ही की हैसियत से शासन करता रहा।

इसमें सन्देह नहीं कि बङ्गाल की समस्त प्रजा अलीवर्दी खाँ और उसके पूर्वाधिकारियों के शासन में अत्यन्त सुखी और खुशहाल थी। एस० सी० हिल नामक एक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक उस समय के किसानों की हालत के विषय में लिखता है—

"मैं समझता हूँ कि सामाजिक इतिहास के प्रत्येक विद्यार्थी को स्वीकार करना होगा कि अठारहवीं सदी के मध्य में बङ्गाल के किसानों की हालत उस समय के फ़्रान्स अथवा जर्मनी के किसानों की हालत से बढ़कर थी।"*

यह उस समय के ग्रामों की हालत थी। अब यदि उस समय के शहरों की हालत पर नज़र डाली जाय तो बङ्गाल की राजधानी मुर्शिदाबाद के विषय में स्वयं प्रसिद्ध अङ्गरेज़ सेनापति क्लाइव लिखता है—

"मुर्शिदाबाद का शहर उतना ही लम्बा, चौड़ा, आबाद और धनवान है जितना कि लन्दन का शहर; अन्तर इतना है कि लन्दन के धनाढ्य से धनाढ्य मनुष्य के पास जितनी सम्पत्ति हो सकती है उससे बेइन्तहा ज़्यादा सम्पत्ति मुर्शिदाबाद में अनेक के पास है।"†

---

* *Bengal in 1756-57*, by S. C. Hill, vol. i. p. xxiii

† "The city of Murshidabad is as extensive, populous,

हिन्दुओं और मुसलमानों के साथ सूबेदार के व्यवहार में किसी तरह का भेद-भाव न था। सूबेदार के अधीन तीनों प्रान्तों में अधिकांश रियासतों का शासन हिन्दू राजाओं के हाथों में था। मुर्शिदाबाद के दरबार में अनेक उच्च से उच्च पद हिन्दुओं को मिले हुए थे। एस० सी० हिल लिखता है कि "देश का व्यापार और दस्तकारियाँ लगभग सब हिन्दुओं ही के हाथों में थीं।"*

अङ्गरेज़ जाति के लोग सब से पहले भारत के पश्चिमी तट पर उतरे, किन्तु उनकी राजनैतिक सत्ता की नींव पहले पहल बङ्गाल में पड़ी। इसके दो कारण बताए जा सकते हैं। सब से पहला और मुख्य कारण यह था कि जब कि पश्चिमी तट पर मराठों की ज़बरदस्त जल-सेना (Navy) उस समय मौजूद थी, जोकि अपने समय में संसार की सब से ज़बरदस्त जल-सेना मानी जाती थी, मुग़लों के पास कोई जल-सेना थी ही नहीं, और बङ्गाल का दरवाज़ा समुद्र से आनेवालों के लिए चौपट खुला हुआ था। दूसरा कारण यह था कि पश्चिमी प्रान्तों की निस्बत बङ्गाल कहीं अधिक उपजाऊ और मालामाल था। सम्भव है, एक तीसरा कारण यह भी रहा हो कि बङ्गाल के लोग अधिक भोले थे और ज़्यादा आसानी से विदेशियों की चालों में आ सके।

सब से पहले सन् १७४६ ई० में करनल मिल नामक एक

---

and rich as the city of London; with this difference that there are individuals in the first possessing infinitely greater property than any of the last city."—*Clive.*

* Bengal in 1756-57, *Introduction.*

अङ्गरेज़ ने जर्मनी के साथ मिलकर बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा विजय करने की एक योजना तैयार करके यूरोप भेजी, जिसमें उसने लिखा—

"मुग़ल साम्राज्य सोने और चाँदी से लबालब भरा हुआ है। यह साम्राज्य सदा से निर्बल और अरक्षित रहा है। बड़े आश्चर्य की बात है कि आज तक यूरोप के किसी बादशाह ने, जिसके पास जल-सेना हो, बङ्गाल को फ़तह करने की कोशिश नहीं की। एक बार में अनन्त धन प्राप्त किया जा सकता है, जोकि ब्रेज़ील और पेरू (दक्षिण अमरीका) की सोने की खानों के मुक़ाबले का होगा।

"मुग़लों की राजनीति ख़राब है। उनकी सेना और अधिक ख़राब है। जल-सेना उनके पास है ही नहीं। साम्राज्य के अन्दर लगातार विद्रोह होते रहते हैं। यहाँ की नदियाँ और यहाँ के बन्दरगाह दोनों विदेशियों के लिए खुले हुए हैं। यह देश इतनी ही आसानी से फ़तह किया जा सकता है, या बाजगुज़ार बनाया जा सकता है जितनी आसानी से कि स्पेनवालों ने अमरीका के नङ्गे बाशिन्दों को अपने अधीन कर लिया।

"×××अलीवर्दी ख़ाँ के पास तीन करोड़ पाउण्ड (लगभग ४५ करोड़ रुपए) का ख़ज़ाना मौजूद है। उसकी सालाना आमदनी कम से कम बीस लाख पाउण्ड होगी। उसके प्रान्त समुद्र की ओर से खुले हैं। तीन जहाज़ों में डेढ़ हज़ार या दो हज़ार सैनिक इस काम के लिए काफ़ी होंगे।×××"*

* "The Mogul Empire is overflowing with gold and silver. She has always been feeble and defenceless. It is a miracle that no European prince with a maritime power has ever attempted the conquest of Bengal. By a single stroke infinite wealth might

करनल मिल इस सारे कुचक्र को ईस्ट इण्डिया कम्पनी से छिपाकर पूरा करना चाहता था। क्योंकि उसके अनुसार "कोई कम्पनी बात को गुप्त नहीं रख सकती।"

मिल जिस ढङ्ग से चाहता था, उस ढङ्ग से बङ्गाल विजय नहीं किया गया और शायद हो भी न सकता था, किन्तु लक्ष्य अङ्गरेज़ कम्पनी का भी यही था। कम्पनी के अङ्गरेज़ों ने अपने प्रयत्न बराबर जारी रक्खे। व्यापार के काम में इन लोगों का हिन्दुओं से अधिक वास्ता पड़ता था। दोनों बनिये थे। इसलिए अठारहवीं सदी के मध्य में बङ्गाल के अन्दर हमें यह लज्जाजनक दृश्य देखने को मिलता है कि उस समय के विदेशीय ईसाई कुछ हिन्दुओं के साथ

---

be acquired, which would counterbalance the mines of Brazil and Peru.

"The policy of the Moguls is bad; their army is worse; they are without a navy. The Empire is exposed to perpetual revolts. Their ports and rivers are open to foreigners. The country might be conquered, or laid under contribution as easily as the Spaniards overwhelmed the naked Indians of America.

" . . . Ali Verdi Khan . . . has treasure to the value of thirty millions sterling. His yearly revenue must be at least two millions. The provinces are open to the sea. Three ships with fifteen hundred or two thousand regulars would suffice for the undertaking. . . . The East India Company should be left alone. No company can keep a secret. . . ."
—Colonel Mill's letter to Francis of Lorraine in 1746. Quoted from Bolt's *Considerations of the Affairs of Bengal,* Appendix.

मिलकर देश के मुसलमान राज्य को नष्ट करने के षड्यन्त्र रच रहे थे। अङ्गरेज़ कम्पनी के गुप्त मददगारों में मुख्यतम इस समय कलकत्ते का एक अत्यन्त धनाढ्य पञ्जाबी व्यापारी अमींचन्द था। अमींचन्द को इस बात का लालच दिया गया कि नवाब को ख़तम करके मुर्शिदाबाद के ख़ज़ाने का एक बड़ा हिस्सा इन सेवाओं के बदले में तुम्हें दे दिया जायगा और "इङ्गलिस्तान में तुम्हारा नाम इतना अधिक होगा जितना भारत में कभी न हुआ था।" कम्पनी के मुलाज़िमों को आदेश था कि "अमींचन्द की खूब .खुशामद करते रहो।"*

अङ्गरेज़ षड्यन्त्रकारियों में एक ख़ास नाम इस समय करनल स्कॉट का मिलता है। करनल स्कॉट ने बहुत दिनों बङ्गाल में रहकर खूब मेलजोल बढ़ाया और अमींचन्द की सहायता से उसने चुपके चुपके कई बड़े बड़े हिन्दू राजाओं और रईसों को अपनी ओर मिला लिया। अमींचन्द के धन और अंङ्गरेज़ कम्पनी के झूठे सच्चे वादों ने मिलकर नवाब के अनेक दरबारियों और सम्बन्धियों की नियत को डाँवाडोल कर दिया।

उधर कलकत्ते में अङ्गरेज़ों और चन्दरनगर में फ़्रान्सीसियों की क़िलेबन्दियाँ भी बराबर जारी थीं।

नवाब अलीवर्दी ख़ाँ को इन सब बातों का थोड़ा बहुत पता चल गया। उसे इस बात का भी पता चल गया कि दक्षिण में तथा करमण्डल तट पर किस प्रकार के कुचक्रों द्वारा ठीक उसी समय

* Clive's letter to Watts.

अङ्गरेज़ और फ़्रान्सीसी दोनों अपने पैर फैलाते जा रहे थे। नवाब ने अपना सन्देह दूर करने के लिए सब से पहले करनल स्कॉट को अपने दरबार में बुलाया। करनल स्कॉट ने पहले आने का वादा किया और फिर टालकर मद्रास की ओर चला गया। नवाब ने अङ्गरेज़ों और फ़्रान्सीसियों दोनों को हुकुम दिया कि आप लोग फ़ौरन क़िले-बन्दियाँ करना बन्द कर दें। उसने अङ्गरेज़ तथा फ़्रान्सीसी कम्पनियों के वकीलों को दरबार में बुलाकर उनसे कहा—

"तुम लोग सौदागर हो, तुम्हें क़िलों की क्या ज़रूरत? जब तुम मेरी हिफ़ाज़त में हो तो तुम्हें किसी दुश्मन का डर नहीं हो सकता।"

बहुत सम्भव है, अलीवर्दी ख़ाँ इस विषय में अपनी इच्छा पूरी कर पाता, किन्तु वह इस समय बूढ़ा था। उसकी उम्र ने अधिक वफ़ा न की। तथापि अन्त समय निकट आने पर एक दूरदर्शी नीतिज्ञ के समान उसने अपने नवासे और उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला को पास बुलाकर इस प्रकार सलाह दी—

"देश के अन्दर यूरोपियन क़ौमों की ताक़त पर नज़र रखना। यदि ख़ुदा मेरी उम्र बढ़ा देता तो मैं तुम्हें इस डर से भी मुक्त कर देता—अब, मेरे बेटा, यह काम तुम्हें करना होगा। तैलङ्ग देश में उनकी लड़ाइयों और उनकी राजनीति की ओर से तुम्हें सावधान रहना चाहिए। अपने अपने बादशाहों के बीच के घरेलू झगड़ों के बहाने इन लोगों ने सम्राट (मुग़ल सम्राट) का देश और सम्राट की प्रजा का धन माल छीनकर आपस में बाँट लिया है। इन तीनों यूरोपियन क़ौमों को एक साथ निर्बल करने का ख़याल न करना। अङ्गरेज़ों की ताक़त बढ़ गई है × × × पहले उन्हें ज़ेर

करना। जब तुम अङ्गरेज़ों को ज़ेर कर लोगे तो बाक़ी दोनों क़ौमें तुम्हें अधिक कष्ट न देंगी। मेरे बेटा, उन्हें क़िले बनाने या फ़ौजें रखने की इजाज़त न देना। यदि तुमने यह ग़लती की तो मुल्क तुम्हारे हाथ से निकल जायगा।"*

१० अप्रैल सन् १७५६ ई० को नवाब अलीवर्दी खाँ की मृत्यु हुई और सिराजुद्दौला अपने नाना की मसनद पर बैठा।

सिराजुद्दौला

सिराजुद्दौला की आयु इस समय २४ वर्ष से ऊपर न थी। मुग़ल साम्राज्य की जड़ें काफ़ी खोखली हो चुकी थीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की साज़िशें भीतर ही भीतर काफ़ी फैल चुकी थीं और अङ्गरेज़ों के हौसले बढ़े हुए थे। हिन्दोस्तान में अङ्गरेज़ी सत्ता का क़ायम होना और सिराजुद्दौला के ख़िलाफ़ अङ्गरेज़ों की साज़िशें इन दोनों में अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है। एक दिन को भी बङ्गाल की मसनद अभागे सिराजुद्दौला के लिए फूलों की सेज साबित न हुई। इङ्गलिस्तान के व्यापारी आरम्भ से ही उसके पहलू में काँटे की तरह चुभते रहे।

उन अङ्गरेज़ व्यापारियों ने, जो इससे पूर्व अपने तईं प्रत्येक भारतीय नरेश की "विनीत और आज्ञाकारी प्रजा" कहा करते थे और एक एक रिआयत के लिए "अर्ज़ियाँ" दिया करते थे, अब अपने गुप्त प्रयत्नों के बल जान बूझ कर नवाब सिराजुद्दौला का तरह तरह से अपमान करना शुरू कर दिया। निस्सन्देह वे अब छेड़ कर

* Bengal in 1756-1757, vol. ii. p. 16.

बहाना ढूँढ रहे थे। सब से पहला अपमान जो इन लोगों ने सिराजुद्दौला का किया वह यह था। प्राचीन प्रथा के अनुसार हर नए सूबेदार के मसनद पर बैठने के समय तमाम मातहत राजाओं, अमीरों और विदेशी क़ौमों के वकीलों का दरबार में हाज़िर होकर नज़रें पेश करना ज़रूरी था। इसका एकमात्र अर्थ यह होता था कि वे नए नवाब को नवाब स्वीकार करते हैं। सिराजुद्दौला के मसनद पर बैठने के समय अङ्गरेज़ कम्पनी की ओर से कोई नज़र पेश नहीं की गई। इसके बाद जब कभी अङ्गरेज़ों को मुर्शिदाबाद के दरबार से कोई काम पड़ता था तो वे कभी सिराजुद्दौला से बात न करते थे, वरन् ऊपर ही ऊपर ले दे कर दरबारियों से अपना काम चला लेते थे। वे सिराजुद्दौला के साथ पत्र-व्यवहार करने से भी बचते थे। उन्होंने एक बार अपनी क़ासिमबाज़ार की कोठी में सिराजुद्दौला को आने तक से रोक दिया। निस्सन्देह कोई शासक अथवा नरेश इस प्रकार से अपमान को गवारा न कर सकता। किन्तु इस व्यक्तिगत अपमान के अलावा और भी कई ज़बरदस्त कारण थे, जिन्होंने अन्त में सिराजुद्दौला को अङ्गरेज़ कम्पनी की बढ़ती हुई ताक़त को रोकने के लिए मजबूर कर दिया। इनमें से तीन मुख्य कारण ये थे—

(१) साम्राज्य के क़ानून और नवाब की आज्ञाओं, दोनों के विरुद्ध अङ्गरेज़ों ने उस सूबे के अन्दर कलकत्ते में तथा और जगह भी क़िलेबन्दी कर ली और कलकत्ते के क़िले के चारों तरफ़ एक बड़ी ख़न्दक़ खोद डाली।

(२) दिल्ली के सम्राट ने इन मुट्ठी भर विदेशियों पर दया करके बङ्गाल के अन्दर उनके माल पर हर तरह की चुङ्गी माफ़ कर दी थी। अर्थात् कम्पनी के दस्तख़ती पास से, जिसे 'दस्तक' कहते थे, कम्पनी का माल प्रान्त में जहाँ चाहे बिना महसूल आ जा सकता था। अब इन लोगों ने इस अधिकार का दुरुपयोग शुरू किया और अनेक हिन्दोस्तानी व्यापारियों से रुपए लेकर उनके हाथ अपने दस्तक बेचने शुरू कर दिए, जिसके कारण राज्य की आमदनी को बहुत ज़बरदस्त धक्का पहुँचा।

और बढ़कर जिस सम्राट ने विदेशी माल पर महसूल माफ़ कर दिया था उसी की देशी प्रजा का माल जब इन विदेशियों की कोठियों में या उनकी बस्तियों में जाता था, तो कम्पनी ने उस पर ज़बरदस्त चुङ्गी वसूल करनी शुरू कर दी, जिसका क़ानूनन उन्हें कोई अधिकार न था।

(३) नवाब के जो मुलाज़िम या दरबारी किसी तरह का जुर्म करते थे या नवाब के विरुद्ध विद्रोह करते थे, अङ्गरेज़ उन्हें कलकत्ते में बुलाकर अपनी कोठी में आश्रय देने लगे।

इन सब बातों की शिकायतें सिराजुद्दौला के कानों तक लगातार और बाज़ाब्ता पहुँचती रहीं, तथापि वह बरदाश्त करता रहा।

इतने में सिराजुद्दौला को मालूम हुआ कि अङ्गरेज़ पूर्निया के नवाब शौकतजङ्ग को सिराजुद्दौला से लड़ाकर उसे मुर्शिदाबाद की मसनद पर बैठाने की तजवीज़ें कर रहे हैं। शौकतजङ्ग सिराजुद्दौला का एक रिश्तेदार और मुर्शिदाबाद के सूबेदार के अधीन उसका

एक सामन्त था। सिराजुद्दौला सेना लेकर पूर्निया की ओर रवाना हुआ। ख़बर सुनते ही शौकतजङ्ग नज़राने लेकर स्वागत के लिए आगे बढ़ा। शौकतजङ्ग ने अपने तईं बेगुनाह बतलाया और अङ्गरेज़ों के वे सब पत्र सिराजुद्दौला के हवाले कर दिए, जिनमें अङ्गरेज़ों ने शौकतजङ्ग को सिराजुद्दौला के विरुद्ध भड़काया था।*

किन्तु सिराजुद्दौला की उदारता असीम थी। उसने शौकतजङ्ग को बहाल रक्खा और अङ्गरेज़ों के साथ भी दया और क्षमा का बर्ताव जारी रक्खा अङ्गरेज़ों और फ़्रान्सीसियों दोनों के नाम उसने केवल यह आज्ञा जारी कर दी कि आप लोग आयन्दा न कोई नया क़िला बनाएँ और न किसी पुराने क़िले की मरम्मत करें। फ़्रान्सीसियों ने नवाब की आज्ञा मान ली, किन्तु अङ्गरेज़ों ने इस आज्ञा का तथा आज्ञापत्र कलकत्ते लेजानेवाले हरकारों का, दोनों का खुले अपमान किया।

नवाब मुर्शिदाबाद का एक दीवान उन दिनों ढाका में रहा करता था। उस समय के दीवान राजा राजवल्लभ को अङ्गरेज़ों ने अपनी ओर मिला लिया। सिराजुद्दौला राजवल्लभ से नाराज़ हुआ। अङ्गरेज़ों ने राजवल्लभ के बेटे राजा किशनदास को कलकत्ते बुलाकर अमींचन्द के मकान के अन्दर आश्रय दिया। राजवल्लभ की तमाम धन सम्पति भी किशनदास के साथ कलकत्ते आ गई। सिराजुद्दौला ने अङ्गरेज़ों को आज्ञा दी कि किशनदास को वापस भेज दो, किन्तु अङ्गरेज़ों ने साफ़ इनकार कर दिया।

* Bengal in 1756-1757, vol. iii, p. 164.

इतने पर भी सिराजुद्दौला ने शान्ति से ही सब मामले का निबटारा करना चाहा और क़ासिमबाज़ार की अङ्गरेज़ी कोठी के मुखिया वाट्स को बुलाकर समझाया कि "यदि अङ्गरेज़ शान्त व्यापारियों की तरह देश में रहना चाहते हैं तो अब भी बड़ी खुशी के साथ रहें, किन्तु सूबे के शासक की हैसियत से मेरा यह हुक्म है कि वे फ़ौरन उन सब क़िलों को बराबर कर दें, जो उन्होंने हाल में बिना मेरी इजाज़त बना डाले हैं।"*

किन्तु अङ्गरेज़ व्यापारियों ने जिनकी आकांक्षाएँ बहुत बढ़ी हुई थीं और जिनके षड्यन्त्र इस समय दूर दूर तक पहुँच चुके थे, ज़रा भी परवा न की। उनकी क़िलेबन्दियाँ और अधिक ज़ोरों के साथ चलती रहीं। सिराजुद्दौला के पास अब सिवाय उन्हें दण्ड देने और रोकने के और कोई चारा न था।

अङ्गरेज़ों का बङ्गाल से निकाला जाना

लाचार होकर सिराजुद्दौला ने २४ मई सन् १७५६ ई० को अङ्गरेज़ी कोठी को घेर लेने के लिए कुछ सेना क़ासिमबाज़ार भेजी। बावजूद क़िलेबन्दियों और तोपों के क़ासिमबाज़ार की कोठी सिराजुद्दौला की सेना के सामने अधिक देर तक न ठहर सकी। अङ्गरेज़ मुखिया वाट्स ने हार मान ली और कोठी सिराजुद्दौला के सुपुर्द कर दी। वाट्स तथा कोठी के अन्य अङ्गरेज़ विद्रोही इस समय सिराजुद्दौला के हाथों में थे। वह चाहता

* Hastings' MSS. in the British Museum, vol. 29, p. 209.

तो वहीं उनका काम तमाम कर सकता था। किन्तु उसने उनकी जानें बख़्श दीं और उन्हें अपने साथ ले लिया। क़ासिमबाज़ार की कोठी के तिजारती माल को भी उसने बिलकुल हाथ न लगाया। केवल वहाँ के सब हथियार और गोला बारूद वहाँ से हटा लिया।

वाट्स तथा अन्य अङ्गरेज़ों को साथ लेकर ५ जून १७५६ को सिराजुद्दौला कलकत्ते की ओर बढ़ा। उन दिनों की सैन्य-यात्रा निस्सन्देह कुछ और ही थी। रेलों का उस समय संसार में कहीं निशान न था। सड़कें भी हर जगह मौजूद न थीं। बङ्गाल की सख़्त से सख़्त धूप और गरमी का महीना। उस पर रमज़ान के दिन, जबकि सेना के अधिकांश मुसलमान अफ़सर और सिपाही दिन दिन भर रोज़ा रखते थे। भारी भारी तोपें और अन्य सब सामान, जिसके बिना उन दिनों यात्रा असम्भव थी और जिसे हाथियों और बैलों से खिंचवाकर ले जाना होता था। इन सब हालतों में सिराजुद्दौला की सेना ने ११ दिन के अन्दर १६० मील का सफ़र तय किया।

अङ्गरेज़ों के काफ़ी युद्ध के जहाज़ कलकत्ते पहुँच चुके थे, और इन लोगों ने अपनी ओर से सिराजुद्दौला के विरुद्ध खुली बग़ावत शुरू कर दी थी। इस बीच १३ जून को अङ्गरेज़ी सेना ने कलकत्ते से पाँच मील नीचे हुगली के इस पार तान्नाह का क़िला वहाँ के मुट्ठी भर भारतीय संरक्षकों के हाथों से छीन लिया। सिराजुद्दौला ने कलकत्ते जाने से पहले इस क़िले को फिर से विजय

किया। इस छोटे से संग्राम में नदी के ऊपर से अङ्गरेज़ों की जहाज़ी तोपें और किनारे पर से सिराजुद्दौला की तोपें दोनों में कुछ देर तक ख़ासा मुक़ाबला रहा। किन्तु आख़िरकार अङ्गरेज़ी सेना को हारकर अपने जहाज़ों सहित पीछे हट जाना पड़ा।

सिराजुद्दौला उस समय भी वृथा रक्त बहाने के विरुद्ध था। अब भी वह इन अङ्गरेज़ व्यापारियों के साथ अमन से रहने के लिए तैयार था। इस यात्रा में उसके एक दीवान ने कई बार वाट्स को अपने पास बुलाकर समझाया कि यदि अङ्गरेज़ अपने इस समय तक के अपराधों के बदले में बतौर जुर्माने या हर्जाने के थोड़ा बहुत भी धन पेश करने को तैयार हों और आयन्दा अमन से रहने का वादा करें, तो सुलह की जा सकती है और व्यापार-सम्बन्धी समस्त अधिकार उन्हें फिर से मिल सकते हैं। कलकत्ते के अङ्गरेज़ अफ़सरों को भी इसकी सूचना दे दी गई। यदि वे चाहते तो उस समय भी सिराजुद्दौला के साथ सुलह कर सकते थे। किन्तु ये लोग अपने षडयन्त्रों के बल सिराजुद्दौला का नाश करने की आशा में थे।

ईमानदारी की लड़ाई में वे सिराजुद्दौला का किसी तरह मुक़ाबला न कर सकते थे। फ़ौज और सामान दोनों की उनके पास बेहद कमी थी। उनका सबसे बड़ा हथियार था—रिशवतें देकर, लालच देकर तथा झूठे वादे करके सिराजुद्दौला के आदमियों और सैनिकों को अपनी ओर फोड़ लेना। वही वाट्स और उसके अङ्गरेज़ साथी, जिनकी सिराजुद्दौला ने जानें बख़्शी थीं, इस

समय उसकी सेना के अन्दर इस प्रकार की साज़िशों के जाल पूर रहे थे।

सिराजुद्दौला की सेना में और ख़ासकर उसके तोपख़ाने में अनेक यूरोपियन तथा अन्य ईसाई नौकर थे। ईसाई पादरियों के दस्तख़तों से एक दूसरे के बाद तीन व्यवस्था-पत्र निकाले गए, जिनमें लिखा था कि किसी भी ईसाई-धर्मावलम्बी के लिए मुसलमानों का पक्ष लेकर अपने सहधर्मियों के ख़िलाफ़ लड़ना ईसाई धर्म के विरुद्ध और महापाप है। ये व्यवस्था-पत्र गुप्त ढङ्ग से सिराजुद्दौला के ईसाई मुलाज़िमों में बाँटे गए। इन्हीं पत्रों द्वारा सिराजुद्दौला के मुलाज़िमों को यह भी लालच दिया गया कि यदि तुम नवाब की सेना से भागकर अङ्गरेज़ों की ओर चले आओगे तो तुम्हें फ़ौरन अङ्गरेज़ी सेना में नौकर रख लिया जायगा। इस तरह की चालों द्वारा काफ़ी नमकहराम सिराजुद्दौला की सेना में पैदा कर दिए गए।

कलकत्ते के अङ्गरेज़ों का व्यवहार इस अवसर पर अपने हिन्दोस्तानी मददगारों के साथ अत्यन्त ख़राब था। सिराजुद्दौला के आने की ख़बर पाते ही इन लोगों ने कलकत्ते के तमाम हिन्दू और मुसलमानों को, जिनमें अधिकतर कम्पनी के देशी मुलाज़िम, गुमाश्ते, व्यापारी और मज़दूर थे, अरक्षित छोड़ दिया, उनसे कह दिया कि अङ्गरेज़ तुम्हारी रक्षा न करेंगे; तमाम यूरोपियनों, हिन्दोस्तानी ईसाइयों मर्द, औरत और बच्चों, यहाँ तक कि उनके ईसाई गुलामों तक को अपनी कोठी के आस पास मकानों में जमा कर

लिया; और बाहर चारों ओर के हिन्दोस्तानी मकानों को आग लगा दी, ताकि सिराजुद्दौला से लड़ने के लिए मैदान साफ़ हो जाय।

इतना ही नहीं। मालूम होता है कि ये लोग उस समय किसी भी हिन्दोस्तानी पर विश्वास न कर सकते थे। सुप्रसिद्ध अमींचन्द, उसके साले हज़ारीमल, और दीवान राजवल्लभ के बेटे राजा किशनदास, इन तीनों को अङ्गरेज़ों ने क़ैद करके रखना आवश्यक समझा। यह वही अमींचन्द था जिसकी सहायता के बिना अङ्गरेज़ी व्यापार अथवा अङ्गरेज़ी सत्ता दोनों में से किसी के भी पैर बङ्गाल के अन्दर हरगिज़ न जम सकते थे और राजा किशनदास अङ्गरेज़ कम्पनी का वह शरणागत था, जिसे उन्होंने सिराजुद्दौला के हवाले करने तक से इनकार कर दिया था।

जिस समय अङ्गरेज़ सिपाही अमींचन्द को पकड़ने के लिए उसके मकान पर पहुँचे, अमींचन्द ने फ़ौरन अपने तईं उनके हवाले कर दिया। किन्तु हज़ारीमल और राजा किशनदास से यह अपमान न सहा गया। उन दोनों ने अपने आदमियों को अङ्गरेज़ सिपाहियों पर गोली चलाने का हुकुम दिया। लड़ाई में हज़ारीमल वीरता के साथ लड़ा। उसका बायाँ हाथ उड़ गया, और अन्त में तीनों गिरफ़्तार कर लिए गए। इसके बाद जब अङ्गरेज़ अफ़सरों ने अपने उन्मत्त गोरे सैनिकों को अमींचन्द के ज़नानख़ाने की ओर बढ़ने का हुकुम दिया, तो अमींचन्द के वफ़ादार हिन्दोस्तानी जमादार का रक्त खौलने लगा। गोरे सिपाहियों की नियत स्पष्ट थी। ओर्म नामक यूरोपियन इतिहास-लेखक इस घटना के विषय में लिखता है—

"अमींचन्द के जमादार ने, जो एक ऊँची ज़ात का हिन्दोस्तानी था, मकान को आग लगा दी। और फिर, कहा जाता है, इसलिए ताकि विदेशी लोग घर की स्त्रियों की बेइज़्ज़ती न कर सकें, उसने ज़नानख़ाने में घुसकर अपने हाथ से तेरह स्त्रियों का काम तमाम किया और फिर अन्त में अपने भी ख़ञ्जर घोंप लिया। किन्तु उसका अपना ज़ख़्म कारगर न हो सका।"*

अनेक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक शिकायत करते हैं कि बहुत से भारतीय कुलियों, मल्लाहों और नौकरों ने उस समय अङ्गरेज़ व्यापारियों का साथ छोड़ दिया। यदि यह शिकायत सच्ची है तो पूर्वोक्त अत्याचारों में इसके लिए काफ़ी कारण मिल सकता है।

१६ जून को सिराजुद्दौला कलकत्ते पहुँचा। १६ और १७ को कई छोटी मोटी लड़ाइयाँ हुईं। १८ को शुक्रवार के दिन कम्पनी की ओर से यह आज्ञा निकली कि यदि शत्रु का कोई आदमी ज़ख़्मी होकर या किसी अन्य कारण से आश्रय की प्रार्थना करे तो उस पर कोई किसी तरह की दया न दिखाए। उसी दिन सिराजुद्दौला की सेना ने कम्पनी की सेना पर बाज़ाब्ता चढ़ाई की और बावजूद सिराजुद्दौला के अनेक ईसाई नौकरों की नमकहरामी के कम्पनी की सेना देर तक सिराजुद्दौला के गोलों का सामना न कर सकी। अन्त में अङ्गरेज़ों को हार स्वीकार करनी पड़ी।

रविवार २० जून सन् १७५६ को सिराजुद्दौला की विजयी सेना ने कलकत्ते की अङ्गरेज़ी कोठी में प्रवेश किया। कोठी के तमाम अङ्गरेज़ क़ैद कर लिए गए। सिराजुद्दौला के लिए इस समय

* Orme, vol. ii, p. 60.

कलकत्ते के इन बाग़ी विदेशी व्यापारियों का वहीं एक एक ... काम तमाम कर देना और उनकी कोठी को नेस्त-नाबूद कर देना ... अत्यन्त सरल कार्य था, किन्तु उदार सिराजुद्दौला इन लोगों ... छलों से अभी पूरी तरह परिचित न हुआ था।

सिराजुद्दौला के हुकुम से क़िले के अन्दर एक दरबार लगा ... जिसमें तमाम यूरोपियन क़ैदी नवाब के सामने पेश किए गए ... क़ैदियों ने नवाब से क्षमा की प्रार्थना की। उदार भारतीय नवाब ने उन सब की जानें बख़्श दीं।* जेम्स मिल नामक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है कि—"जब मिस्टर हौलवेल (कलकत्ते की कोठी का मुखिया) हथकड़ी पहने हुए नवाब के सामने पेश किया गया तो नवाब ने फ़ौरन हुकुम दिया कि हथकड़ी खोल दी जाय और स्वयं अपनी सिपहगरी की शपथ खाकर हौलवेल को विश्वास दिलाया कि 'तुम्हारे या तुम्हारे किसी साथी के सर का एक बाल भी किसी को छूने न दिया जायगा।"†

यही इतिहास-लेखक स्वीकार करता है कि विजयी हिन्दो-स्तानी सैनिकों ने "पराजित अङ्गरेज़ों के साथ कोई बुरा बर्ताव नहीं किया।" और उनके साथ के "मुसलमान मुल्ला ख़ुदा की बन्दगी में लगे रहे।" क़िले और कोठी के अन्दर का गोला बारूद सब नवाब ने हटवा लिया, किन्तु जितना तिजारती माल कोठी के ...

* Talboys Wheeler's *Early Records of British India*, vol. i p. 160.

† *History of India*, by James Mill, vol. iii. p. 1179.

अन्दर भरा हुआ था उसे सिराजुद्दौला वा उसके सैनिकों ने हाथ तक नहीं लगाया, बल्कि सिराजुद्दौला की आज्ञानुसार उसे हिफ़ाज़त के साथ ज्यों का त्यों रहने दिया। यही व्यवहार सिराजुद्दौला ने अङ्गरेज़ों की अन्य कोठियों में किया।

कलकत्ते के अनेक अङ्गरेज़ सिराजुद्दौला की सेना के क़िले में प्रवेश करने से पहले ही पीछे की ओर से अपने जहाज़ों में बैठकर भाग गए थे। शेष ने अब सिराजुद्दौला से यह प्रार्थना की कि हमारी जान बख़्शी जाय और हमें बङ्गाल छोड़कर अपने साथियों के पास चले जाने की इजाज़त दी जाय। सिराजुद्दौला ने सहर्ष उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। अनेक यूरोपियन इतिहास-लेखक इस बात की शहादत देते हैं कि इस अवसर पर सिराजुद्दौला की शक्ति को देख अधिकांश यूरोपियन अत्यन्त चकित और भयभीत हो गए।

जॉन कुक लिखता है कि सिराजुद्दौला की मुसलमान सेना का नियम था कि वे रात को कभी न लड़ते थे और शाम होते ही गोलाबारी बन्द कर देते थे। कुक यह भी लिखता है कि यदि ऐसा न होता तो २० तारीख़ से पहले ही अङ्गरेज़ों की बुरी हालत हो गई होती।

इस प्रकार कम्पनी के अङ्गरेज़ व्यापारी सन् १७५६ में भारत के सब से अधिक उपजाऊ और समृद्ध प्रान्त बङ्गाल से निकाल बाहर किए गए। हौलवेल ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम अपनी ३० नवम्बर १७५६ की चिट्ठी में लिखा कि—"इतनी घातक और

शोकजनक आपत्ति बाबा आदम के ज़माने से लेकर आज तक किसी भी क़ौम वा उसके उपनिवेश के इतिहास में न आई होगी।

सिराजुद्दौला ने 'कलकत्ते' का नाम बदलकर 'अलीनगर' रक्खा और अपने एक दीवान राजा मानिकचन्द को अलीनगर तथा उसके आसपास के इलाक़े का शासक नियुक्त किया।

"ब्लैक होल" का क़िस्सा

प्रायः समस्त अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक अपनी क़ौम की इस हार के साथ एक भयङ्कर हत्याकाण्ड का वर्णन करते हैं, जिसे "ब्लैक होल" हत्याकाण्ड अथवा बङ्गला में "अन्धकूप हत्या" कहा जाता है। ब्लैक होल कलकत्ते की अङ्गरेज़ी कोठी के अन्दर एक अँधेरी क़ोठरी अथवा काल-कोठरी थी, जो अङ्गरेज़ व्यापारियों ही की बनाई हुई थी और जिसमें कम्पनी के अफ़सर अक्सर हिन्दोस्तानी अपराधियों अथवा क़र्ज़दारों को बन्द कर दिया करते थे। इन अङ्गरेज़ लेखकों का बयान है कि २० जून की रात को इस लगभग १८ फ़ुट लम्बी और कुछ कम चौड़ी कोठरी में सिराजुद्दौला के हुकुम से १४६ यूरोपियन क़ैदी बन्द कर दिए गए। जून का महीना, जगह की तङ्गी और ताज़ी हवा न मिल सकने के कारण अनेक तीव्र यातनाओं के बाद सुबह तक इन १४६ में से केवल २३ जीते बचे ; और वह भी भयङ्कर अधमरी अवस्था में।

किन्तु उस समय के इतिहास की खोज करने वालों पर अब यह बात अच्छी तरह प्रकट हो चुकी है कि ब्लैक होल का यह सारा क़िस्सा बिलकुल झूठा है, और केवल सिराजुद्दौला के चरित्र

को कलङ्कित करने तथा अङ्गरेज़ों के बाद के कुचक्रों को जायज़ क़रार देने के लिए गढ़ा गया था।

"सिराजुद्दौला" नामक बङ्गला ग्रन्थ के विद्वान रचयिता अक्षय-कुमार मैत्र ने अपने ग्रन्थ में इस क़िस्से के विरुद्ध अनेक अकाट्य युक्तियाँ संग्रह की हैं। अव्वल तो इतनी छोटी (२६७ वर्ग फ़ुट) जगह में १४६ मनुष्य चावलों के बोरों की तरह भी नहीं भरे जा सकते। इसके अतिरिक्त सय्यद ग़ुलाम हुसैन की "सीयर-उल-मुताख़रीन" में अथवा उस समय के किसी भी प्रामाणिक इतिहास में, अथवा कम्पनी के रोज़नामचों, "काररवाई के रजिस्टरों" वा मद्रास कौन्सिल की बहसों तक में इस घटना का कहीं ज़िक्र नहीं आता। क्लाइव और वाट्सन ने कुछ समय बाद जो पत्र नवाब की ज़्यादतियों और कम्पनी की हानियों को दर्शाते हुए नवाब के नाम लिखे, उनमें इस घटना का कहीं ज़िक्र नहीं आता, न अलीनगर के सन्धि-पत्र में उसका कहीं ज़िक्र है। बहुत समय बाद क्लाइव ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें उसने सिराजुद्दौला के साथ कम्पनी के क्रूर व्यवहार के अनेक कारण गिनवाए हैं। उनमें इस घटना का कहीं इशारा भी नहीं मिलता। अङ्गरेज़ों ने अन्त में मीर जाफ़र के साथ जो सन्धि की उसमें कम्पनी के हर तरह के हरजाने का हिसाब लगाया गया है, किन्तु इन १२३ मनुष्यों के कुटुम्बियों को मुआवज़ा दिलवाने का कहीं ज़िक्र नहीं। जो विदेशी जहाज़ों में बैठकर भाग निकले थे, उनके बाद १२३ शायद क़िले के अन्दर बचे भी न थे। कुछ लोगों ने बाद में कुल ऐसे यूरोप-निवा-

सियों की सूची तैयार करने की कोशिश की, जो उस सम[य] कलकत्ते के क़िले के अन्दर मरे और उसे १२३ तक लाने का प्रय[त्न] भी किया, तथापि यह सूची ५६ से ऊपर न पहुँच सकी और ये ५[६] भी किसी कोठरी में दम घुटकर नहीं मरे, वरन् लड़ाई के ज़ख़[्मों] और रोगों के शिकार हुए; फिर बाक़ी ६७ कौन थे ? इत्यादि।

वास्तव में इस झूठे क़िस्से की रचना फ़रवरी सन् १७५७ ई० [में] कलकत्ते के अङ्गरेज़ मुखिया हौलवेल ने भारत से विलायत जा[ते] समय जहाज़ के ऊपर की थी। यह वही हौलवेल है जिसक[ी] सिराजुद्दौला ने हथकड़ी खुलवा दी थी। अपने झूठों और जाल[-] साज़ियों के लिए यह अङ्गरेज़ काफ़ी मशहूर था।

उदाहरण के लिए हौलवेल के अन्य कारनामों में से केवल एक को यहाँ वर्णन कर देना काफ़ी होगा, यद्यपि यह घटना कुछ दिनों बाद की है, तथापि इस स्थान पर अप्रासङ्गिक न होगी। सिराजु[द्-] दौला के बाद मीर जाफ़र को मसनद पर बैठाने के लिए उसने मीर जाफ़र से एक लाख रुपए रिशवत के ले लिए और मीर जाफ़र की ख़ूब तारीफ़ की। बाद में जब मीर क़ासिम को मसनद पर बैठाने की ज़रूरत हुई तो उसने तीन लाख रुपए मीर क़ासिम से लेकर चट कर लिए। अब मीर जाफ़र को बदनाम करना उसके लिए आवश्यक हो गया। इसलिए कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम उसने एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें मीर जाफ़र को उसने घोर अन्यायी और हत्यारा बयान किया, और अनेक ऐसे पुरुषों और स्त्रियों की एक सूची साथ में दी, जिन्हें वह लिखता है कि मीर जाफ़र ने

निरपराध मार डाला। प्रत्येक पुरुष के पिता का नाम और प्रत्येक स्त्री के पति का नाम सूची में दिया गया। छोटी से छोटी तफ़सील तक इन हत्याओं की हौलवेल के पत्र में मौजूद है। इसके कई वर्ष बाद क्लाइव और उसके साथियों ने डाइरेक्टरों को एक और पत्र भेजा जिसमें उन्होंने बताया कि मीर जाफ़र पर जितने इलज़ाम हौलवेल ने लगाए हैं वे सब सर से पाँव तक झूठे हैं और जिन पुरुष स्त्रियों की सूची हौलवेल ने अपने पत्र में दी है यह कहकर कि मीर जाफ़र ने इन लोगों को निरपराध मार डाला उनमें से दो को छोड़कर शेष सब अभी तक ज़िन्दा हैं।*

तथापि सिराजुद्दौला को बदनाम करने और अपने देशवासियों के काले कारनामों पर मुलम्मा फेरने के लिए उस समय से आज तक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने हौलवेल की ब्लैक होल नामक कल्पना से पूरा फ़ायदा उठाया है। अङ्गरेज़ी स्कूलों की समस्त पाठ्य पुस्तकों में, जिनमें कि अङ्गरेज़ों के ऊपर सिराजुद्दौला के बेशुमार अहसानों का कहीं ज़िक्र नहीं, उनमें यह क़िस्सा सच्चा कहकर बयान किया जाता है।

सिराजुद्दौला की कलकत्ते से वापसी

अपनी वीरता तथा उदारता दोनों का परिचय देने के बाद विजयी सिराजुद्दौला २४ जून को कलकत्ते से अपनी राजधानी की ओर लौटा। मार्ग में हुगली के ऊपर उसने एक दरबार किया,

* Letter to the Directors, dated 1st October, 1765, by Clive and others.

जिसमें .फ्रान्सीसी कोठी के वकील ने साढ़े तीन लाख रुपए और डच कोठी के वकील ने साढ़े चार लाख रुपए अपनी अपनी राजभक्ति दर्शाने के लिए सिराजुद्दौला की नज़र किए। सिराजुद्दौला ने उन्हें अपना व्यापार जारी रखने की इजाज़त दे दी। सिराजुद्दौला को अभी तक आशा थी कि इसी तरह का समझौता अङ्गरेज़ों के साथ भी हो जायगा। ११ जुलाई सन् १७५६ ई० को सिराजुद्दौला मुर्शिदाबाद पहुँच गया।

थोड़े ही दिनों बाद पूर्निया के नवाब शौकतजङ्ग ने फिर बग़ावत का झण्डा ऊँचा किया। १६ अक्तूबर सन् १७५६ को राजमहल नामक स्थान पर सिराजुद्दौला तथा शौकतजङ्ग की सेनाओं में मुक़ाबला हुआ, जिसमें शौकतजङ्ग काम आया और सिराजुद्दौला ने विजय प्राप्त की। सिराजुद्दौला अब शौकतजङ्ग की जगह राजा युगलसिंह नामक एक हिन्दू को पूर्निया की गद्दी पर बैठाकर मुर्शिदाबाद लौट आया। इस बार सिराजुद्दौला की प्रजा ने उसे बधाइयाँ दीं और दिल्ली के सम्राट ने एक नए फ़रमान के ज़रिए उसे बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा तीनों प्रान्तों की सूबेदारी की मसनद पर फिर से पक्का किया। यह बात स्मरण रखने योग्य है कि आरम्भ से सिराजुद्दौला जो कुछ करता था, दिल्ली सम्राट के नाम पर और उसके एक सेवक की हैसियत से ही करता था।

बङ्गाल में अङ्गरेज़ों का फिर से प्रवेश

कलकत्ते से भागे हुए, अङ्गरेज़ कलकत्ते से कुछ नीचे

बङ्गाल की खाड़ी के ऊपर फल्ता नामक एक स्थान पर जाकर ठहर गए और लगभग छै महीने वहाँ ठहरे रहे।

कम्पनी के कारबार की दृष्टि से उस समय कलकत्ते की निस्बत मद्रास अधिक महत्व का स्थान था। फल्ता से इन अङ्गरेज़ों ने एक ओर तो मद्रास की कोठी के अङ्गरेज़ों को यह लिखा कि मद्रास से नई सेना जमा करके बङ्गाल भेजी जाय और दूसरी ओर—क्योंकि केवल सेना के बल सिराजुद्दौला से जीतने की दुराशा को वे समझ चुके थे—उन्होंने अपने गुप्तचरों के ज़रिए झूठे सच्चे लोभ दिखला-कर कलकत्ते के राजा मानिकचन्द को तथा सिराजुद्दौला के अन्य अनेक सेनापतियों, दरबारियों और सामन्तों को अपनी ओर फोड़ने के प्रयत्न शुरू किए। निस्सन्देह भेद-नीति का यह विस्तृत जाल ही वह मुख्य उपाय था जिसके द्वारा ये मुट्ठी भर, निर्बल, किन्तु चालाक विदेशी बलवान, किन्तु अनुभवशून्य भारतीय नवाब को गिराने की आशा कर रहे थे। स्क्रैफ़टन नामक अङ्गरेज़ लिखता है—

"यह एक बड़े भारी आश्चर्य की बात मालूम होगी कि सूबेदार (नवाब) ने इतने दिनों इतनी शान्ति से हमें फल्ता में क्यों पड़े रहने दिया। ××× इसका कारण मैं केवल यह बता सकता हूँ कि वह हमें एक बहुत ही तुच्छ चीज़ समझता था। ××× और उसे इस बात का गुमान भी न था कि हम सैन्यबल के सहारे फिर बङ्गाल लौटने की हिम्मत करेंगे।"*

इस पर जीन लॉ लिखता है—

---

* "*Reflections*" by Scrafton p. 58.

"सिराजुद्दौला यूरोप-निवासियों को बहुत ही ज़्यादा हक़ीर और तुच्छ समझता था। वह कहा करता था कि इन्हें ठिकाने रखने के लिए केवल एक जोड़ी चप्पल की ज़रूरत है। × × × इसलिए वह यह सोच ही न सकता था कि अङ्गरेज़ सैन्यबल द्वारा फिर से बङ्गाल में पैर जमाने का विचार कर सकते हैं। स्वभावतः यदि वह यह अनुमान कर सकता था कि अङ्गरेज़ कोई नई तरकीब सोच रहे होंगे तो केवल एक इस बात का उसे अनुमान हो सकता था कि वे विनम्र होकर एक हाथ से मेरे सामने नज़र पेश करेंगे, और दूसरे हाथ से फिर अपना व्यापार आरम्भ करने के लिए ख़ुशी के साथ मेरा फ़रमान हासिल करेंगे। निस्सन्देह इस विचार से ही सिराजुद्दौला ने अङ्गरेज़ों को शान्ति से फल्ता में पड़े रहने दिया।"*

फल्ता में अङ्गरेज़ों ने नवाब के सरकारी अफ़सरों से यह कहा कि हम लोग केवल मौसम ख़राब होने के कारण यहाँ रुके हुए हैं और ज्योंही मौसम समुद्र-यात्रा के योग्य हुआ, हम मद्रास चले जायँगे। दूसरी ओर उन्होंने "नवाब को धोखा देने के स्पष्ट उद्देश से"† सिराजुद्दौला के पास अत्यन्त दीन और नम्र शब्दों में इस मज़मून की अर्ज़ियाँ भेजनी शुरू कर दीं कि हमें फिर से बङ्गाल में व्यापार करने की इजाज़त दी जाय। सिराजुद्दौला ने बजाय किसी प्रकार की ताड़ना के इस समय भी उनके साथ दयालुता का व्यवहार किया। मिसाल के तौर पर जब उसे यह मालूम हुआ कि अङ्गरेज़ों के फल्ता पहुँचने पर वहाँ के लोगों ने बाज़ार बन्द कर

* *Bengal in 1756—57*, vol. iii, p, 176.

† "To deceive the Nawab . . ." S. C. Hill in *Bengal in 1756—57*, vol. i, pp. cxi, cxv.

सिराजुद्दौला

['बँगलार इतिहास,' नामक बँगला ग्रन्थ से]
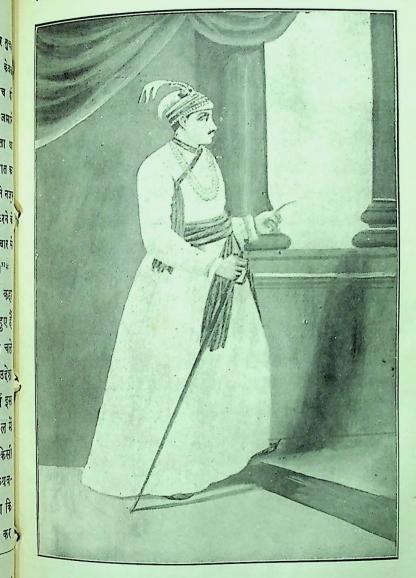
दिए थे जिसके कारण अङ्गरेज़ों को रसद की दिक़्क़त हो रही थी, तो उसने फ़ौरन हुकुम भेज दिया कि बाज़ार खोल दिए जायँ और 'परदेसियों को खाने पीने के सामान की कोई दिक़्क़त न होने पाए।' वास्तव में सिराजुद्दौला दिल से चाहता था कि अङ्गरेज़ अपनी शरारतें छोड़कर फिर से बङ्गाल में व्यापार करने लगें। इसीलिए उसने विजय के बाद भी क़ासिमबाज़ार, कलकत्ते इत्यादि की कोठियों में उनके तिजारती माल को हाथ तक न लगाया था।

सिराजुद्दौला की नीयत यदि कुछ और होती तो कलकत्ते अथवा फल्ता में कहीं भी इन विदेशी व्यापारियों का एक एक कर ख़ात्मा कर डालना और साथ ही साथ उनके समस्त षड़यन्त्रों का भी अन्त कर देना उसके लिए एक बहुत ही सरल कार्य था। यदि वह ऐसा कर डालता तो कोई निष्पक्ष इतिहास-लेखक उसे दोषी भी न ठहरा सकता था। किन्तु उस भोले एशियाई नरेश को इन विदेशियों के चरित्र और उनकी चालों का अभी तक भी पता न था। इस भोलेपन का मूल्य सिराजुद्दौला और उसके देश दोनों को बहुत ज़बरदस्त चुकाना पड़ा।

२० जून सन् १७५६ को अङ्गरेज़ कलकत्ते से निकाले गए। १६ अगस्त को कलकत्ते के छिन जाने का समाचार मद्रास पहुँचा। अक्तूबर के मध्य में ८०० यूरोपियन और १३०० हिन्दोस्तानी सिपाही मद्रास से रवाना किए गए। जल-सेना का अधिकार ऐडमिरल वाट्सन को और स्थल-सेना का अधिकार सुप्रसिद्ध करनल क्लाइव को दिया गया। मद्रास की अङ्गरेज़ कौन्सिल

के मेम्बरों ने १३ अक्तूबर के एक पत्र में इस सेना के अफ़सरों को स्पष्ट आदेश दिया कि आप लोग बङ्गाल पहुँचकर नवाब के आदमियों को अपनी ओर फोड़कर किसी दूसरे को नवाबी का हक़दार खड़ा करके तथा अन्य हर तरह के उपायों और षड़यन्त्रों द्वारा नवाबी को पलट देने का प्रयत्न करें।* इस प्रकार इन कूट इरादों के साथ दिसम्बर सन् १७५६ के मध्य में यह सेना फल्ता पहुँच गई।

कलकत्ते पर फिर से क़ब्ज़ा

वास्तव में यह सैन्यबल बहुत दरजे तक केवल एक दिखावे की चीज़ थी। साज़िशों का जाल बङ्गाल में पूरी तरह फैल चुका था। कलकत्ते का राजा मानिकचन्द भी किसी न किसी लालच में फँस कर अपने स्वामी तथा देश दोनों के साथ विश्वासघात करने के लिए राज़ी हो गया। फल्ता पहुँचते ही क्लाइव तथा वाट्सन दोनों ने नवाब के नाम अलग अलग दो लम्बे पत्र लिखे, जिनमें सिवाय धमकियों, छल और अपमान के और कुछ न था। सिराजुद्दौला इन पत्रों का क्या उत्तर दे सकता था? और अङ्गरेज़ों को भी सिराजुद्दौला के जवाब का कहाँ इन्तज़ार था?

कलकत्ते से कुछ नीचे बजबज नामक स्थान पर एक अत्यन्त मज़बूत पुराना क़िला था, जिसके चारों ओर एक गहरी खाई थी। यह क़िला राजा मानिकचन्द के सुपुर्द था। २९ दिसम्बर को क्लाइव

* Letter dated 13th October 1756. *Bengal in 1756–57,* vol. i, p.p. 239, 240.

के अधीन थोड़ी सी अङ्गरेज़ी सेना जहाज़ से उतरकर बजबज पहुँची। अङ्गरेज़ों तथा मानिकचन्द के बीच पहले से तय हो चुका था कि मानिकचन्द केवल दिखाने के लिए एक बार अङ्गरेज़ों का मुक़ाबला करे। चुनाँचे मानिकचन्द दो हज़ार सैनिक लेकर क्लाइव के २६० सैनिकों का मुक़ाबला करने के लिए क़िले से बाहर निकला। केवल आध घण्टे की झूठी फटफट के बाद मानिकचन्द ने क़िले के दरवाज़े खोल दिए और बिना किसी रुकावट के २९ दिसम्बर की रात को अङ्गरेज़ी सेना ने बजबज के ज़बरदस्त क़िले में प्रवेश किया। मानिकचन्द अपनी सेना सहित पीछे की ओर हटता चला गया। मानिकचन्द कायर न था। छै वर्ष बाद कम्पनी ने राजा मानिकचन्द के एक पुत्र को अपने यहाँ तनख़ाह देकर नियुक्त किया, जिसका कारण सरकारी काग़ज़ात में इन स्पष्ट शब्दों में दिया हुआ है—"क्योंकि पिछले ३० वर्ष के अन्दर मानिकचन्द कई तरह से हमारे लिए उपयोगी साबित हो चुका था।"*

बजबज के क़िले के अन्दर जितने हिन्दोस्तानी थे, उनमें से कुछ भाग निकले, और शेष का विजयी अङ्गरेज़ों ने वहीं पर काम तमाम कर दिया।

इसके बाद दूसरा स्थान, जहाँ मानिकचन्द अङ्गरेज़ों का मुक़ाबला कर सकता था, कलकत्ता था। किन्तु यहाँ पर उसने अथवा उसके विदेशी मित्रों ने दिखावे की भी ज़रूरत न समझी। बजबज से भागकर वह सीधा हुगली पहुँचा। वहाँ से उसने

* Rev. Long's *Selections from the Government Records.*

सिराजुद्दौला को कहला भेजा कि 'अङ्गरेज़ों की विशाल (?) सेना के सामने मैं ठहर न सका।'

२ जनवरी सन् १७५७ को मानिकचन्द की ग़ैरहाज़िरी में बहुत आसानी से कलकत्ता फिर से अङ्गरेज़ों के हाथों में आगया। इसके बाद तान्नाह का क़िला भी अङ्गरेज़ी सेना को पहले ही से खुला हुआ और ख़ाली मिला।

३ जनवरी १७५७ को कलकत्ते का क़िला ड्रेक और उसकी एक कौन्सिल के अधीन कर दिया गया।

अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक एस० सी० हिल लिखता है कि इस समय सिराजुद्दौला पर हमला करने से पहले अङ्गरेज़ों के सामने एक ख़ास सवाल यह था कि सिराजुद्दौला की जगह सूबेदारी का हक़दार किसको खड़ा किया जाय। कुछ की सलाह थी कि "सरफ़राज़ ख़ाँ के उन बेटों में से एक को, जो इस समय ढाका में क़ैद थे, सिराजुद्दौला के ख़िलाफ़ सूबेदारी का हक़दार खड़ा कर दिया जाय।"* किन्तु यह मामला अभी तय नहीं किया गया। कलकत्ते के आस पास केवल एक हुगली का क़िला और बाक़ी रह गया था। अङ्गरेज़ों को मालूम था कि सिराजुद्दौला ने हुगली के पास नाज की बड़ी बड़ी कोठियाँ भर रक्खी हैं। तय हुआ कि सब से पहले इन तमाम कोठियों को जाकर आग लगा दी जाय।†

हुगली का क़िला अरक्षित पड़ा हुआ था। माल भी वहाँ बहुत

* *Bengal in 1756—57*, vol. i, p. cxxxviii.
† *Bengal in 1756—57*, vol. i, p. cxxxviii.

था। क़िला आसानी से अङ्गरेज़ों के हाथों में आगया। ११ जनवरी का दिन क़िले के नज़दीक के मकानों को लूटने में ख़र्च हुआ। फिर १२ से १८ तक पूरे सात दिन हुगली नगर और उसके आसपास की तमाम हिन्दोस्तानी प्रजा के घरों को लूटने में ख़र्च किए गए। इस लूट के साथ साथ हुगली के असंख्य निहत्थे और निरपराध हिन्दोस्तानी बाशिन्दे क़त्ल कर डाले गए।

सिराजुद्दौला का आगे बढ़ना

सिराजुद्दौला को मालूम हो गया कि मेरे आदमियों में विश्वासघात के बीज बोकर अङ्गरेज़ों ने बजबज, तान्नाह, कलकत्ता और हुगली के ज़बरदस्त क़िले मुफ़्त ही में ले लिए हैं। एस० सी० हिल नामक इतिहास-लेखक स्पष्ट लिखता है कि मुर्शिदाबाद के मुख्य मुख्य दरबारियों को अपनी ओर मिलाने के लिए क्लाइव का गुप्त पत्र-व्यवहार उनके साथ बराबर जारी था। बहुत सम्भव है कि इस पत्र-व्यवहार की भी कुछ भनक सिराजुद्दौला के कानों तक पहुँच गई हो। इसके बाद हुगली की निरपराध प्रजा के ऊपर अङ्गरेज़ों के अत्याचारों की ख़बर सिराजुद्दौला को मिली। सिराजुद्दौला सेना लेकर मुर्शिदाबाद से बढ़ा और हुगली के निकट आकर उसने अङ्गरेज़ सेनापति वाट्सन को इस मज़मून का एक पत्र लिखा—

"आप लोगों ने हुगली का नगर ले लिया, उसे लूटा और मेरी प्रजा के साथ युद्ध किया। इस तरह के काम व्यापारियों को शोभा नहीं देते! इसलिए मैं मुर्शिदाबाद से चलकर हुगली के निकट आ गया हूँ। इसी

तरह मैं अपनी सेना सहित नदी को पार कर रहा हूँ और मेरी सेना का एक भाग आपके पड़ाव की ओर बढ़ रहा है। फिर भी यदि आप चाहते हैं कि कम्पनी का कारबार पहले की तरह फिर से जम जाय और कम्पनी का व्यापार चलने लगे, तो किसी बा-अख़्तियार आदमी को मेरे पास भेज दीजिए जो अपनी इच्छाएँ और आवश्यकताएँ मुझे बता सके और इस मामले में मुझसे पूरी तरह बातचीत कर सके। इस बात का परवाना जारी करने में मुझे कोई सङ्कोच न होगा कि कम्पनी की तमाम कोठियाँ उन्हें वापस दे दी जायँ और जिन शर्तों पर वे इस देश में पहले व्यापार करते थे उन्हीं शर्तों पर आयन्दा करते रहें। जो अङ्गरेज़ इन सूबों में बसे हुए हैं वे यदि व्यापारियों का सा बर्ताव करेंगे, मेरी अज्ञाओं का पालन करेंगे और मुझे किसी तरह दिक़ न करेंगे तो आप विश्वास रखिए मैं उनके नुक़सानों का ख़याल करूँगा और इस विषय में उनकी तसल्ली कर दूँगा।

"आप जानते हैं, जङ्ग में सिपाहियों को लूटने से रोकना कितना मुश्किल काम है। इसलिए यदि मेरी सेना की लूट द्वारा आप लोगों का कुछ नुक़सान हुआ है और उसमें से कुछ यदि आप लोग अपनी ओर से छोड़ देंगे तो आपकी दोस्ती लाभ करने के लिए और भविष्य में आपकी क़ौम के साथ अच्छा सम्बन्ध क़ायम रखने के लिए, मैं इस ख़ास विषय में भी आप लोगों की तसल्ली कर देने की कोशिश करूँगा।

"आप ईसाई हैं, और जानते हैं कि किसी झगड़े को बनाए रखने की निस्बत उसे आपस में तय कर डालना कितना ज़्यादा अच्छा है। किन्तु यदि आप यह सङ्कल्प ही कर चुके हैं कि अपनी लड़ाई की इच्छा के सामने अपनी कम्पनी के हित और वैयक्तिक व्यापारियों के भले दोनों को क़ुरबान कर दें, तो इसमें मेरी कोई ज़िम्मेवारी नहीं। इस प्रकार के नाश-

कारी संग्राम के घातक परिणाम को रोकने के लिए ही मैं यह पत्र लिख रहा हूँ।"*

निस्सन्देह यह पत्र सिराजुद्दौला की दूरदर्शिता, उसकी शान्ति-प्रियता, उसकी बरदाश्त, उसकी उदारता और उसकी प्रजापालकता, इन सब का पूरी तरह द्योतक है। किन्तु अभी तक उसे इस बात का काफ़ी तजरुबा न हुआ था कि इन विदेशी व्यापारियों के साथ किसी तरह का भी समझौता कहाँ तक स्थायी हो सकता है।

सिराजुद्दौला के साथ सन्धि

अङ्गरेज़ों ने जब नवाब को सुलह के लिए उत्सुक पाया तो नीचे लिखी शर्तें पेश कीं—

(१) यह कि अङ्गरेज़ों का जितना नुक़सान हुआ है उस सब का पूरा पूरा हरजाना दिया जाय।

(२) यह कि कम्पनी को बङ्गाल में जितनी रिआयतें मिली हुई थीं वे सब पूरी तरह फिर से दे दी जावें।

(३) यह कि अङ्गरेज़ों को अधिकार हो कि जिस तरह वे चाहें, अपनी आबादियों की क़िलेबन्दी कर सकें।

और (४) यह कि कलकत्ते में कम्पनी की एक अपनी टकसाल क़ायम हो।

चौथी शर्त को स्वीकार करना सिराजुद्दौला के अधिकार से बाहर था। साम्राज्य भर में कहीं भी टकसाल क़ायम करना वा

* Ive's *Voyages*, p. 109.

किसी को टकसाल क़ायम करने की इजाज़त देना केवल दिल्ली के सम्राट के अधिकार में था। पहली तीनों शर्तें सिराजुद्दौला ने मञ्ज़ूर कर लीं। चौथी के विषय में पत्र-व्यवहार होता रहा। इस पत्र-व्यवहार में अङ्गरेज़ों ने और नई नई शर्तें नवाब के सामने पेश करनी शुरू कीं। उनका असली उद्देश सिराजुद्दौला के साथ सुलह करना नहीं था, उनका उद्देश सिराजुद्दौला को धोखा देकर बङ्गाल के राजशासन में एक क्रान्ति उत्पन्न करना था। इन लोगों ने सिराजुद्दौला से कलकत्ते चलने की प्रार्थना की और उसे यह आशा दिलाई कि कलकत्ते पहुँचकर सुलह की शर्तें तय हो जायँगी।

अङ्गरेज़ इस समय सिराजुद्दौला को धोखे से कलकत्ते लाकर अचानक उस पर हमला करना चाहते थे। सुप्रसिद्ध मीर जाफ़र इस समय सिराजुद्दौला के साथ और उसके मुख्य सेनापतियों में से था।

एस० सी० हिल लिखता है कि सिराजुद्दौला को "अपनी इस यात्रा में मालूम हो गया था कि मेरे अनेक सिपाही और कई अफ़सर तक मेरा साथ देने के लिए तैयार नहीं हैं।"*

इतिहास-लेखक स्क्रैफ़टन लिखता है कि सिराजुद्दौला को "अपने मुख्य मुख्य अफ़सरों और ख़ासकर मीर जाफ़र में, जिसका व्यवहार कि इस मामले में अत्यन्त रहस्यपूर्ण मालूम होता था, विद्रोह के लक्षण दिखाई दे गए थे।"†

* Ibid, vol. i, p. cxlvii.

† Sirajuddaula " discovered some appearance of disaffection

४ फ़रवरी सन् १७५७ ई० को सिराजुद्दौला कलकत्ते पहुँचा। कलकत्ते में अङ्गरेज़ों ने उसे बड़े आदर के साथ अमींचन्द के बाग़ में ठहराया। सुलह की बातचीत बराबर जारी रही। अङ्गरेज़ों की यह तजवीज़ थी कि ५ को सवेरे सूर्योदय से पहले सिराजुद्दौला पर चुपके से हमला कर दिया जाय। इतिहास-लेखक जीन लॉ लिखता है—

"जिस दिन अङ्गरेज़ हमला करने वाले थे उससे एक दिन पहले सिराजुद्दौला को और अधिक पूरी तरह धोखे में रखने की ग़रज से और उसके ख़ेमे की जगह को अच्छी तरह देख लेने के लिए उन्होंने उसके पास अपने दो वकील भेजे। इन वकीलों को हुकुम था कि वे नवाब से सुलह की तजवीज़ें करें, किन्तु सुलह की जो शर्तें उन्होंने पेश कीं उन्हीं से नवाब को ज़ाहिर हो जाना चाहिए था कि यह उसके शत्रुओं की केवल एक चाल थी।"*

जो दो अङ्गरेज़ वकील क्लाइव ने इस अवसर पर नवाब के पास भेजे और जो वास्तव में जासूसों का काम कर रहे थे, उनके

---

in some of his principal officers, particularly in Mir Jaffar, whose conduct in this affair had been very mysterious."—*Reflections* p. 66.

* "To deceive him (Siraj) more completely and examine the position of his camp the English sent deputies the day before the attack they meditated. These deputies were ordered to propose an accommodation, but the very conditions must have shown the Nawab this was only a ruse on the part of his enemy."—Jean Law, Ibid vol. iii, p. 182.

५

नाम वाल्श और स्क्रैफ़टन थे। एक और हिन्दोस्तानी देश-द्रोही राजा नवकृष्ण इस समय सिराजुद्दौला के दल में अङ्गरेज़ों के जासूस का काम कर रहा था और उन्हें पल पल पर नवाब की समस्त काररवाइयों की ख़बर देता रहता था।

नवाब के ख़ेमे के पास ही अङ्गरेज़ वकीलों के ख़ेमे डाल दिए गए। पहले से जो हिदायतें उन्हें दे दी गई थीं उनके अनुसार ४ तारीख़ की रात को ये दोनों दूत सिराजुद्दौला से बातचीत करके अपने ख़ेमों में आगए, इसके बाद सोने के बहाने उन्होंने ख़ेमे की रोशनी बुझा दी और फिर अँधेरे में वहाँ से निकलकर ये लोग अङ्गरेज़ों की ओर भाग आए। इसके बाद की घटना के विषय में जीन लॉ लिखता है—

"अगले दिन ५ फ़रवरी को सुबह ४ या ५ बजे गहरे कोहरे में कर्नल क्लाइव ने अपनी सेना सहित नवाब के दल पर हमला किया। और ये गोले ठीक उस ख़ेमे पर आकर गिरे जिसमें पहले दिन शाम को अङ्गरेज़ वकील नवाब से मुलाक़ात कर चुके थे। ××× सौभाग्य से नवाब उस समय उस ख़ेमे में मौजूद न था। उसके एक दीवान को अङ्गरेज़ वकीलों पर पहले ही कुछ सन्देह हो चुका था और उसने नवाब को सलाह दी थी कि आप ज़रा दूर एक दूसरे ख़ेमे में रात गुज़ारें।"

सिराजुद्दौला को ऐसे समय में, जबकि सुलह की बातचीत जारी थी, इस विश्वासघात की कोई आशा न थी। जो लड़ाई इस समय सिराजुद्दौला और अङ्गरेज़ों के बीच हुई उसके विषय में रेनाल्ट अपने ४ सितम्बर के एक पत्र में लिखता है—

"यद्यपि अङ्गरेज़ों ने अपनी सारी स्थल-सेना और उसके साथ अपने जहाज़ों के तमाम सैनिक भेज दिए, और वे सोए हुए मुसलमानों पर छल द्वारा अचानक जा पड़े, तथापि इस लड़ाई से जितने लाभ की उन्हें आशा थी उतना न हो सका। शुरू में वे शत्रु को थोड़ा सा पीछे हटा पाए, किन्तु फिर ज्योंही सिराजुद्दौला ने अपनी सेना का एक भाग जमा कर लिया, त्योंही अङ्गरेज़ों को स्वयं पीछे हट जाना पड़ा। अङ्गरेज़ सेना बेतर-तीबी के साथ पीछे को भागी और यह उनकी बड़ी ख़ुशक़िस्मती थी कि वे अपने क़िले की दीवारों के नीचे तोपों के सुरक्षित साए में पहुँच सके। इस लड़ाई में अङ्गरेज़ों के लगभग २०० आदमी काम आए।"*

निस्सन्देह इस विश्वासघात का अङ्गरेज़ों को बदला देने के योग्य अब भी नवाब के पास काफ़ी सेना थी। किन्तु और आगे चलकर रेनाल्ट लिखता है—

"नवाब के मन्त्रियों ने, जो प्रायः सभी अङ्गरेज़ों के तरफ़दार थे, और केवल सुलह कर लेना चाहते थे, इस अवसर से लाभ उठाकर नवाब को सुलह के लिए मजबूर किया। दूसरी तरफ़ अपने सेनापतियों की बग़ावत से विवश होकर ××× नवाब ने देखा कि सुलह के लिए राज़ी हो जाने के सिवा उसके पास और कोई चारा न था। उसे अत्यन्त कड़ी शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं।"

इस हालत में नवाब सिराजुद्दौला ने ९ फ़रवरी सन् १७५७ ई० को अङ्गरेज़ों के साथ वह सन्धि स्वीकार की जो 'अलीनगर की सन्धि' के नाम से प्रसिद्ध है। इस सन्धि की सात शर्तें ये थीं—

* Ibid, vol, iii, p. 246.

(१) जितनी रिआयतें दिल्ली के सम्राट ने अङ्गरेज़ों के साथ कर रक्खी थीं वे सब फिर से मन्ज़ूर कर ली जावें।

(२) बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा भर में जिस किसी माल के साथ अङ्गरेज़ों का दस्तक हो वह सब बिना महसूल आने जाने दिया जावे।

(३) कम्पनी की कोठियाँ और कम्पनी, उसके नौकरों वा असामियों का वह तमाम माल असबाब, जो नवाब ने ज़ब्त कर लिया था, वापस दे दिया जावे; और नवाब के आदमियों ने जो कुछ माल लूट लिया था उसके बदले में एक नक़द रक़म दी जावे।

(४) अङ्गरेज़ जिस तरह उचित समझें उस तरह कलकत्ते की क़िलेबन्दी कर लें।

(५) अङ्गरेज़ों को सिक्के ढालने का अधिकार रहे।

(६) नवाब और उसके मुख्य पदाधिकारी तथा मन्त्री इस सन्धि-पत्र पर दस्तख़त करें।

(७) अङ्गरेज़ क़ौम और अङ्गरेज़ कम्पनी की ओर से ऐड-मिरल वाट्सन और करनल क्लाइव दोनों इस बात का वादा करें कि जब तक नवाब की ओर से सन्धि का उल्लङ्घन न किया जायगा तब तक हम नवाब के राज्य में अमन से रहेंगे।

भारत में अङ्गरेज़ों और फ़्रान्सीसियों के दरमियान प्रतिस्पर्धा इस समय ज़ोरों पर थी। इसलिए अङ्गरेज़ों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि सन्धि-पत्र में एक शर्त यह भी रक्खी जावे कि सिराजुद्दौला निरपराध फ़्रान्सीसियों पर हमला करके उन्हें इस देश से

बाहर निकाल दे। किन्तु सिराजुद्दौला ने इस शर्त को मानने से साफ़ इनकार कर दिया।

इस सन्धि के साथ साथ अङ्गरेज़ों ने नवाब से यह इजाज़त ले ली कि मुर्शिदाबाद के दरबार में अङ्गरेज़ों का एक एलची रहा करे। यह भी निश्चय हो गया कि जब कभी युद्ध इत्यादि के समय नवाब को ज़रूरत हो और नवाब आज्ञा दे तो अङ्गरेज़ अपनी सेना और धन दोनों से उसकी मदद करें।

सन्धि तोड़ने के प्रयत्न

इस सन्धि-पत्र की स्याही अभी सूखने भी न पाई थी कि अङ्गरेज़ों ने, जिनका असली उद्देश क्रान्ति था, फ़ौरन उसे तोड़ने के उपाय सोचने शुरू किए। दरबार में एक अङ्गरेज़ एलची को रहने की इज़ाज़त देकर सिराजुद्दौला ने एक नई बला अपने सर ले ली। ९ फ़रवरी को सन्धि-पत्र पर दस्तख़त हुए और १२ को क्लाइव और उसके साथियों ने सिलेक्ट कमेटी के नाम अपने एक पत्र में यह स्पष्ट राय प्रकट की—

"और नई रिआयतें नवाब से माँगी जा सकती हैं××× और यदि एक ऐसा मनुष्य नवाब के दरबार में एलची नियुक्त करके भेजा जाय जो देश की भाषा और रिवाजों को समझता हो, तो न केवल उसके ज़रिए ये नई शर्तें ही मन्ज़ूर कराई जा सकती हैं, बल्कि और बहुत से प्रकट तथा गुप्त कामों में भी, जो पत्र-व्यवहार द्वारा इतनी अच्छी तरह नहीं हो सकते, वह मनुष्य बहुत उपयोगी साबित हो सकता है।"

मुर्शिदाबाद के दरबार में साज़िशों का जाल पूरना अङ्गरेज़ों

के लिए अब और अधिक सरल हो गया और इन कामों के लिए क़ासिमबाज़ार की कोठी का अङ्गरेज़ अफ़सर वाट्स, जिसको एक बार सिराजुद्दौला जान बख़्श चुका था, एलची नियुक्त करके भेजा गया। १६ फ़रवरी के एक पत्र में वाट्स को कम्पनी की ओर से यह हिदायत की गई कि तुम ९ तारीख़ के सन्धि-पत्र से बाहर दस और नई शर्तें सिराजुद्दौला के सामने पेश करो। इन नई शर्तों में इस प्रकार की शर्तें भी शामिल थीं, मसलन यह कि— यदि नवाब के महकमे चुङ्गी का कोई मुलाज़िम अङ्गरेज़ों के किसी दस्तख़ती माल पर किसी तरह का महसूल माँग बैठे तो बिना नवाब से शिकायत किए या सरकारी अदालतों तक पहुँचे अङ्गरेज़ों को उसे स्वयं दण्ड देने का अधिकार हो; कम्पनी के ज़िम्मे या किसी भी अङ्गरेज़ के ज़िम्मे यदि किसी भारतवासी का कोई क़र्ज़ निकलता हो तो नवाब उसे अपने पास से अदा कर दे; जो अदालतें अङ्गरेज़ अपनी ओर से क़ायम करें उन्हें भारतवासियों को मुजरिम क़रार देने और उन्हें फाँसी देने तक का अधिकार मिल जावे; नवाब से भेंट करने के समय अङ्गरेज़ों को रिवाज के अनुसार किसी तरह की नज़र पेश न करनी पड़े; कलकत्ते के नीचे नदी से एक मील के अन्दर नवाब कभी किसी तरह की क़िलेबन्दी न करे, इत्यादि इत्यादि।

अङ्गरेज़ ख़ूब जानते थे कि सिराजुद्दौला इस तरह की नई शर्तें, जिनका साफ़ मतलब उससे शासन-अधिकार छीनना था, स्वीकार न कर सकता था। असली मतलब सिद्ध करने के लिए सुप्रसिद्ध अमीचन्द अपनी थैलियों सहित वाट्स का सलाहकार नियुक्त होकर

उसके साथ मुर्शिदाबाद भेजा गया। वाट्स अपने "मैमॉयर्स आफ़ दी रेवोल्युशन" में स्वीकार करता है कि अपनी साज़िशों को सफल बनाने के लिए उसने मुर्शिदाबाद के दरबार में रिशवतों का बाज़ार खूब गरम कर रक्खा था।

दूसरी ओर अलीनगर की सन्धि के विरुद्ध और उसकी ख़ाक परवा न करते हुए अङ्गरेज़ों ने फ़ौरन सबसे पहले फ़्रान्सीसियों की चन्दरनगर वाली कोठी पर हमला करने की ठानी। सिराजुद्दौला अभी कलकत्ते से लौटकर अपनी राजधानी तक पहुँचा भी न था कि मार्ग ही में उसे अङ्गरेज़ों के इस इरादे का समाचार मिला। उसने तुरन्त १९ फ़रवरी को ऐडमिरल वाट्सन के नाम इस मज़मून का एक पत्र लिखा—

"अपने देश तथा अपने राज्य के अन्दर लड़ाइयाँ बन्द करने के उद्देश से मैंने अङ्गरेज़ों के साथ सन्धि स्वीकार की थी, ताकि तिजारत पहले की तरह जारी रह सके×××इसी तरह आपने भी अपने दस्तख़त से और अपनी मोहर लगाकर इस मज़मून का इक़रारनामा मेरे पास भेज दिया है कि आप मेरे देश की शान्ति भङ्ग न करेंगे; किन्तु अब मालूम होता है कि आप हुगली के पास की फ़्रान्सीसी कोठी का मोहासरा करने और फ़्रान्सीसियों से लड़ाई शुरू करने की तजवीज़ कर रहे हैं। यह बात हरेक क़ायदे और रिवाज के ख़िलाफ़ है कि आप लोग अपने यहाँ के झगड़ों और दुश्मनियों को मेरे देश में लावें×××अगर आपने फ़्रान्सीसी कोठियों का मोहासरा करने की ठान ही ली है तो मेरी अपनी आन और अपने बादशाह की ओर मेरा फ़र्ज़ दोनों मुझे मजबूर करेंगे कि

मैं अपनी सेना द्वारा फ़ान्सीसियों की मदद करूँ। मालूम होता है कि अभी हाल ही में जो सन्धि मेरे आपके बीच हुई है, उसे आप तोड़ना चाहते हैं; इससे पहले मराठों ने इस राज्य पर हमला किया था और बरसों इस देश में लड़ाइयाँ जारी रक्खीं। किन्तु जब एक बार झगड़ा तय हो गया और उनके साथ सन्धि हो गई तो उन्होंने कभी सन्धि की शर्तों का उल्लङ्घन नहीं किया और न वे कभी आयन्दा उन शर्तों से हटेंगे। जो सन्धियाँ निहायत सञ्जीदगी के साथ की जाती हैं उनकी क़तई परवा न करना और उन्हें तोड़ देना ग़लत और बुरा तरीक़ा है; निस्सन्देह आपका फ़र्ज़ है कि आप अपनी ओर की शर्तों पर ठीक ठीक क़ायम रहें और आयन्दा मेरे मातहत सूबों में न कभी किसी तरह के झगड़ों या छेड़छाड़ की अपनी तरफ़ से कोशिश करें और न अपने कारण कोई झगड़ा खड़े होने का मौक़ा दें। दूसरी ओर से जो कुछ मैंने वादा किया है और मन्ज़ूर कर लिया है उसे मैं बिलकुल ठीक समय पर पूरा करूँगा।×××"*

इस पत्र की भाषा अत्यन्त सरल और निष्कपट है। किन्तु दूसरे ही दिन सिराजुद्दौला को फिर एक पत्र इस मज़मून का लिखना पड़ा—

"मैं अनुमान करता हूँ कि जो पत्र कल मैंने आपको लिखा है वह आपको मिला होगा; उसके बाद फ़ान्सीसी वकील ने मुझे इत्तला दी है कि आपके पाँच या छै नए जङ्गी जहाज़ हुगली में आ गए हैं और औरों के आने की आशा है। फ़ान्सीसी वकील यह भी कहता है कि बारिश ख़तम होते ही आप मेरे और मेरी प्रजा के साथ फिर से युद्ध प्रारम्भ करने की तजवीज़ें कर रहे हैं। यह व्यवहार एक सच्चे सिपाही और एक ऐसे

* Ive's *Voyages*, pp. 119, 120.

आन वाले मनुष्य के चरित्र को, जिसने कभी अपने वचन को नहीं तोड़ा, शोभा नहीं देता। यदि आप उस सन्धि की ओर सच्चे हैं, जो आपने मेरे साथ की है, तो अपने जङ्गी जहाज़ नदी से बाहर भेज दीजिए और अपने अहदनामे पर पूरी तरह क़ायम रहिए ; मैं अपनी ओर से सन्धि का पालन करने में न चूकूँगा। इतनी सञ्जीदगी के साथ सन्धि करने के फ़ौरन ही बाद फिर जङ्ग शुरू कर देना क्या उचित या ईमानदारी है? मराठे किसी इलहामी किताब से बँधे हुए नहीं हैं, तो भी वे अपनी सन्धियों का बिल्कुल ठीक-ठीक पालन करते हैं। इसलिए यह बड़े आश्चर्य की और विश्वास के अयोग्य बात होगी, यदि ईसाई लोग, जिन्हें इञ्जील की रोशनी हासिल है, उस सन्धि पर क़ायम और पक्के न रहें, जिसे उन्होंने ख़ुदा और ईसा-मसीह के सामने क़बूल किया है।"

२३ फ़रवरी को यह पत्र वाट्सन को मिला, और २५ को उसने सिराजुद्दौला के नाम इस प्रकार उत्तर लिखा—

"XXXमैं नहीं जानता कि आप पर उस हैरानी को किस तरह ज़ाहिर करूँ जो मुझे यह देखकर हुई है कि महज़ इस हलकी सी बिना पर कि किसी कमीने शख़्स ने आपसे यह कह देने का साहस किया कि मैं शान्ति भङ्ग करने की तजवीज़ में हूँ, आपने सचमुच मुझ पर यह इलज़ाम लगा दिया। XXXजनाब, आपसे मैं यह उम्मीद करता हूँ कि आप उस कमीने शख़्स को, जिसने मुझ पर झूठा इलज़ाम लगाने और आपको धोखा देने का साहस किया, मुनासिब दण्ड देंगे। इस बीच मैंने फ़्रान्सीसियों से उनके वकील के व्यवहार की शिकायत की है और उन्होंने मुझसे वादा किया है कि हम ख़ुद नवाब को लिखेंगे कि जो इलज़ाम हमारे वकील ने आप पर लगाया है वह हमें मालूम है कि झूठा है। आप

विश्वास रखिए कि मैं सदा अपना धर्म समझ कर सुलह पर क़ायम रहूँगा××× ।"

निस्सन्देह यह पत्र कपट और झूठ दोनों से भरा हुआ है। सिराजुद्दौला की इस सीधी सी बात का कि "पाँच या छै नए जङ्गी जहाज़ हुगली में पहुँच चुके हैं" पत्र भर में कहीं उत्तर देने की चेष्टा नहीं की गई। वास्तव में अङ्गरेज़ इस समय फ़्रान्सीसियों और सिराजुद्दौला दोनों के साथ युद्ध करने का निश्चय कर चुके थे। चुपचाप तैयारियाँ हो रही थीं और केवल मौक़े का इन्तज़ार था। सिराजुद्दौला को वे अन्त समय तक धोखे में रखना चाहते थे।

इसी समय के निकट कहा जाता है कि दिल्ली सम्राट के दरबार और सिराजुद्दौला के बीच कुछ अनबन हो गई। ख़बर मिली कि सम्राट की सेना बङ्गाल की ओर बढ़ी चली आ रही है। सिराजुद्दौला ने उसके मुक़ाबले के लिए पटने की ओर बढ़ने का निश्चय किया। ९ फ़रवरी की सन्धि में यह तय हो गया था कि इस तरह की कोई आवश्यकता पड़ने पर अङ्गरेज़ धन और सेना दोनों से नवाब की सहायता करेंगे। सिराजुद्दौला ने वाट्सन को सेना भेजने के लिए लिखा और उसी पत्र में यह भी लिख दिया कि जब तक अङ्गरेज़ी सेना मेरे पास रहेगी तब तक मैं एक लाख रुपए मासिक उसके ख़र्च के लिए अदा करूँगा। सम्भव है इस प्रकार सेना माँगने में सिराजुद्दौला का एक उद्देश यह भी रहा हो कि इस बहाने अङ्गरेज़ कोई और शरारत करने से रुके रहेंगे। इसी बीच सिराजुद्दौला ने फ़्रान्सीसियों को भी एक पत्र

लिखा कि आप लोग अङ्गरेज़ों के साथ सुलह करके मेरे राज्य में शान्ति और अमन से रहें।

किन्तु अङ्गरेज़ों से सेना की सहायता माँगना सिराजुद्दौला के लिए एक घातक भूल साबित हुई। वाट्सन ने सिराजुद्दौला के पत्र का अत्यन्त गोलमोल जवाब दिया। उधर इस पत्र ने अङ्गरेज़ी सेना को कलकत्ते से बढ़ने का पूरा मौक़ा दे दिया। सेना कलकत्ते से बढ़ी। किन्तु सिराजुद्दौला की सहायता के लिए नहीं, वरन् पहले चन्दरनगर की फ़्रान्सीसी कोठी को विजय करने और फिर सिराजुद्दौला पर हमला करने के गुप्त उद्देश से।

चन्दरनगर पर अङ्गरेज़ों का क़ब्ज़ा

अङ्गरेज़ों का सब से पहला उद्देश इस समय बङ्गाल के अन्दर अपने यूरोपियन प्रतिस्पर्धी फ़्रान्सीसियों के प्रभाव को समाप्त करना था। क्लाइव और वाट्सन दोनों इरादा कर चुके थे कि सिराजुद्दौला के साथ लड़ने से पहले कोई न कोई बहाना निकालकर फ़्रान्सीसियों की चन्दरनगर वाली कोठी पर हमला करके उस पर क़ब्ज़ा कर लिया जाय। किन्तु ऐसा करना ९ फ़रवरी वाली सन्धि का उल्लङ्घन करना होता। सिराजुद्दौला भी इस विषय में उन्हें आगाह कर चुका था।

इसके अतिरिक्त फ़्रान्सीसी भी अङ्गरेज़ों से लड़ना न चाहते थे। उन्होंने सिराजुद्दौला का पत्र पाते ही सिराजुद्दौला की इच्छा के अनुसार आपसी समझौते के लिए अपने वकील अङ्गरेज़ों के पास भेजे। यहाँ तक कि समझौते की शर्तें भी लिखी गईं जो

दोनों पक्षों ने स्वीकार कर लीं। नवाब भी समझौते के पालन की ज़िम्मेवारी अपने ऊपर लेने के लिए राज़ी हो गया। केवल समझौते के काग़ज़ पर वाट्सन के हस्ताक्षर होना बाक़ी रह गया था।

किन्तु अङ्गरेज़ों का असली मतलब इस तरह के समझौते से सिद्ध न हो सकता था। क्लाइव और वाट्सन दोनों ने फ़्रान्सीसियों पर हमला करने का निश्चय कर लिया था, और ऐन मौक़े पर वाट्सन ने समझौते के काग़ज़ पर दस्तख़त करने से इनकार कर दिया। चन्दरनगर पर हमला क्लाइव और वाट्सन दोनों करना चाहते थे, किन्तु हमले के ढङ्ग के विषय में इन दोनों में एक ख़ास मतभेद हो गया। वाट्सन की राय थी कि बिना सिराजुद्दौला से पूछे अथवा बिना उसे सूचना दिए ही चन्दरनगर पर हमला कर दिया जावे, किन्तु क्लाइव इसके विरुद्ध था। क्लाइव चाहता था कि पहले रिशवतें देकर अथवा जालसाज़ी करके किसी प्रकार सिराजुद्दौला की ओर से इस मज़मून का एक पत्र, जिससे मालूम हो कि सिराजुद्दौला हमारे चन्दरनगर पर हमला करने में सहमत है, अपने पास रख लिया जावे और फिर चन्दरनगर पर हमला किया जावे। इस सम्बन्ध में क्लाइव ने ४ मार्च सन् १७५७ को सिलेक्ट कमेटी के मेम्बरों के नाम जो पत्र लिखा उससे इस मामले के स्वरूप का ख़ासा पता चल सकता है। क्लाइव ने लिखा—

"महाशय! ज़रा सोचिए कि हमारी इन हाल की कारवाइयों के विषय में दुनिया क्या राय क़ायम करेगी। चन्दरनगर के (फ़्रान्सीसी)

गवरनर और उसकी कौन्सिल की ओर से हमारे पास इस मज़मून का पत्र आया कि हम गङ्गा-प्रान्त में आपके साथ सुलह से रहने के लिए राज़ी हैं। हमने उसके जवाब में यह इच्छा प्रकट की कि आप अपने वकील भेजें और उन्हें लिख दिया कि हम ख़ुशी से आपके साथ समझौता करने को तैयार हैं। तो क्या हमने इस उत्तर द्वारा एक प्रकार से सुलह स्वीकार नहीं कर ली। इसके अतिरिक्त क्या फ़ान्सीसी वकीलों के आने के बाद हमने सुलह की इस प्रकार की शर्तें तैयार नहीं की हैं जो दोनों पक्षों के लिए सन्तोषजनक हैं, और क्या हम इसे मञ्ज़ूर नहीं कर चुके हैं कि हर शर्त पर दोनों पक्षों के दस्तख़त हों, दोनों की मोहरें लगें और दोनों उसके पालन की प्रतिज्ञा करें ? नवाब क्या सोचेगा ? जब हम अपनी ओर से नवाब से वादे कर चुके हैं और वह इस सन्धि के पालन की ज़िम्मेवारी अपने ऊपर लेने की रज़ामन्दी तक प्रकट कर चुका है तो इसके बाद निस्सन्देह नवाब और सारी दुनिया यही समझेगी कि हम हलकी और ओछी तबीयत के आदमी हैं, अथवा यह कि हमारा कोई सिद्धान्त नहीं।×××"

वास्तव में क्लाइव वाट्सन की अपेक्षा कहीं ज्यादा पक्का धूर्त था। वह चुपचाप वाट्स के ज़रिए, जो उस समय मुर्शिदाबाद के दरबार में एलची था, किसी तरह जालसाज़ी करवाकर नवाब की अनुमति का परवाना प्राप्त कर लेने की कोशिश में लगा हुआ था।

नवाब के मन्त्रियों को रिशवत देकर वाट्स ने १० मार्च को नवाब की ओर से वाट्सन के नाम एक पत्र भिजवाया जिसके अन्त में यह वाक्य था—

"आप समझदार और उदार हैं; यदि आपका शत्रु सरल हृदय से आपकी शरण चाहे तो आप उसकी जान बख़्श दें, किन्तु आपको उसके

इरादों की पवित्रता के विषय में पूरी तसल्ली होनी चाहिए; यदि ऐसा हो तो जो कुछ आप ठीक समझें, करें।"

इस पत्र की मूल फ़ारसी प्रति कहीं नहीं मिलती और अङ्गरेज़ी तर्जुमा, जिसका ऊपर हिन्दी तर्जुमा दिया गया है, वाट्स का किया हुआ है।

वाट्स का साथी स्क्रैफ़टन साफ़ लिखता है कि उपर्युक्त पत्र लिखाने के लिए अङ्गरेज़ों ने नवाब के मन्त्रियों को रिशवतें देने में काफ़ी रुपया ख़र्च किया।* दूसरा इतिहास-लेखक जीन लॉ लिखता है कि वाट्स ने मुर्शिदाबाद में रिशवतों और झूठे वादों का बाज़ार इतना गरम कर रक्खा था कि—

"नवाब की सेना में सब मुख्य मुख्य अफ़सर मीर जाफ़र अली ख़ाँ, ख़ुदादाद ख़ाँ लट्टी, और कई और ××× पुराने दरबार के सब वज़ीर ××× क़रीब-क़रीब सब मन्त्री, दरबार के मुहर्रिर, यहाँ तक कि हरमसरा के ख़ोजे तक अङ्गरेज़ों की ओर थे। ×××"†

पूर्वोक्त पत्र के सम्बन्ध में जीन लॉ को विश्वास है कि वाट्स ने नवाब के मन्त्री को अवश्य रिशवत दी।‡ वह यह भी लिखता है कि—"नवाब जिन पत्रों को अपने हुकुम से लिखवाता था उन्हें कभी पढ़ता न था; इसके अलावा मुसलमान (शासक)

---

* *Reflections*, p. 70.

† *Bengal Records*, vol. iii, p.191.

‡ "......The Secretary must have been bribed to write in a way suitable to the views of Mr. Watts."—M. Jean Law, in his *Memoirs*.

कभी अपने हाथ से दस्तख़त नहीं करते। जब लिफ़ाफ़ा बन्द करके अच्छी तरह कस दिया जाता है तब मन्त्री नवाब से उसकी मोहर माँगता है और नवाब के सामने लिफ़ाफ़े पर मोहर लगाता है। कभी कभी एक नक़ली मोहर भी होती है।"

इन सब कारवाई में मुर्शिदाबाद के दो जैन जगतसेठों का प्रभाव और सुप्रसिद्ध अमीचन्द का धन इन दोनों से अङ्गरेज़ों को ख़ूब मदद मिल रही थी।

३ मार्च को क्लाइव ने सिराजुद्दौला को सहायता पहुँचाने के बहाने अपनी सेना की बाग सँभाली। ७ मार्च को उसने सिराजुद्दौला को लिख भेजा कि मैं सहायता के लिए आता हूँ। अङ्गरेज़ों की तैयारी पूरी थी। इस बीच बम्बई से भी कुछ सेना क्लाइव की सहायता के लिए पहुँच चुकी थी। क्लाइव चन्दरनगर की ओर बढ़ा। उसे इस प्रकार सेना सहित अपनी ओर बढ़ते हुए देखकर फ़्रान्सीसियों ने इसका कारण पूछा। छली क्लाइव ने ९ मार्च को फ़्रान्सीसियों को पत्र द्वारा विश्वास दिलाया कि—"आपकी क़ौम से लड़ाई करने का मेरा इस समय बिलकुल इरादा नहीं है।" १० मार्च को सिराजुद्दौला का वह जाली ख़त मुर्शिदाबाद से चला, जिसमें कहा जाता है कि नवाब ने अङ्गरेज़ों को चन्दरनगर का मोहासरा करने की इजाज़त दे दी। ११ को एक दूसरे पत्र द्वारा क्लाइव ने फ़्रान्सीसियों पर यह एक नया इलज़ाम लगाया कि आप लोगों ने अङ्गरेज़ी सेना से भागे हुए कुछ बाग़ियों को अपने यहाँ छिपा रक्खा है। युद्ध के लिए बस यह काफ़ी बहाना था। १२ को

चन्दरनगर से दो मील की दूरी पर क्लाइव की सेना आन पहुँची। इसी समय वाट्सन भी अपनी सेना सहित पहुँच गया। १४ मार्च को चन्दरनगर का मोहासरा शुरू हुआ और २३ मार्च को चन्दरनगर अङ्गरेज़ों के हाथों में आगया। बङ्गाल के अन्दर फ़्रान्सीसियों की शेष कोठियों के विषय में इस समय अङ्गरेज़ों और फ़्रान्सीसियों के दरमियान एक सन्धि हो गई।

चन्दरनगर की इस सरल विजय में भी युद्ध-कौशल अथवा वीरता ने अङ्गरेज़ों का इतना साथ नहीं दिया जितना उनकी कूट-नीति ने। दो बड़े विश्वासघातकों के नाम इस मोहासरे के इतिहास में मिलते हैं। पहला एक फ़्रान्सीसी अफ़सर लैफ़्टेनेण्ट दी तेरानो, जिसने रुपए लेकर दरिया की ओर का मार्ग अङ्गरेज़ों के लिए खोल दिया, और दूसरा हुगली का हिन्दोस्तानी फ़ौजदार दीवान महाराजा नन्दकुमार, जिसे सिराजुद्दौला ने समाचार पाते ही एक बहुत बड़ी सेना सहित फ़्रान्सीसियों की सहायता तथा चन्दरनगर की भारतीय प्रजा की रक्षा के लिए पहले से चन्दरनगर भेज रक्खा था, किन्तु जिसे ऐन मौक़े पर अमीचन्द के धन ने अङ्गरेज़ों की ओर खींच लिया। फ़्रान्सीसी विश्वासघातक के विषय में ब्लॉकमैन नामक एक यूरोपियन लेखक लिखता है—

"तेरानो को, जोकि इस विश्वासघात के कारण बदनाम और 'रू-स्याह' हो गया था, अपनी कृतघ्नता के बदले में अङ्गरेज़ों से बहुत बड़ी रक़म प्राप्त हुई। उसने इस धन का एक भाग अपने घर अपने बूढ़े बलहीन पिता के पास भेजा, किन्तु पिता ने जब अपने पुत्र के इस लज्जास्पद व्यवहार

का हाल सुना तो उसने धन वापस कर दिया। इस पर तेरानो को बड़ी ग़ैरत आई। शर्म ने 'उसका पल्ला पकड़ लिया', उसने अपने तईं मकान के अन्दर बन्द कर लिया; चन्द रोज़ के बाद उसका शरीर मकान के दरवाज़े पर एक तौलिए से लटका हुआ मिला। ज़ाहिर था कि उसने आत्महत्या कर ली है।"*

दूसरे अर्थात् भारतीय विश्वासघातक के विषय में स्क्रैफ़टन और थॉर्नटन दोनों ने अपने ग्रन्थों में साफ़ लिखा है कि अङ्गरेज़ों ने अमींचन्द की मार्फ़त नन्दकुमार को रिशवत दी, और अङ्गरेज़ी सेना के पहुँचने पर फ़्रान्सीसियों तथा भारतीय प्रजा दोनों को अरक्षित छोड़ नन्दकुमार अपनी तमाम सेना सहित चन्दरनगर से हट गया। सिलेक्ट कमेटी की १० अप्रेल सन् १७५७ की रिपोर्ट में अमींचन्द और नन्दकुमार दोनों को धन्यवाद देते हुए यह भी साफ़ लिखा है कि—"यदि दीवान नन्दकुमार की सेना न हटा ली गई होती तो हमारे लिए विजय प्राप्त कर सकना लगभग असम्भव ही होता।"

चन्दरनगर की विजय अङ्गरेज़ों के लिए अत्यन्त उपयोगी साबित हुई। इससे बङ्गाल के अन्दर फ़्रान्सीसियों का बल टूट गया और नवाब से अन्तिम निबटारा करने के लिए अङ्गरेज़ों के सामने का मार्ग अधिक साफ़ हो गया।

सिराजुद्दौला के ख़िलाफ़ साज़िश

वाट्सन ने अपने २५ फ़रवरी के उस पत्र में, जिसका ऊपर

* Notes on Sirajuddowla, Journal of the Asiatic Society, 1867.

ज़िक्र आ चुका है, सिराजुद्दौला को लिखा था कि—"आप ख़ातिरजमा रखिए, मैं सदा अपना धर्म समझकर शान्ति क़ायम रक्खूँगा।" इसी पत्र में उसने यह भी लिखा था कि यह अफ़वाह कि अङ्गरेज़ फ़्रान्सीसियों पर हमला करने वाले हैं, बिलकुल झूठ है। किन्तु इसके चन्द रोज़ बाद ही जब सिराजुद्दौला ने ९ फ़रवरी की सन्धि के अनुसार वाट्सन से सेना की सहायता माँगी तो उत्तर में वाट्सन ने अपनी तैयारी और मौक़ा देखकर सिराजुद्दौला के पास इस विषय का एक पत्र भेजा—

"कुछ दिन हुए मैंने पिछले महीने की २० तारीख़ को आपके पत्र का उत्तर दे दिया है; मैं समझता हूँ, वह अब तक आपको मिल गया होगा, और उसे पढ़कर आपको पूरी तरह विश्वास हो गया होगा कि फ़्रान्सीसी वकील का यह कहना कि मेरा इरादा शान्ति भङ्ग करने का है, झूठ है।×××

"×××किन्तु अब स्पष्ट कहने का समय आगया है; यदि आप वास्तव में अपने देश में शान्ति बनाए रखना चाहते हैं और अपनी प्रजा को आपत्ति और बरबादी से बचाना चाहते हैं, तो आज से दस दिन के अन्दर अपनी ओर से सन्धि की हरेक शर्त को पूरा कर दीजिए, ताकि मुझे शिकायत का ज़रा भी मौक़ा न मिल सके; नहीं तो याद रहे नतीजों के लिए आप ज़िम्मेवार होंगे;×××चन्द रोज़ के अन्दर मैं×××और अधिक जहाज़ और सेना मँगा लूँगा और आपके देश में ऐसी आग लगा दूँगा कि गङ्गा का तमाम जल भी उसे बुझा न सकेगा।×××"

वाट्सन ने अब अपना असली रूप धारण कर लिया। ९ फ़र-

वरी के सन्धि-पत्र में सिराजुद्दौला ने यह वादा किया था कि अङ्गरेज़ों की तमाम कोठियाँ और माल उन्हें वापस दे दिया जावेगा और जिन अङ्गरेज़ों का कुछ नुक़सान हुआ है, राज्य की ओर से उनकी क्षतिपूर्ति कर दी जावेगी। ये ही 'शर्तें' थीं जिन्हें वाट्सन ने 'दस दिन के अन्दर' पूरा करने पर अब ज़ोर दिया। साधारण अदालतों की डिगरियों की कारवाई होने में भी काफ़ी देर लगती है। स्वयं क्लाइव के निम्न-लिखित पत्र से ज़ाहिर है कि सिराजुद्दौला पूरी ईमानदारी और काफ़ी जल्दी के साथ अपने शाही वादों को पूरा कर रहा था। ३० मार्च को चन्दरनगर से एक सरकारी पत्र में क्लाइव ने लिखा—

"सिराजुद्दौला ने जो सन्धि हमारे साथ की थी उसकी अधिकांश शर्तें वह पूरी कर चुका है। तीन लाख रुपए वह हमें अदा कर चुका है और बहुत सा माल और धन हमारी अनेक मातहत कोठियों में हमारे पास जमा कराया जा चुका है, और मुझे कोई सन्देह नहीं कि नवाब के तमाम वादे ठीक समय पर पूरे किए जावेंगे।"*

इसके अतिरिक्त ९ फ़रवरी के सन्धि-पत्र में कोई ऐसा वाक्य न था कि अमुक समय के अन्दर हरेक शर्त पूरी हो जानी चाहिए।

* "He (Sirajuddowlah) has fulfilled most of the articles of the treaty made with us. The three lack of rupees are already paid and goods and money to a considerable amount delivered up to us at our several subordinates, and I make little doubt but that all his engagements will be duly executed."—Clive's letter to the Select Committee, dated, 30th March 1757—*Bengal Records*, vol. ii, P. 308.

इसलिए अब वाट्सन का सिराजुद्दौला को यह लिखना कि दस दिन के अन्दर सब शर्तें पूरी हो जानी चाहिए केवल फिर से लड़ाई शुरू करने का एक बहाना ढूँढना था। उधर सिराजुद्दौला ने सेना की जो सहायता माँगी थी उसका जवाब तक नहीं।

सिराजुद्दौला ने सच्ची गम्भीरता के साथ वाट्सन को उत्तर दिया —

"कुछ दिन हुए आपने मुझे जो पत्र लिखा था उसका उत्तर मैं दे चुका हूँ। जो कुछ मैंने (दिल्ली सम्राट के विषय में) लिखा है उस पर ग़ौर करके कृपा कर मुझे जल्दी जवाब भेजिए। मैं इस बात पर पक्का और जमा हुआ हूँ कि जो सन्धि हमने आपस में की है उसकी शर्तों पर क़ायम रहूँ, किन्तु होली की छुट्टियों की वजह से, जिनमें कि मेरे बनिए और मन्त्री दरबार में नहीं आते, मुझे उन शर्तों पर कारवाई मुलतवी करनी पड़ी। होली ख़तम होते ही जिन जिन बातों पर मैंने दस्तख़त किए हैं, उन्हें ठीक ठीक पूरा कर दूँगा। आप समझ सकते हैं कि इस देरी का कोई इलाज नहीं। ×××मैं जो सन्धि एक बार कर लेता हूँ उसे तोड़ना मेरे यहाँ का रिवाज नहीं है, इसलिए आप तसल्ली रखिए कि जो सन्धि मैंने अङ्गरेज़ों के साथ की है उसे टालने का मैं प्रयत्न न करूँगा।×××

"×××

"आप यक़ीन रखिए कि यदि कोई शख़्स या गिरोह आपसे लड़ने की कोशिश करेगा वा आपसे दुशमनी का व्यवहार करेगा तो मैं ख़ुदा की क़सम खा चुका हूँ कि मैं आपकी मदद करूँगा। फ़्रान्सीसियों को मैंने कभी एक कौड़ी भी नहीं दी और जो सेना मैंने हुगली भेजी है वह वहाँ के फ़ौजदार नन्दकुमार के पास भेजी गई है। फ़्रान्सीसी कभी आपसे लड़ाई

छेड़ने का साहस न करेंगे; और मैं विश्वास करता हूँ कि पुराने रिवाज को क़ायम रखते हुए गङ्गा प्रान्त के अन्दर अथवा उन प्रान्तों में, जिनका मैं सूबेदार हूँ, आप भी किसी तरह की लड़ाई न छेड़ेंगे।"*

इसके बाद ज्योंही सिराजुद्दौला को मालूम हुआ कि मेरी सहायता के बहाने अङ्गरेज़ी सेना कलकत्ते से चलकर वास्तव में चन्दरनगर पर हमला करने जा रही है, उसने फ़ौरन अङ्गरेज़ों को लिख भेजा कि "मुझे अब आपकी सहायता की ज़रूरत नहीं है।" किन्तु इस पर भी नवाब की इस आज्ञा तथा अलीनगर की सन्धि दोनों के ख़िलाफ़ अङ्गरेज़ी सेना नवाब के प्रदेशों से होकर उन्हें रौंदती हुई चन्दरनगर की ओर बढ़ी। मार्ग में स्थान स्थान पर उन्होंने सिराजुद्दौला की भारतीय प्रजा पर ख़ूब जी खोलकर अत्याचार किए। उधर अङ्गरेज़ एलची वाट्स मुर्शिदाबाद में बैठा हुआ नित्य नई शर्तें सिराजुद्दौला के सामने पेश कर रहा था। जब अङ्गरेज़ी सेना के अत्याचारों की ख़बर सिराजुद्दौला के कानों तक पहुँची तो उसने दुखी होकर २२ मार्च सन् १७५७ को निम्नलिखित पत्र ऐडमिरल वाट्सन को लिखा—

"मैंने जो कुछ वादा किया है और दस्तख़त किए हैं उस पर मैं पक्का रहूँगा और किसी तरह भी उससे न हटूँगा। वाट्स साहब की सब इच्छाएँ और जो कुछ उन्होंने मुझसे कहा, मैंने सब पूरा कर दिया और जो कुछ बाक़ी है वह भी इस चाँद की पन्द्रह तारीख़ तक दे दिया जायगा। वाट्स साहब ने ये सब बातें मुफ़स्सिल तौर पर आपको लिखी होंगी। किन्तु

* Ive's *Voyages*, pp. 124-125.

बावजूद इस सब के अनेक बातों से मुझे मालूम होता है कि आप मेरे साथ अपनी सन्धि को मिटा देना चाहते हैं। हुगली, इङ्गली, वर्धमान और नदिया के इलाक़ों को आपकी सेना ने वीरान कर डाला है। यह क्यों? इसके अलावा गोविन्दराम मित्र ने रामदीन घोष के लड़के की मार्फ़त (हुगली के फ़ौजदार) नन्दकुमार को लिख भेजा है कि कालीघाट का इलाक़ा कलकत्ते के ज़िले में शामिल है इसलिए वह गोविन्दराम के हवाले कर दिया जाय। इसका क्या अर्थ है? ××× आपके वादों पर विश्वास करके मैंने सुलह की थी; ताकि देश का भला हो और दोनों ओर की सेनाओं द्वारा शाही इलाक़ों की बरबादी न हो, न कि इसलिए कि प्रजा को पाँव तले कुचला जावे और सरकारी मालगुज़ारी में बाधा पड़े।

"आपकी कोशिश यह होनी चाहिए कि जो मित्रता हमारे आपके बीच जड़ पकड़ गई है वह दिन प्रतिदिन मज़बूत होती जावे, ×××"

एक ओर भोला सिराजुद्दौला अभी तक इन विदेशियों के साथ अमन से रहने के स्वप्न देख रहा था, दूसरी ओर क्लाइव और वाट्सन की सलाह से मुर्शिदाबाद के दरबार में बैठा हुआ वाट्स सिराजुद्दौला को बङ्गाल की मसनद से उतारकर किसी दूसरे को उसकी जगह बैठाने और देश में एक क्रान्ति पैदा कर देने की साज़िशों में लगा हुआ था। इतिहास-लेखक एस० सी० हिल लिखता है—

"अङ्गरेज़ एलची की थैली अधिक गहरी थी, इसलिए वह न केवल दरबार के मुख्य मुख्य आदमियों पर ही, बल्कि नवाब के मन्त्रियों तक पर अपना प्रभाव जमा सका, और चतुर तथा दूरअन्देश अमींचन्द से उसे ख़ूब सहायता मिली।"*

* "The British agent, having the deeper purse, was able to

वास्तव में अमींचन्द की थैली ही इस समय अङ्गरेज़ों की थैली थी।

जिन भारतीय देश-द्रोहियों ने इस साज़िश में अङ्गरेज़ों का साथ दिया उनमें मुख्य दो जैन सेठ, राजा मानिकचन्द, राजा राजवल्लभ, राजा दुर्लभराम और मीर जाफ़र थे। इनमें से हरेक अपना अलग अलग स्वार्थ पूरा करना चाहता था। जैन सेठ दो भाई थे जो शाही ख़ज़ाञ्ची, तमाम सूबे के सरकारी साहूकार और शाही टकसालों के ठेकेदार थे। ये लोग अपने किसी नीच स्वार्थ के लिए यारलुत्फ़ ख़ाँ नामक सिराजुद्दौला के एक मुलाज़िम को मसनद पर बैठाना चाहते थे। किन्तु मीर जाफ़र सिराजुद्दौला के नाना अलीवर्दी ख़ाँ का बहनोई था, उसका प्रभाव अधिक था, इसलिए अङ्गरेज़ उसे नवाब बनाना चाहते थे। २६ अप्रेल तक वाट्स ने मीर जाफ़र को राज़ी करके क्लाइव को पत्र लिखा कि—"मीर जाफ़र और उसके साथी नवाब को मसनद से उतारने में अङ्गरेज़ों को मदद देने के लिए तैयार हैं" और यह भी लिखा—

"यदि आप इस तरकीब को पसन्द करें जो उस दूसरी तरकीब की निसबत जो मैं पहले लिख चुका हूँ ज़्यादा आसान है, तो मीर जाफ़र

---

influence not only the leading men at court, but also the secretaries, and was much assisted by the foresighted cunning of Aminchand. . . ."—*Bengal Records*, vol. i. p. clxxvii.

चाहता है कि आप अपनी तजवीज़ें लिख भेजें कि आप कितना धन और कितनी ज़मीन चाहते हैं और सन्धि की क्या शर्तें होंगी।"*

क्लाइव ने इस समय फिर दोरुख़ी चाल चली। एक ओर उसने सिराजुद्दौला को धोखे में रखने के लिए उसे एक अत्यन्त प्रेमपूर्ण पत्र लिखा और दूसरी ओर मीर जाफ़र के लिए वाट्स की असली बात का जवाब दिया। प्रसिद्ध इतिहास-लेखक मैकॉले लिखता है—

"क्लाइव ने सिराजुद्दौला को इतने प्रेमपूर्ण शब्दों में पत्र लिखा कि उन शब्दों के धोखे में आकर कुछ समय के लिए वह निर्बल नरेश अपने तईं पूरी तरह निःशङ्क समझने लगा। क्लाइव अपने इस पत्र को 'सान्त्वना देने वाला पत्र' कहता है। जो हरकारा इस पत्र को लेकर गया वही एक दूसरा पत्र वाट्स साहब के नाम लेकर गया, जिसमें लिखा था कि 'मीर जाफ़र से कह दो कि किसी बात से न डरे। मैं पाँच हज़ार ऐसे सिपाही लेकर, जिन्होंने कभी पीठ नहीं दिखाई, उससे जा मिलूँगा। उसे विश्वास दिला दो कि मैं दिन दिन भर और रात रात भर चलकर उसकी मदद के लिए पहुँचूँगा, और जब तक मेरे पास एक आदमी भी बचेगा तब तक उसका साथ न छोड़ूँगा।' "†

---

* "If you approve of this scheme, which is more feasible than the other I wrote about, he (Mir Jaffir) requests you will write your proposals of what money, what land you want or what treaties you will engage in."—Watts' letter to Calcutta, dated 26th April, 1757.

† "He (Clive) wrote to Sirajuddowla in terms so affectionate that they for a time lulled that weak prince into perfect security. The same courier who carried this 'Soothing letter,' as Clive

तथापि चन्दरनगर अङ्गरेज़ों के हाथों में चले जाने के समय से सिराजुद्दौला का हृदय बहुत कुछ सशङ्क हो गया था। चन्दर-नगर की विजय के बाद अङ्गरेज़ों और फ़ान्सीसियों के दरमियान जो सन्धि हुई उसके साफ़ विरुद्ध अङ्गरेज़ों ने सिराजुद्दौला के सामने अब यह एक और नई माँग पेश की कि क़ासिमबाज़ार, ढाका, पटना, जूदा और बालेश्वर इत्यादि में फ़्रान्सीसियों की जितनी कोठियाँ हैं और जितने फ़्रान्सीसी आपके राज्य में हैं उन सबको आप हमारे सुपुर्द कर दें। फ़्रान्सीसियों को बङ्गाल के अन्दर कोठियें बनाने और व्यापार करने की इजाज़त ठीक उसी प्रकार दिल्ली सम्राट से मिली हुई थी जिस प्रकार अङ्गरेज़ों को। अभी तक फ़्रान्सीसियों ने न कभी सम्राट अथवा उसके सूबेदार की किसी आज्ञा को भङ्ग किया था और न उन्हें किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाया था। इसलिए अङ्गरेज़ों की इस अनुचित माँग के उत्तर में सिराजुद्दौला ने १४ अप्रेल को वाट्सन को लिख दिया—

"मैं पहले भी लिख चुका हूँ और फिर लिखता हूँ कि यदि अङ्गरेज़ कम्पनी अपना व्यापार क़ायम करना चाहती है तो मुझे कोई ऐसी बात न लिखिए जो हमारी सन्धि के अनुकूल न हो,×××अगर आप मुझसे

---

calls it, carried to Mr. Watts a letter in the following terms: 'Tell Mir Jaffir to fear nothing. I will join him with five thousand men who never turned their backs. Assure him, I will march night and day to his assistance, and stand by him as long as I have a man left.' "—Macaulay's *Essay on Clive*.

लड़ाई करना नहीं चाहते तो मेरी मोहर लगी हुई और मेरी दस्तख़ती सन्धि आपके पास है ; जब कभी पत्र लिखना हो तो उसे देखकर उसके अनुसार लिखिए×××

"यदि आप शान्ति क़ायम रखना चाहते हैं तो सन्धिपत्र के विरुद्ध कोई बात न लिखिए।"*

किन्तु इस दरमियान वाट्सन, क्लाइव, वाट्स तथा मीर जाफ़र के बीच साज़िश क़रीब क़रीब पक चुकी थी। ४ जून सन् १७५७ ई० को आधी रात के बाद एक ज़नानी डोली में बैठकर चोरी चोरी वाट्स ने मीर जाफ़र के महल में प्रवेश किया। उसी रात को मीर जाफ़र ने अङ्गरेज़ों के साथ एक गुप्त सन्धि-पत्र पर दस्तख़त कर दिए। इस सन्धि-पत्र की १३ शर्तों का सार इस प्रकार है—

जितने अधिकार सिराजुद्दौला ने अङ्गरेज़ों को दे रक्खे थे, मीर जाफ़र सूबेदार बनने पर उन सबको क़ायम रक्खे। अङ्गरेज़ और मीर जाफ़र दोनों में से किसी की जब कभी किसी तीसरे के साथ लड़ाई हो तो दूसरा उसकी मदद करे। तमाम फ़्रान्सीसी और उनकी कोठियें अङ्गरेज़ों के हवाले कर दी जायँ और फ़्रान्सीसियों को बङ्गाल में न रहने दिया जाय। कलकत्ते की तबाही के हरजाने में और युद्ध के ख़र्च के लिए मीर जाफ़र कम्पनी को एक करोड़ रुपए दे। इसके अलावा व्यक्तिगत नुक़सानों के लिए कलकत्ते के अङ्गरेज़ बाशिन्दों को ५० लाख, हिन्दू बाशिन्दों को २० लाख और आरमीनियन बाशिन्दों को ७ लाख रुपए दिए जायँ। कलकत्ते की

*Ive's *Voyages*, p. 142.

खन्दक़ के अन्दर और बाहर चारों ओर ६०० गज़ तक की ज़मीन अङ्गरेज़ों को दे दी जाय; साथ ही कलकत्ते के दक्षिण में हुगली नदी और नमक की झीलों के दरमियान कालपी (बङ्गाल) तक तमाम इलाक़े की ज़मींदारी अङ्गरेज़ों को दे दी जाय। जब कभी अपनी रक्षा के लिए नवाब को अङ्गरेज़ी सेना की ज़रूरत हो, नवाब उसका ख़र्च अदा करे। हुगली के नीचे दरिया के ऊपर नवाब किसी तरह की क़िलेबन्दी न करे। मसनद पर बैठने के तीस दिन के अन्दर मीर जाफ़र इन शर्तों को पूरा कर दे। और जब तक वह इस सन्धि के अनुसार चलता रहेगा, कम्पनी उसे उसके शत्रुओं को दमन करने में मदद देती रहेगी।

प्लासी का संग्राम

साज़िश अब पूरी तरह पक चुकी थी। किन्तु वाट्स और कई अङ्गरेज़ अभी तक मुर्शिदाबाद में मौजूद थे। लड़ाई का खुला एलान करने से पहले उन्हें वहाँ से हटा लेना ज़रूरी था।

१२ जून की शाम को 'बाग़ों में हवाख़ोरी करने'* के लिए वाट्स और उसके अङ्गरेज़ साथियों ने नवाब से इजाज़त ली और इस बहाने रातोंरात वे मुर्शिदाबाद से भाग निकले। अगले दिन जब सिराजुद्दौला को इस छल का पता चला तो उसने क्लाइव और वाट्सन को इस घटना की सूचना देते हुए दुख के साथ लिखा—

"×××इससे साफ़ धोखा साबित होता है और सन्धि तोड़ने का इरादा ज़ाहिर होता है।×××

* Ive's *Voyages*, p. 145.

"ख़ुदा का शुक्र है कि सन्धि मेरी ओर से भङ्ग नहीं की गई; ख़ुदा और रसूल के सामने हमने आपस में सुलह की थी, और जो कोई पहले उसका उल्लङ्घन करेगा, अपने किए की सज़ा पावेगा।"

निस्सन्देह सिराजुद्दौला और उसके विपक्षियों के चरित्र में आकाश पाताल का अन्तर था। भोले सिराजुद्दौला ने क्लाइव के 'प्रेमपूर्ण पत्रों' पर विश्वास करके हाल ही में अपनी आधी सेना तक बरख़ास्त कर दी थी।

१२ जून को मीर जाफ़र की ओर से कलकत्ते पत्र पहुँचा, जिसमें लिखा था कि, "यहाँ सब काम तैयार है"। अगले दिन १३ जून को अङ्गरेज़ी सेना ने कलकत्ते से कूच किया।

सिराजुद्दौला को अब फुर्ती के साथ अपनी सेना मैदान में निकालनी पड़ी। इसमें सन्देह नहीं, सिराजुद्दौला की इतनी बेपरवाही और उसका आत्मविश्वास झूठा न था। सिराजुद्दौला की सेना अब भी क्लाइव और उसकी समस्त सेना को थोड़े से समय के अन्दर निर्मूल कर देने के लिए काफ़ी थी। किन्तु वही मीर जाफ़र इस समय सिराजुद्दौला का प्रधान सेनापति था। पुराने हिन्दोस्तानी रिवाज के अनुसार सिराजुद्दौला स्वयं मीर जाफ़र के महल में पहुँचा और उससे अपनी पिछली तमाम भूलों के लिए क्षमा माँगकर प्रेम की प्रार्थना की। मीर जाफ़र ने क़ुरान हाथ में लेकर सिराजुद्दौला के सामने वफ़ादारी की क़सम खाई। सिराजुद्दौला को अविश्वास का कोई कारण न हो सकता था।

मुर्शिदाबाद से २० मील दूर पलाश वृक्षों का एक वन था, जिसे

पलाशी बाग़ भी कहते थे। उसी वन के पास प्लासी नामक गाँव में बृहस्पतिवार २३ जून सन् १७५७ ईसवी को दोनों सेनाओं का आमना सामना हुआ। प्रधान सेनापति मीर जाफ़र के अतिरिक्त सिराजुद्दौला की सेना में तीन और मुख्य सेनापति थे, यारलुत्फ़ ख़ाँ, राजा दुर्लभराम, और मीर मुइउद्दीन जिसे मीर मदन भी कहते हैं। ४५,००० सेना मीर जाफ़र, यारलुत्फ़ ख़ाँ और राजा दुर्लभराम के अधीन थी। १२,००० मीर मदन के अधीन थी। सिराजुद्दौला का एक ख़ास प्रेम-पात्र मोहनलाल भी मीर मदन के साथ था। थोड़ी ही देर के युद्ध में क्लाइव की कायरता और अकुशलता दोनों साफ़ चमकने लगीं। विजय स्पष्ट सिराजुद्दौला की ओर नज़र आती थी। ऐन मौक़े पर विश्वासघातक मीर जाफ़र का रुख़ बदलता हुआ दिखाई दिया। करनल मालेसन लिखता है कि ख़बर पाते ही सिराजुद्दौला ने अपना सन्देह दूर करने के लिए मीर जाफ़र को अपने पास बुलवाया। उसने मीर जाफ़र को अपने तथा उसके सम्बन्ध और अपने नाना अलीवर्दी ख़ाँ की याद दिलाई, इसके बाद अपनी पगड़ी सर से उतार कर सिराजुद्दौला ने मीरजाफ़र के सामने ज़मीन पर फेंक दी और उससे कहा—"मीर जाफ़र, इस पगड़ी की लाज तुम्हारे हाथों में है!" मीर जाफ़र ने बड़े आदर के साथ पगड़ी उठाकर सिराजुद्दौला के हाथों में दी, और अपने दोनों हाथ छाती पर रखकर बड़ी गम्भीरता के साथ फिर एक बार झुककर सिराजुद्दौला की वफ़ादारी की क़सम खाई। निस्सन्देह मीर जाफ़र उस समय अपनी आत्मा तथा सिराजुद्दौला दोनों को

जान बूझकर धोखा दे रहा था। वह विश्वासघात पर कमर कस चुका था। सिराजुद्दौला के सामने से हटते ही उसने फ़ौरन एक पत्र द्वारा क्लाइव को इस समस्त घटना की सूचना दी।

सिराजुद्दौला की सेना में मीर जाफ़र ही अकेला विश्वासघातक न था। वास्तव में उसकी सारी सेना विश्वासघातकों से छलनी छलनी हो चुकी थी। राजा दुर्लभराम और यारलुत्फ़ ख़ाँ भी अपने तईं शत्रु के हाथ बेच चुके थे। ऐन मौक़े पर, जबकि विजय सिराजुद्दौला के पैरों के पास खेलती हुई दिखाई देती थी, मीर जाफ़र, राजा दुर्लभराम और यारलुत्फ़ ख़ाँ अपनी ४५,००० सेना सहित मुड़कर अङ्गरेज़ों की ओर जा मिले। थोड़ी देर बाद सिराजुद्दौला का एकमात्र वफ़ादार सेनापति वीर मीर मदन भी मैदान में काम आया। करनल मालेसन लिखता है कि जब तक वीर मीर मदन ज़िन्दा रहा, वह अपनी केवल १२,००० सेना से तीनों विश्वासघातकों के प्रयत्नों को निष्फल करता रहा। उसके जीते जी अङ्गरेज़ी सेना के लिए अपने पैर जमा सकना सर्वथा असम्भव था। किन्तु मीर मदन की मृत्यु से सिराजुद्दौला लाचार हो गया। उसका दिल टूट गया। आज तक प्लासी ग्राम के लोग मीर जाफ़र की दग़ा और मीर मदन की वफ़ादारी दोनों का अत्यन्त करुणा भरे शब्दों में ज़िक्र करते हैं।

बहुत थोड़े से रक्तपात के बाद २३ तारीख़ की शाम तक असहाय सिराजुद्दौला को अपने हाथी पर सवार होकर मुर्शिदाबाद की ओर भागना पड़ा। मैदान क्लाइव और मीर जाफ़र के हाथों में रहा।

सुप्रसिद्ध अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक करनल मालेसन उस दिन के संग्राम के विषय में लिखता है—

"केवल उस समय, जबकि विश्वासघातकता अपना काम कर चुकी, जबकि विश्वासघातकता ने नवाब को मैदान से बाहर निकाल दिया, जबकि विश्वासघातकता नवाब की सेना को ऊँचे और दुर्जेय स्थान से हटा चुकी, केवल उस समय क्लाइव आगे बढ़ सका; इससे पहले क्लाइव के आगे बढ़ने में उसका (और उसकी सेना का) नेस्त व नाबूद हो जाना असन्दिग्ध था।"*

क्लाइव ने अपनी सेना सहित पास के ग्राम दादपुर में रात गुज़ारी। शुक्रवार २४ ता० को सवेरे क्लाइव ने मीर जाफ़र को अपने खेमे में बुलाया। मीर जाफ़र अपने पुत्र मीरन सहित क्लाइव के खेमे में पहुँचा। मालूम होता है कि मीर जाफ़र का पाप इस समय उसकी छाती पर सवार था। सम्भव है कि क्लाइव की ओर से भी उसके दिल में दग़ा का डर रहा हो। क्लाइव के सामने पहुँचते ही ठीक उस समय, जबकि गारद उसकी पेशवाई के लिए आगे बढ़ी, मीर जाफ़र घबराकर चौंक पड़ा। उसका चेहरा एक-दम स्याह पड़ गया। क्लाइव ने फ़ौरन उसे गले लगाकर 'तीनों प्रान्तों का सूबा' कहकर सलाम किया। मीर जाफ़र सँभला।

* "It was only when treason had done her work, when treason had driven the Nawab from the field, when treason had removed his army from its commanding position, that Clive was able to advance without the certainty of being annihilated." —Colonel Malleson in *Decisive Battles of India,* p. 73

क्लाइव ने उसे विश्वास दिलाया कि अङ्गरेज़ धर्म समझ कर अपने वादों को पूरा करेंगे। इसके बाद क्लाइव ने उसे सिराजुद्दौला का पीछा करने की सलाह दी। फ़ौरन वहाँ से कूच कर २५ तारीख़ को सवेरे मीर जाफ़र मुर्शिदाबाद पहुँचा।

एक दिन पूर्व २४ को सवेरे सिराजुद्दौला मुर्शिदाबाद पहुँच चुका था। सिराजुद्दौला का ख़ज़ाना लबालब भरा हुआ था। धन को पानी की तरह बहाकर उसने फिर एक बार फ़ौज खड़ी करने और अपनी क़िस्मत आज़माने का प्रयत्न किया। किन्तु प्लासी की पराजय की ख़बर सारे देश में बिजली की तरह फैल चुकी थी। सिराजुद्दौला के इक़बाल का सूर्य अब अस्त हो रहा था; और अस्त होने वाले सूर्य की पूजा कोई नहीं करता। सिराजुद्दौला ने देख लिया कि अब कोई मेरा साथ देने के लिए तैयार नहीं है। उसके कुछ दरबारियों ने उसे सलाह दी कि अब आप हार मानकर विदेशियों के साथ सन्धि कर लें, किन्तु उस वीर ने अत्यन्त तिरस्कार के साथ इस सलाह को ठुकरा दिया। अन्त में देश-द्रोही मीर जाफ़र के आने की ख़बर सुनकर और कोई चारा न देख २४ जून की आधी रात को सिराजुद्दौला केवल अपने तीन अनुचरों सहित महल की एक खिड़की से होकर फ़क़ीर के वेष में भगवान-गोला नामक नगर की ओर निकल गया।

२५ जून को सवेरे मीर जाफ़र मुर्शिदाबाद पहुँचा। उसके पीछे पीछे २६ को क्लाइव अपनी सेना सहित मुर्शिदाबाद आया। किन्तु तीन दिन तक क्लाइव मुर्शिदाबाद से लगभग छै मील बाहर

सय्यदाबाद की फ़्रान्सीसी कोठी में ठहरा रहा। उसके अपने पत्र से ज़ाहिर है कि वह इस समय एकाएक मुर्शिदाबाद के शहर में प्रवेश करने से डरता था।

२९ ता० को मीर जाफ़र से समय निश्चित करके २०० गोरे और ५०० हिन्दोस्तानी सिपाहियों सहित विजयी क्लाइव ने मुर्शिदाबाद के शहर में प्रवेश किया। कुछ दिनों बाद क्लाइव ने पार्लिमेण्ट की कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा—

"नगर के लोग, जो उस अवसर पर तमाशा देख रहे थे, कई लाख अवश्य रहे होंगे; और यदि वे चाहते तो लकड़ियों और पत्थरों से हम यूरोपियन लोगों को वहीं ख़तम कर सकते थे।"*

यह अनुमान करना अब निरर्थक है कि यदि मुर्शिदाबाद के बाशिन्दे उस समय ऐसा कर बैठते तो भारत के बाद के इतिहास ने किस ओर पलटा खाया होता। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय क्लाइव ने नवाब मीर जाफ़र के एक पक्ष-समर्थक की हैसियत से मुर्शिदाबाद में प्रवेश किया। बहुत सम्भव है कि यदि नगरनिवासियों को उस समय क्लाइव के वास्तविक रूप का पता होता, यदि उन्हें मालूम होता कि क्लाइव और उसके साथी इन चालों से अन्दर ही अन्दर भारत की आज़ादी छीनने की कोशिशें कर रहे

* "That the inhabitants, who were spectators upon that occasion, must have amounted to some hundred thousands; and if they had an inclination to have destroyed the Europeans, they might have done it with sticks and stones."—Clive's Evidence Before the Parliamentary Committee.

हैं, तो बहुत सम्भव है नगरनिवासियों का व्यवहार क्लाइव के साथ कुछ दूसरा ही होता। किन्तु अभी तो विश्वासघातक मीर जाफ़र की आँखें खुलने में भी कुछ समय बाक़ी था।

मुर्शिदाबाद की उस समय की अवस्था के विषय में क्लाइव लिखता है—

"मुर्शिदाबाद का शहर उतना ही लम्बा, चौड़ा, आबाद और धनवान है जितना कि लन्दन का शहर; फ़रक़ इतना है कि लन्दन के धनाढ्य से धनाढ्य मनुष्य के पास जितनी सम्पत्ति हो सकती है, उससे बेइन्तहा ज़्यादा सम्पत्ति मुर्शिदाबाद में अनेकों के पास मौजूद है।"

आज मुर्शिदाबाद भागीरथी नदी के तट पर ३५,००० मनुष्यों की एक छोटी सी बस्ती है, जिसकी आबादी प्रतिवर्ष घटती जा रही है और जिसमें यात्रियों के देखने के लिए पुराने महलात के खण्डहर और कुछ क़बरें मौजूद हैं। उद्योग धन्धों में वहाँ पर रेशमी वस्त्रों की बुनाई, हाथी-दाँत का काम और कपड़े पर सोने चाँदी के काम अभी तक प्रसिद्ध हैं, किन्तु अब अर्से से ये सब धन्धे भी मृतप्राय हो रहे हैं।

मीर जाफ़र का मसनद पर बैठाया जाना

२९ ता० का तीसरा पहर मीर जाफ़र के मसनद पर बैठाए जाने के लिए नियत था। मालूम होता है, उसकी आत्मा भीतर से अशान्त थी। ऐन मौक़े पर उसने सिराजुद्दौला की मसनद पर बैठने से इनकार कर दिया। क्लाइव को उसका हाथ पकड़कर उसे मसनद पर बैठाना पड़ा। पहले क्लाइव नए नवाब के सामने होकर

आदाब बजा लाया और फिर बाक़ी दरबारियों ने दरजा बदरजा सलामियाँ दीं।*

अमींचन्द के साथ दग़ा

कम्पनी और उसके मददगारों के लिए अब मुर्शिदाबाद के ख़ज़ाने से अपनी अपनी जेबें भरने का समय आया। ख़ज़ाने की जाँच पड़ताल के लिए एक दिन नियत किया गया। यह कार्य दोनों जैन जगतसेठों के सुपुर्द किया गया। क्लाइव और उसके साथियों ने जब यह देखा कि मुर्शिदाबाद के ख़ज़ाने की हालत, जो उन्होंने सुन रक्खी थी वह अब न थी, तो वे इस बात पर राज़ी होगए कि मीर जाफ़र ने जितना धन उन्हें देने का वादा किया था उसमें आधा फ़ौरन अदा कर दे और आधा तीन वर्ष के अन्दर तीन क़िस्तों में दे दे। क्लाइव का परम मित्र अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक ओर्म लिखता है —

"××× ६ जुलाई सन् १७५७ ईसवी तक (कलकत्ते की अङ्गरेज़) कमेटी के पास चाँदी के सिक्कों में ७२,७१,६६६ रुपए पहुँच गए। यह ख़ज़ाना सात सौ सन्दूकों में भरकर सौ किश्तियों पर लादा गया। सैनिकों की निगरानी में यह किश्तियाँ नदिया गईं। वहाँ से (अङ्गरेज़ी) जङ्गी जहाज़ों की तमाम किश्तियों तथा अन्य किश्तियों को साथ लेकर, झण्डे फहराते हुए और विजय का बाजा बजाते हुए आगे बढ़ीं ××× इससे

* Clive's Letter to the Select Committee, dated 30th June 1757

पहले कभी भी अङ्गरेज़ क़ौम को एक साथ इतना अधिक नक़द धन श्रौर किसी लड़ाई में न मिला था।"*

बटवारे के समय छोटे से छोटे अङ्गरेज़ अफ़सर को कम से कम ४५,००० रु० दिए गए; किन्तु अपने हिन्दोस्तानी मददगारों के साथ क्लाइव और उसके साथियों ने फिर एक बार दग़ा की। इस तमाम साज़िश में आदि से अन्त तक मुख्यतम हिस्सा अमींचन्द का था। निस्सन्देह बिना अमींचन्द की सहायता के न बङ्गाल में अङ्गरेज़ों का व्यापार इतना बढ़ पाता, न वे चन्दरनगर विजय कर सकते, और न सिराजुद्दौला सूबेदारी की मसनद से उतारा जा सकता। आज ही के दिन की आशा में अमींचन्द ने सिराजुद्दौला के भारतीय दरबारियों और मुलाज़िमों को विदेशी अङ्गरेज़ों की ओर से रिशवतें देने में अपने धन को पानी की तरह बहाया था। अमींचन्द ने अपनी आत्मा के साथ, अपने राजा और मालिक के साथ और अपनी क़ौम के साथ दग़ा की, किन्तु अङ्गरेज़ों के साथ उसका व्यवहार बराबर सच्चा रहा। कहते हैं कि चोर चोर आपस

* ". . . The committee by the 6th of July 1757 received, in coined silver, 7,271,666 rupees. This treasure was packed up in 700 chests and laden in 100 boats, which proceeded under the care of soldiers to Nadiya; from whence they were escorted by all the boats of the squadron and many others, proceeding with banners displayed and music sounding of a triumphal procession, . . . Never before did the English nation at one time obtain such a prize in solid money."—Orme's *History of Indostan*, vol. ii. pp. 187,188.

में एक दूसरे के साथ बड़ा सच्चा व्यवहार करते हैं; किन्तु क्लाइव, वाट्सन इत्यादि का व्यवहार अमींचन्द के साथ इसके विपरीत रहा।

जो सन्धि अङ्गरेज़ों ने मीर जाफ़र के साथ की उसमें १३ शर्तें थीं। अमींचन्द का उनमें कहीं ज़िक्र न था। यह सन्धि सफ़ेद काग़ज़ पर लिखी हुई थी। उसी के साथ एक दूसरी जाली सन्धि १४ शर्तों की लाल काग़ज़ पर लिखकर अमींचन्द को दिखाई गई थी, जिसमें एक १४वीं शर्त यह भी थी कि मीर जाफ़र को गद्दी दिए जाने के समय अमींचन्द को ३० लाख नक़द और उसके अलावा नवाब के तमाम ख़ज़ाने का पाँच फ़ी सैकड़ा दिया जायगा। वाट्सन ने इस जाली सन्धि पर दस्तख़त करने से इनकार कर दिया था, किन्तु क्लाइव ने लुशिङ्गटन नामक एक शख़्स के हाथ से वाट्सन के जाली दस्तख़त उस पर बनवा दिए थे।

मीर जाफ़र के नवाब नियुक्त होने के बाद एक दिन जगतसेठ के मकान पर जब पहली बार सन्धि-पत्र पढ़कर सुनाया गया तो अमींचन्द चकित होकर चिल्ला पड़ा—"यह वह सन्धि नहीं हो सकती, जो सन्धि मैंने देखी थी—वह लाल काग़ज़ पर थी।" इस पर क्लाइव ने उत्तर दिया—"ठीक है, अमींचन्द, किन्तु यह सन्धि सफ़ेद काग़ज़ पर लिखी हुई है।"*

स्वभावतः अमींचन्द के दिल पर इस सदमे का ज़बरदस्त असर हुआ। बाद में स्वास्थ्य ठीक करने के लिए क्लाइव ने उसे

* Clive's evidence before the parliamentary Committee.

तीर्थ-यात्रा की सलाह दी। वह तीर्थ-यात्रा के लिए गया, किन्तु इसी सदमे से डेढ़ वर्ष के अन्दर अमींचन्द की मृत्यु हो गई।

उन दिनों इङ्गलिस्तान में जालसाज़ी की सज़ा प्राणदण्ड थी, किन्तु क्लाइव ने पार्लिमेण्ट की कमेटी के सामने बड़े अभिमान के साथ अपनी इस जालसाज़ी का ज़िक्र किया और उसके बदले में क्लाइव को "लॉर्ड" की उपाधि दी गई, इङ्गलिस्तान में क्लाइव का बुत खड़ा किया गया और उसके सम्मान तथा प्लासी की लड़ाई की यादगार में तमग़े ढाले गए।

सिराजुद्दौला की हत्या

चन्द रोज़ के अन्दर ही सिराजुद्दौला राजमहल नामक स्थान पर गिरफ़्तार कर लिया गया। अपने उस वीर तथा शाही शत्रु के साथ कम्पनी का व्यवहार अत्यन्त लज्जाजनक रहा। २ जुलाई को वह मुर्शिदाबाद लाया गया। कहा जाता है कि मीर जाफ़र उसे आदर के साथ मुर्शिदाबाद में नज़रबन्द रखना चाहता था। किन्तु उसी दिन रात को मोहम्मद बेग नामक एक मनुष्य ने सिराजुद्दौला को क़त्ल कर डाला। अगले दिन उसका कटा हुआ शरीर हाथी पर रखकर मुर्शिदाबाद की गलियों में घुमाया गया।

"रियाजुस्सलातीन" नामक ग्रन्थ का मुसलमान रचयिता लिखता है—

"अङ्गरेज़ सरदारों और जगतसेठ की साज़िश से सिराजुद्दौला को क़त्ल किया गया।"

सिराजुद्दौला की हत्या के दो दिन बाद क्लाइव ने सिलेक्ट कमेटी के नाम एक पत्र में बड़े गर्व के साथ उन्हें यह सूचना दी—

"महाशय गण, सिराजुद्दौला ख़तम हो चुका। नवाब उसकी जान बख़शना चाहता था, किन्तु उसके पुत्र मीरन और 'बड़े लोगों ने' देश के अमन के लिए उसे मार डालना आवश्यक समझा, क्योंकि उसके शहर के पास आते ही, ज़मींदार लोग बलवा करने लगे थे।"

निस्सन्देह इन 'बड़े लोगों' में सब से मुख्य क्लाइव ही था!

क्लाइव और उसके साथियों के दुष्कृत्यों पर परदा डालने के लिए अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने आमतौर पर झूठे इलज़ामों और नई जालसाज़ियों द्वारा सिराजुद्दौला के चरित्र को कलङ्कित करने का पूरा पूरा प्रयत्न किया है। किन्तु सिराजुद्दौला की सच्चाई, उसकी वीरता, उसकी योग्यता और उसकी ईमानदारी में किसी तरह का भी सन्देह नहीं हो सकता। वास्तव में उसकी योग्यता के कारण ही इङ्गलिस्तान के ईसाई 'व्यापारियों' ने अपने और अपनी क़ौम के भावी हित के लिए उसका नाश आवश्यक समझा। उसका वह ख़ज़ाना भी, जो चाँदी, सोने और जवाहरात से लबरेज़ था, इन विदेशियों के लिए काफ़ी लालच की चीज़ थी। उसमें दोष भी ज़बरदस्त थे, किन्तु वे दोष थे—विदेशियों की चालों को न समझ सकना, उन पर विश्वास और दया करना और बार बार उनके साथ अमन से रहने की आशा करना। एक ओर सिराजुद्दौला के ये व्यक्तिगत दोष, दूसरी ओर भारतीय जनता में राजनैतिक बोध तथा उससे उत्पन्न होने वाले देश-प्रेम और राष्ट्रीयता के भावों की कमी,

और तीसरी ओर उच्च श्रेणी के भारतवासियों के चरित्र की लज्जास्पद स्वार्थपरायणता और विश्वासघातकता—इन तीनों ने मिलकर न केवल सिराजुद्दौला का ही अन्त कर दिया वरन् सिराजुद्दौला की लाश के साथ साथ भारत की आज़ादी को भी सदियों के लिए दफ़न कर दिया।

क़त्ल के समय सिराजुद्दौला की उम्र २५ वर्ष की भी न थी। समस्त अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों में शायद करनल मालेसन ही एक ऐसा है जिसने सिराजुद्दौला के साथ इन्साफ़ करने की कोशिश की है। वह लिखता है—

"सिराजुद्दौला में और चाहे कोई भी दोष क्यों न रहे हों, उसने न अपने मालिक के साथ विश्वासघात किया और न अपने मुल्क को बेचा। इतना ही नहीं, वरन् कोई निष्पक्ष अङ्गरेज़ ६ फ़रवरी और २३ जून के बीच की घटनाओं पर इन्साफ़ से राय क़ायम करते हुए इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि शराफ़त के पैमाने पर सिराजुद्दौला का नाम क्लाइव के नाम की अपेक्षा ऊँचा नज़र आता है। उस शोकान्त नाटक के प्रधान पात्रों में अकेला एक सिराजुद्दौला ही ऐसा था जिसने किसी को धोखा देने की कोशिश नहीं की।"*

---

* "Whatever may have been his faults, Sirajuddowla had neither betrayed his master nor sold his country. Nay more, no unbiassed Englishman, sitting in Judgment on the events which passed in the interval between the 9th February and the 23rd June can deny that the name of Sirajuddowla stands higher in the scale of honor than does the name of Clive. He was

इस परिस्थिति में और इन उपायों द्वारा प्लासी के सुप्रसिद्ध मैदान में हिन्दोस्तान के अन्दर अङ्गरेज़ी साम्राज्य की नींव रक्खी गई, जिसका मुख्य श्रेय निस्सन्देह क्लाइव ही को मिलना उचित है। सम्भवतः उस दिन की लज्जास्पद स्मृति को मिटाने के लिए कुछ दिनों बाद प्लासी "पलाशी बाग़" के एक एक वृक्ष का ठुण्ठ और उनकी जड़ें तक खोदकर इङ्गलिस्तान पहुँचा दी गईं।

the only one of the principal actors in that tragic drama who did not attempt to deceive."—*Decisive Battles of India*, p. 71.

तीसरा अध्याय

मीर जाफ़र

हिन्दू-मुस्लिम पक्षपात का प्रारम्भ

विश्वासघात करने वालों में किसी तरह के भी उच्च मानसिक अथवा नैतिक गुणों का मिलना प्रायः असम्भव है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि शासक की दृष्टि से मीर जाफ़र अयोग्य, निर्बल और अदूरदर्शी साबित हुआ। इसके अलावा वह इस समय क्लाइव और उसके अङ्गरेज़ साथियों के हाथों की एक कठ-पुतली था। क्लाइव की इच्छा के विरुद्ध वह कोई कार्य न कर सकता था। मुर्शिदाबाद के एक हाज़िर-तबीयत दरबारी ने मीर जाफ़र का नाम "करनल क्लाइव का गधा" रख रक्खा था और मीर जाफ़र की मृत्यु के समय तक यह उपाधि उसके साथ लगी रही। दिल्ली के सम्राट का दरबार इस समय तक काफ़ी निर्बल हो चुका था; और मालूम होता है कि सिराजुद्दौला की मृत्यु के बाद सूबेदारी की बाज़ाब्ता सनद मीर जाफ़र को दिल्ली के दरबार से अता हो गई।

सिराजुद्दौला का नाना अलीवर्दी ख़ाँ इस बात को समझता था कि प्रजा के सुख और उनकी समृद्धि को बढ़ाना तथा बिना भेद-

हव इत्यादि का विचार किए योग्य मनुष्यों को राज्य की उच्च से उच्च और ज़िम्मेवार पदवियों पर नियुक्त करना राजा का धर्म है; और इस धर्म के पालन द्वारा ही राज्य की जड़ें चिरस्थायी हो सकती हैं। इसी लिए अपनी सूबेदारी में लगभग समस्त ऊँची पदवियों पर उसने हिन्दुओं को नियुक्त कर रक्खा था। सिराजुद्दौला भी अपने अत्यन्त अल्प शासन-काल में और ऐसे कठिन समय में, जबकि उसे रात दिन षड्यन्त्रों और साज़िशों का मुक़ाबला करना पड़ता था, अपने नाना की इस उदार नीति का ठीक ठीक पालन करता रहा। अलीवर्दी ख़ाँ और सिराजुद्दौला दोनों अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा को एक आँख से देखते थे और उनके साथ एक समान व्यवहार करते थे। किन्तु यह एक विचित्र बात है कि बङ्गाल के शासन में अङ्गरेज़ों का दख़ल शुरू होते ही मुसलमान सूबेदारों की यह नीति एकदम बदल गई। नवाब मीर जाफ़र अली ख़ाँ ने मसनद पर बैठते ही हिन्दुओं को तमाम ऊँची ऊँची पदवियों से हटाकर उनकी जगह अपने सहधर्मी भरने शुरू कर दिए। यह नीति मीर जाफ़र और उसकी प्रजा दोनों के लिए अहितकर, किन्तु अङ्गरेज़ों के लिए हितकर थी, और इतिहास से स्पष्ट है कि मीर जाफ़र इस विषय में क्लाइव और उसके साथियों के इशारे पर चल रहा था और उन्हीं की सङ्गीनों के बल सब खेल खेल रहा था।

सब से पहले इन लोगों ने मुर्शिदाबाद की सूबेदारी के अधीन बड़े बड़े प्रान्तों से हिन्दू नरेशों को हटाकर उनकी जगह मुसलमानों को नियुक्त करने के प्रयत्न शुरू किए।

पुराने घरानों का नाश

पहला हिन्दू नरेश, जिसे क्लाइव और मीर जाफ़र ने मिलकर मिटाना चाहा, बिहार प्रान्त का शासक राजा रामनारायण था। रामनारायण अलीवर्दी ख़ाँ के ख़ास आदमियों में से था, और अलीवर्दी ख़ाँ ने ही उसे बढ़ाकर इस उच्च पद तक पहुँचाया था। अलीवर्दी ख़ाँ और सिराजुद्दौला दोनों का रामनारायण सदा वफ़ादार रहा। सिराजुद्दौला के विरूद्ध जो साज़िश की गई उसमें वह शामिल न था, किन्तु जब उसने सिराजुद्दौला के मारे जाने और मीर जाफ़र के मसनद पर बैठने की ख़बर सुन ली तो अपने प्रान्त में भी मीर जाफ़र की सूबेदारी का बाज़ाब्ता एलान कर दिया।

राजा रामनारायण पर यह इलज़ाम लगाया गया कि तुमने फ़्रान्सीसियों को अपने यहाँ आश्रय दे रक्खा है और अवध के नवाब-वज़ीर के साथ मिलकर तुम मीर जाफ़र के ख़िलाफ़ साज़िश कर रहे हो। निस्सन्देह यह सब क़िस्सा केवल उसे बिहार की गद्दी से हटाने के लिए गढ़ा गया था।

६ जुलाई सन् १७५७ को क्लाइव की आज्ञानुसार मेजर कूट २३० गोरे और लगभग ३०० हिन्दोस्तानी सिपाही लेकर मुर्शिदाबाद से पटने की ओर रवाना हुआ। पहले बहाना यह लिया गया कि यह सेना फ़्रान्सीसियों का पीछा करने के लिए भेजी जा रही है, किन्तु १२ अगस्त को मेजर कूट के पास क्लाइव का एक पत्र पहुँचा जिसमें क्लाइव ने उसे यह हिदायत की कि तुम पटने पहुँच-

कर मीर जाफ़र के एक भाई महमूद अमीन ख़ाँ के साथ मिलकर रामनारायण को गद्दी से हटाने का प्रयत्न करो।

कूट पटने पहुँचा। किन्तु उस थोड़ी सी सेना से रामनारायण को परास्त कर सकना असम्भव था। राजा रामनारायण को भी मेजर कूट के नाम क्लाइव के पत्र की कुछ ख़बर मिल गई थी। उसने धीरज से काम लिया। समझौते की बातचीत शुरू हुई। २२ अगस्त को रामनारायण के महल में सभा हुई। जितने इल-ज़ाम रामनारायण पर लगाए गए थे, उन सब को उसने शान्ति के साथ झूठा साबित किया। कूट और महमूद अमीन के साथ मीर जाफ़र का दामाद मीर क़ासिम भी इस समय मौजूद था। अन्त में एक ब्राह्मण को बुलाकर सब की मौजूदगी में राजा रामनारायण ने मीर जाफ़र को सूबेदार स्वीकार किया और उसकी वफ़ादारी की क़सम खाई। मीर क़ासिम और महमूद अमीन ने क़ुरान उठाकर अपने दिलों की सफ़ाई का एलान किया और फिर वे तीनों तथा मेजर कूट सब एक दूसरे से गले मिले। मेजर कूट अपनी सेना सहित ७ सितम्बर को पटने से चलकर सात दिन में मुर्शिदाबाद वापस पहुँच गया। किन्तु क्लाइव की इच्छा अभी पूरी न हुई थी। राजा रामनारायण एक ख़ासा ज़बरदस्त नरेश था। क्लाइव का असली उद्देश उसके बल को तोड़ना था। इसलिए रामनारायण पर अभी और मुसीबतों का आना बाक़ी था।

दूसरा हिन्दू नरेश, जिसपर मीर जाफ़र और क्लाइव की

नज़र गई, उड़ीसा का राजा रामरमसिंह था। उड़ीसा प्रान्त भी बिहार के समान बङ्गाल के सूबेदार के अधीन था। क्लाइव जिस समय मुर्शिदाबाद में था, मीर जाफ़र ने राजा रामरमसिंह को अपने प्रान्त की मालगुज़ारी का हिसाब समझाने के बहाने मुर्शिदाबाद बुलवा भेजा। रामरमसिंह को सन्देह हुआ। वह स्वयं न आया, किन्तु उसने अपने एक भाई और एक भतीजे को हिसाब की किताबों सहित मुर्शिदाबाद भेज दिया। ये दोनों मुर्शिदाबाद पहुँचते ही क़ैद कर लिए गए। राजा रामरमसिंह का सन्देह सच्चा साबित हुआ। रामरमसिंह साहसी था। वह यह भी समझता था कि मुर्शिदाबाद के दरबार की असली बाग क्लाइव के हाथों में है। उसने फ़ौरन मीर जाफ़र के इस व्यवहार की शिकायत करते हुए क्लाइव को लिखा—"मैंने एक ज़बरदस्त सेना जमा कर ली है, जिसमें २,००० सवार और ५,००० पैदल हैं और यदि नया नवाब मुझे गिरफ़्तार करने या दबाने के लिए सेना भेजने की ग़लती करेगा, तो मैं उसके मुक़ाबले के लिए काफ़ी हूँ, किन्तु यदि आप मध्यस्थ होकर मेरी सलामती का ज़िम्मा लें तो मैं स्वयं आकर मीर जाफ़र से मिलने और एक लाख रुपए नज़राना पेश करने के लिए तैयार हूँ।"

क्लाइव समझ गया कि रामरमसिंह से भिड़ना अभी ठीक नहीं। क्लाइव के कहने पर रामरमसिंह के दोनों रिश्तेदार तुरन्त छोड़ दिए गए और उड़ीसा की गद्दी पर रामरमसिंह को बहाल रक्खा गया।

तीसरा हिन्दू नरेश, जिसके बल को क्लाइव और मीर जाफ़र ने तोड़ने का इरादा किया, पूर्निया का राजा युगलसिंह था। सिराजुद्दौला ने अपने रिश्तेदार शौकत जङ्ग की मृत्यु पर युगलसिंह को उस प्रान्त का शासक नियुक्त किया था। मीर जाफ़र युगलसिंह को हटाकर उसकी जगह अपने एक आदमी ख़ुद्दामहुसेन को वहाँ का नवाब बनाना चाहता था। युगलसिंह मुक़ाबले के लिए तैयार होगया। कम्पनी और सूबेदार की सेनाओं ने मिलकर पूर्निया पर चढ़ाई की। युगलसिंह गिरफ़्तार कर लिया गया और ख़ुद्दाम-हुसेन पूर्निया की गद्दी पर बैठा दिया गया।

इसके बाद मीर जाफ़र ने अपने हाल के मददगार राजा दुर्लभ-राम को मिटाना चाहा। राजा दुर्लभराम मुर्शिदाबाद के दरबार में माल के महकमे का हाकिम था। मीर जाफ़र के ऊपर उसके अनेक अहसान थे। सिराजुद्दौला के विरुद्ध साज़िश में उसने अङ्गरेज़ों और मीर जाफ़र को मदद दी थी। किन्तु उसका बल और प्रभाव दोनों ख़ूब बढ़े हुए थे। इसीलिए उसके नाश की तदबीरें सोची गईं। वह कमर कसकर मुक़ाबले को तैयार हो गया। अङ्गरेज़ उसके असर को देखकर डर गए। तुरन्त स्वयं वाट्स ने बीच में पड़कर मीर जाफ़र और दुर्लभराम दोनों में सुलह करवा दी।

इस तमाम छेड़ छाड़ से क्लाइव का मुख्य उद्देश बङ्गाल के तमाम पुराने और बड़े बड़े घरानों के बल को तोड़ना, मीर जाफ़र को समस्त प्रजा में अप्रिय बना देना और सूबेदारी भर में अङ्गरेज़ों के बल और उनके प्रभाव की धाक जमा देना था।

राजा रामनारायण पर चढ़ाई

राजा रामनारायण पर एक विशाल सेना लेकर दोबारा चढ़ाई करने की तजवीज़ की गई। अफ़वाह उड़ी या उड़ाई गई कि अलवर्दी ख़ाँ की बूढ़ी बेवा ने अवध के नवाब-वज़ीर को पत्र लिखा है कि आप आकर मीर ज़ाफ़र के विरुद्ध रामनारायण को मदद दीजे। क्लाइव और मीर जाफ़र के लिए केवल चन्द महीने पहले की सन्धि और दोनों ओर की क़समों को मिट्टी में मिलाकर अब फिर बिहार प्रान्त पर चढ़ाई करना और रामनारायण को ज़ेर करना ज़रूरी हो गया। क्लाइव ने इस बहाने से ५०,००० सेना जमा कर ली। मीर जाफ़र को डर दिखलाकर उससे धन खींचने का भी क्लाइव को यह अपूर्व अवसर दिखाई दिया। किन्तु मीर जाफ़र की आर्थिक अवस्था इस समय अत्यन्त करुणाजनक थी। अव्वल तो मुर्शिदाबाद के ख़ज़ाने की जो दशा उसने प्लासी से पहले समझ रक्खी थी वह प्लासी के बाद न निकली। इस ख़ज़ाने की आशा पर ही उसने अङ्गरेज़ कम्पनी को अलग और क्लाइव तथा उसके अनेक साथियों को व्यक्तिगत हैसियत से अलग बड़ी बड़ी रक़में देने के वादे कर रक्खे थे। जिसमें से अधिकांश वह इस समय तक दे भी चुका था। दूसरे इन्हीं रक़मों के कारण उसकी आर्थिक स्थिति इतनी ख़राब हो गई थी कि फ़ौज की कई महीने की तनख़्वाहें उसके ज़िम्मे चढ़ गई थीं जिससे फ़ौज में असन्तोष बढ़ता जा रहा था।

लाचार होकर मीर जाफ़र ने यह प्रार्थना की कि कम्पनी का जो

देना मेरे ज़िम्मे बाक़ी रह गया है, उसमें कुछ कमी कर दी जावे। मालूम होता है कि क्लाइव ने उसे इसकी आशा भी दिला रक्खी थी। इसी उद्देश से मीर जाफर ने कई बार बड़ी बड़ी रक़में बतौर रिशवत क्लाइव की भेंट कीं। इन रक़मों के विषय में सन् १७७२ ई० में पार्लिमेण्ट की एक कमेटी के सामने गवाही देते हुए क्लाइव ने कहा था कि—"नवाब की दरियादिली ने सहज ही में मुझे धनवान बना दिया है।"*

किन्तु इस प्रकार कमी करना तो दूर रहा, ऐन उस मौक़े पर, जबकि बिहार पर चढ़ाई करने की पूरी तैयारी होगई, क्लाइव ने कम्पनी की एक एक पाई चुकवाए बिना क़दम उठाने से इनकार कर दिया। पिछली रक़मों के अलावा और भी नई नई रक़में इस अवसर पर मीर जाफ़र से तलब की गईं। क्लाइव का बल इस समय तक ख़ूब बढ़ गया था। उसके पास पचास हज़ार सेना मीर जाफ़र को कुचलने के लिए मौजूद थी। मीर जाफ़र को तरह तरह के डर दिखाए गए। उसे लाचार होकर झुकना पड़ा। इतिहास-लेखक मैलकम लिखता है कि इस अवसर पर—

"एक रक़म सेना के असाधारण ख़र्च के लिए वसूल कर ली गई। जो ज़मीनें कम्पनी को दी गई थीं उनके परवाने बाक़ायदा जारी कराए गए। (दरबार से) हुकुम जारी कराए गए कि नवाब के पहले छै महीने के क़र्ज़ों की तमाम बक़ाया तुरन्त चुका दी जावे। बाक़ी तमाम क़र्ज़ों को चुकाने के

* "The Nawab's generosity had made his fortune easy."
—Clive before the Parliamentary Committee in 1777.

लिए उस समय तक, जब तक कि क़र्ज़ा पूरा न हो जावे, बर्धमान, नदिया और हुगली तीन ज़िलों की सरकारी मालगुज़ारी कम्पनी के नाम करा दी गई। क्लाइव ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम ८ फ़रवरी के पत्र में लिखा—'इससे अब हमारे क़र्ज़ का चुकाया जाना नवाब के हाथों से बिलकुल स्वतन्त्र हो गया है×××।'"*

हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि इस 'क़र्ज़' में कोई ऐसी रक़म शामिल न थी जो वास्तव में कम्पनी ने वा किसी अङ्गरेज़ ने कभी मीर जाफ़र को क़र्ज़ दी हो। यह सब केवल वह धन था जो मीर जाफ़र ने मसनद के बदले में अङ्गरेज़ों को देने का वादा कर लिया था।

क्लाइव और मीर जाफ़र अब ५०,००० सेना सहित पटने की ओर बढ़े। चार महीने से ऊपर यह ज़बरदस्त सेना मैदान में रही, जिसका सारा ख़र्च मीर जाफ़र पर पड़ा, तथापि गोली एक भी न चलने पाई। मालूम होता है कि क्लाइव इस समय मीर जाफ़र को ख़ासा चकमा दे रहा था। रामनारायण जैसे आदमी को सदा के

* "A supply of money was procured for the extraordinary expenses of the army; the perwannah, or grant of lands yielded to the Company, was passed in all its forms; orders were issued for the immediate discharge of all arrears on the first six months of the Nawab's debt, and the revenues of Burdwan, Nuddea and Hugli assigned over for payment of the rest:—'So that,' said Clive, writing [8th February, 1758] to the Court of Directors, 'the discharge of the debt is now become independent of the Nawab. . . . '"—Malcolm's *Life of Clive* vol. i, 338

लिए अपना शत्रु बना लेना अङ्गरेज़ों के लिए हितकर न था। क्लाइव का उद्देश इस समय रामनारायण पर कम्पनी के बल का सिक्का जमाना, उसे मीर जाफ़र की ओर से सशङ्क कर देना, उससे धन वसूल करना और अन्त में स्वयं मध्यस्थ बनकर रामनारायण के हक़ में फ़ैसला करा देना मालूम होता था।

२३ फ़रवरी सन् १७५८ को पटने में दरबार हुआ। क्लाइव ने मध्यस्थ का आसन ग्रहण किया। मीर जाफ़र का बेटा मीरन नाम के लिए बिहार का नवाब बनाया गया और शासन का तमाम कार्य मीरन के नायब की हैसियत से पूर्ववत् राजा रामनारायण के हाथों में छोड़ दिया गया। इस अनुग्रह के बदले में रामनारायण से ७ लाख रुपए नक़द वसूल किए गए। इतिहास-लेखक ओर्म लिखता है कि—"क्लाइव की जो मुराद थी, वह सब पूरी हो गई।"* कुछ दिनों बाद के एक पत्र में क्लाइव ने रामनारायण को "अङ्गरेज़ों का पक्का हितसाधक" लिखा है।

क्लाइव अपने मालिकों को भी नहीं भूला। उन दिनों जितना शोरा बङ्गाल में बिकता था, सब पटने से ऊपर के प्रदेश में तैयार होता था। क्लाइव ने इस समय नवाब पर ज़ोर देकर शोरा तैयार कराने का ठेका कम्पनी के नाम हासिल कर लिया, जिससे कम्पनी का व्यापार और बढ़ गया।

मई सन् १७५८ ई० में क्लाइव मुर्शिदाबाद लौटा आया। इसके कुछ दिनों बाद मीर जाफ़र भी अपनी राजधानी वापस पहुँच गया।

---

* Orme, vol. ii, p, 283.

शहज़ादे अलीगौहर की बिहार-यात्रा

थोड़े दिनों बाद मीर जाफ़र और रामनारायण दोनों पर एक और नई आफ़त टूटी। जिस तरह मीरन केवल नाम के लिए बिहार का नवाब बना दिया गया था उसी तरह एक अर्से से दिल्ली सम्राट के ज्येष्ठ पुत्र को नाम मात्र के लिए बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा का सूबेदार कहा जाता था। वास्तव में शहज़ादे की यह उपाधि केवल एक मान-सूचक उपाधि चली आती थी और मुर्शिदाबाद के क्रियात्मक सूबेदार सम्राट के अधीन सूबेदारी के सब फ़र्ज़ अदा करते थे। इस समय शहज़ादा अलीगौहर अपनी उपाधि को सार्थक करने के लिए सेना सहित बङ्गाल की ओर बढ़ा। इसमें सन्देह नहीं कि बङ्गाल की हाल की क्रान्ति, अङ्गरेज़ों और मीर जाफ़र के अन्याय और प्रजा की शोकजनक अवस्था की ख़बर सम्राट के दरबार तक पहुँच चुकी थी, और शहज़ादे के आने का इन बातों के साथ अवश्य कुछ न कुछ सम्बन्ध था। जो हो, मीर जाफ़र शहज़ादे के आने का समाचार पाते ही डर गया। उसने क्लाइव से मदद चाही। क्लाइव फ़ौरन एक ज़बरदस्त सेना और मीरन को साथ लेकर मुर्शिदाबाद से पटने की ओर बढ़ा। शह-ज़ादा उस समय तक पटने पहुँच चुका था और रामनारायण ने अपने विनम्र व्यवहार से शहज़ादे को प्रसन्न कर लिया था। क्लाइव और मीरन के पहुँचने पर कहते हैं मुर्शिदाबाद की सेना तथा शहज़ादे की सेना में कुछ लड़ाई भी हुई। मालूम नहीं इस लड़ाई का होना कहाँ तक सच है। क्लाइव और मुर्शि-

बाद की सेना का शहज़ादे की ज़बरदस्त सेना पर विजय प्राप्त कर सकना सर्वथा असम्भव था। किन्तु उस समय के उल्लेखों से ज़ाहिर है कि क्लाइव ने शहज़ादे के सामने अपनी राजभक्ति का पूरा प्रदर्शन कर शहज़ादे को अपनी ओर करने का भरसक प्रयत्न किया, और अन्त में कुछ समझौता हो गया। शहज़ादा मय अपनी सेना के दिल्ली की ओर लौट गया और मीर जाफ़र का डर कुछ समय के लिए दूर हो गया।

मुर्शिदाबाद पहुँचकर इस उपकार के बदले में क्लाइव ने मीर जाफ़र से अपने लिए साम्राज्य के 'उमरा' की उपाधि और एक जागीर प्राप्त की। जो ज़मींदारी कलकत्ते के आस पास कम्पनी को मिली हुई थी उसके मालकाने के रूप में कम्पनी को हर साल तीन लाख रुपए नवाब की सरकार में जमा कराने पड़ते थे। अब से यह सब ज़मींदारी "क्लाइव की निजी जागीर" बन गई और बजाय मुर्शिदाबाद की सरकार के क्लाइव इस तीन लाख सालाना का कम्पनी से हक़दार हो गया। क्लाइव इस समय वास्तव में एक हिन्दोस्तानी नवाब बना हुआ था।

क्लाइव की इस "जागीर" का, जिसे अपने असहाय "गधे" मीर जाफ़र से हथिया लेना उसके लिए कुछ भी कठिन न था, अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक बड़े अभिमान के साथ ज़िक्र करते हैं।

क्लाइव की कपट-योजना

बङ्गाल की मसनद के बदले में मीर जाफ़र ने जितना धन

अङ्गरेज़ों को देने का वादा किया था उसकी एक एक पाई वसूल की जा चुकी थी। व्यापार के लिए बङ्गाल में अनेक नई रिआयतें कम्पनी को नवाब से मिल चुकी थीं, और इन नाजायज़ रिआयतों के अलावा अनेक चीज़ों के व्यापार का ठेका कम्पनी ने ज़बरदस्ती अपने हाथों में ले रक्खा था। तीनों प्रान्तों में अङ्गरेज़ों के छल और बल दोनों का सिक्का जम चुका था। क्लाइव, जो कुछ वर्ष पूर्व एक निर्धन क्लर्क की हैसियत से भारत आया था, इस समय सम्भवतः संसार में सब से अधिक धनवान अङ्गरेज़ था। इस प्रकार बहुत हद तक अपना उद्देश पूरा कर फ़रवरी सन् १७६० में क्लाइव अपनी जन्मभूमि इङ्गलिस्तान के लिए रवाना हो गया।

किन्तु अपनी क़ौम के लिए क्लाइव की महत्वाकांक्षाएँ अभी बेहद बढ़ी हुई थीं। उसके नीचे लिखे पत्र से मालूम होता है कि भारत में अङ्गरेज़ी राज्य क़ायम करने के विषय में उसका दिमाग़ किस तरह काम कर रहा था। ७ जनवरी सन् १७५९ को इङ्गलिस्तान के प्रधान मन्त्री विलियम पिट के नाम क्लाइव ने निम्नलिखित पत्र लिखा—

"मैं देख रहा हूँ कि अङ्गरेज़ी सेना की सफलता द्वारा जो महान क्रान्ति इस देश में की जा चुकी है उसकी ओर और जो सन्धि उस क्रान्ति के बाद की गई है तथा उससे जो ज़बरदस्त फ़ायदे कम्पनी को हुए हैं उन सबकी ओर एक दर्जे तक (अङ्गरेज़) क़ौम का ध्यान आकर्षित हो चुका है; किन्तु उचित अवसर मिलने पर

अभी और बहुत कुछ किया जा सकता है, बशर्ते कि कम्पनी इस तरह के प्रयत्नों में लगी रहे जोकि उसकी वर्त्तमान सम्पत्ति और भावी सम्भावनाओं दोनों के महत्व के अनुरूप हों। मैंने कम्पनी को अत्यन्त ज़ोरदार शब्दों में इस बात की ज़रूरत दर्शा दी है कि उन्हें इतनी सेना हिन्दोस्तान भेज देनी चाहिए और उसे बराबर हिन्दोस्तान में रखना चाहिए, जिससे कि वे अपनी सम्पत्ति को बढ़ाने के सब से पहले अवसर से लाभ उठा सकें। दो साल की मेहनत और तजरुबे से मैंने इस देश की हुकूमत के विषय में और यहाँ के लोगों के स्वभाव के विषय में जो परिपक्व ज्ञान प्राप्त किया है उससे मैं साहस के साथ कह सकता हूँ कि इस तरह का अवसर शीघ्र ही आने वाला है। मौजूदा सूबेदार ××× बूढ़ा है; और उसका नौजवान बेटा इतना ज़ालिम और निकम्मा है तथा अङ्गरेज़ों का इतना खुला दुशमन है कि इस नवाब के बाद उसे मसनद पर बैठने देना क़रीब क़रीब ख़तरनाक होगा। केवल दो हज़ार यूरोपियनों की छोटी सी सेना हमें इन दोनों की ओर से निःशङ्क कर देगी; और यदि इनमें से कोई हमारे साथ उपद्रव करने का साहस करेगा तो इस सेना द्वारा हम राज्य अपने हाथों में ले सकेंगे।

"हिन्दोस्तान के लोगों को अपने राजाओं के साथ किसी तरह का भी प्रेम नहीं है, इसलिए इस तरह का कार्य कर डालने में हमें और भी कम कठिनाई होगी ×××

"किन्तु सम्भव है, इतना बड़ा राज्य एक व्यापारी कम्पनी के लिए बहुत ज़्यादा हो जावे; और मुझे डर है कि बिना अङ्गरेज़ क़ौम की सहायता के अकेली कम्पनी इतने विस्तृत राज्य को क़ायम नहीं रख सकती ××× ख़ूब सोचने की बात है कि यह तमाम नक़शा बिना अपनी मातृभूमि पर

ख़र्च का बोझ डाले पूरा किया जा सकता है, जबकि अमरीका में अपना राज्य क़ायम करने के लिए इङ्गलिस्तान को बेहद ख़र्च बरदाश्त करना पड़ा था। इङ्गलिस्तान से एक छोटी सी सेना इसलिए काफ़ी होगी क्योंकि हम जब जितने काले सिपाही चाहें यहाँ जमा कर सकते हैं XXX मैं केवल इतना और कहूँगा कि मैंने सिवाय आपके और किसी को यह बात नहीं लिखी; और मैं आपको भी कष्ट न देता यदि मुझे इस बात का विश्वास न होता कि क़ौम के फ़ायदे की जो योजना भी आपके सामने रक्खी जायगी, आप उसका अच्छी तरह स्वागत करेंगे।"*

---

* "The great revolution that has been effected here by the success of the English arms, and the vast advantages gained to the Company by a treaty concluded in consequence thereof, have, I observe, in some measure engaged the public attention; but more may yet in time be done, if the Company will exert themselves in the manner the importance of their present possessions and future prospects deserves. I have represented to them in the strongest terms the expediency of sending out and keeping up constantly such a force as will enable them to embrace the first opportunity of further aggrandising themselves; and I dare pronounce, from a thorough knowledge of the Country Government, and of the genius of the peoples acquired from two years' application and experiences, that such an opportunity will soon occur. The reigning Soubah . . . is advanced in years; and his son is so cruel, worthless a young fellow, and so apparently an enemy to the English, that it will be almost unsafe trusting him with the succession. So small a body as two thousand Europeans will secure us against any apprehensions from either the one or the other; and in case of their daring

मीर जाफ़र और मीरन

[From the "History of Murshidabad," by Major Walsh.]

बङ्गाल के अथवा आमतौर पर भारत के अन्दर अङ्गरेज़ों की उस समय की योजनाओं का यह ख़ासा सुन्दर और सच्चा चित्र है। इस पत्र से यह भी साबित है कि अङ्गरेज़ इस समय बङ्गाल में मीर जाफ़र और मीरन दोनों के विरुद्ध एक दूसरी राज्य-क्रान्ति पैदा करने का फ़ैसला कर चुके थे।

मीरन एक समझदार युवक था। अङ्गरेज़ों की चालों और नीयत को वह इस समय तक ख़ासा पहचान गया था। मीर जाफ़र भी इन लोगों की दोस्ती से बेज़ार हो चला था। ख़ासकर मीरन

---

to be troublesome, enable the company to take the sovereignty upon themselves.

"There will be less difficulty in bringing about such an event, as the natives themselves have no attachment whatever to particular princes. . . .

"But so large a sovereignty may possibly be an object too extensive for a mercantile company; and it is to be feared they are not of themselves able, without the nation's assistance, to maintain so wide a dominion. . . . It is well worthy consideration, that this project may be brought about without draining the mother country, as has been too much the case with our possessions in America. A small force from home will be sufficient, as we always make sure of any number we please of black troops, . . . I shall only further remark, that I have communicated it to no other person but yourself; nor should I have troubled you, Sir, but from a conviction that you will give a favourable reception to any proposal intended for the public good."
—Malcolm's *Life of Clive*, vol. ii, pp. 119 et seq.

अपने बाप को अकसर यह सलाह दिया करता था कि किसी तरह इन लोगों के पञ्जे से निकलने की कोशिश की जावे। यही कारण है कि क्लाइव "मसनद पर मीरन को बैठने देना ख़तरनाक समझता था।

क्लाइव के बाद 'ब्लैक होल' के क़िस्से का रचयिता मशहूर गप्पी हॉलवेल कलकत्ते का गवरनर नियुक्त हुआ। पाँच महीने बाद जुलाई सन् १७६० में हेनरी वन्सीटार्ट ने उसकी जगह ली। केलो (Caillaud) बङ्गाल में कम्पनी की सेनाओं का प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ।

सम्राट शाह आलम की बङ्ग-यात्रा

सन् १७५९ के अन्त में शहज़ादे अलीगौहर ने दूसरी बार बिहार पर चढ़ाई की। निस्सन्देह इस बीच बङ्गाल की शोकजनक अवस्था की ओर अनेक शिकायतें मुग़ल दरबार तक पहुँच चुकी थीं। इसके अतिरिक्त यद्यपि नाम को बङ्गाल अभी तक सम्राट के अधीन था, तथापि आए दिन की क्रान्तियों के कारण बङ्गाल से दिल्ली ख़िराज जाना कई वर्ष से बन्द था। शहज़ादे की इस चढ़ाई का उद्देश इन शिकायतों को दूर करना और शाही ख़िराज वसूल करना था।

शहज़ादे की सेना ने अभी बिहार प्रान्त में क़दम रक्खा ही था कि शहज़ादे को सम्राट आलमगीर दूसरे की मृत्यु का समाचार मिला। यही शहज़ादा अब दिल्ली से अपनी अनुपस्थिति में शाह

आलम दूसरे के नाम से सम्राट नियुक्त हुआ, और भारत सम्राट ही की हैसियत से उसने अब बिहार में प्रवेश किया। शाह आलम इस समय मुग़ल साम्राज्य का अनन्य अधिपति था। उसकी अधीनता प्रत्येक सूबेदार, भारतीय प्रजा और यूरोपियन व्यापारियों सब पर वाजिब थी। तथापि अङ्गरेज़ों की नीति उसकी ओर कुछ रहस्यपूर्ण रही। एक ओर उन्होंने मीर जाफ़र और मीरन दोनों पर इस बात का ज़ोर दिया कि आप लोग अपनी सेना सहित पटने पहुँचकर सम्राट का मुक़ाबला कीजिए, और सम्राट की सेना के बिहार में प्रवेश करते ही करनल केलो फ़ौरन अपनी सेना सहित कलकत्ते से मुर्शिदाबाद की ओर बढ़ा और वहाँ से मीरन के अधीन नवाब की कुछ सेना साथ लेकर १८ जनवरी सन् १७६० को सम्राट की सेना के मुक़ाबले के लिए पटने की ओर रवाना हुआ। दूसरी ओर अङ्गरेज़ों ने नवाब और मीरन दोनों से ऊपर ही ऊपर शाह आलम से अपनी गुप्त बातचीत आरम्भ कर दी।

अङ्गरेज़ों का शाह आलम के साथ लड़ाई के लिए तैयार हो जाना इतिहास-लेखक मिल के शब्दों में "खुली बग़ावत थी।"* गवरनर हॉलवेल यह भी लिखता है—"शाह आलम ने अङ्गरेज़ों की सब शर्तें मन्ज़ूर कर लेने की रज़ामन्दी प्रकट की।"† मालूम नहीं वे क्या शर्तें थीं और अन्त में उनका क्या हुआ।

* "To oppose him was undisguised rebellion." Mill, vol. iii. p. 202.

† Ibid

करनल केलो ने अपने पत्रों में इस बात की शिकायत की कि मीरन ने सम्राट के विरुद्ध केलो का उस तरह साथ नहीं दिया जिस तरह कि केलो चाहता था। निस्सन्देह मीर जाफ़र और मीरन दोनों सम्राट से लड़ने के विरुद्ध थे; किन्तु केलो उन्हें सम्राट से लड़ाना चाहता था। इस पर अङ्गरेज़ और उन दोनों में ख़ासा मतभेद होगया। अङ्गरेज़ों और मीरन में पहले से भी भीतर ही भीतर वैमनस्य बढ़ता जा रहा था।

जो हो, मुर्शिदाबाद की सेना के पहुँचने से पहले ही "अङ्गरेज़ों का पक्का हितसाधक" रामनारायण अपनी सेना सहित शाह आलम के मुक़ाबले के लिए पटने से बाहर निकला। वास्तव में इस बार वह पूरी तरह अङ्गरेज़ों के हाथों में खेल गया। सम्राट की सेना ने उसे हराकर और ज़ख़्मी करके पीछे हटा दिया और पटने का मोहासरा शुरू कर दिया। १५ फ़रवरी को केलो और मीरन की सेनाएँ पटने पहुँचीं। सम्राट और अङ्गरेज़ों में गुप्त पत्र-व्यवहार बराबर जारी था। सम्राट की सेना मोहासरे से हट गई। २२ फ़रवरी को दिल्ली और बङ्गाल की सेनाओं में थोड़ी सी लड़ाई भी हुई जिसमें मीरन के कुछ चोट आई। न जाने अङ्गरेज़ों ने सम्राट को क्या समझाया कि सम्राट की सेना अब ख़ुद ही वहाँ से मुड़कर सीधी मुर्शिदाबाद की ओर बढ़ी। मीरन इस समय सम्राट की सेना का पीछा करने के ख़िलाफ़ था। तथापि केलो ने उसे २९ फ़रवरी सन् १७६० को पटना छोड़ने पर मजबूर किया। निस्सन्देह मीरन और मीर जाफ़र दोनों को एक दर्जे तक मजबूरन् अङ्गरेज़ों के इशा

पर चलना पड़ता था। चार अप्रेल को केलो और मीरन की सेना मीर जाफ़र की सेना से आ मिली। ६ अप्रेल को जब कि दिल्ली और बङ्गाल की सेनाएँ एक दूसरे के अत्यन्त निकट आ गईं, केलो ने नवाब पर फिर ज़ोर दिया कि आप सम्राट की सेना पर हमला कीजिए, किन्तु मीर जाफ़र और मीरन ने मञ्ज़ूर न किया। तीन दिन के अन्दर सम्राट की सेना फिर उसी रास्ते बिहार की ओर लौट गई।

कम्पनी के डाइरेक्टरों के एक पत्र में लिखा है कि कुछ अङ्गरेज़ों ही ने करनल केलो पर यह भी इलज़ाम लगाया था कि इस समय उसने किसी गुप्त तरीक़े से सम्राट को मरवा डालने तक का उद्योग किया था, किन्तु वह सफल न हो सका।

करनल केलो स्वयं मीर जाफ़र और मीरन की सेनाओं के साथ उन्हीं के ख़ेमों में ठहरा रहा और कप्तान नॉक्स को उसने कुछ सेना सहित पटने की ओर भेजा। यह सब वृत्तान्त हमने करनल केलो के बयान के आधार पर दिया है। मीरन और मीर जाफ़र दोनों को इस प्रकार नज़रबन्द रखने का एक कारण यह भी था कि अङ्गरेज़ों को अपने विरुद्ध उनके सम्राट से मिल जाने का भय था, और अङ्गरेज़ सम्राट से अपनी बातचीत का उन्हें पता लगने देना न चाहते थे। सम्राट की सेना के सामने भी या तो पहले से पूरी तरह निश्चित कोई कार्य-क्रम न था अथवा शाह आलम को राजधानी के ख़ाली होने के कारण दिल्ली लौटने की जल्दी थी, अथवा जो कुछ रहा हो। दो बार पटने पर चढ़ाई करके

कप्तान नॉक्स के पहुँचते ही न जाने सम्राट तथा अङ्गरेज़ों में क्या बातचीत हुई कि सम्राट की सेना शहर का मोहासरा छोड़कर दिल्ली की ओर लौट गई।

मीरन की हत्या

कहा जाता है कि पूर्निया का नवाब ख़ुद्दामहुसेन, जिसे मीर जाफ़र ने दो वर्ष पूर्व युगलसिंह की जगह वहाँ का नवाब नियुक्त किया था, अब अपनी सेना सहित मीर जाफ़र के खिलाफ़ सम्राट की सहायता के लिए आ रहा था। केलो और मीरन उसके मुकाबले के लिए बढ़े। अङ्गरेज़ मीरन को पूर्निया के नवाब से लड़ाकर पूर्निया के नवाब का भी नाश करना चाहते थे। किन्तु मीरन पूर्निया के नवाब से लड़ना न चाहता था। कम्पनी की सेना और पूर्निया की सेना में कुछ लड़ाई हुई। किन्तु केलो का कथन है कि मीरन से सहायता न मिल सकने के कारण अङ्गरेज़ पूर्निया के नवाब पर विजय प्राप्त न कर सके। दो जुलाई तक केलो और मीरन की सेनाएं साथ साथ नवाब पूर्निया की सेना के पीछे पीछे चलती रहीं। ख़ुद्दामहुसेन पर दोबारा अकेले हमला करने की केलो की हिम्मत न थी और मीरन इस काम में उसका साथ देने को राज़ी न था। २ जुलाई की आधी रात को मीर जाफ़र का बेटा और मुर्शिदाबाद का युवराज मीरन एकाएक अपने बिछौने पर मरा हुआ पाया गया। कह दिया गया कि मीरन पर बिजली गिर पड़ी। सुप्रसिद्ध अङ्गरेज़ विद्वान एडमण्ड बर्क ने पार्लिमेण्ट के सामने बड़ी सुन्दरता के साथ

दिखलाया कि यह कैसी विचित्र बिजली थी। जिस खेमे के नीचे मीरन सो रहा था उस पर वा उसके कपड़े पर बिजली का ज़रा सा भी असर नहीं हुआ और उसके नीचे सोया हुआ मीरन मर गया। बिजली के गिरने की आम तौर पर बड़ी ज़बरदस्त आवाज़ होती है, जो मीलों तक सुनाई देती है। किन्तु जो बिजली मीरन पर गिरी उससे खेमे के चारों ओर सोए हुए लाखों सिपाहियों और दूसरे आदमियों में से किसी एक की भी आँख न खुली। वास्तव में मीरन उस समय अङ्गरेज़ों के पहलू में एक काँटा था। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि मीरन को मार डाला गया, और इस हत्या में करनल केलो का हाथ था। इस हत्या के ठीक एक महीने बाद हॉलवेल ने नए गवरनर वन्सीटार्ट को लिखा—

"दरबार में एक दल खड़ा हो गया था जिसके नवाब का बेटा मीरन और राजा राजवल्लभ नेता थे। ये लोग अङ्गरेज़ों के जुए को अपने कन्धों पर से हटाने के लिए रोज़ तदबीरें सोचा करते थे। और लगातार नवाब पर ज़ोर देते रहते थे कि जब तक यह न हो सकेगा, तब तक नवाब की हुकूमत केवल एक नाम की हुकूमत रहेगी।"*

---

* "A party was soon raised at the Durbar, headed by the Nawab's son, Miran, and Raja Rajebullab, who were daily planning schemes to shake off their dependence on the English, and continually urging to the Nawab, that until this was effected his government was a name only":—*First Report. 1772*, Appendix 9, p. 225.

समस्त सेना को पटने लौटा लाया गया और पटने लौट आने तक मीरन की मृत्यु को उसकी सेना से छिपाकर रक्खा गया।

बङ्गाल की शोकजनक अवस्था

बङ्गाल और वहाँ की प्रजा की अवस्था इस समय निस्सन्देह अत्यन्त करुणाजनक थी। मुसलमान इतिहास-लेखक मौ० बदरुद्दीन अहमद उस समय की बङ्गाल की अवस्था को वर्णन करते हुए लिखता है—

"कम्पनी और उसके ख़ास ख़ास मुलाज़िमों से अलग अलग जो बड़े बड़े वादे कर लिए गए थे, उन्हें पूरा करने में नाज़िम (मीर जाफ़र) के ख़ज़ाने का एक एक सिक्का दिया जा चुका था। बङ्गाल दिवालिया हो चुका था और तेज़ी के साथ अराजकता की ओर बढ़ा चला जा रहा था। शहज़ादे की चढ़ाई से वहाँ की हालत और भी ख़राब हो गई थी। उससे नाज़िम की पूरी बेबसी ज़ाहिर हो गई थी और कम्पनी को पता चल गया था कि बाहर के हमलों से अपने इलाक़े की रक्षा करने के लिए नाज़िम हर तरह हमीं पर निर्भर है।"*

बङ्गाल की प्रजा ने अपनी गाढ़ी कमाई के पैसों से सञ्चित मुर्शिदाबाद के ख़ज़ाने को अपनी आँखों के सामने ढुलढुल कर विदेशियों के हाथों में जाते हुए देखा। आए दिन के संग्रामों और सैन्य-यात्राओं के कारण देश की कृषि पर मिट्टी छित गई थी और उद्योग धन्धों का नाश हो रहा था। इस पर देश के एक एक

* *Calendar of Persian correspondence*, vol. iii, p. viii.

व्यापार के ऊपर कम्पनी ज़बरदस्ती अपना अधिकार जमाती जा रही थी। उदाहरण के लिए नमक, छालिया, इमारती लकड़ी, तम्बाकू, सूखी मछली इत्यादि का व्यापार देशवासियों की जीविका और सूबेदार की आमदनी दोनों का उन दिनों एक विशेष ज़रिया था। इसीलिए शुरू ज़माने से इस तरह की कई चीज़ों का व्यापार यूरोपनिवासियों के लिए इस देश में बन्द कर दिया गया था। विदेशी व्यापारियों के नाम सम्राट की स्पष्ट आज्ञाएँ इस विषय में मौजूद थीं। तथापि प्लासी के फ़ौरन् ही बाद अङ्गरेज़ों ने ये सब व्यापार ज़बरदस्ती अपने हाथों में ले लिए। मीर जाफ़र ने मसनद पर बैठने के एक महीने के अन्दर क्लाइव से इस ज़बरदस्ती की शिकायत की। कुछ देर के लिए कुछ रोक थाम का भी ढोंग रचा गया। किन्तु अन्त में किसी ने परवा न की। शोरे का ठेका कम्पनी को मिल ही चुका था। इन सब कारणों से न केवल राज्य की आमदनी में बहुत बड़ी कमी हो रही थी; वरन् प्रजा के अन्दर दुख, दरिद्रता और असन्तोष भी ज़ोरों के साथ बढ़ते जा रहे थे। इस पर तारीफ़ यह कि जब कभी मीर जाफ़र देश के आर्थिक, सैनिक अथवा किसी भी प्रबन्ध में किसी तरह का सुधार करना चाहता था तो उसे फ़ौरन् साफ़ रोक दिया जाता था। वास्तव में मीर जाफ़र मसनद पर बैठने के चन्द महीने के अन्दर ही अपनी बेबसी को समझने लगा था और अनुभव करने लगा था कि अङ्गरेज़ों की नई मित्रता ने मुझे और मेरे देश को चुपचाप नाग के लपेटों की तरह जकड़ लिया है। सिराजुद्दौला के

साथ उसके विश्वासघात का फल अब मीर जाफ़र और उसकी प्रजा दोनों को भोगना पड़ रहा था।

बङ्गाल में दूसरी क्रान्ति

सिराजुद्दौला की हत्या को अभी तीन वर्ष भी पूरे न हुए थे। मीर जाफ़र ने जो सन्धि अङ्गरेज़ों के साथ की थी उसकी तमाम शर्तों को वह अक्षरशः पूरा कर चुका था। सन्धि से बाहर अनेक बेजा माँगें पै दर पै मीर जाफ़र के सामने पेश की जा चुकी थीं और ज़बरदस्ती पूरी कराई जा चुकी थीं। देश तथा प्रजा की बुरी हालत थी। इस स्थिति में अपने सच्चे मित्र मीर जाफ़र को लात मार कर उसकी जगह किसी और ऐसे मनुष्य को मसनद पर बैठाने के लिए, जिसके द्वारा बङ्गाल को और अधिक सफलता के साथ चूसा जा सके, अङ्गरेज़ों ने अब उस दूसरी राज्य-क्रान्ति के लिए तदबीरें शुरू कर दीं जिसका इशारा ऊपर क्लाइव के एक पत्र में आ चुका है।

मीर जाफ़र एक बहुत बड़ी नक़द रक़म कम्पनी के नए गवरनर हॉलवेल की भेंट कर चुका था, तथापि पहले दिन से हॉलवेल इस दूसरी क्रान्ति की धुन में था। मई सन् १७६० में गवरनर हॉलवेल और करनल केलो के बीच इस नए षड़यन्त्र के सम्बन्ध में गुप्त पत्र व्यवहार शुरू हो गया था। जुलाई मास में गवरनर वन्सीटार्ट के आने पर इस षड़यन्त्र ने विस्तृत रूप धारण किया। हॉलवेल और केलो के उस समय के बयानों में मीरन की मृत्यु का स्पष्ट ज़िक्र

आता है, जिससे मालूम होता है कि मीरन की हत्या इसी षड़यन्त्र का एक अङ्ग थी। सितम्बर सन् १७६० में इस षड़यन्त्र को अन्तिम रूप देने के लिए और मीर जाफ़र से छेड़ छाड़ शुरू करने का बहाना ढूँढने के लिए वन्सीटार्ट के सभापतित्व में कलकत्ते में गुप्त सभाएँ हुईं। ११ सितम्बर की सभा की कारवाई में दर्ज है—

"करनल क्लाइव की क्रान्ति से आज तक समय समय पर हमारा प्रभाव बढ़ता गया है, और उस प्रभाव को क़ायम रखने के लिए हमें वैसे वैसे ही अपना सैन्यबल भी बढ़ाना पड़ा है। अब हमारे पास एक हज़ार से ऊपर यूरोपियन सिपाही और पाँच हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाही हैं। इनका ख़र्च और उसके साथ साथ सेना का आकस्मिक ख़र्च मिलाकर इतना अधिक है कि हमारी आजकल की वार्षिक आय से किसी तरह पूरा नहीं हो सकता। ×××

* * * *

"इसलिए नवाब से कहना चाहिए कि आप इससे कहीं ज़्यादा सालाना आमदनी कम्पनी के नाम कर दें। और इसके पूरे पूरे और यथेष्ट प्रबन्ध के लिए इस तरह के कुछ ज़िलों का अनन्य अधिकार कम्पनी को दे दें जिनका हम बहुत ही आसानी से इन्तज़ाम कर सकें।××× हम समझते हैं कि हमारी इस तरह की तजवीज़ के रास्ते में जितनी रुकावटें डाली जा सकती हैं, सब अवश्य डाली जावेंगी।×××

"×××इस सम्बन्ध में अपनी तमाम इच्छाओं की पूर्त्ति को निश्चित कर लेने का एक ऐसा अच्छा मौक़ा इस समय हमारे सामने है कि जैसा शायद फिर कभी न आ सके; इस मौक़े से सत्ता और अधिकार दोनों हमें मिल सकते हैं।

"दूसरी मुख्य बात, जो हमें अपनी वर्तमान कार्य-प्रणाली बदलने पर विचार करने के लिए मजबूर करती है, धन की कमी है। यह कमी केवल हम तक ही परिमित नहीं, बल्कि नीचे लिखी चीज़ें भी बहुत दर्जे तक उसी पर निर्भर हैं—

"समुद्रतट की कारवाइयाँ,

"पुद्दुचरी (पौण्डिचरी) का विजय करना, और

"अगले वर्ष [बम्बई, मद्रास और कलकत्ता] तीनों प्रान्तों से माल लादकर इङ्गलिस्तान जहाज़ भेजने के लिए पहले से धन का प्रबन्ध।"*

* "Our influence increasing from time to time since the revolution brought about by Colonel Clive, so have we been obliged to increase our force to support that influence. We have now more than a thousand Europeans, and five thousand Sepoys which, with the contingent expenses of an army, is far more than the revenues allotted for their maintenance. . . .

* * * *

"It must therefore be proposed to the Nawab, to assign to the Company a much larger income, and to assign it in such a full and ample manner, by giving to the Company the sole right of such districts, as lay most convenient for our management . . it is to be supposed, that such a proposal would meet with all the difficulties that could possibly be thrown in our way. . .

". . . There seems now to offer such an opportunity of securing to ourselves all we could wish in this respect, as likely may never happen again; an opportunity that will give us both power and right.

"Another principal motive, that urges us to think of changing

मीर जाफ़र पर किसी तरह का भी भूठा सच्चा दोष नहीं लगाया जा सका, किन्तु अङ्गरेज़ कम्पनी के लिए अपनी धन और धरती की प्यास को बुझाना ज़रूरी था। कम्पनी की ओर से नई माँगें मीर जाफ़र के सामने पेश की गईं, जिनके विषय में इतिहास-लेखक मिल लिखता है—

"मीर जाफ़र की हालत शुरू से ही शोकजनक थी। ख़ज़ाना सुत चुका था, देश सुत चुका था, बड़े बड़े अनिवार्य ख़र्च उसके सामने थे और इस पर कड़ी से कड़ी माँगें पूरी करने के लिए उसे मजबूर किया जाता था XXX।"*

मौलवी बदरुद्दीन अहमद लिखता है कि जो माँगें इस समय अङ्गरेज़ों ने मीर जाफ़र के सामने पेश कीं उनमें एक यह भी थी कि श्रीहट्ट (सिलहट) और इसलामाबाद के इलाक़ों के लिए 'फ़ौजदारी' के अधिकार कम्पनी को दे दिए जावें। मीर जाफ़र

---

our system, is the want of money; a want that is not confined to ourselves alone, but on which greatly depend.

"The operations on the coast,

"The reduction of Pondicherry, and

"The provision of an investment for loading home the next year's ships at all the three presidencies."—Proceedings at Fort William, 11th September 1760, *First Report, 1712*, pp. 228, 229.

* "The situation of Jaffir was deplorable from the first. With an exhausted treasury and exhausted country, and vast engagements to discharge, he was urged to the severest exactions; . . ."—Mill, vol. iii, pp. 213, 214

इस हद तक जाने के लिए तैयार न था। उसने अपने चतुर और विश्वस्त दामाद नौजवान मीर क़ासिम को अङ्गरेज़ों से बातचीत करने के लिए मुर्शिदाबाद से कलकत्ते भेजा।

१५ सितम्बर सन् १७६० की गुप्त सभा में अङ्गरेज़ों ने तय किया कि मीर क़ासिम और राजा दुर्लभराम दोनों को इस नई साज़िश में शामिल किया जावे और साथ ही राजा दुर्लभराम की मार्फ़त सम्राट शाह आलम को भी अपनी ओर करने की कोशिश की जावे। यह भी तय हुआ कि और मामूली लोगों को ख़ास ख़ास नौकरियों के वादे देकर इस साज़िश में शामिल किया जावे तथा इस समय उनसे रुपए वसूल किए जावें। मीर क़ासिम से बात करने के लिए गवरनर वन्सीटार्ट, और राजा दुर्लभराम से बात करने के लिए हॉलवेल नियुक्त हुए। उसी रात को अलग अलग वन्सीटार्ट की मीर क़ासिम से और हॉलवेल की राजा दुर्लभराम से बातचीत हुई। अगले दिन गुप्त सभा में आकर वन्सीटार्ट और हॉलवेल दोनों ने अपनी अपनी सफलता का हाल सुनाया। लगभग दस रोज़ शर्तों को तय करने इत्यादि में ख़र्च हुए। इतिहास-लेखक मालेसन लिखता है कि २७ सितम्बर को कलकत्ते की अङ्गरेज़ कौन्सिल और मीर क़ासिम में एक गुप्त सन्धि हो गई जिसमें यह तय हुआ कि मीर क़ासिम को मुर्शिदाबाद दरबार का वज़ीर-आज़म बना दिया जाय, सूबेदारी के तमाम अधिकार मीर क़ासिम को दिला दिए जावें, केवल 'सूबेदार' की शुष्क उपाधि और व्यक्तिगत ख़र्च के लिए एक सालाना रक़म ज़िन्दगी भर

के लिए मीर जाफ़र को मिलती रहे, अङ्गरेज़ों और मीर क़ासिम में स्थायी मित्रता रहे, मीर क़ासिम को जब ज़रूरत हो अङ्गरेज़ अपनी सेना से उसकी मदद करें, इसके बदले में मीर क़ासिम बर्धमान, मेदिनीपुर और चट्टग्राम तीनों ज़िले हमेशा के लिए कम्पनी के नाम कर दे, जो जवाहरात मीर जाफ़र ने कम्पनी के पास गिरवी रक्खे थे उन्हें मीर क़ासिम नक़द रुपया देकर छुड़वा ले, सम्राट शाह आलम के साथ अङ्गरेज़ अथवा मीर क़ासिम बिना एक दूसरे से सलाह किए कोई समझौता न करें, और तीनों में से किसी प्रान्त में सम्राट के पैर न जमने दिए जावें, श्रीहट्ट ज़िले में चूना ख़रीदने के लिए अङ्गरेज़ों को विशेष सुविधाएँ दी जावें; इस उपकार के बदले में मीर क़ासिम अधिकार मिलते ही वन्सीटार्ट को पाँच लाख रुपए, हॉलवेल को दो लाख सत्तर हज़ार, और इसी तरह कौन्सिल के अन्य सदस्यों में से किसी को ढाई लाख, किसी को दो लाख इत्यादि कुल मिलाकर बीस लाख रुपए दे, और इनके अलावा पाँच लाख रुपए कम्पनी को बतौर क़र्ज़ दे। गवरनर वन्सीटार्ट, उसकी कौन्सिल के अन्य सदस्यों और मीर क़ासिम, सब के इस सन्धि-पत्र पर दस्तख़त हो गए। यह वही मीर क़ासिम था जिसे मीर जाफ़र ने अपना विश्वस्त प्रतिनिधि बनाकर अङ्गरेज़ों के पास बातचीत के लिए भेजा था।

३० सितम्बर को सौदा पक्का करके मीर क़ासिम कलकत्ते से मुर्शिदाबाद के लिए रवाना हुआ। २ अक्तूबर को मीर जाफ़र पर दबाव डालने के लिए गवरनर वन्सीटार्ट और उसके कुछ

साथी कलकत्ते से चले। मुर्शिदाबाद भागीरथी के एक ओर और क़ासिमबाज़ार की कोठी दूसरी ओर थी। १५, १६ और १८ सितम्बर को वन्सीटार्ट और मीर जाफ़र में बातचीत हुई। मीर जाफ़र अङ्गरेज़ों की नई तजवीज़ों और मीर क़ासिम के इरादों का हाल सुनकर घबरा गया। उसने मीर क़ासिम के हाथों में शासन के अधिकार सौंपने से इनकार कर दिया। मीर क़ासिम और अङ्गरेज़ों के लिए अब पीछे हट सकना असम्भव था। २० अक्टूबर को सवेरे सूर्य निकलने से कई घण्टे पहले कम्पनी की सेना ने अचानक मीर जाफ़र को महल में सोते हुए जा घेरा। मालेसन ने बड़े सुन्दर शब्दों में मीर जाफ़र की उस समय की मानसिक स्थिति को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। वह लिखता है–

"निस्सन्देह उस प्रभात की महत्वपूर्ण घड़ी में बूढ़े नवाब को तीन वर्ष से कुछ अधिक पूर्व के उस दिन की अवश्य याद आई होगी, जब कि प्लासी के मैदान में, इन्हीं अङ्गरेज़ों के साथ गुप्त समझौता करके उस मसनद के लिए, जिसे कि अब उसका एक दूसरा सम्बन्धी उसी तरह के उपायों द्वारा उसके हाथों से छीन रहा था, उसने अपने स्वामी और आत्मीय सिराजुद्दौला के साथ विश्वासघात किया था। मीर जाफ़र अवश्य इस समय सोचता होगा कि 'जिस सत्ता को मैंने इतने नीच और कलङ्कित उपाय से प्राप्त किया था उससे मुझे क्या लाभ पहुँचा? मैंने सिराजुद्दौला से उसका महल छीना! उस महल में तीन वर्ष तक नवाबी की! किन्तु इन तीन वर्ष के अन्दर जो यातनाएँ मुझे सहनी पड़ीं उनके सामने मेरे जीवन के पहले ४८ वर्ष के समस्त कष्ट फीके हैं! वे लोग, जिनके हाथ मैंने अपना मुल्क बेचा था, आज मुझे डर दिखला रहे हैं!

यदि प्लासी में मैं अपने उस बालक-सम्बन्धी के साथ वफ़ादार रहा होता, जिसने अत्यन्त करुण शब्दों में मुझसे अपनी पगड़ी की लाज रखने की प्रार्थना की थी तो इस समय मेरी स्थिति क्या होती ? निस्सन्देह जो उद्धत विदेशी प्लासी से अब तक मुझ पर हुकुम चलाते रहे और जो अब मुझे मसनद से उतारने की धमकी दे रहे हैं, यदि प्लासी के मैदान में मैंने उनके नाश के मुख्य साधन बनने का यश प्राप्त कर लिया होता, तो इस समय मेरे हाथों में वास्तविक सत्ता होती, मेरा नाम इज़्ज़त से लिया जाता, और मेरा मुल्क बच गया होता ! किन्तु अब,—अपने महल की खिड़की से बाहर नज़र डालते ही मुझे लाल वरदी वाले अङ्गरेज़ सिपाही दिखाई देते हैं, जो मेरे ही विद्रोही रिश्तेदार के झण्डे के नीचे जमा हैं ! जो व्यवहार मैंने स्वयं सिराजुद्दौला के साथ किया, क्या मैं मीर क़ासिम से उससे अधिक दया की आशा कर सकता हूँ, इत्यादि । निस्सन्देह, अपने स्वामी और रिश्तेदार के साथ मीर जाफ़र ने जो व्यवहार किया था उस व्यवहार की स्मृति इस समय मीर जाफ़र की आँखों के सामने से फिर गई होगी, ××× ।"*

---

* "Well, indeed, on that eventful morning, might the thoughts of the oldman have carried him back to a period little more than three years distant, when, on the field of Plassy, he too, in secret compact with these same English, had betrayed his kinsman and master to obtain the seat which another kinsman was now by similar means wresting from him. What to him had been the power thus basely and dishonourably obtained? All the agonies of the preceding fifty-eight years of his life paled before those which he had suffered during the three years he had ruled as Nawab in the usurped palace of Sirajuddowlah. He

पहले एक बार मीर जाफ़र ने अङ्गरेज़ों का मुक़ाबला करने की धमकी दी। किन्तु तुरन्त ही उसने अपनी बेबसी को महसूस कर लिया। उसका साहस टूट गया। उसने अपने तईं मीर क़ासिम के हाथों में सौंपने से इनकार कर दिया। उसी दिन सवेरे मीर जाफ़र को मसनद से हटाकर कलकत्ते भेज दिया गया, और मीर क़ासिम को उसकी जगह सूबेदारी की मसनद पर बैठा दिया गया।

मीर जाफ़र की आयु उस समय ६० वर्ष की और मीर क़ासिम की आयु लगभग ४० वर्ष की थी।

२१ अक्तूबर को वन्सीटार्ट और केलो ने इस घटना को बयान

---

could not but contrast his position, threatened by the men to whom he had sold his country, with that which he would have occupied if, at Plassy, he had been loyal to the boy relative who had, in the most touching terms, implored him to defend his turban. With the prestige of having been the main factor in the destruction of the insolent foreigners who had since dictated to him, and who now threatened to dethrone him, he would have wielded a real power; his name would have been honoured; his country would have been secure But now:— a glance from the window of his palace showed him the red-coated English soldiers rallying round the standard of his kinsman in revolt against himself. Would Mir Kasim show him more mercy than he had shown to Sirajuddowlah? The recollection of the fate to which he had abandoned his kinsman and master must have passed through his mind . . ."—*The Decisive Battles of India*, by Colonel Malleson, pp. 131, 132.

करते हुए सिलेक्ट कमेटी के नाम एक पत्र लिखा, जिसका सार लगभग उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है—

"१५ अक्तूबर को नवाब मीर जाफ़र गवरनर वन्सीटार्ट से भेंट करने के लिए क़ासिमबाज़ार आया। अगले दिन वन्सीटार्ट और केलो नवाब से मिलने मुर्शिदाबाद गए। दोनों दिन मामूली बातचीत होती रही। १८ ता० को अङ्गरेज़ों की पुरानी शिकायतों और नई माँगों पर बातचीत करने के लिए नवाब फिर क़ासिमबाज़ार आया। ये सब शिकायतें और माँगें पहले से तीन पत्रों के अन्दर लेखबद्ध कर दी गई थीं। ये पत्र बातचीत के शुरू ही में वन्सीटार्ट ने मीर जाफ़र को दे दिए।

"मीर जाफ़र पत्रों को पढ़कर बहुत घबरा गया। उसने अपने महल वापस जाकर खाना खाने और सलाह करने के लिए समय चाहा। किन्तु अङ्गरेज़ों ने उस पर ज़ोर दिया कि आप यहाँ ही खाना मँगवाकर हाथ के हाथ तमाम मामले का फ़ैसला कर दें। अन्त में बूढ़ा मीर जाफ़र इस दर्जे थका हुआ मालूम हुआ कि अङ्गरेज़ों को मजबूर होकर उसे आराम करने और फिर विचार करने के लिए अपने महल लौटने की इजाज़त देनी पड़ी। अङ्गरेज़ों ने यह भी देख लिया कि बिना किसी प्रकार के बलप्रदर्शन के मीर जाफ़र राज्य की बाग मीर क़ासिम के हाथों में देने के लिए राज़ी न होगा। मीर जाफ़र के जाने के दो घण्टे बाद मीर क़ासिम वहाँ पहुँचा। मीर क़ासिम इस समय मीर जाफ़र के सामने जाने से डरता था। १९ ता० मीर जाफ़र को विचार करने के लिए दी गई; किन्तु उस दिन मीर जाफ़र की ओर से कोई उत्तर न मिल सका। फ़ौरन् वन्सीटार्ट और उसके साथियों ने बलप्रयोग का निश्चय किया। १९ की रात को महल के अन्दर किसी त्यौहार की तक़रीब में दावत थी। तमाम लोग थक

कर सोए हुए थे। अङ्गरेज़ों ने उस मौक़े को बहुत ग़नीमत समझा। चुपचाप रात को तीन बजे करनल केलो ने दो कम्पनी गोरों की और छै कम्पनी काले सिपाहियों की लेकर नदी को पार किया और पौ फटते फटते मीर क़ासिम और उसके कुछ आदमियों को साथ लेकर मीर जाफ़र को महल के अन्दर सोते हुए जा घेरा। सब काररवाई अच्छी तरह गुप्त रक्खी गई। चूँकि महल के अन्दर के सहन के फाटक बन्द थे इसलिए केलो ने बाहर के सहन में अपने सिपाहियों को खड़ा कर दिया। मीर जाफ़र के पास वन्सीटार्ट का एक पत्र भेजा गया। मीर जाफ़र पत्र पढ़कर पहले क्रोध से भर गया। उसने मुक़ाबले का इरादा ज़ाहिर किया। लगभग दो घण्टे तक सन्देश आते जाते रहे। किन्तु अन्त में अपनी बेबसी को पूरी तरह अनुभव कर मीर जाफ़र ने मीर क़ासिम को बुलवा भेजा और मसनद उसके सुपुर्द कर देने की रज़ामन्दी ज़ाहिर की।

"मीर क़ासिम ने शासन का सारा भार अपने ऊपर ले लिया और सेना की पिछली तनख़ाहों की बक़ाया अदा करने और सम्राट को बराबर ख़िराज भेजते रहने का वादा किया। इस प्रकार २० अक्तूबर को सवेरे मीर जाफ़र बङ्गाल की मसनद से अलग किया गया और उसकी जगह मीर क़ासिमअली ख़ाँ के नाम की नौबत बजने लगी।"*

अङ्गरेज़ द्विभाषिया लशिङ्गटन के अनुसार मीर जाफ़र ने अन्त में करनल केलो से जो कुछ कहा वह यह था—

"आप ही लोगों ने मुझे मसनद पर बैठाया था ; आप चाहें तो मुझे उतार सकते हैं। आप लोगों ने अपने वादों को तोड़ना मुनासिब समझा।

* *First Report 1772*, p. 231.

मैंने अपने वादे नहीं तोड़े। अगर मेरे दिल में भी इसी तरह की चालें होतीं और मैं चाहता तो बीस हज़ार फ़ौज जमा कर सकता था और आपसे लड़ सकता था। मेरे बेटे मीरन ने मुझे इन सब बातों के बारे में पहले ही से आगाह कर दिया था।"*

बङ्गाल की इस दूसरी राज्यक्रान्ति का यह समस्त वृत्तान्त उस क्रान्ति के कर्त्ता धर्ता अङ्गरेज़ों ही की ज़बानी दिया गया है।

मीर जाफ़र के साथ इस व्यवहार को जायज़ क़रार देने के लिए उस पर कुछ न कुछ इलज़ाम लगाना आवश्यक था। १० नवम्बर सन् १७६० को कलकत्ते में अङ्गरेज़ अफ़सरों की एक सभा हुई जिसमें कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम प्रसिद्ध जालसाज़ हॉलवेल का लिखा हुआ वह पत्र पढ़ा गया जिसका ज़िक्र ऊपर एक स्थान पर आ चुका है। उस पत्र में लिखा था—

"नवाब जाफ़रअली ख़ाँ निहायत ज़ालिम और लालची तबीयत का आदमी था, साथ ही बड़ा काहिल भी था, और उसके आस पास के आदमी या तो कमीने, ग़ुलाम और ख़ुशामदी थे अथवा उसकी नीच वृत्तियों की पूर्त्ति के साधक थे; हर श्रेणी के इस तरह के लोगों की बेहद मिसालें मौजूद हैं जिनका बिना किसी कारण उसने ख़ून कर डाला।"†

---

* Malcolm's *Life of Clive*, vol. ii, p. 268.

† "The Nawab Jaffir Ali Khan, was of a temper extremely tyrannical and avaricious, at the same time very indolent, and the people about him being either abject slaves and flatterers, or else the base instruments of his vices; . . . numberless are the instances of men, of all degrees, whose blood he has

इसके बाद इसी पत्र में पिता अथवा पति के नाम इत्यादि समेत बड़ी तफ़सील के साथ अनेक ऐसे पुरुषों और स्त्रियों की सूची दी हुई है, जिन्हें कहा गया कि मीर जाफ़र ने मार डाला। किन्तु १ अक्तूबर सन् १७६५ को मीर जाफ़र की मृत्यु के बाद क्लाइव और उसके साथियों ने डाइरेक्टरों के नाम एक दूसरा पत्र भेजा जिसमें लिखा है—

"XXX हम आपको सूचित कर देना अपना फ़र्ज़ समझते हैं कि मि० हॉलवेल ने XXX जिन भयङ्कर हत्याओं का इलज़ाम मीर जाफ़र पर लगाया है वे उस नरेश के चरित्र पर अन्यायपूर्ण कलङ्क हैं और उनमें ज़रा भी सच नहीं है। जिन पुरुष स्त्रियों की (हॉलवेल के उस पत्र में) सूची दी गई है और कहा गया है कि मीर जाफ़र ने उन्हें मरवा डाला, सिवाय दो के उनमें से सब इस समय ज़िन्दा हैं XXX।"*

न जाने इसी तरह के और कितने झूठ सिराजुद्दौला और मीर

---

spilt without the least assigned reason."—Holwell's Address to the proprietors of the East India Stock, p. 46.

* ". . . In Justice to the memory of the late Nawab Mir Jaffir, we think it incumbent on us to acquaint you, that the horrible massacres wherewith he is charged by Mr. Holwell, in his 'Address to the proprietors of East India Stock' (p. 46), are cruel aspersions on the Character of that prince, which have not the least foundation in truth. The several persons there affirmed and who have been generally thought to have been murdered by his order, are all now living, except two, . . . "—Letter addressed to the Hon'ble court of Directors by Clive and others 1st October 1765.

ज़ाफ़र दोनों के विरुद्ध इस समय तक प्रचलित हैं और इतिहास की पुस्तकों में दर्ज हैं।

मीर जाफ़र को मसनद से उतार कर कलकत्ते में नज़रबन्द रक्खा गया। दो हज़ार रुपए माहवार उसके ख़र्च के लिए नियत किए गए। कहते हैं कि इस पर बूढ़े मीर जाफ़र ने करबला जाने की इजाज़त चाही और उसके लिए ख़र्च की दरख़ास्त की, किन्तु उसे करबला जाने की इजाज़त भी न मिल सकी।

अङ्गरेज़ों को लाभ

अब केवल यह देखना बाक़ी है कि मीर जाफ़र के साथ इस विश्वासघात द्वारा अङ्गरेज़ों और अङ्गरेज़ कम्पनी को क्या क्या लाभ पहुँचा।

सब से पहले तीन ज़िले बर्धमान, मेदिनीपुर और चट्टग्राम जिनकी सालाना आमदनी तमाम बङ्गाल की आमदनी का एक तिहाई थी, सदा के लिए कम्पनी के हवाले कर दिए गए। इन तीनों ज़िलों के लिए मुर्शिदाबाद के दरबार से कम्पनी के नाम अलग अलग सनदें जारी कर दी गईं। बर्धमान के लिए जो सनद जारी की गई उसमें लिखा है कि वहाँ के ज़मींदार और काश्तकार दोनों पूर्ववत् क़ायम रहेंगे, केवल सरकारी मालगुज़ारी का जो रुपया अभी तक सूबेदार के कर्मचारी वसूल करके मुर्शिदाबाद भेजा करते थे, वह आयन्दा कम्पनी के नौकर वसूल करके कम्पनी के पास कलकत्ते भेजा करेंगे। और इस धन के ख़र्च से कम्पनी

साम्राज्य की रक्षा के लिए और जब आवश्यकता पड़े, सम्राट अथवा सूबेदार की सहायता के लिए पाँच सौ यूरोपियन सवार, दो हज़ार यूरोपियन पैदल और आठ हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाहियों की एक सेना रक्खेगी। इसी तरह की सनदें मेदिनीपुर और चट्टग्राम के लिए भी जारी की गईं।

इसके अलावा वन्सीटार्ट और केलो ने कलकत्ता कमेटी को लिखा कि इस क्रान्ति से—

"निस्सन्देह कम्पनी को बड़ा लाभ हुआ है। ××× पटने की फ़ौज को देने के लिए करनल के हाथ रुपए की रक़म भेजी जावेगी और हमें यह भी आशा है कि इसके अलावा कलकत्ते भेजने के लिए हमें तीन या चार लाख रुपए और मिल जावेंगे जिनसे कम्पनी की वहाँ की और मद्रास की इस समय की ज़रूरतें पूरी हो सकेंगी।"*

सिराजुद्दौला ने एक बार कम्पनी को अलग टकसाल क़ायम करने से रोक दिया था। बाद में कुछ शर्तों के साथ उसे इजाज़त देनी पड़ी। किन्तु इस पर भी सिराजुद्दौला के समय में कम्पनी की टकसाल बङ्गाल में क़ायम न हो सकी। इतिहास-लेखक ओर्मे

* "The advantages to the Company are great indeed . . . A Supply of money will be sent with the Colonel for the payment of the troops at Patna, and we have even some hopes of obtaining three or four lacks besides to send down to Calcutta, to help out the Company in their present occasion there and at Madras . . ."—Vansittart and Caillaud in their letter to the Select Committee at Fort William dated 21st October 1760.

लिखता है कि प्लासी के युद्ध के बाद कलकत्ते में कम्पनी की टकसाल क़ायम हुई और १९ अगस्त सन् १७५७ को कम्पनी के नाम के पहले रुपए ढाले गए। फिर भी तीन साल तक अङ्गरेज़ों को इस टकसाल से लाभ के स्थान पर हानि होती रही, क्योंकि बङ्गाल भर में मुर्शिदाबाद के सरकारी रुपयों के सामने कम्पनी के रुपयों को बिना बट्टे कहीं कोई न लेता था। अब अङ्गरेज़ों को इस असुविधा के दूर करने का मौक़ा मिला। २० अक्तूबर को गद्दी पर बैठते ही मीर क़ासिम ने कम्पनी के नाम एक परवाना जारी किया, जिसमें उसने उन्हें अपनी कलकत्ते की टकसाल में मुर्शिदाबाद की सरकारी अशर्फ़ियों और रुपयों के समान तोल और समान धातु की अशर्फ़ियाँ और रुपए ढालने की इजाज़त दी और इसके साथ साथ "एक निहायत कड़ा हुकुम जारी कर दिया कि कोई सर्राफ़ या सौदागर कलकत्ते के सिक्कों को लेने से इनकार न करे और न उन पर किसी तरह का बट्टा माँगे।"

निस्सन्देह नवाब और उसकी प्रजा के साथ यह एक बहुत बड़ा अन्याय था। इससे सरकारी आमदनी का एक बड़ा मद टूट गया और मुर्शिदाबाद दरबार की आर्थिक तथा राजनैतिक स्थिति को और भी अधिक धक्का पहुँचा। यह सब लाभ तो कम्पनी को हुआ। इसके अलावा वन्सीटार्ट और उसके साथियों को बीस लाख रुपए नक़द मीर क़ासिम से नज़राने में मिले।

अनेक इतिहास-लेखकों ने कड़े शब्दों में मीर जाफ़र के साथ

अङ्गरेज़ों के इस विश्वासघात की आलोचना की है। उदाहरण के लिए इतिहास-लेखक टॉरेन्स लिखता है—

"उन लोगों तक में, जिन्होंने यूरोपनिवासियों के दिखाने के लिए यूरोपवालों के एशियाई करतूतों पर मुलम्मा फेरने की ज़िम्मेवारी अपने ऊपर ले रक्खी है, इस अन्याय को प्रायः कोई भी क्षम्य नहीं कहता। मीर जाफ़र ××× और कम्पनी के बीच मित्रता की क़समें खाई जा चुकी थीं। और वह मित्रता ख़ून से पक्की की जा चुकी थी। और यदि कभी भी ईमानदारी का कम से कम ऊपरी रूप बनाए रखना शर्मवाले मनुष्य के लिए ज़रूरी था तो इस मामले में कलकत्ते के गवरनर और उसकी कौन्सिल को इतनी शर्म होनी चाहिए थी। किन्तु इस पर भी उस दो लाख पाउण्ड के बदले जो उन्हें व्यक्तिगत हैसियत से मिले और उन तीन ज़रख़ेज इलाक़ों के बदले जो कम्पनी को मिले इन लोगों ने अपने ऐसे मित्र और सहायक को बेच दिया जो इन पर हद से ज़्यादा विश्वास करता था।"*

"* The iniquity of this transaction finds few apologists even among those who have taken upon themselves to dress and to enamel Oriental deeds for European view. The treaty with Mir Jaffir still subsisted; . . . He was the sworn and blood-knit ally of the Company; and if ever men were bound by decency to maintain at least the forms of good faith, the Governor and Council of Calcutta were so bound. Yet, being so, for the sum of £s. 200,000 to them privately paid, and for the cession of three rich and populous provinces, they sold their too confiding friend and ally"—*Empire in Asia,* by W. M. Torrens M. P. p. 42.

चौथा अध्याय

मीर क़ासिम

बङ्गाल की अवस्था
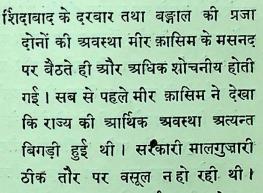
र्शिदाबाद के दरबार तथा बङ्गाल की प्रजा दोनों की अवस्था मीर क़ासिम के मसनद पर बैठते ही और अधिक शोचनीय होती गई। सब से पहले मीर क़ासिम ने देखा कि राज्य की आर्थिक अवस्था अत्यन्त बिगड़ी हुई थी। सरकारी मालगुज़ारी ठीक तौर पर वसूल न हो रही थी। ख़ज़ाना क़रीब क़रीब ख़ाली था। सालाना ख़र्च आमद से बढ़ गया था और फ़ौज की कई महीने की तनख़ाहें चढ़ी हुई थीं। इसके अतिरिक्त ठीक मीर जाफ़र के समान मीर क़ासिम ने अब महसूस किया कि जो बड़े बड़े वादे उसने अङ्गरेज़ों के साथ कर रक्खे थे उन्हें पूरा करना इतना आसान न था। इन वादों तथा अन्य नई नई माँगों को पूरा करने के लिए मीर क़ासिम ने अपने यहाँ के ज़मींदारों और रईसों को अङ्गरेज़ों ही के सिपाहियों

की मारफ़त बुला बुला कर ज़बरदस्ती उनसे रक़में वसूल करनी शुरू कीं। जब इससे भी काम न चल सका तो उसे जगतसेठ से क़र्ज़ लेना पड़ा और अन्त में अङ्गरेज़ों को रक़में देने के लिए रियासत के जवाहरात बेचकर और महल के सोने चाँदी के बरतन गलवा कर सिक्के ढलवाने पड़े।

कम्पनी की टकसाल कलकत्ते में क़ायम हो चुकी थी। तथापि बावजूद मीर क़ासिम की कड़ी आज्ञाओं के जगह जगह प्रजा ने कलकत्ते के सिक्कों को बिना बट्टे के लेने से इनकार किया। इस पर अङ्गरेज़ों ने उससे यह प्रार्थना की कि जो सिक्के हम कलकत्ते में ढालें उन पर भी हमें मुर्शिदाबाद का नाम और मुर्शिदाबाद ही की छाप रखने की इजाज़त दी जावे। मीर क़ासिम ने इस जाली कारवाई को तो मञ्ज़ूर न किया, किन्तु उसने अङ्गरेज़ों को सन्तुष्ट करने के लिए कलकत्ते के सिक्कों को लेने से इनकार करने वाले या उन पर बट्टा माँगने वाले ज़मींदारों और अन्य लोगों को कड़ी सज़ाएँ देना शुरू कर दिया। इन सख़्तियों के कारण अनेक ज़मींदार मीर क़ासिम से असन्तुष्ट हो गए, यहाँ तक कि कई जगह नए नवाब के विरुद्ध विद्रोह की तैयारियाँ होने लगीं।

कुछ वर्ष पहले कम्पनी का क़र्ज़ चुकाने के लिए मीर जाफ़र ने बर्धमान के इलाक़े की मालगुज़ारी कम्पनी के नाम कर दी थी। उस समय से ही बर्धमान का इलाक़ा अङ्गरेज़ों के इन्तज़ाम में आगया था और कम्पनी के सिपाहियों ने, जिनमें अधिकांश देशी सिपाही मद्रास से लाए गए थे, उस इलाक़े भर में लूट मार जारी

कर रक्खी थी। इन तिलङ्गे सिपाहियों के अत्याचारों की शिकायत करते हुए सितम्बर सन् १७६० में बर्धमान के ज़मींदार राजा तिलकचन्द ने कलकत्ते की अङ्गरेज़ कमेटी को लिखा—

"अनेक तिलङ्गों ने मण्डलघाट, मानकर, जहानाबाद, चितवर, बरसात, बलगुरी और चोमहन के परगनों तथा अन्य स्थानों में घुसकर वहाँ के बाशिन्दों को लूट लिया है और उनके साथ इस तरह के अत्याचार किए हैं जिनसे लोगों की जान तक ख़तरे में पड़ गई। इन अत्याचारों से मजबूर होकर वहाँ के बाशिन्दे भाग गए और उन मौज़ों में लगभग दो या तीन लाख रुपए का नुक़सान हुआ है।"*

तथापि इन तिलङ्गों की लूट मार जारी रही और राजा तिलकचन्द को कुछ समय बाद फिर लिखना पड़ा—

"तिलङ्गों के व्यवहार से रय्यत को ज़बरदस्त कष्ट हो रहा है और मजबूर होकर रय्यत अपने घर बार छोड़ छोड़ कर भाग रही है।"*

किन्तु कम्पनी ने इन शिकायतों की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। लिखा है कि बर्धमान के कई परगने इस समय वीरान पड़े हुए थे।

अब मीर क़ासिम ने यह तमाम इलाक़ा हमेशा के लिए कम्पनी को दे दिया और वहाँ के ज़मींदार को अङ्गरेज़ों के अधीन कर दिया। जब यह नया परवाना राजा तिलकचन्द के पास पहुँचा तो उसे दुख होना स्वाभाविक था। उसने गवरनर वन्सीटार्ट को

* Long's *Records* p. 236.

अपनी ज़मींदारी की शोचनीय अवस्था की फिर से सूचना दी और अपने यहाँ की मालगुज़ारी का सब हिसाब भेज दिया।

वन्सीटार्ट ने किसी तरह उसकी सहायता न की। और न कम्पनी के सिपाहियों के अत्याचार बन्द हुए। मजबूर होकर कहा जाता है राजा तिलकचन्द ने बीरभूम के राजा के साथ मिलकर अङ्गरेज़ों और मीर क़ासिम दोनों के विरुद्ध लड़ने के लिए सेना जमा करनी शुरू की। इस पर कलकत्ते की कौन्सिल ने "बर्धमान और मेदिनीपुर के इलाक़ों पर क़ब्ज़ा करने के उद्देश से कप्तान व्हाइट के अधीन कुछ सेना बर्धमान भेजी। राजा तिलकचन्द के एक पत्र से मालूम होता है कि इस सेना ने भी मार्ग भर में असहाय ग्राम-वासियों पर तरह तरह के ज़ुल्म किए, उन्हें ख़ूब लूटा और ख़ूब ख़ून बहाया।

२८ दिसम्बर सन् १७६० को कप्तान व्हाइट की सेना और बर्धमान के राजा की सेना में लड़ाई हुई, जिसमें राजा की सेना हार गई। अङ्गरेज़ी सेना का एक हिस्सा बीरभूम की राजधानी नागौर पर क़ब्ज़ा करने के लिए भेज दिया गया। वहाँ का राजा अपनी राजधानी छोड़कर पहाड़ों की ओर भाग गया और बर्धमान तथा नागौर दोनों पर कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया।

आए दिन के राज्य-परिवर्तन के कारण बङ्गाल के शासन की अवस्था अत्यन्त अस्ताव्यस्त हो रही थी। कम्पनी की व्यापार सम्बन्धी ज़बरदस्तियाँ बङ्गाल भर में ज़ोरों के साथ बढ़ रही थीं। अङ्गरेज़ों ने जो लगभग तीस हज़ार नई सेना मीर क़ासिम और

सम्राट की सहायता के लिए और साम्राज्य की रक्षा के लिए कहकर जमा कर रक्खी थी और जिसके ख़र्च के लिए मीर क़ासिम से तीन बड़े बड़े ज़िले लिए गए थे, वह सब अब सूबे भर में इन ज़बरदस्तियों को जारी रखने के लिए काम में लाई जा रही थी।

प्राचीन भारतीय नरेशों के अधीन राज्य की आमदनी का एक बहुत बड़ा ज़रिया तिजारती माल का महसूल था। विशेष कर मुग़ल सम्राटों के अधीन ईरान, अरब, मिश्र, इतालिया, स्पेन, पुर्तगाल, इङ्गलिस्तान, बर्मा, चीन, जापान इत्यादि अनेक बाहर के मुल्कों के साथ और स्वयं भारत के अन्दर तिजारत बेहद बढ़ी हुई थी, जिसमें हज़ारों भारतीय जहाज़ हर साल लगे रहते थे और हर व्यापारी को अपना माल एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने में सरकारी महसूल देना पड़ता था। केवल ईस्ट इण्डिया कम्पनी को मुग़ल सम्राट ने ख़ुश होकर यह महसूल माफ़ कर दिया था। इस माफ़ी का मतलब यह था कि कम्पनी जो माल विलायत से लाकर हिन्दोस्तान में बेचना चाहे या जो हिन्दोस्तान का बना माल ख़रीद कर विलायत ले जाना चाहे उस पर कोई महसूल न लिया जावे। शाही फ़रमान में कम्पनी के मुलाज़िमों अथवा अन्य अङ्गरेज़ों को निजी तौर पर बिना सरकारी महसूल दिए तिजारत करने की इजाज़त कहीं न थी, और न कम्पनी को ही देश के भीतर की मामूली तिजारत में बिना महसूल दिए हिस्सा लेने का अधिकार दिया गया था। इतना ही नहीं, बल्कि जैसा पिछले अध्याय में कहा जा चुका है, नमक, छालिया,

तम्बाकू, इमारती लकड़ी, सूखी मछली इत्यादि बहुत सी चीज़ों में आरम्भ से ही बङ्गाल भर के अन्दर यूरोप-निवासियों को तिजारत करने की सख़्त मनाही थी।

सब से पहले मीर जाफ़र के समय में अङ्गरेज़ों ने ज़बरदस्ती इस नियम को तोड़ा और नमक इत्यादि की तिजारत शुरू कर दी, जिसका ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। मीर जाफ़र ने बहुतेरा ऐतराज़ किया, किन्तु उसकी एक न चल सकी। अङ्गरेज़ों का यह तमाम व्यापार शाही फ़रमान से बाहर और उसके विरुद्ध था। किन्तु मालूम होता है कि कुछ दिनों तक अङ्गरेज़ व्यापारी अपनी इस नाजायज़ शख़्सी और मुल्क की भीतरी तिजारत पर महसूल उसी तरह अदा करते रहे, जिस तरह तमाम देशी व्यापारी करते थे।

अब मीर क़ासिम को नवाब बनाने के बाद कम्पनी के मुलाज़िम तथा अन्य अङ्गरेज़ कम्पनी का पास (दस्तक) लेकर बिना किसी तरह का महसूल दिए देश भर में हर चीज़ का व्यापार करने लगे। और जब नवाब के कर्मचारी ऐतराज़ करते थे वा महसूल माँगते थे तो उन्हें कम्पनी के नए सिपाहियों के द्वारा दुरुस्त कर दिया जाता था। इतिहास-लेखक मिल लिखता है—

"इस प्रकार कम्पनी के मुलाज़िमों का माल बिलकुल बिना महसूल सब जगह आता जाता था, जब कि शेष सब व्यापारियों को अपने माल पर भारी महसूल देना पड़ता था। परिणाम यह हुआ कि देश का समस्त व्यापार तेज़ी के साथ कम्पनी के मुलाज़िमों के हाथों में आने लगा और राज्य की आमदनी का एक स्रोत बिलकुल सूखने लगा। जब महसूल जमा करने

वाला कोई सरकारी कर्मचारी कम्पनी के दस्तक के इस दुरुपयोग पर ऐतराज़ करता और माल को रोकता था तो उसे गिरफ़्तार करके पास की अङ्गरेज़ी कोठी में पहुँचा देने के लिए सिपाहियों का एक दस्ता भेज दिया जाता था।"*

अङ्गरेज़ों की इस शख़सी तिजारत के साथ जो जो अत्याचार और ज़बरदस्तियाँ होती थीं उनकी गवाही अनेक अङ्गरेज़ लेखकों के बयानों से मिलती है। जहाँ जहाँ कोई अङ्गरेज़ बैठकर इस तरह व्यापार करता था वहाँ वहाँ ही अङ्गरेज़ी झण्डा और कम्पनी के कुछ सिपाही उसके साथ रहते थे। वारन हेस्टिंग्स २५ अप्रेल सन् १७६२ के एक पत्र में लिखता है—

"जिन जिन जगहों में मैं गया हूँ वहाँ वहाँ अनेक अङ्गरेज़ी झण्डे लहराते हुए देखकर मैं चकित रह गया हूँ××× चाहे किसी भी अधिकार से ऐसा क्यों न कर लिया गया हो, मुझे विश्वास है कि जगह जगह इन झण्डों की मौजूदगी से नवाब की आमदनी, देश की शान्ति अथवा हमारी क़ौम की इज़्ज़त तीनों में से किसी को भी लाभ नहीं पहुँच

---

* "The Company's servants, whose goods were thus conveyed entirely free from duty, while those of all other merchants were heavily burdened, were rapidly getting into their own hands the whole trade of the country, and thus drying up one of the sources of the public revenue. When the Collectors of these tolls, or transit duties, questioned the power of the Dustuck, and stopped the goods, it was customary to send a party of Sepoys to seize the offender and carry him prisoner to the nearest factory."—Mill's *History of India,* vol. iii, pp. 229, 230.

सकता ।×××मार्ग में हमारे सिपाहियों के व्यवहार के ख़िलाफ़ मुझसे अनेक शिकायतें की गईं । हम लोगों के पहुँचते ही लोग अधिकांश छोटे क़स्बों और सरायों को ख़ाली छोड़कर भाग जाते थे और दुकानों को बन्द कर देते थे, क्योंकि उन्हें हमसे भी उसी तरह के व्यवहार का भय था ।"*

वेरेल्स्ट नामक अङ्गरेज़ इस सम्बन्ध में हमें एक और नई बात बताता है । वह लिखता है—

"उन दिनों बहुत से हिन्दोस्तानी व्यापारी अपनी सुविधा के लिए कम्पनी के किसी नौजवान मुहर्रिर को धन देकर उसका नाम ख़रीद लेते थे और उसके नाम के 'दस्तक' के ज़रिए देश के लोगों को तङ्ग करते थे और उन पर अन्याय करते थे । इस ज़रिए से इतनी ज़्यादा आमदनी होने लगी कि कई नौजवान (अङ्गरेज़) मुहर्रिर १५ हज़ार और २० हज़ार रुपए साल ख़र्च कर सकते थे, नफ़ीस कपड़े पहनते थे और रोज़ अच्छे से अच्छा खाना उड़ाते थे ।"

---

* "I have been surprised to meet with several English flags flying in places which I have passed; . . . By whatever title they have been assumed, I am sure their frequency can bode no good to the Navab's revenues, the quiet of the country, or the honor of our nation . . Many complaints against them (Sepoys) were made me on the road; and most of the petty towns and serais were deserted at our approach and the shops shut up from the apprehensions of the same treatment from us."
—Warren Hastings in a letter to the President, dated Bhagalpur 25th April, 1762.

वह आगे चलकर लिखता है—

"बिना महसूल दिए तिजारत की जाती थी और उसके जारी रखने में अनन्त अन्याय किए जाते थे।×××इसी बात के कारण मीर क़ासिम के साथ लड़ाई हुई।"*

कम्पनी के डाइरेक्टरों तक ने ८ फ़रवरी सन् १७६४ के एक पत्र में "कम्पनी के नौकरों, गुमाश्तों, एजण्टों और दूसरों की इस निजी तिजारत" को "नाजायज़" "दस्तक का लज्जाजनक दुरुपयोग", "हर तरह से अनधिकार युक्त", और नवाब तथा उसकी "क़ुदरती प्रजा" दोनों के साथ "डबल अन्याय" स्वीकार किया है। किन्तु डाइरेक्टरों के इस पत्र के बाद भी इस अन्याय में कोई अन्तर न पड़ा।

उन सिपाहियों के ज़रिए, जो नवाब के धन से नियुक्त किए गए थे, नवाब ही की प्रजा के ऊपर जिस जिस तरह के अत्याचार

* "At this time many black merchants found it expedient to purchase the name of any young writer, in the Company's Service, by loans of money, and under this sanction harassed and oppressed the natives. So plentiful a supply was derived from this source that many young writers were enabled to spend £s, 1,500 and £s. 2,000 per annum, were clothed in fine linen, and fared sumptuously every day."

* * * *

A trade was carried on without payment of duties, in the prosecution of which infinite oppressions were committed.. . . This was the immediate cause of the war with Mir Cassim."
—Verelst's *View of Bengal*, pp. 8 and 46.

किए जाते थे उनका कुछ अनुमान मीर क़ासिम के नाम वाकरगञ्ज के एक राजकर्मचारी के २५ मई सन् १७६२ के नीचे लिखे पत्र से किया जा सकता है। वह लिखता है—

"XXX यह जगह पहले बड़ी तिजारत की जगह थी, किन्तु अब नीचे लिखी कारवाइयों की वजह से बरबाद हो गई। एक अङ्गरेज़ माल ख़रीदने या बेचने के लिए यहाँ किसी गुमाश्ते को भेजता है। फ़ौरन् वह गुमाश्ता यह फ़र्ज़ कर लेता है कि यहाँ के किसी भी बाशिन्दे के हाथ ज़बरदस्ती अपना माल बेचने या उसका माल ज़बरदस्ती ख़रीदने का मुझे पूरा अधिकार है, और यदि वह बाशिन्दा ख़रीदने या बेचने की सामर्थ्य न रखता हो और इनकार करे तो फ़ौरन् या तो उस पर कोड़े बरसाए जाते हैं और या उसे क़ैद कर लिया जाता है। यदि वह राज़ी हो जावे तब भी केवल इतना ही काफ़ी नहीं समझा जाता, बल्कि एक दूसरी ज़बरदस्ती यह की जाती है कि अनेक चीज़ों के व्यापार का ठेका अपने ही हाथों में ले लिया जाता है, अर्थात् जिन जिन चीज़ों का व्यापार अङ्गरेज़ करते हैं उनका व्यापार किसी दूसरे को नहीं करने दिया जाता और न किसी दूसरे के पास से किसी को ख़रीदने दिया जाता है। XXX और फिर अङ्गरेज़ समझते हैं कि कम से कम जो हम कर सकते हैं वह यह है कि दूसरा सौदागर जिस दाम पर कोई चीज़ ख़रीदता है, हम उसी चीज़ को उससे बहुत कम दाम पर ख़रीदें। अकसर ये लोग दाम देने ही से इनकार कर देते हैं, और मैं दख़ल देता हूँ तो फ़ौरन् मेरी शिकायत होती है।"*

१८ वीं सदी के उत्तरार्ध में बङ्गाल भर के अन्दर इस ज़बरदस्त

* Vansittart's *Narrative*, vol. ii. p. 112.

और व्यापक अत्याचार के विषय में अब हम इङ्गलिस्तान के प्रसिद्ध नीतिज्ञ और वक्ता एडमण्ड बर्क के कुछ वाक्य उद्धृत करते हैं। बर्क ने इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने कहा था—

"तिजारत जो संसार के हर दूसरे देश को धनवान बनाती है, बङ्गाल को सर्वनाश की ओर ले जा रही थी। पहले समय में, जब कि कम्पनी को देश में किसी तरह की राज्य-सत्ता प्राप्त न थी, उन्हें अपने दस्तक या पास के ऊपर बड़े बड़े अधिकार मिले हुए थे; उनका माल बिना महसूल दिए देशभर में आ जा सकता था। (धीरे धीरे) कम्पनी के नौकर अपनी अपनी शख़्सी तिजारत के लिए इस पास का उपयोग करने लगे। यह मामला जब तक कि थोड़ा थोड़ा होता रहा, देश की सरकार ने कुछ हद तक इसे गवारा कर लिया; किन्तु जब सभी लोग इस तरह की तिजारत करने लगे तब तिजारत की अपेक्षा उसे डकैती कहना ज़्यादा ठीक मालूम होता था।

"ये व्यापारी हर जगह पहुँचते थे, अपने ही दामों पर माल बेचते थे, और दूसरे लोगों को भी ज़बरदस्ती मजबूर करके उनका माल अपने ही दामों पर ख़रीदते थे। बिलकुल यह मालूम होता था कि तिजारत के बहाने एक फ़ौज लोगों को लूटने जा रही है। लोग अपनी देशी अदालतों से रक्षा की आशा करते थे, किन्तु व्यर्थ। अङ्गरेज़ व्यापारियों की यह सेना अपने कूच में तातारी आक्रमकों से बढ़कर लूट मार और बरबादी करती थी। XXX इस प्रकार यह अभागा देश दोहरे अन्याय की भयङ्कर लूट द्वारा टुकड़े टुकड़े किया जा रहा था।"*

---

* "Commerce, which enriches every other country in the world, was bringing Bengal to total ruin. The Company, in former times, when it had no sovereignty or power in the country,

सन्देह होने लगता है कि उन दिनों बङ्गाल में किसका शासन था। वास्तव में शासन न मुग़ल सम्राट का था, न मुर्शिदाबाद के सूबेदार का ; शासन था विदेशियों की कूट-नीति, अराजकता और इस देश के दुर्भाग्य का, और यह सब परिणाम था थोड़े से भारतवासियों की लज्जाजनक देशघातकता का। हम ऊपर कह चुके हैं कि बर्धवान, मेदिनीपुर और चट्टग्राम की आमदनी से वे सब फ़ौजें रक्खी गई थीं, जिनके द्वारा बङ्गाल भर में यह भयङ्कर नादिरशाही चलाई जा रही थी। सच यह है कि इसे नादिरशाही कहना भी नादिरशाह के साथ अन्याय करना है। नादिरशाह यदि ग़ैर मुल्क में पहुँचकर अपने सिपाहियों की शान क़ायम रखने के लिए चन्द घड़ी के लिए क़त्लआम का हुकुम दे सकता था

---

had large privileges under their Dustuck or permit; their goods passed without paying duties through the country. The servants of the Company made use of this dustuck for their own private trade, which, while it was used with moderation, the native Government winked at in some degree ; but when it got wholly into private hands, it was more like robbery than trade. These traders appeared every where; they sold at their own prices, and forced the people to sell to them at their own prices also. It appeared more like an army going to pillage the people, under pretence of commerce, than anything else. In vain the people claimed the protection of their own Country Courts. This English army of traders, in their march, ravaged worse than a Tartarian Conqueror. . . . Thus this miserable country was torn to pieces by the horrible rapaciousness of a double tyranny."—Burke in his impeachment of Warren Hastings.

तो वह अपनी एक आवाज़ पर अमन क़ायम करना भी जानता था और क्षमा और उदारता की शक्ति भी उसमें अपार थी। वास्तव में अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में बङ्गाल के अन्दर अङ्गरेज़ों के अत्याचारों की तुलना संसार के इतिहास के किसी दूसरे पन्ने पर मिलना कठिन है।

बङ्गाल और बिहार भर में इस समय कम्पनी की कोठियाँ फैली हुई थीं। नमक से लेकर इमारती लकड़ी तक अनेक चीज़ों का समस्त व्यापार अङ्गरेज़ों के हाथों में आ गया था। किसानों की खड़ी खेती कम्पनी के अङ्गरेज़ नौकर जिस भाव चाहे ख़रीद लेते थे। देश के हज़ारों लाखों व्यापारियों की रोज़ी छिन चुकी थी और किसानों की हालत इससे भी अधिक करुणाजनक थी। कम्पनी के गुमाश्तों और एजण्टों के नवाब के मुलाज़िमों के साथ रोज़ाना जगह जगह झगड़े होते रहते थे। कम्पनी के गुमाश्ते अनेक झूठी सच्ची शिकायतें रोज़ाना कलकत्ते भेजते रहते थे और वहाँ से वही फ़ौजी सिपाही नवाब के मुलाज़िमों अथवा स्वाभिमानी प्रजा को दुरुस्त करने के लिए जगह जगह भेज दिए जाते थे। नवाब की सरकारी चौकियों में बङ्गाल भर के अन्दर कहीं पर एक पाई महसूल की वसूल न होती थी। मीर क़ासिम ने पत्रों द्वारा अनेक बार ही अत्यन्त करुणाजनक शब्दों में गवरनर वन्सीटार्ट से इन तमाम बातों की शिकायत की, किन्तु इन शिकायतों और मीर क़ासिम के प्रयत्नों का ज़िक्र और आगे चलकर किया जावेगा।

पानीपत की तीसरी लड़ाई

इस सब अपमान से बङ्गाल की वास्तविक रक्षा करने और देश को भावी आपत्तियों से बचाने का केवल एक ही तरीक़ा हो सकता था। देश में उस समय केवल एक ही शक्ति थी, जिसके झण्डे के नीचे शेष समस्त शक्तियों का मिलना सम्भव हो सकता था। वह शक्ति दिल्ली के मुग़ल सम्राट की रही सही शक्ति थी। उपाय केवल यह था कि विदेशियों के मुक़ाबले के लिए दिल्ली सम्राट के झण्डे के नीचे देश की समस्त हिन्दू तथा मुसलमान राज-शक्तियों को एकत्रित किया जावे और उनके सम्मिलित प्रयत्नों द्वारा विदेशियों को बङ्गाल तथा भारत से निकाल कर बाहर कर दिया जावे।

यह एक आश्चर्य की बात है कि यह उपाय उस समय उसी राजा नन्दकुमार को सूझा जिसने सन् १७५७ में अमींचन्द के धन के लोभ में आकर अपने स्वामी सिराजुद्दौला, भारतीय प्रजा तथा फ़ान्सीसी तीनों के साथ विश्वासघात किया था। मालूम होता है कि नन्दकुमार अब अपने देश को अङ्गरेज़ों के हाथों बिकते हुए और प्रजा के ऊपर उनके अन्यायों को देखकर अपनी ग़लती पर पछता रहा था। राजा नन्दकुमार ने जी तोड़ प्रयत्न शुरू किए। सम्राट शाह आलम अभी तक बिहार में था। सम्राट तथा मराठों से उसने पत्र व्यवहार शुरू किया। उसके प्रयत्नों द्वारा मराठों ने मीर क़ासिम और अङ्गरेज़ दोनों के विरुद्ध सम्राट की ओर से बङ्गाल पर हमला करने का वादा किया। बर्धमान, बीरभूम तथा

अन्य अनेक स्थानों के राजा और ज़मींदार इस कार्य के लिए सम्राट के झण्डे के नीचे आ आकर जमा होने लगे।

ये सब प्रयत्न अभी चल ही रहे थे, इतने में एक ऐसी घटना हुई जिसका भारत के अन्दर ब्रिटिश राज्य के क़ायम होने पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा, किन्तु जिसके इस महत्त्वपूर्ण प्रभाव पर भारतीय इतिहास-लेखकों ने अभी तक उचित ध्यान नहीं दिया। यह घटना ६ जनवरी सन् १७६१ ई० की पानीपत की तीसरी लड़ाई थी।

भारत का राजशासन उस समय खासी बिगड़ी हुई अवस्था में था। औरङ्गज़ेब की सङ्कीर्ण नीति और उसके अविश्वासी स्वभाव तथा बाद के दिल्ली के सम्राटों की विलास-प्रियता और अयोग्यता ने मुग़ल साम्राज्य को अङ्ग-भङ्ग और खोखला कर दिया था। अनेक छोटे बड़े नरेशों के अलावा अवध के नवाब और दक्षिण के निज़ाम अपने अपने सूबों के स्वतन्त्र शासक बन बैठे थे। बङ्गाल अभी तक नाम मात्र को दिल्ली के अधीन था। किन्तु कई वर्ष से बङ्गाल से भी दिल्ली ख़िराज जाना बन्द हो गया था, जिसके कारण शाह आलम दूसरे को बिहार पर चढ़ाई करनी पड़ी थी। स्वयं राजधानी के निकट भरतपुर के जाट राजा और रामपुर के रुहेला नवाब दोनों अपने अपने स्वतन्त्र राज्य क़ायम कर रहे थे। मराठों की शक्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। दिल्ली के सम्राट अभी तक भारत के सम्राट कहलाते थे, किन्तु बहुत दर्जे तक केवल नाम के लिए। पश्चिम में सिन्ध और पञ्जाब के

सूबे अफ़ग़ानिस्तान के शासक अहमदशाह अब्दाली के अधीन हो चुके थे और पूरब में बङ्गाल और बिहार दोनों के अन्दर अङ्गरेज़ों की साज़िश सफल हो रही थीं।

वास्तव में भारत के क्रियात्मक प्रभुत्व के लिए उस समय अफ़ग़ानों, मराठों और अङ्गरेज़ों के बीच एक प्रकार का त्रिकोणिया संग्राम जारी था, जिसमें अफ़ग़ान और मराठे अपने युद्ध-बल पर तथा अङ्गरेज़ अपनी कूटनीति के बल सफलता की आशाएँ कर रहे थे। उस समय देश को इस विपज्जाल से निकालने का केवल एक ही उपाय हो सकता था। वही उपाय राजा नन्दकुमार को सूझा, और ज़ाहिर है कि दिल्ली और पूना के कुछ नीतिज्ञ भी नन्दकुमार के इस विचार से पूरी सहानुभूति रखते थे।

सम्राट आलमगीर दूसरे के समय में वज़ीर ग़ाज़ीउद्दीन ने मराठों को सम्राट की सहायता के लिए दिल्ली बुलवाया। उस समय के पेशवा ने अपने भाई रघुनाथ राव (राघोबा) को सम्राट के आज्ञापालन के लिए एक बड़ी सेना सहित दिल्ली भेजा। सम्राट तथा पेशवा के बीच प्रेम का सम्बन्ध क़ायम हो गया। रघुनाथ राव ने अपनी सेना सहित और आगे बढ़कर अहमदशाह अब्दाली के नायब के हाथों से पञ्जाब विजय कर लिया और एक मराठा सरदार को दिल्ली सम्राट के अधीन वहाँ का सूबेदार नियुक्त कर दिया। राघोबा दक्षिण लौट आया। मराठों की शक्ति इस समय शिखर पर पहुँची हुई थी। किन्तु इस अन्तिम घटना ने उनके विरुद्ध अहमदशाह अब्दाली का क्रोध भड़का दिया, और सन् १७५९

ई० में एक ज़बरदस्त सेना लेकर वह पञ्जाब पर अपना राज्य फिर से क़ायम करने और मराठों का विध्वन्स करने के लिए अफ़ग़ानिस्तान से निकल पड़ा।

सदाशिव भाऊ २० हज़ार सवार, १० हज़ार पैदल और तोपख़ाना लेकर अहमदशाह के मुक़ाबले के लिए पूना से रवाना हुआ। पेशवा का पुत्र विश्वासराव भी सदाशिव के साथ था। मार्ग में होलकर और सींधिया की सेनाएँ सदाशिव से आ मिलीं। राजपूत राजाओं ने सहायता के लिए अपने अपने सवार भेजे। भरतपुर का जाट राजा ३०,००० सेना लेकर स्वयं सदाशिव से आ मिला। साम्राज्य की राजधानी दिल्ली में सदाशिव का ख़ूब स्वागत हुआ। अवध का नवाब शुजाउद्दौला अपनी तथा सम्राट की सेना सहित सदाशिव की मदद के लिए तैयार हो गया। एक बार मालूम होता था कि भारत के समस्त हिन्दू तथा मुसलमान विदेशियों से अपने देश की रक्षा करने के लिए कमर कसके मैदान में उतर आए।

किन्तु सदाशिव भाऊ उस ऐन परीक्षा के समय सच्चा नीतिज्ञ साबित न हो सका। गर्व ने उसकी दूरदर्शिता पर परदा डाल दिया। मार्ग में ही उसने कई मराठा सरदारों को अपने अनुचित व्यवहार से नाराज़ कर लिया। राजा भरतपुर को भी वह सन्तुष्ट न रख सका। दिल्ली के अन्दर उसका बर्त्ताव और भी घृणित रहा। क़िले में घुसते ही बहुत सा शाही सामान उसने अपने क़ब्ज़े में कर लिया। दीवान ख़ास की सुन्दर क़ीमती चाँदी की छत को उखड़वाकर और गलवाकर उसने उससे १७ लाख रुपए ढलवा लिए।

यह भी कहा जाता है कि वह इस समय विश्वासराव को दिल्ली के तख़्त पर बैठाना चाहता था। सदाशिव भाऊ की इस सङ्कीर्ण तथा घातक नीति का परिणाम यह हुआ कि उसके मुसलमान मित्रों के दिल उसकी ओर से फिर गए। अवध का नवाब-वज़ीर उसकी ओर से सशङ्क होगया और जिस उत्साह के साथ वह आक्रमक अहमदशाह के विरुद्ध मराठों की सहायता करना चाहता था, न कर सका।

छै जनवरी सन् १७६१ को पानीपत के ऐतिहासिक मैदान में एक अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ, जिसमें दोनों ओर के हताहतों की संख्या लाखों तक पहुँच गई। ऐन मौक़े पर सदाशिव के व्यवहार से बेज़ार होकर भरतपुर का राजा अपनी सेना सहित मैदान से हट गया। होलकर तटस्थ रहा। सदाशिव और विश्वासराव दोनों मैदान में काम आए। विजय अहमदशाह की ओर रही। नवाब शुजाउद्दौला ने मजबूर होकर विजयी अहमदशाह के साथ मेल कर लिया। किन्तु अहमदशाह को भी अपनी इस विजय की बहुत ज़बरदस्त क़ीमत देनी पड़ी। उसके इतने अधिक आदमी लड़ाई में काम आए और घायल हुए कि आगे बढ़ने का इरादा छोड़कर उसे फ़ौरन् अफ़ग़ानिस्तान लौट जाना पड़ा। लौटने से पूर्व उसने शाहआलम दूसरे को भारत का सम्राट स्वीकार किया और ग़ाज़ीदीन को हटाकर उसकी जगह नवाब शुजाउद्दौला को दिल्ली की सल्तनत का वज़ीर क़रार दिया। निस्सन्देह सदाशिव राव की सङ्कीर्णता और अदूरदर्शिता के कारण पानीपत के मैदान में मराठों

की बढ़ती हुई शक्ति चकनाचूर हो गई और उसके साथ ही साथ दिल्ली के साम्राज्य तथा भारत की राष्ट्रीय स्वाधीनता दोनों की आशाएँ कुछ समय के लिए ख़ाक में मिल गईं।

प्रोफ़ेसर सिडनी ओवन ने सच कहा है—

"कहा जा सकता है कि पानीपत की लड़ाई के साथ साथ भारतीय इतिहास का भारतीय युग समाप्त हो गया। इसके बाद से इतिहास के पढ़ने वाले को दूरवर्ती पश्चिम से आए हुए व्यापारी शासकों की उन्नति से ही सरोकार रह जाता है।"*

निस्सन्देह जिस त्रिकोनिया संग्राम का हम ऊपर ज़िक्र कर चुके हैं, उसकी तीन शक्तियों में से अफ़ग़ानों को अब और आगे बढ़कर दिल्ली सम्राट के निर्बल हाथों से भारतीय साम्राज्य की बाग छीनने का साहस न हो सकता था। मराठों की कमर टूट चुकी थी और वे अङ्गरेज़ों के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए अब बङ्गाल तक पहुँचने के नाक़ाबिल थे। इस प्रकार नन्दकुमार और उसके साथियों की आशाओं पर पानीपत ने पानी फेर दिया।

एक अङ्गरेज़ लेखक साफ़ लिखता है—

"पानीपत की लड़ाई से मराठा सङ्घ को जो थोड़ी देर के लिए धक्का पहुँचा उसके कारण मराठे बङ्गाल पर हमला करने से रुक गए। इस हमले

---

* "With the battle of Panipat, the native period of Indian History may be said to end. Henceforth the interest gathers round the progress of the Merchant Princes from the far west." —*India on the Eve of the British Conquest*, by Professor Sydney Owen.

में शायद शुजाउद्दौला और शाह आलम मराठों के साथ मिल जाते और सम्भव है कि ये लोग अङ्गरेज़ कम्पनी की उस सत्ता को, जो अभी उस समय तक कमज़ोर थी और अनेक कठिनाइयों से घिरी हुई थी सफलता-पूर्वक उखाड़कर फेंक देते।"*

इसके बाद केवल अङ्गरेज़ बाक़ी रह गए और विविध सूबों के निर्बल तथा अदूरदर्शी शासकों को एक दूसरे से तोड़ फोड़कर अपने लिए अनन्य राजनैतिक प्रभुत्त्व का मार्ग बना लेना अब उनके लिए काफ़ी सरल हो गया।

शाहआलम और अङ्गरेज़

अब हम इस प्रसङ्ग से हट कर फिर अपने असली वृत्तान्त की ओर आते हैं। सम्राट शाहआलम दूसरा अभी तक बिहार प्रान्त में था। सितम्बर सन् १७६० ही में अङ्गरेज़ शाहआलम को अपनी ओर करने का निश्चय कर चुके थे। इस समय बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के अनेक ज़मींदार जो नई क्रान्ति के विरुद्ध थे, सम्राट के झण्डे के नीचे जमा हो रहे थे। अङ्गरेज़ों ने अब जिस तरह हो बिहार पहुँचकर सम्राट से मामला तय कर लेना ज़रूरी समझा। करनल केलो की जगह अब मेजर कारनक बङ्गाल की सेनाओं का प्रधान सेनापति था। जनवरी सन् १७६१ में कारनक पटने पहुँचा कम्पनी की सेना के अलावा रामनारायण की सेना और मुर्शिदाबाद की सेनाएँ भी इस समय कारनक के साथ थीं। गया मौनपुर

---

* H G. Keene's *Maahava Rao Scindhia*, p. 46.

के निकट सम्राट की सेना और इन सेनाओं का आमना सामना हुआ। अन्त में समझौते की बातचीत होने लगी।

सम्राट शाहआलम कारनक को साथ लेकर पटना आया। मीर क़ासिम पटने में मौजूद था। मीर क़ासिम ने हाज़िर होकर पिछले ख़िराज के बदले में एक बहुत बड़ी नक़द रक़म सम्राट की भेंट की और अपने यहाँ की सरकारी टकसाल में शाहआलम दूसरे के नाम के सिक्के ढलवाने का वादा किया। यही वादा कलकत्ते की टकसाल के बारे में अङ्गरेज़ों ने किया। मीर क़ासिम ने तीनों प्रान्तों की आमदनी में से २४ लाख रुपए प्रतिवर्ष दिल्ली सम्राट की सेवा में भेजने का वचन दिया। समाट शाहआलम ने मार्च सन् १७६१ में तीनों प्रान्तों की सूबेदारी का परवाना बाज़ाब्ता मीर क़ासिम के नाम जारी कर दिया। अङ्गरेज़ों का मुख्य उद्देश पूरा हो गया। उन्होंने इस अवसर पर एक कोशिश यह भी की कि जिस प्रकार मीर क़ासिम को शाही परवाना अता हुआ, उसी प्रकार जो इलाक़े अङ्गरेज़ कम्पनी के पास थे उनके लिए कम्पनी को अलग सूबेदारी का परवाना मिल जावे; किन्तु शाहआलम ने इसे स्वीकार न किया। एक और प्रार्थना इस समय अङ्गरेज़ों ने शाहआलम से यह की कि सूबेदार मीर क़ासिम को रहने दिया जावे, किन्तु तीनों प्रान्तों की दीवानी के अधिकार उससे लेकर कम्पनी को अता हो जावें। दीवानी का मतलब यह था कि सूबेदार के मातहत तीनों प्रान्तों से सरकारी मालगुज़ारी वसूल करके उसका हिसाब सम्राट और सूबेदार दोनों को दे देना और वसूली का ख़र्च निकालकर शेष

सब धन सूबेदार के सुपुर्द कर देना कम्पनी का काम रहे; और उस धन से सरकारी फ़ौजें रखना, अपने प्रान्तों के शासन का शेष समस्त कार्य चलाना और सम्राट को सालाना ख़िराज भेजना सूबेदार का काम रह जाय।

शाहआलम स्वभावतः इस समय दिल्ली लौटने के लिए उत्सुक था। राजधानी के अन्दर सिंहासन के लिए किसी दूसरे हक़दार के खड़े हो जाने की भी सम्भावना थी। सम्राट ने चाहा कि अङ्गरेज़ अपनी सेना सहित मेरे साथ दिल्ली चलें। इसके बदले में वह कम्पनी को तीनों प्रान्तों का दीवान बना देने के लिए भी तैयार था। किन्तु अङ्गरेज़ों के पास उस समय इस कार्य के लिए काफ़ी फ़ौज न थी। स्वयं बङ्गाल के अन्दर वे अपने अनेक शत्रु पैदा कर चुके थे। इसलिए वे सम्राट की इस इच्छा से उस समय लाभ न उठा सके, और जून सन् १७६१ में सम्राट शाहआलम पटने से दिल्ली की ओर लौट गया।

राजा रामनारायण से विश्वासघात

अब अङ्गरेज़ों को मराठों का डर न था। शाहआलम से किसी प्रकार निपटारा हो गया। बङ्गाल का मैदान फिर कम्पनी के मुलाज़िमों की लूट और ज़बरदस्तियों के लिए ख़ाली हो गया। इस बार उनका पहला वार राजा रामनारायण पर हुआ। अङ्गरेज़ों ही के बयान के अनुसार रामनारायण एक अत्यन्त योग्य शासक था। वह अत्यन्त धनवान भी मशहूर था और आरम्भ से अङ्गरेज़ों का

"पक्का हितसाधक" रह चुका था। किन्तु अब मीर क़ासिम और अङ्गरेज़ दोनों को रुपए की ज़रूरत थी। अपनी सेना के बल लोगों को पकड़ पकड़ कर मीर क़ासिम के सामने पेश करना और उनसे रक़में वसूल करना अङ्गरेज़ों का इस समय एक ख़ास पेशा था। यह इलज़ाम लगाकर कि रामनारायण के ज़िम्मे सूबेदार की बक़ाया निकलती है, गवरनर वन्सीटार्ट ने रामनारायण को छल द्वारा गिरफ़्तार कर मीर क़ासिम के हवाले कर दिया। इसके कुछ ही समय पहले वन्सीटार्ट ने कारनक को लिखा था कि तुम्हें नवाब के हर तरह के अन्यायों से रामनारायण की रक्षा करनी चाहिए। कारनक ने सन् १७७२ में पार्लिमेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा था कि राजा रामनारायण पर बक़ाया का इलज़ाम "बे-बुनियाद" था। निस्सन्देह वन्सीटार्ट और उसके साथियों का यह कार्य सर्वथा निस्स्वार्थ न था। १७ जुलाई सन् १७६१ को करनल कूट ने गवरनर और कौन्सिल के नाम एक पत्र भेजा, जिसमें साफ़ लिखा है कि मीर क़ासिम इस कार्य के लिए साढ़े सात लाख रुपए रिशवत देने को तैयार है। गवरनर वन्सीटार्ट के इस कार्य की निन्दा करते हुए इतिहास-लेखक मिल लिखता है—

"मिस्टर वन्सीटार्ट के शासन की यह घातक भूल थी, क्योंकि इसके कारण ऊँचे दरजे के हिन्दोस्तानियों के दिलों से अङ्गरेज़ों की रक्षा के ऊपर विश्वास बिलकुल उठ गया, और क्योंकि इस मामले में जिस ज़बरदस्त अन्याय में मि० वन्सीटार्ट ने साथ दिया, उससे लोगों की यह राय होगई कि वन्सीटार्ट

अपनी कमज़ोरी से अथवा रिशवत लेकर किसी भी पक्ष का समर्थन करने को तैयार हो सकता है XXX ।"*

मुर्शिदाबाद में निर्दोष रामनारायण को हथकड़ियाँ डालकर रक्खा गया, उससे ख़ूब धन वसूल किया गया और पटने में उसकी जगह दूसरा नायब नियुक्त कर दिया गया।

मीर क़ासिम का चरित्र और शासन

मीर क़ासिम साधारण चरित्र का मनुष्य न था। उसमें और मीर जाफ़र में बहुत बड़ा अन्तर था। मीर जाफ़र अयोग्य, निर्बल, स्वार्थी, अदूरदर्शी तथा भीरु था। किन्तु मीर क़ासिम की दूरदर्शिता, उसकी योग्यता, उसके बल, उसकी वीरता और शासक की हैसियत से उसकी कार्य कुशलता की लगभग समस्त इतिहास-लेखकों ने मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। उदाहरण के लिए इतिहास-लेखक करनल मालेसन मीर क़ासिम के "बढ़े हुए युक्ति-कौशल, उसकी योग्यता XXX उसके दृढ़ सङ्कल्प, चीज़ों का शीघ्रता से निर्णय कर सकने की क्षमता, उदार विचार XXX विमल मस्तिष्क और प्रबल चरित्र" की जगह जगह प्रशंसा करता है।† एक दूसरा अङ्गरेज़ इतिहास-

* "This was the fatal error of Mr. Vansittart's administration; because it extinguished among the natives of rank all confidence in the English protection; and because the enormity to which, in this instance, he had lent his support, created an opinion of a weak or a corrupt partiality, . . ."—Mill, vol. iii, p. 224.

† " . . . a man of great tact and ability . . . of iron will, quick decision, large views . . . of clear head

लेखक लिखता है—"मीर क़ासिम के अन्दर एक योद्धा की वीरता और एक राजनीतिज्ञ की दूरदर्शिता दोनों मौजूद थीं।"* करनल मालेसन के अनुसार मीर क़ासिम को मीर जाफ़र के साथ देशघातकों की श्रेणी में रखना मीर क़ासिम के साथ अन्याय करना है। यह विद्वान इतिहास-लेखक लिखता है कि मीर क़ासिम का इरादा मीर जाफ़र के साथ विश्वासघात करने का न था। मीर क़ासिम ने अपने बूढ़े श्वसुर की निर्बलता, भीरुता और अयोग्यता को अच्छी तरह अनुभव कर लिया था; उसकी आत्मा यह देखकर अत्यन्त तप्त थी कि बङ्गाल का सूबेदार विदेशियों के हाथों की केवल एक कठपुतली रह गया था; और यह देखकर ही मीर क़ासिम ने जिस तरह हो सका, सूबेदार की सत्ता को फिर से क़ायम करने का सङ्कल्प किया।† मीर क़ासिम और अङ्गरेज़ों में जो गुप्त समझौता हुआ था वह केवल मीर क़ासिम को मीर जाफ़र का प्रधान मन्त्री बनाने के विषय में हुआ था, और मीर क़ासिम को आशा थी कि इस हैसियत से मैं सूबेदारी की सत्ता को फिर से क़ायम कर सकूँगा, किन्तु जब एक बार यह सब मामला निर्बल और सशङ्क मीर जाफ़र पर प्रकट कर दिया गया और मीर जाफ़र को मीर क़ासिम पर विश्वास न हो सका तो फिर मीर क़ासिम के लिए पीछे

---

and strong character."—*The Decisive Battles of India,* by Colonel Malleson, pp. 127, 145.

* "He united the gallantry of the soldier with the sagacity of the statesman."—*Transactions in India from 1757 to 1783.*

† *The Decisive Battles of India,* p. 128.

हट सकना असम्भव हो गया। इसमें भी सन्देह नहीं कि मीर क़ासिम ने मसनद पर बैठते ही बङ्गाल की अवस्था को सुधारने का जी तोड़ प्रयत्न किया और इस प्रयत्न में बहुत दरजे तक उसे आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई।

माल और ख़ज़ाने के महकमों में उसने अनेक सुधार किए। सन् १७६२ तक उसने न केवल अपनी फ़ौज की तमाम पिछली तनख़ाहों को अदा कर दिया और अङ्गरेज़ों की एक एक पाई ही चुकता कर दी, बल्कि शासन का इतना सुन्दर प्रबन्ध किया कि सूबेदारी की आमदनी सालाना ख़र्च से बढ़ गई। अङ्गरेज़ों पर उसे शुरू से ही विश्वास न था, तथापि उसने अङ्गरेज़ों के साथ अपने वचन का अक्षरशः पालन किया। मुर्शिदाबाद की राजधानी में विदेशियों का प्रभाव अधिक बढ़ गया था। इसलिए मीर क़ासिम ने मुङ्गेर को अपनी नई राजधानी बनाया। उसने अधिकतर मुङ्गेर ही में रहना शुरू कर दिया। मुङ्गेर की उसने बड़ी सुन्दर और मज़बूत क़िलेबन्दी की। लगभग चालीस हज़ार सेना वहाँ जमा की। उस सेना को यूरोपियन ढङ्ग के अस्त्रों की शिक्षा देने के लिए अपने यहाँ अनेक योग्य यूरोपियन नौकर रक्खे। एक बहुत बड़ा नया कारख़ाना तोपें ढालने का उसने क़ायम किया, जिसकी तोपों के विषय में कहा जाता है कि उस समय की यूरोप की बनी हुई तोपों से हर तरह बढ़कर थीं। मीर क़ासिम की समस्त प्रजा उससे अत्यन्त सन्तुष्ट थी और उससे प्रेम करती थी।

मीर क़ासिम के विरुद्ध साज़िश

किन्तु ज्योंही मीर क़ासिम और उसकी प्रजा के थोड़ा बहुत पनपने का समय आया, त्योंही मीर क़ासिम को भी मसनद से उतारने की तैयारियाँ शुरू होगईं। करनल मालेसन साफ़ लिखता है कि मीर क़ासिम ने अङ्गरेज़ों के साथ अपने समस्त वादे पूरे कर दिए, तथापि "लालची अङ्गरेज़ों को अपनी अर्थ-पिपासा के शान्त करने का सर्वोत्तम उपाय यही दिखाई दिया कि मीर क़ासिम को नाश करके उसके उत्तराधिकारी के साथ नए सिरे से सौदा किया जावे।"*

जिस प्रकार मीर जाफ़र के विरुद्ध अङ्गरेज़ों ने मीर क़ासिम को अपनी साज़िशों का केन्द्र बनाया था उसी प्रकार अब उलटकर मीर क़सिम के ख़िलाफ़ बूढ़े मीर जाफ़र को इन नई साज़िशों का केन्द्र बनाया गया। मीर क़ासिम के विरुद्ध सामग्री तैयार करने के लिए कलकत्ते की सिलेक्ट कमेटी के कुछ मेम्बरों ने ११ मार्च सन् १७६२ को कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक लम्बा पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने मीर क़ासिम और उसके चरित्र पर अनेक झूठे सच्चे दोष लगाए, मीर जाफ़र की खूब तारीफ़ें कीं, यह स्वीकार किया कि मीर जाफ़र के चरित्र पर इससे पूर्व जो दोष लगाए

* "Mir Kassim performed his covenant. But . . . men greedy of gain, . . . deeming that the shortest road to their end lay in compassing the ruin of Mir Kassim, in order to make a market of his successor."—*The Decisive Battles of India*, p. 134.

जा चुके थे वे सब झूठे थे और मीर जाफ़र को मसनद से उतारना एक भूल और अन्याय था, और लिखा—

"जब से वह (मीर क़ासिम) सूबेदार बना है, तब से उसके ज़ुल्मों और लूट खसोट की हम अगणित मिसालें आपको दे सकते हैं। किन्तु उससे यह पत्र बेहद लम्बा हो जायगा××× । हम केवल एक रामनारायण का विशेषकर वर्णन करते हैं, जिसे उसने पटने की नायबी से अलग कर दिया है। यह बात मानी हुई है कि रामनारायण अपने वचन का सच्चा है, इसी लिए उसकी नायबी का समर्थन करना हम सदा अपने लिए हितकर नीति समझते रहे। आजकल मीर क़ासिम रामनारायण को उस समय तक हथकड़ी डाल कर रक्खे हुए है, जब तक कि वह हद दर्जे उससे धन न चूस ले। इसके बाद इसमें कोई सन्देह नहीं कि रामनारायण का काम तमाम कर दिया जायगा। जिन जिन लोगों ने अङ्गरेज़ों का साथ दिया था, उनमें से सब नहीं तो अधिकांश से भारी भारी रक़में वसूल की जा चुकी हैं, उनसे रुपए वसूल करने के लिए जो जो पीड़ाएँ उन्हें दी गई हैं, उनसे कई के प्राण निकल गए। दूसरों को या तो कमीनेपन के साथ क़त्ल कर दिया गया और या (जो हिन्दोस्तानियों में अकसर होता है) बेइज़्ज़ती से बचने के लिए उन्होंने आत्महत्या कर ली××× ।"

मीर क़ासिम के चरित्र को कलङ्कित करने में अब इन लोगों ने कोई कसर उठा न रक्खी। अङ्गरेजों को रुपए देने के लिए ही मीर क़ासिम को अपने अनेक आश्रितों पर ज़ुल्म करने पड़े। इतिहास से ज़ाहिर है कि अङ्गरेज़ ही इस तरह के अनेक अभागों को ला लाकर मीर क़ासिम के हवाले करते थे। अङ्गरेज़ों ही ने साढ़े

सात लाख रुपए अथवा कुछ अधिक के बदले में अपने सच्चे मित्र निर्दोष रामनारायण को छल से पकड़ कर मीर क़ासिम के हाथों में दिया और अब अङ्गरेज़ ही मीर क़ासिम को इन सब अन्यायों के लिए दोषी ठहराते थे।

एक इलज़ाम मीर क़ासिम पर यह भी था कि वह अपनी फ़ौज बढ़ा रहा था, उन्हें यूरोपियन ढङ्ग की क़वायद और यूरोपियन शस्त्रों का इस्तेमाल सिखा रहा था और नई क़िलेबन्दियाँ कर रहा था (!)।

इसी पत्र में इन लोगों ने लिखा कि मीर जाफ़र के चरित्र के विरुद्ध जितने इलज़ाम गवरनर वन्सीटार्ट ने लगाए थे वे सब झूठे हैं, उनका उद्देश केवल "लोगों के चित्तों को मीर जाफ़र की ओर से फेर देना था," और यह कि मीर जाफ़र को मसनद से उतारने और मीर क़ासिम को उसकी जगह बैठाने से समस्त प्रजा अत्यन्त असन्तुष्ट है। कमेटी के छै मेम्बरों के इस पत्र पर दस्तख़त हैं। निस्सन्देह इस पत्र को पढ़ने के बाद कम्पनी के उस समय के अङ्गरेज़ मुलाज़िमों के किसी भी पत्र अथवा बयान पर कुछ भी विश्वास कर सकना सर्वथा असम्भव है।

तिजारत और सरकारी महसूल सम्बन्धी अङ्गरेज़ों के अत्याचार इस समय तक समस्त बङ्गाल में फैल चुके थे, और बढ़ते जा रहे थे। इन अत्याचारों के विषय में करनल मालेसन लिखता है—

"इस लज्जास्पद और अन्यायपूर्ण पद्धति का परिणाम यह हुआ कि इज़्ज़त वाले देशी व्यापारी बरबाद हो गए, ज़िले के ज़िले निर्धन हो गए,

देश का समस्त व्यापार उलट पुलट हो गया, और उस ज़रिए से नवाब को जो आमदनी होती थी उसमें धीरे धीरे किन्तु लगातार कमी आती गई। मीर क़ासिम ने बार बार कलकत्ते की कौन्सिल से इन ज़्यादतियों की शिकायत की, किन्तु व्यर्थ।"*

अन्त को इन अगणित शिकायतों के जवाब में इस सब मामले का निपटारा करने के लिए ३० नवम्बर सन् १७६२ को गवरनर वन्सीटार्ट और वारन हेस्टिंग्स नवाब से भेंट करने के लिए मुंगेर पहुँचे। मीर क़ासिम ने जो शिकायतें इस समय वन्सीटार्ट के सामने पेश कीं उनमें से एक यह भी थी—

"जब सूबेदार (मीर क़ासिम) बिहार की ओर गया हुआ था और बङ्गाल में कोई शासक न रहा था, उस समय अङ्गरेज़ों ने अपने अत्याचारों द्वारा इस सूबे के हर ज़िले और हर गाँव को तबाह कर डाला था, प्रजा से उनकी रोज़ की रोटी तक छीन ली गई थी और सरकारी महसूलों और मालगुज़ारी का जमा होना बिलकुल बन्द हो गया था, जिससे सूबेदार को क़रीब एक करोड़ रुपए का नुक़सान हुआ × × ×।"†

* "The results of this shameful and oppressive system were that the respectable class of native merchants were ruined, whole districts became impoverished, the entire native trade became disorganised and the Nawab's revenue from that source suffered a steady and increasing declension. In vain did Mir Kassim represent, again and again, these evils on the Calcutta Council." —*The Decisive Battles of India*, p. 137.

† "When His Excellency went to Behar, Bengal being left without a ruler. every village and district in that province was ruined through the oppression of the English, the subjects of the

१५ दिसम्बर सन् १७६२ को वन्सीटार्ट और मीर क़ासिम के बीच एक सन्धि हुई जो 'मुङ्गेर की सन्धि' के नाम से प्रसिद्ध है। और बातों के साथ इस सन्धि में यह भी तय हुआ कि अङ्गरेज़ व्यापारी आयन्दा से नमक, तम्बाकू, छालिया इत्यादि सब चीज़ों के ऊपर ९ फ़ी सदी महसूल दिया करें और हिन्दोस्तानी व्यापारी इन्हीं तमाम चीज़ों पर २५ फ़ी सदी महसूल दिया करें। निस्सन्देह यह सन्धि भारतीय व्यापारियों के साथ न्यायोचित न थी, तथापि मीर क़ासिम ने शान्ति की इच्छा से विवश होकर उसे स्वीकार कर लिया।

वन्सीटार्ट और हेस्टिंग्स दोनों ने सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किए और दोनों ने कलकत्ता कौन्सिल के नाम अपने १५ दिसम्बर के पत्र में इस सन्धि की 'न्याय्यता' और 'उदारता' और मीर क़ासिम की 'सच्चाई' तीनों की स्पष्ट शब्दों में तारीफ़ की है। वन्सीटार्ट ने मीर क़ासिम से यह वादा किया कि कलकत्ते पहुँच कर मैं कम्पनी और सरकार के बीच के सब मामले तय कर दूँगा। किन्तु कलकत्ते वापस पहुँचते ही बजाय 'सब मामला तय' करने के गवर्नर वन्सीटार्ट ने कम्पनी और उसके आदमियों की धींगाधींगी को पूर्ववत् जारी रखने के लिए जगह जगह नई फ़ौजें रवाना कर दीं। इसके साथ साथ कलकत्ते की अङ्गरेज़ कौन्सिल ने अपना

Sarkar were deprived of their daily bread, and the collection of the revenues was entirely stopped, so that His Excellency lost nearly a crore of rupees . . . ."—*Calendar of Persian Correspondence*. p. 194. No. 1695.

बाज़ाब्ता इजलास करके फ़ौरन् तमाम अङ्गरेज़ी कोठियों और उनके गुमाश्तों के पास यह स्पष्ट सूचनाएँ भेज दीं कि मुङ्गेर की शर्तों पर हरगिज़ कोई अमल न करे और यदि नवाब के कर्मचारी अमल कराने पर ज़ोर दें तो उनकी ख़ूब गत बनाई जावे। इसी इजलास में यह भी कहा गया कि मुङ्गेर की सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए वन्सीटार्ट ने नवाब मीर क़ासिम से सात लाख रुपए रिशवत ली थी। जो हो, सन्धि-पत्र की स्याही अभी सूखने भी न पाई थी कि सन्धि तोड़ दी गई। नवाब के कर्मचारी यदि कोई बोलते थे या महसूल माँगते थे तो पूर्ववत् उन पर मार पड़ती थी। मीर क़ासिम ने वन्सीटार्ट को ५ मार्च सन् १७६३ के पत्र में फिर लिखा कि—"तीन साल से सरकार को अङ्गरेज़ों से एक भी पाई वा एक भी चीज़ नहीं मिली, इसके विपरीत सरकार के कर्मचारियों से अङ्गरेज़ बराबर जुरमाने और हरजाने वसूल कर रहे हैं।"

मीर क़ासिम ने बार बार शिकायत की, किन्तु कोई फल न हुआ। विदेशी व्यापारियों का बिना महसूल व्यापार करना और देशी व्यापारियों से भारी महसूल वसूल किया जाना दोनों बराबर जारी रहे। इस घोर अन्याय द्वारा देशी व्यापारियों का अस्तित्व ही मिटता जा रहा था। अन्त को मजबूर होकर और देशी व्यापारियों को जीवित रखने का और कोई उपाय न देख २२ मार्च सन् १७६३ को मीर क़ासिम ने अपनी सूबेदारी भर में चुङ्गी की तमाम चौकियों के उठवा दिए जाने का हुकुम दे दिया और सब

भर में एलान कर दिया कि आज से दो साल तक किसी तरह के तिजारती माल पर किसी से किसी तरह का भी महसूल न लिया जाय। निस्सन्देह मीर क़ासिम की सालाना आमदनी को इससे ज़बरदस्त धक्का पहुँचा, किन्तु देशी व्यापारियों को अन्याय से बचाने और उन्हें ज़िन्दा रखने का मीर क़ासिम को और कोई उपाय न सूझ सकता था। इस आज्ञा से मीर क़ासिम की बेबसी और उसकी प्रजापालकता दोनों प्रकट होती हैं।

असंख्य हिन्दोस्तानी व्यापारियों को इस आज्ञा से लाभ हुआ। वे अङ्गरेज़ों से कम ख़र्च में ज़िन्दगी बसर कर सकते थे और अपना माल सस्ता बेचकर भी लाभ कमा सकते थे। तिजारत का द्वार एक बार बिलकुल खुल गया, जिसके कारण चारों ओर से आ आकर बङ्गाल में व्यापारियों की संख्या बढ़ने लगी और देश की तिजारत और कृषि दोनों फिर ज़ोरों के साथ उन्नति करने लगीं। स्वार्थपरायण अङ्गरेज़ों को यह कब सहन हो सकता था। फ़ौरन् कलकत्ते में कौन्सिल का फिर इजलास हुआ। तय हुआ कि नवाब की नई आज्ञा नाजायज़ है और नवाब को मजबूर किया जाय कि अपनी इस आज्ञा को वापस लेकर देशी व्यापारियों से पूर्ववत् महसूल वसूल करे। ऐमयाट और हे नामक दो अङ्गरेज़ मुङ्गेर जाकर नवाब से मिलने और ये सब बातें नए सिरे से तय करने के लिए नियुक्त हुए।

बङ्गाल की प्रजा के साथ अत्याचारों और बङ्गाल के शासक के साथ ज़बरदस्तियों का प्याला अब लबालब भर चुका था। मीर

क़ासिम को यह भी मालूम था कि बङ्गाल के तीनों प्रान्तों की दीवानी के अधिकार प्राप्त करने के लिए दिल्ली सम्राट के साथ अङ्गरेज़ों का गुप्त पत्र व्यवहार बराबर जारी है। मीर क़ासिम और वन्सीटार्ट के दरमियान इस समय जो पत्र व्यवहार हुआ वह पढ़ने के योग्य है। मीर क़ासिम ने बार बार अपने कर्मचारियों और अपनी प्रजा के ऊपर अङ्गरेज़ों के अत्याचारों की शिकायतें कीं। अत्यन्त करुण शब्दों में उसने लिखा कि—"कम्पनी के जो तिलङ्ग सिपाही सम्राट और सूबेदार की सहायता के लिए कह कर रक्खे गए थे और जिनके ख़र्च के लिए मैं कम्पनी को पचास लाख रुपए की ज़मींदारी दे चुका हूँ वे अब देश भर में मेरे और मेरे आदमियों के विरुद्ध काम में लाए जा रहे हैं।" अन्त को एक पत्र में उसने साफ़ साफ़ लिखा कि—"मुझे मालूम हुआ है कि बहुत से अङ्गरेज़ एक दूसरा सूबेदार खड़ा करना चाहते हैं। ××× हर शख्स पर ज़ाहिर है कि यूरोपवालों का एतबार नहीं किया जा सकता।"

मीर क़ासिम के साथ अङ्गरेज़ों के इस समय के व्यवहार की आलोचना करते हुए मालेसन लिखता है—

"किसी भी क़ौम के इतिहास में उनसे अधिक अनुचित, अधिक नीच और अधिक शर्मनाक कारवाइयों की मिसालें नहीं मिलतीं, जो कारवाइयाँ कि मीर जाफ़र को मसनद से हटाने के बाद तीन वर्ष तक कलकत्ते की अङ्गरेज़ गवरमेण्ट ने कीं।"*

* "The annals of no nation contain records of conduct more

मालेसन यह भी लिखता है कि—"मीर क़ासिम का एक मात्र क़सूर यह था कि उसने यूरोप-निवासियों के अत्याचारों से अपनी प्रजा की रक्षा करने का प्रयत्न किया।"* इस पर भी "मीर क़ासिम अपनी स्वाधीनता और प्रजा के सुख का नाश किए बिना किसी क़ीमत पर भी अङ्गरेज़ों के साथ अमन से रहने के लिए उत्सुक था।"†

किन्तु मीर क़ासिम के विरुद्ध साज़िश अभी पूरी तरह पकने न पाई थी, इसलिए उसके अन्तिम पत्र के उत्तर में वन्सीटार्ट ने मीर क़ासिम को लिख दिया—"यह क़िस्सा कि अङ्गरेज़ दूसरा नाज़िम खड़ा करना चाहते हैं, चालबाज़ लोगों की मनगढ़न्त है ×××।"

इसके बाद जब वन्सीटार्ट ने मीर क़ासिम को लिखा कि ऐमयाट और हे एक नई सन्धि करने के लिए मुङ्गेर भेजे गए हैं तो मीर क़ासिम ने उत्तर में लिखा कि—"हर साल नई सन्धि करना क़ायदे के ख़िलाफ़ है, क्योंकि इनसानों की सन्धियों की कुछ उमरें होती हैं।" उसने यह भी लिखा कि—"एक ओर आप चारों तरफ़

---

unworthy, more mean, and more disgraceful, than that which characterised the English Government of Calcutta during the three years which followed the removal of Mir Jaffar."—*The Decisive Battles of India*, p. 133.

* "Whose only fault . . . was his endeavour to protect his subjects from European extortion."—Ibid, p. 136.

† "Mir Kassim, still anxious for peace at any price short of sacrificing his own independence and the happiness of his people."—Ibid p. 140.

फ़ौजें भेज रहे हैं और दूसरी ओर मुझसे बातचीत करने के लिए आदमी भेज रहे हैं।"

वास्तव में ऐमयाट और हे का मुङ्गेर भेजना केवल एक चाल थी। बङ्गाल के अन्दर तीसरी क्रान्ति के लिए अङ्गरेज़ों की तैयारी ज़ोरों के साथ जारी थी।

मीर क़ासिम को इतने में पता चला कि मेरे विरुद्ध साज़िशों का जाल स्वयं मेरी राजधानी के अन्दर पूरा फैल चुका है। वही जैन जगतसेठ, जो छै वर्ष पूर्व सिराजुद्दौला के पतन में अङ्गरेज़ों का सहायक हुआ था, अब फिर इस नई साज़िश में शामिल था। पता चलते ही मीर क़ासिम ने जगतसेठ और उसके भाई स्वरूपचन्द दोनों को मुङ्गेर बुलाकर नज़रबन्द कर दिया। ये दोनों भाई मीर क़ासिम की प्रजा थे। अङ्गरेज़ों को इस पर एतराज़ करने का कोई अधिकार न था। किन्तु वन्सीटार्ट ने इस पर भी एतराज़ किया।

इस बीच ऐमयाट और हे दोनों दूत मुङ्गेर पहुँच गए। २५ मई सन् १७६३ को इन दोनों ने कम्पनी की ओर से ११ नई माँगें लिखकर मीर क़ासिम के सामने पेश कीं—(१) यह कि अङ्गरेज़ कौन्सिल ने तिजारती महसूल और एजण्टों के विषय में जो कुछ तय किया है, नवाब उसे ज्यों का त्यों लिखकर स्वीकार करे, (२) यह कि नवाब अपनी प्रजा अर्थात् देशी व्यापारियों पर नए सिरे से महसूल लगावे और अङ्गरेज़ों की बिना महसूल तिजारत जारी रहे, (३) यह कि अङ्गरेज़ों और उनके जिन जिन आदमियों

को नई आज्ञा के कारण व्यापारिक नुक़सान हुआ है, नवाब उन सब का हरजाना पूरा करे, (४) यह कि नवाब अपने उन सब कर्मचारियों को, जिन्हें अङ्गरेज़ कहें, दण्ड दे। इत्यादि, इत्यादि।

निस्सन्देह कोई स्वाभिमानी शासक इन शर्तों को स्वीकार न कर सकता था। ऐमयाट का व्यवहार भी नवाब के साथ अत्यन्त रूखा और धृष्टतापूर्ण था। यहाँ तक कि उसने मीर क़ासिम की शिकायतें सुनने तक से इनकार कर दिया। वास्तव में अङ्गरेज़ युद्ध चाहते थे और युद्ध की पूरी तैयारी कर चुके थे। १४ अप्रेल सन् १७६३ ही को अङ्गरेज़ों ने अपनी सेना को तैयार हो जाने की आज्ञा दे दी थी। पटने में एलिस नामक एक अङ्गरेज़ कम्पनी के एजण्ट की हैसियत से रहता था। एलिस ने वहाँ के नायब नाज़िम को दिक़ करना और बात बात में उसकी आज्ञाओं का उल्लङ्घन करना शुरू कर दिया था। मीर क़ासिम ने अनेक बार वन्सीटार्ट से एलिस के व्यवहार की शिकायत की, किन्तु व्यर्थ। अब कलकत्ते से एलिस को लिख दिया गया कि तुम आज्ञा पाते ही पटने पर क़ब्ज़ा करने के लिए तैयार रहो। कम्पनी की काफ़ी सेना पहले ही पटने पहुँचा दी गई थी। उधर ऐमयाट साहब सुलह के लिए मुङ्गेर में ठहरे हुए थे और इधर हथियारों से भरी हुई कई किश्तियाँ एलिस की मदद के लिए कलकत्ते से पटने की ओर जा रही थीं। जब ये किश्तियाँ मुङ्गेर के पास से निकलीं, नवाब उन्हें देखकर चौंक गया। उसने किश्तियों को आगे बढ़ने से रोक दिया, और २ जून सन् १७६३ को वन्सीटार्ट को लिखा कि—"कम्पनी

की नई माँगें बेजा और पहली सन्धियों के विरुद्ध हैं XXX पटने की अङ्गरेज़ी फ़ौज या तो कलकत्ते वापस बुला ली जावे और या मुङ्गेर में रक्खी जावे, नहीं तो मैं निज़ामत छोड़ दूँगा।"

इसके जवाब में ऐमयाट ने मीर क़ासिम से साफ़ साफ़ कहा कि बजाय वापस बुलाने के पटने में अङ्गरेज़ी फ़ौज बढ़ाई जायगी। हथियारों की किश्तियाँ मुङ्गेर में रुकते ही कलकत्ते की कौन्सिल ने, जो केवल एक बहाने के इन्तज़ार में थी, ऐमयाट और हे को वापस बुला लिया और एलिस को आज्ञा दे दी कि तुम फ़ौरन पटने पर हमला करके नगर पर क़ब्ज़ा कर लो।

युद्ध का प्रारम्भ

युद्ध का प्रारम्भ हो गया। २४ जून की रात को अचानक हमला करके एलिस ने पटने पर क़ब्ज़ा कर लिया। मीर क़ासिम की बरदाश्त की कोई हद न थी। इतिहास-लेखक ऐल्फ़िन्सटन लिखता है कि—"अगणित कोप-कारणों के होते हुए भी उसने धैर्य और बरदाश्त से काम लिया।"* किन्तु अब मजबूर होकर उसे एलिस के विरुद्ध सेना भेजनी पड़ी। मीर क़ासिम की सेना ने पटने पहुँचकर फिर से नगर अङ्गरेज़ों से विजय कर लिया। इस बार की लड़ाई में कम्पनी के लगभग ३०० यूरोपियन और ढाई हज़ार हिन्दोस्तानी

* ". . . He conducted himself under innumerable provocations with temper and forbearance, . . ."—*Rise of the British power in India* by Elphinstone, pp. 390, 391.

सिपाही काम आए। एलिस और उसके कई यूरोपियन साथी १ जुलाई को क़ैद करके मुङ्गेर पहुँचा दिए गए।

ऐमयाट चुपके से किश्ती में बैठकर कलकत्ते के लिए रवाना हो गया। मीर क़ासिम ने हे को मुङ्गेर में रोक लिया। मालूम होता है कि मीर क़ासिम ने अपने आदमियों को हुकुम भेज दिया कि ऐमयाट को भी रोक कर वापस मुङ्गेर भेज दिया जाए। क़ासिम-बाज़ार के निकट नवाब के एक कर्मचारी मोहम्मद तक़ी ख़ाँ ने अपने एक आदमी को भेजकर ऐमयाट से खाना खाने के बहाने किनारे पर आने की प्रार्थना की। ऐमयाट ने इनकार किया और उसकी किश्तियाँ बीच धार से चलती रहीं। एक दूसरा उच्च कर्मचारी भेजा गया, जिसने किनारे से फिर कहा कि खाना तैयार है और यदि आप सेनापति मोहम्मद तक़ी ख़ाँ की प्रार्थना स्वीकार न करेंगे तो उन्हें दुख होगा। ऐमयाट ने फिर इनकार कर दिया। इसके बाद किनारे के अफ़सरों ने किश्तियों को रुकने का स्पष्ट हुकुम दिया। जवाब में ऐमयाट ने वहीं से किनारे की ओर गोलियों की बौछार शुरू कर दी। नवाब के आदमियों ने अब बाज़ाब्ता किश्तियों पर पहुँच कर बदला लिया। उस हत्याकाण्ड में ऐमयाट का भी वहीं पर काम तमाम हो गया।

२८ जून को मीर क़ासिम ने वन्सीटार्ट और उसकी कौन्सिल के नाम इस प्रकार पत्र लिखा —

"XXX रात के डाकू की तरह मिस्टर एलिस ने पटने के क़िले पर हमला किया, वहाँ के बाज़ार को और तमाम व्यापारियों और नगर के

लोगों को लूटा और सुबह से तीसरे पहर तक लूट और क़त्ल जारी रक्खी। ××× चूँकि आप लोगों ने बेइन्साफ़ी और ज़ुलम के साथ शहर को रौंद डाला है, लोगों को बरबाद किया है और कई लाख का माल लूट लिया है, इसलिए अब इन्साफ़ यह है कि कम्पनी ग़रीबों का नुक़सान भर दे, जैसा पहले कलकत्ते में हो चुका है। आप ईसाई लोग विचित्र दोस्त निकले। आपने सन्धि की, उस पर ईसा मसीह के नाम से क़सम खाई। इस शर्त पर कि आपकी सेना सदा मेरा साथ देगी और मेरी सहायता करेगी, आपने अपनी सेना के ख़र्च के लिए मुझसे इलाक़ा लिया। असलीयत में मेरे ही नाश के लिए आप फ़ौज रख रहे थे, क्योंकि उसी फ़ौज के हाथों ये सब कार्य हुए हैं ××× इसके अलावा चार साल से अङ्गरेज़ गुमाश्तों ने मेरी निज़ामत के अन्दर जो जो ज़ुलम और ज़्यादतियाँ की हैं, जो बड़ी बड़ी रक़में लोगों से ज़बरदस्ती वसूल की हैं और जो नुक़सान किए हैं मुनासिब और इन्साफ़ यह है कि कम्पनी इस समय उस सबका हरजाना दे। आपको सिर्फ़ इतनी ही तकलीफ़ करने की ज़रूरत है कि जिस तरह से बर्धमान और दूसरे इलाक़े आपने लिए थे उसी तरह मुझपर इनायत करके आप उन्हें वापस लौटा दीजिए।"*

निस्सन्देह सर्वथा मजबूर होकर मीर क़ासिम ने अब कड़ाई करने का पक्का निश्चय कर लिया।

७ जुलाई को यह पत्र कलकत्ते पहुँचा। उसी रोज़ कलकत्ते की अङ्गरेज़ कौन्सिल की ओर से मीर क़ासिम के साथ युद्ध का एलान प्रकाशित हुआ, जिसमें प्रजा को यह सूचना दी गई कि मीर

* Long's *Selections*, pp. 325, 326.

क़ासिम की जगह मीर जाफ़र को अब फिर से बङ्गाल की मसनद पर बैठा दिया गया है। नवाब मीर जाफ़र ही के नाम पर बङ्गाल भर से सेना जमा की गई और मीर जाफ़र ही के नाम पर प्रजा से अङ्गरेज़ी सेना का साथ देने के लिए कहा गया। किन्तु इस बाक़ायदा एलान से पहले ही पटना विजय भी हो चुका था और फिर से छिन भी चुका था। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कलकत्ते के अङ्गरेज़ व्यापारियों की कौन्सिल को बङ्गाल के सूबेदार को मसनद से उतारने या दूसरा सूबेदार नियुक्त करने का अधिकार कभी किसी ने न दिया था।

मीर जाफ़र के साथ जो नई सन्धि इस अवसर पर की गई उसका ज़िक्र अगले अध्याय में किया जायगा।

कम्पनी की सेना मेजर एडम्स के अधीन ५ जुलाई को अर्थात् युद्ध के एलान से दो दिन पहले कलकत्ते से मुर्शिदाबाद की ओर रवाना हुई। मीर क़ासिम की सेना सिपहसालार मोहम्मद तक़ी ख़ाँ के अधीन मुङ्गेर से चली। तक़ी ख़ाँ एक वीर और योग्य सेनापति था। किन्तु लिखा है कि उसकी तमाम तजवीज़ों में बात बात में मुर्शिदाबाद का नायब नाज़िम सय्यद मोहम्मद ख़ाँ, जो ज़ाहिर है अङ्गरेज़ों से मिला हुआ था, रुकावटें डालता रहता था। स्वयं उसकी सेना के अन्दर अङ्गरेज़ काफ़ी सफलता के साथ विश्वासघात के बीज बो चुके थे। तीन स्थानों पर दोनों ओर की सेनाओं में कई छोटी बड़ी लड़ाइयाँ हुईं। इन लड़ाइयों का विस्तृत वृत्तान्त "सीअरुल-मुताख़रीन" नामक

ग्रन्थ में दिया हुआ है। उस ग्रन्थ में मुसलमान सेना के अन्दर के एक ख़ास देशघातक मिर्ज़ा ईरज ख़ाँ का ज़िक्र आता है, जिसने भीतर ही भीतर अङ्गरेज़ों से मिलकर मीर क़ासिम और मोहम्मद तक़ी ख़ाँ के साथ दग़ा की। क़रीब दो सौ यूरोपियन और दूसरे ईसाई जो नवाब की सेना में विविध पदों पर और ख़ासकर तोपख़ाने में नौकर थे, ऐन मौक़े पर शत्रु की ओर जा मिले। सारांश यह कि इन लड़ाइयों में से एक में मोहम्मद तक़ी ख़ाँ भी मार डाला गया। इन्हीं लड़ाइयों के सम्बन्ध में मालेसन लिखता है कि—"अङ्गरेज़ों की सफलता में जितनी सहायता भारतीय नेताओं और नरेशों की परस्पर ईर्षा से मिली है उतनी दूसरी किसी भी चीज़ से नहीं मिली।"*

ऊदवानाला की लड़ाई

मीर क़ासिम की सेना ने अब ऊदवानाला नामक ऐतिहासिक स्थान पर अपना अन्तिम पड़ाव किया। प्राकृतिक स्थिति और मीर क़ासिम की दूरदर्शिता दोनों ने मिलकर इस स्थान को अत्यन्त सुरक्षित और अभेद्य बना रक्खा था। एक ओर गङ्गा थी, दूसरी ओर ऊदवानाला नाम की गहरी नदी, जो गङ्गा में गिरती थी, तीसरी ओर राजमहल की दुरारोह पहाड़ियाँ और चौथी ओर मीर क़ासिम की बनवाई हुई ज़बरदस्त खाड़ियाँ और क़िलेबन्दी, जिसके ऊपर सौ से ऊपर मज़बूत तोपें लगी हुई थीं। पहाड़ियों

* "Few things have more contributed to the success of the English than the action of jealousy of each other of the native princes and leaders of India."—Ibid, p. 150.

की तलहटी में खाड़ियों से ऊपर को ओर एक झील और एक लम्बी चौड़ी दलदल थी। इस दलदल के अन्दर से एक अत्यन्त पेचदार रास्ता दुर्ग से बाहर आने जाने का था जिसका अङ्गरेज़ी सेना को किसी तरह पता न चल सकता था। एक महीने तक मीर क़ासिम की सेना इस दुर्ग के अन्दर और कम्पनी की सेना जिसके साथ बूढ़ा मीर जाफ़र भी था, ऊदवानाला के बाहर पड़ी रही, किन्तु न अङ्गरेज़ अपनी तोपों के गोलों से सङ्गीन क़िलेबन्दी पर किसी तरह का असर पैदा कर सके और न भीतर की सेना को ज़रा भी हानि पहुँचा सके। दूसरी ओर मिरज़ा नजफ़ ख़ाँ नामक एक साहसी और परहेज़गार मुसलमान सेनापति प्रतिदिन रात के पिछले पहर उसी दलदल के रास्ते आकर अङ्गरेज़ी सेना पर धावा करता और अनेकों को ख़त्म कर तथा लूट का माल लेकर उसी रास्ते लौट जाता। अङ्गरेज़ी सेना किसी तरह उसका पीछा न कर पाती थी। युद्ध की सामग्री भी अङ्गरेज़ों की निस्बत मीर क़ासिम की सेना के पास कहीं अधिक उत्तम थी। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक ब्रूम लिखता है कि भारत की बनी हुई जो बन्दूक़ें इस समय मीर क़ासिम की सेना के पास थीं वह अङ्गरेज़ी सेना की, इङ्गलिस्तान की बनी हुई बन्दूक़ों से धातु, बनावट, मज़बूती, उपयोगिता इत्यादि सब बातों में कहीं बढ़िया थीं।* ज़ाहिर था कि ईमानदारी के साथ अङ्गरेज़ किसी तरह मीर क़ासिम पर विजय न प्राप्त कर सकते थे।

* *History of the Bengal Army*, by Broome, p. 351.

मीर क़ासिम की सेना का एक ख़ास दोष, जो उसके लिए घातक सिद्ध हुआ, यह था कि उसने अनेक यूरोपियन और आरमीनियन ईसाइयों को अपनी सेना के अनेक बड़े बड़े ओहदों पर नियुक्त कर रक्खा था। ईसा की ११ वीं सदी से लेकर जबकि यूरोप की कई ईसाई शक्तियों ने मिल कर पहली बार मुसलमानों से जेरुसेलम (बैतुलमुक़द्दस) छीनना चाहा, आज पर्यन्त हज़रत ईसा और हज़रत मोहम्मद के अनुयायियों के बीच प्रायः लगातार संग्राम होते रहे हैं। ईसाई ताक़तों ने अनेक मुसलमान राज्यों के स्वतन्त्र अस्तित्व को मिटाकर अनेक बार अपना जुआ मुसलमान क़ौमों के कन्धों पर रक्खा है। ईसाइयों और मुसलमानों के इन सदियों के विरोध के अतिरिक्त यूरोपियनों का ख़ासकर किसी यूरोपियन क़ौम के विरुद्ध अपने किसी एशियाई स्वामी के साथ वफ़ादारी कर सकना लगभग असम्भव है। इस सच्चाई को न समझ सकना अनेक भारतीय तथा अन्य एशियाई शासकों के लिए घातक साबित हुआ है।

कलकत्ते में इस समय आरमीनिया का एक मशहूर ईसाई सौदागर ख़ोजा पेतरूस रहता था। इस सौदागर का एक भाई ख़ोजा ग्रिगरी मीर क़ासिम की सेना में एक अफ़सर था और भी कई आरमीनियन ईसाई इस समय मीर क़ासिम की सेना में नौकर थे। मेजर एडम्स ने ख़ोजा पेतरूस की मारफ़त गुप्त पत्र-व्यवहार द्वारा इन सब लोगों को अपनी ओर फोड़ लिया।

इनके अलावा मीर क़ासिम की सेना में एक अङ्गरेज़ सैनिक भी था, जो कुछ समय पहले अङ्गरेज़ी सेना को छोड़कर नवाब के यहाँ भरती होगया था। इस अङ्गरेज़ को अपनी सेना में भरती कर लेना मीर क़ासिम के नाश का मूल कारण साबित हुआ। उसने मिरज़ा नजफ़ ख़ाँ के आने जाने के मार्ग को धीरे धीरे अच्छी तरह देख लिया और एक दिन, जब कि मालूम होता है दुर्ग के भीतर के अन्य ईसाई तथा ग़ैर ईसाई विश्वासघातकों के साथ समस्त योजना पक्की की जा चुकी थी, ४ सितम्बर की रात को क़रीब दस बजे यह शख़्स नवाब की सेना से निकल कर अङ्गरेज़ों की ओर चला आया और वहाँ से शत्रु की सेना को साथ ले उसी मार्ग से रातों-रात अचानक नवाब की सेना पर आ टूटा। क़िले के अन्दर के अनेक अफ़सर शत्रु से मिले हुए थे और अनेक के विषय में "सीअरुल-मुताख़रीन" से पता चलता है कि वे अपने स्थान की अभेद्यता और शत्रु की अशक्तता पर अत्यधिक भरोसा करके अपने कर्त्तव्य से असावधान हो गए थे। ऐसी स्थिति में सेना का कर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाना स्वाभाविक था। परिणाम यह हुआ कि मीर क़ासिम के पूरे पन्द्रह हज़ार सैनिक उस रात की लड़ाई में काम आए।

इस अङ्गरेज़ विश्वासघातक के कार्य के विषय में करनल मालेसन लिखता है कि—"केवल एक व्यक्ति के इस कार्य ने अङ्गरेज़ों के नैराश्य को विश्वास में बदल दिया; और इस कार्य के परिणाम ने मीर क़ासिम की सेना के आत्म-विश्वास को नैराश्य में बदल

दिया। अङ्गरेज़ी सेना के लिए इस व्यक्ति ने इस मौक़े पर ईश्वर का काम किया।" *

"जनरल एडम्स ने मीर क़ासिम की सेना को केवल विजय ही नहीं किया, बल्कि उसका संहार कर डाला।"† मीर क़ासिम की लगभग चार सौ तोपें इस युद्ध में अङ्गरेज़ों के हाथ आईं।

ऊदवानाला ही विदेशी व्यापारियों के विरुद्ध बङ्गाल के भारतीय सूबेदारों की आशा का अन्तिम आधार था। ४ सितम्बर सन् १७६३ की रात को वह आशा सदा के लिए टूट गई। जो चीज़ सिराजुद्दौला के लिए प्लासी साबित हुई वही मीर क़ासिम के लिए ऊदवानाला साबित हुआ, और दोनों स्थानों पर लगभग एक ही से उपायों द्वारा अङ्गरेज़ व्यापारियों ने बङ्गाल की सरकारी सेना पर विजय प्राप्त की।

ऊदवानाला की पराजय का एक कारण यह भी बताया जाता है कि उस रात मीर क़ासिम स्वयं अपनी सेना के साथ दुर्ग के अन्दर मौजूद न था। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक बोल्ट्स की राय है कि यदि मीर क़ासिम स्वयं अपने अफ़सरों को सावधान रखने और अपने सैनिकों को प्रोत्साहित करने के लिए मौजूद होता तो—

---

* "It was the act of a single individual which converted the despair of the English into confidence; it was the consequence of that act which changed the confidence of Mir Kassim's army into despair. The individual on this occasion performed the divine function for the English army."—Ibid. p. 157.

† Ibid, p. 160.

"शायद ही नहीं वरन् बहुत ज्यादा सम्भव है कि उस दिन से अङ्गरेज़ कम्पनी के पास इन प्रान्तों में एक फ़ुट ज़मीन भी न रह जाती।"*

मीर क़ासिम के शासन का अन्त

ऊदवानाला की पराजय मीर क़ासिम के लिए एक बहुत बड़ा धक्का था। तथापि उसने विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की और न वह इतनी जल्दी हिम्मत हारा। ऊदवानाला के बाद उसने मुङ्गेर के क़िले को सँभाला। यह क़िला भी अत्यन्त मज़बूत था। उसकी रक्षा का उचित प्रबन्ध कर मीर क़ासिम अज़ीमाबाद (पटना) के लिए रवाना हो गया। "सीअरुल-मुताख़रीन" से पता चलता है कि मीर क़ासिम के जाते ही मुङ्गेर के क़िलेदार अरबअली ख़ाँ ने नक़द रिशवत लेकर अपना क़िला चुपचाप अङ्गरेज़ों के सुपुर्द कर दिया। अङ्गरेज़ों ने मुङ्गेर पर क़ब्ज़ा जमाकर अब मीर क़ासिम का पीछा किया। महाराजा कल्यानसिंह की पुस्तक "ख़ुलासतुल तवारीख़" में लिखा है कि अज़ीमाबाद क़िले के संरक्षक मीर मोहम्मदअली ख़ाँ ने अपने लिए पाँच सौ रुपए मासिक पेन्शन कम्पनी से मञ्जूर कराकर बिना विरोध वहाँ का क़िला भी शत्रु के हवाले कर दिया।

* ". . . it is more than probable that, the English Company would have been left, from that day, without a single foot of ground in these Provinces."—*Consideration on Indian Affairs*, by Bolts, p. 43.

असहाय मीर क़ासिम को इस समय अपने चारों ओर सिवाय दग़ा के और कुछ नज़र न आता था। अङ्गरेज़ों को अब केवल दो बातों की चिन्ता थी। एक एलिस इत्यादि जो अङ्गरेज़ मीर क़ासिम के पास अभी तक क़ैद थे उन्हें छुड़ा लेना और दूसरे किसी प्रकार मीर क़ासिम को गिरफ़्तार करना। १९ सितम्बर सन् १७६३ को एडम्स और कारनक ने मीर क़ासिम के एक फ्रान्सीसी मुलाज़िम जाँती (Gentil) को इस मज़मून का एक पत्र लिखा–

"मुसलमान जब कभी बे ख़ौफ़ ऐसा कर सकते हैं, सदा हमारे सहधर्मियों और यूरोप-निवासियों के साथ क्रूर से क्रूर पाशविकता का व्यवहार करते हैं। किसी ईसाई के लिए मुसलमानों की नौकरी करना बड़ी ज़िल्लत का काम है। हमारा यह भी अनुमान है कि किसी बहुत ही ज़बरदस्त ज़रूरत से मजबूर होकर ही आपने इतनी ज़िल्लत की नौकरी स्वीकार की होगी। अब ऐसी कष्टकर ग़ुलामी से बच निकलने का और हमारी क़ौम की फिर से मित्रता लाभ करने का आपके लिए अच्छा मौक़ा है। आप इससे इनकार नहीं कर सकते कि हमारी क़ौम के साथ आपने बहुत बेजा सलूक किया है (जब कि आजकल हमारी और आपकी क़ौमों में सुलह है)। यदि आप हमारे आदमियों को क़ासिमअली ख़ाँ के हाथ से निकाल कर हमारे पास भेजने की तदबीर कर सकें तो आप अङ्गरेज़ों की कृतज्ञता पर पक्का भरोसा रखिए; और हम आपको पचास हज़ार रुपए फ़ौरन् देने का वादा करते हैं।"*

* "We are persuaded also that it must have been the most absolute necessity only which could have engaged you in so dishonourable a service to a Christian as that of the Moors, wh

'सीअरुल-मुताख़रीन' में लिखा है कि इसके बाद मीर क़ासिम को किसी तरह गिरफ़्तार करने की अङ्गरेज़ों को चिन्ता हुई। वन्सीटार्ट और वारन हेस्टिंग्स ने कलकत्ते के ईसाई सौदागर ख़ोजा पेतरूस से, जिसे आग़ा बेदरूस भी कहते थे, ख़ोजा ग्रिगरी के नाम जिसे गुरगिन ख़ाँ भी कहते थे, इस सम्बन्ध में एक पत्र लिखवाया। अचानक एक दिन रात को एक बजे मीर क़ासिम के एक विश्वस्त जासूस ने उसे जगाकर ख़बर दी—"आप बिछौने पर पड़े क्या कर रहे हैं, आपका सेनापति गुरगिन ख़ाँ आपको साफ़ फिरङ्गियों के हाथों में बेच रहा है! कुछ बाहर के लोगों के साथ और मालूम होता है कि भीतर के लोगों, यानी आपके क़ैदियों के साथ भी उसकी साज़िश हो चुकी है।"

अभी तक एलिस और उसके अङ्गरेज़ साथियों के साथ मीर

---

always treat with the grossest brutality those of our religion and Europeans when it is in their power to do it with impunity. A favourable opportunity now offers to enable you to rid yourself of so irksome a slavery and to reconcile yourself with our nation, towards which you can not deny but you have acted very improperly (and which is now at peace with yours). If you can contrive means for the delivery of our gentlemen from the power of Cossim Ally Khan and will convey them to us, you may place a firm reliance on the gratitude of the English; and we promise you fifty thousand Rupees immediately."—Letter dated 19th September 1763, from Adams and Carnac to one Monsieur Gentil in the employ of Meer Kassim—Long's Records, pp. 332, 333.

क़ासिम ने बड़ी उदारता का व्यवहार किया था। इन खुले राजद्रोहियों को ख़तम कर देने के बजाय वह तीन महीने से बराबर उन्हें आदरपूर्वक अपने साथ रक्खे था और खिला पिला रहा था। किन्तु 'सीअरुल-मुताख़रीन' के अनुसार जब उसने देखा कि ये सब लोग अब भी मेरे विरुद्ध एक गहरी साज़िश कर रहे हैं, और बाहर से शस्त्रों वग़ैरह का भी गुप्त प्रबन्ध कर चुके हैं, तो उसने मजबूर होकर पटने में ख़ोजा ग्रिगरी को, एलिस और उसके तमाम साथियों को—केवल एक अङ्गरेज़ डॉक्टर फ़ुलरटन को छोड़कर —जगतसेठ और उसके भाई महाराजा स्वरूपचन्द को यानी उन सबको, जो इस साज़िश में शामिल थे, क़त्ल करवा दिया। कहा जाता है कि ख़ोजा ग्रिगरी इस साज़िश का सरग़ना था।

इसके बाद जब अङ्गरेज़ पटने की ओर बढ़े तो मीर क़ासिम ने कर्मनासा नदी को पार कर कुछ सेना और तोपख़ाने सहित ४ दिसम्बर सन् १७६३ को अपनी सरहद से निकल कर नवाब शुजाउद्दौला के सूबे अवध में प्रवेश किया। तीन वर्ष तक वह बङ्गाल का सूबेदार रहा। उसका सारा शासन-काल आपत्तियों से भरा हुआ था। अब इस प्रकार उसके शासन का अन्त हुआ। मीर क़ासिम के शेष प्रयत्नों और उसकी मृत्यु का ज़िक्र अगले अध्याय में किया जायगा। निस्सन्देह वह योग्य, वीर तथा अपने देश और प्रजा दोनों का सच्चा हितचिन्तक था। सिराजुद्दौला के समान वह विश्वासघात का शिकार हुआ। उसके शासन-काल और पतन के समस्त वृत्तान्त को पढ़कर और उसके

विरोधियों के समस्त करतूतों की तुलना कर प्रत्येक निष्पक्ष मनुष्य के चित्त में उसकी ओर दया, प्रेम तथा सहानुभूति का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। वास्तव में बहुत दरजे तक वह अन्तिम वीर था, जिसने बङ्गाल की स्वाधीनता की रक्षा के लिए एक बार जी तोड़ प्रयत्न किया और इसी प्रयत्न में अपने आपको मिटा डाला।

पाँचवाँ अध्याय

फिर मीर जाफ़र

बङ्गाल की और बुरी हालत

जुलाई सन् १७६३ को कलकत्ते के अङ्गरेजों ने समस्त बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा में यह एलान प्रकाशित कर दिया कि 'मीर मोहम्मद क़ासिमअली खाँ' के ज़ुल्मों के कारण उसे सूबेदारी की मसनद से उतार कर उसकी जगह 'मीर मोहम्मद जाफ़र-अली खाँ बहादुर' को फिर से मसनद पर बैठा दिया गया है। इसी एलान में समस्त सरकारी कर्मचारियों तथा प्रजा से अपील की गई कि आप लोग "मीर मोहम्मद जाफ़र खाँ बहादुर की मदद के लिए उसके झण्डे के नीचे आकर जमा हो जावें, ताकि मीर मोहम्मद जाफ़र खाँ बहादुर क़ासिमअली खाँ के प्रयत्नों को निष्फल करके अपनी सूबेदारी को पक्का कर सके।"

७ जुलाई से पहले ही एक और नई सन्धि मीर जाफ़र के साथ कर ली गई थी, जिसके विषय में इतिहास-लेखक ऐल्फ़िन्सटन लिखता है—

"यद्यपि अधिकांश अङ्गरेज़ कहते यह थे कि मीर जाफ़र को फिर से मसनद पर बैठाना केवल उसके न्याय्य अधिकारों का उसे वापस देना है, तथापि वे उससे नई और अधिक कड़ी शर्तें स्वीकार करा लेने में न झिझके।"*

बर्धमान इत्यादि तीनों ज़िले और जितनी रिआयतें मीर क़ासिम ने उन्हें दे रक्खी थीं वे सब इस नई सन्धि द्वारा क़ायम रक्खी गईं। ऐल्फ़िन्सटन लिखता है कि आयन्दा के लिए यह नियत कर दिया गया कि नवाब छै हज़ार सवार और बारह हज़ार पैदल से ज़्यादा फ़ौज अपने पास न रक्खे। समस्त हिन्दोस्तानी व्यापारियों से पहले की तरह तमाम माल पर २५ फ़ी सदी महसूल वसूल किया जावे। अङ्गरेज़ व्यापारी नमक पर ढाई फ़ी सदी महसूल दिया करें और बाक़ी हर तरह के माल पर उन्हें बिना महसूल दिए देश भर में व्यापार करने का अधिकार रहे। मीर जाफ़र अङ्गरेज़ों को युद्ध के ख़र्च के लिए ३० लाख, अङ्गरेज़ी स्थल-सेना के लिए २५ लाख और जल-सेना के लिए १२½ लाख रुपए दे, और अङ्गरेज़ व्यापारियों का जितना नुक़सान मीर क़ासिम के समय में देशी व्यापारियों से महसूल न लिए जाने के कारण हुआ है, अब मीर जाफ़र उसे पूरा करे। सन्धि के समय कहा गया कि यह व्यक्तिगत हरजाने की रक़म पाँच लाख से अधिक न होगी, किन्तु बाद में इस पाँच लाख की जगह ५३ लाख वसूल किए गए। सन्धि की इन शर्तों के विषय में करनल मालेसन लिखता है कि—

* *Rise of British power in India*, p. 397.

"मीर क़ासिम की देशभक्ति ने जिन जिन बातों से इनकार कर दिया था, वह मीर जाफ़र के नीच स्वार्थ ने अङ्गरेज़ों को प्रदान कर दीं।"*

इतिहास-लेखक स्क्रैफ़टन लिखता है कि—"नवाब इसके बाद केवल एक बङ्क की तरह रह गया, जिससे कम्पनी के मुलाज़िम जितनी दफ़े और जितनी रक़म चाहें, ले सकते थे।"

मीर क़ासिम के विरुद्ध मीर जाफ़र अङ्गरेज़ों के हाथों का एक उपयोगी शस्त्र था। उसी के नाम पर मीर क़ासिम के अनेक आदमियों को बहका बहकाकर अङ्गरेज़ों ने अपनी ओर फोड़ा। ऊदवानाला की लड़ाई में मीर जाफ़र अङ्गरेज़ी सेना के साथ था। तथापि मीर जाफ़र की ओर कृतज्ञता प्रकट करने के स्थान पर अङ्गरेज़ों ने उसे अब और अधिक दबाना शुरू किया, यहाँ तक कि इस दूसरे बार की सूबेदारी में उसकी तथा उसकी प्रजा दोनों की अवस्था पहले की अपेक्षा कहीं अधिक करुणाजनक हो गई। सितम्बर सन् १७६४ में मीर जाफ़र ने कलकत्ते की कौन्सिल के नाम एक पत्र भेजा, जिसमें उसने तेरह शिकायतें अङ्गरेज़ों के सामने रक्खीं। इन शिकायतों का संक्षिप्त सार नीचे दिया जाता है, जिससे उस समय की बङ्गाल की अवस्था का ख़ासा अनुमान किया जा सकता है। शिकायतें इस प्रकार थीं—

* "Having obtained from the low ambition of Mir Jaffir the advantages which the patriotism of Mir Kassim had refused to them."—Ibid p. 145.

१—पटने में करनलगञ्ज और मारूगञ्ज नाम की दो नई मण्डियाँ अङ्गरेज़ों ने क़ायम की हैं; वहाँ के अङ्गरेज़ अफ़सर पुरानी सरकारी मण्डियों के व्यापारियों को ज़बरदस्ती पकड़ पकड़ कर अपने यहाँ ले जाते हैं, जिसके कारण मेरी मण्डियाँ उजड़ गईं और मुझे एक लाख का नुक़सान हो रहा है।

२—पटना और मुर्शिदाबाद की कचहरियों की यह हालत है कि वहाँ पर तमाम व्यापारी अङ्गरेज़ी कोठियों की आड़ लेकर सरकारी महसूल देने से इनकार कर देते हैं।

३—जगह जगह अङ्गरेज़ गुमाश्ते सरकार के बाग़ियों और मुजरिमों को अपने यहाँ आश्रय देते हैं।

४—टकसाल के अधिकार का दुरुपयोग किया जा रहा है।

५—क़ासिमबाज़ार की कोठी के गुमाश्तों ने ज़बरदस्ती दमदमा, शिवपुर और बामनघाटा इन तीनों ग्रामों पर क़ब्ज़ा कर लिया है और एक कौड़ी मालगुज़ारी नहीं देते।

६—अङ्गरेज़ गुमाश्ते अपना तम्बाकू और दूसरा माल ताल्लुक़दारों और रय्यत के सर ज़बरदस्ती मढ़ देते हैं, जिससे मुल्क वीरान हो रहा है और सरकार की आमदनी को बहुत भारी नुक़सान हो रहा है।

७—पटना, मुङ्गेर इत्यादि के क़िलों में अङ्गरेज़ों के आदमी ज़बरदस्ती घुसे बैठे हैं और मेरी एक नहीं सुनते।

८—बङ्गाल के गञ्जों (मण्डियों) और गोलों में कई अङ्गरेज़ों के आदमी ज़बरदस्ती नाज ख़रीद लेते हैं और जिस तरह चाहे बेचते

हैं, यहाँ तक कि मेरे फ़ौजदारों को फ़ौज की आवश्यकताओं के लिए भी नाज नहीं मिलता।

९—पटने के अन्दर क़रीब चालीस मकानों पर, जो मुसाफ़िरों के लिए बने हैं, कुछ अङ्गरेज़ों ने क़ब्ज़ा कर लिया है, यहाँ तक कि मुझे अपने और अपने कुटुम्बियों के ठहरने के लिए भी जगह न मिल सकी।

१०—पूर्निया की लकड़ी की मण्डी से मुझे पचास हज़ार रुपए साल वसूल होते थे। अब अङ्गरेज़ों ने उस पर क़ब्ज़ा कर लिया है और मुझे एक कौड़ी नहीं मिलती।

११—यह क़ायदा कर दीजे कि सरकार के नौकरों या आदमियों को न कोई अङ्गरेज़ उकसावे और न उन्हें आश्रय दे।

१२—कम्पनी की कोठियों से जो सिपाही मुल्क के विविध भागों में भेजे जाते हैं, वे गाँव के गाँव उजाड़ डालते हैं और उनके अत्याचारों के कारण रय्यत गाँव छोड़ कर भाग जाती है।

१३—इस मुल्क के जो ग़रीब लोग सदा से नमक, छालिया, तम्बाकू इत्यादि का व्यापार करते थे, उन सब की रोज़ी अब यूरोप-निवासियों ने छीन ली है, जिससे कम्पनी को कोई फ़ायदा नहीं और सरकारी आमदनी को बहुत बड़ा नुक़सान है।*

मीर जाफ़र ने प्रार्थना की कि मेरी ये शिकायतें दूर की जावें, किन्तु कलकत्ते की अङ्गरेज़ कौन्सिल ने इस ओर तनिक भी ध्यान न दिया।

* Long's *Selections*, pp 356-358.

मीर क़ासिम के प्रयत्न

उधर मीर क़ासिम का साहस अभी तक टूटा न था। अपनी सरहद से बाहर निकल कर वह इन विदेशियों के बल को तोड़ने के अन्तिम प्रयत्न कर रहा था। सूबेदारी की सनद मीर क़ासिम को सम्राट की ओर से बाज़ाब्ता अता हो चुकी थी और मीर जाफ़र को बिना सम्राट की इजाज़त ज़बरदस्ती अङ्गरेज़ों ने सूबेदार बना दिया था। सम्राट शाहआलम अभी तक फाफामऊ (इलाहाबाद) में था। अवध का नवाब शुजाउद्दौला इस समय मुग़ल साम्राज्य का प्रधान मन्त्री और सम्राट का विशेष संरक्षक था। मीर क़ासिम ने सम्राट और शुजाउद्दौला दोनों से मिलकर अङ्गरेज़ों और बङ्गाल का सब हाल कह सुनाया। शुजाउद्दौला की माँ को उसने माँ और शुजाउद्दौला को अपना भाई कह कर सम्बोधन किया। शुजाउद्दौला ने क़ुरान हाथ में लेकर अङ्गरेज़ों को सज़ा देने और मीर क़ासिम को फिर से मुर्शिदाबाद की मसनद पर बैठाने की क़सम खाई।

बुन्देलखण्ड का राजा इधर कई वर्ष से विद्रोह कर रहा था। उसने दिल्ली दरबार को ख़िराज भेजना बन्द कर दिया था। शुजाउद्दौला सम्राट की ओर से उस पर चढ़ाई की तैयारी कर रहा था। मीर क़ासिम ने इस मौक़े को ग़नीमत समझा, सम्राट तथा शुजाउद्दौला से इजाज़त लेकर अपनी सेना और तोपख़ाने सहित बुन्देलखण्ड पर चढ़ाई की, और शीघ्र ही वहाँ के राजा को अधीन कर लिया। राजा ने तमाम पिछला ख़िराज अदा करने का वादा किया। मीर क़ासिम इलाहाबाद लौट आया। सम्राट और

उसका वज़ीर मीर क़ासिम की इस सेवा से इतने ख़ुश हुए कि उन्होंने तुरन्त अङ्गरेज़ों के विरुद्ध बङ्गाल पर चढ़ाई करने की तैयारी शुरू कर दी। सम्राट की इस चढ़ाई का स्पष्ट उद्देश मीर क़ासिम को फिर से मसनद पर बैठाना था।

अङ्गरेज़ों के नाम शुजाउद्दौला का पत्र

किन्तु चढ़ाई करने से पहले अङ्गरेज़ों को इसकी सूचना देना और उनसे जवाब तलब करना ज़रूरी था। नवाब-वज़ीर शुजाउद्दौला ने इस समय सम्राट की ओर से नीचे लिखा पत्र अङ्गरेज़ गवरनर और उसकी कौन्सिल के नाम कलकत्ते भेजा—

"हिन्दोस्तान के पिछले बादशाहों ने अङ्गरेज़ कम्पनी को महसूल माफ़ कर दिया, उन्हें बहुत सी बस्तियाँ और कोठियाँ अता कीं, और उनके तमाम कारबार में मदद की। इस तरह उन्होंने कम्पनी पर इतनी मेहरबानियाँ की हैं और उसकी इतनी इज़्ज़त बढ़ाई है, जितनी न अपने मुल्क के व्यापारियों के साथ कीं और न किसी दूसरी यूरोपियन क़ौम के साथ। इसके अलावा हाल ही में बादशाह ने मेहरबानी करके मुनासिब से ज़्यादा ख़िताब और रुतबे और उसके बाद जागीरें और दूसरी रिआयतें आप लोगों को अता की हैं। बावजूद इन सब इनायतों के आप लोगों ने बादशाह के मुल्क में दख़ल दिया, बर्धमान, चट्टग्राम वग़ैरह सरकारी इलाक़ों पर क़ब्ज़ा कर लिया और बिना दरबार की रज़ामन्दी के जिस नवाब को चाहा, मसनद से उतार दिया और जिसे चाहा बैठा दिया। आप लोगों ने दरबार के आदमियों को अपने यहाँ क़ैद कर लिया और शहनशाह की हुकूमत की तौहीन और उसकी बेइज़्ज़ती की, आपने देश के
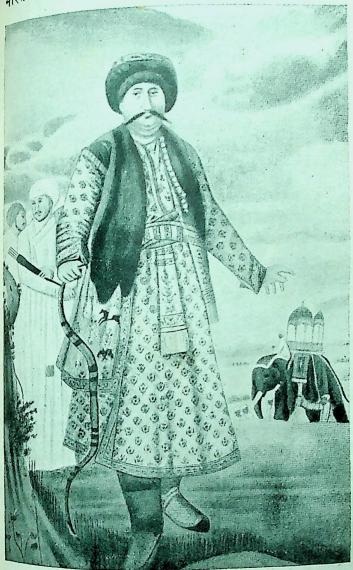
नवाब-वज़ीर शुजाउद्दौला

[मुग़ल-समय के चित्रकार मेहरचन्द के एक चित्र से, जो बर्लिन के म्यूज़ियम ऑफ़ एथनॉलोजी में है—"मुस्लिम रिव्यु" कलकत्ता]

व्यापारियों की तिजारत को बरबाद कर दिया, बादशाह के बाग़ियों को अपने यहाँ पनाह दी, दरबार की आमदनी को नुक़सान पहुँचाया, और अपने .ज़ुल्म से मुल्क के बाशिन्दों को पामाल किया; आप लोग अभी तक कलकत्ते से नई नई फ़ौजें भेज कर शाही इलाक़ों पर लगातार हमले करते रहते हैं। यहाँ तक कि इलाहाबाद के सूबे के कई ग्रामों और परगनों को भी आप लोगों ने लूट लिया है; इन सब नाजायज़ हरकतों की क्या वजह समझी जा सकती है, सिवाय इसके कि आपको दरबार की क़तई परवा नहीं और आप .ख़ुद मुल्क पर क़ब्ज़ा करने की बेजा कोशिशों में लगे हुए हैं ?

"अगर आपने यह सब अपने बादशाह के हुकुम या कम्पनी की हिदायत से किया है, तो मेहरबानी करके मुझे पूरा पूरा हाल बताइए, ताकि मैं उसका मुनासिब इलाज कर सकूँ; लेकिन अगर इन शरारतों की वजह आपकी अपनी ही बेजा ख़्वाहिशें हैं, तो आयन्दा ऐसी हरकतों से बाज़ रहिए; हुकूमत के कामों में दख़ल न दीजे, हर जगह से अपने आदमियों को हटा कर उन्हें अपने मुल्क को वापस भेज दीजिए, पहले की तरह कम्पनी की तिजारत जारी रखिए, और महज़ तिजारती कारबार तक ही अपने तईं महदूद रखिए। अगर आप इस तरह रहना चाहें तो शाही दरबार हमेशा से ज़्यादा आपकी तिजारत में मदद देगा और आपके साथ रिआयतें करेगा। किसी ऊँचे दर्जे के ओहदेदार को बतौर अपने वकील के यहाँ भेज दीजिए, जो तमाम हालात की मुझे ठीक ठीक इत्तला दे, ताकि मैं उसके मुताबिक़ अमल कर सकूँ। अगर (.ख़ुदा न करे) आप सरकशी और नाफ़रमानी करते रहे तो इन्साफ़ की तलवार बग़ावत करने वालों के सरों को खा जायगी। और आप शहनशाह की ख़फ़गी के भार को महसूस

करेंगे, जो ख़ुदा के क़हर का एक नमूना है ; फिर बाद में आपके अपनी ग़लती मानने या दरख़्वास्तें देने से भी काम न चलेगा, क्योंकि शुरू ज़माने से बादशाह आपकी कम्पनी के साथ काफ़ी रिआयतें करते रहे हैं। इसलिए मैंने आपको लिख दिया है, आप जैसा मुनासिब समझिए वैसा कीजिए और मुझे जल्दी जवाब दीजिए।"

निस्सन्देह मुग़ल साम्राज्य के वज़ीर की हैसियत से शुजाउद्दौला का पत्र उचित, उदार तथा न्यायानुकूल था। किन्तु इस पत्र से यह ज़ाहिर है कि उस समय के भारतीय शासकों को पाश्चात्य कूटनीति का बिलकुल ज्ञान न था।

इस पत्र को पाते ही और यह सुनते ही कि सम्राट तथा शुजाउद्दौला को साथ लेकर मीर क़ासिम बिहार लौटने वाला है, अङ्गरेज़ डर गए। 'सीअरुल-मुताख़रीन' में लिखा है—

"शुजाउद्दौला के बल की ख्याति और उसकी सेना की अधिकता तथा वीरता का हाल सुनकर वे डर गए और उन्होंने अपने आप को मैदान में शुजाउद्दौला का मुक़ाबला कर सकने के नाक़ाबिल समझा।"

मीर क़ासिम के प्रान्त छोड़ने के समय अङ्गरेज़ों ने अज़ीमाबाद से आगे बढ़कर सोन नदी को पार कर बक्सर में अपनी छावनी डाल ली थी। अब फिर फुर्ती के साथ बक्सर की छावनी को छोड़ कर सोन पार कर वे अज़ीमाबाद (पटना) की चहारदीवारी के अन्दर आ गए।

शुजाउद्दौला और अङ्गरेज़ों का मुक़ाबला

जब इस पत्र का कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिला तो शुजाउद्दौला

ने सम्राट और मीर क़ासिम के साथ आकर अपनी फ़ौज से पटने को घेर लिया।

बङ्गाल के अङ्गरेज़ इस समय ज़बरदस्त सङ्कट में थे। किन्तु उनकी पुरानी कूटनीति ने इस अवसर पर भी उनका पूरा साथ दिया। सबसे पहले उन्होंने सम्राट और शुजाउद्दौला को एक दूसरे से फोड़ने की कोशिश की। "सीअरुल-मुताख़रीन" का विद्वान लेखक सय्यद गुलामहुसेन, जो अपने पिता के साथ इस अवसर पर सम्राट की सेना में मौजूद था, अपनी पुस्तक में स्वीकार करता है कि लोभवश वह इस समय अङ्गरेज़ों से मिल गया। उसी की मारफ़त अङ्गरेज़ों ने शाहआलम को विश्वास दिलाया कि हम आपके सच्चे "वफ़ादार और खैरख़ाह" हैं। उन्होंने सम्राट से यह भी वादा किया कि हम शुजाउद्दौला को ज़ेर करके उसका सारा सूबा आपके हाथों में दे देंगे। इन चालों द्वारा सम्राट को उन्होंने संग्राम से उदासीन कर दिया। सम्राट शाहआलम को इस समय दिल्ली में अपने विपत्तियों के विरुद्ध चारों ओर से मदद की ज़रूरत थी और उसकी इस कमज़ोरी तथा अदूरदर्शिता से अङ्गरेज़ों को अपनी कूटनीति के लिए काफ़ी सहारा मिल गया। निस्सन्देह भारत सम्राट का इस समय का भोलापन दर्दनाक और हैरतअङ्गेज़ था।

एक दूसरा विश्वासघातक महाराजा शिताबराय का बेटा महाराजा कल्यान सिंह शुजाउद्दौला की सेना में एक ऊँचा ओहदेदार था और अपने यहाँ की सेना की संख्या, सामान, इरादों इत्यादि की

पूरी सूचना अङ्गरेज़ कम्पनी के अफ़सरों को देता रहता था। उसने अपने एक लेख में स्वीकार किया है—

"महाराजा शिताबराय उस समय अज़ीमाबाद में थे, उनका मुन्शी राय साधोराम फुलवाड़ी में मुझसे मिलने के लिए आया××× मैंने उससे यह कहा कि अङ्गरेज़ अफ़सरों को और मीर मोहम्मद जाफ़र ख़ाँ को विश्वास दिला दो कि मैं उनके साथ हूँ और इस बात के इन्तज़ार में बैठा हूँ कि मौक़ा मिले और मैं लड़ाई का सारा रुख़ उनके पक्ष में मोड़ दूँ। राय साधोराम ने मेरा सन्देश पहुँचा दिया और वापस आकर मुझे इत्तला दी कि आपके सहानुभूति और आशा के सन्देश को पाकर अङ्गरेज़ और नवाब दोनों ख़ुश हुए और उन्हें आप पर पूरा भरोसा है।"*

एक तीसरे देशघातक और विश्वासघातक ज़ैनुल आबदीन का एक पत्र मेजर मनरो के नाम २२ सितम्बर सन् १७६४ को कलकत्ते पहुँचा। इस पत्र में लिखा है—

"असद ख़ाँ बहादुर द्वारा आपका मित्रता-सूचक पत्र मेरे पास पहुँचा, जिससे मेरी इज़्ज़त बढ़ी। उस पत्र में आपने इच्छा प्रकट की है कि जितने अधिक मज़बूत और हथियारबन्द मुग़ल, तूरानी तथा अन्य सवारों को हो सके, साथ लेकर मैं आपसे आ मिलूँ।

"जनाबमन्, हर शख़्स के लिए और ख़ासकर ख़ानदानी लोगों के लिए अपनी वक्त की मुलाज़मत को छोड़कर अपने मालिक के दुश्मनों से जा मिलना निहायत ज़िल्लत की बात है, तथापि कुछ हालात ऐसे हैं जिनमें हम लोगों के लिए ऐसा करना जायज़ है××× "†

* J. B. & O. R. S. vi, pp. 148, 149.
† Long's *Selections*, pp. 358, 359.

निस्सन्देह भारतीय नरेशों में परस्पर ईर्षा इस समय हद को पहुँची हुई थी।

इस दरमियान बरसात शुरू हो गई और मौसम के कारण अथवा इन सब बातों से विवश होकर शुजाउद्दौला पटने का मोहासरा छोड़कर बक्सर लौट आया। बक्सर ही में उसने बरसात गुज़ारने का निश्चय किया।

उधर मीर जाफ़र ने मसनद पर दोबारा बैठते ही महाराजा नन्दकुमार को अपना दीवान नियुक्त किया। नन्दकुमार सच्चा और वफ़ादार साबित हुआ। अङ्गरेज़ों की चालों को वह ख़ासा समझ गया था। नन्दकुमार की सलाह से मीर जाफ़र ने अब यह कोशिश की कि मैं सम्राट शाहआलम तथा वज़ीर शुजाउद्दौला को ख़ुश करके अपनी सूबेदारी के लिए बाज़ाब्ता शाही फ़रमान हासिल करलूँ। निस्सन्देह मीर जाफ़र की यह इच्छा सर्वथा उचित और नियमानुकूल थी। किन्तु सम्राट और मीर जाफ़र का मेल अङ्गरेज़ों के लिए हितकर न हो सकता था; इसलिए ख़बर पाते ही अङ्गरेज़ों ने फ़ौरन् निर्दोष नन्दकुमार को ज़बरदस्ती दीवानी से अलग कर दिया और मीर जाफ़र को पटने से कलकत्ते बुलवा लिया। कठपुतली तथा पङ्गुल मीर जाफ़र को अङ्गरेज़ों की आज्ञा का पालन करना पड़ा।

मेजर कारनक की जगह मेजर मनरो अब पटने की सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ। जुलाई मास में वह पटने पहुँचा। अङ्गरेज़ों को डर था कि यदि लड़ाई देर तक चली तो सम्भव है

मराठों और अफ़ग़ानों की सेनाएँ शुजाउद्दौला की मदद के लिए आ जावें। इसलिए मेजर मनरो को आज्ञा दी गई कि तुम शुजाउद्दौला की सेना पर हमला करके लड़ाई का शीघ्र अन्त कर डालो। मालूम होता है कि मेजर मनरो के आते ही कम्पनी के कुछ हिन्दोस्तानी सिपाही मीर जाफ़र के साथ अङ्गरेज़ों की इस ज़बरदस्ती को देखकर वा किसी दूसरे कारण बग़ावत कर बैठे। मेजर मनरो ने फ़ौरन् बिना किसी तहक़ीक़ात या पूछ ताछ के तमाम बाग़ियों को तोप के मुँह से उड़वा दिया।

इसके बाद मेजर मनरो ने रोहिताश्व (रोहोतास) के क़िले पर क़ब्ज़ा किया। इस क़िले के विषय में, सय्यद ग़ुलामहुसेन लिखता है कि मेजर मनरो ने आते ही डॉक्टर फ़ुलरटन की मारफ़त सय्यद ग़ुलामहुसेन को पत्र लिखा कि—"यदि आप रोहिताश्व का क़िला अङ्गरेज़ों के हवाले करने की तदबीर कर सकें तो आप अङ्गरेज़ों की मित्रता और कृतज्ञता के हक़दार होंगे।" सय्यद ग़ुलामहुसेन लिखता है कि—"इस सूचना के मिलने पर मैंने राजा साहूमल से बातचीत की।" राजा साहूमल रोहिताश्व के क़िले का क़िलेदार था। वह ग़ुलामहुसेन की बातों में आगया। उसने अपनी शर्तें पेश कीं। अङ्गरेज़ों ने उसकी शर्तें मञ्ज़ूर करलीं और चुपचाप उसकी मदद से क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। किन्तु बाद में राजा साहूमल के साथ अङ्गरेज़ों ने एक भी शर्त का पालन नहीं किया। राजा साहूमल ने ग़ुलामहुसेन से शिकायत की, किन्तु व्यर्थ।

यह भी कहा जाता है कि इस समय मीर क़ासिम के साथ शुजाउद्दौला का व्यवहार जैसा चाहिए वैसा न रहा था।

बक्सर की लड़ाई

१५ सितम्बर सन् १७६४ को बक्सर में दोनों ओर की सेनाओं में संग्राम हुआ।

निस्सन्देह शाहआलम के दिल पर अङ्गरेज़ों की चालों का काफ़ी असर हो चुका था। "सीअरुल-मुताख़रीन" का रचयिता, जो इस कार्य में अङ्गरेज़ों का विशेष मददगार था, लिखता है—

"किन्तु शाहआलम ने जो भीतर से वज़ीर (शुजाउद्दौला) से असन्तुष्ट था XXX कई तरह के बहाने करके समय टालना उचित समझा। कारण यह था कि वह कुछ समय पहले ही से अङ्गरेज़ों से मिल जाने की तदबीर सोच चुका था; क्योंकि अङ्गरेज़ क़ौम इस विषय का कुछ सन्देशा उसके पास भेज चुकी थी, जिससे वह उनसे मिल जाने का इच्छुक हो गया था और उनकी सहायता से लाभ उठाने का भी निश्चय कर चुका था।"

जब कि स्वयं भारत सम्राट की यह हालत थी तो न जाने और कितने भारतीय सेनानियों ने सक्रिय अथवा निष्क्रिय रूप में शत्रु का साथ दिया होगा। परिणाम यह हुआ कि दिनभर के घमासान में लगभग पाँच छै हज़ार आदमी काम आए और असहाय शुजाउद्दौला को अपनी सेना सहित मैदान से पीछे हट जाना पड़ा, जिसमें कहा जाता है उसके हज़ारों सैनिक गङ्गा की दलदल में फँस कर रह गए।

मीर क़ासिम जानता था कि यदि मैं अङ्गरेज़ों के हाथों में पड़ गया तो सिराजुद्दौला की निस्बत बेहतर सलूक की मुझे अङ्गरेज़ों से आशा नहीं हो सकती । इसलिए वह बक्सर से भागकर सीधा इलाहाबाद पहुँचा । वहाँ से चलकर उसने बरेली में दम लिया और अन्त को १२ वर्ष से ऊपर एक गृहविहीन जलावतन की तरह जगह जगह मुसीबतें उठाकर सन् १७७७ ई० में देहली में उसकी मृत्यु हुई । निस्सन्देह मीर क़ासिम का नाम भारत की स्वाधीनता के लिए अपने आप को मिटा देने वालों में चिर-स्मरणीय रहेगा।

सम्राट शाहआलम ने लड़ाई के समाप्त होते ही शुजाउद्दौला का साथ छोड़कर अङ्गरेज़ी सेना के साथ डेरा डाला । अङ्गरेज़ों ने फ़ौरन् उसके सामने हाज़िर होकर उसका विधिवत् आदर मान किया और उसे अपना सम्राट मानकर सलाम किया । इसी के साथ अङ्गरेज़ों ने गङ्गा को पार किया और वहाँ से शुजाउद्दौला के दीवान बेनीबहादुर को बुलवाकर शुजाउद्दौला के साथ सुलह की कोशिश की । अङ्गरेज़ों ने दीवान बेनीबहादुर को यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि कम्पनी ने अपने मुलाज़िमों को आज्ञा दे दी है कि हिन्दोस्तान के अन्दर अब और नए इलाक़े फ़तह न किए जायँ ; तथापि शुजाउद्दौला और अङ्गरेज़ों में इस समय सुलह न हो सकी ।

शुजाउद्दौला के साथ सन्धि

मालूम होता है कि सम्राट बक्सर से इलाहाबाद की ओर चल

दिया। शुजाउद्दौला फिर से मुक़ाबले की तैयारी के इरादे से पीछे हटा और अङ्गरेज़ शुजाउद्दौला का पीछा करने के लिए आगे बढ़े।

मार्ग में अङ्गरेज़ों ने चुनार के क़िले का मोहासरा किया। "सीअ-रुल-मुताख़रीन" में लिखा है कि अङ्गरेज़ सेनापति ने कम्पनी के नाम का सम्राट का एक दस्तख़ती परवाना क़िलेदार मोहम्मद बशीर ख़ाँ के सामने पेश किया, किन्तु क़िले के भीतर की भारतीय सेना ने इस परवाने की ख़ाक परवा न की। इस सेना ने जब यह देखा कि हमारा क़िलेदार भी डाँवाडोल हो रहा है तो उन्होंने उसे क़िले से बाहर निकाल कर उस सड़क पर छोड़ दिया, जो नवाब शुजा-उद्दौला के ख़ेमों की ओर जाती थी और स्वयं वीरता के साथ विदेशियों से क़िले की रक्षा शुरू की। अङ्गरेज़ों ने अपनी तोपें सामने कीं। कई दिन की गोलेबारी के बाद वे केवल क़िले की दीवार का एक थोड़ा सा टुकड़ा गिरा पाए, तथापि ज्योंही एक दिन अँधे-री रात में अङ्गरेज़ी सेना ने इस रास्ते क़िले के भीतर प्रवेश करना चाहा, भीतर की भारतीय सेना ने अपनी बन्दूक़ों से उनमें से अधि-कांश का वहीं दीवार के ऊपर काम तमाम कर दिया। लाचार हो-कर और इस बुरी तरह हार कर अङ्गरेज़ों को चुनार का मोहासरा छोड़ इलाहाबाद का रास्ता लेना पड़ा। वास्तव में बिना रिशवत, दग़ा और इसी प्रकार के दूसरे उपायों के अङ्गरेज़ों ने कभी कहीं भी किसी भारतीय सेना के उपर विजय प्राप्त नहीं की।

इलाहाबाद के क़िले की संरक्षक सेना ने भी अङ्गरेज़ी सेना का ख़ासा मुक़ाबला किया। किन्तु अङ्गरेज़ों के सौभाग्य से वही

नजफ़ ख़ाँ, जिसने ऊदवानाला पर अङ्गरेज़ों को इस बुरी तरह दिक़ किया था और जो बहुत अरसे तक इलाहाबाद के क़िले में रह चुका था और उसके रहस्यों से परिचित था, इस मौक़े पर अङ्गरेज़ों से मिल गया। क़िले की दीवारों को गिराने के लिए अङ्गरेज़ सेना के पास जो एक सबसे अच्छी तोप थी वह हिन्दोस्तान की बनी हुई थी और शुजाउद्दौला के ख़ेमों की लूट में उन्हें मिली थी। नजफ़ ख़ाँ ने अङ्गरेज़ों को क़िले के सब रास्ते बतला दिए, और इस तोप ने भी उन्हें ख़ासी मदद दी। अन्त में थोड़ी सी लड़ाई के बाद अङ्गरेज़ी सेना ने इलाहाबाद के क़िले में प्रवेश किया। क़िले पर हमला करने और भीतर वालों से शर्तें तय करने में महाराजा शिताबराय की फ़ौज आगे थी, किन्तु क़ब्ज़ा करते समय कम्पनी की सेना आगे थी।

शुजाउद्दौला अब भाग कर बरेली पहुँचा। वहाँ से लौट कर मलहरराव होलकर की कुछ मराठा सेना की सहायता से उसने कड़ा में अङ्गरेज़ी सेना पर फिर हमला किया। एक दो छोटी मोटी लड़ाइयाँ भी हुईं। अन्त में महाराजा शिताबराय ने बीच में पड़ कर निम्नलिखित शर्तों पर कम्पनी और शुजाउद्दौला में सुलह करवा दी—

१—यह कि युद्ध के ख़र्च के लिए शुजाउद्दौला पचास लाख रुपए कम्पनी को दे। पच्चीस लाख फ़ौरन् और पच्चीस लाख सालाना क़िस्तों में।

२—यह कि इलाहाबाद के आस पास का प्रान्त, जो इससे

पूर्व अवध के सूबे में शामिल था, सम्राट के उपयोग के लिए अलग कर दिया जाय। इलाहाबाद शहर और क़िला सम्राट के निवास के लिए नियुक्त हो और इलाहाबाद के क़िले में सम्राट की रक्षा के लिए कम्पनी की एक सेना रहे।

३—यह कि ग़ाज़ीपुर और उसके आस पास का इलाक़ा कम्पनी को दे दिया जाय।

४—यह कि अङ्गरेज़ों का एक वकील शुजाउद्दौला के दरबार में रहा करे, किन्तु नवाब शुजाउद्दौला के राज-प्रबन्ध में वह किसी तरह का दख़ल न दे।

और ५—यह कि आयन्दा दोनों पक्ष दूसरे पक्ष के शत्रु या मित्र को अपना शत्रु या मित्र समझें।

अवध के नवाब-वज़ीर के साथ अङ्गरेज़ों की यह पहली सन्धि थी। अवध की नवाबी का प्रारम्भ सन् १७२० के लगभग दिल्ली दरबार की निर्बलता के दिनों में हुआ था। दिल्ली के सम्राट ने पहले नवाब सआदत ख़ाँ को अवध का सूबेदार नियुक्त करके भेजा था। उसके बाद सआदत ख़ाँ के भतीजे दूसरे नवाब सफ़दरजङ्ग ने दो करोड़ रुपए नादिरशाह को नज़र करके अपनी नवाबी क़ायम रक्खी। सफ़दरजङ्ग ही को पहली बार दिल्ली सम्राट ने साम्राज्य की वज़ारत अता की और तभी से अवध के नवाब नवाब-वज़ीर कहलाने लगे। शुजाउद्दौला सफ़दरजङ्ग का बेटा था।

निस्सन्देह नवाब शुजाउद्दौला ने अङ्गरेज़ों का ख़ासा मुक़ाबला किया और इसमें भी सन्देह नहीं कि यदि स्वयं शाहआलम और

उसके अन्य साथी अङ्गरेज़ों के हाथों में न खेल जाते तो बक्सर के मैदान में ही शुजाउद्दौला अङ्गरेज़ों की उभरती हुई ताक़त को सदा के लिए अन्त कर देता। शाहआलम की अयोग्यता ने शुजाउद्दौला को पङ्गुल कर दिया। किन्तु शुजाउद्दौला के बाद से सन् १८५६ तक अङ्गरेज़ कम्पनी और भारतीय नरेशों के परस्पर संग्रामों में भारतवासियों को अवध के नवाबों से कभी भी विशेष फ़ायदा नहीं पहुँचा। इसके विपरीत ब्रिटिश सत्ता के क़ायम करने में अवध के निर्बल नवाब प्रायः कम्पनी की साज़िशों में एक उपयोगी साधन साबित हुए। कम्पनी की भारतीय सेना के अधिकांश सिपाही सदा अवध से ही आते रहे और कम्पनी के अफ़सरों को जब जब रुपए की ज़रूरत पड़ी तो, डर कर अथवा मूर्खता वश, उन्हें धन देने में अवध के ख़ज़ाने ने सदा कामधेनु का काम दिया।

मीर जाफ़र का अन्त

मीर जाफ़र को भी अङ्गरेज़ों ने अपनी महत्त्वाकांक्षा की शिखर तक पहुँचने के लिए बतौर एक सीढ़ी के इस्तेमाल किया और ज्यों ही वे ऊपर तक पहुँच गए, उन्होंने बिना सङ्कोच उसे लात मार कर अलग कर दिया। उसकी ज़िन्दगी के आख़िरी दिनों को उन्होंने अत्यन्त दुखमय बना दिया। अक्तूबर सन् १७६४ में उससे पाँच लाख रुपए माहवार कम्पनी को देने का वादा करा लिया, जिससे वह अन्त तक बहुत तङ्ग रहा और सदा शिकायत करता रहा। सन्धि से बाहर नित्य नई और बढ़ बढ़ कर माँगें उससे की जाती

रहीं। आए दिन की इन ज़बरदस्तियों ने उसके स्वास्थ्य और आयु दोनों पर असर डाला। प्रसिद्ध इतिहास-लेखक सर विलियम हण्टर लिखता है—

"मीर जाफ़र जनवरी सन् १७६५ में मरा और कहा जाता है कि जिस बेजा तरीक़े से कलकत्ते के अङ्गरेज़ों ने अपने व्यक्तिगत नुक़सानों के हरजाने की अदायगी के लिए उससे तक़ाज़े शुरू किए, उनसे उसकी मौत और जल्दी हुई।"*

वास्तव में मीर जाफ़र की मृत्यु फ़रवरी सन् १७६५ के आरम्भ में मुर्शिदाबाद के महल में हुई। उसकी आयु उस समय ६५ वर्ष की थी। अन्त समय में मीर जाफ़र की इच्छा के अनुसार उसके अनेक सम्बन्धियों और बेटों के रहते हुए उसके चिर-मित्र महाराजा नन्दकुमार ने एक हिन्दू मन्दिर से गङ्गाजल लाकर मीर जाफ़र के मुँह में डाला और उसी जल से अपने हाथों से उसने मीर जाफ़र को आख़िरी स्नान कराया।

* "His death took place in January 1765, and is said to have been hastened by the unseemly importunity with which the English at Calcutta pressed upon him their private claims to restitution."—Sir W. W. Hunter, in *Statistical Account of Bengal* vol. ix, p. 191.

छठा अध्याय

मीर जाफ़र की मृत्यु के बाद

नवाब नजमुद्दौला

मीर जाफ़र के बड़े बेटे मीरन की हत्या का हा[ल] ऊपर आ चुका है। मीर जाफ़र का दूस[रा] बेटा नजमुद्दौला अब मुर्शिदाबाद [की] मसनद पर बैठा, किन्तु असम्भव था [कि] अङ्गरेज़ हर ऐसे अवसर से पूरा लाभ [न] उठाते। कलकत्ते का अङ्गरेज़ गवर[नर] उन दिनों "बङ्गाल में फ़ोर्ट विलियम [कि]ले का गवरनर" कहलाता था। 'गवरनर और कौन्सिल' के पा[स] मुर्शिदाबाद की सरकारी सेना की अपेक्षा कहीं अधिक सेना थी। बिना इस 'गवरनर और कौन्सिल' की स्वीकृति के मुर्शिदाबाद [का] कोई सूबेदार अब अपने आप को क्रियात्मक सूबेदार न समझ सक[ता] था। उस समय के गवरनर स्पेन्सर ने जो वन्सीटार्ट का उत्तराधिकारी था और उसकी अङ्गरेज़ कौन्सिल ने नजमुद्दौला को उस सम[य] तक सूबेदार स्वीकार करने से इनकार किया, जब तक कि उस[ने]

एक नई सन्धि पर दस्तख़त न करा लिए। इस नई सन्धि की मुख्य शर्तें ये थीं—

(१) यह कि नवाब नजमुद्दौला 'नायब सूबेदार' का एक नया ओहदा क़ायम करे, नायब सूबेदार ही नवाब के नाम पर शासन-प्रबन्ध का समस्त कार्य करे, और अङ्गरेज़ों का एक ख़ास आदमी मोहम्मद रज़ा ख़ाँ इस नए ओहदे पर नियुक्त किया जावे।

(२) माल के महकमे में बिना कलकत्ते की अङ्गरेज़ कौन्सिल की रज़ामन्दी के नवाब न किसी को बरख़ास्त करे और न किसी की जगह कोई नया आदमी नियुक्त करे।

(३) कम्पनी को फ़ौज के ख़र्च के लिए पाँच लाख रुपए माहवार बराबर मुर्शिदाबाद के ख़ज़ाने से मिलते रहें।

(४) सिवाय इतनी फ़ौज के जो सरकारी मालगुज़ारी वसूल करने और दरबार की इज़्ज़त क़ायम रखने के लिए ज़रूरी हो, नवाब और अधिक फ़ौज अपने पास न रक्खे।

और (५) देश भर में हर तरह के व्यापार पर अङ्गरेज़ों के लिए महसूल माफ़ रहे।

निस्सन्देह इन शर्तों के बाद सूबेदार नजमुद्दौला की सत्ता केवल छाया मात्र रह गई। तथापि नजमुद्दौला को ये सब शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं, और इनके अलावा बीस लाख रुपए नक़द बतौर दोस्ताने या रिशवत के स्पेन्सर और उसके साथियों की नज़र करने पड़े। यह बीस लाख की रक़म गवरनर और उसकी कौन्सिल के सदस्यों ने आपस में बाँट ली।

नए नवाब ने महाराजा नन्दकुमार को अपना दीवान नियु[illegible] करना चाहा ; किन्तु अङ्गरेज़ नन्दकुमार से काफ़ी सावधान हो[illegible] चुके थे। उन्होंने इजाज़त न दी, और नबाब पर उसकी बेबसी[illegible] प्रकट कर देने के लिए वे महाराजा नन्दकुमार को क़ैद करके ज़बर-दस्ती मुर्शिदाबाद से कलकत्ते ले आए।

क्लाइव का दोबारा भारत आना

कम्पनी का कारबार अब काफ़ी बढ़ गया था। उसकी आकांक्षाएं[illegible] अत्यन्त ऊँची होगई थीं। इस कारबार की सुव्यवस्था और इ[illegible] आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए डाइरेक्टरों ने क्लाइव को, जो अ[illegible] 'लॉर्ड क्लाइव' था, दोबारा भारत भेजना आवश्यक समझा[illegible] क्लाइव फिर एक बार 'फ़ोर्ट विलियम का गवरनर' नियुक्त हुआ[illegible] जिस समय क्लाइव इङ्गलिस्तान से कलकत्ते आ रहा था, मद्रास[illegible] में उसने मीर जाफ़र की मृत्यु का समाचार सुना। उसका खा[illegible] उद्देश इस समय बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी के अधि[illegible]कार शाहआलम से प्राप्त करना था। इतिहास-लेखक व्हीलर[illegible] लिखता है—

"मीर जाफ़र की मृत्यु की ख़बर सुनकर क्लाइव बहुत ख़ुश हुआ। व[illegible] अब बङ्गाल प्रान्तों के राज-शासन में उस नई पद्धति को जारी करने के लि[illegible] उत्सुक था, जिसका सात साल से अधिक हुए वह इङ्गलिस्तान के प्रधा[illegible] मन्त्री पिट से ज़िक्र कर चुका था। वह चाहता था कि एक ऐसे नए आद[illegible] को नवाब बना दिया जाय जो शून्य मात्र हो, सारा शासन-प्रबन्ध हिन्दु[illegible]

स्तानी कर्मचारियों के हाथों में रहे, असली मालिक अङ्गरेज़ रहें, वे ही मालगुज़ारी वसूल करें, तीनों प्रान्तों की बाहर के हमलों और भीतर के विद्रोहों से रक्षा करें, जङ्ग करें और सन्धियाँ करें; किन्तु अङ्गरेज़ों की यह बादशाहत जन-सामान्य की आँखों से छिपी रहे, वे केवल नवाब का नाम लेकर और मुग़ल सम्राट के दिए हुए अधिकार से शासन करते रहें।"*

क्लाइव को उस समय तक यह मालूम न था कि अङ्गरेज़ों ने नजमुद्दौला को नवाब स्वीकार कर लिया है। उसकी तजवीज़ यह थी कि मीर जाफ़र के छै वर्ष के एक पोते को मुर्शिदाबाद की मसनद पर बैठाकर उसके नाम पर अपनी यह समस्त योजना पूरी करे।

मई सन् १७६५ में क्लाइव कलकत्ते पहुँचा। यहाँ आकर जब उसने सुना कि स्पेन्सर और उसके साथियों ने नजमुद्दौला को नवाब स्वीकार कर लिया और इस सौदे में बीस लाख रुपए

---

* ". . . was delighted at the news. He was anxious to introduce the new system for the Government of the Bengal provinces, which he had unfolded to Pitt more than seven years before. He would set up a new Nawab who should be only a cypher. He would leave the administration in the hands of native officials. The English were to be the real masters; they were to take over the revenues, defend the three provinces from invasion and insurrection, make war and conclude peace. But the sovereignty of the English was to be hidden from the public eye. They were to rule only in the name of the Nawab and under the authority of the Moghul Emperor."—Wheeler's *Early Records of British India*, pp. 329, 330.

नक़द अपनी जेबों में भर लिए, तो क्लाइव को बड़ा क्रोध आया। तथापि वह भारत पहुँचते ही अपनी पूर्वोक्त योजना की पूर्ति के प्रयत्नों में लग गया।

सम्राट शाहआलम अभी तक इलाहाबाद में था और सम्राट तथा नवाब-वज़ीर शुजाउद्दौला दोनों इस समय अङ्गरेज़ों से डरे हुए थे। बङ्गाल के तीनों प्रान्तों की 'दीवानी' के अधिकार सम्राट से प्राप्त कर लेने की अङ्गरेज़ पहले भी कोशिशें कर चुके थे। यह बात क्लाइव की ऊपर लिखी योजना में भी शामिल है। उसने इस कार्य के लिए अब सीधे इलाहाबाद पहुँचने का इरादा किया।

मार्ग में सब से पहले क्लाइव मुर्शिदाबाद ठहरा। वहाँ मोहम्मद रज़ा ख़ाँ की सहायता से क्लाइव ने पाँच लाख रुपए नक़द बतौर नज़र के अपने लिए नवाब नजमुद्दौला से वसूल किए और शेष इस तरह का पक्का इन्तज़ाम कर दिया कि जिससे आयन्दा के लिए प्रायः समस्त क्रियात्मक सत्ता अङ्गरेज़ों के हाथों में आ गई और सूबेदार केवल एक नाम मात्र की चीज़ रह गया। वहाँ से चलकर क्लाइव जनरल कारनक के पास बनारस पहुँचा। शुजाउद्दौला भी उस समय बनारस में था। शुजाउद्दौला और अङ्गरेज़ों के बीच हाल ही में सन्धि हो चुकी थी। दो अगस्त को क्लाइव की शुजाउद्दौला से भेंट हुई। उसी दिन इस हाल की सन्धि की ज़रा भी परवा न करते हुए क्लाइव ने शुजाउद्दौला को फिर से लड़ाई की धमकी देकर उससे एक नई सन्धि मञ्ज़ूर करा ली, जिसके अनुसार नवाब-वज़ीर ने अब इलाहाबाद और कड़ा दोनों स्थान सम्राट

सम्राट शाहआलम लॉर्ड क्लाइव को बङ्गाल बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्रदान कर रहा है।

[From A Comprehensive History of India, by Henry Beveridge Vol. II.]

लिए (?) कम्पनी को दे दिए और लड़ाई का जो हरजाना पिछली सन्धि में पचास लाख रुपए नियुक्त किया गया था उसे बढ़ाकर अब ६ लाख पाउण्ड अर्थात् लगभग ६० लाख रुपए कम्पनी को भर देने का वादा किया।

कम्पनी को दीवानी के अधिकार

बनारस से आगे बढ़ कर क्लाइव इलाहाबाद पहुँचा। ९ अगस्त सन् १७६५ को उसने सम्राट शाहआलम से भेंट की और उसी रोज़ बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी के अधिकार अङ्गरेज़ कम्पनी को देकर निर्बल तथा अदूरदर्शी शाहआलम ने मुर्शिदाबाद की सूबेदारी और मुग़ल साम्राज्य दोनों की मौत के परवाने पर दस्तख़त कर दिए। इसका मतलब यह था कि आयन्दा से तीनों प्रान्तों का लगान और अन्य राजकर वसूल करने और उसमें से २६ लाख रुपए सम्राट की मालगुज़ारी दिल्ली भेजते रहने और मुर्शिदाबाद दरबार के ख़र्च के लिए रक़म अदा करने का काम कम्पनी के सुपुर्द होगया, तीनों प्रान्तों का शेष समस्त शासन प्रबन्ध सूबेदार के हाथों में रहा और बाक़ी बची मालगुज़ारी कम्पनी की सम्पत्ति हो गई। इस समय से बङ्गाल में दो अलग अलग 'सरकारें' साफ़ दिखाई देने लगीं—एक मुर्शिदाबाद की भारतीय सरकार और दूसरी कलकत्ते की अङ्गरेज़ सरकार।

इसमें सन्देह नहीं कि सम्राट से इस महत्त्वपूर्ण परवाने के हासिल करने में बलप्रदर्शन से भी काम लिया गया। 'सीअरुल-मुताख़रीन' में लिखा है कि सम्राट और वज़ीर दोनों को—

"अपनी इच्छा के विरुद्ध मजबूर होकर यह प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी।"

क्लाइव अब अपना उद्देश पूरा करके इलाहाबाद से कलकत्ते वापस आ गया।

नजमुद्दौला की हत्या

क्लाइव के मुर्शिदाबाद से बनारस के लिए रवाना होते ही अचानक नवाब नजमुद्दौला की मृत्यु हो गई। जिन हालात में यह मृत्यु हुई वे अत्यन्त शक पैदा करने वाले थे। 'सीअरुल-मुताख़रीन' से मालूम होता है कि नजमुद्दौला और मोहम्मद रज़ा ख़ाँ दोनों मुर्शिदाबाद के बाहर एक बाग़ तक क्लाइव को छोड़ने के लिए आए। क्लाइव के रवाना हो जाने पर जब ये दोनों अपने अपने महलों की ओर लौटे तो मार्ग ही में नौजवान नवाब के पेट में एकाएक ज़बरदस्त दर्द पैदा हुआ और महल तक पहुँचते पहुँचते उसकी मृत्यु हो गई। लिखा है कि उन दिनों आम लोगों का ज़ोरों के साथ यह ख़याल था कि मोहम्मद रज़ा ख़ाँ ने नजमुद्दौला को मरवा डाला।

मोहम्मद रज़ा ख़ाँ अङ्गरेज़ों का ख़ास आदमी था। वेरेल्स्ट नामक अङ्गरेज़ के एक पत्र से मालूम होता है कि कलकत्ते में उन दिनों यह एक ज़बरदस्त अफ़वाह थी कि नवाब नजमुद्दौला की हत्या में लॉर्ड क्लाइव और उसके कई अङ्गरेज़ साथियों की साज़िश थी।*

* *Third Report 1773*, p. 325.
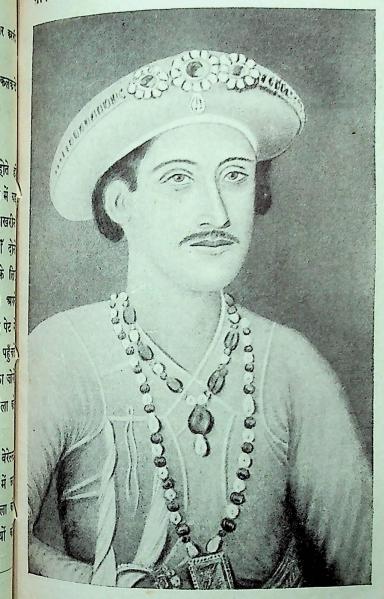
नज़मुद्दौला

[From The History of Murshidabad by Major Walsh.]

इसमें सन्देह नहीं, क्लाइव नजमुद्दौला के ख़िलाफ़ था। पाँच लाख रुपए नक़द ले लेने के बाद उसने डाइरेक्टरों के नाम एक पत्र में लिखा—"नजमुद्दौला के हाथों में सत्ता सौंप देना और ख़ैरियत से रह सकना नामुमकिन है।" * इसके अतिरिक्त कोई नीच से नीच काम भी ऐसा न हो सकता था जिसे अपनी इष्ट-सिद्धि के लिए क्लाइव करने को तैयार न हो जाता। नजमुद्दौला की मृत्यु से एक लाभ कम्पनी को और हुआ। उन्होंने 'दीवानी' मिलने पर नवाब के सैनिक ख़र्च के लिए ५५ लाख रुपए सालाना देश की आय में से देने का वादा किया था, अब उसे घटा कर ४१ लाख ८१ हज़ार कर दिया।

नजमुद्दौला की मृत्यु के साथ साथ मुर्शिदाबाद के नवाबों की सत्ता की रही सही छाया भी बङ्गाल के इतिहास से लोप हो जाती है। यद्यपि नाम अथवा उपचार मात्र के लिए नजमुद्दौला के बाद उसका एक छोटा भाई मसनद पर बैठा दिया गया और यह दो-अमली वारन हेस्टिंग्स के समय तक जारी रही, तथापि वास्तव में बङ्गाल का सूबेदार अब केवल एक 'शून्य' रह गया, तीनों प्रान्तों का शासन अङ्गरेज़ों के नियुक्त किए हुए तीन 'नायबों' के हाथों में आगया और केवल 'अङ्गरेज़ सरकार' का ही समस्त बङ्गाल में ज़हूर दिखाई देने लगा। उस समय से बङ्गाल का

* "It is impossible, therefore, to trust him with power, and be safe."—Clive's letter to the Court of Directors,, dated 30th September, 1765.

१५

इतिहास केवल अङ्गरेज़ गवरनरों के कारनामों का इतिहास रह जाता है।

भयङ्कर लूट और दो-अमली

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के तमाम छोटे बड़े अङ्गरेज़ मुलाज़िमों में धन का लोभ और दुराचार दोनों अब इस दर्जे फैल गए थे कि नेकी, बदी अथवा न्याय, अन्याय का विचार तो दूर रहा, अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के सामने वे कम्पनी के हित-अहित की भी परवा न करते थे। ३० सितम्बर सन् १७६५ को क्लाइव ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक लम्बा पत्र लिखा, जिससे उस समय के अङ्गरेज़ों की हालत का ख़ासा पता चलता है। इस पत्र में क्लाइव लिखता है—

"XXX ये लोग (कम्पनी के अङ्गरेज़ मुलाज़िम) अपने अपने व्यक्तिगत तात्कालिक लाभ के पीछे इस उत्सुकता के साथ बढ़े चले जा रहे हैं कि इनमें से अपनी इज़्ज़त का ख़याल अथवा अपने मालिकों की ओर अपना कर्त्तव्य पूरा करने का ख़याल दोनों जाते रहे। इन लोगों के पास एकाएक दौलत बढ़ गई है, और बहुत सों ने उसे नाजायज़ तरीक़ों से हासिल किया है; जिसके कारण हर तरह की ऐश-परस्ती इन लोगों में घर कर गई है, और यह ऐश-परस्ती अत्यन्त नाशकारक हद को पहुँच गई है। XXX यह बुराई रोग की तरह एक से दूसरे को लगती गई और दीवानी तथा फ़ौजी दोनों महकमों में, मुहर्रिरों, झण्डा-बरदारों और स्वतन्त्र व्यापारियों तक में फैल गई है। XXX

"मैं अभी जान भी न पाया था कि यह धन किन किन विविध उपायों द्वारा प्राप्त किया गया है कि इतने में मैं यह देख कर अत्यन्त चकित रह

गया कि ये लोग इतनी जल्दी धनवान हो गए हैं कि अङ्गरेज़ी बस्ती भर में शायद ही कोई एक अङ्गरेज़ ऐसा होगा, जिसने बहुत ही थोड़े समय बाद अपनी विशाल पूँजी सहित इङ्गलिस्तान लौट जाने का निश्चय न कर रक्खा हो।"

कम्पनी के अङ्गरेज़ों के धन कमाने का एक ख़ास उपाय उन दिनों खुले डाके डालना था। इतिहास-लेखक टॉरेन्स ने साफ़ लिखा है कि ये लोग "बङ्गाल तथा अन्य स्थानों में निर्भय होकर लूट के लिए निकलते थे।" और "बार बार अपनी दूकान छोड़ कर दल बना कर इधर उधर डाके डालने जाते थे।" "उन दिनों कम्पनी के हर मुलाज़िम का काम केवल यह था कि जितनी जल्दी हो सके, भारतवासियों से दस या बीस लाख रुपए लूट खसोट कर इङ्गलिस्तान लौट जावे।"*

और आगे चलकर क्लाइव अपने उपर्युक्त पत्र में लिखता है—

"×××दौलत व्यवस्था की शत्रु है ही। इसी दौलत के कारण प्रतिदिन हमारी सेना बरबाद होती जा रही है×××जब अङ्गरेज़ी फ़ौज किसी भी शहर पर क़ब्ज़ा करती है तो उसके बाद तमाम लूट का माल, दण्ड का रुपया और सामान बे रोक टोक फ़ौज के लोग आपस में बाँट लेते

---

* "The razzias made with impunity in Bengal and elsewhere . . . the counting-house was deserted continually for marauding expeditions, . . . During this period the business of a servant of the Company was simply to wring out of the natives a hundred or two hundred thousand pounds as speedily as possible, that he might return home. . . ."—Torren's *Empire in Asia*, pp. 82, 83.

हैं। XXX मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि बनारस में भी ऐसा ही हुआ। इससे भी अधिक विचित्र बात यह है कि यद्यपि बनारस की लूट से चन्द साल पहले आपकी ये स्पष्ट आज्ञाएँ आ चुकी थीं कि लूट के तमाम माल में से आधा कम्पनी को मिलना चाहिए, तथापि उस समय के गवरनर और कौन्सिल ने ऐसा करने के बजाय XXX तमाम माल और रुपया विजय करने वाले सैनिकों को दे डाला XXX

"XXX अय्याशी और रिशवतख़ोरी का ज़ोर XXX है XXX"

उस समय के अङ्गरेज़ हिन्दोस्तानियों पर जिस तरह के अत्याचार करते थे उनके विषय में क्लाइव ने लिखा—

"जो यूरोपियन एजण्ट कम्पनी के मुलाज़िमों के अधीन काम करते हैं, उन्होंने और उन बेशुमार काले एजण्टों और सब-एजण्टों ने, जो कम्पनी ही के मुलाज़िमों के अधीन काम करते हैं, अन्याय और प्रजापीड़न के जो तरीक़े जारी कर दिए हैं, वे मुझे डर है कि इस देश में अङ्गरेज़ों के नाम पर सदा के लिए एक कलङ्क रहेंगे। XXX मैं देखता हूँ कि महत्वाकांक्षा, उसमें सफलता और ऐश-परस्ती, इन तीनों ने मिलकर एक नई क़िस्म की राजनीति प्रचलित कर दी है, जिससे अङ्गरेज़ क़ौम की इज़्ज़त, कम्पनी पर विश्वास और साधारण न्याय और इन्सानियत—सब का ख़ून हो रहा है।"*

* ". . . men, whose sense of honor, and duty to their employers, had been estranged by the too eager pursuit of their own immediate advantage. The sudden, and among many, the unwarrantable acquisition of riches,, had introduced luxury in every shape, and in its most pernicious excess . . .

क्लाइव के इसी पत्र के उत्तर में डाइरेक्टरों ने मई सन् १७६६ में क्लाइव को लिखा—

"हम समझते हैं कि देश के आन्तरिक व्यापार में इन लोगों ने

---

the evil was contagious, and spread among the Civil and Military, down to the writer, the ensign, and the free merchant . . .

"Before I had discovered these various sources of wealth, I was under great astonishment to find individuals so suddenly enriched, that there was scarce a gentleman in the settlement who had not fixed upon a very short period for his return to England with affluence. . . .

". . . riches, the bane of discipline, were daily promoting the ruin of our army . . . they are suffered, without control, to take possession, for themselves, of the whole booty, donation money, and plunder, on the capture of a city. This, I can assure you, happened at Benares ; and, what is more surprising, the then Governor and Council, so far from laying in a claim to the moiety which ought to have been reserved for the Company, agreeable to those positive orders from the Court of Directors a few years ago, . . . gave up the whole to the captors . . .

". . . the rage of luxury and corruption. . . .

"The sources of tyranny and oppression, which have been opened by the European agents acting under the authority of the Company's servants, and the numberless black agents and sub-agents acting also under them, will, I fear, be a lasting reproach to the English name in this country . . . . Ambition, success, and luxury, have, I find, introduced a new system of politics, at the severe expense of English honor, of the Company's faith, and even of common justice and humanity."—Clive's letter to the Directors, dated 30th September 1765.

व्यक्तिगत हैसियत से जो बड़ी बड़ी पूँजियाँ कमाई हैं वे इस तरह के ज़बरदस्त अन्यायों और अत्याचारों द्वारा हासिल की गई हैं, जिनसे बढ़ कर अन्याय और अत्याचार कभी किसी ज़माने और किसी देश में भी देखने या सुनने में न आए होंगे।"*

ऊपर का लम्बा पत्र लॉर्ड क्लाइव का लिखा हुआ है, जो स्वयं हद दर्जे का लालची और रिशवतख़ोर था, जो अपने इस दूसरी बार के भारत आने से भी लाखों रुपए नाजायज़ तरीक़ों से कमाकर विलायत ले गया और जो अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए न्याय अन्याय अथवा पाप पुण्य का अणुमात्र भी विचार न रखता था। इसी पत्र में एक जगह उसने "भारत के बाशिन्दों" को "अङ्गरेज़ों के क़ुदरती दुश्मन" कहा है और उनसे बचते रहने के उपाय दर्शाए हैं। किन्तु क्लाइव जितना स्वार्थी था उतना ही चतुर और बना हुआ भी था। उसके कई पत्रों से साबित है कि ज़रूरत पड़ने पर वह एक न्यायप्रेमी तथा सदाचारी का बाहरी वेष धारण करना भी जानता था। इसके अतिरिक्त इस समय अङ्गरेज़ों का व्यक्तिगत लोभ इतना बढ़ गया था कि यदि उसे परिमित न किया जाता तो स्वयं कम्पनी का चारों ओर से दिवाला निकल जाने का डर था। यही क्लाइव के इस लम्बे पत्र के लिखे जाने का कारण था।

* ". . . we think the vast fortunes acquired in the inland trade have been obtained by a scene of the most tyrannic and oppressive conduct that ever was known in any age or country."—Letter from the Court of Directors to Lord Clive, dated May 1766.

तिजारत के माल पर महसूल वसूल करने का अधिकार अब कम्पनी को मिल चुका था, तथापि कम्पनी के मुलाज़िमों के व्यापार-सम्बन्धी अन्यायों को रोकने के बजाय क्लाइव ने इस बार नमक जैसे पदार्थ की तिजारत का ठेका, जोकि मनुष्य के जीवन के लिए आवश्यक है, कम्पनी के मुलाज़िमों को दे दिया और उस पर कम्पनी की ओर से ३५ फ़ी सदी महसूल लगा दिया, जिससे प्रजा के लिए यह अन्याय और भी कष्टकर हो गया। ऐसे ही पान, तम्बाकू और इसी तरह की और अनेक चीज़ों की तमाम तिजारत बङ्गाल भर में अङ्गरेज़ों और उनके आदमियों के हाथों में दे दी गई। क्लाइव की यह स्पष्ट नीति थी कि नमक जैसी ज़रूरी चीज़ पर महसूल ज्यादा और पान तम्बाकू जैसी ग़ैर ज़रूरी चीज़ों पर महसूल कम रहे, और तमाम महसूल लेने वाली अङ्गरेज़ कम्पनी।

निस्सन्देह क्लाइव के जीवन का कोई भी कार्य ऐसा न था जिससे भारतीय प्रजा उसे कृतज्ञता-पूर्वक याद कर सके।

उसका व्यक्तिगत चरित्र भी अत्यन्त पतित था। कैरेकोली ने अपनी 'क्लाइव की जीवनी' में उसके पापमय कृत्यों की अनेक मिसालें दी हैं, जिन्हें इस पुस्तक में उद्धृत करना व्यर्थ और शिष्टता के विरुद्ध होगा। कैरेकोली ने लिखा है—

"बङ्गाल भर में यूरोपियन और हिन्दोस्तानी दोनों तरह की स्त्रियों की ऐसी अनेक मिसालें थीं, जिन्होंने नफ़रत के साथ उसके प्रेम-प्रदर्शन को अस्वीकार किया और उसे संसार के सामने हास्यास्पद बना दिया।"*

* "There were several instances of both white and black

इनमें से अनेक स्त्रियाँ विवाहित भी थीं।

सन् १७६७ में क्लाइव ने सदा के लिए भारत छोड़ दिया और इङ्गलिस्तान में एक भारतीय 'नवाब' के ठाठ से रहना शुरू कर दिया। अन्त में उसने आत्महत्या कर ली। इङ्गलिस्तान के अनेक मृदु-विश्वासी लोगों ने उसकी आत्महत्या का कारण यह बतलाया कि अमींचन्द के साथ जालसाज़ी करके ब्रिटिश राज्य क़ायम करने, सिराजुद्दौला और नजमुद्दौला की हत्याएँ कराने और अपने अनेक ईसाई मित्रों की पत्नियों को बहकाकर उनके घरों का सुख नाश करने, इत्यादि पापों की याद ने क्लाइव की आत्मा को चैनसे रहने न दिया।

क्लाइव के बाद वेरेल्स्ट बङ्गाल का गवरनर नियुक्त हुआ। वेरेल्स्ट के एक पत्र से मालूम होता है कि सम्राट शाहआलम को दिल्ली जाने से रोकने और उसे इतनी देर तक इलाहाबाद में ठहराए रखने में अङ्गरेज़ों का काफ़ी हाथ था। वेरेल्स्ट कम्पनी के हित में सम्राट को बङ्गाल लाना चाहता था, किन्तु वह चाहता यह था कि कोई ऐसी तरकीब की जावे, जिससे अङ्गरेज़ों को उसे बङ्गाल बुलाना न पड़े, बल्कि शाहआलम स्वयं उनके साथ बङ्गाल चलने की इच्छा प्रकट करे। अगस्त सन् १७६९ में वेरेल्स्ट की जगह कारटियर गवरनर नियुक्त हुआ। स्कॉलफ़ील्ड इस अङ्गरेज़ गवरनर के विषय में लिखता है—

---

women in Bengal who rejected his offer with disdain and exposed him to the ridicule of the world."—*Life of Clive*, by Caraccioli, vol. i.

"इस जिल्द के अधिकांश पत्र या तो बङ्गाल फ़ोर्ट विलियम क़िले के गवरनर के नाम भेजे गए थे अथवा उसकी ओर से दूसरों को भेजे गए थे; किन्तु इन चालों और चालों के जवाब में चालों, साज़िशों और आशङ्काओं के जञ्जाल में से इस गवरनर का व्यक्तित्व कुछ बहुत चमकता हुआ नज़र नहीं आता।"*

उस समय के अङ्गरेज़ गवरनरों के मुख्य कार्य का यह ख़ुलासा सार है।

सन् १७७२ में कारटियर की जगह वारन् हेस्टिंग्स गवरनर नियुक्त हुआ। किन्तु क्लाइव के जाने के समय से वारन् हेस्टिंग्स की नियुक्ति के समय तक उत्तरीय भारत में कोई भी महत्त्व की राजनैतिक घटना नहीं हुई।

'सीअरुल-मुताख़रीन' में लिखा है कि किस प्रकार उन दिनों बङ्गाल के तीनों प्रान्तों में अलग अलग शिताबराय, मोहम्मद रज़ा ख़ाँ और जसारत ख़ाँ कम्पनी के नायबों की हैसियत से सारा काम करते थे, किस प्रकार उनके साथ बैठकर तथा हर ज़िले में छोटे से छोटे देशी अफ़सरों के पास बैठकर अङ्गरेज़ माल के महकमे का तमाम काम सीखते थे और देश के रस्म-रिवाज की जानकारी

* "From the tangle of plot and counterplot, of intrigue and suspicion, the personality of the Governor of Fort William in Bengal, to whom most of the letters in this volume are addressed or in whose name they were issued, does not emerge with any great distinctness."—A. F. Scholfield, in the preface to the Third Volume of *Calendar of Persian Correspondence.*

प्राप्त करते थे और फिर किस तरह उन्हीं से सीखकर उन्हीं पर हावी रहते थे, अथवा उन्हें निकालकर उनकी जगह ले लेते थे।

इस दो-अमली ने तीनों प्रान्तों का सत्यानाश कर डाला। चारों ओर अराजकता थी। हर समय हरेक को जान और माल का ख़तरा था। हर तरह की तिजारत पर अङ्गरेज़ों का अनन्य अधिकार था। देश के समस्त उद्योग धन्धे, जिन्हें कुछ ही वर्ष पहले संसार चकित होकर देखता था, कुचल कर मटियामेट कर दिए गए थे। सोना, चाँदी, जवाहरात, रुपए और अशरफ़ियाँ लद लद कर देश से बाहर जाने लगीं, यहाँ तक कि देश में रुपया दिखाई देना तक कठिन हो गया। बोल्ट्स नामक अङ्गरेज़ ने विस्तार के साथ बयान किया है कि किस प्रकार अङ्गरेज़ दलालों ने बङ्गाल की फली फूली कारीगरियों का नाश कर डाला। * इसी अपराध के दण्ड में बोल्ट्स को भारत से देश निकाला दे दिया गया।

गवरनर वेरेल्स्ट के एक पत्र से मालूम होता है कि अङ्गरेज़ों के अधिकार से पूर्व बङ्गाल की बनी हुई चीज़ें हिन्दोस्तान के कोने कोने में और पश्चिम में ईरान और अरब की खाड़ियों तथा पूरब में चीन इत्यादि के समुद्रों से होकर दूर दूर के देशों में पहुँचती थीं और "हज़ारों रास्तों से धन बह बह कर" बङ्गाल में आता था, किन्तु अब वह सब रास्ते बन्द होगए। यूरोप की कम्पनियाँ हर साल जो भारतीय माल जहाज़ों में भर कर

* *Consideration of the Affairs of the East India Company* by Bolts.

अपने देशों को ले जाती थीं उस माल के बदले में एक पैसा यूरोप से भारत न आता था। इस माल का तमाम मूल्य बङ्गाल ही से वसूल किया जाता था। भारत के शेष प्रान्तों, यहाँ तक कि अपनी चीन की बस्तियों तक, का ख़र्च अङ्गरेज़ बङ्गाल ही से वसूल करते थे। व्हीलर नामक अङ्गरेज़ लिखता है—

"तीन साल के अन्दर पचास लाख पाउण्ड (अर्थात् पाँच करोड़ रुपए) से ऊपर का सोना चाँदी बङ्गाल से विदेशों को गया, जबकि लगभग पाँच लाख पाउण्ड (अर्थात् पचास लाख रुपए) का सोना चाँदी बाहर से बङ्गाल में आया।"*

दरिद्रता, दुष्काल और महामारी

'सीअरुल-मुताख़रीन' का बयान है—

"इस समय यह देखा गया कि बङ्गाल में रुपया कम होता जा रहा था XXXX हर साल असंख्य नक़दी लाद कर इङ्गलिस्तान भेजी जाती थी। यह एक मामूली बात थी कि हर साल पाँच छै या इससे भी अधिक अङ्गरेज़ बड़ी बड़ी पूँजियाँ साथ लेकर अपने वतन को लौटते हुए दिखाई देते थे। इसलिए लाखों के ऊपर लाखों चिन चिन कर इस देश से निकल गए। XXX सरकारी फ़ौज, ज़मींदारों की फ़ौजें, उम्मेदवार और उनके नौकर—

* "During three years the exports of bullion from Bengal exceeded five millions sterling, whilst the imports of bullion were little more than half a million. Meantime the rupee rose to an exchange value of two and six pence."—*Early Records of British India*, by Wheeler, p. 375.

सब मिलाकर कम से कम ७० या ८० हज़ार हिन्दोस्तानी सवार पहले बङ्गाल और बिहार के मैदानों में भरे रहते थे; और अब बङ्गाल के अन्दर एक सवार ऐसा ही अलभ्य है, जैसा दुनिया में 'उनक़ा' पक्षी। हर ज़िले में पैदावार कम होती जा रही है, और असंख्य जनता दुष्काल और महामारी से मिटती जा रही है, जिससे देश बराबर उजड़ता चला जा रहा है। नतीजा यह है कि बेहद ज़मीन बिना जोती बोई पड़ी हुई है और जो हम लोगों ने जोती है, उसकी भी पैदावार की निकासी के लिए हमें बाज़ार नहीं मिल सकता। यह बात यहाँ तक सच है कि यदि अङ्गरेज़ हर साल बङ्गाल और बिहार भर से शोरा, अफ़ीम, कच्चा रेशम और सफ़ेद कपड़े के थान ख़रीदते होते तो शायद बहुत से हाथों में एक रुपया या अशरफ़ी वैसी ही अलभ्य हो जाती, जैसी पारस पथरी। और वह समय आने वाला है, कि बहुत से नए पैदा हुए आदमी यह तय न कर पावेंगे कि लोग पहले रुपया किस चीज़ को कहा करते थे, और अशरफ़ी शब्द के क्या अर्थ होते थे।"*

बङ्गाल के दुर्भाग्य से इसी मौक़े पर सूखा पड़ा, किन्तु यदि कम्पनी के आदमियों की अनीति जारी न होती तो इस सूखे के होते हुए भी बङ्गाल में दुष्काल न पड़ सकता।

कम्पनी के सरकारी काग़ज़ों में लिखा है कि इस सूखे के अवसर पर—

"कुछ एजएटों ने चावलों की कोठियाँ भर लेने का अच्छा अवसर देखा। उन्होंने अपनी कोठियाँ भर लीं। वे जानते थे कि हिन्दू मर जायँगे

* *Searul-Mutakherin*, vol. iii, p. 32, Calcutta Reprint.

किन्तु मांस खाकर अपने धर्म से भ्रष्ट न होंगे। इसलिए मरने से बचने के लिए चावलों की क़ीमत में अपना सर्वस्व दे देने के सिवा उनके पास और कोई चारा न रहेगा। देश के बाशिन्दे मर मिटे। ज़मीन उन्होंने .खुद जोती थी और देखा कि पैदावार दूसरों के हाथों में चली गई। उन्होंने सशङ्क हृदय से बीज बोया—काल पड़ा। फिर (चावल के व्यापार पर) अपना ठेका जमाए रखना (अङ्गरेज़ों के लिए) और अधिक आसान होगया—महामारी फैली। बाज़ ज़िलों में जीवित, किन्तु अधमरे लोग अपने असंख्य मरे हुए रिश्तेदारों के शरीरों को बिना दफ़नाए छोड़कर चल दिए।"*

अन्न के काल तथा महामारी में घनिष्ट सम्बन्ध है। इसी समय बङ्गाल भर में चेचक की महामारी फैली, जिससे न बच्चा बच सका और न बूढ़ा, न पुरुष बच सके और न स्त्री; किन्तु अङ्गरेज़ों ने न चावल के व्यापार का ठेका अपने हाथों से छोड़ा और न मुँह माँगी क़ीमतों में कमी की।

कम्पनी के डाइरेक्टरों ने १८ दिसम्बर सन् १७७१ के पत्र में

---

* "Some of the agents saw themselves well situated for collecting the rice into stores; they did so. They knew the gentoos (Hindoos) would rather die than violate the principles of their religion by eating flesh. The alternative would therefore be between giving what they had, or dying. The inhabitants sunk; they had cultivated the land, and saw the harvest at the disposal of others, planted in doubt—scarcity ensued. Then the monopoly was easier managed—sickness ensued. In some districts the languid living left the bodies of their numerous dead unburied."—*Short History of the English Transactions in the East Indies*, p. 145.

स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि इस अवसर पर कम्पनी के मुलाज़िमों ने चावल और दूसरे अनाज के व्यापार पर अपना अनन्य अधिकार जमा रक्खा था, जिसके कारण देश भर में चावल और अन्न का अभाव दिखाई देता था।

ख़ून के आँसू

बङ्गाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सत्ता का इस प्रकार प्रारम्भ हुआ। कलकत्ते के विक्टोरिया मेमोरियल में १७वीं शताब्दी के प्रारम्भ का बना हुआ सङ्गमूसा का वह सुन्दर तख़्त अभी तक रक्खा हुआ है, जिस पर मुर्शिदाबाद के सूबेदार बैठा करते थे। इसी तख़्त पर बैठकर अलीवर्दी ख़ाँ और सिराजुद्दौला ने बङ्गाल पर शासन किया। इसी तख़्त पर प्लासी के संग्राम के बाद क्लाइव ने मीर जाफ़र को बैठाकर तीनों प्रान्तों का सूबा कहकर सलाम किया। इसी तख़्त पर बैठकर मीर क़ासिम ने बङ्गाल की स्वाधीनता की रक्षा के अन्तिम प्रयत्न किए।

विक्टोरिया मेमोरियल के सूचीपत्र में पृष्ठ ४० पर लिखा है कि अभी तक ख़ून के से रङ्ग की लाल बूँदें इस तख़्त के कई हिस्सों से समय समय पर टपकती रहती हैं। वैज्ञानिकों की राय है कि इन लाल बूँदों के टपकने का कारण पत्थर के अन्दर की कुछ रासायनिक विशेषता है। किन्तु बङ्गाल में यह एक आम किम्बदन्ती है कि भारतीय नवाबी के पतन और अङ्गरेज़ कम्पनी की सत्ता के प्रारम्भ पर मुर्शिदाबाद का सूना और निर्जीव तख़्त

अभी तक ख़ून के आँसू बहाता रहता है। जो हो, नवाबी के पतन के साथ साथ बङ्गाल और वहाँ की प्रजा की इस हृदय-विदारक अवस्था को देखते हुए पूर्वोक्त किम्वदन्ती आश्चर्यजनक प्रतीत नहीं होती।

सातवाँ अध्याय

वारन हेस्टिंग्स

[१७७२—१७८५]

दो-अमली का अन्त

न् १७७२ ई० में वारन हेस्टिंग्स कम्पनी की ओर से कलकत्ते के फ़ोर्ट विलियम का गवरनर नियुक्त हुआ।

वारन हेस्टिंग्स की शिक्षा बहुत ही थी। सन् १७५० के लगभग वह मामूली क्लर्क की हैसियत से हिन्दोस्तान आया और बहुत दिनों तक चालीस रुपए मासिक पर मुर्शिदाबाद दरबार के अङ्गरेज़ वकील के पास काम करता रहा। मुर्शिदाबाद में रहकर वह क्लाइव की देख-रेख में भारतवासियों के रस्म-रिवाज और कूट नीति के दाव पेंच सीखता रहा। धीरे धीरे वह क्लाइव से बढ़कर चतुर साबित हुआ और न्याय अन्याय अथवा पाप पुण्य की उससे भी कम परवा करता था।

इस समय तक बङ्गाल के अन्दर कुछ इलाक़ा, बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा तीनों प्रान्तों की दीवानी और थोड़े थोड़े इलाक़े मद्रास तथा बम्बई की ओर कम्पनी को मिल चुके थे। मुर्शिदाबाद का मसनद-नशीन नवाब केवल एक अधिकार-शून्य खिलौना था, और तीनों प्रान्तों का सारा शासन पटने में महाराजा शिताबराय, मुर्शिदाबाद में मोहम्मद रज़ा ख़ाँ और उड़ीसा में जसारत ख़ाँ इन तीन नायबों के हाथों में था, जो हर तरह अङ्गरेज़ों के हाथों की कठपुतली थे।

निस्सन्देह इन दोनों नायबों ने कम्पनी के ऊपर अगणित उपकार किए। अङ्गरेज़ों और शुजाउद्दौला के युद्ध के समय शिताबराय ने क़दम क़दम पर अङ्गरेज़ों का साथ दिया था और उसी से अङ्गरेज़ों का अधिकांश काम निकला।

'सीअरुल-मुताख़रीन' में लिखा है कि आए दिन कम्पनी के कर्मचारी एक न एक अङ्गरेज़ को शिताबराय के पास भेजते रहते थे और बिना किसी कारण यह लिख भेजते थे कि इसे इतनी रक़म दे दी जावे। शिताबराय ने इन अङ्गरेज़ों को देने के लिए रुपए वसूल करने के अनेक उपाय निकाल रक्खे थे; जिनमें से एक उपाय यह था कि ऐसे मौक़ों पर वह अपने ख़ास ख़ास जागीरदारों, माफ़ीदारों इत्यादि को उनके पट्टों और सनदों सहित बुलवा भेजता था; फिर इस बहाने से कि अमुक अङ्गरेज़ आपके काग़ज़ देखना चाहता है, उनसे काग़ज़ लेकर अपने किसी कर्मचारी को दे देता था और जब तक एक ख़ास रक़म उनसे

वसूल न कर लेता था, काग़ज़ वापस न देता । अन्त में ये रक़
जमा करके उस अङ्गरेज़ को दे दी जाती थीं ।*

वारन हेस्टिंग्स के समय में हिन्दोस्तान के अन्दर कम्पनी
इलाक़ा नहीं बढ़ा । तथापि उसका शासन-काल ब्रिटिश भारत
इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। कारण यह है
क्लाइव ने इस देश के अन्दर अङ्गरेज़ी शासन की जो बुनिया
डाली थी, वारन हेस्टिंग्स ने भारत की राज-शक्तियों को और अधि
कमज़ोर करके उस बुनियाद को पक्का कर दिया ।

मालूम होता है कि इस समय तक अङ्गरेज़ भारतीय शास
का सब कारबार सीख चुके थे । वारन हेस्टिंग्स ने सब से पह
काम यह किया कि क्लाइव की क़ायम की हुई दो-अमली का अ
करने के लिए उसने मोहम्मद रज़ा ख़ाँ और शिताबराय दो
नायबों पर ग़बन और ख़यानत के इलज़ाम लगाकर उन्हें
कर लिया। मोहम्मद रज़ा ख़ाँ को फँसाने के लिए वारन हेस्टिंग
राज़ा नन्दकुमार को अपनी ओर फोड़ा। नन्दकुमार को
लालच दिया गया कि रज़ा ख़ाँ की जगह तुम्हें बङ्गाल का ना
बना दिया जावेगा । इस लालच में आकर नन्दकुमार ने मोहम्म
रज़ा ख़ाँ को दोषी साबित करने में अङ्गरेज़ों को काफ़ी मदद दी
"सीअरुल-मुताख़रीन" में लिखा है कि महाराजा शिताबराय
भी धोखा देकर गिरफ़्तार किया गया ।

कलकत्ते लाकर इन दोनों हिन्दोस्तानी शासकों के मुक़दमे

* *Seir*, vol. iii, pp. 65, 66. Calcutta Reprint.

सुनाई हुई। राजा नन्दकुमार ने अपने बयान में लिखा है कि इन दोनों से कई कई लाख रुपए रिशवत लेकर अन्त में वारन हेस्टिंग्स ने दोनों को निर्दोष कहकर छोड़ दिया, किन्तु उन दोनों का काफ़ी अपमान किया जा चुका था। उनके अधिकार छीन कर कम्पनी को दे दिए गए। मुर्शिदाबाद के नवाब के सालाना ख़र्च की रक़म को वारन हेस्टिंग्स ने और अधिक कम कर दिया और दीवानी तथा फ़ौजदारी दोनों की सदर अदालतों को मुर्शिदाबाद से कलकत्ते हटा लिया। इस प्रकार दो-असली का भी अब अन्त हो चला और तीनों प्रान्तों के ऊपर कम्पनी की राज्य-सत्ता और साफ़ साफ़ चमकने लगी। मुक़दमा समाप्त होने के बाद नन्द-कुमार को मालूम हुआ कि मुझे बङ्गाल की नायबी का झूठा लालच केवल काम निकालने के लिए ही दिया गया था।

अभी तक क्लाइव के समय की सन्धि के अनुसार कम्पनी सम्राट शाहआलम को २६ लाख रुपए वार्षिक ख़िराज भेजती थी। सन् १७७१ में सम्राट शाहआलम इलाहाबाद से दिल्ली चला गया। वारन हेस्टिंग्स ने गवरनर नियुक्त होते ही सम्राट को ख़िराज भेजना बन्द कर दिया। इलाहाबाद तथा कड़ा का इलाक़ा क्लाइव ने शुजाउद्दौला से सम्राट के लिए कह कर लिया था। अब हेस्टिंग्स ने यह इलाक़ा पचास लाख रुपए के बदले में फिर शुजाउद्दौला के हाथ बेच दिया। किन्तु इलाहाबाद के क़िले में सेना बराबर कम्पनी ही की रहती रही।

वारन हेस्टिंग्स के इन समस्त कार्यों को "सुधार" का नाम

दिया जाता है। इनका उद्देश था बङ्गाल के राज शासन से धीरे धीरे भारतीय अंश को मिटा देना।

निरपराध रुहेलों का संहार

कम्पनी के डाइरेक्टर अब वारन हेस्टिंग्स पर बार बार जोर दे रहे थे कि जिस तरह हो सके अधिक से अधिक धन भारत से वसूल करके इङ्गलिस्तान भेजा जावे। वारन हेस्टिंग्स ने भी, लार्ड मैकॉले के शब्दों में—"चाहे ईमानदारी से हो और चाहे बेईमानी से, जिस तरह हो सके, धन बटोरने का निश्चय कर लिया।"* देश की स्थिति का उसे पूरा ज्ञान था और सूझ की भी उसमें कमी न थी।

सब से पहले वारन हेस्टिंग्स की नज़र रुहेलखण्ड की ओर गई। अवध की उत्तर-पश्चिमी सरहद पर रुहेले पठानों का स्वतन्त्र राज्य था। इतिहास-लेखक मिल लिखता है—

"एशिया भर में जिन देशों का शासन सबसे अच्छा था, उनमें से एक रुहेलखण्ड का इलाक़ा था। वहाँ की प्रजा सुरक्षित थी, उनके उद्योग धन्धों को राज्य की ओर से सहायता दी जाती थी और देश में बराबर ख़ुशहाली बढ़ती जाती थी। इन उपायों द्वारा और अपने पड़ोसियों का देश विजय करने के स्थान पर प्रयत्नपूर्वक सबके साथ मेल जोल बनाए रख कर उन लोगों ने अपनी स्वाधीनता को क़ायम रक्खा था।"†

* "The object of Mr. Hastings' diplomacy was at this time simply to get money . . . by some means, fair or foul."—*Critical and Historical Essays* by Lord Macaulay, vol. iii, 244.

† "Their territory was one of the best governed in Asia

अवध के नवाब के साथ रुहेलों की सन्धि हो चुकी थी, जिसका ये लोग सदा ईमानदारी के साथ पालन करते थे। अङ्गरेज़ों के साथ रुहेलों का कोई किसी तरह का झगड़ा न था और न "झगड़े का कोई छोटे से छोटा बहाना ही अङ्गरेज़ों को मिल सकता था।"* तथापि वारन हेस्टिंग्स ने सन् १७७३ ई० में रुहेलों के विरुद्ध नवाब शुजाउद्दौला के साथ एक गुप्त सन्धि कर डाली। इस सन्धि में यह तय हो गया कि कोई मुनासिब बहाना मिलते ही कम्पनी और नवाब की सेनाएँ मिलकर रुहेलखण्ड पर चढ़ाई करेंगी, रुहेला जाति को "निर्मूल" † कर उनका देश शुजाउद्दौला के हवाले कर दिया जावेगा, और इस उपकार के बदले में शुजाउद्दौला चालीस लाख रुपए नक़द और युद्ध का तमाम ख़र्च कम्पनी को अदा करेगा। मिल के इतिहास से मालूम होता है कि शुजाउद्दौला ने अपनी इच्छा के विरुद्ध विवश होकर इस सन्धि को स्वीकार किया। इतिहास-लेखक टॉरेन्स लिखता है कि—"१७ अप्रेल सन् १७७४ को इस ज़बरदस्त अन्याय में एक दूसरे को मदद देने वाली दोनों

---

the people were protected, their industry encouraged, and the country flourished steadily. By these cares, and by cultivating diligently the arts of neutrality, and not by conquering from their neighbours, they provided for their independence."—Mill's *History of India*, Book v. Chap. *i*.

* "We had not the slightest pretence of puarrel with the Rohillas."—Torrens' *Empire in Asia*, p. 111.

† "The Rohillas should be exterminated."—Warren Hasting's. letters,

सेनाओं ने रुहेलखण्ड में प्रवेश किया। रुहेले वीर थे, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम थी। उन्होंने रहम की प्रार्थना की, किन्तु व्यर्थ। मजबूर होकर उन्होंने वीरता के साथ मुक़ाबला किया, किन्तु क्या हो सकता था। अन्त में २३ अप्रेल को रामपुर की मशहूर लड़ाई में उनकी क़िस्मत का फ़ैसला होगया। उनका नेता नवाब फ़ैज़ुल्ला ख़ाँ पहाड़ों की ओर भाग गया। "एक एक आदमी जो रुहेला कहलाता था या तो अपना देश छोड़कर भाग गया या चुन चुन कर मार डाला गया।"* सारा हरा भरा देश लूट खसोट कर उजाड़ कर दिया गया। रुहेलखण्ड की लूट से चालीस लाख रुपए नक़द कम्पनी को मिले और दो लाख नक़द वारन हेस्टिंग्स की जेब में गए।

रामपुर और उसके आस पास का थोड़ा सा इलाक़ा बतौर जागीर नवाब फ़ैज़ुल्ला ख़ाँ को वापस दे दिया गया। रुहेलखण्ड का शेष इलाक़ा शुजाउद्दौला को मिल गया। किन्तु वीर रुहेला जाति और उसकी स्वाधीनता का सदा के लिए अन्त हो गया।

इससे पहले वारन हेस्टिंग्स केवल फ़ोर्ट विलियम क़िले और बङ्गाल के इलाक़ों का गवरनर कहलाता था। मद्रास और बम्बई

---

* "On the 17th April the allies in iniquity entered Rohilkhund. In vain the brave but out-numbered people sued for mercy . . . Seldom, if ever, have what are calculated the rights of victory been more inhumanly abused. Every man who bore the name of Rohilla was either put to death or forced to seek safety in exile."—Torrens' *Empire in Asia*, p. 110.

दोनों प्रान्तों के अङ्गरेज़ी इलाक़ों का प्रबन्ध दो पृथक गवरनरों के सुपुर्द था, जिनकी दो अलग अलग कौन्सिलें थीं। रुहेला युद्ध के अगले साल मद्रास और बम्बई के गवरनर और उनकी कौन्सिलें बङ्गाल के गवरनर के अधीन कर दी गईं और वारन हेस्टिंग्स कम्पनी के समस्त भारतीय राज्य का पहला 'गवरनर-जनरल' नियुक्त हुआ।

महाराजा नन्दकुमार को फाँसी

ऊपर लिखा जा चुका है कि मोहम्मद रज़ा ख़ाँ के विरुद्ध काम निकालने के लिए वारन हेस्टिंग्स ने महाराजा नन्दकुमार से बङ्गाल की नायबी का झूठा वादा कर दिया था। किन्तु नन्द-कुमार भी एक अर्से से अङ्गरेज़ों की आँखों में खटक रहा था। उस झगड़े के बाद नन्दकुमार ने एक लम्बी अर्ज़ी लिखकर कलकत्ते की कौन्सिल के सामने पेश की, जिसमें उसने वारन हेस्टिंग्स पर बङ्गाल के रईसों और ज़मींदारों से रिशवतें लेने, ज़बरदस्ती धन वसूल करने, यहाँ तक कि मुर्शिदाबाद के नवाब की माँ मुन्नी बेगम से रक़में वसूल करने, लोगों को धोखा देने इत्यादि के अनेक इलज़ाम लगाए। नन्दकुमार की अर्ज़ी में ठीक ठीक रक़में और पूरे नाम और पते मौजूद थे। उसने शहादतें पेश करके अपने तमाम दावों को सच्चा साबित कर दिया।

कौन्सिल के मेम्बरों ने नन्दकुमार के इलज़ामों को सच्चा स्वीकार किया।* किन्तु हेस्टिंग्स को कोई दण्ड न मिल सका। उसने इस बात

---

* Minute of Council, 11th April, 1775.

से ही इनकार किया कि कौन्सिल को गवरनर के विरुद्ध शिकायत सुनने का अधिकार है। हेस्टिंग्स ने नन्दकुमार के इलज़ामों का जवाब देने के बजाय उलटा नन्दकुमार पर अब यह जुर्म लगाया कि पाँच साल पहले अर्थात् सन् १७७० ई० में नन्दकुमार ने किसी काग़ज़ पर जाली दस्तख़त किए थे। सन् १७७३ ई० में कम्पनी की ओर से कलकत्ते में एक नई अदालत 'सुप्रीम कोर्ट' के नाम से क़ायम हुई थी। वारन हेस्टिंग्स का एक लड़कपन का दोस्त सर एलाइजाह इम्पे उसका चीफ़ जस्टिस था। सर एलाइजाह इम्पे के सामने महाराजा नन्दकुमार पर जालसाज़ी का मुक़दमा चलाया गया। मिल की पुस्तक तथा उस समय के अन्य इतिहासों से साफ़ ज़ाहिर है कि नन्दकुमार पर जालसाज़ी का इलज़ाम बिलकुल झूठा था। तथापि कई झूठे गवाह खड़े कर दिए गए। दूसरे पक्ष की सफ़ाई के सबूत की ख़ाक परवा नहीं की गई। भारत में उस समय देशी या अङ्गरेज़ी कोई क़ानून भी इस तरह का न था जिससे जालसाज़ी के जुर्म में मौत की सज़ा दी जा सके। तथापि हेस्टिंग्स के दोस्त सर एलाइजाह इम्पे ने फ़ौरन् महाराजा नन्दकुमार को मुजरिम क़रार देकर हज़ारों भारतवासियों की आँखों के सामने ५ अगस्त सन् १७७६ को कलकत्ते में फाँसी पर चढ़वा दिया। मिल लिखता है कि महाराजा नन्दकुमार ने असाधारण शान्ति और धैर्य के साथ मौत का सामना किया, और अपने हज़ारों देशवासियों को फाँसी के चारों ओर ज़ार ज़ार रोता और चीखता छोड़कर इस दुनिया से कूच किया।

जालसाज़ी ही के ऊपर क्लाइव ने भारत के अन्दर ब्रिटिश राज्य की नींव रक्खी, और खुले शब्दों में उसने अपनी इस जालसाज़ी को स्वीकार किया। तथापि उस जालसाज़ी के इनाम में क्लाइव को "लॉर्ड" की उपाधि प्रदान की गई, किन्तु उसी क्लाइव के उत्तराधिकारी के समय में एक स्वतन्त्र भारतीय शासक को जालसाज़ी के झूठे इलज़ाम में फाँसी पर लटका दिया गया।

वारन हेस्टिंग्स ३ वर्ष गवरनर और १० वर्ष गवरनर-जनरल रहा। उसका सारा शासन-काल भारतीय प्रजा और भारतीय नरेशों के साथ घोरतम अन्यायों से भरा हुआ था। मराठों और हैदरअली के साथ उसकी लड़ाइयों का ज़िक्र दूसरे अध्यायों में किया जायगा। बङ्गाल और उत्तरीय भारत के उसके समस्त अत्याचारों का वर्णन कर सकना भी इस पुस्तक में लगभग असम्भव है। इसलिए उसके उत्तरीय भारत के केवल दो और ज्वलन्त कृत्यों को यहाँ पर संक्षेप में बयान किया जाता है।

बनारस की लूट

इनमें पहली घटना बनारस की है। बनारस की समृद्ध रियासत उस समय अवध के नवाब के अधीन थी, किन्तु अवध के नवाब बनारस के महाराजा से अपना मामूली वार्षिक ख़िराज वसूल कर लेने के अतिरिक्त और किसी तरह का हस्तक्षेप उस रियासत के आन्तरिक शासन में न करते थे।

इतिहास-लेखक टॉरेन्स लिखता है—"बनारस का महा-

राजा बलवन्तसिंह बड़ा अच्छा शासक था। XXX उसकी प्रजा सुखी थी और देश ख़ुशहाल था। XXX किसानों को बेजा माँग का डर रहता था और न किसी तरह की ज़बरदस्ती का। वे अपने खेतों को बाग़ों की तरह जोतते थे और अपने अथक परिश्रम की पैदावार पर फूलते फलते थे। उनकी संख्या पाँच लाख से ऊपर अनुमान की जाती थी।"*

किन्तु महाराजा बनारस आस पास के राजाओं में सब से अधिक धनवान मशहूर था।

सन् १७७६ में अवध के नवाब ने बनारस का इलाक़ा कम्पनी के नाम कर दिया। कम्पनी ने अपनी ओर से एक नई सनद जारी करके बलवन्तसिंह के पुत्र चेतसिंह को पिता के तमाम अधिकार प्रदान कर दिए। एक अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट बनारस के दरबार में रहने लगा और महाराजा चेतसिंह की गणना अङ्गरेज़ कम्पनी के मित्रों में होने लगी।

अङ्गरेज़ों और फ़्रान्सीसियों में लड़ाई छिड़ी। वारन हेस्टिंग्स ने महाराजा चेतसिंह को पाँच लाख रुपए सालाना ख़र्च पर अपने यहाँ तीन पलटनें रखने का हुकुम दिया। चेतसिंह की प्रजा उस

* "Bulwant Singh was an excellent ruler ; . . . his people were happy, and the country prosperous, . . . the peasantry, fearless of unjust exaction or personal wrong, cultivated their fields like gardens, and throve on the fruits of their unwearied industry. Their numbers were estimated at more than half a million, ..."—Torrens' *Empire in Asia*, p. 124.

सन्तुष्ट थी। उसे इस सेना की कोई ज़रूरत न थी। पाँच लाख सालाना का ख़र्च भी उसके लिए बहुत अधिक था। उसने एतराज़ किया, किन्तु कोई सुनाई न हुई। अन्त में उसे वारन हेस्टिंग्स की आज्ञा माननी पड़ी। तारीफ़ यह कि इन पलटनों के अफ़सरों का अङ्गरेज़ होना और कम्पनी का उन पर अधिकार रहना ज़रूरी था।

दो साल बाद महाराजा चेतसिंह को हुकुम मिला कि इसी प्रकार एक पलटन सवारों की भी अपने यहाँ रक्खो। इस बार उसने इनकार कर दिया। वारन हेस्टिंग्स केवल बहाना ढूँढ रहा था। उसने फ़ौरन् सेना सहित बनारस पर चढ़ाई की। चेतसिंह ने आगे बढ़ कर बक्सर में वारन हेस्टिंग्स से भेंट की और अपनी अधीनता प्रकट करने के लिए अपनी पगड़ी उतार कर वारन हेस्टिंग्स के पैरों पर रख दी। फिर भी वारन हेस्टिंग्स न रुका। उसने सीधे बनारस पहुँचकर चेतसिंह के महल को घेर लिया और रेज़िडेण्ट को आज्ञा दी कि चेतसिंह को क़ैद कर लिया जावे।

बनारस की प्रजा इस अन्धेर को देखकर भड़क उठी। वहाँ के लोगों में अभी जान बाक़ी थी। वे कम्पनी की सेना पर टूट पड़े। तुरन्त तमाम अङ्गरेज़ सिपाही एक एक कर क़त्ल कर डाले गए। बदला लेने के लिए अब और अधिक सेना भेजी गई। ख़ब घमासान युद्ध हुआ।

रात को चेतसिंह के कुछ नौकरों ने जब यह देखा कि बनारस का क़िला शत्रु के हाथों में पड़ने वाला है तो अपनी पगड़ियों की रस्सी बनाकर उसके ज़रिए महाराजा चेतसिंह को महल की एक

खिड़की से नीचे उतार दिया। गङ्गा के उस पार रामनगर के कि में चेतसिंह का मुख्य ख़ज़ाना था। चेतसिंह अपनी माता और रानी समेत भाग कर वहाँ पहुँचा। अन्त में रामनगर का कि भी जीत लिया गया और चेतसिंह ने एक गृहविहीन बटोही की तरह वहाँ से भागकर ग्वालियर की रियासत में अपने शेष दि बिताए।

हेस्टिंग्स ने फ़ौरन् उसकी जगह उसी कुल के एक १९ वर्ष के लड़के को बनारस की गद्दी पर बैठा दिया। कम्पनी का खिराज बढ़ाकर बीस लाख रुपए सालाना कर दिया गया, और महाराजा के अनेक अधिकार उससे छीन कर रेजिडेण्ट को दे दिए गए। शासन प्रणाली और राज कर्मचारियों में अनेक उलट फेर किए गए। प्रजा पर अब नित्य नए अत्याचार होने लगे। दुखि और बेसरदार की प्रजा ने नए अमलदारों और उनके अत्याचारों के विरुद्ध बार बार विद्रोह किया और सत्याग्रह किए, किन्तु अब तो 'जिसकी लाठी उसकी भैंस।' लूट खसोट और नई अमलदारी का परिणाम यह हुआ कि "थोड़े ही दिन पहले जहाँ सुख और शान्ति विराजमान थी वहाँ अब दुख और असन्तोष ने उसकी जगह ले ली।" दो वर्ष बाद जब वारन हेस्टिंग्स फिर बनारस गया तो उसे तमाम नगर उजड़ा हुआ दिखाई दिया। आबादी घटते घटते सन् १८२२ में केवल दो लाख रह गई।*

* "Misery and distraction took the place which had recently been occupied by comfort and content . . . two years later

अवध की बेगमों पर अत्याचार

किन्तु इङ्गलिस्तान से धन की माँग बढ़ती गई। वारन हेस्टिंग्स की व्यक्तिगत धन-पिपासा भी बनारस की लूट से शान्त न हो सकी। बनारस से लौटते ही उसने अवध की ओर दृष्टि डाली। बनारस का वृत्तान्त हमने इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सदस्य इतिहास-लेखक टॉरेन्स की पुस्तक "एम्पायर इन एशिया" से लिया है। अवध की कहीं अधिक दुखमय कहानी भी ठीक टॉरेन्स ही के शब्दों में नीचे वर्णन की जाती है। अनेक बार ही कम्पनी की ओर से बड़ी बड़ी रक़में बिना किसी कारण अवध के नवाब से माँगी जा चुकी थीं और जबरन् वसूल की जा चुकी थीं, किन्तु इस बार—

"नवाब आसफ़ुद्दौला ने अपनी निर्धनता की बिना पर माफ़ी चाही और इस निर्धनता का एक कारण यह भी बताया कि मुझे अपने यहाँ की 'सबसीडीयरी' सेना के ख़र्च के लिए एक बड़ी रक़म हर साल कम्पनी को देनी पड़ती है। निस्सन्देह यह कारण सच्चा था। उसके बाद इस डर से कि कहीं (बनारस की तरह) गवरनर-जनरल लखनऊ न आ धमके, आसफ़ुद्दौला स्वयं हेस्टिंग्स से मिलने और अपनी स्थिति समझाने के लिए आगे बढ़ा। चुनार के क़िले के अन्दर दोनों में बातचीत हुई। वहाँ पर एक ऐसी स्मरणीय युक्ति निकाली गई, जिससे कलकत्ते का ख़ज़ाना भी भर जावे और लखनऊ का ख़ज़ाना ख़ाली भी न करना पड़े। लॉर्ड मैकॉले

---

when Hastings revisited the scene . . . he found it one of desolation."—Torrens' *Empire in Asia*, p. 125.

ने लिखा है—'युक्ति केवल यह थी कि गवरनर-जनरल और नवाब-व
दोनों मिलकर एक तीसरे शख़्स को लूटें, और जिस तीसरे शख़्स
लूटने का उन्होंने निश्चय किया, वह इन दोनों लूटने वालों में से एक
माँ थी।' समझा जाता था कि नवाब शुजाउद्दौला मरते समय अपनी
और विधवा बेगम दोनों को बड़े बड़े ख़ज़ाने दे गया है। फ़ैज़ाबाद
महल भी वह उन्हीं के नाम कर गया था, और ये बेगमें असंख्य स
न्धियों, बाँदियों और गुलामों सहित अपने इन्हीं प्यारे महलों में रह
थीं। इस धूर्तता की राय देने वाला माननीय गवरनर-जनरल
आसफ़ुद्दौला सुनकर शर्म से काँप उठा।××× अन्त को×××
पक्का हो गया। और दोनों अलग अलग इस दग़ाबाज़ी की ज़ाब्ता
में लग गए। तय हुआ कि×××फ़ैज़ाबाद में रहने वाली कुम्हलाई
औरतों के सर यह इलज़ाम मढ़ा जावे कि तुम अङ्गरेज़ों के विरुद्ध चेत
के साथ साज़िश कर रही हो। यदि इस तरह की दग़ा साबित की
सके तो फिर हर तरह का दण्ड या ज़ब्ती जायज़ ठहराई जा सकेगी; इ
लिए साबित करना ज़रूरी था और साबित भी बाज़ाब्ता तरीक़े से कर
जब लोगों को पता चला कि अङ्गरेज़ क्या चाहते हैं, तो झूठे गवाह
हो गए×××बेगमों की तरफ़ से न कोई जवाबदेही करने वाला
और न कोई वकालत करने वाला×××पेश्तर इसके कि बेगमों के म
के फाटकों को तोड़कर अङ्गरेज़ी सेना भीतर घुस सके, एक कठिनाई
बाक़ी थी—लोकाचार की शिष्टता के एक रेशमी बन्धन को तोड़ना।
बन्धन यह था कि शुजाउद्दौला मरते समय अपने इन सम्बन्धियों
अङ्गरेज़ सरकार की विशेष संरक्षता में छोड़ गया था, और यद्यपि
स्थिति बदल गई थी, किन्तु उस समय अङ्गरेज़ सरकार ने यह ज़िम्मे

अपने ऊपर ले ली थी।×××सर एलाइजाह इम्पे पहले भी कई ऐसे अवसरों पर काम दे चुका था। इस सङ्कट के समय वह फिर वारन हेस्टिंग्स का दोस्त साबित हुआ।×××अपनी पालकी में बैठकर ग़ैर-ईसाई कहारों की डाक लगवाकर उनके कन्धों पर सर एलाइजाह इम्पे कलकत्ते से लखनऊ रवाना हुआ;×××एक माननीय वाइसराय की आज्ञा पर उसे डकैती में मदद देने के लिए ईसाई चीफ़ जस्टिस को पूरी तेज़ी के साथ अपने कन्धों पर ले जाने में ग़ैर-ईसाई हिन्दुओं का उपयोग किया गया। रूहानी अन्धकार में डूबी हुई जनता को यूरोपियन व्यवहार और यूरोपियन सदाचार की श्रेष्ठता का इससे बढ़कर और क्या सुबूत मिल सकता था? अवध की राजधानी में पहुँचकर चीफ़ जस्टिस ने बहुत से हलफ़नामे लिए, जिनमें बेगमों पर यह इलज़ाम लगाया गया कि वे चेतसिंह के न्याय्य मालिकों यानी कम्पनी के विरुद्ध उस फ़रज़ी साज़िश में चेतसिंह से मिली हुई थीं। सर एलाइजाह ने न हलफ़नामे पढ़े, न किसी से पढ़वाकर सुने। वे एक ऐसी ज़बान में थे जिसे इम्पे समझता तक न था और न उसके पास इतना समय था कि किसी दूसरे से तरजुमा करवाने का इन्तज़ार करता। एशिया के अन्दर इङ्गलिस्तान के प्रधान न्यायाधीश की हैसियत से उसने हलफ़नामे लिए; और 'अपने उच्च अधिकार के इस घृणित दुरुपयोग' को पूरा कर फिर पालकी में बैठ कलकत्ते लौट आया।×××फ़ैज़ाबाद के महलों को अङ्गरेज़ी सेना ने घेर लिया। बेगमों से कहा गया कि आप क़ैदी हैं और अपने तमाम ज़ेवर, सोना, चाँदी और जवाहरात दे दीजे। जब बेगमों ने इनकार किया तो महल की शरीफ़ औरतों को भूखों मारा गया और उनके नौकरों को बड़ी बड़ी यातनाएँ दी गईं। बेगमें जब इन लोगों के रोने चीख़ने की आवाज़ों

को न सह सकीं तो उन्होंने पिटारों पर पिटारे और ख़ज़ानों पर ख़
देना शुरू किया, यहाँ तक कि कुल लूट की क़ीमत का अन्दाज़ा एक क
बीस लाख किया गया। जब तक यह रक़म पूरी न हुई सब तक
अभागे नौकरों और बाँदियों को रिहा न किया गया। उस भयङ्कर
का यह केवल एक ढाँचा है। जिन बातों से इस चित्र में सच्चे रङ्ग भरे
सकते हैं उन सब पर विस्मृति ने परदा डाल दिया है, जो अब
हटाया जा सकता।"*

---

* "Asafuddoula pleaded poverty, and named, with s truth, that amongst its causes was the annual contribution he v obliged to pay for the maintenance of the subsidiary fo Dreading a visit from the Viceroy, he went to meet him; a at the fortress of Chunar the negotiations took place w resulted in the memorable device for replenishing the excheq of Calcutta without exhausting that of Lucknow. 'It was,' s Lord Macaulay, 'simply this, that the Governor-General a the Nawab-Vizier should join to rob a third party, and the t party whom they determined to rob was the parent of one the robbers.' The mother and the widow of the late Viz were supposed to have derived, under his will, vast treasu They dwelt with a numerous retinue at the favourite palace Fyzabad, which he had bequeathed to them. Asafuddo shrank in shame from the villany suggested by his R Honourable Accomplice. . . . The confederates, hav ratified the bargain, parted, and each went his way to prepa the formalities of fraud. A conspiracy to aid Chait Singh in resistance to intolerable exaction was to be imputed to t withered women who dwelt at Fyzabad. If such a breach

इसके बाद टॉरेन्स बयान करता है कि किस प्रकार इन समस्त अत्याचारों ने, अवध के नवाब पर कम्पनी की आए दिन की माँगों ने, और वहाँ के राजशासन में अङ्गरेज़ों के नित्य हस्तक्षेप ने मिलकर आसफ़ुद्दौला को मिटा डाला, अवध-निवासियों की हिम्मतों को कुचल कर ख़ाक कर दिया, और उत्तरीय भारत के उस हरे भरे बाग़ को थोड़े ही दिनों में वीरान कर डाला।

---

friendship could be proved, it would justify any penalty or forfeiture; therefore it must be proved and proved in a regular respectable way. When it was known what was wanted, false witnesses rose up, . . . against the undefended Princesses of Oudh, . . . no advocate . . . Still there was a difficulty: a silken cord of conventional decency had to be snapped before the palace gates of the Begums could be forced open by English troops. The dying Vizier had placed these members of his family under the special protection of the British Government, and for reasons apparently good at the time, but good no longer, that Government had accepted the trust . . . Not for the first time Sir Elijah Impey proved himself to be a friend in need. . . . Sir Elijah got into his palanquin, and posted to Lucknow, by relays of pagan bearers;—for were not pagans made to bear Christian Chief Justices on their shoulders, when at full speed to aid in the Commission of robbery at the command of a Right Honorable Viceroy? What could more clearly prove to a soul-darkened population the superiority of European manners and morals? Arrived in the capital of Oudh, the Chief Justice took a number of affidavits which accused the Begums of complicity with Chait Singh, in his supposed conspiracy against his lawful masters, the Company. Sir Elijah did not read

शासन के नाम पर देशव्यापी लूट-खसोट

उन दिनों कम्पनी के प्रायः समस्त अङ्गरेज़ मुलाज़िम कम्पनी के लाभ के साथ साथ अपने व्यक्तिगत लाभ का भी खासा ख्याल रखते थे। वारन हेस्टिंग्स को भी अपनी प्रत्येक राजनैतिक चाल में इस बात का पूरा पूरा विचार रहता था। नज़रानों और रिशवतों का बाज़ार चारों ओर गरम था। इतिहास-लेखक जे० टालबॉयज़ व्हीलर लिखता है—

"हेस्टिंग्स ने क़बूल किया कि उसने सन् १७८२ में आसफ़ुद्दौला

---

the affidavits, or hear them read. They were in a dilect he could not understand, and he had not time to wait for an interpreter. So he took them as Chief Magistrate of England in the East, and this "scandalous prostitution of his high authority" being completed, he got into his palanquin again, and returned to Calcutta. . . . The farce concluded, tragic scenes began. The palace of Fyzabad was surrounded by English troops. The princesses were told that they were captives, and required to deliver up their gold and jewels, On their refusal, their ladies were subjected to semi-starvation and their servants to torture. Unable to endure their groans and tears, the Begums gave up casket after casket, and store after store, until the sum of spoil was reckoned at £s 12,00,000. Then, and not till then, the wretched menials were let go.. Such are the bare outlines of the dreadful tale, Over all that could furnish forth the coloring of the picture, the veil of oblivion has fallen, and can not now be raised. . . . Asafuddowlla . . . lost influence and power. . . . the desolation that overspread the country . . . .."—Torrens' *Empire in Asia*, pp. 126-128.

१० लाख रुपए लिए। इससे अनुमान होता है कि सन् १७७३ में उसने इतनी ही रक़म शुजाउद्दौला से लेकर चुपके से जेब में डाल ली थी। जिन कर्मचारियों को कुछ भी राजनैतिक तजरुबा है, उन्हें इसमें कोई शक नहीं हो सकता कि यदि इससे पहले आसफ़ुद्दौला के बाप शुजाउद्दौला ने इतनी ही रक़म हेस्टिंग्स को न दी होती और हेस्टिंग्स ने मन्ज़ूर न कर ली होती तो आसफ़ुद्दौला हरगिज़ दस लाख रुपए हेस्टिंग्स की नज़र न करता।"*

कलकत्ता कौन्सिल की ११ अप्रेल सन् १७७५ की कारवाई की रिपोर्ट में दर्ज है कि अपनी गवरनरी के केवल पहले तीन साल के अन्दर वारन हेस्टिंग्स इन ज़रियों से "चालीस लाख रुपए से ऊपर" कमा चुका था। वास्तव में हेस्टिंग्स के ख़िलाफ़ नन्दकुमार की शिकायतें झूठी न थीं। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि डेढ़ सौ वर्ष पूर्व भारत के अन्दर चालीस लाख रुपए की लगभग उतनी क़ीमत थी जितनी आज आठ करोड़ की, और 'चालीस लाख' के आदमी उन दिनों इङ्गलिस्तान में इतने ही कम थे जितने कि आठ करोड़ के आज दिन भारत में।

* "Hastings acknowledged to having taken a hundred thousand pounds from Asafuddoula in 1782. The inference follows that in 1773 he received a like sum from Shujauddoula and silently pocketed the money. Officers of any political experiences would be satisfied that Asafuddoula would never have offered the hundred thousand pounds to Hastings, unless a like sum had been previously offered by his father, Shujauddoula, and accepted by Hastings."—J. Talboys Wheeler in his *Short History of India, etc.*

वारन हेस्टिंग्स जिस प्रकार रिशवतें लेता था उसी प्रकार दे और दिलवाता भी था। उसके अनेक छोटे और बड़े काले और दलाल कम्पनी की अमलदारी भर में तमाम महकमों के अन्दर फैले हुए थे जो देशी नरेशों तथा भारतीय प्रजा दोनों को तरह से लूटते थे और उन पर तरह तरह के अत्याचार करते थे।

कोलब्रुक नामक अङ्गरेज़ ने २८ जुलाई सन् १७८८ को पत्र अपने पिता के नाम भारत से इङ्गलिस्तान भेजा, जिसमें उस लिखा—

"मिस्टर हेस्टिंग्स ने इस देश को ऐसे कलक्टरों और जजों से दिया है, जिनके सामने एक मात्र लक्ष्य धन कमाना है। ज्यों ही ये मुल्क के ऊपर छोड़े गए, उन्होंने कहीं कोई बहाना निकाल कर और बिना किसी बहाने के देशवासियों को लूटना शुरू कर दिया। XX जज लोग मुक़दमे का फ़ैसला उसके हक़ में करते हैं जो उन्हें सबसे ज़्यादा रुपए देता है। और चोर निर्विघ्न डाके डालने के बदले में बाज़ाब्ता सालियाना अदा करते हैं।"

आगे चलकर कोलब्रुक लिखता है—

"वारन हेस्टिंग्स की कूटनीति और उसके निर्लज्ज विश्वासघात का प्रभाव केवल राजाओं और बड़े लोगों पर ही नहीं पड़ा। ज़मींदारों की ज़मींदारियाँ छीन लेना, बेगमों को लूटना, रुहेलों को निर्वंश कर डालना ये सब भूले जा सकते हैं, किन्तु जो अत्याचार उसने गोरखपुर में किए सदा के लिए ब्रिटिश जाति के नाम पर एक कलङ्क रहेंगे।"*

* "It was Mr. Hastings who filled the country with Collectors and Judges who adopted one pursuit—a fortune. These har

गोरखपुर के इन अत्याचारों के विषय में जेम्स मिल लिखता है कि सन् १७७८ में वारन हेस्टिंग्स ने अपने एक अफ़सर करनल हैनेवे को कम्पनी की नौकरी से निकाल कर अवध के नवाब के यहाँ भेज दिया। नवाब पर ज़ोर देकर बहराइच और गोरखपुर के ज़िलों का दीवानी तथा फ़ौजी शासन करनल हैनेवे को दिलवा दिया गया। मिल लिखता है कि—"यह तमाम इलाक़ा नवाब के शासन में अत्यन्त ख़ुशहाल था, किन्तु करनल हैनेवे के अत्याचारों के कारण तीन वर्ष के अन्दर यह तमाम इलाक़ा वीरान होगया।" लिखा है कि—"हैनेवे ने कोई लगान नियत न कर रक्खा था, बल्कि जिस समय जिस ज़मींदार वा रय्यत से जितना चाहता था, अपने कलक्टरों द्वारा वसूल कर लेता था। जो लोग अदा करने के असमर्थ होते थे उन्हें इलाक़े भर के अन्दर आम तौर पर क़ैद और कोड़ों की सज़ा दी जाती थी। लोग अपने घर बार और गाँव

---

were no sooner let loose upon the country, than they plundered the inhabitants with or without pretences. . . . Justice was dealt out to the highest bidders by the Judges, and thieves paid a regular revenue to rob with impunity. . . . . .

"Nor did his crooked politics and shameless breach of faith affect any but the princes and great men; the deposition of zemindars, the plundering of Begums, the extermination of the Rohillas may be forgotten, but the cruelties acted in Gorukhpore will for ever be quoted to the dishonor of the British name." —Colebrooke in a private letter to his father, dated 28th July 1788

छोड़ छोड़कर निकल गए । बहुतों को इतना दिक़ किया गया कि उन्हें अपने बच्चे तक बेच देने पड़े ।"*

मिल लिखता है कि कम्पनी का एक मुलाज़िम कप्तान एडवर्ड्स सन् १७८० में इस इलाक़े को देखने के लिए गया । उसने देखा कि देश के बहुत कम हिस्से में खेती की गई थी, आबादी बहुत कम रह गई थी और जो इने गिने आदमी उस इलाक़े में रह गए थे अत्यन्त दुखी दिखाई देते थे । मिल यह भी लिखता है कि जिस समय करनल हैनेवे ने नवाब के यहाँ जाकर नौकरी की उस समय हैनेवे के ज़िम्मे क़र्ज़ा था, किन्तु तीन वर्ष के अन्दर क़र्ज़ा अदा करने के बाद उसके पास लगभग ४५,००,००० रुपए नक़द मौजूद थे ।

नवाब ने इन अत्याचारों की ख़बर सुनकर सन् १७८१ में करनल हैनेवे को बरख़ास्त कर दिया । इसके बाद जब नवाब को मालूम हुआ कि हेस्टिंग्स फिर करनल हैनेवे को मेरे सिर मढ़ने की तजवीज़ कर रहा है तो नवाब ने हेस्टिंग्स को लिख दिया कि—"मैं हज़रत मोहम्मद की क़सम खाता हूँ कि यदि आप

* ". . . the country, from a very flourishing state . . had been reduced to misery and desolation; that taxes were levied, not according to any fixed rule, but according to the pleasure of the Collector; that imprisonments and scourgings for enforcing payment, were common in every part of the country; that emigrations of the people were frequent; and that many of them were so distressed as to be under the necessity of selling their children."—Mill, Book v, Chapter 8.

मेरे यहाँ किसी काम पर भी करनल हैनेवे को नियुक्त किया तो मैं सल्तनत छोड़कर निकल जाऊँगा।"*

दुर्भाग्यवश उस समय के कम्पनी के शासन का कोई सच्चा और विस्तृत इतिहास किसी भारतवासी के हाथ का लिखा हुआ मौजूद नहीं है।

अब हम फिर कोलब्रुक के पत्र की ओर आते हैं। हमें याद रखना चाहिए कि कम्पनी ही इस समय समस्त बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा की प्रजा से लगान वसूल करती थी। यह लगान जिस हिसाब से वसूल किया जाता था, उसके विषय में कोलब्रुक लिखता है—

"जिस पद्धति के अनुसार इस देश के अन्दर अङ्गरेज़ी इलाक़ों का शासन किया जा रहा है उससे प्रजा की ख़ुशहाली पर बुरा असर पड़ा है। XXX नमक और अफ़ीम के ठेकों का अथवा उन तरीक़ों का जिनसे कम्पनी की तिजारती पूँजी जमा की जाती है ज़िक्र छोड़कर, मैं केवल ज़मीन के लगान का ज़िक्र करता हूँ। ज़मीन का लगान जहाँ तक बढ़ाया जा सकता था, बढ़ा दिया गया है। मुग़ल सरकार के अधीन कोई ज़मींदार अपनी ज़मींदारी की आमदनी का आधा भी सरकार को न देता था, और छोटी ज़मींदारियों से तो इससे भी कहीं कम लिया जाता था। इसके अलावा ज़मींदारों को कुछ रक़म बतौर पेन्शन के अपने हिसाब में जमा कर लेने की इजाज़त थी, अथवा उसकी जगह उन्हें कुछ ज़मीनें माफ़ी में मिल जाती थीं। इसके विपरीत कम्पनी के अधीन ज़मींदार के पास अपने

* Mill, Book v, Chapter, 8.

यहाँ की आमदनी का केवल दस फ़ी सदी रहने दिया जाता है। ×× प्रजा के साथ जिस तरह का बर्ताव किया जा रहा है, उससे वे सदा याद रक्खेंगे कि कभी किसी भी विजेता ने अपनी किसी पराजित जाति के कन्धों पर इससे भारी जुआ नहीं रक्खा।"*

वारन हेस्टिंग्स पर मुक़दमा

वारन हेस्टिंग्स के अत्याचारों की अनेक सङ्गीन शिकायतें इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के कुछ सदस्यों के पास पहुँचीं। पार्लिमेण्ट में कुछ न्यायप्रेमी सदस्य भी मौजूद थे। इनकी ओर से पार्लिमेण्ट के सामने वारन हेस्टिंग्स पर रिशवतखोरी और अनेक अन्य घोर अन्यायों के विषय में मुक़दमा चलाया गया। सुप्रसिद्ध

---

* "The system upon which the British dominions have been governed in the East, has affected the happiness of the people . . . not to mention monopolies of salt and opium, or the principles upon which the Company's investment has been provided, I may confine myself to the stretching the land rent to the utmost sum they can produce. A proprietor of an estate under the Mogul Government, seldom paid half of the produce of his estate, and in small properties much less; he was further allowed to take credit for a certain sum by way of pension or held rent-free lands in lieu there of. Under the Company, the landholder is allowed ten per cent of the net produce as his share. . . .

"The treatment of the people has been such as will make them remember the yoke as the heaviest that ever conquerors put upon the necks of conquered nations."—Colebrooke in the above letter.

विद्वान एडमण्ड वर्क ने अपनी अमर वक्तृताओं में कम्पनी और वारन हेस्टिंग्स के उन दिनों के कलुषित कृत्यों की ख़ूब पोल खोली। इन वक्तृताओं का पढ़ना ब्रिटिश भारतीय इतिहास के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए आवश्यक है। सात साल तक मुक़दमा चलता रहा। किन्तु वास्तव में इङ्गलिस्तान के सामने प्रश्न न्याय अन्याय का न था; प्रश्न था अङ्गरेज़ क़ौम के हित और अङ्गरेज़ क़ौम के राज्य का। वारन हेस्टिंग्स ने जो कुछ किया था, अपनी क़ौम के हित के लिए और भारत में अङ्गरेज़ी राज्य को मज़बूत करने के लिए किया था। इसलिए अन्त में ब्रिटिश पार्लिमेण्ट ने उसे सब इलज़ामों से साफ़ मुक्त कर दिया।

इस तमाम मुक़दमे में वारन हेस्टिंग्स के लगभग १० लाख रुपए ख़र्च हुए, जो निस्सन्देह भारत की कमाई के थे। कम्पनी के मालिकों ने फ़ौरन् हरजाने के तौर पर आयन्दा २८ साल तक के लिए चालीस हज़ार रुपए सालाना वारन हेस्टिंग्स को देने का वादा किया जिसमें से अधिकांश उन्होंने उसी समय पेशगी अदा कर दिया। निस्सन्देह हेस्टिंग्स इससे कई गुना अधिक कम्पनी को लाभ पहुँचा चुका था।

सर एलाइजाह इम्पे पर भी "रिशवतें लेने, अन्याय करने, झूठी गवाहियाँ बनाने, झूठे हलफ़नामे तसदीक़ करने"* इत्यादि

* "Cross corruption, positive injustice, . . . intentional violation of the Acts under which he held his powers, . . . having suborned evidence and given to falsehood the sanctity

का मुक़द्दमा चलाया गया। किन्तु अन्त में इङ्गलिस्तान के शा[illegible] ने यह कहकर कि "उसके जुर्मों का केवल प्रकट हो जाना काफ़ी है" उसे साफ़ छोड़ दिया।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें इस प्रकार पक्की की गई।

of an affidavit."—Impeachment of Sir Elijah Impay, December 12th, 1787.

आठवाँ अध्याय

पहला मराठा युद्ध

मराठा मण्डल

छत्रपति शिवाजी की मृत्यु के लगभग ७५ वर्ष के अन्दर १८ वीं सदी के मध्य में मराठों की सत्ता अपनी शिखर को पहुँच चुकी थी। मुग़ल साम्राज्य उस समय अत्यन्त जर्जर अवस्था में था और लगभग २५० वर्ष के उस पुराने साम्राज्य के खण्डहरों में से उत्पन्न होकर मराठों का साम्राज्य एक बार समस्त भारत पर फैलता हुआ मालूम होता था। स्वयं दिल्ली और दिल्ली का सम्राट दोनों मराठों के हाथों में थे। रघुनाथ राव की मराठा सेना राजधानी से आगे बढ़ कर लाहौर विजय कर चुकी थी और पराजित अफ़ग़ान सेना को अटक के पार भगा कर पञ्जाब का सूबा मराठा साम्राज्य में शामिल कर चुकी थी।

बालाजी बाजीराव उस समय पेशवा की मसनद पर था। शिवाजी के अयोग्य वंशज सतारा के क़िले के अन्दर पेशवा की

सेना के संरक्षण में अभी तक अपनी नाम मात्र की गद्दी क़ायम रक्खे हुए थे। किन्तु समस्त शासन-प्रबन्ध पेशवा के योग्य और प्रबल हाथों में था। पेशवा के अतिरिक्त मराठा साम्राज्य के चार मुख्य स्तम्भ अथवा 'महाराष्ट्र मण्डल' के चार मुख्य सदस्य, सींधिया, होलकर, गायकवाड़ और भोंसला थे। ये चारों चार बड़े बड़े राज्यों के स्वतन्त्र शासक थे, किन्तु सब पेशवा को अपना अधिराज मानते थे, उसे बराबर ख़िराज देते थे, और हर लड़ाई में आज्ञा मिलने पर अपनी सेनाओं सहित पेशवा की सहायता के लिए उपस्थित हो जाते थे। पहले पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने दिल्ली सम्राट फ़र्रुख़सीयर के दरबार में उपस्थित होकर प्रसिद्ध देशहितैषी भाइयों सय्यद अब्दुल्ला और सय्यद हुसेनअली की सहायता द्वारा सम्राट से मराठा राज्य के लिए 'स्वराज' का परवाना हासिल किया। सम्राट ने यह फ़रमान जारी कर दिया कि इस मराठा 'स्वराज' के अतिरिक्त दक्षिण के सूबेदार के शेष समस्त इलाक़ों पर मराठों को 'चौथ' मिला करे। पेशवा ने सम्राट की वफ़ादारी की प्रतिज्ञा की और अपनी सेना द्वारा साम्राज्य की रक्षा करते रहने का वादा किया। वास्तव में यह 'चौथ' इसी उद्देश से दी गई थी कि उससे पेशवा मुग़ल साम्राज्य के समस्त दक्षिणी भाग की रक्षा के लिए सेना रख सके। इसके बाद प्रत्येक पेशवा और उसके मातहत समस्त मराठा नरेश कम से कम नाम के लिए दिल्ली के सम्राट को समस्त भारत का सम्राट और अपना महाराजाधिराज मानते थे। रघुनाथ राव ने दिल्ली सम्राट ही के नाम पर

अफ़ग़ानों से पञ्जाब विजय किया और जिस मराठा सरदार को वहाँ का शासन सौंपा उसे 'दिल्ली' सम्राट का एक सूबेदार कहकर नियुक्त किया। तथापि वास्तव में दिल्ली दरबार की निर्बलता के कारण मराठों की उस समय की सत्ता स्वाधीन सत्ता थी; और पेशवा ही हिन्दोस्तान के उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक अर्थात् अटक से करनाटक और बङ्गाल की सरहद से खम्भात की खाड़ी तक फैले हुए इस विशाल मराठा सामाज्य का क्रियात्मक सम्राट था।

किन्तु यह मराठा साम्राज्य चन्द रोज़ भी अपने पूरे वैभव को क़ायम न रख सका। मालूम होता है कि साम्राज्य के साथ ही साथ मराठा सरदारों में परस्पर ईर्षा और प्रतिस्पर्धा बढ़ने लगी। वे निष्प्रभ, किन्तु निरपराध और राष्ट्रोपयोगी दिल्ली सम्राट को भी तख़्त से उतार कर उसकी जगह लेने के चक्कर में पड़ गए। उनमें से कुछ अपने अथवा अपने कुलों के लाभ के लिए अपने देशवासियों, यहाँ तक कि स्वयं पेशवा के विरुद्ध विदेशियों से मेल करने में भी न झिझके। एक पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है कि इस तरह के आन्तरिक दोषों के कारण ही मराठों की सत्ता को पहला धक्का सन् १७६१ में पहुँचा, जबकि पानीपत के ऐतिहासिक मैदान में अहमदशाह अब्दाली की सेना ने मराठों की संयुक्त सेना को परास्त कर उन्हें उत्तरीय भारत से सदा के लिए निकाल बाहर किया। उसी समय से दिल्ली के सम्राट पर से मराठों का प्रभाव उठ गया और उस समय से ही धीरे धीरे गायकवाड़, भोंसला,

होलकर और सींधिया एक एक कर पेशवा की अधीनता से अपने तईं मुक्त समझने लगे।

पानीपत के कुछ सप्ताह बाद बालाजी बाजीराव की मृत्यु हो गई। बालाजी का नाबालिग़ बेटा माधोराव पेशवा की मसनद पर बैठा और माधोराव का चचा रघुनाथ राव, जिसे इतिहास में अधिकतर राघोबा कहा जाता है और जिसकी सेना ने अफ़गानों से पञ्जाब विजय किया था, अपने भतीजे पेशवा का संरक्षक नियुक्त हुआ। राघोबा अत्यन्त वीर, किन्तु अदूरदर्शी था। वह महत्वाकांक्षी भी था और महत्वाकांक्षा ने उसकी नीतिज्ञता पर और भी परदा डाल दिया था। इसीलिए जब अङ्गरेज़ों ने अपने मतलब के लिए मराठों की सत्ता को नष्ट करने का विचार किया तो राघोबा आसानी से उनके हाथों में खेल गया।

दक्षिण में कम्पनी की नीति

कम्पनी की सत्ता उन दिनों भारत में दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। मराठों जैसी प्रबल भारतीय शक्ति के अस्तित्व को अङ्गरेज़ अपनी उन्नति के लिए हितकर न समझ सकते थे। एक न एक दिन इन दोनों शक्तियों का एक दूसरे से टकरा जाना स्वाभाविक था।

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक ग्राण्ट डफ़ लिखता है कि उस समय—

"कम्पनी के डाइरेक्टर इस बात के लिए इच्छुक थे कि मराठों की बढ़ती हुई सत्ता को किसी तरह धक्का पहुँचे, और यदि देश की दूसरी

शक्तियाँ मिलकर मराठों पर हमला करतीं तो उन्हें देखकर बहुत बड़ा सन्तोष होता।"*

इसी इच्छा को पूरा करने के लिए अङ्गरेज़ों ने राघोबा को बहकाना शुरू किया कि दक्षिण का सूबेदार निज़ामुलमुल्क मराठों पर हमला करने वाला है।

राघोबा की अदूरदर्शिता से पेशवा माधोराव और बम्बई के अङ्गरेज़ गवरनर इन दोनों के बीच यह सन्धि हो गई कि यदि निज़ाम मराठों पर हमला करे तो अङ्गरेज़ सेना और सामान से मराठों की मदद करेंगे और इस मदद के बदले में पश्चिमी तट पर साष्टी (Salsette) का टापू और बसई (Bassein) का क़िला दोनों पेशवा की ओर से अङ्गरेज़ों को दे दिए जावेंगे।

यद्यपि इसके बाद न निज़ाम ने मराठों पर हमला किया, न मराठों को अङ्गरेज़ों की मदद की ज़रूरत हुई, और न साष्टी और बसई उस समय अङ्गरेज़ों के हवाले किए गए, तथापि इस सन्धि के समय से ही अङ्गरेज़ों की पेशवा दरबार के अन्दर पहुँच हो गई, उन्हें मराठों की आन्तरिक कमज़ोरियों का पता लगने लगा, और मराठा साम्राज्य के अन्दर अपनी साज़िशों के फैलाने का मौक़ा मिलने लगा।

दक्षिणी भारत के सम्बन्ध में इस समय कम्पनी की नीति के

* "The Court of Directors, were desirous of seeing the Marhattas checked in their progress, and would have beheld combinations of the other native powers against them with abundant satisfaction."—*History of the Marhattas*, by Grant Duff.

तीन मुख्य पहलू थे, अथवा उनकी तीन मुख्य इच्छाएँ थीं, जो डाइरेक्टरों और गवरनर-जनरल के पत्र-व्यवहार से बिलकुल स्पष्ट हैं—

(१) अङ्गरेज़ जानते थे कि यदि दक्षिण की तीन मुख्य शक्तियाँ निज़ाम, हैदरअली और पेशवा आपस में मिल गईं तो दक्षिणी भारत से अङ्गरेज़ों के अस्तित्व को आसानी से मिटा देंगी, इसलिए जिस तरह हो इन तीनों को एक दूसरे से लड़ाए रखना ज़रूरी था।

(२) इनमें मराठे सब से अधिक महत्वाकांक्षी और साम्राज्य-प्रेमी थे। इसलिए उन्हें घरेलू झगड़ों में इस तरह फँसाए रखना ज़रूरी था कि जिससे बङ्गाल और उत्तरीय भारत के अन्दर अङ्गरेज़ों के बढ़ते हुए प्रभाव में हस्तक्षेप करने का उन्हें अवकाश न मिल सके।

(३) और भारत के पश्चिमी तट पर आहिस्ता आहिस्ता अपने पैर फैलाने के लिए साष्टी का टापू, बसईं का इलाक़ा और कुछ थोड़ा सा गुजरात प्रान्त का भाग कम्पनी को अपने अधीन कर लेना आवश्यक था।

कम्पनी के डाइरेक्टरों ने बम्बई के गवरनर और वहाँ की कौन्सिल के नाम १८ मार्च सन् १७६८ के एक पत्र में यह स्पष्ट लिखा कि—"हम आप से जितने ज़ोर के साथ हो सकता है उतने ज़ोर के साथ सिफ़ारिश करते हैं कि आपको जब जब मौक़ा मिल सके आप इन स्थानों (साष्टी और बसईं) को प्राप्त करने के प्रयत्न

करते रहें। इसमें हम अपना बहुत बड़ा लाभ समझते हैं।"* इसके बाद ३१ मार्च सन् १७६९ के डाइरेक्टरों के पत्र में फिर यह वाक्य आता है—"साष्टी और बसई, और उनके साथ के इलाक़े और सूरत प्रान्त का मराठा भाग×××ये चीज़ें हैं, जिन्हें आपको अपनी तमाम सन्धियों में, पत्र-व्यवहार में और लड़ाइयों में अपनी नज़र के सामने रखना चाहिए, और जिन्हें प्राप्त करने के लिए हमेशा मौक़े की ताक में रहना चाहिए।"†

इतिहास-लेखक मिल लिखता है कि—"इसी मनोरथ को अधिक लगन के साथ सिद्ध करने और पेशवा माधोराव से बातचीत करने के लिए डाइरेक्टरों ने हिदायतें देकर मिस्टर मॉस्टिन को भारत भेजा।"‡

---

* "We recommend to you, in the strongest manner, to use your endeavours, upon every occasion that may offer, to obtain these places, which we should esteem a valuable acquisition."—Directors' letter to the President and Council of Bombay, dated 18th March, 1768.

† "Salsette and Bassein, with their dependencies, and the Marhatta's portion of the Surat provinces . . . These are the objects you are to have in view, in all your treaties, negotiations, and military operations,—and that you must be ever watchful, to obtain."—Directors' letter, dated 31st March, 1769.

‡ "In more earnest prosecution of the same design, Mr. Mostyn arrived from England, in 1772, with instructions from the Court of Directors, that he should be sent immediately to negotiate with Madho Rao the Peshwa . . . for the cession

सन् १७७२ में डाइरेक्टरों का विशेष दूत मॉस्टिन भारत पहुँचा और तुरन्त उसे बम्बई की कौन्सिल का वकील बनाकर पेशवा के दरबार में भेज दिया गया।

इतिहास-लेखक ग्राण्ट डफ़ अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखता है —"बम्बई की गवरमेण्ट ने मि० मॉस्टिन को इस उद्देश से पूना भेजा कि वह ××× मराठों को घर ही घर में एक दूसरे से लड़ा कर अथवा जिस तरीक़े से हो सके इस बात की कोशिश करे कि मराठे हैदर के साथ अथवा निज़ाम के साथ मिलने न पावें।"*

गङ्गा के उत्तर में कुछ इलाक़ों पर उस समय तक मराठों का क़ब्ज़ा हो चुका था, और मिल के इतिहास से पता चलता है कि सन् १७७३ में यदि आपसी घरेलू झगड़े मराठों को बाहर जाने से न रोकते तो वे इलाहाबाद, कड़ा, अवध और रुहेलखण्ड पर हमला करने वाले थे।†

इस प्रकार कम्पनी की उस समय की नीति के तीनों पहलू महत्वपूर्ण और स्पष्ट थे।

---

of the island and peninsula of Salsette and Bassein. . . Mill, vol. iii, p. 423, 24.

* "Mr. Mostyn was sent to Poona by the Bombay Government, for the purpose of . . . using every endeavour, by fomenting domestic dissensions or otherwise, to prevent the Marhattas from joining Hyder or Nizam Ally."—Grant Duff's *History of the Marhattas*, p. 340.

† Mill's *History of British India*, vol. iii, p. 394.

नाना फ़ड़नवीस की दूरदर्शिता

मॉस्टिन ने पूना पहुँच कर बड़ी होशियारी के साथ अपना काम शुरू किया। स्वार्थान्ध राघोबा से उसे इस काम में पूरी सहायता मिली। किन्तु पेशवा दरबार में उस समय एक और दूरदर्शी नीतिज्ञ मौजूद था, जो राघोबा की स्वार्थपरायणता और अङ्गरेज़ों की चालों को ख़ूब समझता था। यह नीतिज्ञ सुप्रसिद्ध नाना फ़ड़नवीस था। सन् १८५० में नाना की मृत्यु के वर्षों बाद उसकी योग्यता को स्वीकार करते हुए जे० सलीवन नामक अङ्गरेज़ ने करनल ब्रिग्स के नाम एक पत्र में लिखा कि—"नाना फ़ड़नवीस और उस जैसे आदमी हमें दीजे। उस योग्यता के भारतवासियों के मुक़ाबले में भारत के शासकों की हैसियत से हम कैसे नाचीज़ बौने मालूम होते हैं !!!"*

इतिहास-लेखक टॉरेन्स अङ्गरेज़ों की ओर नाना फ़ड़नवीस की नीति के विषय में लिखता है—

"नाना फ़ड़नवीस अङ्गरेज़ों के प्रति आदर प्रकट करता था, उनकी तारीफ़ करता था, किन्तु उनके राजनैतिक आलिङ्गन से पीछे हटता था; और चाहे कोई कैसी भी आपत्ति क्यों न सामने खड़ी हो, वह अङ्गरेज़ों से स्थायी सैनिक सहायता स्वीकार करने से सदा इनकार करता रहा।"†

---

* "Give us Nana Fadnavis and such like. What poor pigmies we are as Indian administrators when compared with natives of that stamp !!!"—J. Sullivan's letter to Colonel Briggs 1850.

† Torrens' *Empire in Asia*, p. 221.

नाना की यह नीति ही उस समय के भारतीय शासकों के लिए एकमात्र कुशल नीति हो सकती थी। इसीलिए राघोबा और अङ्गरेज़ों के बीच जो सन्धि हो चुकी थी, नाना फ़ड़नवीस उसके विरुद्ध था। पेशवा माधोराव भी नाना के प्रभाव में था। ऐसी सूरत में मॉस्टिन की चालें कुछ दिनों तक न चल सकीं। इतिहास-लेखक मिल लिखता है कि थोड़े दिनों की बातचीत के बाद मॉस्टिन ने देख लिया कि साष्टी और बसई इतनी आसानी से न मिल सकेंगे।

तथापि मॉस्टिन के प्रयत्न जारी रहे। सब से पहले उसने राघोबा और नाना फ़ड़नवीस को एक दूसरे से फोड़ने की कोशिश की। पेशवा माधोराव बालिग़ हो गया था। फिर भी राघोबा मॉस्टिन के कहने में आकर उसे नाना के प्रभाव से हटाकर अपने प्रभाव में रखने की चेष्टा करता रहा। धीरे धीरे माधोराव और राघोबा में अनबन इतनी बढ़ गई कि एक बार माधोराव ने विवश होकर अपने चचा राघोबा को क़ैद कर दिया। किन्तु शीघ्र ही राघोबा फिर छोड़ दिया गया। इतने में १८ नवम्बर सन् १७७२ को २८ वर्ष की अल्प आयु में माधोराव की मृत्यु हो गई। माधोराव की मृत्यु मराठा साम्राज्य के लिए बड़े दुर्भाग्य की घटना थी। इस नौजवान पेशवा की मौत का ज़िक्र करते हुए ग्राण्ट डफ़ लिखता है—

"दूर दूर तक फैले हुए मराठा साम्राज्य के उस वृक्ष को, जिसे कुछ हानि पहले ही पहुँच चुकी थी, जो जड़ नीचे से रस पहुँचाती थी वह तने से कटकर अलग हो गई। उस साम्राज्य को पानीपत के मैदान से भी

इतना धक्का न पहुँचा था जितना इस सुयोग्य शासक की अकाल मृत्यु से पहुँचा। माधोराव युद्ध विद्या में तो अत्यन्त निपुण था ही, किन्तु नरेश की हैसियत से उसका चरित्र उसके पूर्वाधिकारियों से कहीं अधिक प्रशंसा और कहीं अधिक आदर के योग्य था।"*

पेशवा माधोराव की अचानक मृत्यु के सम्बन्ध में कम्पनी के दूत मॉस्टिन पर सन्देह होना, विशेष कर मॉस्टिन के आगे के कार्यों को देखते हुए, सर्वथा स्वाभाविक है; किन्तु इन गुप्त पापों का ठीक भेद इतने समय के बाद खुल सकना अत्यन्त कठिन है।

माधोराव के कोई बच्चा न था। मरने से पहले उसने अपने भाई नारायणराव को पेशवा की मसनद के लिए नियुक्त कर दिया और अपने चचा राघोबा से प्रार्थना की कि आप नारायणराव की रक्षा और सहायता कीजिएगा।

विद्रोही राघोबा

किन्तु राघोबा के लिए अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने और मॉस्टिन के लिए राघोबा द्वारा अपने मालिकों की इच्छा को सफल बनाने, दोनों का अब ख़ासा सुन्दर अवसर था। ३० अगस्त सन् १७७३ को राघोबा ने अपने भतीजे नारायणराव पेशवा को मरवा डाला। मॉस्टिन ने बड़े उल्लास के साथ बम्बई की अङ्गरेज कौन्सिल को इस घटना की सूचना दी।

नारायणराव की हत्या का भेद उसी समय पूरी तरह खुल गया। जिन आदमियों ने नारायणराव को मारा वे राघोबा के आदमी थे

* Grant Duff's *History of the Marhattas*, p. 352.

पूछ ताछ होने पर राघोबा ने बयान किया कि जो मराठी पत्र मैंने अपने उन आदमियों के नाम भेजा था, जिन्होंने नारायणराव को क़त्ल किया, उसमें शब्द 'धरावे' था जिसका अर्थ 'पकड़ना' है और मेरा मतलब केवल नारायणराव को गिरफ़्तार कराने का था, किन्तु बाद में बीच ही में किसी ने कहीं पर 'धरावे' शब्द को बदल कर 'मारावे' कर दिया। इसमें भी कोई सन्देह नहीं हो सकता कि इस हत्याकाण्ड में मॉस्टिन का पूरा हाथ था। सर हेनरी लॉरेन्स लिखता है—"बाद में राघोबा ने नारायणराव को मार डाला××× और अङ्गरेज़ सरकार ने उसका साथ दिया। अङ्गरेज़ों के भारतीय इतिहास का यह एक अत्यन्त पापमय प्रकरण है।"*

उधर बम्बई की कौन्सिल ने नारायणराव की मृत्यु का समाचार पाकर उस मौक़े को अपनी इच्छा पूर्ति के लिए ग़नीमत समझा। ३० अगस्त को पूना में पेशवा नारायणराव की हत्या हुई और १७ सितम्बर को बम्बई की कौन्सिल ने मॉस्टिन को पत्र लिखा कि—"इस अवसर पर साष्टी और बसईं प्राप्त करने में जितनी चीज़ें हमें मदद दे सकें, उन्हें तुम ख़ूब परिश्रम के साथ बढ़ाना और चाहे कुछ भी क्यों न हो पूना छोड़कर कहीं न जाना।"†

* "Raghoba afterwards murdered Narayan Rao, . . . and was supported by the British Government. A *very* [...] *chapter* in Anglo Indian History."—*Calcutta Review*, vol. [...] p. 430.

† ". . . . to improve diligently every circums[...] favourable to the accomplishment of that event (the possessio[...]

नारायणराव की मृत्यु के बाद राघोबा ने अपने आपको पेशवा एलान कर दिया। मॉस्टिन और उसके साथियों ने राघोबा को पेशवा बनने में पूरी सहायता दी। पेशवा नारायणराव के स्वभाव की प्रशंसा करते हुए ग्राण्ट डफ़ अन्त में लिखता है कि—"सिवाय उसके शत्रुओं के बाक़ी सब उससे प्रेम करते थे।"* किन्तु अङ्गरेज़ों ने अब नारायणराव की ख़ूब बुराई और राघोबा की तारीफ़ें करनी शुरू कर दीं।

पूना के अधिकांश दरबारी और वहाँ की प्रजा सब राघोबा के विरुद्ध थे। राघोबा हर तरह से मॉस्टिन के हाथों की कठपुतली था। मॉस्टिन ने अब उसे समझा बुझाकर निज़ाम और हैदरअली के साथ उसका बाज़ाब्ता युद्ध छिड़वा दिया और इस युद्ध के लिए उसे सेना सहित पूना से रवाना कर दिया। किन्तु इस चढ़ाई में राघोबा को सिवाय कष्ट और अपमान के और कुछ न मिल सका।

नाना फ़ड़नवीस और उसके साथियों ने, जो अच्छी तरह देख रहे थे कि किस प्रकार राघोबा विदेशियों के हाथों में खेल कर मराठा साम्राज्य की जड़ें खोखली कर रहा है, राघोबा की इस अनुपस्थिति में अपना बल और बढ़ा लिया, यहाँ तक कि राघोबा

Salsette and Bassein), and on no account whatever to leave the Marhatta Capital."—Mill, vol. iii, p. 425.

* ". . . all but his enemies loved him."—Grant Duff, *History of the Marohattas.*

को पूना लौटने का साहस न होसका। वह जान बचा कर गुजरात की ओर भाग गया।

इसी बीच पूना में १८ अप्रेल सन् १७७४ को पेशवा नारायण-राव की विधवा स्त्री के, जो अपने पति की हत्या के समय गर्भवती थी, एक पुत्र हुआ। पूना दरबार ने तुरन्त एक मत से इस बालक के पेशवा नियुक्त किए जाने का एलान कर दिया। प्रजा ने उसकी मसनद-नशीनी पर ख़ुशियाँ मनाईं।

किन्तु अङ्गरेज़ों का हित राघोबा ही को पेशवा बनाने में था। उन्होंने राघोबा को अपने पास सूरत बुलवा लिया। सूरत में ६ मार्च सन् १७७५ को राघोबा और अङ्गरेज़ों में एक सन्धि हो गई जिसमें राघोबा ने साष्टी, बसई और सूरत प्रान्त का एक भाग कम्पनी के नाम लिख दिया और बम्बई की अङ्गरेज़ कौन्सिल ने इसके बदले में राघोबा को कम्पनी की सेना सहित पूना भेजने और पेशवा की मसनद पर बैठाने का वादा किया।

यह नाजायज़ सन्धि ही पहले मराठा युद्ध की जड़ थी।

अङ्गरेज़ों की पहली हार

करनल कीटिङ्ग के अधीन कम्पनी की सेना और राघोबा की सेना दोनों मिलकर राघोबा को ज़बरदस्ती पेशवा की मसनद पर बैठाने के उद्देश से पूना की ओर बढ़ीं। उधर पूना दरबार ने सेनापति हरिपन्त फड़के के अधीन एक सेना राघोबा के विद्रोह को दमन करने के लिए गुजरात की ओर रवाना कर दी। १८ मई सन्

१७७५ को आरस नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं में एक घमासान संग्राम हुआ, जिसमें राघोबा और उसके मददगारों की हार हुई और अङ्गरेज़ों की बहुत सी सेना तथा अनेक अङ्गरेज़ अफ़सर मारे गए।

किन्तु बरसात सर पर थी, इसलिए विद्रोहियों का पीछा करके उनका सर्वनाश किए बिना ही हरिपन्त फड़के को अपनी सेना सहित पूना लौट आना पड़ा।

नतीजा यह हुआ कि राघोबा और अङ्गरेज़ों को गुजरात में अपनी साज़िशों को पक्का करने का अब और अच्छा मौक़ा मिला।

मराठों के साथ दोरुख़ी चालें

भारतीय नरेशों की पारस्परिक ईर्षा के कारण इस तरह की साज़िशों के लिए मैदान उन दिनों भारत के प्रायः प्रत्येक प्रान्त में मिल सकता था। सन् १७६८ में गुजरात के अन्दर महाराजा दमनाजी गायकवाड़ की मृत्यु हुई। तीन रानियों से उसके चार बेटे थे—सयाजी, गोविन्दराव, मानिकजी और फ़तहसिंह। कई वर्ष से सयाजी और गोविन्दराव में गद्दी के लिए लड़ाइयाँ हो रही थीं। फ़तहसिंह चारों में सब से चलता हुआ और सयाजी के पक्ष में था।

करनल कीटिङ्ग जब राघोबा की सहायता के लिए सेना लेकर बम्बई से गुजरात आया, उसने गोविन्दराव के विरुद्ध सयाजी के साथ सन्धि करने की कोशिश की। २२ अप्रेल सन् १७७५ को

उसका एक दूत लैफ़्टेनेण्ट जॉर्ज लवीबॉएड बातचीत के लिए फ़तहसिंह के पास पहुँचा। किन्तु नौजवान फ़तहसिंह ने अङ्गरेज़ों के साथ सन्धि करने से इनकार कर दिया। और बड़े तिरस्कार के साथ लवीबॉएड को अपने यहाँ से निकाल दिया।

बम्बई की कौन्सिल ने जब यह समाचार सुना तो फ़ौरन् अपने अभ्यस्त दूत मॉस्टिन को कीटिङ्ग की सहायता के लिए पूना से गुजरात भेजा। इस समय तक फड़के की विजयी सेना पूना वापस पहुँच चुकी थी। मॉस्टिन अब पूना से गुजरात चला आया और वहाँ पर उसने अपनी चालों का जाल बिछाना शुरू किया। अन्त में अङ्गरेज़ों और फ़तहसिंह गायकवाड़ के बीच सन्धि हो गई।

इस सन्धि के अनुसार भड़ोच, चिखली, वरियाव और कोरल के तीनों परगने, जिनकी आमदनी कई लाख रुपए सालाना थी, बिना किसी तरह की लड़ाई के कम्पनी को मिल गए, और सयाजीराव गायकवाड़ अङ्गरेज़ों की मदद से बड़ोदा की गद्दी पर बैठ गया। गायकवाड़ का राज-कुल अभी तक पेशवा को अपना अधिराज मानता था, किन्तु अब से वह सदा के लिए मराठा मण्डल से फूट कर अलग हो गया और गुजरात में अङ्गरेज़ों के पैर जम गए।

सूरत की सन्धि के अनुसार अङ्गरेज़ों ने साष्टी और बसई दोनों पर क़ब्ज़ा कर लिया। किन्तु सूरत की सन्धि को पेशवा सरकार ने स्वीकार न किया था और विद्रोही राघोबा को पेशवा

को मसनद पर बैठाने के निष्फल प्रयत्न द्वारा अङ्गरेज़ पूना सरकार को अपना दुशमन बना चुके थे।

अङ्गरेज़ों के सामने उस समय वास्तव में एक कठिन समस्या थी। राघोबा के पेशवा बन सकने की सम्भावना बहुत ही कम थी और विद्रोही राघोबा को मदद देने के बाद पूना सरकार से बातचीत करने का उन्हें अब कोई मुँह न था। उनके गुप्तचर मॉस्टिन का अब फिर पूना में घुस सकना तक असम्भव मालूम होता था।

वारन हेस्टिंग्स को इस समय एक ख़ासी अच्छी तरकीब सूझी। उसने सीधे कलकत्ते से अपना एक विशेष दूत करनल अपटन पूना दरबार के पास भेजा और यह रुख़ लिया कि बम्बई की कौन्सिल ने राघोबा के साथ जो सन्धि की है और उसे जो कुछ मदद दी है, वह मेरी मरज़ी के ख़िलाफ़ और मेरी इजाज़त के बिना दी गई है, इसलिए वह सन्धि नाजायज़ है, और अङ्गरेज़ सरकार न विद्रोही राघोबा का साथ देना चाहती है और न पेशवा सरकार से लड़ना चाहती है।

वारन हेस्टिंग्स ने बम्बई सरकार को हुकुम दिया कि पेशवा दरबार से युद्ध फ़ौरन् बन्द किया जावे और करनल कीटिङ्ग और उसकी सेना को वापस बुला लिया जावे। बम्बई सरकार ने आज्ञा पाते ही कीटिङ्ग और उसकी रही सही सेना को सूरत वापस बुला लिया। पेशवा दरबार के मन्त्री उस समय पुरन्धर में थे, इसलिए करनल अपटन २८ दिसम्बर सन् १७७५ को पुरन्धर पहुँचा।

सखाराम बापू उस समय पेशवा का प्रधान मन्त्री था। करनल

अपटन के पूना जाने का उद्देश ज़ाहिरा यह था कि बम्बई कौन्सिल के समस्त कार्य को नाजायज़ बताकर उनके लिए कम्पनी की ओर से दुख प्रदर्शित करे और पेशवा दरबार के प्रति कम्पनी की मित्रता और वफ़ादारी प्रकट करे। किन्तु करनल अपटन के पास वारन हेस्टिंग्स के दस्तख़ती दोहरे पत्र मौजूद थे। एक सखाराम बापू के नाम जिसका आशय ऊपर दिया जा चुका है और दूसरा विद्रोही राघोबा के नाम, जिसमें वारन हेस्टिंग्स ने राघोबा के प्रति मित्रता प्रकट करते हुए बम्बई कौन्सिल की समस्त काररवाई का समर्थन किया। अपटन को हिदायत कर दी गई थी कि यह दूसरा पत्र केवल उस सूरत में उपयोग करना, जब कि इस बीच किसी कारण वश राघोबा के पक्ष की जीत हो चुकी हो। साथ ही हेस्टिंग्स ने जो पत्र सखाराम बापू के नाम भेजा, उसमें भी अपनी मित्रता प्रकट करते हुए पेशवा दरबार से यह प्रार्थना की कि साष्टी और बसई अङ्गरेज़ों ही के पास रहने दिए जायँ।

पेशवा दरबार के मन्त्री, जिनमें सखाराम बापू और नाना फ़ड़नवीस जैसे नीतिज्ञ मौजूद थे, मामले को ख़ूब समझते थे। करनल अपटन ने वारन हेस्टिंग्स के नाम २ फ़रवरी सन् १७७६ के पत्र में लिखा—

"वे मुझसे हज़ार बार पूछते हैं कि 'आप बराबर इतनी वफ़ादारी की क़समें क्यों खाते हैं ? बम्बई गवरमेण्ट की छेड़ी हुई लड़ाई को तो आप लोग बुरा कहते हैं, और उस लड़ाई द्वारा जो इलाक़े आपको मिल गए

हैं उन्हें अपने पास रखने के लिए इतने इच्छुक हैं, यह सब मामला क्या है ?'''*

पेशवा दरबार ने इस बात पर ज़िद की कि अङ्गरेज़ फ़ौरन् साष्टी और बसई खाली कर दें। मजबूर होकर अपटन ने ७ फ़रवरी सन् १७७६ को वारन हेस्टिंग्स को लिख दिया कि—"पूना दरबार हमारी शर्तों पर राज़ी नहीं होता।"

वारन हेस्टिंग्स ने जब देख लिया कि सुलह से काम नहीं चल सकता तो अपटन के पूना रहते हुए फ़ौरन् एक बहुत बड़े पैमाने पर जङ्ग की तैयारियाँ शुरू कर दीं। कलकत्ते और मद्रास दोनों स्थानों पर पूना भेजने के लिए सेनाएँ जमा की जाने लगीं। भोंसले, सींधिया तथा होलकर, तीनों को हेस्टिंग्स ने अपनी ओर फोड़ने की कोशिशें प्रारम्भ कीं। हैदरअली और निज़ाम से भी उसने गुप्त पत्र-व्यवहार शुरू किया, और यह कोशिश की कि यदि हैदरअली और निज़ाम पेशवा दरबार के ख़िलाफ़ अङ्गरेज़ों को मदद न भी दें तो कम से कम तटस्थ रहें।

पूना दरबार को इन सब बातों की ख़बर मिलती रही। इतिहास से पता नहीं चलता कि और कौन कौन सी बातें थीं, जिनसे डर कर अथवा मजबूर होकर अन्त में नाना फ़ड़नवीस जैसे नीतिज्ञों ने अपने विचार बदल दिए। करनल अपटन जिस समय निराश

* "They ask me a thousand times, why we make such professions of honor? How disapprove the war entered into by the Bombay Government, when we are so desirous of availing ourselves of the advantages of it?"—Colonel Upton to Warren Hastings, 2nd Feb. 1776

होकर पुरन्धर से बङ्गाल लौटने को तैयार हुआ, कहा जाता है कि पेशवा के मन्त्रियों ने उसे रोक लिया।

पुरन्धर की सन्धि और उसे तोड़ने का प्रयत्न

३ जून सन् १७७६ को पुरन्धर में पेशवा दरबार और कम्पनी के दरमियान एक नई सन्धि हुई, जिसमें सूरत वाली नाजायज़ सन्धि को रद क़रार दिया गया, उन्होंने वादा किया कि हम फिर कभी राघोबा को सहायता न देंगे, बसई का क़िला पूना दरबार को लौटा देंगे और इस दरबार के साथ सदा मित्रता क़ायम रक्खेंगे। पूना दरबार ने राघोबा के गुज़ारे के लिए प्रबन्ध कर दिया और "बतौर दोस्ताने के" कम्पनी को साष्टी का टापू, भड़ोच शहर की मालगुज़ारी और उसके आस पास तीन लाख रुपए सालाना का इलाक़ा बतौर जागीर दे दिया। यह भी तय हुआ कि कम्पनी का एक वकील पेशवा के दरबार में रहा करे। पूना दरबार को निस्सन्देह यह आशा थी कि इस उदारता के बाद हम इन विदेशी व्यापारियों के साथ अमन से रह सकेंगे, किन्तु उनकी यह आशा झूठी निकली। पूना के चतुर ब्राह्मण भी कूट नीति में इन विदेशियों से टक्कर न ले सके। वास्तव में दोनों के नैतिक आदर्शों में बहुत बड़ा अन्तर था। ज्योंही कम्पनी के डाइरेक्टरों को इस नई सन्धि की सूचना मिली, उन्होंने फ़ौरन् वारन हेस्टिंग्स को लिखा—

"हम चाहते हैं कि राघोबा के साथ जो सन्धि हुई थी, उसके अनुसार कम्पनी को जितना इलाक़ा मिला था, उस सबको हर हालत में अपने

क़ब्ज़े में रक्खा जावे; और हम आपको आज्ञा देते हैं कि जो उपाय उसे क़ायम रखने और उसकी रक्षा करने के लिए ज़रूरी हों, आप तुरन्त कर डालें।"*

बम्बई कौन्सिल, कलकत्ता कौन्सिल और कम्पनी के डाइरेक्टर, इन तीनों में इस सम्बन्ध में जो पत्र-व्यवहार हुआ उससे इतिहास-लेखक मिल ने डाइरेक्टरों के दम्भ और उनकी लोलुपता को अच्छी तरह प्रकट किया है। डाइरेक्टरों ने इन पत्रों में स्पष्ट लिखा कि बसई जैसे महत्त्वपूर्ण इलाक़े को छोड़ देना मूर्खता है, अपनी मद्रास कौन्सिल को युद्ध के लिए तैयार रहने और समय पड़ने पर वारन हेस्टिंग्स की मदद करने की आज्ञा दी, भारत के तमाम अङ्गरेज़ अधिकारियों को साफ़ हिदायत की कि आप लोग राघोबा का साथ न छोड़ें और जिस बहाने हो सके, पुरन्धर की सन्धि को तोड़ कर या मराठों को उकसाकर उनकी ओर से तुड़वाकर राघोबा को फिर सामने कर दें, इत्यादि।

वारन हेस्टिंग्स और उसके तमाम मातहतों के लिए ये हिदायतें काफ़ी थीं।

पुरन्धर की सन्धि हो चुकी थी। उस पर बाज़ाब्ता कम्पनी की

---

*"We approve, under every circumstance, of the keeping of all the territories and possessions ceded to the Company by the treaty concluded with Raghoba; and direct that you forth with adopt such measures as may be necessary for their preservation and defence" Court of Directors to the Government of Bengal, Mill, p. 436.

मोहर लग चुकी थी। तथापि अङ्गरेज़ों ने उस सन्धि की शर्तों को पूरा करने में टाल मटोल शुरू की। न उन्होंने राघोबा का साथ छोड़ा और न बसई का क़िला ख़ाली किया। करनल अपटन सन्धि करके कलकत्ते लौट गया और जब उस सन्धि के अनुसार कम्पनी का एक वकील पूना भेजने का मौक़ा आया तो फिर वही प्रसिद्ध अङ्गरेज़ दूत मॉस्टिन बम्बई से पूना भेजा गया।

पेशवा दरबार के नीतिज्ञ मॉस्टिन और उसके कृत्यों से अच्छी तरह परिचित थे। वे जानते थे कि मॉस्टिन ही अङ्गरेज़ों और मराठों के बीच की समस्त आपत्तियों की जड़ है। उन्होंने मॉस्टिन जैसे आदमी के फिर अपने दरबार में भेजे जाने पर एतराज़ किया, किन्तु कम्पनी के अधिकारियों ने उनकी एक न सुनी और मार्च सन् १७७७ में मॉस्टिन कम्पनी के वकील की हैसियत से पूना पहुँच गया।

मॉस्टिन ने इस बार अपने गुप्त कुचक्रों द्वारा धीरे धीरे पेशवा दरबार के एक और मन्त्री मोरोबा को अपनी ओर फोड़ लिया। उसने मोरोबा को नाना फ़ड़नवीस से लड़ा दिया और नाना फ़ड़नवीस तथा प्रधान मन्त्री सखाराम बापू में भी फूट डलवा दी। ये झगड़े यहाँ तक बढ़े कि दरबार के अन्दर नाना की जगह मोरोबा को मिल गई और नाना कुछ दिनों के लिए दरबार के कार्य से तटस्थ होकर पुरन्धर चला गया। नाना की अनुपस्थिति में मोरोबा ने मॉस्टिन के कहने पर बम्बई की कौन्सिल को यह गुप्त पत्र लिख भेजा कि आप फ़ौरन् राघोबा को पेशवा की मसनद पर बैठाने के लिए फिर से पूना ले आइए। बम्बई कौन्सिल ने, जो केवल एक

सहारा ढूँढ रही थी, पुरन्धर की सन्धि के विरुद्ध फ़ौरन् तैयारियाँ शुरू कर दीं। वारन हेस्टिंग्स ने भी ख़बर पाते ही बम्बई की कौन्सिल की मदद के लिए एक विशाल सेना बङ्गाल से पूना भेजे जाने की आज्ञा दे दी।

करनल अपटन तथा उस समय के अन्य अङ्गरेज़ों के बयानों से साफ़ ज़ाहिर है कि पूना दरबार सच्चाई के साथ पुरन्धर की सन्धि को क़ायम रखना चाहता था; किन्तु वारन हेस्टिंग्स और उसके साथियों को इङ्गलिस्तान से विश्वासघात की आज्ञा मिल चुकी थी।

कम्पनी की सेनाएँ अभी पूना के लिए रवाना भी न हो पाई थीं कि पूना मन्त्रिमण्डल में फिर से परिवर्तन का समाचार कलकत्ते पहुँचा। मालूम होता है कि अङ्गरेज़ों के नाम मोरोबा के पत्र का हाल किसी प्रकार खुल गया। मोरोबा अहमदनगर के क़िले में क़ैद कर दिया गया। नाना फ़ड़नवीस अब पेशवा का प्रधान मन्त्री नियुक्त हुआ। सखाराम बापू अत्यन्त वृद्ध था। वह अब दरबार के कामों से अलग रहता था, तथापि उसमें और नाना में फिर से प्रेम होगया। पूना दरबार में कोई भी अब हत्यारे राघोबा के पक्ष में न था। तथापि कम्पनी की दुरङ्गी नीति जारी रही। एक ओर मॉस्टिन पूना दरबार में रहकर नाना फ़ड़नवीस और उसके साथियों को यह विश्वास दिलाता रहा कि अङ्गरेज़ पुरन्धर की सन्धि पर क़ायम रहना चाहते हैं और शीघ्र उसकी सब शर्तों को पूरा कर देंगे, और दूसरी ओर वारन हेस्टिंग्स पुरन्धर की इस सन्धि के

विरुद्ध राघोबा को पेशवा बनाने के लिए बम्बई, मद्रास और कलकत्ते से सेनाएँ भेजने की ज़बरदस्त तैयारियाँ करता रहा।

कलकत्ते से अङ्गरेज़ी सेना का प्रस्थान

वारन हेस्टिंग्स ने जो सेना कलकत्ते में तैयार की वह मई सन् १७७८ में करनल लेसली के अधीन बङ्गाल से चली। इस सेना को भोंसले, होलकर, सींधिया इत्यादि कई भारतीय नरेशों के इलाक़ों से होकर गुज़रना था। इनमें से भोंसले, होलकर और सींधिया तीनों महाराष्ट्र मण्डल के सदस्य थे। यदि इन नरेशों को अङ्गरेज़ी सेना का असली उद्देश मालूम होता तो उस सेना का पूना तक पहुँच सकना लगभग असम्भव होता। इसलिए वारन हेस्टिंग्स ने इन तीनों को धोखे में रखने के लिए उनके साथ गुप्त पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया।

सबसे पहले उसने इन सब नरेशों पर यह ज़ाहिर किया कि फ़्रान्स की सेना भारत के पश्चिमी तट पर हमला करने वाली है और बङ्गाल से कम्पनी की सेना केवल फ़्रान्सीसियों से अपने इलाक़े की रक्षा करने के लिए भेजी जा रही है। उसका उद्देश किसी भारतीय नरेश से युद्ध करना नहीं है। इसके अतिरिक्त बरार के राजा मूदाजी भोंसले के साथ उसने एक और ख़ासी सुन्दर चाल चली। हाल ही में सतारा के राजा की मृत्यु हो चुकी थी। उसके कोई औलाद न थी। भोंसले कुल की उत्पत्ति शिवाजी के वंश से थी। वारन हेस्टिंग्स ने मूदाजी भोंसले को उकसाया कि

आप सतारा की गद्दी पर अपना हक़ जमाइए, कम्पनी आपकी मदद करेगी। वारन हेस्टिंग्स का उद्देश यह था कि सतारा की अधिकार-शून्य गद्दी पर एक प्रबल नरेश को बैठाकर पेशवा दरबार के अधिकारों को तोड़ दिया जावे, मराठा मण्डल में फूट डाल दी जावे, और फिर मूदाजी को अवध के नवाब-वज़ीर की तरह अपने हाथों में रक्खा जावे।

इस कार्य के लिए एक अङ्गरेज़ दूत एलयॉट को बरार के राजा के पास भेजा गया। एक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है—

"मिस्टर एलयॉट को इस कार्य के लिए नियुक्त किया गया कि तुम जाकर बरार के राजा को मराठा मण्डल से फोड़ो। एलयॉट के द्वारा बरार के राजा से बातचीत की गई। एलयॉट को यह अधिकार दिया गया कि तुम राजा से कह दो कि गवरनर-जनरल अपनी पूरी शक्ति से सतारा के राजा का तमाम इलाक़ा और पेशवा की पदवी आपको दिलवाने के लिए तैयार है।"*

किन्तु मूदाजी ने किसी कारण वश वारन हेस्टिंग्स की इस सलाह को स्वीकार न किया। वारन हेस्टिंग्स की चाल पूरी तरह न चल सकी। तथापि इस पत्र-व्यवहार से उसे इतना लाभ अवश्य

* "Overtures were made to the Raja of Berar through Mr. Elliot, who was deputed, with the view of detaching him from the confederacy, and who was empowered to offer him the full support of the Governor-General in his claims to the possessions of the Raja of Sattara, and to the situation of Peshwa."—*Origin of the Pindaries etc.*, by an Officer in the service of the Honorable East India Company, 1818.

हुआ कि बङ्गाल की सेना शान्ति के साथ बरार के इलाक़े से गुज़र सकी।

होलकर और सींधिया दोनों मालूम होता है फ़ान्सीसी हमले के धोखे में आगए। इसके अतिरिक्त वे उस समय पूना में थे, इसलिए उन्होंने इस सेना को अपने राज्यों में से गुज़रने की इजाज़त दे दी।

वारन हेस्टिंग्स ने ठीक यही धोखा नाना फ़ड़नवीस को देना चाहा और उससे यह इजाज़त माँगी कि पेशवा के इलाक़े में से कम्पनी की सेना को जाने दिया जावे। किन्तु नाना फ़ड़नवीस ताड़ गया। उसने कम्पनी की सेना के आगे बढ़ने पर एतराज़ किया, और जब देखा कि इन एतराज़ों का कोई फल नहीं हुआ और अङ्गरेज़ी सेना बढ़ी चली आ रही है तो मजबूर होकर युद्ध की तैयारी शुरू कर दी।

मार्ग में इस सेना को कई छोटी मोटी रुकावटें हुईं। बुन्देलखण्ड के स्वतन्त्र राजाओं ने उसे अपने इलाक़े में से गुज़रने से रोका। किन्तु किसी से लड़कर और किसी से मिलकर, किसी को चाल से और नवाब भोपाल जैसे को धन से शान्त करते हुए कम्पनी की सेना आगे बढ़ती रही। मार्ग में ३ अक्तूबर सन् १७७८ को करनल लेसली की मृत्यु हो गई और करनल गॉडर्ड उसकी जगह सेनापति नियुक्त हुआ।

दूसरी बार अङ्गरेज़ों की हार और सन्धि

बम्बई के अङ्गरेज़ों ने इस सेना के पहुँचने का इन्तज़ार न

किया। उन्होंने राघोबा को युद्ध के ख़र्च के लिए एक ख़ासी रक़म बतौर क़र्ज़ के दी, जिसके लिए उससे पट्टा लिखा लिया, और २२ नवम्बर सन् १७७८ को राघोबा तथा करनल इजर्टन के अधीन एक विशाल सेना राघोबा को पेशवा की मसनद पर बैठाने के लिए बम्बई से पूना की ओर रवाना कर दी। यह सेना राघोबा के नाम पर आगे बढ़ती जाती थी और उसके साथ साथ मार्ग भर में एलान बँटते जाते थे, जिनमें महाराष्ट्र की प्रजा से राघोबा की सहायता करने के लिए प्रार्थना की गई।

इसी बीच मॉस्टिन पूना में अचानक बीमार पड़ गया, उसे बम्बई लौट आना पड़ा और १ जनवरी सन् १७७९ को उसकी मृत्यु हो गई।

खण्डाला तक बम्बई की इस सेना को किसी ने न रोका। किन्तु नाना असावधान न था। उसके गुप्तचरों का सङ्गठन इतना अच्छा था कि पूना में बैठे हुए उसे भारत भर की राजनैतिक हालत का ठीक ठीक पता रहता था। सींधिया और होलकर दोनों उस समय पूना में थे। नाना ने उन्हें सेनापति नियुक्त करके उनके अधीन अङ्गरेज़ों के मुक़ाबले के लिए सेना रवाना की।

मराठे युद्ध-विद्या में अत्यन्त निपुण थे। वे धीरे धीरे पीछे हटते हुए अङ्गरेज़ी सेना को पूना से लगभग १८ मील दूर ताले-गाँव के मैदान तक ले आए। ९ जनवरी सन् १७७९ को अङ्गरेज़ी सेना तालेगाँव पहुँची। वहाँ पहुँचते ही अङ्गरेज़ों ने अचानक अनुभव किया कि एक विशाल मराठा सेना ने उन्हें तीन ओर से

घेर रक्खा था। इस पर वे इतने भयभीत हो गए कि उन्हें फ़ौरन पीछे हटने के सिवा कोई चारा दिखाई न दिया।

११ जनवरी के ११ बजे रात को अङ्गरेज़ी सेना ने पीछे हटना शुरू किया। उन्होंने स्वयं अपने बहुत से गोले बारूद को आग लगा दी और भारी तोपों को एक बड़े तालाब में फेंक दिया। मराठा सेनापतियों ने अब आगे बढ़कर सामने से शत्रु को रोका और उन्हें चारों ओर से घेर लिया। एक भयङ्कर संग्राम हुआ। अङ्गरेज़ी सेना को दूसरी बार पूरी तरह हार खानी पड़ी। उनके तमाम अस्त्र शस्त्र छीन लिए गए। पेशवा की सेना उस समय यदि चाहती तो राघोबा और उसके एक एक देशी और विदेशी साथी को वहीं पर ख़त्म कर सकती थी, किन्तु अङ्गरेज़ों ने हार मान कर दया की प्रार्थना की। १३ जनवरी को अङ्गरेज़ों का एक दूत सन्धि के लिए मराठों के पास पहुँचा। मराठों ने शरणागत शत्रु को छोड़ दिया। दोनों पक्षों में फिर एक सन्धि हो गई जिसमें अङ्गरेज़ों ने वादा किया कि—

(१) राघोबा को फ़ौरन् पूना दरबार के हवाले कर दिया जावेगा।

(२) भड़ोच, सूरत और मराठों के जितने और इलाक़ों पर कम्पनी ने अपना अधिकार जमा रक्खा है वे सब फ़ौरन् पेशवा दरबार को वापस कर दिए जावेंगे।

(३) जो अङ्गरेज़ी सेना बङ्गाल से आ रही है उसे वापस लौटाने के लिए अङ्गरेज़ अफ़सर उस सेना के पास स्पष्ट सन्देशा

भेज देंगे। और यह सन्देशा पूना दरबार के एक वकील की मारफ़त भेजा जावेगा, और—

(४) जब तक अङ्गरेज़ इन शर्तों को पूरा न कर दें तब तक के लिए दो अङ्गरेज़ अफ़सर बतौर बन्धक मराठों के पास क़ैद रहेंगे।

सन्धि पर बाज़ाब्ता दोनों ओर के सेनापतियों के दस्तख़त होगए और कम्पनी तथा पेशवा दरबार दोनों की मोहरें लग गईं। राघोबा और दो अङ्गरेज़ मराठों के हवाले कर दिए गए। करनल गॉडर्ड के नाम पत्र लिखकर पूना दरबार के एक वकील के सुपुर्द कर दिया गया। नाना फ़ड़नवीस ने राघोबा और उसके साथ दोनों अङ्गरेज़ों को माधोजी सींधिया (महादजी सींधिया) के हवाले कर दिया।

दूसरी सन्धि का उल्लङ्घन

किन्तु अङ्गरेज़ अब भी अपने छल से बाज़ न आए। बम्बई पहुँचते ही उन्होंने उस पत्र को रद्द करने के लिए, जो हाल की सन्धि के अनुसार मराठा वकील की मारफ़त, करनल गॉडर्ड के पास भेज दिया गया था, करनल गॉडर्ड को एक और गुप्त पत्र भेजा और उसमें लिखा कि आप जितनी जल्दी हो सके बम्बई पहुँच जाइए।

बम्बई की अङ्गरेज़ी सेना की हार का समाचार सुनकर करनल गॉडर्ड पहले सूरत की ओर बढ़ा। ९ [illegible]रवरी को पूना दरबार का

वकील अङ्गरेज़ सेनापति के पत्र सहित गॉडर्ड से जा मिला। वकील ने पत्र देकर गॉडर्ड पर बङ्गाल लौट जाने के लिए ज़ोर दिया। गॉडर्ड यह झूठ बोल कर कि मेरी सेना का उद्देश पेशवा सरकार से लड़ना नहीं है, बल्कि उससे मित्रता क़ायम रखना और फ़ान्सीसियों का मुक़ाबला करना है, बराबर आगे बढ़ता गया। २६ फ़रवरी सन् १७७९ को वह अपनी विशाल सेना सहित सूरत पहुँच गया।

वारन हेस्टिंग्स को जिस समय बम्बई की सेना की इस अपमान-जनक पराजय और नई सन्धि का पता लगा तो उसने फ़ौरन करनल गॉडर्ड को लिख भेजा कि आप उस सन्धि की बिलकुल परवा न करें, और आगे बढ़ते जावें।

सींधिया और भोंसले का विश्वासघात

मराठा मण्डल के पाँच मुख्य स्तम्भों में से एक महाराजा गायकवाड़ को अङ्गरेज़ अपनी ओर फोड़ चुके थे। बरार के महाराजा भोंसले ने यद्यपि वारन हेस्टिंग्स की सलाह न मानी थी, तथापि वारन हेस्टिंग्स ने अपनी चालों द्वारा उसे इस संग्राम से तटस्थ कर रक्खा था। पेशवा की मदद के लिए अब केवल होलकर और सींधिया दो नरेश बाक़ी रह गए थे।

मालवा का प्रान्त, जिसे मध्यभारत कहते हैं, १८ वीं सदी के प्रारम्भ तक मुग़ल साम्राज्य का एक भाग था और निज़ाम की सूबेदारी में था। सन् १७२१ में निज़ाम के विद्रोही हो जाने पर दिल्ली सम्राट ने निज़ाम की जगह एक हिन्दू राजा गिरधरराय को

मालवे का सूबेदार नियुक्त कर दिया। कुछ समय बाद पेशवा ने राजा गिरधरराय से मालवा विजय करके उत्तरीय भाग अपने एक अनुचर रानोजी सींधिया को और दक्षिणी भाग एक दूसरे अनुचर मलहरराव होलकर को प्रदान कर दिया। यही इन दोनों राजकुलों की उत्पत्ति थी।

जिस समय का हाल हम लिख रहे हैं उस समय दक्षिण मालवे का शासन उस प्रातःस्मरणीया महारानी अहल्याबाई के हाथों में था, जिसकी बुद्धिमत्ता, योग्यता, न्यायशासन, सच्चरित्रता और आदर्श राजप्रबन्ध की प्रशंसा अनेक भारतीय तथा विदेशी इतिहास-लेखकों ने मुक्तकण्ठ से की है; जिसकी गाढ़ धार्मिकता के कारण उत्तर से दक्षिण तक हिन्दू और मुसलमान समस्त भारतीय प्रजा उसे अपनी श्रद्धा और आदर का पात्र स्वीकार करते थे; जिसका नाम आज पर्यन्त भारत के एक एक ग्राम और एक झोपड़े में श्रद्धा और भक्ति के साथ लिया जाता है। अहल्याबाई इन विदेशियों के साथ मेल अथवा अपने यहाँ उनका हस्तक्षेप पसन्द न करती थी, इसलिए वारन हेस्टिंग्स को पेशवा के विरुद्ध सींधिया कुल के साथ साज़िश करनी पड़ी।

माधोजी सींधिया उस समय पेशवा के अत्यन्त योग्य और विश्वस्त सेनापतियों में से था। वारन हेस्टिंग्स ने देख लिया कि पूना को पङ्गुल कर देने का सब से अच्छा तरीक़ा माधोजी को अपनी ओर फोड़ लेना है। अदूरदर्शी माधोजी विदेशियों की बातों में आकर पेशवा दरबार के साथ विश्वासघात करने को राज़ी

होगया। तालेगाँव ही में अङ्गरेज़ों और माधोजी के बीच गुप्त बातचीत शुरू होगई। माधोजी को ख़ास लालच यह दिया गया कि यूरोपियन अफ़सरों और यूरोपियन ढङ्ग के शस्त्र ढालने वालों की मदद से तुम्हारे पास एक ज़बरदस्त सेना तैयार कर दी जावेगी, जिसके द्वारा महाराष्ट्र, बल्कि समस्त भारत में तुम्हारा प्रभाव थोड़े ही दिनों के अन्दर सर्वोपरि हो जावेगा। अङ्गरेज़ उससे इस चाल द्वारा राघोबा और अपने दोनों बन्धकों को छुड़ा लेना चाहते थे।

अन्त में माधोजी, राघोबा और अङ्गरेज़ों के बीच गुप्त सन्धि होगई, जिसमें यह तय हुआ कि बालक माधोराव नारायण, जिसकी आयु उस समय पाँच वर्ष की थी, पेशवा की मसनद पर क़ायम रहे, उसी के नाम के सिक्के ढलते रहें, राघोबा का बेटा बाजीराव, जिसकी आयु चार वर्ष की थी, पेशवा का दीवान नियुक्त हो, माधोजी नाबालिग़ दीवान की ओर से शासन का समस्त कार्य करे और राघोबा को पेशवा दरबार से बारह लाख सालाना पेन्शन पर झाँसी भेज दिया जावे। इसके अलावा अङ्गरेज़ों ने भड़ोच का ज़िला माधोजी को और ४१,००० रुपए नक़द उसके आदमियों को देने का वादा किया। स्वार्थान्ध माधोजी ने अपने स्वामी पेशवा के साथ विश्वासघात करके राघोबा और दोनों अङ्गरेज़ बन्धकों को चुपके से छोड़ दिया। राघोबा फिर अङ्गरेज़ों से जा मिला। यद्यपि इसके थोड़े ही दिनों के अन्दर अङ्गरेज़ों ने माधोजी सींधिया के साथ ठीक वैसा ही बर्ताव किया, जैसा वे बङ्गाल में अमींचन्द से लेकर मीर जाफ़र तक एक एक देशघातक के साथ कर चुके थे।

तथापि उस समय भारत के अन्दर कम्पनी की सत्ता के जमने में माधोजी ने ज़बरदस्त मदद दी।

नाना फड़नवीस को जब अङ्गरेज़ों के इरादों का पता चला और मालूम हुआ कि गॉडर्ड की सेना गुजरात पहुँच गई है, तो उसने एक ओर माधोजी सींधिया को सेना देकर गुजरात भेजा ताकि वह गुजरात से अङ्गरेज़ों को बाहर निकाल दे, और दूसरी ओर मूदाजी भोंसले को आज्ञा दी कि तुम फ़ौरन् तीस हज़ार सेना लेकर बङ्गाल पर चढ़ाई कर दो। निस्सन्देह नाना की तजवीज़ें काफ़ी ज़बरदस्त थीं; किन्तु नाना को उस समय पता न था कि माधोजी और अङ्गरेज़ों में पहले ही गुप्त सन्धि हो चुकी थी और मूदाजी भोंसले भी भीतर से वारन हेस्टिंग्स के साथ मिला हुआ था। माधोजी का शेष वृत्तान्त आगे चल कर दिया जावेगा। मूदाजी ने नाना को धोखे में रखने के लिए ३०,००० सेना लेकर बङ्गाल पर चढ़ाई अवश्य की, किन्तु उसने पहले ही से वारन हेस्टिंग्स को एक गुप्त पत्र लिख दिया कि—"मैं यह चढ़ाई केवल नाना फ़ड़नवीस और दूसरे मराठों को खुश करने के लिए कर रहा हूँ। यह केवल दिखावा है। मैं मार्ग में जानकर इतनी देर लगा दूँगा कि बरसात से पहले बङ्गाल की सरहद पर न पहुँच सकूँ और फिर बरसात का बहाना लेकर बरार वापस लौट आऊँगा।" मूदाजी भोंसले ने हेस्टिंग्स के साथ अपने वचन का पालन किया। सारांश यह कि इन दोनों मराठा सेनापतियों ने अपने स्वामी तथा राष्ट्र दोनों के साथ विश्वासघात किया।

करनल गॉडर्ड अब सूरत में बैठा हुआ एक ओर नाना फड़नवीस के पास सुलह के पत्र भेज रहा था और दूसरी ओर पूना पर चढ़ाई करने की ज़ोरदार तैयारी कर रहा था। नाना फ़ड़नवीस ने गॉडर्ड के पत्रों के उत्तर में स्पष्ट लिख भेजा कि सुलह की बातचीत के लिए सबसे पहली शर्त यह है कि पिछली सन्धि के अनुसार साष्टी का टापू और विद्रोही राघोबा दोनों पेशवा दरबार के हवाले कर दिए जावें। किन्तु साष्टी पर अङ्गरेज़ों के शुरू से दाँत थे और राघोबा इस तमाम खेल में उनके हाथ का तुरुप था।

इस दरमियान गॉडर्ड ने गुजरात में पेशवा के इलाक़ों पर धावे मारने शुरू किए और वहाँ की प्रजा को खूब लूटा और तबाह किया। माधोजी सींधिया नाना को दिखाने के लिए अपनी सेना सहित गुजरात पहुँच गया था और इस समय गुजरात में मौजूद था। किन्तु अङ्गरेज़ों ने बड़ी सफलता के साथ उसे झूठी आशाओं के नशे में सुला रक्खा था। नाना फ़ड़नवीस ने प्रजा की बरबादी और सम्भवतः माधोजी की अकर्मण्यता का हाल सुनकर अब होलकर को सेना सहित गुजरात भेजा। किन्तु गायकवाड़ इस समय तक मराठा मण्डल से पृथक हो चुका था। माधोजी सींधिया विदेशियों के हाथों में खेल रहा था। मूदाजी भोंसले वारन हेस्टिंग्स की चालों में आकर पेशवा के साथ विश्वासघात कर चुका था। इस परिस्थिति में अकेला होलकर गॉडर्ड की सेना के हाथों गुजरात की प्रजा की बरबादी को न रोक सका।

१६ मार्च सन् १७८० को माधोजी सींधिया ने अपना एक वकील गॉडर्ड के पास भेजा और यह प्रार्थना की कि तालेगाँव की गुप्त सन्धि के अनुसार राघोबा को झाँसी की ओर भेज दिया जाय, ताकि मैं राघोबा के पुत्र बाजीराव को साथ लेकर पूना के लिए रवाना हो जाऊँ। किन्तु गॉडर्ड का मतलब निकल चुका था। वह राघोबा को इस तरह हाथ से छोड़ देने के लिए तैयार न था। उसने अब तालेगाँव की गुप्त सन्धि को स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

माधोजी को इस समय ज़बरदस्त नैराश्य और दुख हुआ। गॉडर्ड ने इस हालत में उसको देर तक गुजरात में रहने देना ठीक न समझा। चन्द रोज़ के अन्दर ही उसने अचानक असावधान माधोजी की सेना पर हमला कर दिया। माधोजी की सेना को तैयार होने का भी समय न मिल सका। जिस प्रकार पेशवा के दल में माधोजी अङ्गरेज़ों से मिल गया था, उसी प्रकार माधोजी की सेना में न मालूम कितने इस समय गॉडर्ड से मिले हुए होंगे। अन्त में गॉडर्ड ने कर्त्तव्य-विमूढ़ माधोजी और उसकी सेना को गुजरात से खदेड़कर बाहर कर दिया। करनल गॉडर्ड के लिए अब केवल पूना पर हमला करना बाक़ी था।

नाना का समस्त भारतीय नरेशों को मिलाने का प्रयत्न

किन्तु इस बीच दूरदर्शी नाना को जब माधोजी की कर्त्तव्य-विमुखता और होलकर की असफलता तथा अङ्गरेज़ों के इरादों

का पता चला तो उसने फ़ौरन् हिन्दोस्तान के प्रायः समस्त मुख्य मुख्य नरेशों को विदेशियों के विरुद्ध अपने साथ मिलाने के ज़ोरदार प्रयत्न शुरू किए। हैदराबाद के निज़ाम, अरकाट के नवाब, मैसूर के सुलतान हैदरअली और दक्षिण के अन्य कई छोटे छोटे हिन्दू और मुसलमान नरेशों को उसने इस विषय के पत्र लिखे। नाना, निज़ाम और हैदरअली में यह तय हो गया कि हम तीनों एक साथ अपने अपने पास के अङ्गरेज़ी इलाक़ों पर हमला करके अङ्गरेज़ों को हिन्दोस्तान से बाहर निकाल दें। नाना की ओर से मूदाजी भोंसले तीस हज़ार सेना सहित अङ्गरेज़ों को बङ्गाल से निकालने के लिए भेजा जा चुका था। निज़ाम और हैदरअली के प्रयत्नों का ज़िक्र और आगे चल कर किया जावेगा। इसके अतिरिक्त जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, कम से कम उपचार के लिए पूना के पेशवा दिल्ली के सम्राट को समस्त भारत का अधिराज स्वीकार करते थे; और पेशवा का एक वकील सम्राट के दरबार में रहा करता था। नाना को मालूम हुआ कि वारन हेस्टिंग्स दिल्ली सम्राट को अपनी ओर करने की कोशिशों में लगा हुआ है। नाना ने ६ मई सन् १७८० को अपने दिल्ली के वकील पुरुषोत्तम महादेव हिङ्गने के नाम इस विषय का एक पत्र लिखा—

"यहाँ पर समाचार मिला है कि कलकत्ते के अङ्गरेज़ दिल्ली के सम्राट के साथ पत्र-व्यवहार करके सम्राट को अपनी ओर करने वाले हैं। इसलिए आप सम्राट और नजफ़ ख़ाँ दोनों को इस प्रकार साफ़ समझा दीजे—

"इन टोपी वालों (यूरोप-निवासियों) के तरीक़े बेईमानी और चाल-बाज़ी के हैं। इनकी आदत यह है कि पहले तो किसी हिन्दोस्तानी नरेश को ख़ुश करते हैं, उसे अपने साथ सन्धि करने के फ़ायदे दिखलाते हैं, और फिर उसे क़ैद करके स्वयम् उसके राज्य पर क़ब्ज़ा कर लेते हैं। मिसाल के तौर पर शुजाउद्दौला, मोहम्मदअली ख़ाँ, अरकाट के सूबे और तञ्जोर के नरेश इत्यादि की हालत देख लीजे। इसलिए आपका इन टोपी वालों को दमन करना लाज़मी है, केवल इस उपाय से ही देश के नरेशों की इज़्ज़त क़ायम रह सकती है। नहीं तो विदेशी टोपीवाले इस भूमि की तमाम रियासतों को छीन लेंगे। और सारे देश पर कब्ज़ा कर लेंगे, ऐसा होना अच्छा नहीं है और भविष्य में सब नरेशों के लिए अत्यन्त हानिकर साबित होगा। सम्राट समस्त पृथ्वी का स्वामी है, इसलिए सर्वथा उचित है कि सम्राट इस मामले की ओर ध्यान देना अपना पवित्र कर्त्तव्य समझे। दक्षिण के सब नरेश मिल गए हैं। नवाब, निज़ामअली ख़ाँ, हैदर नायक और पेशवा, इन चारों में सन्धि हो गई है; इन्होंने चारों ओर से अङ्गरेज़ों को दमन करने का निश्चय कर लिया है और अपने-अपने इलाक़ों में अङ्गरेज़ों से युद्ध करने के लिए फ़ौज, तोपख़ाने और अस्त्र-शस्त्र की तैयारी कर ली है।

"उत्तरीय भारत में सम्राट और नजफ़ ख़ाँ को चाहिए कि सब नरेशों को मिलाकर अङ्गरेज़ों को दमन करें। इससे साम्राज्य की कीर्त्ति और मान दोनों बढ़ेंगे।"

निस्सन्देह वारन हेस्टिंग्स और नाना फ़ड़नवीस के बीच मुक़ाबला बड़ा ज़बरदस्त था। नाना की दूरदर्शिता और देशभक्ति दोनों अपूर्व थीं। इस पत्र को पढ़कर ऐसा मालूम होने लगता है

कि मानों वह सन् १८५७ के प्रसिद्ध नाना धुन्धपन्त के हाथ का लिखा हुआ हो। नाना फड़नवीस जो बात चाहता था वह न हो सकी। तथापि उसके प्रयत्न सर्वथा निष्फल नहीं गए।

तीसरी बार अङ्गरेज़ों की लज्जाजनक पराजय और सालबाई की सन्धि

करनल गॉडर्ड अपनी विशाल सेना सहित पूना की ओर बढ़ा। मार्ग में कल्याण, बसई और कोकण प्रान्त के अन्य कई स्थानों को उसकी सेना ने ख़ूब रौंदा और बरबाद किया। किन्तु अभी वह मराठा साम्राज्य के केन्द्र पूना के निकट भी न पहुँच पाया था कि भोरघाट के ऊपर हरिपन्त फड़के, परशुराम भाऊ और होलकर के अधीन पेशवा की सेना ने उसे मार्ग में घेर लिया। मैदान ख़ूब गरम हुआ। किन्तु फिर तीसरी बार विजय मराठों ही की ओर रही। और अप्रेल सन् १७८१ के आख़ीर में जान और माल दोनों की भारी हानि उठाकर पूना के दर्शन किए बिना ही कम्पनी की इस विशाल सेना को उसी तरह ज़िल्लत के साथ पीछे भागना पड़ा जिस तरह कि जनवरी सन् १७७९ में बम्बई की सेना को भागना पड़ा था। बचे खुचे आदमी जान बचाकर बम्बई अवश्य पहुँच गए। किन्तु इस दूसरी लज्जाजनक पराजय से अङ्गरेज़ों को मराठों की वीरता और युद्ध-निपुणता का ख़ूब पता चल गया और उनकी हिम्मत कुछ अरसे के लिए टूट गई।

इस दरमियान भारत के अन्य भागों में भी वारन हेस्टिंग्स की

साज़िशें जारी थीं। माधोजी सींधिया को अङ्गरेज़ों की दग़ाबाज़ी का काफ़ी तजरुबा हो चुका था। उसकी हालत इस समय अधमरे साँप की सी थी। वारन हेस्टिंग्स ने सब से पहले उसे पूरी तरह कुचल डालना ज़रूरी समझा। सींधिया का मुख्य गढ़ ग्वालियर था। वारन हेस्टिंग्स ने सींधिया के एक बाजगुज़ार गोहद नरेश को ग्वालियर का लालच देकर सींधिया के विरुद्ध अपनी ओर फोड़ लिया। कप्तान पोफ़म के अधीन कम्पनी की एक सेना ग्वालियर भेजी गई और गोहद के राना की सहायता से ४ अगस्त सन् १७८० को ग्वालियर का क़िला माधोजी सींधिया से जीत कर गोहद के राना को दे दिया गया। आजकल के धौलपुर के जाट राना उसी गोहद के राना के वंशज हैं। इसके बाद करनल कारनक ने वारन हेस्टिंग्स की आज्ञा से फ़रवरी और मार्च सन् १७८१ में सींधिया के अनेक स्थानों को रौंद डाला, उन्हें लूटा और तबाह किया।

माधोजी को अपने विश्वासघात की काफ़ी सज़ा मिल चुकी थी। वारन हेस्टिंग्स ने इसके पश्चात् माधोजी का सर्वनाश करने के लिए राजपूताने के नरेशों को उसके विरुद्ध भड़काना चाहा, किन्तु माधोजी के सौभाग्य से इसमें हेस्टिंग्स को सफलता न हो सकी।

इतने में हेस्टिंग्स को मालूम हुआ कि अङ्गरेज़ों के विरुद्ध नाना फड़नवीस, निज़ाम और हैदरअली में सलाह होगई है। मूदाजी भोंसले का बङ्गाल पर हमला, हेस्टिंग्स की चालों और मूदाजी के विश्वासघात द्वारा, विफल हो ही चुका था। केवल दो प्रबल शक्तियाँ

मैदान में बाक़ी थीं, निज़ाम और हैदरअली। हेस्टिंग्स ने इन दोनों को अपनी ओर फोड़ने के भरसक प्रयत्न किए। निज़ाम के साथ उसे पूरी सफलता हुई, किन्तु हैदरअली को वह अपनी ओर न फोड़ सका। वास्तव में हैदरअली और निज़ाम के चरित्र में बहुत बड़ा अन्तर था।

हैदरअली एक निर्धन घराने में पैदा हुआ था। केवल अपनी व्यक्तिगत वीरता और योग्यता के बल वह एक साधारण सिपाही से उभरते उभरते एक विशाल राज्य का स्वामी बन गया था। वह प्रजापालक था और उसकी प्रजा उससे प्रेम करती थी। अपने देश अथवा देशवासियों के साथ उसने कभी भी दग़ा नहीं की। हैदरअली के चरित्र, अङ्गरेज़ों के साथ उसके युद्ध और उसके अद्भुत पराक्रम का वर्णन अगले अध्याय में किया जायगा। इसके विपरीत हैदराबाद के राजकुल का संस्थापक निज़ामुलमुल्क दिल्ली का एक चलता हुआ दरबारी था, जो केवल चालबाज़ियों से बढ़ा, और जिसने अपने स्वामी दिल्ली सम्राट के साथ विश्वासघात करके अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य क़ायम किया। जिस समय दोनों सुप्रसिद्ध भाई सय्यद अब्दुल्ला और सय्यद हुसेनअली उस 'जज़िये' को, जिसे अकबर ने रद्द कर दिया था और जिसे औरङ्गज़ेब ने दोबारा जारी कर दिया था, फिर से रद्द करवा कर तथा अन्य अनेक उपायों से मुग़ल साम्राज्य के नाश को रोकने के प्रयत्न कर रहे थे उस समय निज़ामुलमुल्क ने इन दोनों दूरदर्शी भाइयों के विरुद्ध साज़िशें करके उनकी सत्ता को नष्ट किया।

निज़ामुलमुल्क ने ही मराठों को उकसाकर मुग़ल साम्राज्य पर उनसे हमले करवाए। निज़ामुलमुल्क ही ने नादिरशाह को ईरान से बुलवाकर भारत तथा भारत सम्राट दोनों को अपमानित करवाया। निज़ामुलमुल्क ही सम्राट का पहला सूबेदार था जिसने अपने सूबे को साम्राज्य से पृथक करके साम्राज्य के अङ्ग-भङ्ग की नींव रक्खी, और दूसरे सूबेदारों के लिए एक बुरी मिसाल क़ायम की। अङ्गरेज़ों को भारत के अन्दर अपना राज्य जमाने में भी समय समय पर निज़ाम कुल से काफ़ी सहायता मिली।

वारन हेस्टिंग्स ने उस समय के निज़ाम को यह बहकाया कि दिल्ली सम्राट तुम्हें दक्षिण की सूबेदारी से हटाकर हैदरअली को तुम्हारी जगह देना चाहता है। गुण्टूर का इलाक़ा कुछ समय पहले अङ्गरेज़ों ही ने निज़ाम से छीन कर अपने मित्र करनाटक के नवाब मोहम्मदअली को दे दिया था। हेस्टिंग्स ने अब वह इलाक़ा निज़ाम को वापस दिलवा दिया। इस प्रकार हेस्टिंग्स ने नाना और हैदरअली दोनों के विरुद्ध निज़ाम को अपनी ओर फ़ोड़ लिया। किन्तु हैदरअली पर वारन हेस्टिंग्स की चालों का कोई असर नहीं हुआ। उसने नाना का सन्देशा पाते ही अपने पास के अङ्गरेज़ी इलाक़ों पर हमला कर दिया। उसकी विजयों का वर्णन अगले अध्याय में किया जायगा। इधर हेस्टिंग्स को करनल गॉडर्ड की पराजय का समाचार मिला। इस समाचार को सुनकर हेस्टिंग्स का साहस एक दम टूट गया। एक ओर हैदरअली के भयङ्कर हमले और दूसरी ओर गॉडर्ड की लज्जाजनक पराजय।

दोनों से घबराकर हेस्टिंग्स ने पेशवा दरबार के साथ तुरन्त सन्धि कर लेने ही में अपनी ख़ैरियत देखी।

वारन हेस्टिंग्स ने अब नागपुर के मूदाजी भोंसले से प्रार्थना की कि आप मध्यस्थ बनकर नाना फ़ड़नवीस और अङ्गरेज़ों में सुलह करवा दें। किन्तु मूदाजी नाना के साथ विश्वासघात कर चुका था, उसे फिर नाना के सामने जाने का साहस न हो सका। मजबूर होकर हेस्टिंग्स ने १३ अक्तूबर सन् १७८१ को फिर माधोजी सींधिया के साथ एक गुप्त सन्धि की और उसी माधोजी द्वारा नाना फ़ड़नवीस से सन्धि की बातचीत शुरू की।

११ सितम्बर सन् १७८१ को मद्रास की अङ्गरेज़ कौन्सिल ने भी हैदर से हार पर हार खाकर एक पत्र द्वारा बड़ी नम्रता के साथ नाना से सुलह की प्रार्थना की, जिसमें उन्होंने ख़ुदा और ईसा मसीह के अलावा इङ्गलिस्तान के बादशाह, अङ्गरेज़ क़ौम और कम्पनी तीनों की क़स्में खाईं कि हम लोग अब जो सन्धि होगी उस पर सदा क़ायम रहेंगे।

कई महीने तक पत्र-व्यवहार जारी रहा। अन्त में १७ मई सन् १७८२ को सालबाई नामक स्थान पर पूना दरबार और कम्पनी के बीच तीसरी बार सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार—

१—शुरू से अब तक छल से अथवा बल से पेशवा के जितने इलाक़ों पर अङ्गरेज़ों ने क़ब्ज़ा कर लिया था वे सब पेशवा दरबार को वापस दे दिए गए।

२—गायकवाड़ के इलाक़ों और तमाम गुजरात की ठीक वही

स्थिति रक्खी गई, जो सन् १७७५ से अर्थात् अङ्गरेज़ों के दखल देने से पहले थी।

३—राघोबा को २५,०००) रुपए मासिक पेन्शन पर एक जगह रहने की इजाज़त दी गई।

४—जो सन्धि वारन हेस्टिंग्स ने गोहद के राजा के साथ की थी वह रद्द ठहराई गई, ग्वालियर माधोजी सींधिया को वापस मिल गया; और गोहद का राना, जिसे अङ्गरेज़ों ही ने माधोजी के विरुद्ध भड़काया था, जिसकी सहायता के बिना कप्तान पोफ़म माधोजी को कदापि वश में न कर पाता, और बिना माधोजी को वश में किए पेशवा दरबार के साथ इतनी आसानी से सुलह भी न हो सकती, अब दण्ड-भोगने के लिए अपने शत्रु माधोजी के हवाले कर दिया गया।

सन्धि-पत्र १७ मई को लिखा गया। किन्तु नाना फ़ड़नवीस ने सात महीने बाद तक उस पर हस्ताक्षर न किए। कारण यह था कि नाना का सच्चा मित्र और अङ्गरेज़ों का जानी दुश्मन हैदर-अली अभी तक अङ्गरेज़ों के विरुद्ध लड़ रहा था। नाना की आशाएँ अभी टूटी न थीं। इसके अतिरिक्त जब तक हैदरअली मैदान में था, नाना का अङ्गरेज़ों के साथ सन्धि कर लेना हैदरअली के साथ विश्वासघात करना होता। अन्त में दिसम्बर महीने में नाना को हैदरअली की मृत्यु का समाचार मिला। अङ्गरेज़ों को भारत से निकालने की उसकी रही सही आशाएँ अब टूट गईं। इसके बाद नाना ने सालबाई के सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए।

इस प्रकार ले देकर पहले मराठा युद्ध का अन्त हुआ। इस युद्ध द्वारा भारत के अन्दर न अङ्गरेज़ों का ज़रा सा भी इलाक़ा बढ़ा और न वीरता, युद्ध-कौशल अथवा ईमानदारी के लिए उनकी कीर्ति बढ़ी। इसके विपरीत मराठों की वीरता, उनका युद्ध-कौशल और नाना फ़ड़नवीस की नीतिज्ञता तीनों इस युद्ध में अत्यन्त उच्च कोटि की साबित हुईं। इसमें सन्देह नहीं कि यदि गायकवाड़, सींधिया और भोंसले तीन तीन मराठा नरेशों ने पेशवा दरबार के साथ विश्वासघात न किया होता, अथवा यदि ऐन मौक़े पर हैदरअली की ज़िन्दगी ने धोखा न दिया होता, तो हिन्दोस्तान से विदेशी सत्ता, जिसे जड़ पकड़े अभी बीस वर्ष भी न हुए थे, उसी समय समूल उखड़ कर फिक गई होती। किन्तु नाना फ़ड़नवीस की उच्च नीति और दूरदर्शिता उस समय के दूसरे मराठा नरेशों में मौजूद न थी, और इस देश को पुनर्जन्म की प्रसव-वेदना में से निकलना आवश्यक था।

नवाँ अध्याय

हैदरअली

जन्म और प्रारम्भिक जीवन

पिछले अध्याय में हम हैदरअली और अङ्गरेज़ों के संग्रामों की ओर इशारा कर चुके हैं। वास्तव में हैदरअली से बढ़कर बहादुर, होशियार और ख़ौफ़नाक शत्रु अङ्गरेज़ों को भारत के अन्दर दूसरा नहीं मिला। जिस प्रकार नाना फ़ड़नवीस ने अपनी नीतिज्ञता द्वारा उसी प्रकार हैदरअली ने जीवन भर अपनी तलवार द्वारा अङ्गरेज़ों को भारत से निकालने का प्रयत्न किया। इसलिए अङ्गरेज़ों और हैदरअली के संग्रामों को वर्णन करने से पहले हैदरअली के जीवन और उसके अद्भुत चरित्र को संक्षेप में बयान करना आवश्यक है।

हैदरअली का जन्म किसी राजघराने में न हुआ था। उसका प्रपितामह वली मोहम्मद एक साधारण मुसलमान फ़क़ीर था, जो

गुलबर्गा में दक्षिण के सुप्रसिद्ध मुसलमान सन्त हज़रत बन्दा नवाज़ गेसूदराज़ की दरगाह में रहा करता था। वली मोहम्मद के ख़र्च के लिए दरगाह से एक छोटी सी माहवारी रक़म बँधी हुई थी। प्राचीन भारतीय ऋषियों के समान उस समय के अनेक मुसलमान फ़क़ीर अत्यन्त सरल, किन्तु कौटुम्बिक जीवन व्यतीत किया करते थे। वली मोहम्मद के एक बेटा था, जिसका नाम शेख़ मोहम्मदअली था। उसे शेख़अली भी कहते थे। शेख़अली अपने बाप के समान पहुँचा हुआ फ़क़ीर माना जाता था। वह कुछ दिनों बीजापुर में रहा, फिर करनाटक के कोलार नामक स्थान में आकर ठहरा। कोलार का हाकिम शाह मोहम्मद दक्खिनी शेख़-अली का बड़ा भक्त था। शेख़अली के चार बेटे थे। ख़र्च की तङ्गी के कारण बेटों ने अपने बाप से प्रार्थना की कि हमें इजाज़त दीजे कि हम कहीं जाकर नौकरी कर लें और धन और इज़्ज़त हासिल करें। पर शेख़अली ने बेटों को समझाया—

"हमारे बाप दादा ख़ुदातर्स और परहेज़गार लोग थे। वे इस क़ाबिल थे कि दुनिया में नाम हासिल करें, तथापि दुनिया के बन्धनों और उसके संसर्ग से वे अपने आपको सदा अलग रखने की कोशिश करते रहे; क्योंकि दुनिया की लालसा से रूहानी शान्ति जाती रहती है और सच्चे सुख की खोज का शौक़ मिट जाता है; इसलिए तुम्हें उचित है कि अपने पूर्वजों के क़दम-ब-क़दम चलो, और इस चन्द रोज़ा हस्ती के फन्दों में न आओ××× इसके अतिरिक्त मनस्वी और आज़ाद तबीयत लोग अपनी सांसारिक स्थिति के तङ्ग होने से कभी दुखी नहीं होते, और यदि उनके

दुनियावी सम्बन्ध हों तो भी वे उन सम्बन्धों को छोड़ देने और दुनिया से तर्क तश्राल्लुक़ करने में ही फ़ख़्र समझते हैं।"*

निस्सन्देह हैदरअली के पितामह और प्रपितामह दोनों सच्चे फ़क़ीर थे। जब तक शेख़अली ज़िन्दा रहा, उसके बेटे उसके साथ रहे। सन् १६९५ ईसवी में शेख़अली की मृत्यु हुई। बड़ा बेटा शेख़ इलियास अपने बाप का उत्तराधिकारी हुआ। सबसे छोटे बेटे का नाम फ़तहमोहम्मद था। फ़तहमोहम्मद अपने बड़े भाई की इच्छा के विरुद्ध अरकाट के नवाब सश्रादतउल्ला ख़ाँ की फ़ौज में जमादार होगया। फ़तहमोहम्मद ने एक दूसरे मुसलमान फ़क़ीर तञ्जोर के पीरज़ादा बुरहानुद्दीन की लड़की से शादी कर ली। इस स्त्री से फ़तहमोहम्मद के दो लड़के हुए। एक का नाम शहबाज़ और दूसरे का हैदरअली। हैदरअली का जन्म सन् १७२० ईसवी के लगभग हुआ।

आज से दो सौ वर्ष पूर्व अधिकांश भारत में हिन्दू और मुसलमानों का सामाजिक जीवन एक विचित्र ढङ्ग से परस्पर गुथा हुआ था। हैदरअली की एक फ़ारसी जीवनी से पता चलता है कि हैदर के जन्म के समय हिन्दू ज्योतिषियों ने उसकी जन्मपत्री तैयार की। हैदर सिंह राशि में पैदा हुआ था, इसलिए ज्योतिषियों ही की राय से उसका नाम हैदर (शेर) अली रक्खा गया। ज्योतिषियों ही ने यह भी पेशीनगोई की कि नवजात

* *History of Hyder Naik*—by Mir Hussen Ali Khan Kirmani, translated by Col. W. Miles, p. 5.

बालक एक दिन राजसिंहासन पर बैठेगा, किन्तु उसके जन्म के थोड़े ही दिनों बाद उसके पिता की मृत्यु हो जायगी। इस पर फ़तहमोहम्मद के सम्बन्धियों ने बालक को मार डालना चाहा। फ़तहमोहम्मद को पता लगा तो उसने अपने जीने की परवा न कर बालक का पक्ष लिया। इस प्रकार हैदरअली के प्राण बच गए और माता पिता ने उसे बड़े प्रेम से पाला।

शहबाज़ और हैदरअली के जन्म से पूर्व फ़तहमोहम्मद ने अरकाट की नौकरी छोड़ कर पहले मैसूर में नौकरी की और फिर वहाँ से छोड़कर सूबा सीरा के नवाब दरगाह क़ुली ख़ाँ के यहाँ नौकरी कर ली। वहाँ पर वह बालापुर कलाँ का क़िलेदार बना दिया गया। थोड़े दिनों बाद दक्षिण के नरेशों की आपसी लड़ाइयों में फ़तह मोहम्मद किसी लड़ाई में काम आया। बाप की मृत्यु के समय शहबाज़ की आयु लगभग आठ वर्ष की और हैदरअली की आयु ३ वर्ष की थी। विजयी नवाब अब्बास क़ुली ख़ाँ ने फ़तह मोहम्मद की बेवा और उसके यतीम बच्चों का सब माल असबाब ज़ब्त कर लिया और उनके सम्बन्धियों से अधिक धन वसूल करने के उद्देश से शहबाज़ और हैदरअली दोनों अबोध बालकों को पकड़कर एक नगाड़े के अन्दर बन्द कर दिया और ऊपर से नगाड़े पर चोट लगवानी शुरू की।

हैदरअली का एक चचेरा भाई, जिसका नाम भी हैदर साहब था और जो हैदरअली के ताऊ शेख़ इलियास का बेटा था, इसके समय मैसूर के राजा के यहाँ नायक था। हैदरअली की माँ

अपने भतीजे को अपनी विपत्ति की सूचना दी। हैदर साहब ने और धन भेजकर शहबाज़, हैदरअली और उनकी माँ को मुसीबत से छुड़वाया और उन्हें श्रीरङ्गपट्टन में बुलवाकर बड़े आदर और प्रेम से अपने पास रक्खा। यहाँ पर शुरू से ही शहबाज़ और हैदरअली दोनों को घोड़े की सवारी, निशानेबाज़ी, शस्त्रों का उपयोग और युद्ध-विद्या की समस्त शिक्षा दी गई। बालिग़ होने पर शहबाज़ और हैदरअली दोनों भाई मैसूर की सेना में भरती होगए।

मैसूर की हिन्दू रियासत दिल्ली सम्राट की आज्ञानुसार मराठों को 'चौथ' दिया करती थी। किन्तु इस एक बात के अतिरिक्त और सब तरह से अपने आन्तरिक शासन में मैसूर की रियासत स्वाधीन थी। दक्षिण के मुग़ल सूबेदार निज़ामुलमुल्क को मैसूर दरबार के ऊपर और किसी तरह का क्रियात्मक आधिपत्य प्राप्त न था।

सन् १७४८ ई० में हैदराबाद के निज़ाम का देहान्त हुआ। मृत्यु से पूर्व निज़ाम ने मुज़फ़्फ़रजङ्ग को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया। अङ्गरेज़ों ने एक दूसरे मनुष्य नासिरजङ्ग को दावेदार खड़ा कर दिया और उसका पक्ष लेकर लड़ना शुरू किया। फ़्रान्सीसियों और मैसूर दरबार ने मुज़फ़्फ़रजङ्ग का साथ दिया। अन्त में मुज़फ़्फ़रजङ्ग ही की विजय रही। इन लड़ाइयों में हैदर-अली का बड़ा भाई शहबाज़ मैसूर की ओर से लड़ रहा था। उसके अधीन दो सौ सवार और एक हज़ार पैदल थे। हैदरअली उस समय अपने भाई के अधीन एक साधारण सवार था।

मैसूर के महाराजा एक अरसे से सिंहासन का केवल एक आभूषण समझे जाते थे। महाराजा का अधिकांश समय महल के अन्दर पूजा पाठ तथा अन्य धार्मिक क्रियाओं में व्यतीत होता था। यहाँ तक कि वे वर्ष में केवल दो बार अपनी प्रजा के सम्मुख आते थे। शासन के कार्य से उन्हें किसी प्रकार का सम्बन्ध न था। समस्त शासन प्रधान मन्त्री के सुपुर्द था जिसे 'दैव' वा 'दलवाई' कहते थे। दैव ही राज्य का क्रियात्मक स्वामी होता था। उसकी गद्दी पैतृक थी। पिछले युद्ध में मैसूर का दैव नन्दीराज हैदरअली की योग्यता और वीरता को देख कर इतना प्रसन्न हुआ कि सन् १७५५ में उसने हैदरअली को डिण्डीगल का फ़ौजदार नियुक्त कर दिया। इस युद्ध में ही हैदरअली ने फ़्रान्सीसियों की सैनिक व्यवस्था और उनकी क़वायद को भली प्रकार देखा, और डिण्डीगल में फ़ौज को क़वायद सिखाने के लिए फ़्रान्सीसी अफ़सर नौकर रक्खे। अपने तोपख़ाने में भी उसने फ़्रान्सीसी कारीगर नियुक्त किए।

हैदरअली का 'दैव' नियुक्त होना

धीरे धीरे हैदरअली का बल बढ़ता गया। यहाँ तक कि वह रियासत का प्रधान सेनापति हो गया। थोड़े दिनों बाद मैसूर दरबार के मन्त्रियों में परस्पर ईर्षा बढ़ी। खाँडेराव ने किसी प्रकार साज़िश द्वारा नन्दीराज को गद्दी से अलग करके आपको मैसूर का 'दैव' नियुक्त करा लिया। लिखा है कि श्रीरङ्गपट्टन की प्रजा खाँडेराव से अत्यन्त असन्तुष्ट थी। खाँडेराव एक मराठा

ब्राह्मण था जिसे आरम्भ में हैदरअली ही ने रियासत के अन्दर नौकर रखाया था। खाँडेराव ने अब गुप्त तरीक़े से मराठों को श्रीरङ्गपट्टन पर हमला करने के लिए बुलवा भेजा। हैदरअली उस समय रियासत का प्रधान सेनापति था। इस प्रकार खाँडेराव ने मैसूर दरबार तथा हैदरअली दोनों के साथ विश्वासघात किया। हैदरअली को अपनी सेना सहित खाँडेराव और मराठों का मुक़ाबला करना पड़ा। हमें इन लड़ाइयों के विस्तार में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। राजकुल के लोगों ने और विशेषकर नन्दीराज के पूर्व के 'दैव' देवराज की विधवा ने, जिसका उस समय श्रीरङ्ग-पट्टन में बहुत अधिक प्रभाव था, हैदरअली को पूरी मदद दी। अन्त में हैदरअली ही की विजय रही। प्रजा की इच्छा के अनुसार और अधिकतर देवराज की विधवा के प्रभाव से अब मैसूर के राजा ने विश्वासघातक खाँडेराव को अलग करके हैदरअली को 'दैव' के सर्वोच्च पद पर नियुक्त कर दिया।

ऊपर लिखा जा चुका है कि बहुत समय पहले से दैव ही मैसूर के क्रियात्मक शासक होते थे। मैसूर के दैव और वहाँ के महाराजा में लगभग वैसा ही सम्बन्ध था जैसा पूना के पेशवा और शिवाजी के वंशजों में। इसके बाद भी यद्यपि मैसूर के राजा नाम मात्र को अपने महल के अन्दर सिंहासन पर बैठते रहे, तथापि वास्तव में इस समय से हैदरअली मैसूर का क्रियात्मक शासक बन गया और दैव की गद्दी उसके खानदान में पैतृक हो गई। इसके कुछ समय बाद दिल्ली सम्राट ने हैदरअली के पराक्रम और

उसके बल की ख़बर सुन कर उसे मैसूर के निकट सीरा प्रान्त का सूबेदार नियुक्त कर दिया ।

सुधार और शासन-प्रबन्ध

मैसूर दरबार की हालत पिछली आपसी लड़ाइयों के कारण उस समय ख़ासी बिगड़ी हुई थी। हैदर ने सबसे पहले राज्य की आर्थिक स्थिति की ओर ध्यान दिया । उसने देखा कि रियासत के अधिकांश ज़ेवर और जवाहरात श्रीरङ्गपट्टन के एक धनाढ्य साहूकार के घर में गिरवी पड़े हुए हैं। इस बनिए साहूकार ने कई मौक़ों पर रियासत को बड़ी बड़ी रक़में क़र्ज़ दी थीं। रियासत से उसने बेहद धन कमाया था। अपने धन के लिए वह दूर दूर तक मशहूर था। कहा जाता है कि उसके बच्चों के पालने ठोस सोने के बने हुए थे, और ठोस सोने ही की ज़ञ्जीरों से लटके रहते थे। हैदरअली ने आज्ञा दी कि उसका क़र्ज़ चुका दिया जाय और रियासत का सामान उसके यहाँ से ले लिया जाय। हिसाब की जाँच पड़ताल के लिए पञ्च मुक़र्रर किए गए। पञ्चों की रिपोर्ट से मालूम हुआ कि साहूकार के हिसाब में काफ़ी बेईमानी और जालसाज़ी है। पञ्चों ने निर्णय किया कि साहूकार की समस्त सम्पत्ति ज़ब्त कर ली जाय और उसे आजन्म क़ैद रक्खा जाय। हैदरअली ने उसकी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली, किन्तु उसे क़ैद करने के बजाय उसके गुज़ारे के लिए एक पेन्शन नियत कर दी और उसके बेटों को रियासत के अन्दर अच्छे अच्छे ओहदों पर नियुक्त कर दिया। मालगुज़ारी

की वसूली और राज्य के ख़र्च की हैदरअली ने अत्यन्त सुन्दर व्यवस्था कर दी।

मैसूर के अनेक सामन्त उस समय विद्रोही हो रहे थे। रियासत के अन्दर अनेक प्रान्तों में आपसी लड़ाइयाँ जारी थीं। इन सामन्तों अथवा प्रान्तीय शासकों को अधिकतर पालीगार कहा जाता था। हैदर ने सेना भेजकर इन सब पालीगारों को वश में किया और समस्त राज्य में शान्ति तथा सुशासन स्थापित किया।

इन विद्रोही सामन्तों में मुख्य बेदनूर का राजा था। लिखा है कि राजधानी बेदनूर की आधी आबादी उस समय ईसाई थी। बेदनूर के राजा और उसकी विधवा माता में कुछ झगड़ा हुआ। राजा ने आकर हैदरअली से मदद चाही। बेदनूर की प्रजा भी राजा के पक्ष में थी। हैदरअली ने राजा का पक्ष लेकर बेदनूर पर चढ़ाई की। रानी ने बड़ी वीरता के साथ अपने दुर्ग की रक्षा की। अन्त में रानी की सेना हार गई। हैदरअली ने एक बार रानी तथा उसके बेटे में सुलह करवा दी और बेटे के राजतिलक का प्रबन्ध कर दिया। इसके बाद भी रानी ने बेटे के साथ गुप्त षड्यन्त्र करके हैदरअली की हत्या का प्रबन्ध किया। हैदरअली पर यह भेद खुल गया। तहक़ीकात के बाद रानी और उसके पुत्र दोनों को क़ैद कर लिया गया और उनकी जगह हैदरअली ने अपने एक आदमी राजाराम को बेदनूर का शासक नियुक्त कर दिया। बेदनूर की रियासत इतनी धनाढ्य थी कि क़िले के अन्दर हैदरअली को लगभग बारह करोड़ रुपए का माल सोना, चाँदी और जवाहरात

मिले। हैदरअली ने इस धन से अपने तमाम सिपाहियों को छै छै महीने का वेतन बतौर इनाम के दिया और ग़रीबों और साधुओं में भोजन, वस्त्र और धन बटवाया। बेदनूर का नाम बदलकर उसने हैदरनगर रख दिया।

इसके बाद और भी नए नए प्रान्तों को विजय कर हैदरअली ने मैसूर राज्य की सीमा को ख़ूब बढ़ा लिया और वहाँ के शासन को सुदृढ़ और व्यवस्थित रूप दिया।

उन दिनों मराठे चारों ओर अपना साम्राज्य बढ़ाने के प्रयत्न में लगे हुए थे। चार बार उन्होंने मैसूर पर हमला किया, किन्तु इन हमलों से मराठों को कोई विशेष लाभ न हो सका। हैदरअली का बल कुछ कम न था। वह कभी लड़कर और कभी थोड़ा बहुत ज़र, ज़मीन देकर मराठों से छुटकारा पाता रहा। अन्त में जो थोड़ा बहुत इलाक़ा मराठों ने इस प्रकार हैदरअली का ले लिया था वह भी उन्हें वापस लौटा देना पड़ा, और दोनों को अन्त में अपने हित के लिए एक दूसरे के साथ सन्धि करनी पड़ी।

अङ्गरेज़ों के साथ पहला युद्ध

किसी भी स्वाधीन भारतीय नरेश के इस प्रकार बढ़ते हुए बल को अङ्गरेज़ गवारा न कर सकते थे। वे तरह तरह से हैदरअली को कुचलने की तदबीरें करने लगे। हैदरअली के साथ उनका पहला युद्ध सन् १७६७ में शुरू हुआ। छेड़छाड़ अङ्गरेज़ों की ओर से हुई। अङ्गरेज़ों ने बिला वजह उस साल हैदर के बारामहल

के इलाक़े पर हमला कर दिया। करनाटक के नवाब मोहम्मद-अली के साथ हैदरअली की इससे पूर्व ख़ासी मित्रता थी। अङ्गरेज़ों ने करनाटक के नवाब को यह कहकर हैदरअली के विरुद्ध खड़ा कि बारामहल का इलाक़ा हैदरअली से ज़ीतकर तुम्हें दे दिया जायगा।

अङ्गरेज़ों का मुक़ाबला करने के लिए हैदरअली ने अब निज़ाम के साथ सन्धि की। तय होगया कि निज़ाम और हैदरअली दोनों की सेनाएँ मिलकर करनाटक और अङ्गरेज़ी इलाक़े पर हमला करें, और नवाब मोहम्मदअली को दण्ड देने के लिए उसे करनाटक की मसनद से हटाकर हैदरअली के बेटे टीपू को उसकी जगह बैठा दें। लगभग पचास हज़ार सेना निज़ाम की ओर से वज़ीर रुकनुद्दौला के अधीन हैदरअली की मदद के लिए आई। इतनी ही सेना जनरल स्मिथ के अधीन मद्रास से बढ़ी। इतने में जब कि अभी अङ्गरेज़ों और हैदरअली में पत्र-व्यवहार हो ही रहा था, जनरल स्मिथ ने हैदर के वनियमवाड़ी, कावेरीपट्टम इत्यादि कुछ सरहदी क़िले अपने अधीन कर लिए। हैदरअली के पास कुल सेना इस समय दो लाख के लगभग थी। इसमें से पचास हज़ार सेना लेकर वह जनरल स्मिथ के मुक़ाबले के लिए बढ़ा। रुकनुद्दौला की सेना भी हैदरअली की सेना के साथ साथ थी। इस दरमियान अङ्गरेज़ों ने निज़ाम तथा रुकनुद्दौला के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार शुरू किया। कई जगह ऐन मौक़े पर रुकनुद्दौला का व्यवहार संशयात्मक प्रतीत हुआ। हैदरअली के साथ

अङ्गरेज़ों की कई छोटी बड़ी लड़ाइयाँ हुईं, जिनमें विजय कहीं अङ्गरेज़ों की ओर रही और कहीं हैदरअली की ओर। लिखा है कि हैदरअली के मज़बूत क़िलों पर अङ्गरेज़ कोई विशेष असर न डाल सके। तथापि हैदरअली का बहुत सा इलाक़ा अङ्गरेज़ों के हाथों में आ गया। अरकाट का नवाब अङ्गरेज़ों से मिल चुका था, और निज़ाम भी हैदरअली को धोखा देता हुआ प्रतीत होता था। दूसरे उन दिनों मराठों के हमले का हैदरअली को बराबर डर लगा रहता था। तीसरे स्वयं मैसूर में उसका शासन अभी हाल ही का जमा हुआ था और वह बहुत दिनों तक राजधानी से दूर न रह सकता था। इन सब बातों से मजबूर होकर सितम्बर सन् १७६८ में हैदरअली ने अङ्गरेज़ों से सुलह की बातचीत शुरू की।

अङ्गरेज़ों को इससे विश्वास हो गया कि हैदरअली की हालत कमज़ोर है और हम आसानी से उसके सारे इलाक़े को फ़तह कर लेंगे, उन्होंने अत्यन्त अपमान के साथ हैदरअली के दूत को अपने यहाँ से लौटा दिया। किन्तु हैदर कायर न था। उसने अब ज़ोरों के साथ युद्ध की तैयारी शुरू की। नवम्बर सन् १७६८ में अङ्गरेज़ों को मैसूर राज्य से बाहर निकालने के लिए उसने अपने एक सेनापति फ़ज़लुल्लाह ख़ाँ को सेना सहित रवाना किया। इसके बाद हैदर ख़ुद सेना लेकर आगे बढ़ा।

सब से पहले उसने अपने उन क़िलों को फिर से एक एक करके विजय करना शुरू किया, जिन पर अङ्गरेज़ी सेना ने क़ब्ज़ा कर लिया था। इनमें कावेरीपट्टम का क़िला एक मुख्य क़िला था।

हैदरअली ने उसका मोहासरा शुरू किया। अङ्गरेज़ों ने अपनी तोपों से क़िले की रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर रक्खा था। हैदरअली की तोपों ने क़िले के बाहर से गोलाबारी शुरू की। लगभग तीन घण्टे की गोलाबारी के बाद अङ्गरेज़ी सेना को फ़सील छोड़कर पीछे हट जाना पड़ा। अङ्गरेज़ सेनापति ने विवश होकर सुलह का सफ़ेद झण्डा दिखलाया। हैदर ने लड़ाई बन्द कर दी और क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। क़िले के भीतर के तमाम अङ्गरेज़ सिपाहियों को हैदर ने जान बख़्श दी और उन्हें इस बात की इजाज़त दे दी कि तुम लोग अपने हथियार रखकर मद्रास लौट जाओ। कम्पनी के देशी सिपाहियों को उसने मौक़ा दिया कि तुम लोग चाहे अपने घर लौट जाओ और चाहे मैसूर की सेना में भरती हो जाओ। लगभग ये समस्त हिन्दोस्तानी सिपाही हैदरअली की सेना में आकर भरती हो गए। हैदरअली ने इस बात का भी हुकुम दे दिया कि कम्पनी का प्रत्येक अफ़सर और सिपाही, सिवाय हथियारों, गोले बारूद, घोड़ों और उस तमाम माल के जो इङ्गलिस्तान के बादशाह या अङ्गरेज़ कम्पनी या नवाब मोहम्मदअली का है, शेष समस्त निजी सम्पत्ति अपने साथ ले जा सकता है। क़िले के पराजित अङ्गरेज़ सेनापति ने जब हैदरअली से निवेदन किया कि रसद इत्यादि का बहुत सा सामान मैंने अपने निजी रुपए से ख़रीदा है, तो उदार हैदरअली ने उसे अपने ख़ज़ाने से उस सामान का दाम तक दिलवा दिया।

एक ओर हैदरअली का व्यवहार पराजित शत्रु के साथ इतना

उदार था, दूसरी ओर अङ्गरेज़ों ने इसी युद्ध में हैदरअली के एक छोटे से क़िले धर्मपुरी पर क़ब्ज़ा करते हुए, उस समय जब कि सुलह का सफ़ेद झण्डा फ़सील पर गड़ा हुआ था, क़िले में घुसकर वहाँ के क़िलेदार, उसके बाल-बच्चों और एक एक सिपाही को जो हथियार रख चुके थे क़त्ल कर दिया। और यह सब कार्य अङ्गरेज़ सेनापति की आज्ञा से किया गया।

कावेरीपट्टम के बाद हैदरअली ने अपने शेष क़िलों को भी एक एक कर अङ्गरेज़ों से विजय किया। इन तमाम लड़ाइयों और मोहासरों का वर्णन करना यहाँ पर अनावश्यक है। इन लड़ाइयों में जनरल स्मिथ की सेना को काफ़ी ज़िल्लत के साथ पीछे भागना पड़ा। जगह जगह उसे अपना माल असबाब पीछे छोड़ देना पड़ा, अपनी तोपें और गोला बारूद तालाबों और नदियों में फेंक देना पड़ा और कहीं कहीं अपने मुर्दों तक को बिना दफ़नाए मैदान में छोड़ कर भागना पड़ा। किन्तु अपनी तमाम लड़ाइयों में हैदर का यह एक नियम था कि वह आगे बढ़ने से पहले शत्रु के मुर्दों को जमा करके यथाविधि दफ़ना दिया करता था।

हैदर के बड़े बेटे फ़तहअली टीपू की आयु इस समय लगभग १८ वर्ष की थी। टीपू अपने बाप के साथ मैदान में मौजूद था। हैदर स्वयं जनरल स्मिथ को अपनी सरहद से बाहर निकालने के लिए पीछे रहा और टीपू को उसने पाँच हज़ार सवार देकर एक दूसरे रास्ते मद्रास की ओर भेजा। टीपू अपनी सेना सहित इस तेज़ी के साथ आगे बढ़ा कि मद्रास का गवरनर और उसकी

कौन्सिल टीपू को अचानक मद्रास के सामने देखकर घबरा गए। लिखा है कि जिस दिन प्रातःकाल टीपू के सवार मद्रास के निकट पहुँचे, गवरनर और उसकी कौन्सिल के मेम्बर और नवाब मोहम्मद-अली मद्रास के क़िले से कुछ दूर कम्पनी के एक बाग़ीचे में हवा खा रहे थे, और दरख़्तों के नीचे खाना सजा हुआ था। इन लोगों को इस तेज़ी से भागना पड़ा कि घबराहट में गवरनर की तलवार और उसकी टोपी तक रह गई। सौभाग्यवश एक छोटा सा जहाज़ उस समय सामने खड़ा हुआ था। गवरनर और उसके अङ्गरेज़ साथियों ने भागकर इस जहाज़ में आश्रय लिया। एक यूरोपियन इतिहास-लेखक लिखता है कि यदि वह जहाज़ मौक़े पर न होता तो गवरनर और उसके साथियों को टीपू के सवारों ने अवश्य क़ैद कर लिया होता।* नवाब मोहम्मदअली अपने तेज़ घोड़े पर सवार होकर सड़क के रास्ते मद्रास से भाग निकला।

टीपू ने मद्रास के क़िले से पाँच मील दूर सेण्ट टॉमस की पहाड़ी पर क़ब्ज़ा कर लिया और आस पास के अङ्गरेज़ी इलाक़े को अपने अधीन कर लिया।

इस बीच त्रिनमल्ली नामक स्थान पर हैदरअली और जनरल स्मिथ का मुक़ाबला हुआ। निज़ाम की सेना अभी तक हैदर की सेना के साथ साथ थी, किन्तु निज़ाम तथा अङ्गरेज़ों में गुप्त बात-चीत हो चुकी थी। ऐन इस मौक़े पर अङ्गरेज़ी सेना पर हमला करने के बहाने निज़ाम ने अपनी तमाम सेना को हैदर तथा

* *History of Hyder Shah*, By M. M. D. L. T., p. 192.

अङ्गरेज़ों की सेना के बीच में लाकर खड़ा कर दिया। थोड़ी ही देर बाद निज़ाम ने अपनी सेना को इस बुरी तरह पीछे की ओर भगाया कि हैदर की तमाम सेना में खलबली मच गई। हैदरअली को अब पूरी तरह निज़ाम के विश्वासघात का पता चल गया। उसे मजबूर होकर अपनी सेना कुछ दूर पीछे हटा लेनी पड़ी। तथापि अङ्गरेज़ों को हैदर का एक सिपाही भी गिरफ़्तार करने का मौक़ा न मिल सका और न जनरल स्मिथ को आगे बढ़कर हैदर पर हमला करने का साहस हुआ।

हैदर की इस क्षणिक पराजय की ख़बर अङ्गरेज़ों ने ख़ूब बढ़ा कर दूर दूर तक फैला दी। यहाँ पर युद्ध के प्रसङ्ग से हटकर हम हैदरअली और उसकी बूढ़ी माँ के सम्बन्ध की एक घटना वर्णन कर देना चाहते हैं। हैदर की माँ उस समय लड़ाई के मैदान से लगभग दो सौ मील दूर हैदरनगर के महल में थी। बेटे की इस क्षणिक पराजय की ख़बर उसके कानों तक पहुँची। वह फ़ौरन् पालकी में बैठकर अपने बेटे को हिम्मत दिलाने के लिए हैदरनगर से चल पड़ी। बरसात के दिन, उस ज़माने की यात्रा के कष्ट और उस पर लड़ाई का मैदान। तथापि रात दिन चलकर बूढ़ी माँ चन्द रोज़ के अन्दर ही अपने बेटे की सेना के निकट आ पहुँची। ख़बर पाते ही हैदर अपने छोटे बेटों सहित स्वागत के लिए आगे बढ़ा। माँ के साथ लगभग एक हज़ार सिपाही घोड़ों और ऊँटों पर, और इनके अलावा पालकी के आगे आगे दो सौ स्त्रियाँ बुरक़े पहने हुए घोड़ों पर सवार थीं। कहा जाता है कि माँ के ख़ेमे में उतरते ही हैदर

ने हैरान होकर पूछा—"आप इतना कष्ट उठाकर इस समय यहाँ कैसे आईं ?" बूढ़ी माँ ने उत्तर दिया—"बेटा, मैं यह देखना चाहती थी कि तुम अपनी पराजय को कितने धैर्य के साथ सह सकते हो।" हैदर ने जवाब में अपनी हिम्मत दिखलाते हुए माँ को विश्वास दिलाया कि वह पराजय कोई पराजय ही न थी। इस पर माँ ने उत्तर दिया—"खूब, बहुत खूब, अगर यही बात है तो ख़ुदा का शुक्र है, और मैं फ़ौरन् लौट जाऊँगी, ताकि मेरे रहने से तुम्हारे काम में रुकावट न पड़े।" अपने पहुँचने के ठीक तीसरे रोज़ हैदर की बूढ़ी माँ बेटे को दुआ देकर हैदरनगर की ओर लौट गई। निस्सन्देह इस प्रकार की वीर माता ही हैदर जैसे वीर पुत्र को जन्म दे सकती थी।

उधर टीपू मद्रास के क़िले से केवल एक कोस की दूरी पर था। उस समय के उल्लेखों से स्पष्ट है कि टीपू के लिए उस समय मद्रास विजय कर सकना कुछ भी कठिन न था। जनरल स्मिथ ने त्रिनमल्ली की विजय के बाद टीपू को पीछे हटाने की एक ख़ासी सुन्दर चाल चली। उसने एक साँडनी सवार फ़ौरन् मद्रास की ओर भेजा। इस सवार ने टीपू की सेना में पहुँच कर यह ज़ाहिर किया कि मुझे सुलतान हैदरअली ने अपने बेटे की ख़बर लेने के लिए भेजा है। टीपू को उसने त्रिनमल्ली की पराजय की ख़बर दी और कहा कि सुलतान का हुकुम है कि आप फ़ौरन् लौटकर सुलतान से जा मिलें। इस छल के बाद इसी दूत ने टीपू की सेना से निकल कर आगे बढ़कर मद्रास के अङ्गरेज़ों को विजय की सूचना दी,

जिसकी झूठी ख़ुशी में एक सौ एक तोपें मद्रास के क़िले से छोड़ी गईं।

नातजरुबेकार टीपू ने धोखे में आकर अपने सेनापतियों से सलाह की। सब की सलाह यही हुई कि इस हालत में मद्रास के क़िले का मोहासरा करना ठीक नहीं। टीपू अपनी सेना सहित पीछे लौटकर पिता से आ मिला।

माँ के जाने के दूसरे दिन हैदरअली वनियमवाड़ी के क़िले की ओर बढ़ा। वनियमवाड़ी का क़िला भी एक निहायत मज़बूत क़िला था। किन्तु हैदर की चन्द घण्टे की गोलाबारी ने क़िले की अङ्गरेज़ी तोपों को ठण्डा कर दिया। क़िले के अङ्गरेज़ संरक्षक ने सफ़ेद झण्डा गाड़ दिया। हैदर की सेना ने क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। हैदर ने क़िले के तमाम अङ्गरेज़ अफ़सरों और सिपाहियों को उनसे यह वादा कराकर छोड़ दिया कि हम लोग कम से कम एक साल तक किसी लड़ाई में आपके विरुद्ध न लड़ेंगे।

इस क़िले की रक्षा का उचित प्रबन्ध करके हैदरअली आम्बूर की ओर बढ़ा। आम्बूर के मोहासरे में हैदरअली का एक प्रसिद्ध मित्र पीरज़ादा ख़ाकीशाह घायल होकर मर गया। यह पीरज़ादा एक मुसलमान फ़क़ीर था, जो प्रायः हैदर की सेना के साथ रहा करता था। उसका मुख्य काम यह था कि वह हर विजय के बाद यह देखने के लिए घर घर घूमता फिरता था कि हैदर के सिपाही सिवाय नक़दी और अस्त्र शस्त्र ले लेने के प्रजा के साथ किसी तरह का अत्याचार न करें। इस सराहनीय प्रयत्न में ही पीरज़ादा ख़ाकी-

शाह की जान गई । क़िले के अन्दर की अङ्गरेज़ी सेना ने अपने कारतूस एक तालाब के अन्दर फेंक दिए और शस्त्रागार को आग लगा दी। तथापि हैदर को इस क़िले के अन्दर अङ्गरेज़ों की १८ पीतल की तोपें, तीन हज़ार बन्दूक़ें और बहुत कुछ गोला बारूद तथा रसद का सामान प्राप्त हुआ।

जनरल स्मिथ की सेना अब हार पर हार खाकर पीछे हटती जा रही थी। उसकी सहायता के लिए करनल वुड एक नई सेना सहित बङ्गाल से रवाना किया गया। इसी समय के निकट हैदर की सेना में विश्वासघात के बीज बोने का अङ्गरेज़ों ने एक ख़ासा षड्यन्त्र रचा। हैदर की सेना में अनेक यूरोपियन कई ऊँचे पदों पर नियुक्त थे। कई कम्पनियाँ फ्रान्सीसी सिपाहियों की भी उसकी सेना में शामिल थीं। अङ्गरेज़ों ने ईसाई पादरियों के ज़रिए हैदर के इन तमाम यूरोपियन मुलाज़िमों को फोड़ने की कोशिश की। मालूम होता है कि इस षड्यन्त्र की कुछ भनक हैदर के कानों तक पहुँच गई। उसने अपने तमाम यूरोपियन मुलाज़िमों को जमा करके उनकी तनख़ाहें दिलवा दीं, और उनसे यह कह दिया कि तुम लोग यदि चाहो तो नौकरी छोड़ कर जा सकते हो। किन्तु उन सब ने 'इञ्जील और सलीब हाथ में लेकर' हैदर की वफ़ादारी की क़सम खाई। वे सब फिर से नौकर रख लिए गए। अङ्गरेज़ों के जासूस जब फिर इन लोगों के पास पहुँचे तो अधिकांश यूरोपियन सिपाहियों ने यह एतराज़ किया कि हम 'इञ्जील और सलीब हाथ में लेकर' सुलतान की वफ़ादारी की क़सम खा चुके हैं। इस पर अङ्गरेज़ों

ने यूरोपियन ईसाई पादरियों के दस्तख़त से एक व्यवस्था-पत्र लिखवा कर उसकी प्रतियाँ हैदर के यूरोपियन नौकरों में बटवा दीं, जिसमें लिखा था कि—"जो क़समें 'इञ्जील और सलीब लेकर' भी मुसलमानों के सामने खाई जावें, ईसाई उनके पालन करने के लिए बाध्य नहीं हैं।" एक फ़ान्सीसी लेखक, जो उस समय हैदर की सेना में मौजूद था, लिखता है कि इस षड्यन्त्र को सफल करने के लिए अङ्गरेज़ों ने गुप्त हत्या और जालसाज़ी से भी काम लिया। अङ्गरेज़ी जासूसों के पास हैदर के फ़ान्सीसी सिपाहियों को फोड़ने के लिए इस समय पुद्दुचरी के फ़ान्सीसी गवरनर का एक जाली ख़त भी मौजूद था। तथापि हैदर के यूरोपियन मुलाज़िमों में से, जिनमें अधिकांश फ़ान्सीसी थे, बहुत कम ने हैदर के साथ विश्वासघात किया। जिन यूरोपियन पादरियों ने पूर्वोक्त व्यवस्था-पत्र पर दस्तख़त किए उनमें से अनेक हैदर की प्रजा थे और हैदर ने उनके साथ अनेक रिआयतें कर रक्खी थीं।

इस समय तक अर्थात् सन् १७६८ के अन्त से पहले पहले हैदर ने अपना वह तमाम इलाक़ा, जो थोड़े दिनों के लिए अङ्गरेज़ों के हाथों में चला गया था, फिर से विजय कर लिया।

किन्तु जिस समय हैदर अपनी तमाम सेना सहित मैसूर राज्य की पूर्वीय सरहद पर था, अङ्गरेज़ों ने एक नई सेना पीछे की ओर से हैदरअली के पश्चिमी इलाक़े मङ्गलोर पर हमला करने के लिए भेज दी। इस सेना ने हैदरअली की अनुपस्थिति में एक बार आसानी से मंङ्गलोर पर क़ब्ज़ा कर लिया। मङ्गलोर विजय की

खुशी में फिर एक सौ एक तोपें मद्रास के क़िले से छोड़ी गईं।
हैदरअली को अब दो ओर से अङ्गरेज़ों का मुक़ाबला करना पड़ा।
सामने की ओर जनरल स्मिथ और करनल वुड की सेनाएँ और
पीछे की ओर बम्बई की सेना।

मङ्गलोर के पतन की ख़बर पाते ही हैदर ने अपने बेटे टीपू
को तीन हज़ार सवार देकर मङ्गलोर की ओर भेजा। टीपू के पीछे
पीछे हैदर स्वयं थोड़ी सी सेना सहित मङ्गलोर की ओर रवाना
हुआ। शेष सेना उसने अपने सम्बन्धी मख़दूम के अधीन स्मिथ
और वुड के मुक़ाबले के लिए पूर्वीय सरहद पर छोड़ दी।

जनरल स्मिथ और करनल वुड ने हैदर की अनुपस्थिति से पूरा
लाभ उठाया। जनरल स्मिथ ने एक छोटा सा क़िला इस समय एक
बड़ी सुन्दर चाल द्वारा मख़दूम के आदमियों से ले लिया। स्मिथ ने
अपने एक हरकारे को मख़दूम के हरकारों की सी पोशाक पहनाई।
उसके हाथ मख़दूम का एक जाली पत्र क़िलेदार के पास भेजा,
जिसमें लिखा था कि—"अङ्गरेज़ी सेना तुम्हारे क़िले पर हमला
करने वाली है, इसलिए तुम्हारी मदद के लिए पाँच सौ सिपाही
आज शाम को भेजे जावेंगे, क़िले का फाटक खुला रखना।" चाल
काम कर गई और उसी दिन शाम को कम्पनी के वरदी बदले हुए
सिपाहियों ने जाकर क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। मख़दूम को जब
यह बात मालूम हुई तो उसने बदला लेने का इरादा किया। चन्द रोज़
के अन्दर ही उसने अपने कुछ सवारों को अङ्गरेज़ी वर्दियाँ पहना
कर क़िले के सामने भेजा। इन सवारों में से एक ने, जो इत्तफ़ाक़ से

अङ्गरेज़ी सेना का भागा हुआ एक अङ्गरेज़ सिपाही था, आगे बढ़ कर क़िले के अङ्गरेज़ अफ़सर से चिल्लाकर कहा—"हैदर की सेना हम लोगों का पीछा कर रही है। मेरी सेना के कमाण्डर की प्रार्थना है कि आप फाटक खोल दीजे; ताकि हम सब लोग भीतर आ जावें।" इस चाल द्वारा मख़दूम की सेना ने फिर से उस क़िले के ऊपर क़ब्ज़ा कर लिया।

स्मिथ और वुड दोनों की सेनाएँ मिलकर अब हैदर की अनुपस्थिति में बङ्गलोर विजय करने के इरादे से आगे बढ़ीं। वास्तव में राजधानी श्रीरङ्गपट्टन के बाद पूर्व में बङ्गलोर और पश्चिम में मङ्गलोर मैसूर राज्य के प्रधान नगर थे।

उधर मङ्गलोर की प्रजा ने टीपू का बड़े उल्लास के साथ स्वागत किया। बम्बई की अङ्गरेज़ी सेना और टीपू की सेना में एक भीषण संग्राम हुआ। संग्राम में टीपू ने पूर्ण विजय प्राप्त की। अङ्गरेज़ सेनापति, ४६ अङ्गरेज़ अफ़सरों, ६८० अङ्गरेज़ सिपाहियों और ६,००० से ऊपर कम्पनी के हिन्दोस्तानी सिपाहियों को टीपू ने इस संग्राम में क़ैद कर लिया; और उनके तमाम अस्त्र शस्त्र तथा सामान ज़ब्त कर लिया। मङ्गलोर का यह संग्राम वास्तव में अङ्गरेज़ों और हैदर के लिए एक निर्णायक संग्राम था। केवल तीस दिन अङ्गरेज़ी सेना के क़ब्ज़े में रहने के बाद मङ्गलोर का क़िला और नगर टीपू के हाथों में आ गया। नौजवान बेटे की इस शानदार विजय के एक दिन बाद हैदर अपनी सेना सहित मङ्गलोर पहुँचा। लिखा है कि ख़बर सुनते ही सुलतान हैदर ने टीपू को

छाती से लगा लिया और मारे ख़ुशी के उसकी आँखों में आँसू आगए।

मङ्गलोर में पुर्तगाली ईसाइयों के तीन गिरजे थे। ये यूरोपियन पादरी उस समय की प्रथा के अनुसार अपने आपको "ब्राह्मण ईसाई" कहा करते थे। ब्राह्मणों के से कपड़े पहनते थे, गले में जनेऊ डालते थे, निरामिष भोजन करते थे, खड़ाऊँ पहनते थे और ब्राह्मणों का सा समस्त आचार विचार रखते थे। इस चाल द्वारा उन्हें हिन्दू जनता को ईसाई बनाने में सुगमता होती थी। ये लोग हैदर की प्रजा थे। हैदर ने इनके साथ अनेक रिआयतें कर रक्खी थीं। तथापि अङ्गरेज़ों के मङ्गलोर पर हमला करते समय इन तीनों गिरजों के यूरोपियन पादरियों ने हैदर के विरुद्ध उसके शत्रुओं को मदद दी। हैदर को जब इसका पता लगा तो उसने उनका माल असबाब ज़ब्त कर लिया और उन्हें केवल उस समय तक के लिए क़ैद कर दिया, जब तक कि हैदर और अङ्गरेज़ों में सुलह न हो जावे।

मङ्गलोर की विजय के बाद हैदर ने वहाँ की रक्षा का अब यथोचित प्रबन्ध कर दिया, और स्वयं टीपू तथा सेना सहित बङ्गलोर की रक्षा के लिए पीछे लौटा। इस बार हैदर ने अपनी सेना के तीन हिस्से किए और तीन रास्तों से आगे बढ़ा। जनरल स्मिथ के लिए बङ्गलोर विजय करने का इरादा एक क्षणिक स्वप्न मात्र साबित हुआ। हैदर की सेना के लौटते ही जनरल स्मिथ और करनल वुड की सेना को बुरी तरह हैदर की सेना के आगे आगे

भागना पड़ा। अपने तमाम इलाक़े से अङ्गरेज़ी सेना को फिर एक बार बाहर निकाल देने के बाद हैदर के तीनों सैन्यदल अब अङ्गरेज़ों तथा नवाब करनाटक के इलाक़ों में बढ़ते चले गए। हैदरअली की सेना के मुक़ाबले में कम्पनी की सेना के कहीं पर भी पैर न जम सके। नवाब मोहम्मदअली बेहद डर गया। बढ़ते बढ़ते हैदर की सेना मद्रास के निकट पहुँचने लगी। मद्रास का अङ्गरेज़ गवरनर और उसकी कौन्सिल के मेम्बर घबरा गए।

मद्रास की कौन्सिल ने अब कप्तान ब्रूक को हैदर के पास सुलह के लिए भेजा। हैदर को मौक़ा मिला कि जो व्यवहार चन्द महीने पहले अङ्गरेज़ों ने हैदर के दूत के साथ किया था वही अब हैदर अङ्गरेज़ दूत के साथ करे। हैदर ने कप्तान ब्रूक को उत्तर दिया—

"मैं मद्रास के फाटक पर आ रहा हूँ और गवरनर और उसकी कौन्सिल को जो कुछ कहना होगा वहीं आकर सुनूँगा।"

कप्तान ब्रूक निराश होकर मद्रास लौट आया। हैदर ने अपना तमाम भारी सामान और माल असबाब मैसूर भेज दिया और ख़ुद सेना सहित मद्रास की ओर बढ़ा। हैदर की समस्त सैन्य-यात्राएँ अत्यन्त आश्चर्यजनक होती थीं। विशाल सेनाओं सहित पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व सैकड़ों मील की यात्राएँ चन्द दिनों के अन्दर तय करना और फिर बिना विश्राम लिए विस्मित अङ्गरेज़ी सेना पर जा टूटना उसके लिए एक साधारण बात थी। इस बार साढ़े तीन दिन के अन्दर उसने १३० मील का फ़ासला तय किया और एक दिन अचानक मद्रास के क़िले से दस मील

की दूरी पर दिखाई दिया। अङ्गरेज़ भय से काँप उठे। हैदर की सेना तथा मद्रास के बीचोंबीच सेण्ट टॉमस की पहाड़ी थी। यह वही स्थान था जिस पर टीपू एक बार क़ब्ज़ा कर चुका था। अङ्गरेज़ों ने अब बड़ी शीघ्रता के साथ इस पहाड़ी की रक्षा का प्रबन्ध किया और वहाँ पर अपनी सेना जमा की, ताकि हैदर आसानी से मद्रास तक न पहुँचने पावे। किन्तु अङ्गरेज़ी सेना अभी सेण्ट टॉमस पर जमने भी न पाई थी कि हैदर अपनी विशाल सेना सहित दूर का चक्कर देकर मद्रास क़िले के दूसरी ओर के फाटक पर आ पहुँचा। अङ्गरेज़ी सेना क़िले के दूसरी ओर फ़सील से दो तीन मील के फ़ासले पर थी। अङ्गरेज़ों के भय की उस समय कोई सीमा न थी। हैदर यदि चाहता तो उसी क्षण बड़ी आसानी से मद्रास पर क़ब्ज़ा कर सकता था और कम से कम दक्षिणी भारत से अङ्गरेज़ों के रहे सहे प्रभाव का ख़ात्मा कर सकता था। किन्तु उसने कप्तान ब्रूक के साथ वादा कर लिया था कि मद्रास के फाटक पर आकर मैं सुलह की बातचीत सुन लूँगा। पूवाय मर्यादा के अनुसार उसने अपने वचन का पालन किया। उसने मद्रास के अङ्गरेज़ गवरनर को अपने पहुँचने की सूचना दी। गवरनर ने तुरन्त डूप्रे और बौशियर नामक दो अङ्गरेज़ अफ़सरों को सुलतान हैदरअली से सुलह करने के लिए भेजा। इन दोनों अङ्गरेज़ों में डूप्रे आयन्दा के लिए मद्रास का गवरनर नियुक्त हो चुका था, और बौशियर उस समय के गवरनर का सगा भाई था।

हैदर ने बड़े आदर के साथ अङ्गरेज़ दूतों का स्वागत किया, और उनकी प्रार्थना के अनुसार सेण्ट टॉमस की पहाड़ी पर अपना खेमा लगवाया। सुलह की शर्तें लिखी जाने लगीं। हैदरअली की उस समय की स्थिति को वर्णन करते हुए अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक करनल मालेसन लिखता है—

"वास्तव में हैदर उस समय सारी स्थिति पर हावी था। मद्रास का देशी नगर और अङ्गरेज़ों के मकान सब उसकी दया पर थे। उसके आने से सब के ऊपर इतना आतङ्क छा गया था कि मद्रास का क़िला भी उसके हाथों में आ जाता। उसकी स्थिति इस समय ऐसी थी कि वह जो शर्तें चाहता, अङ्गरेज़ों से मन्ज़ूर करा सकता था और वास्तव में उसने ऐसा किया भी।"*

पहली सन्धि

१५ अप्रेल सन् १७६९ को अङ्गरेज़ों, सुलतान हैदरअली और अरकाट के नवाब मोहम्मदअली के दरमियान दो अलग अलग सन्धि-पत्र लिखे गए और प्रत्येक सन्धि-पत्र पर तीनों के दस्तख़त हुए।

अब तक की सन्धियाँ ईस्ट इण्डिया कम्पनी और भारतीय

* "Hyder, in fact, was master of the situation. The native town and the private houses of Madras were at his mercy. In the panic which his arrival had caused, the fort itself might have fallen. He was in a position to dictate his own terms, and virtually, he did dictate them."—*The Decisive Battles of India*, By Colonel Malleson, p. 230.

नरेशों के बीच हुआ करती थीं। हैदरअली ने कम्पनी के किसी प्रकार के भी राजनैतिक अस्तित्व को स्वीकार करने से इनकार किया। इसलिए इनमें पहला सन्धिपत्र इङ्गलिस्तान के बादशाह के नाम से, जिस प्रकार हैदर ने चाहा उस प्रकार लिखा गया। इस सन्धि में यह तय हुआ कि इङ्गलिस्तान के बादशाह तीसरे जॉर्ज और सीरा प्रान्त के सूबेदार हैदरअली ख़ाँ तथा इन दोनों की प्रजा के बीच सदा अमन और मित्रता क़ायम रहेगी, इत्यादि। हैदरअली का जो कुछ इलाक़ा युद्ध के शुरू में अङ्गरेज़ों ने ले लिया था और जिसे हैदरअली फिर से विजय कर चुका था, वह सब हैदरअली के पास रहा और अङ्गरेज़ों का जो कुछ इलाक़ा हाल में हैदरअली ने जीत लिया था वह उसने अङ्गरेज़ों को लौटा दिया। केवल कारूड़ का प्रान्त, जो अङ्गरेज़ों के दोस्त अरकाट के नवाब मोहम्मदअली के राज्य में शामिल था, अङ्गरेज़ों ने उससे लेकर सदा के लिए हैदरअली की नज़र कर दिया। युद्ध के ख़र्च और जुरमाने के तौर पर एक बहुत बड़ी रक़म अङ्गरेज़ों ने हैदरअली की भेंट की। और यह तय हुआ कि भविष्य में यदि कोई तीसरा हैदरअली पर हमला करेगा तो अङ्गरेज़ हैदरअली की मदद करेंगे, और यदि कोई अङ्गरेज़ों पर हमला करेगा तो हैदरअली उनकी मदद करेगा।

दूसरे सन्धि-पत्र में, जो हैदरअली और मोहम्मदअली के दरमियान था, यह तय हुआ कि मोहम्मदअली अरकाट का नवाब बना रहे; किन्तु आयन्दा से अरकाट का नवाब मैसूर का सामन्त समझा जावे, छै लाख रुपए सालाना बतौर ख़िराज मैसूर दरबार

को अदा किया करे, और पहले साल का ख़िराज पेशगी इसी समय अदा किया जावे।

दोनों सन्धियों के पालन की ज़िम्मेदारी अङ्गरेज़ों ने अपने ऊपर ली और इन सब बातों के अतिरिक्त हैदरअली के एक जहाज़ के बदले में, जो उन्होंने युद्ध के शुरू में धोखे से बम्बई में ले लिया था, अङ्गरेज़ों ने एक नया युद्ध का जहाज़ पचास तोपों सहित हैदर को भेंट करने का वादा किया।

इस युद्ध ने साबित कर दिया कि हैदर की वीरता, उसका युद्ध कौशल और उसकी उदारता तीनों ही ऊँचे दर्जे की थीं, और अङ्गरेज़ किसी तरह भी उसके मुक़ाबले में न ठहर सकते थे।

दक्षिणी भारत में अङ्गरेज़ों की अब काफ़ी दुर्दशा हो चुकी थी। एक फ़्रान्सीसी इतिहास-लेखक लिखता है कि इस विजय के अवसर पर हैदर ने अङ्गरेज़ों से कहकर मद्रास के सेएट जॉर्ज क़िले के सदर फाटक पर एक चित्र बनवाया, जिसमें हैदर एक शामियाने के नीचे तोपों के ढेर के ऊपर बैठा हुआ है, पीछे की ओर सेण्ट जॉर्ज का क़िला है जिसकी फ़सील पर गवरनर और उसकी कौन्सिल के सब अङ्गरेज़ मेम्बर दोज़ानू बैठे हुए हैदर की ओर अपने हाथ बढ़ा रहे हैं। अङ्गरेज़ दूत डूप्रे और बौशियर दोनों हैदर के सामने ज़मीन पर दोज़ानू बैठे हैं। डूप्रे के नाक की जगह हाथी की सी सूँड बनी हुई है, हैदर उसकी सूँड को पकड़े हुए है और उसमें से अशरफ़ियाँ हैदर के सामने खनाखन ज़मीन पर गिर रही हैं। दूसरी ओर पराजित अङ्गरेज़ सेनापति जनरल स्मिथ सन्धिपत्र

हाथ में लिए हुए अपने हाथ से अपनी तलवार के दो टुकड़े कर रहा है।

इस सन्धि का यहाँ तक असर हुआ कि इङ्गलिस्तान में उसकी ख़बर पहुँचते ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हिस्सों की दर एकदम गिर कर ४० फ़ी सदी रह गई। युद्ध के दिनों में ही जैसे जैसे हैदर और टीपू की विजयों की ख़बरें इङ्गलिस्तान पहुँचती जाती थीं, कम्पनी के हिस्सों की दर गिरती जाती थी। इस पर डाइरेक्टरों ने बार बार मद्रास के अधिकारियों पर ज़ोर दिया कि हैदर के साथ सुलह कर ली जावे। किन्तु अब सुलह हो जाने पर उन्हीं डाइरेक्टरों ने मद्रास के गवरनर को लिखा कि जिस तरीक़े से आपने सन्धि की है उससे—

"आपने हिन्दोस्तान के रहने वालों के लिए यह समझने की बुनियाद डाल दी है कि वे जब जी चाहे बेखटके कम्पनी की हतक कर सकते हैं।"

दोनों सन्धि-पत्रों पर कम्पनी की मोहरें लग चुकी थीं। तथापि इसके बाद से ही अङ्गरेज़ों ने सन्धि को तोड़ने के मौक़े ढूँढने शुरू कर दिए।

अङ्गरेज़ों का सन्धि तोड़ना

थोड़े दिनों बाद मराठों ने चौथी बार मैसूर पर हमला किया। हैदर ने सन्धि की शर्तों के अनुसार अङ्गरेज़ों से मदद चाही। ऐन मौक़े पर मद्रास कौन्सिल ने मदद देने से इनकार कर दिया। मजबूर होकर हैदर ने कुछ धन और अपना कुछ इलाक़ा मराठों

को देकर उनसे पीछा छुड़ाया। किन्तु अङ्गरेज़ों की नीयत का उसे पता चल गया।

इसके बाद हैदर ने कुर्ग के राज्य को, जो पहले मैसूर का बाज-गुज़ार रह चुका था और अब विद्रोही हो गया था, युद्ध द्वारा फिर से अपने अधीन किया।

हैदर को अपना जो कुछ इलाक़ा मराठों को देना पड़ गया था वह उसकी नज़रों में खटक रहा था। वह पूना दरबार की अवस्था की पूरी ख़बर रखता था। जब उसे पेशवा नारायणराव की हत्या और राघोबा और अङ्गरेज़ों की साज़िशों की ख़बर मिली तो उसने इस इलाक़े को मराठों से वापस लेने के लिए अपने बेटे टीपू को सेना सहित भेजा। टीपू ने वह सारा इलाक़ा फिर मराठों से विजय कर लिया। इसके बाद सन् १७७८ में छै वर्ष के लिए मराठों और हैदर में सन्धि हो गई।

अङ्गरेज़ों और हैदर के दरमियान जो सन्धि हुई थी उसका उल्लङ्घन हैदर पर मराठों के हमले के समय अङ्गरेज़ कर ही चुके थे। दूसरी सन्धि मोहम्मदअली और हैदर के दरमियान थी। उसके पालन की ज़िम्मेदारी भी अङ्गरेज़ों ने अपने ऊपर ली थी। किन्तु मोहम्मदअली का अङ्गरेज़ों के पञ्जे से निकल कर मैसूर का सामन्त हो जाना अङ्गरेज़ों के लिए अत्यन्त अहितकर था। इसलिए सन्धि के बाद उन्होंने अपने वादे को पूरा करने के बजाय नवाब मोहम्मदअली को हैदरअली के खिलाफ़ भड़काए रक्खा। मैसूर की अन्य सामन्त रियासतों को भी उन्होंने अब हैदरअली के

विरुद्ध भड़काना शुरू किया। इनमें एक छोटी सी रियासत चित्तलद्रुग की थी। अङ्गरेज़ों ने वहाँ के राजा को भड़काकर उससे हैदर के विरुद्ध विद्रोह करवा दिया। हैदर ने चित्तलद्रुग पर हमला करके राजा को फिर से अपने अधीन कर लिया। इस लड़ाई में हैदर ने अङ्गरेज़ों की बेवफ़ाई का पूरा परिचय पाकर यह खुले एलान कर दिया कि मैं अङ्गरेज़ी इलाक़े पर हमला करने वाला हूँ। उसने फिर एक बार दक्षिण के अन्दर मुग़ल दरबार के मुख्य नायब निज़ाम से मदद की प्रार्थना की। निज़ाम ने फिर मदद का वादा किया। और फिर दूसरी बार ऐन मौक़े पर हैदर के साथ दग़ा की।

हैदर और नाना फ़ड़नवीस में सन्धि

अब वह समय आया जब कि नाना फ़ड़नवीस ने, अङ्गरेज़ों की चालों और उनसे देश की हानि को अच्छी तरह समझ कर, सन् १७८० में अपना एक दूत गणेशराव हैदर के पास मेल करने के लिए भेजा। हैदर को भी अङ्गरेज़ों के चरित्र का काफ़ी अनुभव हो चुका था। हैदर तथा नाना फ़ड़नवीस दोनों में विशेष सन्धि हो गई। 'चौथ' की उस रक़म को, जो मैसूर दरबार से पेशवा दरबार को मिला करती थी और जिस पर मराठा तथा हैदर में अनेक बार झगड़े हो चुके थे, आयन्दा के लिए नाना ने बहुत कम कर दिया। हैदर का जो इलाक़ा पहले मराठों ने ले लिया था और हाल में टीपू ने मराठों से विजय किया था उसे पेशवा दरबार ने हैदर ही का इलाक़ा स्वीकार कर लिया, और हैदर ने मराठों से वादा

किया कि अङ्गरेज़ों को हिन्दोस्तान से बाहर निकालने में मैं आप लोगों की पूरी मदद करूँगा।

अङ्गरेज़ों को जब इस सन्धि का पता चला और मालूम हुआ कि हैदर अङ्गरेज़ी इलाक़े पर फिर से हमला करने की तैयारी कर रहा है तो उन्होंने मद्रास से एक दूसरे के बाद दो दूत दोबारा सन्धि करने के लिए हैदर के दरबार में भेजे। किन्तु हैदर अङ्गरेज़ों को पूरी तरह समझ चुका था। उसने स्वीकार न किया। अङ्गरेज़ दूत ग्रे को उसने अङ्गरेज़ों की दग़ाबाज़ी पर लानत मलामत की और अपने यहाँ उसके साथ वह सलूक किया जो एक राजदूत के साथ नहीं, बल्कि किसी जासूस के साथ किया जाता है।

दूसरी बार अङ्गरेज़ों और हैदरअली में युद्ध

नवाब मोहम्मदअली अङ्गरेज़ों के ख़ास मददगारों में से था। अङ्गरेज़ों के बहकाने से मोहम्मदअली ने हैदरअली के साथ सन्धि के पालन करने से इनकार कर दिया। अङ्गरेज़ों ही के हस्तक्षेप के कारण करनाटक की प्रजा अत्यन्त 'दुखित और असन्तुष्ट थी। हैदरअली अपनी सेना सहित जुलाई सन् १७८० में सब से पहले करनाटक की ओर बढ़ा। करनाटक के क़िलों की रक्षा के लिए जगह जगह कम्पनी की सेनाएँ नियुक्त थीं। यह सब सेनाएँ करनल कॉस्बी के अधीन थीं। हैदरअली ने पहले की तरह अपनी सेना के कई हिस्से किए; और एक हिस्सा अपने अधीन, दूसरा अपने बड़े बेटे टीपू के, तीसरा टीपू के छोटे भाई करीम साहब के और शेष

टीपू सुलतान

[From an old steel engraving, the Modern Review for November 1913.]

छोटे बड़े दस्ते अन्य योग्य हिन्दू तथा मुसलमान सेनापतियों के अधीन करनाटक के विविध क़िलों को विजय करने के लिए विविध दिशाओं में रवाना कर दिए। करनाटक की दुखित प्रजा ने बड़े हर्ष के साथ हर जगह हैदर का स्वागत किया। करनल कॉस्बी और नवाब मोहम्मदअली की सेनाओं से जगह जगह हैदर की लड़ाइयाँ हुईं, जिनमें अङ्गरेज़ों को हार पर हार खानी पड़ी। नवाब मोहम्मदअली और उसके अङ्गरेज़ साथी हैदर की बढ़ती हुई बाढ़ को न रोक सके। क़िले पर क़िला और इलाक़े पर इलाक़ा हैदर के हाथों में आता चला गया। इनमें एक मुख्य वर्णन करने योग्य महमूद बन्दर का क़िला था जिसे अब पोर्टो नोवो कहते हैं। महमूद बन्दर उन दिनों भारत की विदेशी तिजारत का एक ज़बरदस्त केन्द्र था। दूर दूर के व्यापारी वहाँ पर जमा होते थे और करोड़ों रुपए का माल महमूद बन्दर की मण्डियों में भरा रहता था। अङ्गरेज़ी सेना महमूद बन्दर की रक्षा के लिए मौजूद थी। करीम साहब ने सेना सहित महमूद बन्दर पर हमला करके उसे अङ्गरेज़ी सेना से विजय किया, क़िले तथा नगर पर क़ब्ज़ा कर लिया, और वहाँ से करोड़ों का माल लाकर अपने बाप के सामने पेश किया। इसी तरह की अनेक विजय टीपू तथा अन्य सेनापतियों ने कीं। यहाँ तक कि स्वयं हैदरअली की सेना बढ़ते बढ़ते करनाटक की राजधानी अरकाट के निकट जा पहुँची, और नवाब मोहम्मदअली को भाग कर मद्रास में शरण लेनी पड़ी।

१० अगस्त सन् १७८० को हैदर के कुछ सवार बढ़ते बढ़ते

मद्रास के निकट फिर सेण्ट टॉमस की पहाड़ी पर जा पहुँचे। यद्यपि हैदर की मुख्य सेना अभी तक करनाटक की राजधानी के आसपास थी, तथापि मद्रास फिर ख़तरे में था। दो विशाल सेनाएँ हैदर को परास्त करने के लिए तैयार की गईं। इनमें पहली जनरल मनरो के अधीन मद्रास से रवाना हुई, और दूसरी करनल बेली के अधीन गुण्टूर से राजधानी अरकाट की ओर चली। इनके अतिरिक्त तीन नई सेनाएँ गुण्टूर, पुद्दुचरी और त्रिचन्नापल्ली में तैयार की गईं।

हैदर ने सबसे पहले टीपू को करनल बेली के मुक़ाबले के लिए गुण्टूर की ओर रवाना किया। मार्ग में १० सितम्बर सन् १७८० को पूरिमपाक नामक स्थान पर टीपू और करनल बेली की सेनाओं में संग्राम हुआ। जनरल मनरो ने अपना एक दस्ता बेली की सहायता के लिए भेजा। उधर हैदर भी रातोंरात चलकर टीपू की सहायता के लिए आ पहुँचा। मैदान ख़ूब गरम हुआ। टीपू की सेना ने सामने और पीछे दोनों ओर से अङ्गरेज़ी सेना पर हमला करके और उनके बीच में घुसकर अङ्गरेज़ी सेना का संहार शुरू किया। यहाँ तक कि अङ्गरेज़ी सेना का तोपख़ाना बेकार हो गया। अन्त में उनके तोपख़ाने में आग लग गई और अङ्गरेज़ी सेना को बुरी तरह हार खानी पड़ी। लिखा है कि इस लड़ाई में कम्पनी के सहस्रों भारतीय सिपाहियों के अतिरिक्त सात सौ अङ्गरेज़ मारे गए और दो हज़ार को, जिनमें स्वयं करनल बेली और सर डेविड बेयर्ड जैसे अफ़सर शामिल थे, हैदर ने गिरफ़्तार कर लिया।

अङ्गरेजों के लिए पूरिमपाक की पराजय अत्यन्त अशुभसूचक और लज्जाजनक थी। हैदर ने अपनी राजधानी श्रीरङ्गपट्टन में दरिया-दौलत नामक बाग़ की दीवारों पर इस लड़ाई का एक विशाल सुन्दर चित्र खिंचवाया जो अभी तक मौजूद है।

जनरल मनरो इस समय अपनी सेना सहित गञ्जी नामक स्थान में ठहरा हुआ था। विजयी हैदर ने गुण्टूर की अङ्गरेज़ी सेना को ख़त्म करके गञ्जी की ओर रुख़ किया। हैदर अभी गञ्जी से कुछ मील दूर ही था कि करनल बेली की पराजय का हाल सुनकर और हैदर के सवारों को अपनी ओर बढ़ते हुए देख कर जनरल मनरो का साहस टूट गया। उसे हैदर के मुक़ाबले की हिम्मत न हो सकी। उसने अपनी तोपें और तमाम भारी सामान गञ्जी के एक बड़े भारी तालाब में फेंक दिया, और स्वयं अपनी सेना सहित पीछे हटकर मद्रास में आश्रय लिया। हैदर ने पहले गञ्जी में पड़ाव किया, आसपास के कुछ क़िलों को फ़तह किया और फिर उस तमाम इलाक़े के शासन और रक्षा का उचित प्रबन्ध कर पीछे लौटकर राजधानी अरकाट का मोहासरा शुरू कर दिया।

तीन महीने तक अरकाट का मोहासरा जारी रहा। इस मोहासरे में दोनों ओर काफ़ी जानें गईं। हैदर का दामाद सय्यद हाफ़िज़अली ख़ाँ भी अरकाट ही के मैदान में काम आया। अन्त में हैदरअली की सेना ने अरकाट के क़िले और नगर दोनों पर क़ब्ज़ा कर लिया।

विजय के सवेरे हैदरअली ने अरकाट के बाज़ारों और गलियों में यह एलान करवा दिया कि नगर-निवासियों के जान माल पर कोई किसी तरह का हमला न करे, कोई किसी ग़रीब को किसी तरह का कष्ट न दे और मैसूर की सेना का कोई सिपाही न किसी के धन को हाथ लगावे और न किसी स्त्री की ओर आँख उठाकर देखे।* अरकाट के बचे हुए अङ्गरेज़ों को उसने अपनी गारद के साथ हिफ़ाज़त से मद्रास भिजवा दिया। अपने एक आदमी मीर सादिक़ को शहर और उसके आसपास के इलाक़े का सूबेदार नियुक्त कर दिया। शहर के अधिकांश कर्मचारियों को अपने अपने ओहदों पर बहाल रक्खा और क़िले की मरम्मत तथा रक्षा और नगर के शासन का उचित प्रबन्ध कर दिया।

हैदर की विजयों की एक विशेषता यह थी कि वह जिन इलाक़ों को फ़तह करता था वहाँ के क़िलों की मरम्मत, हिफ़ाज़त और शासन का प्रबन्ध करके आगे बढ़ता था। हैदर हर जगह इस बात का विशेष प्रबन्ध रखता था कि उसके सिपाही प्रजा के ऊपर किसी तरह का अत्याचार न करें, और बहुधा विजय के बाद ग़रीबों, साधुओं और धार्मिक संस्थाओं में धन वितरण किया करता था। यही व्यवहार हैदर के अन्य सेनापतियों का होता था।

जिन असंख्य स्थानों और क़िलों को, अरकाट की विजय से पहले और उसके बाद, हैदर की सेना ने अङ्गरेज़ी सेना से एक दूसरे के बाद विजय किया उन सब का वर्णन इस स्थान पर कर सकना

* Colonel W. Miles' *History of Hyder*, p. 395.

असम्भव है। हैदर के सेनापति मीर मुइउद्दीन ने दस दिन के मोहासरे के बाद चितोर के क़िले को फ़तह किया और फिर चन्द्रगिरि के क़िले को जीत कर नवाब मोहम्मदअली के भाई अब्दुलवहाब ख़ाँ को क़ैद किया। टीपू ने एक महीने के अन्दर मही-मण्डलगढ़, कैलाशगढ़, सातगढ़ इत्यादि अनेक मज़बूत क़िले फ़तह किए। टीपू प्रायः हर जगह अपने बाप के समान क़िले की पराजित सेना से हथियार रखवा कर उन्हें आज़ाद छोड़ देता था और प्रजा के जान माल और उनकी स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर देता था।* आम्बूरगढ़ का क़िला टीपू ने वहाँ के अङ्गरेज क़िलेदार और उसकी सेना से १५ दिन के मोहासरे के बाद विजय किया। इसी प्रकार हैदर के दूसरे सेनापतियों ने अन्य अनेक क़िलों और इलाक़ों को विजय किया।

गवरनर-जनरल वारन हेस्टिंग्स करनल बेली की सेना के सर्व-नाश, जनरल मनरो की भगदड़ तथा हैदर की अपूर्व विजयों के समाचार सुनकर घबरा गया। बङ्गाल में उस समय भयङ्कर दुष्काल पड़ा हुआ था। लिखा है कि प्लासी से उस समय तक अर्थात् अङ्गरेजी राज्य के शुरू के बीस वर्ष के अन्दर बङ्गाल की आबादी घटते घटते ९० लाख से ६० लाख रह गई थी।† तथापि वारन हेस्टिंग्स ने इन समाचारों को सुनकर दुष्काल-पीड़ित बङ्गाल के ख़ज़ाने से १५ लाख रुपए नक़द और सर आयर कूट के अधीन

* Ibid p. 409.
† *History of Hyder*. By M. M. D. L. T., p. 162.

एक बहुत बड़ी सेना मय तोपख़ाने के बङ्गाल से मद्रास के लिए रवाना की। यह सेना ५ नवम्बर सन् १७८१ को मद्रास पहुँची। मद्रास में नवाब मोहम्मदअली ने सर आयर कूट के सामने अपनी तबाही का रोना रोया। मोहम्मदअली के पास अभी तक धन मौजूद था, नई सेना के ख़र्च के लिए कूट ने दो लाख पैगोडा अर्थात् लगभग सात लाख रुपए मोहम्मदअली से और वसूल किए। तीन महीने तक सर आयर कूट मद्रास में रहकर हैदरअली से लड़ने की केवल तैयारी करता रहा। उसके बाद वह अपनी विशाल सेना सहित हैदरअली के मुक़ाबले के लिए बढ़ा। हैदरअली उस समय मद्रास के नीचे के बन्दरगाहों और क़िलों को फ़तह कर रहा था। दो बार जनरल कूट अपनी विशाल सेना सहित हैदरअली के मुक़ाबले के लिए बढ़ा। दोनों बार कई कई जगह कूट तथा हैदरअली की सेनाओं में संग्राम हुए; किन्तु दोनों बार जनरल कूट को बेहद नुक़सान उठाकर मद्रास लौट आना पड़ा। इस बीच और अधिक सेना बङ्गाल से कूट की मदद के लिए भेजी गई। अन्त में तीसरी बार जनरल कूट हैदरअली के मुक़ाबले के लिए बढ़ा। इस बार आरनी के प्रसिद्ध संग्राम में हार खाकर और लाचार होकर सितम्बर सन् १७८२ में सर आयर कूट को अपनी जान बचाकर बङ्गाल लौट जाना पड़ा। इस तमाम समय में हैदरअली की सेना क़िलों पर क़िले और इलाक़ों पर इलाक़े विजय करती बढ़ी चलीं आ रही थी, और कहीं पर भी अङ्गरेज़ी सेना हैदरअली की उमड़ती हुई बाढ़ को न रोक सकी।

भारत में अङ्गरेज़ी राज्य

इन तमाम संग्रामों में दो छोटी सी, किन्तु मनोरञ्जक घटनाएँ वर्णन करने योग्य हैं।

पहली घटना तरकाटपल्ली की है। तरकाटपल्ली एक छोटा सा क़िला था, जिस पर हैदरअली की सेना ने क़ब्ज़ा कर लिया था। त्रिचनपल्ली से अङ्गरेज़ों ने अपनी सेना का एक दस्ता इस क़िले पर क़ब्ज़ा करने के लिए भेजा। अकस्मात् उसी दिन गत को दूसरी ओर से एक दूसरा अङ्गरेज़ी दस्ता उसी क़िले पर क़ब्ज़ा करने के लिए रवाना हुआ। ये दोनों अङ्गरेज़ी दस्ते दो ओर से क़िले की फ़सील पर चढ़ने लगे। दोनों को एक दूसरे का पता न था। क़िला टीपू के संरक्षण में था, किन्तु टीपू उस समय अपनी सेना सहित क़िले से कुछ दूर था। क़िले के अन्दर बहुत थोड़े से हिन्दोस्तानी थे। इस आकस्मिक आक्रमण का पता लगते ही भीतर के लोग सम्भवतः टीपू के इन्तज़ार में क़िले के सुदूर भीतर के हिस्से में चले गए। रात की अँधियारी में एक ओर के अङ्गरेज़ी दस्ते ने फ़सील के ऊपर चढ़ कर गोलियाँ चलाईं। दूसरी ओर के अङ्गरेज़ी दस्ते ने यह समझा कि यह गोलियाँ क़िलेवाले चला रहे हैं। उन्होंने जवाब में आवाज़ के निशाने पर गोलियों की बौछार शुरू की। दस मिनट से ऊपर तक दोनों ओर से गोलाबारी होती रही। एकाएक जब एक ओर के किसी अङ्गरेज़ की आवाज़ दूसरी ओर के किसी अङ्गरेज़ के कानों तक पहुँची तो दोनों को मालूम हुआ कि वे आपस ही में गोलियाँ चला रहे थे। उस समय तक कम्पनी के लगभग सात सौ सिपाही अङ्गरेज़ी गोलियों के शिकार हो चुके

थे। अगले दिन सुबह को जब टीपू ने तरकाटपल्ली पहुँचकर इस घटना का हाल सुना तो उसे बड़ी हँसी आई।

दूसरी घटना मनियारगुडी की है। मनियारगुडी के क़िले की संरक्षक सेना एक दिन रात को रसद आदिक जमा करने के लिए आस पास के इलाक़े में गई हुई थी। अङ्गरेज़ी सेना ने मौक़ा पाकर उसी रात को अचानक क़िले पर हमला किया। केवल नायक, बीस सिपाही और कुछ स्त्रियाँ क़िले में रह गई थीं। अङ्गरेज़ी सेना के हमले की ख़बर पाकर नायक ने क़िले का फाटक बन्द करवा दिया, बड़े बड़े पत्थर अँधेरे में क़िले की फ़सील पर रखवा दिए और स्त्रियों ने बहुत सा गोबर और पानी घोलकर बड़े बड़े बरतनों में खौलाना शुरू किया। जिस समय अङ्गरेज़ी सिपाही दीवारों पर चढ़ने लगे, स्त्रियों ने चिल्लाकर पत्थर नीचे की ओर लुढ़का दिए और खौलता हुआ गोबर का पानी अङ्गरेज़ी सेना के सर पर डालना शुरू किया। भीतर के बीस सिपाहियों ने भी अपनी बन्दूक़ों का उचित उपयोग किया। अङ्गरेज़ सिपाहियों को एक बार घबरा कर नीचे उतर आना पड़ा। इतने में क़िले की संरक्षक सेना जो बाहर गई हुई थी, आवाज़ सुन कर क़िले की ओर लपकी। अङ्गरेज़ी सेना के बचे हुए आदमियों को जान बचाकर भाग जाना पड़ा।

हैदरअली की मृत्यु

एक बार साफ़ मालूम होता था कि हैदरअली दक्षिण भारत से अङ्गरेज़ों को निकाल कर बाहर कर देगा। नाना फ़ड़नवीस पूना

बैठा हुआ यह सब सुसमाचार सुन रहा था और इन्हीं आशाओं के आधार पर सालबाई के सन्धि-पत्र पर दस्तख़त करने से इनकार कर रहा था। जिस समय गायकवाड़, सींधिया और भोंसले तीन तीन ज़बरदस्त मराठा नरेश मराठा मण्डल तथा अपने देश दोनों के साथ विश्वासघात कर चुके थे, और निज़ामुलमुल्क भी अङ्गरेज़ों की चालों में फँस चुका था, उस समय इन विदेशियों के विरुद्ध नाना फ़ड़नवीस की समस्त आशाओं का आधार केवल वीर हैदरअली था। यदि हैदरअली एक बार मद्रास प्रान्त से अङ्गरेज़ों को निकाल सकता तो निस्सन्देह नाना फ़ड़नवीस मराठा मण्डल को मज़बूत करके उत्तर में अङ्गरेज़ों के साथ फिर से युद्ध शुरू कर देता। उत्तरी भारत में अङ्गरेज़ अपने अनेक दुश्मन पैदा कर चुके थे और इस प्रकार की स्थिति में नाना को सफलता प्राप्त होने की भी बहुत बड़ी सम्भावना थी। किन्तु प्रतीत होता है कि भारतवासियों के अनेक पापों के प्रायश्चित्त और सच्ची भारतीय आत्मा के विकास के लिए अभी इस देश का विदेशी शासन के अग्नि-स्नान में से निकलना आवश्यक था। ठीक उस समय जब कि वीर हैदरअली इलाक़ों पर इलाक़े और गढ़ों पर गढ़ विजय करता हुआ बढ़ा चला जा रहा था, जब कि भारत के अन्दर स्वतन्त्रता तथा परतन्त्रता के इस द्वन्द को एशिया तथा यूरोप की समस्त जागरूक शक्तियाँ ध्यान से देख रही थीं, जब कि हैदरअली का नाम सुनकर भारत के अङ्गरेज़ चौंक पड़ते थे और इङ्गलिस्तान में कम्पनी के हिस्सों की दर धड़ाधड़ गिर रही थी, अचानक छै दिसम्बर सन्

१७८२ की रात को अरकाट के क़िले में हैदरअली की मृत्यु होगई। हैदरअली की मृत्यु ने नाना फ़ड़नवीस की अशाओं को चूर चूर कर दिया और लाचार होकर उसने सालबाई की सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिए। कम्पनी के लिए हैदरअली की मृत्यु वास्तव में एक बहुत बड़ी बरकत साबित हुई।

आरनी की विजय के बाद हैदरअली की कमर में एक फोड़ा निकला, जिसके कारण उसे अरकाट लौट आना पड़ा। यह फोड़ा ही हैदरअली की मौत का पैग़ाम साबित हुआ। जब हैदरअली को अपने रोग के असाध्य होने का पता लगा, उसने अपने तमाम मन्त्रियों और मुख्य सरदारों को बुलाकर राज्य के कार्य के विषय में अन्तिम आदेश दिए। एक सेना पाँच हज़ार सवारों की उसने मद्रास की ओर रवाना की। अपनी विशाल सेना के प्रत्येक सिपाही और मुलाज़िम को एक एक महीने की तनख़ाह बतौर इनाम के दिलवाई, और टीपू को, जो उस समय एक दूसरे मैदान में था, बुलवा भेजा।

हैदरअली की आयु उस समय साठ वर्ष से कुछ ऊपर थी। डर था कि हैदरअली की मृत्यु के समाचार से उसकी विजयी सेना का उत्साह न टूट जावे। हैदरअली के दोनों मुख्य मन्त्री हिन्दू थे, जिनके नाम पूर्निया और कृष्णराव थे। इन दोनों वफ़ादार मन्त्रियों ने हैदरअली की मृत्यु को बड़ी होशियारी के साथ उस समय तक शत्रु और अपनी सेना दोनों से छिपाए रक्खा जिस समय तक कि हैदरअली के बड़े बेटे फ़तहअली टीपू ने अरकाट में पहुँचकर

अपने बाप की जगह न ले ली। टीपू के आने पर सुलतान हैदरअली का शव मैसूर की राजधानी श्रीरङ्गपट्टन भेजा गया, जहाँ पर बड़े समारोह के साथ उसे लाल बाग़ में दफ़न किया गया, और टीपू ने पिता की क़ब्र के ऊपर एक सुन्दर और आलीशान समाधि बनवाई।

युद्ध का अन्त

टीपू अपने बाप के समान वीर, किन्तु अभी नातजरुबेकार था। मैसूर के अन्दर अपनी नई सत्ता को मज़बूत करने की ओर भी उसे काफ़ी ध्यान देना पड़ा। फिर भी उसने पहले बड़ी सफलता के साथ युद्ध जारी रक्खा और अङ्गरेज़ी सेना को शिकस्त पर शिकस्त दी। यहाँ तक कि अङ्गरेज़ों को चारों ओर "निर्बलता, निरुत्साह और नैराश्य"* के सिवा कुछ दिखाई न देता था। अन्त में सन् १७८३ में अङ्गरेज़ों ने बड़ी नम्रता के साथ टीपू से सुलह की प्रार्थना की। टीपू उनकी बातों में आगया। ११ मार्च सन् १७८४ को मङ्गलोर में टीपू सुलतान और अङ्गरेज़ कम्पनी के बीच सन्धि होगई। अङ्गरेज़ों ने वादा किया कि हम फिर कभी मैसूर के मामलों में दख़ल न देंगे, टीपू और उसके उत्तराधिकारियों के साथ सदा मित्रता का व्यवहार रक्खेंगे, और उनके शत्रुओं के विरुद्ध सदा उन्हें सहायता देने के लिए तैयार रहेंगे। इस वादे पर वीर, उदार, किन्तु नातजरुबेकार टीपू ने अङ्गरेज़ों से जीता हुआ तमाम इलाक़ा उन्हें लौटा दिया। टीपू ने निस्सन्देह एशियाई मर्यादा के अनुसार

* *"Debility, dejection and despair."*— Mill vol. iv, p. 222.

अपनी शाहाना आन क़ायम रक्खी और अङ्गरेज़ों को काफ़ी नीचा दिखाया, किन्तु जो बात हैदर और नाना चाहते थे वह पूरी न होसकी।

हैदरअली का चरित्र

हैदरअली एक ग़रीब घर में पैदा हुआ था और एक मामूली सिपाही से बढ़ते बढ़ते केवल अपनी वीरता और योग्यता के बल एक विशाल राज्य का स्वामी बन गया। हैदरअली 'सुलतान हैदरअली शाह' कहलाता था। दिल्ली दरबार के सूबेदारों में उसकी गिनती थी। मैसूर का वह 'दैव' था। और हम ऊपर लिख चुके हैं कि मैसूर राज्य के अन्दर 'दैव' का पद ठीक वैसा ही था जैसा मराठा साम्राज्य के अन्दर पेशवा का। 'दैव' की गद्दी अब हैदरअली के कुल में पैतृक हो गई थी। अपनी वीरता द्वारा उसने मैसूर राज्य को बहुत अधिक बढ़ा लिया था। मरते समय, उस तमाम इलाक़े को छोड़कर, जो उसने हाल के युद्ध में अपने शत्रुओं से विजय किया था, उसके शेष राज्य का क्षेत्रफल अस्सी हज़ार वर्गमील था, जिसकी सालाना बचत शासन का तमाम ख़र्च निकाल कर तीन करोड़ रुपए से ऊपर थी। उसकी कुल स्थायी सेना तीन लाख चौबीस हज़ार थी, जिनमें १९,०००सवार, १०,००० तोपख़ाने के सिपाही, १,१५,००० पैदल और १,८०,००० इस तरह की सेना थी जो दूसरे सरदारों के अधीन हर समय तैयार रहती थी और आवश्यकता पड़नेपर बुला ली जाती थी। उसके ख़ज़ाने के जवाहरात और नक़दी का अन्दाज़ा अस्सी करोड़ रुपए से ऊपर का था।

उसकी पशुशालाओं में ७०० हाथी, ६,०००ऊँट, ११,००० घोड़े, ४,००,००० गाय और बैल, १,००,००० भैंस, और ६०,००० भेड़ें थीं। उसके शस्त्रागार में ६,००,००० बन्दूक़, २,००,००० तलवार और २२,००० तोपें थीं।

हैदरअली अपने समय का अकेला भारतीय नरेश था जिसने अपने समुद्र तट की रक्षा के लिए एक जहाज़ी बेड़ा, जिसके प्रत्येक जहाज़ पर तोपें लगी हुई थीं, रख रक्खा था। उसकी जलसेना अपने समय की एक ज़बरदस्त जलसेना थी। उसके जलसेनापति अली-रज़ा ने मलद्वीप नामक लगभग बारह हज़ार छोटे बड़े टापुओं को विजय करके उन्हें हैदरअली के राज्य में मिला लिया था।

हैदरअली लिखना पढ़ना बिलकुल न जानता था। एक मुसलमान इतिहास-लेखक लिखता है कि उसने फ़ारसी अक्षरों में अपना नाम लिखने का प्रयत्न किया। बड़े परिश्रम से वह अपने नाम का केवल पहला अक्षर 'हे' सीख पाया। किन्तु इस 'हे' को भी वह सदा उलटा और ग़लत लिखा करता था। यही उसके दस्तख़त थे। तथापि समस्त भारतीय तथा विदेशी इतिहास-लेखक मुक्त-कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि उसकी बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, नीतिज्ञता, और शासन-प्रबन्ध में उसकी योग्यता सभी बड़े ऊँचे दरजे की थीं, और वीरता तथा युद्ध-कौशल में वह अपने समय में सर्वथा अद्वितीय था।

धार्मिक पक्षपात या तअस्सुब का उसमें निशान तक न था। अपने राज्य की ऊँची से ऊँची पदवियाँ उसने हिन्दुओं को दे

रक्खी थीं। उसके मुख्यतम मन्त्री हिन्दू थे। मैसूर के जिन विद्रोही सामन्तों को उसने परास्त किया उनकी गद्दियाँ या तो उन्हीं को वापस कर दीं और या दूसरे हिन्दू नरेशों को उनकी जगह बैठा दिया। अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा के साथ वह एक समान उदार व्यवहार रखता था। उसने अनेक हिन्दू मन्दिर बनवाए और असंख्य मन्दिरों को जागीरें अता कीं। हाल में उस समय के इतिहास की खोज द्वारा अङ्गरेज़ लेखक मि० गैलेटिक आई० सी० एस० ने दिखाया है कि हैदरअली ने अपनी सल्तनत भर में गोरक्षा का उसी प्रकार सुन्दर प्रबन्ध कर रक्खा था जिस प्रकार बाबर तथा उसके उत्तराधिकारी मुग़ल सम्राटों ने। अर्थात् हैदर-अली के राज्य में गोबध का कड़ा निषेध था और यदि राज्य भर में कभी कोई मनुष्य गोबध का अपराधी होता था तो उसके हाथ काट लिए जाते थे।

जगद्गुरु शङ्कराचार्य के चार मुख्य मठों में शृङ्गेरी का मठ मैसूर के राज्य में था। शृङ्गेरी मठ के स्वामी उस समय के जग-द्गुरु शङ्कराचार्य के साथ हैदरअली का विशेष प्रेम था। दोनों में खूब पत्र-व्यवहार होता था। वर्त्तमान मैसूर राज्य के पुरातत्त्व विभाग ने कृपा कर हमारे पास कनाड़ी भाषा में जगद्गुरु शङ्करा-चार्य के नाम हैदरअली के एक मूल पत्र का फ़ोटो भेजा है जिसे पढ़ने से मालूम होता है कि हैदरअली जगद्गुरु का कितना अधिक आदर करता था और किस प्रकार राज्य के गम्भीर मामलों में जगद्गुरु की सलाह लेकर काम करता था। इसी पत्र के साथ

हैदरअली ने "एक हाथी, पाँच घोड़े, एक पालकी, पाँच ऊँट×××, पाँच सोने के ताक़्ते (सूर्य चन्द्राङ्कित पताकाएँ, जो जगद्गुरु के साथ चलती हैं)×××एक जोड़ी शाल, साढ़े दस हज़ार रुपए नक़द×××इत्यादि" जगद्गुरु की नज़र के तौर पर और "एक ठोस सोने का फ़तील सोज़ (शमई) शृङ्गेरी मठ की देवपूजा" के लिए जगद्गुरु की सेवा में भेजा।

हैदरअली अपने दरबार के अन्दर हिन्दू त्योहारों को बड़े समारोह के साथ मनाया करता था। विशेषकर दशहरे के अवसर पर उसके दरबार में दस दिन तक लगातार जश्न रहता था; रोज़ शाम को आतिशबाज़ी छुटती थी; साँडों, बारहसींगों, हाथियों और शेरों की लड़ाइयाँ होती थीं; कुश्तियाँ होती थीं; दावतें होती थीं; इनाम और इकराम दिए जाते थे; और ग़रीबों को भोजन वस्त्र और धन बाँटा जाता था।

मज़हब के नाम पर किसी तरह के भी लड़ाई झगड़ों को वह अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखता था। लिखा है कि एक बार उसके राज्य में कहीं पर शिया और सुन्नियों में झगड़ा हो गया। ज़बान से बढ़ते बढ़ते मामला ख़ञ्जर और भालों तक पहुँच गया। हैदर के कानों तक ख़बर पहुँची। उसने दोनों पक्ष के लोगों को अपने सामने बुलवाया और उनसे पूछा—"यह क्या बेवकूफ़ी का झगड़ा है, और तुम लोग कुत्तों की तरह एक दूसरे पर क्यों भौंकते हो?" दोनों ने अपनी अपनी बात कह सुनाई। मालूम हुआ कि झगड़ा केवल इस बात पर है कि हज़रत मोहम्मद के कुछ उत्तरा-

धिकारियों के विषय में शियों की एक राय है और सुन्नियों की दूसरी। हैदरअली ने उनसे पूछा—"जिन व्यक्तियों के बारे में तुम्हारा झगड़ा है, क्या वे ज़िन्दा हैं ?" जवाब मिला, "नहीं।" इस पर हैदरअली ने उनसे कहा—"जो लोग मर चुके, उनकी बाबत अब झगड़ा करना हिमाक़त है," और दोनों को आगाह कर दिया कि—"अगर तुम लोग फिर कभी अपना और सरकार का समय इन बेतुके और बदमाशी के झगड़ों में नष्ट करोगे तो यक़ीन रक्खो, तुम्हारे सर कुचल दिए जावेंगे।"

हैदरअली का इन्साफ़ उस समय दूर दूर तक विख्यात था। उसके जीवन चरित्र का एक फ़ान्सीसी रचयिता लिखता है कि उसकी प्रजा में किसी भी निर्धन से निर्धन पुरुष वा स्त्री को अधिकार था कि उसके सामने आकर अपनी दाद फ़रियाद पेश करे। पहरेदारों को हुकुम था कि किसी फ़रियादी को किसी समय भी हुज़ूर में आने से न रोका जावे। वह बड़े ग़ौर से सब की फ़रियाद सुनता था और सब का इन्साफ़ करता था। लिखा है कि एक बार सन् १७६७ ईसवी में जब कि हैदरअली कोयम्बतुर में था, एक दिन शाम को वह हवाख़ोरी के लिए जा रहा था। मार्ग में एक बुढ़िया सड़क के एक ओर आकर लेट गई और "इन्साफ़! इन्साफ़!" चिल्लाने लगी। हैदरअली ने फ़ौरन् अपनी सवारी रोक दी, बुढ़िया को पास बुलाया और पूछा—"क्या मामला है ?" बुढ़िया ने जवाब दिया—"जहाँपनाह! मेरे केवल एक बेटी थी और आग़ामोहम्मद उसे भगा ले गया।" सुलतान ने जवाब दिया—"आग़ामोहम्मद को यहाँ से गए एक

महीने से ज्यादा हो गया, तुमने आज तक शिकायत क्यों नहीं की ?" जवाब मिला—"जहाँपनाह ! मैंने कई बार अर्जियाँ लिखकर हैदरशा के हाथों में दीं, किन्तु मुझे कोई जवाब नहीं मिला ।" हैदरशा हैदरअली का खास जमादार था जो उस समय हैदरअली के आगे आगे चल रहा था। आग़ामोहम्मद उससे पहले का ख़ास जमादार था और पच्चीस साल तक हैदरअली की ख़िदमत कर चुका था। आग़ामोहम्मद को हैदरअली ने पेन्शन और जागीर देकर एक महीना हुआ बिदा कर दिया था। हैदरशा ने अपनी सफ़ाई में आगे बढ़कर अर्ज किया—"जहाँपनाह ! यह बुढ़िया और उसकी बेटी दोनों बदचलन हैं।" हैदरअली फ़ौरन् महल की ओर लौट पड़ा और बुढ़िया को अपने साथ ले गया। महल पहुँचकर जब लोगों ने हैदरअली से यह प्रार्थना की कि इस बार हैदरशा को क्षमा कर दिया जाय तो हैदरअली ने उत्तर दिया—"मैं आप लोगों की प्रार्थना स्वीकार नहीं कर सकता। किसी बादशाह और उसकी प्रजा के बीच के पत्र-व्यवहार को रोकने से बढ़कर कोई गुनाह हो ही नहीं सकता। बलवानों का कर्त्तव्य है कि निर्बलों का इन्साफ़ करें। खुदा ने निर्बलों की रक्षा के लिए ही बादशाह को बनाया है और जो बादशाह अपनी प्रजा के ऊपर ज़ुल्म होने देता है और ज़ुल्म करने वाले को दण्ड नहीं देता वह इस योग्य है कि उसकी प्रजा का प्रेम और विश्वास उस पर से हट जावे और प्रजा उसके विरुद्ध विद्रोह करने लगे।"*

* *History of Hyder Shah* By M. M. D. L. T. p. 20.

हैदरअली ने सब के सामने अपने जमादार हैदरशा के दो सौ कोड़े लगवाए। साथ ही उसने एक सवार उस बुढ़िया के साथ आग़ामोहम्मद के रहने की जगह भेजा और हुकुम दिया कि यदि लड़की आग़ामोहम्मद के यहाँ मिल जाय तो उसे उसकी माँ के हवाले कर दिया जाय और आग़ामोहम्मद का सर काट कर मेरे सामने पेश किया जाय ; और यदि लड़की न मिले तो आग़ामोहम्मद को गिरफ़्तार करके मेरे सामने लाया जाय। लड़की आग़ामोहम्मद के यहाँ मौजूद थी। उसे उसकी माँ के हवाले कर दिया गया और आग़ामोहम्मद का सर काटकर हैदरअली के सामने पेश किया गया।

हैदरअली के इन्साफ़ के इसी तरह के और भी अनेक ज्वलन्त उदाहरण उसकी जीवनियों में मिलते हैं। मीर हुसेनअली ख़ाँ किरमानी लिखता है कि चोर, उचक्के अथवा डाकू का नाम तक हैदरअली के राज्य में कहीं सुनने में न आता था और यदि अकस्मात् कहीं पर चोरी हो जाती थी तो उस स्थान के पुलिस कर्मचारी को फ़ौरन् मौत की सज़ा दी जाती थी और दूसरा आदमी उसकी जगह नियुक्त कर दिया जाता था। हैदरअली के हज़ारों जासूस सल्तनत भर में घूमते रहते थे और उसे प्रजा के सुख-दुख की ख़बरें देते रहते थे। हैदरअली स्वयं प्रायः वेश बदले कम्बल ओढ़े रात को श्रीरङ्गपट्टन तथा अन्य नगरों की गलियों में घूमा करता था और ग़रीबों तथा यात्रियों की ख़बर रखता था।

हैदरअली की समस्त प्रजा उससे अत्यन्त ख़ुश थी। उसके राज्य भर में चारों ओर ख़ुशहाली थी। तिजारत, उद्योग-धन्धों

और कृषि को ख़ूब उत्तेजना दी जाती थी। वह स्वयं कारीगरों और सौदागरों की ख़ूब मदद करता था। लिखा है कि अकेले कोयम्बतुर के बाज़ार में बीस हज़ार रेशम के थान प्रति सप्ताह बिकने के लिए आते थे। यदि कोई सरकारी कर्मचारी प्रजा के ऊपर किसी तरह का अत्याचार करता था तो हैदरअली सदा उसे कड़ी से कड़ी सजा देता था। उसके राज्य भर में इस बात की सख़्त मनाही थी कि किसानों से उनकी नियत मालगुज़ारी के अतिरिक्त एक कौड़ी किसी बहाने न ली जावे।

हैदरअली की बुद्धि की तीक्ष्णता और उसकी स्मरण शक्ति सर्वथा अलौकिक थीं। नैपोलियन के समान वह एक साथ कई कई काम किया करता था। वह जिस वक़्त कोई मामूली तमाशा देखता रहता था उसी वक़्त कुछ लोगों से प्रश्न करता रहता था, जवाब देता रहता था, अख़बार सुनता था, चिट्ठियाँ सुनता था, चिट्ठियाँ लिखवाता था और साथ ही अपने मन्त्रियों के साथ गम्भीर से गम्भीर प्रश्नों पर बातचीत करता रहता था और उनका फ़ैसला करता रहता था। ये सब काम एक साथ चलते रहते थे। एक साथ वह तीस तीस और चालीस चालीस मुन्शियों से काम लेता रहता था।

रोज़ सुबह को जब वह एक चौकी पर बैठकर हाथ मुँह धोया करता था उसी समय उसके अनेक जासूस उसकी चौकी के चारों ओर खड़े हो जाते थे और पिछले चौबीस घण्टे का अपना अपना हाल सुनाते थे। ये सब जासूस एक साथ बोलते थे। हैदर मुँह

धोते धोते सब की बात सुनता था, केवल आवाज़ से उन्हें पहचानता था, और जिससे ज़रूरत समझता था बीच बीच में सवाल कर लेता था। मनुष्य के चरित्र को वह केवल एक बार शक्ल देखकर पहचान जाता था और रँगरूटों को केवल चेहरे से देखकर ही भरती कर लेता था। घोड़ों और जवाहरात की भी उसे ग़ज़ब की पहचान थी।

हैदरअली वीर था और वीरता की बड़ी क़द्र करता था। अपने सिपाहियों के साथ उसका व्यवहार अत्यन्त प्रेम, उदारता और बराबरी का रहता था। जिन्हें वह युद्ध में हरा देता था उनके साथ भी उसका व्यवहार सदा दया और उदारता का होता था। इतना बड़ा नरेश होने पर भी उसमें घमण्ड अथवा अभिमान का निशान तक न था। अपने राज्य को वह सदा 'ख़ुदादाद' कहा करता था। अपने दरबारों तक में वह साधारण सिपाहियों के साथ बराबरी का व्यवहार करता था। स्वयं एक साधारण सिपाही का सा जीवन व्यतीत करता था। भोजन जो सामने आता, खा लेता था। सफ़र में वह प्रायः भुने हुए चने, बादाम और ज्वार की सूखी रोटी या इनमें से जो सामने आ जावे खाकर रह जाता था। अपने तख़्त पर वह ज़्यादा से ज़्यादा साल में एक बार ईद के दिन चन्द घण्टे के लिए बैठता था और वह भी दूसरों की प्रार्थना पर।

हैदरअली का क़द मँझोला था। उसका रङ्ग साँवला था। किन्तु उसके शरीर की बनावट सुन्दर थी। वह मज़बूत और निहायत फुर्तीला था। वह घोड़े का बहुत अच्छा सवार था। पैदल

लम्बे सफ़र करने का भी उसे बेहद शौक़ था और आदत थी। हफ़्ते में दो बार वह अपने सर, डाढ़ी और मूँछों के बाल मुँडवा देता था। डाढ़ी और मूँछें वह इतनी साफ़ रखता था कि नकचुटनी से एक एक बाल निकलवा देता था। उसकी देखा देखी उसके अधिकतर दरबारी भी डाढ़ी न रखते थे और मूँछें यदि रखते थे तो इतनी कम कि जो दूर से दिखाई न देती थीं। हैदरअली को लाल कपड़ों का शौक़ था और अपने सर पर वह एक सौ हाथ लम्बी लाल पगड़ी बाँधता था।

शिकार का और विशेष कर शेर के शिकार का उसको बड़ा शौक़ था। उसके यहाँ अनेक शेर पले हुए थे जो रोज़ सुबह खुले हुए उसके सामने लाए जाते थे। हैदरअली अपने हाथ से इन शेरों को लड्डू खिलाया करता था। उनके पञ्जों और जबाड़ों में वह लड्डू दे देता था। लिखा है कि उसका निशाना कभी चूकता न था। अपने सामने अखाड़े में वह अक्सर शेर के साथ अपने किसी एक वीर सिपाही की कुश्ती कराया करता था। यदि सिपाही शेर को पछाड़ पाता तो उसे इनाम-ओ-इकराम दिए जाते थे, और यदि शेर हावी होने लगता तो हैदर फ़ौरन् दूर से बैठा हुआ शेर की कनपटी पर गोली मार देता और इससे पहले कि शेर का पञ्जा सिपाही पर पड़ सके, शेर गोली खाकर गिर पड़ता था।

हैदरअली के शारीरिक परिश्रम और कष्ट-सहन की कोई सीमा न थी। वह कई कई रातें जङ्गल में बारिश और सरदी के अन्दर घोड़े की पीठ पर गुज़ार देता था। घोड़ों, हाथियों, तोपों और रसायन

का उसे ख़ास शौक़ था। उसके एक प्यारे हाथी का नाम 'पवन-गज' था जिसके मरने पर हैदरअली ने बड़ा दुख मनाया। घोड़े ख़रीदने का उसे इतना अधिक शौक़ था कि दूर दूर के मुल्कों से घोड़ों के सौदागर उसके दरबार में पहुँचते थे और यदि किसी सौदागर का घोड़ा उसके राज्य के अन्दर मर जाता और सौदागर अपने घोड़े की अयाल और दुम काट कर स्थानीय कर्मचारी की सनद के साथ हैदरअली के दरबार में पेश करता तो घोड़े की आधी क़ीमत उसे ख़ज़ाने से दिलवा दी जाती थी।

इन सब बातों के अतिरिक्त हैदरअली अङ्गरेज़ों का कट्टर शत्रु था। अङ्गरेज़ों के लिए उसका नाम एक 'हव्वा' था। यद्यपि हैदर-अली की नीतिज्ञता नाना फ़ड़नवीस के टक्कर की न थी, सब से बड़ी ग़लती उसकी यह थी कि अपनी सेना के अनेक बड़े बड़े ओहदों पर उसने फ्रान्सीसियों को नियुक्त कर रक्खा था, जिसका फल उसकी मृत्यु के बाद उसके बेटे टीपू सुलतान को भोगना पड़ा, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि अपने जीवन भर अङ्गरेज़ों को भारत से निकालने का हैदर ने जी-तोड़ प्रयत्न किया। वह जब तक जिया अजेय रहा और अन्त में इसी प्रयत्न में उसने अपने प्राण दिए। हम ऊपर लिख चुके हैं कि जिस समय गायकवाड़, सींधिया और भोंसले तीन तीन ज़बरदस्त मराठा नरेश महाराष्ट्र मण्डल तथा अपने देश दोनों के साथ विश्वासघात कर चुके थे, और निज़ाम-उलमुल्क भी अङ्गरेज़ों के साथ मिलकर अपने साथियों तथा मुल्क दोनों को दग़ा दे चुका था, उस समय नाना फ़ड़नवीस और

भारत की स्वाधीनता दोनों की आशा का एकमात्र आधार वीर हैदरअली था। इतना ही नहीं, बल्कि जिस समय नाना फ़ड़नवीस की अपनी सन्धि के अनुसार हैदरअली की मदद करने के नाक़ाबिल हो गया और निज़ाम ने अपना वादा साफ़ तोड़ दिया, उस समय अङ्गरेज़ों की सम्पूर्ण शक्ति के मुक़ाबले का सारा भार अकेले हैदरअली के कन्धों पर पड़ा। इसमें भी सन्देह नहीं हो सकता कि हैदरअली ने आश्चर्यजनक साहस और सफलता के साथ अकेले इस भार को सहन किया, और यदि भवितव्यता बीच में न पड़ती अर्थात् यदि, ठीक उस समय जब कि भारत में अङ्गरेज़ों के हाथ पाँव बिलकुल फूल चुके थे, मौत भारतीय स्वाधीनता के उस अन्तिम आधार को उठा कर न ले गई होती, तो उसके बाद का भारत तथा अङ्गरेज़ जाति दोनों का इतिहास बिलकुल दूसरे ही ढङ्ग से लिखा गया होता। हैदरअली के बाद फिर ७५ वर्ष तक भारत के पुत्रों को अपनी स्वाधीनता के लिए उस प्रकार का व्यापक प्रयत्न करने का साहस न हो सका। निस्सन्देह भारत की आज़ादी के लिए प्रयत्न करने वालों में हैदरअली का पद सर्वोपरि है, और आज़ादी के चाहने वालों में उसका नाम सदा के लिए स्मरणीय रहेगा।

दसवाँ अध्याय

सर जॉन मैक्फ़रसन

रन हेस्टिंग्स के बाद कलकत्ते की कौन्सिल का प्रमुख सदस्य सर जॉन मैक्फ़रसन अस्थायी तौर पर कम्पनी के भारतीय इलाक़ों का गवरनर-जनरल नियुक्त हुआ। मैक्फ़रसन के समय में कोई विशेष उल्लेखनीय घटना नहीं हुई; तथापि उसका चरित्र ख़ासा मनोरञ्जक था।

मैक्फ़रसन सब से पहले सन् १७६७ में किसी जहाज़ का बख़्शी (पेमास्टर) नियुक्त होकर हिन्दोस्तान आया। वह ख़ासा पढ़ा लिखा और चलता पुर्ज़ा था। इस पुस्तक के पहले अध्याय में आ चुका है कि करनाटक की गद्दी के ऊपर अङ्गरेज़ों, फ़्रान्सीसियों और निज़ाम ने अलग अलग हक़दारों का पक्ष लेकर कई लड़ाइयाँ लड़ीं। अन्त में अङ्गरेज़ों की सहायता से मोहम्मदअली करनाटक का नवाब बना। इस सहायता के बदले में मोहम्मदअली ने अङ्गरेज़ों को साढ़े चार लाख पैगोदा अर्थात् लगभग १६ लाख रुपए सालाना का इलाक़ा अता किया। शुरू में अङ्गरेज़ नवाब

मोहम्मदअली का बड़ा आदर करते थे। यहाँ तक कि एक बार मोहम्मदअली ने एक पत्र कुछ उपहारों और भेंट सहित इङ्गलिस्तान के बादशाह तीसरे जॉर्ज के पास भेजा और उसके जवाब में बादशाह जॉर्ज ने अपने हाथ से लिखकर एक अत्यन्त आदर और प्रेम-सूचक पत्र और उसके साथ बतौर नज़राने के दो बढ़िया पिस्तौल और कुछ इङ्गलिस्तान का बना कपड़ा मोहम्मदअली के पास भेजा।

किन्तु थोड़े ही दिनों में ठीक वही सलूक मोहम्मदअली के साथ होने लगा जो उत्तर में अवध के नवाबों के साथ हो रहा था। धन की नित्य नई माँगें उसके सामने पेश की जाती थीं और ज़बरन् पूरी कराई जाती थीं। मिसाल के लिए यह एक प्रथा पड़ गई थी कि मोहम्मदअली मद्रास के हर नए गवरनर की अपने यहाँ दावत करे और उसे तीस हज़ार पैगोदा नज़र करे। कम्पनी के छोटे मोटे नौकरों की माँगें भी मोहम्मदअली के ऊपर नित्य बढ़ती गईं, यहाँ तक कि जब अरकाट का ख़ज़ाना ख़ाली हो गया तो कुछ अङ्गरेज़ व्यापारियों ने ही अपने दूसरे देशवासियों की माँगें पूरी करने के लिए मोहम्मदअलो को क़र्ज़े देने शुरू किए। लाचार होकर मोहम्मदअली अङ्गरेज़ों की माँगें भी पूरी करता रहा और यूरोपियन व्यापारियों का दिन पर दिन क़र्ज़दार भी होता चला गया। कम्पनी के नौकरों के इन अत्याचारों से बचने का उसे कोई उपाय न सूझता था।

ऐसी हालत में नौजवान मैकफ़रसन गवरनर-जनरल होने से बहुत दिनों पहले अरकाट पहुँचा। उसने नवाब मोहम्मदअली

से मिलकर उसे यह पट्टी पढ़ाई कि यदि आप मुझे अपनी ओर से वकील बनाकर इङ्गलिस्तान भेज दें तो वहाँ के मन्त्रियों से कह कर मैं आपकी सब शिकायतें दूर करा दूँ और क़र्ज़े माफ़ करा दूँ। भोले नवाब ने स्वीकार कर लिया। मैक्फ़रसन उसका वकील बन कर सन् १७६८ में इङ्गलिस्तान पहुँचा। इस चाल द्वारा मैक्फ़रसन ने मोहम्मदअली को खूब जी भर के लूटा। यहाँ तक कि उसने कई लाख रुपए इङ्गलिस्तान के प्रधान मन्त्री तक को रिशवत देना चाहा। और जब प्रधान मन्त्री ने यह रिशवत स्वीकार न की तो मैक्फ़रसन ने उसे ७० लाख रुपए से ऊपर क़र्ज़ (?) के तौर पर देना चाहा। किन्तु लिखा है कि प्रधान मन्त्री ने इसे भी मञ्ज़ूर न किया।

करनाटक के नवाब की शिकायतें तो इङ्गलिस्तान में कौन सुनता था और कहाँ दूर हो सकती थीं, किन्तु इन तरीक़ों से मैक्फ़रसन ने कम्पनी के डाइरेक्टरों और इङ्गलिस्तान के मन्त्रियों पर अपना खूब असर जमा लिया। वह फिर कम्पनी की नौकरी में भारत भेजा गया और तरक़्क़ी करके पहले कलकत्ते की कौन्सिल का मेम्बर और फिर मौक़ा मिलने पर गवरनर-जनरल बना दिया गया। इसके बाद मैक्फ़रसन का नवाब करनाटक की मुसीबतों की ओर कभी ध्यान भी न गया।

मैक्फ़रसन केवल बीस महीने गवरनर-जनरल रहा। इससे पूर्व कम्पनी अपने भारतीय इलाक़ों के लिए दिल्ली सम्राट शाह आलम को ख़िराज दिया करती थी। इस ख़िराज के चार करोड़ रुपए अब कम्पनी की ओर निकलते थे। माधोजी (महादजी)

[...]निया ने सम्राट की ओर से यह रक़म तलब की, किन्तु मैक्फ़[...]सन ने देने से इनकार कर दिया। अवध के नवाब को मैक्फ़रसन [...]ं अपने पूर्वाधिकारियों के समान ख़ूब चूसा। मैक्फ़रसन के [...]त्तराधिकारी लॉर्ड कॉर्नवालिस ने ८ अगस्त सन् १७८९ को [...]लकत्ते से इङ्गलिस्तान के भारत मन्त्री हेनरी डण्डास के नाम एक [...] पत्र लिखा, जिसमें कॉर्नवालिस ने मैक्फ़रसन के "नाजायज [...]रीक़ों से कमाए हुए धन" उसकी "साफ़ चालबाज़ियों", उसके "निर्लज्ज झूठों", उसकी "दुरङ्गी चालों और कमीनी साज़िशों"* [...]ा जगह जगह ज़िक्र किया है

भारत से लौटकर मैक्फ़रसन पार्लिमेण्ट की मेम्बरी के लिए [ख]ड़ा हुआ। चुनाव में वह जीत गया। किन्तु जब साबित हुआ कि [व]ह रिशवतें देकर जीता है तो उसका चुनाव रद्द कर दिया गया। [उ]सके लगभग ६० मददगारों को रिशवत देने के जुर्म में सज़ाएँ मिलीं। [स्व]यं मैक्फ़रसन पर ८२ नालिशें दायर हुईं। जवाबदेही से बचने के लिए वह इङ्गलिस्तान छोड़कर कहीं भाग गया। अन्त में रिशवत देने ही के अपराध में उस पर तीन हज़ार पाउण्ड जुर्माना हुआ।

भारत के अनेक गवरनर-जनरलों में से एक के वैयक्तिक चरित्र का यह थोड़ा सा ख़ाका है।

* ". . . ill-earned money . . . His flimsy cunning and [s]hameless falsehoods . . . his duplicity and low intrigues . . ."—Lord Cornwallis' letter dated 8th August 1789 to the Rt. Hon'ble Henry Dundas concerning Sir John Macpherson.

ग्यारहवाँ अध्याय
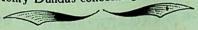
लॉर्ड कॉर्नवालिस

[१७८६-१७९३]

गवरनर-जनरल की अधिकार-वृद्धि

र जॉन मैक्फ़रसन केवल अस्थायी गवरनर-जनरल था। उसके बाद कम्पनी के डाइ-क्टरों और इङ्गलिस्तान के मन्त्रियों ने मिल कर लॉर्ड कॉर्नवालिस को अपने भारतीय इलाक़ों का स्थायी गवरनर-जनरल नियुक्त करके भेजा।

कम्पनी के सन् १७७३ के चारटर ऐक्ट के अनुसार वारन हेस्टिंग्स ब्रिटिश भारत का पहला गवरनर-जनरल नियुक्त हुआ था। उसी क़ानून के अनुसार कलकत्ते में गवरनर-जनरल की सहायता के लिए चार अन्य अङ्गरेज़ों की एक कौन्सिल होती थी, जिसका प्रधान गवरनर-जनरल स्वयं होता था। कौन्सिल में जो बात बहुमत से तय हो जाती थी, गवरनर-जनरल के लिए उसका मानना ज़रूरी था। यही स्थिति मद्रास और बम्बई के गवरनरों की भी थी। इस नियम के कारण वारन हेस्टिंग्स की चालों में कई बा

बाधाएँ पड़ीं। जिस तरह की अङ्गरेज़ी नीति उस समय भारत में जारी थी, उसके लिए गवरनर-जनरल के हाथों में अनन्य अधिकार का होना आवश्यक था। इसलिए कॉर्नवालिस के इङ्गलिस्तान से चलने के पूर्व पार्लिमेण्ट ने एक नया क़ानून पास किया, जिसमें कलकत्ते के गवरनर-जनरल और मद्रास तथा बम्बई के गवरनरों को यह अधिकार दे दिया गया कि वे जिस मामले में चाहें अपनी कौन्सिलों की राय के विरुद्ध या कौन्सिलों से बिना पूछे कार्य कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त भारत में अङ्गरेज़ों का इलाक़ा बढ़ता जा रहा था। इस कारण यहाँ के शासन को चलाने के लिए अब इङ्गलिस्तान में एक नया सरकारी बोर्ड, जिसे 'बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल' कहते हैं, बना दिया गया। इससे धीरे धीरे कम्पनी के अर्थात् डाइरेक्टरों के अधिकार कम होते गए और ब्रिटिश भारत का शासन इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट और वहाँ के मन्त्रिमण्डल के हाथों में आता गया।

इस प्रकार नए अधिकार लेकर भारत का तीसरा अङ्गरेज़ गवरनर-जनरल सितम्बर सन् १७८६ में भारत पहुँचा।

टीपू और अङ्गरेज़ों का युद्ध

कॉर्नवालिस के समय की सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना हैदरअली के ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी टीपू सुलतान के साथ अङ्गरेज़ों का युद्ध था, जिसे दूसरा मैसूर युद्ध कहा जाता है।

टीपू का जन्म सन् १७४९ ईसवी में हुआ। लिखा है कि एक मुसलमान फ़क़ीर टीपू मस्तान औलिया के आशीर्वाद से हैदरअली

के यहाँ इस पुत्र का जन्म हुआ। इसी लिए उसका नाम फ़तह-अली टीपू रक्खा गया। इतिहास में वह टीपू सुलतान के नाम से विख्यात हुआ। पराक्रम और युद्ध-कौशल में टीपू अपने बाप के मुक़ाबले का था। उसकी गणना भारत के वरन् संसार के सर्वोत्कृष्ट वीरों में की जाती है। टीपू के चरित्र का अधिक दिग्दर्शन एक अगले अध्याय में किया जायगा, यहाँ पर केवल कॉर्नवालिस और टीपू के युद्ध को वर्णन कर देना आवश्यक है।

सन् १७८४ में टीपू और कम्पनी के बीच सन्धि हो चुकी थी, जिसमें कम्पनी ने टीपू सुलतान को मैसूर का न्याय्य अधिपति स्वीकार कर लिया था और वादा किया था कि भविष्य में हम कभी मैसूर के राज्य में दख़ल न देंगे और टीपू सुलतान के साथ सदा मित्रता क़ायम रक्खेंगे। तब से अब तक टीपू ने अपनी ओर से सन्धि का अक्षरशः पालन किया था और अङ्गरेज़ों के साथ कभी किसी प्रकार की छेड़छाड़ न की थी। किन्तु टीपू और उसके पिता हैदर के हाथों जो हार पर हार और ज़िल्लत पर ज़िल्लत अङ्गरेज़ों को उठानी पड़ी थी वह प्रत्येक अङ्गरेज़ के दिल में काँटे की तरह चुभ रही थी। बाप के मरने के बाद लगभग एक वर्ष तक जिस शान और सफलता के साथ टीपू ने अङ्गरेज़ों के विरुद्ध युद्ध जारी रक्खा उसके कारण उन दिनों टीपू का नाम सुनकर अङ्गरेज़ चौंक उठते थे। पादरी डब्ल्यु० एच० हटन लिखता है कि अङ्गरेज़ माताएँ टीपू का नाम ले लेकर अपने शरीर बच्चों को चुप करती थीं।*

* *Marquess of Wellesley*, p. 32.

इसके अतिरिक्त टीपू के साथ कम्पनी के युद्ध छेड़ने का एक और ज़बरदस्त कारण था। अमरीका की 'संयुक्त रियासतें' किसी समय में इङ्गलिस्तान के अधीन थीं। किन्तु वहाँ के बाशिन्दे अधिकतर यूरोप ही के विविध देशों से जा जाकर बसे थे। उन्होंने अपनी स्वाधीनता के लिए युद्ध किया। भयङ्कर रक्तपात हुआ। अन्त में इङ्गलिस्तान हार गया और अमरीका की 'संयुक्त रियासतें' सदा के लिए ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक और स्वाधीन हो गईं। इङ्गलिस्तान की कीर्ति को इस घटना से ख़ासा धक्का पहुँचा। तुरन्त इङ्गलिस्तान के शासकों ने अपनी क़ौम के यश को फिर से क़ायम करने और इस कमी को पूरा करने के लिए हिन्दोस्तान में अपना साम्राज्य बढ़ाने का निश्चय किया। लॉर्ड कॉर्नवालिस को जो हिदायतें देकर भारत भेजा गया, उनमें से एक यह थी कि जितनी जल्दी हो सके भारत में अमरीका की कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया जाय। ये सब बातें उस समय के सरकारी पत्र-व्यवहार में बिलकुल स्पष्ट हैं।

कॉर्नवालिस ने भारत पहुँचते ही टीपू के साथ युद्ध की तैयारी शुरू कर दी। टीपू एक वीर और सुयोग्य शासक था। उसने अपनी प्रजा के साथ कभी बुरा व्यवहार नहीं किया। उसके राज्य में चारों ओर वह उन्नति और खुशहाली नज़र आती थी जो उस समय के ब्रिटिश भारतीय इलाक़े में कहीं देखने को भी न मिलती थी। किन्तु टीपू नातजरुबेकार था। विदेशियों से देश को जो खतरा था, और उससे बचने के लिए अपने भारतीय पड़ोसियों से मेल बनाए रखने

की आवश्यकता को वह पूरी तरह न समझ पाया था। कुछ सरहदी इलाक़ों के विषय में मराठों और निज़ाम दोनों से उसके झगड़े चले आते थे। जिनमें ज़्यादती चाहे किसी की भी क्यों न रही हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि टीपू अपने पड़ोसियों के साथ उस तरह का प्रेम और मेल क़ायम न रख सका, जिस तरह का हैदर ने रख रक्खा था। निज़ाम तथा मराठों के साथ टीपू के इन आपसी झगड़ों से ही कम्पनी को टीपू के विरुद्ध सबसे अधिक मदद मिली। कॉर्नवालिस ने सबसे पहले टीपू के विरुद्ध निज़ाम के साथ एक नया समझौता किया। इस समझौते का मतलब यह था कि क़म्पनी की वह सबसीडीयरी सेना जो निज़ाम के यहाँ निज़ाम के ख़र्च पर रक्खी गई थी, टीपू पर हमला करने के लिए काम में लाई जावेगी, और निज़ाम उस हमले में अङ्गरेज़ों को मदद देगा।*

इस दरमियान टीपू और मराठों में सुलह सफ़ाई की बातचीत हो रही था, और यदि कॉर्नवालिस बीच में बाधा न डालता तो निस्सन्देह सुलह हो ही गई थी। किन्तु कॉर्नवालिस ख़ूब जानता था कि टीपू को वश में करना अकेले अङ्गरेज़ों और निज़ाम के बूते का काम नहीं है। यह ख़बर पाते ही कि टीपू और मराठों में सुलह हो रही है कॉर्नवालिस ने फ़ौरन् २३ अक्तूबर सन् १७८७ को अपने एक अफ़सर जॉर्ज फ़ॉर्सटर को लिखा कि आप मूदाजी भोंसले के पास नागपुर पहुँच कर गुप्त रीति से वहाँ के सैन्यबल इत्यादि का पता लगावें और टीपू के विरुद्ध मूदाजी और उसके

* *Historical Sketches*, by Colonel Wilks, vol. iii. p. 38.

साथियों को अङ्गरेज़ों की ओर फोड़ने का प्रयत्न करें। इसी पत्र में कॉर्नवालिस ने लिखा कि—"यदि मराठों ने टीपू के साथ सुलह कर ली है या सुलह करने का निश्चय कर लिया है तो इस बात की सम्भावना नहीं है कि हमारे समझाने बुझाने से मराठे फ़ौरन अपने उस निश्चय से टल जावें ××× इसलिए आप इसमें कोई यत्न उठा न रखिए ××× कि टीपू को दोनों का दुशमन दिखाकर और मराठों को उकसाकर टीपू के विरुद्ध मराठों के साथ एक घनिष्ट सम्बन्ध और मेल कर लिया जावे।"*

इसी विषय का एक पत्र कॉर्नवालिस ने १० मार्च सन् १७८८ को पूना के अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट मैलेट को लिखा, जिसमें मैलेट से पेशवा दरबार को टीपू के विरुद्ध फोड़ने के लिए कहा गया। पेशवा दरबार और निज़ाम दोनों से कॉर्नवालिस ने यह वादा किया कि यदि आप लोग टीपू के विरुद्ध युद्ध में अङ्गरेज़ों को मदद देंगे तो जितना इलाक़ा टीपू से विजय किया जावेगा वह सब कम्पनी, निज़ाम और मराठों में बराबर बराबर बाँट दिया जावेगा। कॉर्नवालिस का दिया हुआ लोभ अपना काम कर गया। निज़ाम का

---

* In his letter to George Forster dated October 23, 1787, Lord Cornwallis wrote:—"If the Marhattas have engaged or resolved to keep peace with Tipoo, it is not probable that our solicitations would induce them to depart immediately from that plan." Forster was therefore instructed to spare no pains to incite Marhattas "to form a close connexion and alliance against Tipoo as a common enemy."

चरित्र कभी भी अधिक विश्वास के योग्य न रहा था। किन्तु पेशवा दरबार का इस समय हैदर के पुत्र के विरुद्ध विदेशियों के हाथों में खेल जाना निस्सन्देह अत्यन्त शोकजनक था। टीपू के विरुद्ध अङ्गरेज़ों, मराठों और निज़ाम में सन्धि हो गई। उस समय के प्रसिद्ध अङ्गरेज़ नीतिज्ञ फ़ॉक्स ने कहा था कि यह सन्धि वास्तव में—"एक न्याय्य नरेश को मिटा देने के उद्देश से डकैतों की गुट्ट थी।"*

इङ्गलिस्तान के मन्त्रियों ने समाचार पाते ही फ़ौरन् कुछ गोरी फ़ौज और पाँच लाख पाउण्ड नक़द बतौर क़र्ज़ कॉर्नवालिस की मदद के लिए इङ्गलिस्तान से रवाना किए।

तमाम तैयारी पूरी हो गई। कॉर्नवालिस के लिए अब केवल एक बहाना ढूँढना बाक़ी था। कहते हैं कि त्रिवानकुर के राजा और टीपू में कुछ दिनों से झगड़ा चला आता था। त्रिवानकुर के राजा को यह कह कर भड़काया गया कि टीपू तुम पर हमला करने का इरादा कर रहा है। उस समय के तमाम पत्रों और उल्लेखों से साबित है कि टीपू का त्रिवानकुर पर हमला करने का कोई इरादा न था। मद्रास के गवरनर हॉलेण्ड के एक पत्र में यह भी लिखा है कि—"कम्पनी से लड़ने का टीपू का बिलकुल इरादा न था और यदि कोई बातें शिकायत की थीं भी तो वह उन्हें आपस में पत्र-व्यवहार द्वारा तय करने को राज़ी था।" टीपू ने स्वयं अङ्गरेज़ों

* "A plundering confederacy for the purpose of extirpating a lawful prince."—Fox.

को विश्वास दिलाया कि मेरा इरादा न हरगिज़ शान्ति भङ्ग करने का है और न त्रिवानकुर की प्राचीन रियासत पर हमला करने का। करनल विल्क्स लिखता है कि टीपू "लड़ाई के लिए तैयार न था" किन्तु कॉर्नवालस को अपने मालिकों की आज्ञा मिल चुकी थी। वह सन् १७८४ की सन्धि को पैरों तले रौंद कर, जिस तरह हो, टीपू को मिटाने और भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य की सीमाओं को बढ़ाने का सङ्कल्प कर चुका था। उसने मद्रास के गवरनर को पत्र में लिखा कि—"टीपू का तैयार न होना ही कम्पनी के लिए सब से अच्छा मौक़ा है।" टीपू को बदनाम करने और अपने अन्याय को लोगों की नज़रों में जायज़ क़रार देने के लिए टीपू के अन्यायों और अत्याचारों के अनेक झूठे क़िस्से गढ़कर चारों ओर फैलाने शुरू किए गए, जिनमें से अनेक अभी तक भारतीय स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों में पाए जाते हैं।

त्रिवानकुर की सहायता के नाम पर युद्ध छेड़ा गया, किन्तु इसके बाद की तमाम करवाइयों में त्रिवानकुर के राजा का कहीं ज़िक्र भी नहीं आता।

सब से पहले जून सन् १७९० में मद्रास से एक सेना जनरल मीडोज़ के अधीन मैसूर पर हमला करने के लिए रवाना हुई। इस सेना के साथ बहुत सी सेना करनल मेक्सवेल के अधीन बङ्गाल की थी। टीपू अपनी सेना सहित मुक़ाबले के लिए आगे बढ़ा। मीडोज़ ने टीपू के कई सामन्तों को लोभ देकर अपनी ओर फोड़ लिया। अनेक स्थानों पर दोनों ओर की सेनाओं में संग्राम हुए,

जिनके विस्तार में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। अन्त में टीपू की वीरता और उसके श्रेष्ठतर युद्ध-कौशल के कारण बजाय इसके कि अङ्गरेज़ी सेना मैसूर का कोई भाग विजय कर सकती, टीपू की सेना ने कम्पनी की सेना को पीछे भगाते भगाते मद्रास के निकट तक पहुँचा दिया। टीपू ने फिर करनाटक के काफ़ी इलाक़े पर क़ब्ज़ा कर लिया, और जनरल मीडोज़ को जगह जगह ज़बरदस्त हार खाकर और जान और माल का बेहद नुकसान उठाकर निष्फल मद्रास लौट आना पड़ा।

मीडोज़ की लज्जाजनक पराजय का हाल सुन कर कॉर्नवालिस ने सेना की बाग स्वयं अपने हाथों में ली। १२ दिसम्बर सन् १७९० को वह एक बहुत बड़ी सेना लेकर कलकत्ते से मद्रास के लिए रवाना हुआ। बहुत सम्भव है कि कॉर्नवालिस और उसकी यह नई सेना भी टीपू को वश में करने के लिए काफ़ी न होती। किन्तु इस बीच निज़ाम और मराठों की सेनाएँ अङ्गरेज़ों की मदद के लिए मैदान में पहुँच चुकी थीं। मालूम नहीं कि नाना फ़ड़नवीस उस समय पूना में मौजूद था या न था और यदि था तो दरबार में उसका प्रभाव कहाँ तक चलता था। जो हो, पेशवा दरबार का उस समय अङ्गरेज़ों के हाथों में खेल कर उन्हें उस घोर अन्याय में मदद देना न केवल टीपू, वरन् समस्त भारतीय राजशक्तियों के भविष्य के लिए सर्वथा घातक था। इस सब के अतिरिक्त हैदर की अदूरदर्शिता का परिणाम भी इस समय टीपू को भोगना पड़ा। टीपू के तमाम यूरोपियन नौकर अर्थात् उसकी सेना के यूरोपियन अफ़सर और

सिपाही ऐन मौक़े पर शत्रु से जा मिले। कॉर्नवालिस ने गुप्त पत्र-व्यवहार द्वारा इन तमाम लोगों को, जिन्हें हैदर ने नौकर रक्खा था, धन का लोभ देकर अपनी ओर कर लिया। पाँच लाख पाउण्ड नक़द कॉर्नवालिस को इस तरह के कामों के लिए विलायत से [illegible] मिल चुके थे। इतिहास-लेखक थॉर्नटन लिखता है—

"टीपू सुलतान के यूरोपियन नौकर जिस तरह पहले अपनी विद्या और कौशल का उपयोग टीपू की रक्षा के लिए करते थे, वैसे ही अब वे इन्हीं ताक़तों को टीपू के नाश के लिए काम में लाने को हर तरह तैयार होगए।"*

मीर हुसेनअली ख़ाँ किरमानी लिखता है कि टीपू के कुछ अमीरों और सरदारों को भी अङ्गरेज़ों ने अपनी ओर फोड़ लिया था।

टीपू, जो इस युद्ध के लिए पहले से तैयार न था, एक ओर अङ्गरेज़ों, मराठों और निज़ाम तीन तीन ताक़तों की सेनाओं द्वारा कई तरफ़ से घिर गया और दूसरी ओर उसकी अपनी सेना में विश्वासघातक पैदा होगए।

किन्तु इस पर भी कॉर्नवालिस का काम इतना आसान न था। टीपू ने वीरता के साथ अपने तीनों शत्रुओं का मुक़ाबला

---

* "Tipu's European servants were now quite as ready to exercise their skill and knowledge for his destruction as they had previously been assiduous in using them for his defence."—*History of British India*, by Thornton.

किया। कई महीने युद्ध जारी रहा। उस युद्ध के अनेक संग्रामों को विस्तार के साथ बयान करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु अकेला टीपू इस तरह के तीन शत्रुओं का मुक़ाबला और इस परिस्थिति में कब तक कर सकता था? अन्त में टीपू को पीछे हटना पड़ा, यहाँ तक कि बङ्गलोर का नगर अङ्गरेज़ों के हाथों में आगया। बङ्गलोर विजय के बाद कॉर्नवालिस की आज्ञा से उसकी सेना ने बङ्गलोर-निवासियों के साथ जो व्यवहार किया उसे इतिहास-लेखक मिल "शोकजनक संहार" * कह कर बयान करता है। बङ्गलोर के नगर को जी भर के लूटा गया।

बङ्गलोर लेने के बाद कॉर्नवालिस ने मैसूर की राजधानी श्रीरङ्गपट्टन पर चढ़ाई की। जिस समय अङ्गरेज़ी सेना राजधानी के निकट पहुँची, टीपू ने अपने एक दूत के हाथ अनेक ऊँट फलों के लदवा कर सुलह की इच्छा के चिह्न रूप कॉर्नवालिस की सेवा में भेजे, किन्तु कॉर्नवालिस ने उन फलों को बिना हाथ लगाए लौटा दिया, टीपू के दूत से उसने सुलह की बातचीत करने तक से इनकार कर दिया। इतिहास-लेखक मिल लिखता है कि लूट के लोभ और यश की इच्छा ने इस समय अङ्गरेज़ी सेना को अन्धा कर रक्खा था और वह मैसूर-निवासियों के साथ उस अमानुषिक व्यवहार पर कटिबद्ध थी, जिसका कोई सभ्य क़ौम अपने बुरे से बुरे शत्रु के साथ विचार तक नहीं कर सकती। †

* "Deplorable carnage."—Mill.

† ". . . , the fact is, that the English in India, at that time

टीपू ने अपनी शक्ति भर युद्ध जारी रक्खा। साथ ही उसने फिर कॉर्नवालिस के साथ सुलह की बातचीत करने की कोशिश की। वह अपनी उस समय की अवस्था को खूब समझ रहा था। किन्तु कॉर्नवालिस ने इस बार टीपू के दूत को अपने सामने तक आने न दिया। आख़िरकार श्रीरङ्गपट्टन का मोहासरा शुरू हुआ। टीपू ने फिर अङ्गरेज़ों और मराठों दोनों से सुलह की बातचीत शुरू की। इस बीच जनरल मीडोज़ ने कॉर्नवालिस की इजाज़त से सोमरपीठ के प्रसिद्ध मोरचे पर हमला किया। सोमरपीठ उस समय 'श्रीरङ्गपट्टन के क़िले की नाक' कहलाता था। सय्यद ग़फ़्फ़ार इस मोरचे का संरक्षक था। सय्यद ग़फ़्फ़ार ने खूब वीरता के साथ जनरल मीडोज़ का मुक़ाबला किया। एक घमासान संग्राम हुआ, जिसमें मीर क़िरमानी के अनुसार दो हज़ार अङ्गरेज़ सिपाही मैदान में काम आए। पराजित अङ्गरेज़ सेनापति को अपने बचे हुए आदमियों सहित पीछे लौट आना पड़ा। लिखा है कि जनरल मीडोज़ को इस पराजय पर इतनी लज्जा आई कि उसने अपने खेमें में जाकर आत्महत्या करना चाहा। उसने अपनी पिस्तौल का उपयोग किया। पहली गोली उसकी बग़ल को छीलते हुए निकल गई। उसने दोबारा पिस्तौल चलाना चाहा, किन्तु इतने में करनल मैलकम ने, जो आवाज़ सुनकर खेमे में घुस आया था,

---

had been worked up into a mixture of fury and rage against Tipoo more resembling the passion of savages against their enemy, . . . than the feelings with which a civilized nation regards the worst of its foes."—Mill, vol. v, p. 278.

मीडोज़ के हाथ से पिस्तौल छीन ली। कॉर्नवालिस को इस घटना की सूचना दी गई। उसने आकर मीडोज़ को सान्त्वना दी और इस अवसर पर टीपू के साथ सुलह की इच्छा प्रकट की।

श्रीरङ्गपट्टन के पूर्व की ओर लालबाग़ नामक एक अत्यन्त सुन्दर बाग़ है, जिसमें हैदरअली की समाधि बनी हुई है। टीपू सुलतान ने अपने पिता की याद में इस बाग़ और समाधि के सौन्दर्य को बढ़ाने में असंख्य धन व्यय किया था। लॉर्ड कॉर्नवालिस ने इस बाग़ पर क़ब्ज़ा कर लिया। वहाँ के लम्बे 'सर्व' तथा अन्य सुन्दर वृक्षों को कटवा डाला और हैदरअली की समाधि का अपमान किया। टीपू को यह देखकर अत्यन्त दुख हुआ।

टीपू और मराठों के बीच भी इस समय सुलह के लिए पत्र व्यवहार हो रहा था। अब तक अङ्गरेज़ों ने टीपू के विरुद्ध जो विजय प्राप्त की थी वह अधिकतर मराठों और निज़ाम ही के बल पर की थी। कहा जाता है कि इस अवसर पर मराठों और विशेष कर नाना फ़ड़नवीस ने कॉर्नवालिस को सुलह के लिए मजबूर किया। अङ्गरेज़ इस विषय में मराठों की इच्छा के विरोध का साहस न कर सकते थे। अन्त में २३ फ़रवरी सन् १७९२ को श्रीरङ्गपट्टन में दोनों दलों के बीच सन्धि होगई, जिसके अनुसार टीपू का ठीक आधा राज्य उससे लेकर कम्पनी, निज़ाम और मराठों ने आपस में बराबर बराबर बाँट लिया।

इसके अतिरिक्त असहाय टीपू ने तीन सालाना क़िस्तों में, तीन करोड़, तीस हज़ार रुपए दण्ड स्वरूप देने का वादा किया

और इस दण्ड की अदायगी के समय तक के लिए अपने दो बेटे जिनमें शहज़ादे अब्दुल ख़ालिक़ की आयु दस वर्ष की और शहज़ादे मुईज़ुद्दीन की आयु आठ वर्ष की थी, बतौर बन्धकों के अङ्गरेज़ों के हवाले कर दिए।

इस प्रकार दूसरे मैसूर युद्ध का अन्त हुआ। टीपू के दिल पर इस युद्ध का इतना ज़बरदस्त असर हुआ कि मीर हुसेनअली ख़ाँ किरमानी लिखता है कि सन्धि के दिन से टीपू ने पलँग और बिस्तर पर सोना छोड़ दिया। उस दिन से मृत्यु के समय तक वह केवल चन्द टुकड़े 'खादी' के ज़मीन पर डाल कर उनके ऊपर सोया करता था। यों तो उस समय तक भारत का बना तमाम कपड़ा ही हाथ का कता और हाथ का बुना होता था, किन्तु किरमानी लिखता है कि खादी उस समय एक मोटी क़िस्म के कपड़े को कहते थे जो ख़ेमे बनाने के काम में आता था।

अगले वर्ष अर्थात् सन् १७९३ ईसवी में कॉर्नवालिस ने फ़्रान्सीसियों के तमाम भारतीय इलाक़ों पर हमला करके उन्हें अङ्गरेज़ कम्पनी के अधीन कर लिया।

कॉर्नवालिस और दिल्ली सम्राट

इसके बाद भारत के अन्य नरेशों के साथ कॉर्नवालिस के व्यवहार को बयान करना बाक़ी है। दिल्ली का सम्राट अभी तक कहने के लिए समस्त भारत का अधिराज था। अङ्गरेज़ क़ायदे के अनुसार उसकी प्रजा थे। वारन हेस्टिंग्स के समय तक बङ्गाल,

बिहार और उड़ीसा की दीवानी के लिए वे दिल्ली दरबार को सालाना खिराज भेजा करते थे। हेस्टिंग्स ने माधोराव सींधिया के साथ मिलकर दिल्ली सम्राट को मराठों के हवाले करवा दिया, और कलकत्ते से दिल्ली खिराज जाना रुक गया। उसके बाद सर जॉन मैकफ़र्सन केवल अस्थायी गवरनर-जनरल था। इस दरमियान दिल्ली से खिराज की माँग बराबर आती रही। कॉर्नवालिस के समय में सम्राट की ओर से फिर माँग आई। कॉर्नवालिस ने अब सदा के लिए खिराज देने से इनकार कर दिया। इसलिए नहीं कि दिल्ली सम्राट ने इस बीच अङ्गरेज़ों का कोई अहित किया हो, बल्कि केवल इसलिए क्योंकि दिल्ली का सम्राट अब काफ़ी बलहीन हो चुका था और अङ्गरेज़ अपना बल काफ़ी बढ़ा चुके थे। सम्राट दरबार में इतनी हिम्मत न थी कि सेना भेजकर कलकत्ते से खिराज वसूल कर सके। इस प्रकार बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के प्रान्त अब साफ़ साफ़ दिल्ली साम्राज्य से कटकर अङ्गरेज़ कम्पनी के स्वायत्त शासन में आ गए।

कॉर्नवालिस और अवध का नवाब

अवध के नवाब के साथ भी कॉर्नवालिस का सलूक इसी तरह का था। कम्पनी की एक विशाल सेना जिसके सब अफ़सर अङ्गरेज़ थे, ज़बरदस्ती अवध के ऊपर मढ़ दी गई थी। नवाब को उसका ख़र्च देना पड़ता था। वारन हेस्टिंग्स ने नवाब से वादा किया था कि भविष्य में आवश्यकता न रहने पर यह सेना अवध

वापस बुला ली जायगी। नवाब ने अब उस वादे को पूरा करने के लिए कॉर्नवालिस से प्रार्थना की। किन्तु इतिहास-लेखक मिल लिखता है—

"यद्यपि उस समय अवध के सामने कोई ख़ास ख़तरा न था, और जितने रुपए नवाब से कम्पनी को लेने का हक़ था उससे ज़्यादा फ़तहगढ़ की इस सेना पर नवाब का ख़र्च होता था, तथापि कॉर्नवालिस अपने इस निश्चय पर क़ायम रहा कि सेना फ़तहगढ़ से न हटाई जावे।"*

इस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य-पिपासा को भविष्य में शान्त करने के वास्तविक उद्देश से पचास लाख रुपए सालाना से ऊपर का रुपया ज़बरदस्ती कम्पनी के मित्र अवध के नवाब से वसूल किया जाता रहा।

कॉर्नवालिस और निज़ाम

कम्पनी के दूसरे मित्र निज़ाम के साथ कॉर्नवालिस का सलूक इससे बेहतर न था। इङ्गलिस्तान से चलते समय डाइरेक्टरों ने उसे हिदायत कर कर दी थी कि 'गुण्टूर का इलाक़ा' किसी प्रकार निज़ाम से ले लिया जाय। कॉर्नवालिस जानता था कि यदि मैसूर युद्ध से पहले निज़ाम पर यह बात प्रकट हो गई तो निज़ाम टीपू से मिल जाने का डर है। वह मौक़े की ताक में रहा। युद्ध के बाद जब उसने निज़ाम को निर्बल पाया तो कप्तान केन्नावे नामक एक अफ़सर को इस कार्य के सिद्ध करने के लिए निज़ाम के दरबार में भेजा। इतिहास-लेखक मिल लिखता है—

* Mill, vol. v, p. 222.

"यह तय हो गया था कि जब तक कप्तान केन्नावे दरबार में पहुँच न जावे तब तक निज़ाम को यह खबर न होने पावे कि उससे गुण्टूर माँगे जाने का प्रस्ताव किया जा रहा है ××× मद्रास की गवरमेण्ट ने इधर उधर के बहाने लेकर एक सेना गुण्टूर के आस पास पहुँचा दी, और इससे पूर्व कि कोई दूसरी शक्ति लड़ने के लिए अथवा विरोध करने के लिए पहुँच सके, स्वयं उस इलाक़े पर क़ब्ज़ा करने की तैयारी कर ली।"*

निज़ाम पहले ही कायर और कमज़ोर था। युद्ध की ज़रूरत भी न पड़ी और गुण्टूर का इलाक़ा कम्पनी के हाथों में आ गया। कहा जाता है कि किसी डाकू की माँ ने सिकन्दर के सामने विजेताओं और डाकुओं की परस्पर समानता दर्शाई थी। निस्सन्देह उसे इससे बढ़ कर मिसाल न मिल सकती।

कम्पनी के मुलाज़िमों की नियुक्ति

अन्त में लॉर्ड कॉर्नवालिस के शासनकाल की अन्य कुछ कारवाइयों और उसके 'शासन सुधारों' पर दृष्टि डालना आवश्यक है। सब से पहले उसके समय के कम्पनी के नौकरों की नियुक्ति का ढङ्ग। इतिहास में दर्ज है कि उस समय के इङ्गलिस्तान के युवराज (प्रिन्स ऑफ़ वेल्स) ने अनेक बार अपने अनेक मित्रों वा आश्रितों

* "No intimation was to be given to the Nizam of the proposed demand, till after the arrival of captain Kennaway at his Court, . . . the Government of Madras, under specious pretences, conveyed a body of troops to the neighbourhood of the Sircar; and held themselves in readiness to seize the territory before any other power could interpose, either with arms or remonstrance."—Mill, vol. v, p. 225.

की भारत की ख़ास ख़ास नौकरियों के लिए सिफ़ारिश की और कॉर्नवालिस बराबर अपने युवराज की इच्छा को पूरा करता रहा। एक बार युवराज ने कॉर्नवालिस को लिखा कि आप "एलीकान नामक एक काले" को बनारस की फ़ौजदारी की चीफ़ जजी से हटा कर पैल्लेग्राइन ट्रीव्ज़ नामक एक अङ्गरेज़ युवक को उसकी जगह नियुक्त कर दें। पैल्लेग्राइन ट्रीव्ज़ इङ्गलिस्तान के एक बदनाम महाजन का बेटा था और युवराज को उस महाजन का कुछ क़र्ज़ा अदा करना था। कॉर्नवालिस इस बार युवराज की इच्छा पूरी न कर सका। उसने युवराज को लिखा कि अली इब्राहीम ख़ाँ (जिसे युवराज ने 'काला एलीकान' लिखा था) यद्यपि हिन्दोस्तानी है तथापि "भारत के सब से अधिक योग्य और सब से अधिक सम्मानित सरकारी अफ़सरों में से है।" जब कि ट्रीव्ज़ नौजवान और नातजरुबेकार है; और एक इतनी महत्वपूर्ण पदवी पर उसे नियुक्त करना जिसके काम का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं, केवल मज़ाक़ उड़वाना होगा, इत्यादि।

कॉर्नवालिस ने भारत आकर देखा कि उस समय ऊँची ऊँची पदवियों पर कम्पनी के प्रायः समस्त यूरोपियन नौकर अयोग्य और रिशवतख़ोर थे। कॉर्नवालिस ने इसे स्वीकार किया और इसके दो इलाज किए। एक यह कि उसने नियम कर दिया कि आयन्दा सिवाय छोटी से छोटी नौकरियों के कम्पनी के इलाक़े में कोई बड़ी नौकरी किसी हिन्दोस्तानी को न दी जाय। दूसरे उसने कम्पनी के यूरोपियन मुलाज़िमों की तनख़ाहें बढ़ा दीं।

ग्राम पञ्चायतों का नाश

अत्यन्त प्राचीन काल से भारत की ९९ फ़ीसदी जन-संख्या ग्रामों में रहती रही है। प्रत्येक ग्राम में सदा से एक ग्राम पञ्चायत होती थी। इतिहास-लेखक टॉरेन्स के शब्दों में "भारतवासियों का समस्त सामाजिक, औद्योगिक और राजनैतिक जीवन इन्हीं ग्राम पञ्चायतों का एक सङ्गठित रूप था।"* राष्ट्र का समस्त जीवन इन्हीं ग्रामों और ग्राम पञ्चायतों के आधार पर क़ायम था और इन्हीं का बना हुआ था। इन ग्राम पञ्चायतों के सङ्गठन और उनके कार्यों के विषय में हम उस समय के केवल एक दो अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों की गवाही उद्धृत कर देना चाहते हैं। टॉरेन्स लिखता है—

"उस प्राचीन काल से लेकर, जिसकी कि कोई याद तक बाक़ी नहीं रही, प्रत्येक ग्राम के बड़े बूढ़ों की एक पञ्चायत ग्राम पर शासन करती रही है, उसके सार्वजनिक कार्यों को चलाती रही है और सार्वजनिक हितों की रक्षा करती रही है। पञ्चों की संख्या पहले पाँच हुआ करती थी, अब प्रायः पाँच से अधिक होती है। किन्तु पञ्चों में सदा से सब बिरादरियों के प्रतिनिधि शामिल रहे हैं। जब कभी कोई झगड़ा पैदा होता है ये पञ्च ही प्राचीन मर्यादा के अनुसार उसका फ़ैसला करते हैं, और जब कभी कोई नए ढङ्ग का प्रश्न उपस्थित होता है तो ये पञ्च ही नए नियम बनाकर भविष्य के लिए मर्यादा क़ायम करते हैं।"†

* ". . . . the village Community was, as it is still, the unit of social, industrial, and political existence."—Torrens' *Empire in Asia*, p. 100.

† "Time out of mind, the village and its common interests

सर जॉन मैलकम लिखता है—

"भारत की म्युनिसिपल और ग्राम संस्थाओं को बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी समस्त श्रेणियों के लोगों ने मिल कर जो अधिकार दे रक्खे थे उनके कारण ये संस्थाएँ अपने अपने दायरे के अन्दर शान्ति और सुशासन क़ायम रखने की पूरी सामर्थ्य रखती थीं। मध्य भारत में अन्यायी से अन्यायी शासकों ने भी कभी इन संस्थाओं के स्वत्वों और उनके अधिकारों पर एतराज़ नहीं किया, जब कि समस्त न्याय-प्रेमी नरेशों की कीर्ति और सर्व-प्रियता का मुख्य कारण यही होता था कि वे इन संस्थाओं की ओर ध्यान देते रहते थे।"*

सर टामस मनरो, जो भारत के अन्य भागों से भी अच्छी तरह परिचित था, लिखता है—

"समस्त भारतीय ग्रामों में एक विधिवत सङ्गठित म्युनिसिपैल्टी होती थी। ये म्युनिसिपैल्टी ही ग्राम के माल तथा पुलिस दोनों महकमों पर

---

and affairs have been ruled over by a council of elders, anciently five in number, now frequently more numerous, but always representative in character, who, when any dispute arises, declare what is the customary law, and who, when any new or unprecedented case occurs, occasionally legislate,"—Ibid p. 101.

* "The Municipal and village institutions of India were competent, from the power given them by the common assent of all ranks, to maintain order and peace within their respective circles. In Central India, their rights and privileges never were contested even by tyrants, while all just princes founded their chief reputation and claim to popularity on attention to them."
—Malcolm. vol. i. Chap. xii, Ibid, p. 101.

शासन करती थीं और बहुत बड़े दरजे तक अपराधियों को दण्ड देने और मुक़दमों के फ़ैसला करने का भी काम करती थीं ।"*

सर टॉमस मनरो ने बड़े विस्तार के साथ बयान किया है कि इन सुसङ्गठित ग्राम पञ्चायतों में कौन कौन कर्मचारी होते थे, उनके क्या क्या अधिकार और क्या क्या कर्त्तव्य होते थे, सार्वजनिक कोषाध्यक्ष और मैजिस्ट्रेट के पद एक दूसरे से पृथक और स्वतन्त्र होते थे, ग्रामनिवासियों के जान माल की रक्षा के लिए प्रत्येक पञ्चायत के अधीन 'तहारों' (?) अथवा कॉंस्टेबलों का एक दल होता था, इत्यादि ।

टॉरेन्स लिखता है कि भारत की इन ग्राम-संस्थाओं में सबसे अधिक विचित्र प्रणाली जूरियों की थी । दीवानी तथा फ़ौजदारी तमाम मुक़दमों के लिए अलग अलग पञ्च चुने जाते थे। इन पञ्चों का निर्णय सबके लिए मान्य होता था । पञ्चों को सदा जनता चुनती थी । उच्च से उच्च चरित्र, साहस और त्याग के मनुष्य इन पञ्चायतों के मुखिया चुने जाते थे । मैलकम लिखता है कि ये मुखिया प्रायः वे लोग होते थे जो प्रत्येक न्याय-प्रेमी नरेश की सहायता करते थे और प्रत्येक अन्यायी नरेश का साहस-पूर्वक विरोध करते थे और ग्राम के जीवन की उसके अन्याय से रक्षा

* "In all Indian villages there was a regularly constituted municipality, by which its affairs, both of revenue and police, were administered, and which exercised, to a very great extent, Magisterial and Judicial authority."—Sir Thomas Munro, Ibid. p. 101.

करते थे। हर श्रेणी और हर बिरादरी के लोगों में से पञ्च चुने जाते थे। वादी और प्रतिवादी दोनों को पञ्चों के चुनाव पर एतराज़ करने का अधिकार होता था। ये ही ग्राम पञ्चायतें अत्यन्त प्राचीन समय से लेकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आने के समय तक भारतीय न्याय प्रणाली के रग पट्ठे थीं। भारतवासियों के चरित्र पर इनका प्रभाव अत्यन्त अद्भुत पड़ता था। मैलकम लिखता है कि—"यदि कभी किसी आपत्ति के समय कोई मनुष्य अपना घर अथवा खेत छोड़कर कहीं चला जाता था तो वह अथवा उसकी सन्तति जब चाहे अपने झोपड़े अथवा अपने खेत पर फिर से आकर क़ब्ज़ा कर लेती थी, न किसी दीवार के लिए कोई झगड़ा होता था और न किसी खेत के लिए मुक़दमेबाज़ी।"* प्रत्येक किसान अपनी भूमि का अनन्य स्वामी समझा जाता था। मनरो लिखता है कि उस समय के भारतवासी "सरल, निष्पाप, और ईमानदार होते थे और इतने सच्चे होते थे जितने कि संसार के किसी भी अन्य देश के लोग हो सकते थे।"†

इन सहस्रों वर्षों की ग्राम संस्थाओं पर सबसे पहला आक्रमण उस समय हुआ जबकि बङ्गाल के अन्दर मीर जाफ़र और मीर

---

* "Every wall of a house, every field, was taken possession of by the owner or cultivator without dispute or litigation."—Malcolm, vol. ii, Chap. i, Ibid, p. 100.

† "Simple, harmless, honest and having as much truth in them as any people in the world."—Munro, vol. i, p. 280, Ibid, p. 100.

क़ासिम के शासन काल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भयङ्कर औद्योगिक, व्यापारिक तथा प्रायः अनावृत लूट का दौर शुरू हुआ। दूसरा विधिवत आक्रमण भारत की ग्राम-पञ्चायतों पर सन् १७७३ में हुआ जबकि वारन हेस्टिंग्स के शासन काल में इङ्गलिस्तान के अन्दर 'रेगुलेशन ऐक्ट' नामक क़ानून पास हुआ, जिसके अनुसार वारन हेस्टिंग्स के सुप्रसिद्ध मित्र सर एलाइजाह इम्पे के अधीन कलकत्ते में पहली अङ्गरेज़ी हाईकोर्ट क़ायम हुई। उस समय से ही, टॉरेन्स लिखता है—

"जिन म्युनिसिपल संस्थाओं का इससे पूर्व के समस्त राज्य परिवर्तनों में मुसलमान अथवा मराठे समस्त नरेश पूरा आदर करते रहे और उन्होंने इन संस्थाओं को निस्सन्देह अखण्ड क़ायम रक्खा, अब इन्हीं प्राचीन संस्थाओं की सर्वथा अवहेलना की गई। इनमें से अनेक संस्थाओं को निर्दयता के साथ उखाड़ कर फेंक दिया गया और नवीन विदेशी शासन-प्रणाली उनकी जगह क़ायम कर दी गई। देशी पञ्चायत के स्थान पर अब एक स्वेच्छाचारी जज बैठा दिया गया।"*

आगे चलकर टॉरेन्स लिखता है—

"कोई भी बुद्धिमान अथवा न्याय-प्रेमी इतिहास-लेखक इन कार्यों

* "Yet these Municipal institutions, which confessedly had been scrupulously respected in all former changes of dynasty, whether Mohammadan or Maratha, were hence forth to be disregarded, and many of them to be rudely uprooted by the new system of foreign administration. Instead of the native Panchayat there was established an arbitrary Judge."—Ibid, p 102, 103.

बिना आश्चर्य प्रकट किए और उन्हें निन्दनीय ठहराए उनका उल्लेख नहीं कर सकता।"*

कॉर्नवालिस ने देश भर में नई अङ्गरेज़ी अदालतें क़ायम करके इन भारतीय ग्राम पञ्चायतों के रहे सहे चिन्हों का अब सदा के लिए अन्त कर दिया। कॉर्नवालिस के इन नवाचारों को 'शासन सुधारों' का नाम दिया जाता है। इतिहास-लेखक मिल ने बड़ी योग्यता और विस्तार के साथ दर्शाया है कि किस प्रकार कॉर्नवालिस के इन 'शासन-सुधारों' (?) ने भारत की प्राचीन ग्राम पञ्चायतों का सत्यानाश कर दिया, नई अङ्गरेज़ी कचहरियों की तमाम कारवाइयों को जान बूझकर लम्बा और पेचीदा बना दिया, वकीलों को जन्म दिया और इस तरह के क़ानून बना दिए कि बिना वकील की मदद के किसी मुक़दमे का चल सकना लगभग असम्भव हो गया, ग़रीबों के लिए न्याय प्राप्त कर सकना नामुमकिन कर दिया, सरकार के लिए एक तरह के नियम और साधारण प्रजा के लिए दूसरी तरह के नियम रखकर सरकार के लिए अपनी मालगुज़ारी वसूल कर सकना सस्ता और आसान कर दिया, इङ्गलिस्तान के हज़ारों निकम्मे लड़कों की जीविका का सुन्दर प्रबन्ध कर दिया, और भारतवासियों में मुक़दमेबाज़ी, जालसाज़ी, दरोग़हलफ़ी, रिशवत सितानी, फूट और बरबादी के फ़ैलने के लिए मैदान साफ़ कर दिया।"†

* "No wise or just historian will note these things without expressions of wonder and condemnation."—Ibid p. 103

† Mill, vol, v, p. 355, etc.

इन सब सुधारों (?) और उनके नतीजों को यहाँ और अधिक विस्तार के साथ वर्णन करना व्यर्थ है। निस्सन्देह भारतवासियों के चरित्र पर इनका परिणाम सब से अधिक नाशकर हुआ।

सुप्रसिद्ध अङ्गरेज़ विद्वान एस० लौब लिखता है—

"हमारी न्याय-प्रणाली कितनी घृणास्पद है! वकालत की जिस पाश्चात्य प्रथा को हम इस देश में प्रचलित करने के भरसक प्रयत्न कर रहे हैं, क्या उससे अधिक सदाचार से सर्वथा गिरी हुई किसी दूसरी प्रथा का अनुमान भी किया जा सकता है? ××× क्या हमारी अदालतें रिशवत लेने देने के अड्डे नहीं हैं? और क्या मुक़दमेबाज़ी का शौक़ क़ौम के दिमाग़ पर लगनी बीमारी की तरह असर करके उसे पूरी तरह सदाचार-भ्रष्ट नहीं कर रहा है? जहाँ तक हो सके वहाँ तक लोगों को अपने मुक़दमे आपस ही में तय करने का मौक़ा क्यों न दिया जाय।"*

किन्तु कॉर्नवालिस ख़ूब समझता था कि किसी भी परतन्त्र देश में पराजित क़ौम को चरित्र-भ्रष्ट कर देने और उसे चरित्र-भ्रष्ट रखने में ही विदेशी शासकों का सब से अधिक बल है।

* "Look at our miserable legal system. Can anything be conceived more thoroughly immoral than the system of Western Advocacy which we are doing our best to introduce into this country? . . . are not our law-courts hot-beds of corruption, and is not the love of litigation contaminating and thoroughly perverting the national mind? Why not let the people settle their own disputes as far as possible?"—S. Lobb, the famous English Positivist.

इस्तमरारी बन्दोबस्त

लॉर्ड कॉर्नवालिस के शासन काल की सब से अधिक महत्व की घटना बङ्गाल का इस्तमरारी बन्दोबस्त बताई जाती है। असली कारण यह था कि जिस समय कम्पनी ने तीनों प्रान्तों की दीवानी दिल्ली सम्राट से प्राप्त की और धीरे धीरे उन प्रान्तों पर अपना शासन जमाना शुरू किया उस समय से उन्होंने हर जगह नया बन्दोबस्त करके सरकारी लगान बेहद बढ़ा दिया, जिसका ज़िक्र एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। एडमण्ड बर्क लिखता है कि लगान बेहद बढ़ा दिए जाने के कारण ही सारा "देश वीरान दिखाई देने लगा।"* इस लगान बढ़ाए जाने ही का एक परिणाम बङ्गाल भर के अन्दर सन् १७७० का वह भयङ्कर दुष्काल था जिसके समान आपत्ति देश पर पहले कभी न आई थी और जिसमें लाखों गाँव उजड़ गए।

जिस समय कॉर्नवालिस बङ्गाल पहुँचा, कम्पनी का ख़ज़ाना ख़ाली पड़ा था, अच्छी से अच्छी ज़मीन बिना जोती बोई और वीरान पड़ी हुई थी और अधिकांश ज़मींदारों के ज़िम्मे कई कई साल का लगान बाक़ी चला आ रहा था जिसे चुका सकना उनकी शक्ति से सर्वथा बाहर था। इस शोचनीय अवस्था में कम्पनी को दिवाले से बचाने का केवल एक ही उपाय हो सकता था। वह यह था कि नए सिरे से बन्दोबस्त करके सदा के लिए एक मुनासिब लगान

* "The country has turned into a desert."—Edmund Burk.

निश्चित कर दिया जाय। कॉर्नवालिस से दस वर्ष पहले कुछ अङ्गरेज़ अफ़सर इस उपाय की सलाह दे चुके थे और कम्पनी के डाइरेक्टरों ने कॉर्नवालिस को भारत भेजते समय उसे इस्तमरारी बन्दोबस्त करने की हिदायत कर दी थी।

इस इस्तमरारी बन्दोबस्त के साथ साथ कॉर्नवालिस ने यह क़ानून भी पास कर दिया कि जिन जिन ज़मींदारों के ज़िम्मे लगान बाक़ी है उनकी ज़मींदारियाँ फ़ौरन् नीलाम कर दी जावें और ज्योंही भविष्य में किसी के ज़िम्मे बक़ाया निकले, योंही उसकी ज़मींदारी नीलाम कर दी जाय, और ऐसे मौक़ों पर बड़ी बड़ी ज़मींदारियों के टुकड़े करके उन्हें अलग अलग नीलाम किया जाय।

एक अङ्गरेज़ लेखक लिखता है कि कॉर्नवालिस के इस्तमरारी बन्दोबस्त के दस वर्ष के अन्दर बङ्गाल भर की तमाम ज़मींदारियों की शकलें और उनके मालिक सब बदल गए। इस प्रकार कॉर्नवालिस ने इस्तमरारी बन्दोबस्त के बहाने बङ्गाल के हज़ारों पुराने घरानों और तमाम बड़ी बड़ी ज़मींदारियों का ख़ात्मा कर दिया और उनकी जगह नए छोटे छोटे निर्बल तथा ख़ुशामदी ज़मींदार पैदा कर दिए।*

देश की दशा

कॉर्नवालिस के समय में हिन्दोस्तान का केवल थोड़ा सा हिस्सा कम्पनी के अधीन था और शेष बहुत बड़ा हिस्सा मराठों, टीपू

* *Memorandum on the Revenue Administration of the Lower provinces of Bengal*, by J. Macneile, p. 9.

निज़ाम और नवाब अवध के शासन में था, किन्तु दोनों हिस्सों की तुलना अत्यन्त शिक्षाप्रद थी। ब्रिटिश भारत चारों ओर उजाड़, दरिद्र और वीरान नज़र आता था और देशी भारत इधर से उधर तक हरा भरा, खुशहाल और आबाद दिखाई देता था। देशी भारत के अन्दर की परस्पर लड़ाइयाँ भी प्रजा की समृद्धि के लिए उतनी घातक न होती थीं जितनी ब्रिटिश भारत का लगातार कुशासन और आए दिन की जायज़ और नाजायज़ लूट। प्रजा के जान माल की उस समय के ब्रिटिश भारत में कोई भी क़द्र या हिफ़ाज़त न थी। इस कथन के समर्थन में उस समय के अनेक देशी तथा विदेशी लेखकों की गवाही पेश की जा सकती है। किन्तु हम यहाँ पर केवल कम्पनी की एक सरकारी रिपोर्ट से एक वाक्य उद्धृत करते हैं। सन् १८१२ की पाँचवीं सरकारी रिपोर्ट में दर्ज है—

"राजशाही में डकैती खूब फैली हुई है। ××× तथापि लोगों की हालत की ओर क़ाफ़ी ध्यान नहीं दिया जाता। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि वास्तव में जान और माल की कोई हिफ़ाज़त नहीं की जाती। बङ्गाल के अधिकांश ज़िलों की यही हालत है।"*

वास्तव में कम्पनी के शासन से पहले बुरे से बुरे समय में भी

---

* "That dacoity is very prevalent in Raj Shaye. . . . Yet the situation of the people is not sufficiently attended to. It can not be denied, that, in point of fact, there is no protection for persons or property. Such is the state of things which prevails in most of the Zillahs in Bengal."—*The Fifth Report of 1812*

देश की कभी वह हालत न हुई थी जो कम्पनी के शासन के तीस वर्ष के अन्दर दिखाई दे गई।

सात वर्ष भारत में शासन करने के बाद लॉर्ड कॉर्नवालिस सन् १७९३ में विलायत लौट गया। उसे दोबारा हिन्दोस्तान भेजा गया, किन्तु उसके चन्द महीने के अन्दर हिन्दोस्तान ही में उसकी मृत्यु हो गई।

वास्तव में भारत के अन्दर अङ्गरेज़ी सत्ता की जड़ों को मज़बूत करने में कॉर्नवालिस ने ख़ास हिस्सा लिया।

बारहवाँ अध्याय

सर जॉन शोर

[१७९३-१७९८]

सर जॉन शोर की नियुक्ति

सर जॉन शोर वारन हेस्टिंग्स के समय में बङ्गाल के अन्दर कम्पनी का एक साधारण नौकर रह चुका था। वारन हेस्टिंग्स का वह पट्ट शिष्य था और वारन हेस्टिंग्स ही के कारण उसने इतनी उन्नति की।

इङ्गलिस्तान के मन्त्रियों और कम्पनी के डाइरेक्टरों ने मिलकर जिस समय सर जॉन शोर को गवरनर-जनरल बनाकर भेजने का इरादा किया उस समय पार्लिमेण्ट में वारन हेस्टिंग्स के ऊपर मुक़दमा चल रहा था। एडमण्ड बर्क उस मुक़दमे में सरकारी वकील था। बर्क ने कम्पनी के डाइरेक्टरों को लिखा—

"XXX हमें पता लगा है कि जिन जुर्मों का इलज़ाम वारन

हेस्टिंग्स पर लगाया जा रहा है उनमें से कुछ में मिस्टर शोर वास्तव में हेस्टिंग्स का एक ख़ास साथी और सहायक था। ×××

*　　　*　　　*

"ऐसी हालत में आपके लिए यह सोच लेना बुद्धिमत्ता होगी कि एक ऐसे आदमी को, जिसका चरित्र ज़ाहिरा आप ही के काग़ज़ात से अत्यन्त निन्दनीय मालूम होता है, सब से ऊँचे और सब से अधिक अधिकार युक्त पद पर नियुक्त करने के क्या नतीजे हो सकते हैं ×××।"*

बर्क ने एक इससे भी कहीं अधिक ज़ोरदार पत्र इङ्गलिस्तान के 'भारत मन्त्री' हेनरी डण्डास के पास भेजा।

किन्तु इन पत्रों का वहाँ के अधिकारियों पर कोई असर न हुआ और २८ अक्तूबर सन् १७९३ को सर जॉन शोर ने कलकत्ते पहुँचकर गवरनर-जनरली का काम सँभाल लिया।

उसी वर्ष पार्लिमेण्ट ने एक नए शाही चारटर के ज़रिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ज़िन्दगी बीस वर्ष के लिए और बढ़ा दी।

---

* ". . . we have found Mr. Shore materially concerned as a principal actor and party in certain of the offences charged upon Mr. Hastings; . . .

*　　　*　　　*　　　*

"In that situation, it is for the prudence of the court to consider the consequences which possibly may follow from sending out, in offices of the highest rank and of the highest possible power, persons whose conduct, appearing on their own Records, is, at the first view, very reprehensible; . . ."
—Letter from Edmund Burke to Francis Baring Chairman of the Court of Directors, dated October 14th, 1792.

हिन्दोस्तान के बने हुए माल और ख़ासकर हिन्दोस्तान के बुने हुए कपड़े का इङ्गलिस्तान जाना बन्द कर देने के लिए उस समय उस देश में ज़बरदस्त आन्दोलन जारी था।

मीर जाफ़र के उत्तराधिकारी अभी तक मुर्शिदाबाद की नुमाइशी मसनद पर बैठते चले आते थे। चुनाँचे सर जॉन शोर के भारत पहुँचने के एक महीने पहले ३७ वर्ष की आयु में २३ वर्ष की सूबेदारी की मसनद पर बैठने के बाद नवाब मुबारकुद्दौला की मृत्यु हुई। मुबारकुद्दौला के बारह लड़के और तेरह लड़कियाँ थीं, जिनमें सब से बड़े लड़के वज़ीरुद्दौला के मसनद पर बैठने का २८ सितम्बर सन् १७९३ को कलकत्ते में कम्पनी की ओर से बाक़ायदा एलान किया गया।

माधोजी सींधिया की हत्या

एक पिछले अध्याय में पहले मराठा युद्ध और सन् १७८२ की सालबाई वाली सन्धि का ज़िक्र आ चुका है। माधोराव नारायण उस समय पेशवा था। नाना फ़ड़नवीस उसका प्रधान मन्त्री था। और हत्यारे राघोबा को गोदावरी के तट पर कोपरगाँव भेज दिया गया था। सन् १७८४ के शुरू में कोपरगाँव ही में राघोबा की मृत्यु हुई। उसका बेटा बाजीराव, जिसकी आयु ९ वर्ष की थी, उस समय पूना में था।

माधोजी सींधिया वारन हेस्टिंग्स के हाथों की एक ख़ास कठपुतली था। माधोजी के साथ गुप्त सन्धियाँ और समझौते करके

हेस्टिंग्स उसके द्वारा एक ओर मराठों की शक्ति का नाश करना चाहता था और दूसरी ओर दिल्ली सम्राट के रहे सहे मान और उसके अधिकार का अन्त कर देना चाहता था। इङ्गलिस्तान पहुँच कर वारन हेस्टिंग्स पर जो अभियोग लगाए गए उनमें से एक यह था—

"मुग़ल सम्राट के थोड़े से रहे सहे इलाक़ों को छीन लेने के लिए वारन हेस्टिंग्स मराठा राज्य के प्रधान सेनापति माधोजी सींधिया से मिल गया; और जबकि एक ओर उसने अपना एक दूत इस काम के लिए दिल्ली भेज दिया कि वह वहाँ पर सम्राट और उसके वज़ीरों के साथ गुप्त साज़िशें जारी रक्खे ××× दूसरी ओर साथ ही साथ वह सम्राट और उसके वज़ीरों के ख़िलाफ़ बराबर मराठों से मिला रहा; मराठों के साथ भी उसने दग़ा की और उनसे बहाना यह लेता रहा कि मैं सम्राट से तुम्हारे अधिकारों की रक्षा कर रहा हूँ। इस प्रकार उसने उन सब के नाश की तदबीर की और सब का नाश कर डाला।"*

* ". . . Warren Hastings did unite with the Captain General of the Marhatta State, called Madoji Scindhia, in designs against the few remaining territories of the Moghul Emperor and that whilst he sent an agent to Delhi, and carried on intrigues with the King and his ministers, . . . he did all along concert with the Marhattas in their designs against the said King and his ministers, under the treacherous pretext of supporting the authority of the former against the latter, and did contrive to effect the ruin of them all, ..."—One of the charges against Warren Hastings in his impeachment in England.

वारन हेस्टिंग्स ही की सलाह से माधोजी सींधिया ने एक ज़बर-दस्त सेना रक्खी, उस सेना में यूरोपियन अफ़सर रक्खे और वारन हेस्टिंग्स की ख़ास सिफ़ारिश पर दी बौयन नामक एक यूरोपियन को इस सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त किया। इसी सेना को लेकर माधोजी ने दिल्ली के आसपास के इलाक़ों पर हमला किया और सम्राट को कुछ समय के लिए एक प्रकार अपना बन्दी बना लिया। अंग्रेज़ उस समय तक सम्राट की प्रजा थे और बराबर अपने इलाकों के लिए सम्राट को ख़िराज दिया करते थे। तथापि वारन हेस्टिंग्स ने बजाय सम्राट की सहायता करने के माधोजी को हर तरह उत्तेजित किया और बाद में अङ्गरेज़ों ने सम्राट की असहाय अवस्था से लाभ उठाकर ख़िराज भेजना बन्द कर दिया।

माधोजी के बढ़ते हुए बल को देखकर महाराष्ट्र मण्डल के अन्य सदस्यों को ईर्षा होना स्वाभाविक था। अन्त में यह ईर्षा ही मराठों की सत्ता के नाश का सबसे प्रबल कारण साबित हुई। कलकत्ते की कौन्सिल की कारवाई में दर्ज है कि एक बार कौन्सिल के कुछ सदस्यों ने यह शङ्का प्रकट की कि माधोजी के बल का इस प्रकार बढ़ते जाना कम्पनी के लिए ख़तरनाक है। इस पर वारन हेस्टिंग्स ने उन्हें विश्वास दिलाया कि माधोजी की नई सेना ही अन्त में उसके विनाश का कारण होगी। निस्सन्देह वारन हेस्टिंग्स को अपनी चाल पर पूरा क़ाबू था, और उसके जीवन ही में उसकी यह भविष्यद्वाणी सच्ची साबित होगई।

माधोजी सींधिया का बल अब बढ़ता जा रहा था। अङ्गरेज़ों

के लिए उसे एक सीमा के अन्दर रखना आवश्यक था। माधोजी सींधिया और नाना फ़ड़नवीस इन दोनों का बल ही महाराष्ट्र मण्डल में सबसे अधिक बढ़ा हुआ था। उस मण्डल का नाश करने के लिए अब अङ्गरेज़ों का इन दोनों के बल को तोड़ना आवश्यक था। पेशवा माधोराव नारायण पूरी तरह नाना के कहने में था। पूना में माधोराव नारायण को मसनद से उतार कर उसकी जगह राघोबा के बालक पुत्र बाजीराव को पेशवा बनाने के लिए एक गुप्त षड्यन्त्र रचा गया। माधोजी सींधिया को भी इस षड्यन्त्र में शामिल कर लिया गया। किन्तु नाना फ़ड़नवीस को इसका पता चला गया। उसने पेशवा की आज्ञा से बाजीराव को गिरफ़्तार करके पूना में क़ैद कर दिया।

माधोजी सींधिया उस समय दिल्ली सम्राट का प्रधान संरक्षक बना हुआ था। वारन हेस्टिंग्स ने माधोजी से वादा कर लिया था कि कम्पनी की ओर से सम्राट का वार्षिक ख़िराज आयन्दा आप को दिया जाया करेगा। मालूम होता है हेस्टिंग्स के समय में यह मामला यूँही टलता रहा। हेस्टिंग्स के बाद माधोजी ने गवरनर-जनरल मैक्फ़रसन से सम्राट के नाम पर ख़िराज तलब किया। मैक्फ़रसन ने टला दिया। अन्त में कॉर्नवालिस ने ख़िराज देने से सदा के लिए साफ़ इनकार कर दिया। इस पर दिल्ली सम्राट ने स्वयं माधोजी को पत्र लिखा कि तुम कलकत्ते पहुँचकर कम्पनी से शाही ख़िराज वसूल करो। सम्राट ने एक दूसरा पत्र नाना फ़ड़नवीस को लिखा और कम्पनी से शाही ख़िराज वसूल करने

दरबार की मदद चाही। माधोजी का उस समय कर्तव्य था कि कलकत्ते पर चढ़ाई करके जिस तरह हो कम्पनी से शाही खिराज वसूल करता। किन्तु माधोजी अपनी कमज़ोरियों को खूब जानता था। अङ्गरेज़ माधोजी के बल को तोड़ने की पहले ही से कोशिशें कर रहे थे। इतिहास-लेखक ग्राण्ट डफ़ लिखता है—

"मिस्टर मैक्फ़रसन ने यह सोचकर कि सींधिया की राजनैतिक महत्वाकांक्षा अत्यन्त ख़तरनाक हो चली है, दूसरे मराठा नरेशों में सींधिया के प्रति जो ईर्षा और प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गई थी, उसे और अधिक भड़काकर सींधिया की उन्नति को रोकने के लिए उसके मुक़ाबले में दूसरी ताक़तें खड़ी कर देने की कोशिश की।" *

मॉस्टिन के बाद से अब तक कोई अङ्गरेज़ एलची पेशवा के दरबार में न भेजा गया था। अब चार्ल्स मैलेट कम्पनी का एलची नियुक्त होकर पूना पहुँचा। चार्ल्स मैलेट का मुख्य काम माधोजी सींधिया के ख़िलाफ़ दूसरे मराठा नरेशों को भड़काना और नाना के विरुद्ध गुप्त साज़िशें करना था। माधोजी के चित्त में भी अङ्गरेज़ों की ओर से काफ़ी शङ्काएँ थीं। स्वयं कॉर्नवालिस का

---

* "Mr. Macpherson conceived that the ambitious nature of Scindhia's policy was very dangerous and endeavoured to raise some counterpoise to his progress by exciting the jealousy and rivalry already entertained towards him among the other Marhatta chiefs."—Grant Duff's *History of the Marhattas*, p. 463.

व्यवहार उसकी ओर ख़ासा रूखा रहा। मूदाजी भोंसले के साथ अङ्गरेज़ों ने अब इस प्रकार का व्यवहार शुरू किया, जिससे माधोजी सींधिया को सन्देह होगया कि अङ्गरेज़ मेरे विरुद्ध मूदाजी को तैयार कर रहे हैं। अन्त में माधोजी इस कठिन समस्या के विषय में नाना फ़ड़नवीस से सलाह करने के लिए पूना आया। किन्तु इस दरमियान चार्ल्स मैलेट ने पूना में रहकर माधोजी के विरुद्ध काफ़ी सामान पैदा कर दिया था।

अहल्याबाई होलकर के आदर्श चरित्र और आदर्श शासन का ज़िक्र एक पिछले अध्याय में आ चुका है। अहल्याबाई के तीस वर्ष के शासन में उसकी प्रजा संसार में सब से सुखी और सब से ख़ुशहाल गिनी जाती थी। विदेशियों के साथ अधिक मेल जोल रखने के अहल्याबाई सदा विरुद्ध रही। निज देशवासियों के विरुद्ध विदेशियों के साथ 'गुप्त सन्धियाँ' करना उसके लिए असम्भव था। किन्तु अहल्याबाई की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी तुकाजी होलकर में न वह योग्यता रह गई थी और न वह चरित्र। अङ्गरेज़ों ने तुकाजी को माधोजी सींधिया के विरुद्ध भड़काना शुरू किया, और ठीक उस समय जब कि माधोजी नाना फ़ड़नवीस से सलाह करने के लिए पूना आया, तुकाजी होलकर ने माधोजी के राज्य पर हमला कर दिया।

ग्राण्ट डफ़ के इतिहास से मालूम होता है कि होलकर और सींधिया में उस समय कोई ख़ास झगड़ा न था, बल्कि माधोजी सींधिया तुकाजी होलकर के साथ प्रेम से रहने के लिए उत्सुक था।

तुकाजी होलकर का माधोजी सींधिया के राज्य पर हमला करना समस्त मराठा इतिहास में एक मराठा नरेश के दूसरे मराठा नरेश पर हमला करने की पहली मिसाल थी। वास्तव में महाराष्ट्र मण्डल का अब लगभग ख़ात्मा हो चुका था। गायकवाड़ और भोंसले पहले ही मण्डल से टूट चुके थे। सींधिया और होलकर की यह दशा हो रही थी। इन चारों की इस शोचनीय अवस्था में अकेला पेशवा दरबार मण्डल की उस इमारत को, जिसकी बुनियादें हिल चुकी थीं, कब तक सँभाल सकता था !

सींधिया की अभ्यस्त सेना ने, जिसका प्रधान सेनापति दी बौयन था, होलकर की सेना को हरा दिया। किन्तु होलकर ने पीछे लौटते हुए सींधिया के राज्य को ख़ूब रौंदा और सींधिया के मुख्य नगर उज्जैन को अच्छी तरह लूटा। इस समय से ही सींधिया और होलकर के कुलों में परस्पर वैमनस्य पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहा। इसके बाद होलकर ने भी अङ्गरेज़ों की सलाह से अपनी सेना में यूरोपियन अफ़सर नियुक्त करना शुरू कर दिया। वह दोबारा सींधिया राज्य पर हमला करने का इरादा कर रहा था।

एक ओर तुकाजी होलकर की शत्रुता और दूसरी ओर उसकी अपनी सेना में दी बौयन तथा अन्य अनेक यूरोपियनों का ऊँचे पदों पर होना, इन दोनों बातों ने माधोजी सींधिया को इस समय ख़ासा जकड़ रक्खा था। वह ख़ूब समझ चुका था कि ये यूरोपियन मुलाज़िम अङ्गरेज़ों के विरुद्ध मेरा साथ कभी न देंगे।

इसके बहुत दिन पहले नाना फ़ड़नवीस ने एक बार माधोजी से कहा था—

"अङ्गरेज़ों को इस साम्राज्य में पैर रखने की जगह नहीं मिलनी चाहिए; यदि उन्हें पैर रखने की जगह मिल गई तो सारा देश ख़तरे में पड़ जावेगा।"

माधोजी को अब नाना के ये शब्द बार बार याद आते थे। वह अपने पिछले कृत्यों पर पछता रहा था और कम्पनी से शाही ख़िराज वसूल करने के सम्बन्ध में सम्राट के पत्रों पर तथा इस समस्त स्थिति पर नाना से सलाह करने के लिए पूना आया हुआ था। निस्सन्देह दिल्ली के सम्राट, माधोजी सींधिया और पेशवा, तीनों में इस प्रकार मेल हो जाना और माधोजी का तीनों की ओर से सेना लेकर शाही ख़िराज वसूल करने के लिए कलकत्ते पर चढ़ाई करना उस समय कम्पनी के लिए अत्यन्त आपत्तिजनक हो सकता था।

जब कि माधोजी सींधिया पूना में पेशवा और नाना फ़ड़नवीस के साथ सलाहें कर ही रहा था, १२ फ़रवरी सन् १७९४ को पूना के निकट वनौरी नामक स्थान पर अचानक माधोजी सींधिया की मृत्यु हो गई।

इतिहास-लेखक ग्राण्ट डफ़ इस मृत्यु का कारण यह लिखता है कि माधोजी को अचानक "ज़ोर का बुख़ार" आगया। किन्तु माधोजी के जीवन चरित्र का अङ्गरेज़ रचयिता कीन कुछ और भेद खोलता है। वह 'तारीख़े-मुज़फ़्फ़री' के आधार पर लिखता है—

"मृत्यु से पहली शाम को एक हथियारबन्द गिरोह ने माधोजी को रास्ते में घेर कर मारा ।"* कौन लिखता है—"नाना ने इस गिरोह को इस कार्य के लिए नियुक्त किया था ।" और कौन की राय है—"निस्सन्देह माधोजी की मौत चाहने के लिए नाना के पास काफ़ी वजह थी ।"

इसमें सन्देह नहीं कि माधोजी सींधिया को मरवा डाला गया । किन्तु नाना पर उसका दोष मढ़ना साफ़ झूठ और अन्याय है। न नाना के पास उस समय "माधोजी की मौत चाहने के लिए कोई वजह थी" और न नाना का चरित्र इस ढङ्ग का था । इसके विपरीत अङ्गरेज़ों के पास "माधोजी की मौत चाहने के लिए निस्सन्देह काफ़ी वजह थी ।" और मैलेट और मॉस्टिन दोनों की राशि भी एक थी । ग्राण्ट डफ़ साफ़ लिखता है—

"सींधिया की शक्ति और उसकी महत्वाकांक्षा, उसका पूना जाना और सब से बढ़ कर देश के आम लोगों की उस समय की राय, इन सब कारणों से अङ्गरेज़ माधोजी पर सन्देह करने लगे थे; इसलिए अङ्गरेज़ों के काग़ज़ों में हमें इस बात के अनेक सुबूत मिलते हैं कि वे माधोजी की सब कारवाइयों को ईर्षा के साथ देख रहे थे ।"†

---

* "Madhoji had been way laid the evening before by an armed gang . . . ."—Keene's *Madhoji Scindhia.*

† ". . . his power and ambition, his march to Poona, and above all, the general opinion of the country, led the English to suspect him ; and we accordingly find in their records various proofs of watchful jealousy ; . . . "—Grant Duff.

ग्राण्ट डफ़ से ही यह भी पता चलता है कि माधोजी के पूना पहुँचने के बाद ही दिल्ली के एक हिन्दोस्तानी अख़बार में एक लेख निकला था कि दिल्ली के सम्राट ने पेशवा और माधोजी दोनों के नाम अपने बङ्गाल के ख़िराज के सम्बन्ध में पत्र लिखे हैं और उनसे मदद चाही है। माधोजी सींधिया की हत्या से कम्पनी के मार्ग का एक ज़बरदस्त काँटा दूर हो गया।

उस समय के सरकारी पत्र-व्यवहार में दोनों बातें बिलकुल स्पष्ट हैं। एक यह कि अङ्गरेज़ों ने होलकर को सींधिया पर हमला करने के लिए उकसाया और दूसरे यह कि अङ्गरेज़ माधोजी सींधिया के विरुद्ध साज़िशें कर रहे थे। जिस समय माधोजी अपने राज्य से पूना की ओर रवाना हुआ, उसी समय गवरनर-जनरल ने सींधिया दरबार के अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट को वहाँ से वापस बुला लिया।

माधोजी की मृत्यु के समय कॉर्नवालिस इङ्गलिस्तान में था और सर जॉन शोर भारत में गवरनर-जनरल था। कॉर्नवालिस को जब माधोजी की मृत्यु का समाचार मिला, उसने ७ सितम्बर सन् १७९४ को प्रसन्न होकर सर जॉन शोर को लिखा—"सींधिया की मृत्यु से आपकी गवरमेण्ट की प्रत्येक राजनैतिक कठिनाई लगभग दूर हो जावेगी।"*

इससे अधिक सुबूत इस बात का और क्या हो सकता है कि

* "The death of Scindhia, . . . will nearly remove every political difficulty of your Government,"—Cornwallis' letter to Sir John Shore, September 7, 1794.

माधोजी की मृत्यु वास्तव में कौन चाहता था और उसकी हत्या करने वालों को किसने नियुक्त किया था।

पेशवा माधोराव नारायण की मृत्यु

किन्तु कम्पनी के मार्ग का दूसरा ज़बरदस्त कण्टक नाना फ़ड़-नवीस अभी मौजूद था। माधोजी सींधिया की हत्या के कारण महाराष्ट्र के अन्दर नाना और उसकी नीति की क़द्र और अधिक बढ़ गई। चार्ल्स मैलेट ने पूना से एक पत्र में लिखा कि—"जब तक पूना दरबार में नाना का ज़ोर है, तब तक मराठा राज्य के अन्दर मज़बूती से अपने पैर जमा सकने की हमें (अङ्गरेज़ों को) स्वप्न में भी आशा नहीं करनी चाहिए।"*

नाना फ़ड़नवीस के विरुद्ध अङ्गरेज़ों ने कई बार साज़िशें कीं, किन्तु सफलता न मिल सकी। पेशवा माधोराव नारायण पूरी तरह नाना के कहने में था। बिना उसे मसनद से हटाए कम्पनी को अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए अनुकूल अवसर न मिल सकता था। २७ अक्तूबर सन् १७९५ को कम्पनी के सौभाग्य से पेशवा माधो-राव दूसरा (माधोराव नारायण) अपने महल के छज्जे से गिर कर मर गया। इस पेशवा की मृत्यु के सम्बन्ध में ग्राण्ट डफ़ लिखता है कि—"२५ अक्तूबर को सवेरे पेशवा जान बूझकर अपने महल के एक छज्जे से कूद पड़ा, उसके दो अङ्गों की हड्डियाँ टूट गई

* "As long as Nana remained Supreme at the Poona Court they (the British) should never dream of obtaining a firm footing in the Marhatta Kingdom."—Charles Malet.

और एक फ़व्वारे की नली से, जिसके ऊपर वह आकर पड़ा, वह बहुत ज़ख़्मी हो गया। इसके बाद वह केवल दो दिन जिया।"*

कोई कोई अङ्गरेज़ यह भी लिखते हैं कि नाना फ़ड़नवीस से कुछ अनबन होने के कारण पेशवा ने इस प्रकार आत्महत्या कर ली।

किन्तु उस समय की तमाम परिस्थिति को देखने से यह मालूम होता है कि नाना और पेशवा के परस्पर वैमनस्य और आत्महत्या की यह कहानी केवल नाना के विरुद्ध लोगों के कान भरने के लिए गढ़ी गई थी। सम्भव है कि पेशवा का छज्जे से गिर पड़ना अकस्मात् हुआ हो, किन्तु इससे कहीं अधिक सम्भव यह है कि पेशवा के किसी दुशमन या नमकहराम सेवक ने उसे मौक़ा पाकर ढकेल दिया। मॉस्टिन के समय में राघोबा को पेशवा की मसनद पर बैठाने के लिए पेशवा नारायणराव की हत्या की जा चुकी थी; कौन आश्चर्य है, यदि मैलेट के समय में राघोबा के पुत्र बाजीराव को मसनद पर बैठाने के लिए नारायणराव के पुत्र पेशवा माधोराव दूसरे की हत्या कराई गई हो और मैलेट तथा बाजीराव के किसी गुप्तचर ने मौक़ा पाकर उसे छज्जे से ढकेल दिया हो! माधोराव की पैदायश के समय से अङ्गरेज़ बराबर उसके विरुद्ध थे और उसकी अकाल मृत्यु से उन्हें बेहद ख़ुशी हुई।

अन्तिम पेशवा बाजीराव

पेशवा माधोराव नारायण की आयु मृत्यु के समय केवल २१

* Grant Duff's *History of the Marhatas*, p. 521.

र्य की थी। उसके कोई पुत्र न था। किन्तु हिन्दू प्रथा के अनुसार उसकी विधवा को गोद लेने का अधिकार था। अङ्गरेज़ों ने इस समय राघोबा के पुत्र बाजीराव को पेशवा बनाने का प्रयत्न किया। तुकाजी होलकर अङ्गरेज़ों के कहने में था। पूना पहुँच कर उसने बाजीराव का पक्ष लिया। ग्राण्ट डफ़ लिखता है कि इस अवसर पर नाना ने तुकाजी को पूरी तरह समझाया कि—"बाजीराव की माँ ने शुरू से उसके दिल में तमाम पुराने अनुभवी मराठा नीतिज्ञों के प्रति द्वेष उत्पन्न कर दिया है, बाजीराव के वंश का अङ्गरेज़ों के साथ जो सम्बन्ध है वह मराठा साम्राज्य के लिए ख़तरनाक है। इस समय मराठा साम्राज्य के अन्दर ख़ासा ऐक्य है, चारों ओर प्रजा ख़ुशहाल है, और यदि इसी नीति का सावधानी के साथ पालन होता रहा तो भविष्य में बहुत अधिक लाभ की आशा की जा सकती है, इत्यादि।" ग्राण्ट डफ़ लिखता है कि इस प्रकार समझाने से तुकाजी होलकर तथा अन्य सरदार भी नाना के साथ सहमत हो गए। नाना की तजवीज़ यह थी कि पेशवा माधोराव नारायण की विधवा यशोदाबाई एक पुत्र गोद ले, जिसे सब लोग मिलकर तय करें और वह पुत्र ही पेशवा की मसनद पर बैठे। निस्सन्देह यह तजवीज़ हिन्दोस्तान की प्रथा के अनुकूल और मराठा मण्डल के लिए अत्यन्त हितकर थी। किन्तु दुर्भाग्यवश नाना को सफलता न हो सकी।

नवम्बर सन् १७९५ में रेज़िडेण्ट मैलेट ने नाना से दर्याफ़्त किया कि मसनद का उत्तराधिकारी कौन होगा। नाना ने उत्तर दिया कि

जब तक राष्ट्र के मुख्य मुख्य लोग मिलकर निर्णय न करें, तब तक विधवा यशोदाबाई मसनद की मालिक समझी जावेगी और निर्णय होने पर आपको सूचना दी जावेगी। अपने वादे के अनुसार जनवरी सन् १७९६ में नाना ने मैलेट को सूचना दी कि यशोदाबाई का एक पुत्र गोद लेना निश्चय होगया है और केवल लड़के का पसन्द किया जाना बाक़ी है। मैलेट को इस पर एतराज़ करने का कोई हक़ न था। तथापि नाना का मैलेट को समय से पहले अपनी तजवीज़ बता देना ही एक भयङ्कर भूल साबित हुई।

बाजीराव उस समय क़ैद में था। मैलेट को सूचना मिलते ही बाजीराव को ख़बर हो गई। मैलेट, बाजीराव और उसके अन्य साथियों की साज़िशों का परिणाम यह हुआ कि नाना की तजवीज़ पूरी होने से पहले ही बाजीराव क़ैद से निकल आया और नाना की इच्छा के विरुद्ध उसके पक्ष वालों ने उसके पेशवा होने का एलान कर दिया। बाजीराव मसनद पर बैठ गया, और बैठते ही उसने महाराष्ट्र मण्डल के सच्चे हितचिन्तक नाना फ़ड़नवीस के साथ वह शत्रुता निकाली, जिसके कारण नाना को पहले जान बचा कर भागना पड़ा और फिर कई वर्ष क़ैद में काटने पड़े।

बाजीराव कायर और निर्बल साबित हुआ। नाना फ़ड़नवीस की भविष्यद्वाणी उसके विषय में बिलकुल सच्ची निकली। बाजीराव अन्तिम पेशवा था और उसके मसनद पर बैठने के साथ ही साथ मराठा साम्राज्य के गौरव का अन्त हो गया। बाजीराव की अयोग्यता से अङ्गरेज़ों ने जिस तरह लाभ उठाकर

भारत से पेशवा सत्ता का सदा के लिए अन्त कर दिया, उसका वर्णन एक दूसरे अध्याय में किया जावेगा।

सर जॉन शोर और निज़ाम

निज़ाम के साथ भी सर जॉन शोर का व्यवहार न्याय अथवा ईमानदारी का न था। इसका पहला परिचय निज़ाम और मराठों की लड़ाई के समय मिला। निज़ाम और मराठों का 'चौथ' के विषय में कुछ झगड़ा था। दिल्ली सम्राट की आज्ञानुसार निज़ाम मराठों को वार्षिक 'चौथ' दिया करता था। मराठे कहते थे कि निज़ाम की ओर हमारी रक़म निकलती है। निज़ाम उन दिनों अङ्गरेज़ों और उनकी सबसीडीयरी सेना के बल भूला हुआ था। निज़ाम दरबार यह कहता था कि उलटा पेशवा दरबार के पास हमारे दो करोड़ साठ लाख रुपए ज्यादा चले गए हैं। पेशवा माधोराव नारायण का एक दूत गोविन्दराव काले हिसाब साफ़ करने के लिए निज़ाम के दरबार में पहुँचा। निज़ाम ने मराठा दूत के साथ अत्यन्त निरादर का बर्ताव किया। मराठों और निज़ाम में युद्ध अनिवार्य हो गया। माधोजी सींधिया की गद्दी पर इस समय उसका पौत्र दौलतराव सींधिया बैठा हुआ था। दौलतराव वीर और समझदार था। उसने मराठा सेना सहित निज़ाम पर चढ़ाई की। टीपू भी उस समय निज़ाम के विरुद्ध था। निज़ाम के एक मात्र साथी सर जॉन शोर ने ऐन मौक़े पर निज़ाम को मदद देने से इनकार कर दिया। यहाँ तक कि कम्पनी की जो सबसीडीयरी सेना निज़ाम के

इलाक़े में निज़ाम के ख़र्च पर और निज़ाम की मदद के लिए कड़ कर रक्खी गई थी उसने भी इस समय निज़ाम की मदद करने से इनकार कर दिया। परिणाम यह हुआ कि १५ मार्च सन् १७९५ को निज़ाम ने कुर्दला की लड़ाई में मराठों से हार खाई और मराठों की सब शर्तें स्वीकार कर लीं। इसके सात महीने बाद पेशवा माधोराव नारायण की मृत्यु हुई।

मजबूर होकर निज़ाम ने कुर्दला की लड़ाई के बाद सर जॉन शोर को लिखा कि कम्पनी की सेना मेरे यहाँ से हटा ली जाय। साथ ही उसने एक फ़्रान्सीसी अफ़सर मो० रेमौं (Raymond) को अपने यहाँ दूसरी सेना तैयार करने के लिए नौकर रक्खा और अपनी रक्षा के लिए रेमौं के अधीन कुछ सेना अपने सरहद्दी इलाक़ों में नियुक्त कर दी।

सर जॉन शोर ने तुरन्त निज़ाम की इन कारवाइयों पर एतराज़ किया और हैदराबाद के रेज़िडेण्ट द्वारा निज़ाम को धमकी दी कि यदि आपने अपने सरहद्दी इलाक़ों से नई फ़ौज न हटा ली तो कम्पनी उसके मुक़ाबले के लिए अपनी सेना रवाना करेगी। तथापि निज़ाम ने अब इन धमकियों की कुछ परवा न की। अङ्गरेज़ों को डर हो गया कि कहीं निज़ाम मराठों या टीपू के साथ मिलकर अङ्गरेज़ों के विरुद्ध खड़ा न हो जावे।

हैदराबाद के अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट ने तुरन्त निज़ाम के एक पुत्र आलीजाह को भड़काया। आलीजाह ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। निज़ाम को बेटे को वश में करने के लिए

सरहदी इलाक़े से अपनी फ़ौज वापस बुलानी पड़ी। आलीजाह क़ैद कर लिया गया और विद्रोह शान्त हो गया। किन्तु निज़ाम इस छोटी सी घटना से इतना डर गया कि उसने कम्पनी की सेना को फिर अपने यहाँ रखना स्वीकार कर लिया और उसकी अपनी सेना के विषय में जो जो शर्तें अङ्गरेज़ों ने पेश कीं, सब मान लीं।

सर जॉन शोर ने अब रेमौं को निज़ाम की सेना से निकलवा दिया और दो अङ्गरेज़ अफ़सर उस सेना को शिक्षा देने के लिए हैदराबाद भेजे। रेमौं होशियार और वफ़ादार था, ये दोनों अङ्गरेज़ अयोग्य निकले, तथापि निज़ाम को सर जॉन शोर की इच्छा पूरी करनी पड़ी। इसके बाद ज़िन्दगी भर निज़ाम अङ्गरेज़ों का विनीत और आज्ञाकारी सेवक बना रहा, और कम्पनी को अपने साम्राज्य की स्थापना में निज़ाम के कुल से सदा यथेच्छ मदद मिलती रही।

सर जॉन शोर और करनाटक

दक्षिण की एक दूसरी मुसलिम रियासत, जिससे सर जॉन शोर को वास्ता पड़ा, करनाटक की रियासत थी। करनाटक ही के नवाब को अरकाट का नवाब भी कहते थे। एक पिछले अध्याय में आ चुका है कि करनाटक के नवाब मोहम्मदअली से अङ्गरेज़ों को कितना फ़ायदा पहुँचता था, उससे किस प्रकार तरह-तरह से धन वसूल किया जाता था और किस प्रकार कम्पनी के नौकरों की माँगों को पूरा करने के लिए वह कुछ अङ्गरेज़ व्यापारियों ही के क़र्ज़ों में बेतरह दबा हुआ था।

अरकाट के नवाब के क़र्ज़ों का हाल इङ्गलिस्तान के मन्त्रियों और वहाँ की पार्लिमेण्ट के कानों तक भी पहुँच चुका था। इन क़र्ज़ों में कितने ही क़र्ज़े साफ़ ज़बरदस्ती और बेईमानी के थे और सूद दर सूद, बट्टे इत्यादि के हिसाब से बराबर बढ़ते चले जाते थे। अनेक बार पार्लिमेण्ट में इन क़र्ज़ों के विषय में पूछ ताछ की गई, किन्तु इङ्गलिस्तान के मन्त्री बराबर टालमटोल और तरह तरह की चालाकियों से काम लेते रहे। उदाहरण के लिए पाल बेन्फ़ील्ड नामक एक अङ्गरेज़ नवाब का एक ख़ास ऋणदाता था। किन्तु क़र्ज़ख़ाहों की जो सूचियाँ समय समय पर पार्लिमेण्ट के सामने पेश की जाती थीं उनमें बेन्फ़ील्ड का नाम कभी उड़ा दिया जाता था और कभी फिर जोड़ दिया जाता था। बात यह थी कि बेन्फ़ील्ड और उसके अनेक साथियों ने पार्लिमेण्ट के चुनाव के समय मन्त्रिमण्डल का पक्ष लेने वाले सदस्यों को चुनवा कर भेजने में ख़ूब धन ख़र्च किया था और मन्त्रियों के मुँह बन्द कर दिए थे। * पार्लिमेण्ट के अन्दर भी स्वभावतः सामयिक मन्त्रियों ही का बहुमत था।

इसी सम्बन्ध में इतिहास-लेखक विलियम हॉविट लिखता है—

"जिस ढङ्ग से यातनाएँ दे देकर भारतीय नरेशों की रियासतें ज़बर-दस्ती छीनी गई हैं वह यह है कि चालबाज़ लोगों ने पहले बड़ी होश-

* Thornton in his *History of British India*, 2nd Edition, 1859, pp, 181, 182.

यारी के साथ उन नरेशों को अपना क़र्ज़दार बनाया और फिर उन्हें अपनी अमित माँगों के सामने तुरन्त सर झुकाने के लिए विवश कर दिया।"*

१३ अक्तूबर सन् १७९५ को ७९ वर्ष की आयु में नवाब मोहम्मदअली की मृत्यु हुई। उसका बेटा नवाब उमदतुल उमरा करनाटक की मसनद पर बैठा और बाप के झूठे और अनसुने क़र्ज़े उसे उत्तराधिकार में मिले।

लॉर्ड कॉर्नवालिस के समय में कम्पनी और मोहम्मदअली के दरमियान एक सन्धि हो चुकी थी, जिससे करनाटक की सेना का समस्त प्रबन्ध अङ्गरेज़ों के हाथों में आ गया था, और करनाटक के कुछ ज़िले इन कर्ज़ों के बदले में नवाब से रहन रखा लिए गए थे। उमदतुल उमरा के मसनद पर बैठते ही मद्रास के गवरनर ने उस पर ज़ोर दिया कि आप रहन रक्खे हुए ज़िले और कुछ और क़िले सदा के लिए कम्पनी को दे दें। २८ अक्तूबर सन् १७९५ को सर जॉन शोर ने मद्रास के गवरनर को लिखा—"आप नए नवाब को इस बात पर राज़ी कीजे कि वह अपनी तमाम रियासत कम्पनी के सुपुर्द कर दे।" नवाब उमदतुल उमरा ने मद्रास के गवरनर की कोई बात मन्ज़ूर न की, और कम से कम उस समय

---

* "What then is this system of torture by which the possessions of the Indian princes have been wrung from them? It is this—the skilful application of the process by which cunning men create debtors, and then force them at once to submit to their most exorbitant demands."—William Howitt as quoted in the introduction to Thornton's *History of British India.*

इस चाल द्वारा करनाटक का कोई भाग कम्पनी की अमलदारी में न आ सका। किन्तु करनाटक की ओर अङ्गरेज़ों की नीयत बिल्कुल स्पष्ट होगई।

रुहेलखण्ड

सन् १७९४ में रुहेलखण्ड के नवाब फ़ैज़ुल्ला ख़ाँ की मृत्यु हुई। उसका छोटा बेटा ग़ुलाममोहम्मद अपने बड़े भाई अली ख़ाँ को मार कर बाप की गद्दी पर बैठा। समाचार पाते ही सर जॉन शोर ने इरादा किया कि—"फ़ैज़ुल्ला ख़ाँ के ख़ानदान से रियासत बिल्कुल छीन ली जावे।"* सर रॉबर्ट एबरक्रौम्बी अवध की सेना सहित आगे बढ़ा। बिटोवरा में लड़ाई हुई। मिल लिखता है कि पहले रुहेलों का पल्ला कुछ भारी रहा, किन्तु बाद में अङ्गरेज़ों की जीत हुई। अन्त में फ़ैज़ुल्ला ख़ाँ के ख़ानदान से रियासत छीन ली गई। उसका तमाम ख़ज़ाना अवध के नवाब वज़ीर को दे दिया गया और शेष रियासत ज़ब्त करके १० लाख रुपए सालाना की जागीर रुहेलखण्ड के एक पिछले नवाब मोहम्मदअली के बेटे अहमदअली को दे दी गई। अङ्गरेज़ों की पैदा की हुई रुहेलखण्ड के राज्य में यह दूसरी क्रान्ति थी।

सर जॉन शोर और अवध

अब केवल अवध के साथ सर जॉन शोर के व्यवहार को बयान करना बाक़ी है। सर जॉन शोर ने अपने एक पत्र में साफ़ लिखा है

* Mill, vol. vi, pp. 33, 34.

कि—"अवध के साथ हमारी जो सन्धियाँ हुई हैं उनकी हमें ख़ाक परवा नहीं करनी चाहिए।" लॉर्ड कॉर्नवालिस ने सन् १७८८ में अवध के नवाब के साथ यह सन्धि की थी कि कम्पनी की सबसीडी-यरी सेना का ख़र्च जो नवाब को देना पड़ता था, पचास लाख सालाना से कभी न बढ़ाया जावेगा। सर जॉन शोर ने आकर बेखटके और बेवजह इस सन्धि को तोड़ डाला, यद्यपि लिखा है कि नवाब हर साल ठीक समय पर रक़म अदा कर देता था और अवध की प्रजा की हालत फिर कुछ सुधरती जा रही थी। सर जॉन शोर ने नवाब पर ज़ोर दिया कि आप साढ़े पाँच लाख सालाना के ख़र्च पर एक पलटन अङ्गरेज़ सवारों की और एक हिन्दोस्तानी सवारों की अपने यहाँ और रक्खें। वास्तव में इस तमाम सेना का असली मतलब केवल यह था कि कम्पनी को उत्तरीय भारत में अपना साम्राज्य बढ़ाने और स्वयं अवध को धीरे धीरे अपने अधीन करने के लिए दूसरे के ख़र्च पर एक ज़बरदस्त सेना हर समय तैयार मिल सके।

नवाब आसफ़ुद्दौला ने इस बार हिम्मत करके इनकार कर दिया और गवरनर-जनरल को लॉर्ड कॉर्नवालिस के वादे की याद दिलाई। सर जॉन शोर ने ज़बरदस्ती आसफ़ुद्दौला के वज़ीर महाराजा झाऊँलाल को पकड़ कर अपने यहाँ क़ैद कर लिया। आसफ़ुद्दौला ने इस अत्याचार पर बहुतेरे एतराज़ किए, किन्तु कम्पनी के अफ़सरों ने एक न सुनी। इसके बाद मार्च सन् १७९७ में सर जॉन शोर स्वयं लखनऊ पहुँचा और जिस तरह

हो सका उसने आसफ़ुद्दौला को कम्पनी की माँग पूरी करने पर मजबूर किया। साढ़े पाँच लाख सालाना की नई फ़ौज आसफ़ुद्दौला के सर मढ़ दी गई। असहाय आसफ़ुद्दौला को इस व्यवहार का इतना सदमा हुआ कि वह उसी समय से बीमार पड़ गया, उसने दवा खाने तक से इनकार कर दिया, और चन्द महीने के अन्दर मर गया। आसफ़ुद्दौला की मृत्यु ने अङ्गरेज़ों को एक और सुन्दर अवसर प्रदान किया।

आसफ़ुद्दौला का बेटा वज़ीरअली अवध की मसनद पर बैठा। सर जॉन शोर ने बाज़ाब्ता उसे नवाब स्वीकार कर लिया।

थोड़े ही दिनों बाद सर जॉन शोर को पता चला (?) कि आसफ़ुद्दौला का एक भाई सआदतअली, जो उस समय बनारस में रहता था, उसके बेटे वज़ीरअली की निस्बत अवध की गद्दी का ज्यादा हक़दार है। मेजर बर्ड, जो कुछ दिनों बाद लखनऊ में असिस्टेण्ट रेज़िडेण्ट था, लिखता है —

"सर जॉन शोर यह देख कर कि पिछले वज़ीर के एक भाई के साथ ज़्यादा अच्छा सौदा किया जा सकता है, बनारस पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसने सआदतअली के सामने यह तजवीज़ पेश की कि कम्पनी की मदद से आप वज़ीरअली को गद्दी से उतार दीजे, इस साफ़ शर्त पर कि आप साढ़े पचपन लाख सालाना की रक़म को खूब बढ़ा दें और उसके अलावा कम्पनी की सहायता के बदले में उन्हें और धन और सम्पत्ति दें। इस साफ़ और निर्लज्ज शर्त पर नवाबी का इच्छुक ख़ुशी से राज़ी हो गया। लखनऊ पहुँच कर×××वज़ीरअली को उतार दिया गया और २१ जनवरी सन्

१७९८ को उसकी जगह सआदतअली के नवाब बनाए जाने का एलान कर दिया गया।"*

लखनऊ पहुँच कर बाज़ाब्ता तहक़ीक़ात (?) करके कारण यह बताया गया कि वज़ीरअली की पैदायश नाजायज़ है (!)।

२१ फ़रवरी सन् १७९८ को १७ शर्तों की एक सन्धि सआदत-अली और सर जॉन शोर के बीच लिखी गई। मुख्य शर्तें ये थीं—

"XXX सआदतअली कम्पनी की बक़ाया अदा करे, इलाहाबाद का क़िला कम्पनी को दे दे और उसकी मरम्मत के लिए आठ लाख रुपए दे, फ़तहगढ़ के क़िले की मरम्मत के लिए तीन लाख रुपए दे, फ़ौजों के इधर से उधर जाने आने का ख़र्च दे—कितने लाख, यह बाद में तय किया जावेगा। सआदतअली को नवाब वज़ीर बनाने में कम्पनी का जो ख़र्च हुआ है

---

* "Seeing that a better bargain could be made with a brother of the deceased Wazir, Sir John Shore repaired to Benares, and proposed to the latter, who was named Saadat Ali, to dethrone Wazir Ali, offering the support of the Company on the intelligible condition that the subsidy should be largely increased, and that their support should be paid for otherwise in money and kind. To this sitpulation, bold and bare-faced the aspirant to the princedom 'cheerfully consented,' and, after a preliminary process at Lucknow, termed in the 'Parliamentary Return of Treaties' 'a ful investigation,' and purporting to be an enquiry into the spuriousness of Wazir Ali's birth, that prince was deposed, and Saadat Ali was proclaimed, in his stead, at Lucknow, on the 21st January, 1798—*Dacoitee in Excelsis; or the Spoliation of Oude, by the East India Company,*—by Major Bird, Assistant Resident at Lucknow.

उसके लिए वह कम्पनी को बारह लाख रुपए दे, पदच्युत वज़ीरअली को डेढ़ लाख रुपए की पेन्शन दे,××× और सबसीडीयरी सेना के खर्च के लिए ५६ लाख सालाना की रक़म को बढ़ा कर ७६ लाख कर दिया जावे।"

मेजर बर्ड लिखता है कि इस प्रकार "कुल मिला कर दस लाख पाउण्ड (१ करोड़ रुपए से ऊपर) और इलाहाबाद का क़िला एक वर्ष के अन्दर कम्पनी को मिल गया।"*

एक शर्त यह भी थी कि सिवाय कम्पनी के आदमियों के और कोई यूरोपियन आयन्दा अवध के राज्य में रहने न पावे।

इस समस्त सन्धि में शुरू से आखीर तक केवल 'रुपयों' और 'लाखों' ही का ज़िक्र है। सर हेनरी लॉरेन्स ने जनवरी सन् १८४५ की "कलकत्ता रिव्यु" में इस सन्धि के विषय में लिखा है—

"शायद सर जॉन शोर की सन्धि के अङ्गरेज़ पाठकों को सब से अधिक यह बात खटकेगी कि अवध के शासन प्रबन्ध का इसमें कहीं ज़रा भी ज़िक्र नहीं है। मालूम होता है कि अवध की प्रजा सब से बढ़कर बोली बोलने वाले के हाथ नीलाम कर दी गई××× अपने भतीजे के मुक़ाबले में सआदतअली को अधिक निचोड़ा जा सकता था।××× सर जॉन शोर ने अवध की मसनद को अङ्गरेज़ गवरनर के हाथों की केवल एक बिक्री की चीज़ बना दी।××× हमें मजबूर होकर अवध के सम्बन्ध के इस तमाम पत्र-व्यवहार को सर्वथा निन्दनीय मानना पड़ता है।"†

---

* *Dacoitee in Excelsis*, pp. 35-38.

† "What will perhaps most strike the English reader of Sir John Shore's treaty is, the entire omission of the slightest provision for the good Government of Oudh. The people seemed as it were

सन् १७९५ में सर जॉन शोर ने डच लोगों के तमाम भारतीय इलाक़े उनसे लेकर अङ्गरेज़ कम्पनी के अधीन कर लिए। धीरे धीरे लङ्का, मलाका, बन्दा, ऐम्बौयना आदिक अन्य एशियाई प्रदेशों से भी डच लोग निकाल दिए गए। मारीशस का फ़ान्सीसी इलाक़ा और मनिल्ला के उपजाऊ स्पेनिश इलाक़े अधिकतर भारत ही के धन से ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल किए गए।

अपने देश की इन सेवाओं के बदले में सर जॉन शोर को अक्तूबर सन् १७९७ में 'लॉर्ड टेनमाउथ' की उपाधि मिली। मार्च सन् १७९८ में वह इङ्गलिस्तान लौट गया। यद्यपि अपने समय में वह 'पक्का ईसाई' मशहूर था, तथापि राजनीति में वारन हेस्टिंग्स उसका आदर्श था और निस्सन्देह इङ्गलिस्तान के लिए उसकी सेवाएँ क्लाइव और वारन हेस्टिंग्स की सेवाओं के मुक़ाबले की थीं।

---

sold to the highest bidder. . . . Saadat Ali was . . . a more promising sponge to squeeze, than his nephew. . . . He (Sir John shore) made the *Musnud* of Oudh a mere transferable property in the hands of the British Governor, . . . We are obliged entirely to condemn the whole teror of Oudh negotiations."—Sir Henry Lawrence in the *Calcutta Review* for January 1845.

तेरहवाँ अध्याय

अङ्गरेज़ों की साम्राज्य-पिपासा

र जॉन शोर के बाद मार्किस वेल्सली ब्रिटिश भारत का गवरनर-जनरल नियुक्त हुआ। मार्किस वेल्सली का शासनकाल इतने अधिक महत्व का था और उसके समय में इस देश के अन्दर इतने गम्भीर उलट-फेर हुए कि उस समय की राजनैतिक घटनाओं को वर्णन करने से पहले वेल्सली के चरित्र, उस समय के यूरोप की राजनैतिक अवस्था, अङ्गरेज़ क़ौम की आकांक्षाओं और वेल्सली के शासन के उद्देश को संक्षेप में दर्शा देना आवश्यक है। वेल्सली का नाम पहले लॉर्ड मार्निङ्गटन था। उसका जन्म सन् १७६० ई० में आयरलैण्ड में हुआ। सन् १७९३ ईसवी में वह इङ्गलिस्तान के उस 'बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल' का एक मेम्बर नियुक्त हुआ जो कम्पनी के भारतीय शासन की देख रेख के लिए पार्लिमेण्ट की ओर से बनाया गया था। भारत के भूतपूर्व गवरनर-जनरल लॉर्ड कॉर्नवालिस और इङ्गलिस्तान के प्रधान मन्त्री पिट से वेल्सली की गहरी मित्रता थी। इन दोनों की मदद से सन् १७९३ से १७९७

एक वेलसली इङ्गलिस्तान में बैठा हुआ भारतीय इतिहास और भारत की उस समय की राजनैतिक स्थिति का ग़ौर से अध्ययन करता रहा। वेलसली को भारत भेजने से पहले प्रधान मन्त्री पिट ने उसे एक सप्ताह अपने पास रख कर हिन्दोस्तान के अन्दर एक विशाल ब्रिटिश साम्राज्य स्थापन करने की सम्भावना और उसके उपायों पर उसके साथ ख़ूब बातचीत की। इस प्रकार शिक्षा पाकर वेलसली ७ नवम्बर सन् १७९७ को अपने देश से रवाना हुआ और रास्ते में दो मास अफ़रीक़ा की 'केप ऑफ़ गुड होप' में ठहर कर मई सन् १७९८ में कलकत्ते पहुँचा।

अठारहवीं सदी के अन्त में पश्चिम के अन्दर क़ौमी आज़ादी की एक ज़बरदस्त लहर चल रही थी। 'स्वतन्त्रता', 'समता' और 'मनुष्य-मात्र के बन्धुत्व' की आवाज़ें चारों ओर गूँज रही थीं। ४ जुलाई सन् १७७६ को अमरीका ने अपने आपको इङ्गलिस्तान की दासता से स्वतन्त्र कर उस देश में प्रजातन्त्र राज्य (रिपब्लिक) की स्थापना की। ७ वर्ष के भयङ्कर रक्तपात के बाद ३० नवम्बर सन् १७८२ को इङ्गलिस्तान ने लाचार होकर अमरीका की 'स्वाधीनता' को स्वीकार किया। सन् १७८९ में फ़्रान्स की जगद्प्रसिद्ध राज्यक्रान्ति का प्रारम्भ हुआ। सन् १७९२ में फ़्रान्स ने अपने स्वेच्छाचारी और अन्यायी राजा सोलहवें लूई को गद्दी से उतार कर अपने यहाँ प्रजातन्त्र राज्य (रिपब्लिक) क़ायम किया। २१ जनवरी सन् १७९३ को सोलहवें लूई को फाँसी पर चढ़ा दिया गया। फ़्रान्स ही से "स्वतन्त्रता, समता और बन्धुत्व" (Liberty, Equality and

Fraternity) इन तीन शब्दों की पुकार उठी और चन्द साल के अन्दर ही ये शब्द समस्त यूरोप में इस सिरे से उस सिरे तक गूँजने लगे। फ़्रान्स की इस महान क्रान्ति के विषय में इतालिया के आदर्श देशभक्त महात्मा जौज़फ़ मैज़िनी ने लिखा है—

"ढाई करोड़ मनुष्य केवल किसी शब्द, थोथे वाक्य अथवा छाया के पीछे इस प्रकार एक दिल होकर खड़े नहीं हो सकते और न आधे यूरोप को अपनी आवाज़ से जगा सकते हैं। वह राज्यक्रान्ति ख़तम हो गई अर्थात् उसका ऊपरी जोश ख़रोश जाता रहा, उसका बाहरी रूप नष्ट हो गया, जिस तरह कि हर पदार्थ का बाहरी रूप अपना काम पूरा करके नष्ट हो जाता है, किन्तु उस क्रान्ति का उसूल, उसका अन्तर्गत सिद्धान्त जीवित है। वह सिद्धान्त अपने समस्त अस्थायी आच्छादनों वा बाहरी रूपों से अलग होकर अब सदा के लिए हमारे मानसिक आकाश में ध्रुव तारे की तरह चमक रहा है; उसकी गणना मानव जाति की विजयों में की जाती है।

"प्रत्येक महान सिद्धान्त अमर है। फ़्रान्स की राज्यक्रान्ति ने मनुष्यमात्र के अधिकार, स्वतन्त्रता और समता के भावों को फिर से मनुष्य की आत्मा के अन्दर प्रज्वलित कर दिया, अब यह ज्वाला कभी किसी के बुझाए नहीं बुझ सकती। उस क्रान्ति ने फ़्रान्स-निवासियों के अन्दर इस ज्ञान को जाग्रत कर दिया कि आयन्दा कोई हमारे राष्ट्रीय जीवन को खण्डित नहीं कर सकता; और प्रत्येक राष्ट्र के लोगों में यह बोध उत्पन्न कर दिया कि जनता के एक मत हो जाने पर उसकी शक्ति कितनी महान होती है, उनमें यह दृढ़ विश्वास पैदा कर दिया कि विजय अन्त में जनता ही की होगी और कोई उसे इस विजय से वञ्चित नहीं रख सकता। राजनैतिक क्षेत्रमें इस क्रान्ति ने मानव उन्नति के एक युग

पूरा करके और उसका सार लेकर हमें दूसरे युग की सीमा तक पहुँचा दिया।

"ये ऐसे परिणाम हैं जो कभी नष्ट न होंगे; कोई राजकीय उल्लेख, कोई राजनैतिक सिद्धान्त अथवा किसी स्वेच्छाचारी सरकार के अनन्याधिकार इन परिणामों को नहीं मिटा सकते।"*

फ़्रान्सीसी क़ौम प्रायः शुरू से उच्च आदर्शों की उपासक रही है।

---

* "Five and twenty millions of men do not rise up as one man, nor rouse one half of Europe at their call, for a mere word, an empty formula, a shadow. The Revolution, that is to say the spirit and fury of the Revolution—perished ; the form perished, as all forms perish when their task is accomplished, but the idea of the Revolution survived. That idea freed from every temporary envelope or disguise, now reigns for ever, a fixed star in the intellectual firmament ; it is numbered among the conquests of Humanity.

"Every great idea is immortal : the French Revolution kindled the sense of *Right*, of liberty, and of equality in the human soul, never henceforth to be extinguished ; it awakened France to the consciousness of the inviolability of her national life ; and awakened in every people a perception of the powers of collective will, and a conviction of ultimate victory, of which none can deprive them. It summed up and concluded (in the political sphere) one epoch of Humanity, and led us to the confines of the next.

"These are results which will not pass away : they defy every protocol, constitutional theory, or *veto* of despotic power."
—Joseph Mazzini

किन्तु अङ्गरेज़ों और फ़्रान्सीसियों के चरित्र में आरम्भ से ही बहुत बड़ा अन्तर दिखाई देता रहा है। जब कि फ़्रान्सीसी समस्त संसार को स्वतन्त्रता, समता और बन्धुत्व का उपदेश दे रहे थे, ठीक उस समय उनके पड़ोसी अङ्गरेज़ इन सिद्धान्तों के प्रचार को रोकने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे। कारण यह था कि इङ्गलिस्तान के शासकों को साम्राज्य का और वहाँ के पूँजीपतियों को दूसरे देशों से धन बटोरने का काफ़ी चसका पड़ चुका था। इङ्गलिस्तान के साम्राज्य-पिपासी शासकों और धन-लोलुप पूँजीपतियों को इस बात का भय था कि यदि इस तरह के विचार संसार में फैल गए तो हमारी अपनी इष्ट-सिद्धि में बहुत बड़ी बाधा पड़ेगी। जिस अङ्गरेज़ विद्वान एडमण्ड बर्क ने इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने इस योग्यता के साथ वारन हेस्टिंग्स के पाप-कृत्यों को खोला था, उसी बर्क को अब वहाँ के शासकों ने १५०० पाउण्ड सालाना की पेन्शन देकर उससे फ़्रान्स की राज्यक्रान्ति के विरुद्ध एक ज़बरदस्त पुस्तक लिखवा दी, ताकि फ़्रान्स का रोग इङ्गलिस्तान में फैलने न पाए।

इङ्गलिस्तान का प्रधान मन्त्री पिट हद दर्जे का साम्राज्य-लोलुप था। फ़्रान्स तथा फ़्रान्सीसी विचारों का वह कट्टर शत्रु था। उसकी इच्छानुसार भारत का प्रत्येक अङ्गरेज़ अफ़सर यहाँ के देशी दरबारों में फ़्रान्सीसियों, उनके देश और उनके विचारों को बदनाम करने की हर तरह कोशिश करता रहता था। वेल्सली को भी फ़्रान्सीसी क़ौम और फ़्रान्सीसी विचारों से हद दर्जे की घृणा थी।

इसका एक कारण यह भी बताया जाता है कि इङ्गलिस्तान में वेल्सली ने एक फ़्रान्सीसी स्त्री अपने घर में रख रक्खी थी, जिससे वेल्सली के कई बच्चे हुए। बच्चे होने के बाद वेल्सली ने उसके साथ बाज़ाब्ता विवाह किया, किन्तु बाद में दोनों में कुछ अनबन हो गई और उस स्त्री ने वेल्सली के साथ भारत आने से इनकार कर दिया। जो हो, वेल्सली फ़्रान्सीसियों से इतना डरता था कि भारत आते ही उसने ४ मई सन् १७९९ को यहाँ के जङ्गी लाट सर आलफ़्रेड क्लार्क को एक "प्राइवेट और गुप्त" पत्र द्वारा यह साफ़ साफ़ आदेश दिया कि—कलकत्ता, चट्टग्राम, चन्दरनगर, चुँचड़ा इत्यादि से और शेष तमाम ब्रिटिश भारतीय इलाक़ों से एक एक फ़्रान्सीसी को और फ़्रान्सीसियों से सम्बन्ध रखने वाले समस्त अन्य यूरोप-निवासियों तक को चुन चुनकर ज़बरदस्ती यूरोप भेज दिया जाय। मार्किस वेल्सली प्रजा के अधिकारों का इतना पक्का विरोधी था और उसके राजनैतिक विचार इतने अनुदार थे कि स्वयं अपने देश इङ्गलिस्तान के अन्दर वह साधारण पार्लिमेण्ट के सुधारों तक का शत्रु था।

पिट के समय तक आयरलैण्ड की एक अलग पार्लिमेण्ट थी। पिट ने इस उद्देश से कि आयरलैण्ड को इङ्गलिस्तान के राज्य में मिला लिया जाय और इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के अधीन कर दिया जाय, जान बूझ कर, आयरलैण्ड में सशस्त्र विद्रोह खड़ा कर दिया। प्रसिद्ध अङ्गरेज़ विद्वान डब्ल्यु० टी० स्टेड ने उस समय के ऐतिहासिक लेखों से साबित किया है कि आयरलैण्ड का सन्

१७९८ का विद्रोह ब्रिटिश सरकार का उकसाया हुआ था और आयरलैण्ड की स्वाधीनता छीनने के उद्देश से किया गया था। स्टेड यह भी लिखता है कि जिन उपायों से इङ्गलिस्तान के शासकों ने आयरलैण्ड की स्वाधीनता छीनकर उसे इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के अधीन किया, उनमें एक उपाय आयरलैण्ड की स्त्रियों के साथ "बेरोक टोक बलात्कार" ("Free-rape") भी था। ये उपाय थे जिनके द्वारा 'ब्रिटेन' का नाम 'ग्रेट ब्रिटेन' रक्खा गया।

मार्किस वेल्सली ने २ अक्तूबर सन् १८०० ई० को कलकत्ते से अपने एक मित्र के नाम पत्र लिखा जिसके नीचे लिखे दो वाक्यों से उसके भारतीय शासन के उद्देश का स्पष्ट पता चलता है। इस पत्र में वेल्सली ने लिखा—

"XXX मैं बादशाहतों के ढेर लगा दूँगा और विजय पर विजय तथा मालगुज़ारी पर मालगुज़ारी लाद दूँगा। मैं इतनी शान, इतना धन और इतनी सत्ता इकट्ठी कर दूँगा कि एक बार मेरे महत्वाकांक्षी और धन-लोलुप मालिक भी 'त्राहि त्राहि' चिल्लाने लगेंगे। XXX"*

भारत आने से पहले दो महीने केप ऑफ़ गुड होप में रहकर वेल्सली ने भारत की अनेक देशी रियासतों की स्वाधीनता को नाश करने की तजवीज़ें कीं। इस काम में उसे दो अङ्गरेज़ अफ़सरों से

* "I will heap Kingdoms upon Kingdoms, victory upon victory, revenue upon revenue; I will accumulate glory and wealth and power, until the ambition and avarice even of my masters shall cry mercy. . . ."—Marquess of Wellesley's letter to lady Anne Barnard, dated October 2nd, 1800.

बहुत बड़ी सहायता मिली। एक सर डेविड बेयर्ड और दूसरा मेजर कर्कपैट्रिक। सर डेविड बेयर्ड टीपू सुलतान के यहाँ क़ैद रह चुका था। डेविड बेयर्ड का बयान है कि टीपू प्रायः अपने मनो-रञ्जन के लिए बेयर्ड को बन्दर की तरह कपड़े पहनवाकर एक ऊंचा बाँस गड़वाकर उसे उस बाँस पर चढ़वाया उतरवाया करता था और बन्दर की तरह नचवाया करता था।

किन्तु टीपू के इस प्रकार के अत्याचारों का प्रमाण सिवा अङ्गरेज़ क़ैदियों के बयानों के और कहीं से नहीं मिलता, और इन बयानों पर बहुत अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। मेजर कर्कपैट्रिक वारन हेस्टिंग्स और कॉर्नवालिस के समय का .खुर्राट अंगरेज़ था। माधोजी सींधिया के यहाँ, नैपाल में और हैदराबाद में तीन जगह वह कम्पनी के दूत का काम कर चुका था। माधोजी सींधिया का नाना फ़ड़नवीस से लड़ाकर मराठों की सत्ता को नाश करने में, नैपाल के मार्गों और सैन्यबल इत्यादि का गुप्त पता लगाने में और हैदराबाद की सेना से फ़्रान्सीसियों को निकलवाकर उनकी जगह अङ्गरेज़ भरती कराने में मेजर कर्कपैट्रिक का विशेष हाथ था।

इन दोनों अङ्गरेज़ों से वेलसली को देशी रियासतों की स्थिति का ठीक ठीक पता चल गया और अपनी तजवीज़ों को पक्का करने में बहुत बड़ी मदद मिली। 'केप' से वेलसली ने प्रधान मन्त्री पिट और भारत मन्त्री डण्डास के नाम जो पत्र इङ्गलिस्तान भेजे, उनसे साफ़ ज़ाहिर हो जाता है कि इङ्गलिस्तान के शासकों ने वेलसली

को क्या क्या हिदायतें दी थीं और भारत पहुँचकर उसकी क्या तजवीज़ें थीं ।

एक ख़ास तजवीज़ इस समय यह की गई कि भारतीय नरेशों के पास उस समय तक जहाँ जहाँ अपनी स्वतन्त्र सेनाएँ मौजूद थीं उन सेनाओं को एक एक कर किसी प्रकार बरख़ास्त करा दिया जावे; उन नरेशों और उनकी रियासतों की रक्षा का भार कम्पनी अपने ऊपर ले ले; और पुरानी रियासती सेनाओं की जगह कम्पनी की सेनाएँ, अङ्गरेज़ अफ़सरों के अधीन, रियासतों के ख़र्च पर उन रियासतों में क़ायम कर दी जावें । इस नई प्रणाली का नाम 'सब्सीडीयरी एलाएन्स' रक्खा गया। 'सब्सीडी' का अर्थ 'आर्थिक सहायता'; और 'एलाएन्स' का अर्थ 'मित्रता' है । मतलब यह था कि प्रत्येक देशी नरेश कम्पनी को निश्चित 'आर्थिक सहायता' देकर कम्पनी की 'सैनिक मित्रता' लाभ कर सके। निस्सन्देह देशी नरेशों को उनकी रियासतों के अन्दर उन्हीं के ख़र्च पर कैद करके रखने का इससे सुन्दर उपाय न सोचा जा सकता था। इस 'सब्सीडीयरी' प्रणाली के विषय में एक यूरोपियन विद्वान् लिखता है—

"सब्सीडीयरी प्रणाली×××सिवाय एक धोखे के और कुछ न थी। उसका उद्देश इङ्गलिस्तान की जनता की आँखों में धूल डालना था×××

"×××ये देश ज़ाहिरा विजय नहीं किए जाते थे, वहाँ के नरेशों को छत्र, चँवर आदिक राजत्व के समस्त चिन्हों सहित तख़्त पर रहने

दिया जाता था, किन्तु असली ताक़त उनके हाथों से लेकर एक पोलिटिकल एजण्ट के हाथों में दे दी जाती थी ××× ।"*

इस चाल का उद्देश 'इङ्गलिस्तान की जनता की आँखों में धूल डालना' रहा हो या न रहा हो, इसमें सन्देह नहीं उस समय के असंख्य भोले एशिया-निवासियों की आँखों में धूल डालने के लिए यह काफ़ी साबित हुई ।

जिन छलों द्वारा वेल्सली ने भारत में अपनी सबसीडीयरी प्रणाली का जाल बिछाया, जिस प्रकार उसने भारत के मुसलमानों और मराठों को वश में किया, निज़ाम और पेशवा को फँसा कर उन्हें कम्पनी का क़ैदी बनाया, करनाटक के नवाब, तञ्ज़ोर के राजा, अवध के नवाब-वज़ीर और सूरत और फर्रुख़ाबाद के नवाबों के इलाक़े छीने और टीपू, सींधिया, होलकर और भोंसले को बरबाद किया, इन सब बातों का विस्तृत वर्णन अलग अलग अध्यायों में किया जावेगा ।

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले केवल एक बात हम और बता देना चाहते हैं । वह यह कि मार्किस वेल्सली के शुद्ध

---

* "The Subsidiary system. . . . was nothing more than a delusion; it was for the purpose of throwing dust into the eyes of the British public. . . .

". . . these countries were not ostensibly conquered; the sovereign was allowed to remain on his throne, with all the trappings of royalty, but substantial power was transferred from him to the person of a political agent,"—*Asiatic Quarterly Review* for January 1887.

राजनैतिक उद्देश के अतिरिक्त उसका एक उद्देश भारत में ईसाई धर्म का प्रचार भी था।

वेल्सली ने भारत आते ही ईसाई धर्म के अनुसार अङ्गरेज़ी इलाक़े के अन्दर रविवार की छुट्टी का मनाया जाना जारी किया। उस दिन समाचार पत्रों का छपना तक क़ानूनन् बन्द कर दिया। कलकत्ते के फ़ोर्ट विलियम में उसने एक कॉलेज की स्थापना की। इस कॉलेज का एक उद्देश विदेशी सरकार के लिए सरकारी नौकर तैयार करना था, तथापि वेल्सली के जीवन चरित्र का रचयिता आर० आर० पीयर्स स्पष्ट लिखता है कि यह कॉलेज भारतवासियों में ईसाई धर्म को फैलाने का भी एक मुख्य साधन था। इस कॉलेज द्वारा भारत की सात भिन्न भिन्न भाषाओं में इञ्जील का अनुवाद करा कर उसका भारतवासियों में प्रचार कराया गया। मार्क्विस वेल्सली न अपने व्यक्तिगत जीवन में चरित्रवान था और न सार्वजनिक जीवन में अपने पूर्व के किसी गवरनर-जनरल से अधिक ईमानदार था, तथापि उसकी इस ईसाई धर्मनिष्ठा के लिए अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक प्रायः उसकी प्रशंसा करते हैं। वास्तव में मालूम होता है कि उसका ईसाई धर्म प्रचार भी अङ्गरेज़ों की राजनैतिक इष्ट-सिद्धि का एक साधन मात्र था।

चौदहवाँ अध्याय
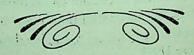
वेल्सली और निज़ाम

प ऑफ़ गुड होप से वेल्सली ने इङ्गलिस्तान के भारतमन्त्री डण्डास के नाम दो ख़ास पत्र लिखे, एक २३ फ़रवरी सन् १७९८ को और दूसरा २८ फ़रवरी को। इनमें से पहले पत्र में वेल्सली ने लिखा—

"XXX हमें सबसे बड़ा लाभ इस समय इस बात में है कि देशी नरेशों को एक दूसरे के साथ अपनी दोस्ती या दुश्मनी का निश्चय तक नहीं हो सकता।"*

इस वाक्य में तीन मुख्य देशी शक्तियों की ओर इशारा था, निज़ाम मराठे और टीपू सुलतान। इनमें निज़ाम को आज तक कभी भी अङ्गरेज़ों से लड़ने का साहस न हुआ था। मराठों के विषय में वेल्सली ने अपने २८ फ़रवरी के पत्र में डण्डास को लिखा कि—

* "Bear in mind the state of the native powers in India at this moment; and recollect that the greatest advantage which we now possess is the present deranged condition of those interests."—Marquess Wellesley to Mr. Dundas 23rd February, 1798

"पेशवा का बल और प्रभाव इतनी तेज़ी के साथ घटता जा रहा है कि मराठों पर हमला करना अभी अनावश्यक और अनुचित है।" टीपू के विषय में वेलसली के २३ फ़रवरी के पत्र से स्पष्ट है कि वह केप ही में टीपू पर हमला करने का सङ्कल्प कर चुका था। इस पत्र में वेलसली ने यह भी लिखा कि—"टीपू के विरुद्ध लड़ने के लिए हमें अन्य भारतीय नरेशों की सहायता की आवश्यकता होगी, किन्तु निज़ाम की सेना पर इस बात के लिए विश्वास नहीं किया जा सकता कि वह ऐसे अवसर पर टीपू के विरुद्ध हमारा साथ देगी।" बात यह थी कि निज़ाम के पास कम्पनी की सेना के अतिरिक्त अभी तक एक अपनी स्वतन्त्र सेना भी मौजूद थी। यद्यपि फ़्रान्सीसी सेनापति मौ० रेमौं को सर जॉन शोर ने ज़बरदस्ती निज़ाम की इस सेना से निकलवा दिया था, तथापि अनेक योग्य फ़्रान्सीसी अफ़सर अभी तक उस सेना में मौजूद थे। अनेक अङ्गरेज़ लेखक स्वीकार करते हैं कि इस पुरानी सेना और उसके फ़्रान्सीसी अफ़सरों ने सदा बड़ी वफ़ादारी के साथ निज़ाम और उसके राज्य की सेवा की। केवल छै वर्ष पहले यही सेना टीपू के विरुद्ध अङ्गरेज़ों का साथ भी दे चुकी थी। किन्तु इस सेना की बाग अङ्गरेज़ों के हाथों में न थी, इसलिए सबसे पहला काम वेलसली के लिए यह था कि निज़ाम की इस सेना को तोड़ कर उसकी जगह कम्पनी की एक नई सबसीडीयरी सेना निज़ाम के राज्य में क़ायम कर दे। दूसरे शब्दों में वेलसली ने सब से पहले निज़ाम को 'सबसीडीयरी सन्धि' के जाल में फँसाने की तजवीज़ की।

निज़ाम की हालत पहले ही काफ़ी गिरी हुई थी। कुर्दला की पराजय ने उसे और भी कमज़ोर कर दिया था। मालूम होता है, कुर्दला में अङ्गरेज़ों का निज़ाम को मदद न देने और उसकी सबसीडीयरी सेना तक को उससे दूर रखने का असली मतलब यह था कि अङ्गरेज़ निज़ाम को जहाँ तक हो सके, कमज़ोर कर देना चाहते थे। वेल्सली ने डण्डास को लिखा—

"मैं अभी लिख चुका हूँ कि×××कुर्दला की सन्धि से और जिस ढंग से उस सन्धि का पालन कराया गया है, उससे निज़ाम की हालत कितनी गिर गई है और कितनी कमज़ोर हो गई है।×××

"इस समय मालूम होता है कि हैदराबाद का दरबार हमारे साथ अधिक गहरा सम्बन्ध क़ायम करने के लिए बड़ी बड़ी क़ुर्बानियाँ करने को तैयार है। और यदि किसी दूसरे कारण से इस सम्बन्ध को अनुचित न समझा जावे, तो बजाय इसके कि हम अपनी ओर से पत्र व्यवहार शुरू करें और निज़ाम से कहें कि तुम अपनी सेना के किसी हिस्से को बरख़ास्त कर दो, यदि निज़ाम हमसे प्रार्थना करे और हम उस पर बतौर एक अनुग्रह करने के उसके साथ इस तरह के सम्बन्ध को मन्ज़ूर करें तो शायद हमें बहुत अधिक लाभ हो सकता है।"

निस्सन्देह इस 'अधिक गहरे सम्बन्ध' से वेल्सली का मतलब सबसीडीयरी सन्धि से है।

निज़ाम को 'सबसीडीयरी सन्धि' के जाल में फँसाने के लिए हैदराबाद के दरबार में एक गुप्त षड्यन्त्र रचा गया। निज़ाम के कुछ दरबारियों को, जिनमें एक ख़ास निज़ाम का वज़ीर अज़ीमुल-

उमरा था, रिशवतें देकर अपनी ओर फोड़ा गया, और निज़ाम से यह सारा मामला अन्त समय तक छिपाकर रक्खा गया। इस षड्यन्त्र में वेल्सली के दो मुख्य मददगार थे, एक मेजर कर्कपैट्रिक का छोटा भाई कप्तान कर्कपैट्रिक, जो अपने बड़े भाई की जगह हैदराबाद में रेज़िडेण्ट था, और दूसरा कप्तान कर्कपैट्रिक का असिस्टेण्ट कप्तान मैलकम।

कप्तान कर्कपैट्रिक अत्यन्त चलता पुर्ज़ा था। उसने अपना रहन सहन, पहनाव सब हिन्दोस्तानी ढङ्ग का कर रक्खा था। हैदराबाद में उसका नाम 'हशमतजङ्ग' पड़ा हुआ था। एक मुसलमान दरबारी की लड़की के साथ उसने बाज़ाब्ता निकाह कर लिया था। हैदराबाद ही में अनेक बार उस पर रिशवतसितानी, बदचलनी और हत्या तक के इलज़ाम लगाए गए। हिन्दोस्तानी दरबारियों के साथ साज़िशें करने में वह सिद्धहस्त था और इस अवसर पर वेल्सली को उसने बड़ा काम दिया।

दूसरा कप्तान मैलकम स्कॉटलैण्ड के निहायत ग़रीब माँ बाप का लड़का था। १२ वर्ष की आयु में भारत भेजे जाने के लिए वह कम्पनी के डाइरेक्टरों के सामने पेश हुआ। परीक्षा के तौर पर एक डाइरेक्टर ने उससे पूछा—"क्यों छोटे आदमी, यदि हैदरअली तुम्हें मिल जावे तो तुम क्या करोगे?" लड़के ने फ़ौरन उत्तर दिया—"क्या करूँगा? मैं फ़ौरन् अपनी तलवार खींचकर उसका सर काट डालूँगा।" डाइरेक्टर ने कहा—"बहुत ठीक" और फिर आज्ञा दी—"इसे पास किया गया।"

इस प्रकार पास होकर और सेना में भरती होकर अप्रेल सन् १७८३ में १३ वर्ष की आयु में मैलकम मद्रास पहुँचा। टीपू के साथ अङ्गरेज़ों की पहली लड़ाई में वह शामिल था। धीरे धीरे उसने फ़ारसी भाषा और देशी रियासतों की हालत का ख़ूब अध्ययन किया। मार्किस वेल्सली मद्रास में मैलकम से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। २० सितम्बर सन् १७९८ को उसने कप्तान मैलकम को सेना से निकाल कर हैदराबाद के दरबार में कर्कपैट्रिक का असिस्टेण्ट नियुक्त कर दिया। मैलकम कर्कपैट्रिक और वेल्सली दोनों के लिए अत्यन्त उपयोगी साबित हुआ।

तजवीज़ यह थी कि अज़ीमुलउमरा बिना निज़ाम को सूचना दिए रियासती सेना को चुपचाप टुकड़े करके बरख़ास्त कर दे, और उस सेना की जगह ख़ाली होते ही, पेशतर इसके कि निज़ाम को ख़बर हो, कम्पनी की नई सब्सीडीयरी सेना हैदराबाद पहुँचकर उसकी जगह ले ले। ८ जुलाई सन् १७९८ को वेल्सली ने कलकत्ते से कप्तान कर्कपैट्रिक के नाम एक पत्र लिखा जिसके ऊपर "गुप्त" लिखा हुआ था। केवल छै वर्ष पूर्व निज़ाम और अङ्गरेज़ों के बीच मित्रता की सन्धि हो चुकी थी। तथापि उस सन्धि को मिट्टी में मिलाकर अब गवरनर-जनरल ने रेज़िडेण्ट को आज्ञा दी कि जिस तरह हो सके किसी गुप्त ढङ्ग से निज़ाम की रियासती सेना को, जिसमें फ़्रान्सीसी अफ़सर हैं, बरख़ास्त करवा कर उसकी जगह कम्पनी की नई सब्-सीडीयरी सेना एक बार क़ायम कर दो। इस पत्र में कप्तान कर्क-पैट्रिक को आदेश दिया गया कि यह समस्त कार्य चुपचाप ऊपर

ही ऊपर वज़ीर अज़ीमुलउमरा द्वारा पूरा करा लिया जावे और निज़ाम को इसका बिल्कुल पता न चलने पावे। वेल्सली ने लिखा—

"XXX अज़ीमुलउमरा पर इस बात का ख़ूब ज़ोर देना कि इसकी पूरी पूरी अहतियात रखना ज़रूरी है कि XXX तजवीज़ें खुलने न पावें; उसे यह सुझा देना कि सेना को छोटे छोटे टुकड़ों में करके एक एक टुकड़े को अलग अलग बरख़ास्त करना अधिक उचित होगा, ताकि अन्त में आसानी से सारी सेना को ख़तम किया जा सके, और सेना के अफ़सर अथवा सिपाही वहाँ से जाकर टीपू अथवा सींधिया के यहाँ नौकरी न कर लें।

"जब अज़ीमुलउमरा निज़ाम के नाम पर इन सब बातों को करने के लिए राज़ी हो जावे तब तुम मद्रास से कम्पनी की सेना बुलवा भेजना।"*

जिस प्रकार हैदराबाद के पहले निज़ामुलमुल्क ने अपने स्वामी दिल्ली सम्राट के साथ विश्वासघात करके मुग़ल साम्राज्य के अधःपतन में सहायता दी थी, उसी प्रकार अब अज़ीमुलउमरा ने

* ". . . you will urge to Azimul Omra in the strongest terms, the necessity of his taking every precaution to prevent the propositions . . . from transpiring; and you will suggest to him the propriety of dispersing the corps in small parties for the purpose of facilitating its final reduction, and of preventing the officers and privates from passing into the service of Tippoo or of Scindhia.

"Should Azimul Omra consent, in the name of the Nizam, to the proposed conditions, you will then require the march of the troops from Fort St. George."—Governor-General's letter to Captain Kirk Patrick dated 8th July, 1798.

अपने स्वामी निज़ाम के साथ विश्वासघात करके हैदराबाद की स्वाधीनता का ख़ात्मा कराया।

हिन्दोस्तानी नरेशों के मन्त्रियों को रिशवतें देकर अपनी ओर करने की कोशिश करना अङ्गरेज़ अफ़सरों के लिए उन दिनों एक आम बात थी। मार्किस वेल्सली के सगे भाई आर्थर वेल्सली ने, जो बाद में ड्यूक ऑफ़ वैलिङ्गटन के नाम से प्रसिद्ध हुआ, २४ अगस्त सन् १८०३ को मेजर शा के नाम एक पत्र में लिखा था—"करनल क्लोज़ के नाम मेरे पत्रों से आपने देखा होगा कि हर बात की ठीक ठीक ख़बर रखने के लिए मैंने उस पर ज़ोर दिया है कि तुम (पेशवा के) मन्त्री को कुछ धन देना।"

कप्तान कर्कपैट्रिक को पत्र लिखने के एक सप्ताह बाद १५ जुलाई सन् १७९८ को वेल्सली ने मद्रास के गवरनर को लिखा कि आप हैदराबाद के लिए सेना तैयार रखिए। इस पत्र में वेल्सली ने लिखा—"मेरा उद्देश निज़ाम की कार्यक्षमता और उसके बल को थोड़ा बहुत फिर से क़ायम कर देना है।" यह राजनीति की भाषा है। सीधे शब्दों में इसका मतलब है "निज़ाम की स्वाधीनता का अन्त करना।" और आगे चल कर वेल्सली लिखता है—

"मैं एक कहीं अधिक बड़ी तजवीज़ तमाम रियासतों के साथ इसी तरह की सन्धियाँ करने की कर रहा हूँ, और यह इस समय की तजवीज़ केवल उस बड़ी तजवीज़ का एक हिस्सा है। ××× मेरा ख़याल है कि जो फ़ौज हैदराबाद भेजनी है, उसे जमा करने के लिए सब से अच्छी जगह गुण्टूर होगी। ×××इस बात को गुप्त

रखने की अत्यन्त कड़ी से कड़ी अहतियात की जावे। XXX जो जगह आप तय करें उसकी सूचना हैदराबाद के क़ायम-मुक़ाम रेज़िडेण्ट को दे देना आवश्यक होगा, ताकि वह कमाण्डिङ्ग अफ़सर के साथ पत्र व्यवहार कर सके। XXX अपनी तमाम कारवाई आप पूना और हैदराबाद के रेज़िडेण्टों को लिखते रहें, किन्तु केवल उनकी अपनी सूचना के लिए, उन्हें लिख भेजें कि वे अपने यहाँ के दरबारों को इसकी ख़बर न होने दें।"*

जनरल हैरिस के नाम १९ अगस्त के पत्र में वेल्सली ने लिखा—

"XXX मेरे १६ जुलाई के पत्र से आपको पता चल गया होगा कि यह तजवीज़ भारत के अन्दर ब्रिटिश साम्राज्य का अस्तित्व क़ायम रखने के लिए कितनी आवश्यक है।"

इस पत्र में भी तजवीज़ को गुप्त रखने पर फिर ख़ूब ज़ोर दिया गया।

मार्किस वेल्सली के एक पत्र से मालूम होता है कि यद्यपि अज़ीमुलउमरा अङ्गरेज़ों से मिल गया था, तथापि वह अन्त तक

* "My object is to restore the Nizam to some degree of efficieney and power. The measure forms part of a much more extensive plan for the establishment of our alliances, . . the best position for assembling the troops destined for Hyderabad, would be in the Guntur Circar . . . the most strict attention to secrecy in the whole of this proceeding; . . you will communicate the whole proceeding to the Residents at Poona and Hyderabad for *their* information *only*, and not to be imparted to their respective Courts."—Marquess of Wellesly to General Harris, 15th July, 1798.

कुछ झिझकता रहा। सम्भव है कि उसकी आत्मा भीतर से उसे दिक़ करती हो, अथवा सम्भव है कोई और कारण रहा हो। जो हो, उसने निज़ाम की सेना को बरख़ास्त करने में देर की। अङ्गरेज़ों के लिए इस तरह के मामले में देर ख़तरनाक हो सकती थी। इस लिए मैलकम और कर्कपैट्रिक ने दूसरी ओर से भी अपना इन्तज़ाम कर लिया था। उन्होंने निज़ाम की सेना के अन्दर भी अपने षड्यन्त्र का जाल पूर रक्खा था। कम्पनी की सेना बिना निज़ाम की सेना के बरख़ास्त होने की प्रतीक्षा किए मद्रास से हैदराबाद के लिए चल पड़ी। कप्तान मैलकम की जीवनी का रचयिता सर जॉन के लिखता है कि—"सौभाग्य से ठीक मौक़े पर निज़ाम की पलटनें अपने अफ़सरों के विरुद्ध बलवा कर बैठीं, क्योंकि उनकी तनख़ाहें चढ़ गई थीं। उन्होंने अपने फ़्रान्सीसी सेनापति को क़ैद कर लिया।"* इत्यादि। जॉनके यह नहीं बतलाता कि किन तरीक़ों से रेज़िडेण्ट और उसके असिस्टेण्ट ने निज़ाम की फ़ौजों को 'ठीक मौक़े पर' बलवा करने के लिए तैयार किया। जो कुछ हो, इसी मौक़े पर कम्पनी की पलटनों ने अचानक हैदराबाद को जा घेरा। वज़ीर अज़ीमुल-उमरा से कहा गया कि आप फ़ौरन् निज़ाम की पलटनों को बर-ख़ास्त करके कम्पनी की पलटनों को उनकी जगह दे दें। लिखा है कि कम्पनी की सेना को इतनी जल्दी हैदराबाद में देखकर अज़ीमुलउमरा चकित रह गया और एक बार उसने रियासत की सेना को बरख़ास्त करने से इनकार कर दिया। जिस सेना और

* Kaye's *Life of Malcolm.*

उसके अफ़सरों ने सदा इतनी वफ़ादारी के साथ राज्य की सेवा की थी उसे बेक़सूर बरख़ास्त कर देना अज़ीमुलउमरा के लिए भी इतना आसान न था। निज़ाम को तो चन्द घण्टे पहले तक इस तमाम कारवाई का गुमान भी न हो सकता था। किन्तु न निज़ाम में इतनी हिम्मत थी और न उसके आदमियों में इतनी वफ़ादारी। अन्त में चारों ओर से कम्पनी की पलटनों से घिरकर, स्वयं अपने दरबार को विश्वासघातकों से छलनी छलनी पाकर और अपनी सेना को विद्रोही देखकर निज़ाम को अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट की इच्छा पूरी करनी पड़ी।

१ सितम्बर सन् १७९८ को निज़ाम ने कम्पनी के साथ उस नए सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिए जिससे हैदराबाद राज्य की स्वाधीनता का सदा के लिए ख़ात्मा हो गया। इस सन्धिपत्र का पहला ही वाक्य सरासर झूठ है। उसमें लिखा है—

"चूँकि नवाब निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह बहादुर ने मौजूदा दोस्ती के महत्व को देखते हुए यह इच्छा प्रकट की है कि माननीय कम्पनी की जो सेना इस समय निज़ाम की नौकरी में है उसकी संख्या बढ़ा दी जावे, इत्यादि इसलिए × × ×।"

निज़ाम का इस तरह की कभी कोई इच्छा प्रकट करना तो दूर रहा, उसे इस तमाम साज़िश का पहले से गुमान तक न था। केवल दग़ा और लाचारी ने उसे सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया।

इस सबसीडीयरी सन्धि के अनुसार छै: हज़ार हिन्दोस्तानी

सिपाहियों की एक नई सेना मय तोपख़ाने के अङ्गरेज़ अफ़सरों के अधीन निज़ाम के ख़र्च पर, निज़ाम के राज्य के अन्दर सदा के लिए क़ायम कर दी गई और यह तय हुआ कि आयन्दा बिना कम्पनी की इजाज़त के निज़ाम किसी यूरोपियन को अपने यहाँ नौकर न रक्खे। इस प्रकार निज़ाम पहला भारतीय नरेश था जिसे मार्किस वेल्सली ने 'सबसीडीयरी एलाएन्स' के जाल में फाँसकर उसे उसके राज्य के अन्दर एक प्रकार का क़ैदी बना दिया, और जिसे अपने ख़ज़ाने से उस सेना का ख़र्च बरदाश्त करना पड़ा जिस सेना ने उसे क़ैद करके रक्खा।

इङ्गलिस्तान के मन्त्रिमण्डल ने हैदराबाद की इस सन्धि पर एक विशेष पत्र द्वारा हार्दिक सन्तोष प्रकट किया, और कम्पनी के डाइरेक्टरों ने इनाम के तौर पर वेल्सली को बीस साल तक के लिए ५,००० पाउण्ड सालाना की पेनशन प्रदान की। यह पेनशन सन्धि की तारीख़ १ सितम्बर सन् १७९८ से शुरू की गई। कर्कपैट्रिक और मैलकम को भी उनकी सेवाओं के लिए इनाम और तरक्क़ियाँ दी गईं।

इसके बाद निज़ाम की अवस्था इतनी परवश हो गई कि अज़ीमुलउमरा की मृत्यु के बाद निज़ाम की इच्छा के विरुद्ध अङ्गरेज़ों ने अपने एक आदमी मीर आलम को उसकी जगह निज़ाम का प्रधान मन्त्री नियुक्त करवा दिया।

इस समस्त कूट नीति के लिए एक बहाना यह लिया गया कि अङ्गरेज़ों को उस समय फ़्रान्सीसियों से और टीपू सुलतान से

हमले का भय था, और इसलिए उन तमाम शक्तियों को पङ्गुल कर देना अङ्गरेज़ों के लिए आवश्यक था जिनका फ़ान्सीसियों या टीपू से मिल जाने का भय हो। एक तो उस समय की समस्त स्थिति को देखने से मालूम होता है कि ये दोनों भय बिल्कुल झूठे थे, दूसरे यदि इस तरह की कोई आशङ्काएँ रही भी हों तो भी गम्भीर सन्धियों को तोड़कर और गुप्त षड्यन्त्र रचकर दूसरे राज्यों की स्वाधीनता को हरने का यह कोई न्याय्य बहाना नहीं हो सकता। वास्तविक कारण था अङ्गरेज़ों की वह साम्राज्य-पिपासा जिसका पिछले अध्याय में ज़िक्र किया जा चुका है।

ठीक जिस तरह के प्रयत्न हैदराबाद में किए जा रहे थे, उसी तरह के प्रयत्न उसी समय पूना दरबार में भी चल रहे थे। ८ जुलाई को वेल्सली ने कप्तान कर्कपैट्रिक के नाम पत्र लिखा, और ठीक उसी दिन उसी विषय का एक पत्र पूना के रेज़िडेण्ट को लिखा। किन्तु पूना में वेल्सली को सफलता न हो सकी। कारण यह था कि यद्यपि नाना फ़ड़नवीस उस समय क़ैद में था तथापि पूना दरबार अभी तक हैदराबाद दरबार की तरह राजनीति-शून्य अथवा चरित्र-शून्य न हो पाया था।

पन्द्रहवाँ अध्याय

टीपू सुलतान

१७९२ की सन्धि के बाद

पिछले अध्यायों में टीपू सुलतान के जन्म, हैदर-अली की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकार और मैसूर के पहले दोनों युद्धों में अङ्गरेज़ों के साथ उसकी लड़ाइयों का ज़िक्र आ चुका है। सन् १७९२ में अङ्गरेज़ों, निज़ाम और मराठों ने मिल कर टीपू सुलतान पर हमला किया था और उसका आधा राज्य छीन कर आपस में बाँट लिया था। इन चारों शक्तियों के बीच उस समय मित्रता की सन्धि हो चुकी थी। टीपू पर तीन करोड़ से ऊपर युद्ध-दण्ड लगाया गया था, जिसमें से एक करोड़ उसी समय वसूल कर लिया गया था। शेष की अदायगी के लिए दो साल की अवधि नियत थी। कॉर्नवालिस के पत्रों से ज़ाहिर है, उसे यह आशा थी कि टीपू, जिसका आधा राज्य छिन चुका था और शेष आधा बरबाद कर दिया गया था, दो साल के अन्दर इतनी भारी रक़म को अदा न

कर सकेगा और इस बहाने कम्पनी को उसका रहा सहा राज्य हड़पने का मौक़ा मिल जावेगा। किन्तु कॉर्नवालिस को इस विषय में निराशा हुई। टीपू एक अत्यन्त योग्य शासक था। वह अपनी ज़बान का भी सच्चा था। उसने अपनी ओर से सन्धि की शर्तों का सच्चाई के साथ पालन किया। इतिहास-लेखक मैलकम लिखता है कि—"अथक परिश्रम और अत्यन्त उत्साह के साथ वह अपनी शक्ति भर प्रत्येक उचित उपाय से अपनी खोई हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करने की कोशिश करने का गम्भीर सङ्कल्प कर चुका था।" इसी लिए सन् १७९२ से—

"टीपू ने सब से पहले अपनी आन क़ायम रखते हुए ठीक समय पर उस भारी रक़म को अदा कर दिया, जो सन्धि के समय उसके शत्रुओं की ओर से नियत कर दी गई थी। इतने ठीक मियाद के अन्दर इस तरह की रक़म का अदा हो जाना एक असाधारण बात है। फिर अपनी मुसीबतों से घबराकर बैठ जाने के बजाय युद्ध के कारण मुल्क की जो बरबादी हुई थी, टीपू सुलतान ने उसे फिर से दुरुस्त करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। उसने अपनी राजधानी की रक्षा के लिए क़िलेबन्दी को बढ़ाना, सवारों की सेना को फिर से पूरा करना, पैदल सेना में नए रँगरूट भरकर उन्हें शिक्षा देना, अपने उन सामन्त सरदारों को, जो शत्रु से मिल गए थे, दण्ड देना, और अपने राज्य में कृषि को उन्नति देना शुरू किया; जिससे शीघ्र ही उसका देश फिर पहले की तरह ख़ुशहाल दिखाई देने लगा।"*

* ". . . with that unremitting activity and zealous warmth which we could look for in a prince, who had come to a serious

ऊपर लिखा जा चुका है कि टीपू ने सच्चाई के साथ सन्धि की शर्तों का पालन किया। किन्तु टीपू की वीरता और उसकी योग्यता तथा उसके राज्य का फिर से पनपना ही अङ्गरेज़ों के लिए सब से अधिक भयावह था। कॉर्नवालिस के पत्रों से साबित है कि वह टीपू के अस्तित्व को ही अङ्गरेज़ों की भारतीय सत्ता के लिए ख़तरनाक मानता था। वेल्सली के पत्रों से साबित है कि वह भारत में क़दम रखने से पहले केप ऑफ़ गुडहोप ही में टीपू पर हमला करने और जिस तरह हो सके उसे कुचलने का सङ्कल्प कर चुका था। उसके निज़ाम और पेशवा को पङ्गुल कर देने के प्रयत्न एक प्रकार से टीपू को कुचलने की अधिक गहरी योजना के केवल अङ्ग थे।

---

determination by every reasonable means in his power to regain what he had lost.

". . . I shall take a short retrospect of the leading features of his conduct since 1792.

"This was first marked by an honourable and unusually punctual discharge of the large sum which remained due at the conclusion of the peace to the allies. Instead of Sinking under his misfortunes, he exerted all his activity to repair the ravages of war. He began to add to the fortifications of his captital—to remount his cavalry, to recruit and descipline his infantry, to punish his refractory tributaries, and to encourage the cultivation of his country, which was soon restored to its former prosperity.'
—*Wellesley's Dispatches,* vol. i, Appendix. pp. 668, 669.

दोषारोपण

टीपू पर आक्रमण करने के लिए उस पर कोई न कोई इलज़ाम लगाना आवश्यक था। कहा गया कि टीपू अङ्गरेज़ों पर आक्रमण करने वाला है, और इसके लिए फ़्रान्सीसियों के साथ गुप्त षड्यन्त्र रच रहा है। बयान किया गया कि मारीशस के टापू में फ़्रान्सीसियों ने एक एलान प्रकाशित किया है, जिसमें लिखा है कि टीपू ने अपने कुछ विशेष दूत एक जहाज़ में मारीशस भेजे हैं और उन दूतों के ज़रिए अङ्गरेज़ों के विरुद्ध फ़्रान्सीसियों के साथ मेल करने का विचार प्रकट किया है, इत्यादि। इस इलज़ाम ही की बिना पर बिना टीपू से कोई बात पूछे काररवाई शुरू कर दी गई। ९ जून सन् १७९८ को मार्किस वेल्सली ने इस फ़्रान्सीसी एलान की एक कापी मद्रास के गवरनर हैरिस के पास भेजी और उसे आदेश दिया कि तुम तुरन्त टीपू के विरुद्ध सेना जमा करो। इसके बाद २० जून सन् १७९८ को वेल्सली ने हैरिस को एक दूसरे पत्र द्वारा अपने "अन्तिम निश्चय" की सूचना दी और लिखा कि— "मैं समुद्र तट पर सेना एकत्रित करने का पक्का निश्चय कर चुका हूँ।" इस पत्र में "टीपू पर अचानक आक्रमण करना" वेल्सली ने अपना "उद्देश" बताया, और अन्त में इस बात पर ज़ोर दिया कि इस सारे मामले को "गुप्त" रखना "परम आवश्यक" है। *

* ". . . . my final determination . . . to assemble the army upon the coast . . . with the object of striking a sudden

सन् १७९२ में निज़ाम और पेशवा दोनों ने टीपू के विरुद्ध अङ्गरेज़ों का साथ दिया था। उस समय की सन्धि में यह तय हो गया था कि यदि टीपू की ओर से सन्धि की शर्तों का उल्लङ्घन होगा तो अङ्गरेज़, निज़ाम और पेशवा तीनों मिलकर उसका मुक़ाबला करेंगे। टीपू ने ईमानदारी के साथ सब शर्तों का पालन किया, इसलिए अब बजाय उन दोनों से इस विषय में सलाह तक करने के वेल्सली ने टीपू पर आक्रमण करने से पूर्व निज़ाम को अपने 'सबसीडीयरी एलाएन्स' के जाल में क़ैद कर लिया, और जब पेशवा के दरबार में 'सबसीडीयरी एलाएन्स' की चाल न चल सकी तो पेशवा को फँसाए रखने के लिए सींधिया को उकसा कर उसे एक विशाल सेना सहित पेशवा के पीछे लगा दिया और उस सेना द्वारा पेशवा के इलाक़े को लुटवाना शुरू कर दिया।

जेम्स मिल ने अपने इतिहास में साबित किया है कि फ़्रान्सीसियों के उस समय टीपू के साथ मिलकर ब्रिटिश भारत पर आक्रमण करने की कोई किसी तरह की सम्भावना तक न थी। उसने यह भी दिखलाया है कि जिन काग़ज़ों के आधार पर टीपू पर फ़्रान्सीसियों के साथ साज़िश करने का इलज़ाम लगाया गया है उनमें से कुछ ऐसे थे जिनसे टीपू का कोई दोष साबित नहीं होता और शेष साफ़ जाली थे।*

---

blow against Tipoo, . . . you will of course feel the absolute necessity of keeping the contents of this letter secret.."—Marquess Wellesly to General Harris, 20th June, 1798.

* *History of India* by Mill vol. vi.

इससे अधिक हमें इस मिथ्या दोषारोपण की विवेचना की आवश्यकता नहीं है। मद्रास के गवरनर हैरिस ने २३ जून सन् १७९८ को एक पत्र में मार्किस वेल्सली को दर्शाया कि आपकी आशङ्काएँ सर्वथा निर्मूल हैं और टीपू से इस समय युद्ध छेड़ना अनुचित है। मद्रास गवरमेण्ट के सेक्रेटरी जोशिया वेब ने ६ जुलाई सन् १७९८ को वेल्सली को लिखा कि—"फ़्रान्स की जो सेना मारीशस टापू में थी भी वह सब वहाँ से यूरोप को भेज दी गई है और फ़्रान्सीसी जहाज़ तक वहाँ से हटा लिए गए हैं, इसलिए फ़्रान्सीसियों और टीपू के बीच साज़िश होना असम्भव है।" किन्तु वेल्सली के लिए फ़्रान्सीसियों और टीपू की साज़िश केवल एक बहाना थी, उसका असली उद्देश टीपू सुलतान को मिटाकर ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य को बढ़ा लेना और भविष्य के लिए अपने मार्ग से एक ज़बरदस्त रुकावट को दूर कर देना था।

टीपू के साथ धोखा

९ जून सन् १७९८ को वेल्सली ने जनरल हैरिस को लिखा कि टीपू के विरुद्ध सेना जमा की जावे और उसके पाँच दिन बाद अर्थात् १४ जून को उसने टीपू को एक अत्यन्त प्रेमपूर्ण पत्र लिखा। इसके अतिरिक्त टीपू को और पूरी तरह धोखे में रखने के लिए उसने एक नई चाल चली। सर जॉन शोर के समय से वाईनाद के इलाक़े के विषय में कम्पनी और टीपू के बीच कुछ झगड़ा चला आता था। वेल्सली ने अपना प्रेम दर्शाने के लिए अब वह इलाक़ा

टीपू को लौटा दिया। वेल्सली के प्रेमपूर्ण पत्र के उत्तर में भोले टीपू ने अङ्गरेज़ गवरनर-जनरल को लिखा—

"आपका मित्रता-सूचक पत्र ××× मिला ××× उससे मुझे इस क़दर ख़ुशी और तसल्ली हुई कि जिसे पूरी तरह काग़ज़ पर बयान नहीं किया जा सकता। ××× ईश्वर की कृपा से दोनों बादशाहतों के बीच एकता और प्रेम का उच्च सम्बन्ध और दोस्ती और मेल की बुनियादें पूरी मज़बूती से क़ायम हैं। मुझे हमेशा इसका ख़याल रहता है कि मौजूदा सुलहनामों की शर्तों पर क़ायम रहूँ। आप दिल से मेरे दोस्त और ख़ैरख़्वाह हैं, और मुझे विश्वास है कि आप ध्यान से एकता और प्रेम को क़ायम रक्खेंगे।"*

निस्सन्देह टीपू को वेल्सली की वास्तविक इच्छा और उसकी दुरङ्गी नीति का पता न था। वेल्सली एक ओर टीपू को अपनी मित्रता का विश्वास दिलाता रहा और दूसरी ओर उस पर हमला करने की गुप्त तैयारियाँ करता रहा। धीरे धीरे कुछ भनक टीपू के कानों तक भी पहुँच गई। २८ सितम्बर सन् १७९८ को वेल्सली के पास टीपू का एक और पत्र पहुँचा, जिसमें टीपू ने लिखा—

"दुष्ट लोग थोथे झगड़े और तनाज़े खड़े करके, अपना मतलब पूरा करना चाहते हैं, किन्तु ईश्वर की कृपा से दोनों बादशाहतों के बीच एकता और प्रेम के चश्मे इतने पाक और साफ़ बह रहे हैं कि स्वार्थी लोगों की चालों से वे गन्दे नहीं हो सकते।"

---

* Tipoo's letter to Governor-General received in Calcutta 10th July, 1798.

वेलसली ने एक महीने से ऊपर तक इस पत्र का कोई उत्तर न दिया। इस बीच मिश्र देश के उत्तर में नील नदी के ऊपर नेलसन ने फ़्रान्स के जहाज़ी बेड़े का ख़ात्मा कर डाला। फ़्रान्सीसियों का डर शुरू से झूठा था। यह डर किसी स्वतन्त्र भारतीय नरेश पर हमला करने के लिए कोई बहाना भी नहीं हो सकता था, तथापि यदि इससे पूर्व फ़्रान्सीसियों के भारत पर हमला करने की कोई सम्भावना हो भी सकती थी तो अब वह भी बिलकुल जाती रही। किन्तु जैसा हम लिख चुके हैं ये सब बातें वेलसली के लिए केवल बहाना मात्र थीं, उसका असली उद्देश दूसरा और स्पष्ट था। ४ नवम्बर को वेलसली ने फिर टीपू को एक अत्यन्त मित्रता-सूचक पत्र लिखा। ८ नवम्बर को अपनी तैयारी देखकर वेलसली ने रुख़ बदला और एक अत्यन्त उद्दण्डतापूर्ण पत्र में मारीशस के एलान का ज़िक्र करते हुए टीपू को लिखा कि—"आप यह गुमान नहीं कर सकते कि मेरे देश के शत्रुओं के और आपके बीच जो बातें हुई हैं उनकी ओर से मैं उदासीन रह सकता हूँ।" इत्यादि। केवल चार दिन के अन्दर टीपू की ओर वेलसली के रुख़ में यह अचानक परिवर्तन हो गया।

छेड़छाड़

इसी पत्र में वेलसली ने टीपू को यह धमकी दी कि एक अङ्गरेज़ अफ़सर मेजर डवटन को इस उद्देश से आपके दरबार में भेजा जायगा ताकि शान्ति क़ायम रखने के लिए जिन ज़िलों की अङ्गरेज़ों को ज़रूरत है, उन्हें वह आप से माँग ले। असल में

अङ्गरेज़ों की तैयारी पूरी हो चुकी थी, इसीलिए टीपू से अब साफ़ छेड़छाड़ शुरू कर दी गई।

पाँच दिन बाद वेल्सली ने जल-सेनापति रेनियर को लिखा कि—"हैदराबाद को ठीक कर लिया गया है, और समुद्र तट पर दोनों ओर हमारी युद्ध की तैयारियाँ खूब हो चुकी हैं"—इसलिए "यह अवसर हमारे लिए अच्छा है और मैं इस अवसर से लाभ उठाकर केवल डर दिखाकर अथवा लड़कर टीपू को शक्तिहीन कर देने का पक्का निश्चय कर चुका हूँ।"

इसके बाद बिना टीपू के उत्तर की प्रतीक्षा किए वेल्सली कलकत्ते से चल दिया और ३१ दिसम्बर सन् १७९८ को स्वयं युद्ध के मैदान के समीप रहने के उद्देश से मद्रास पहुँच गया। मद्रास पहुँचते ही उसे अपने ८ नवम्बर के पत्र के उत्तर में टीपू का साफ़ साफ़ पत्र मिला।

मॉरीशस वाले मामले के जवाब में टीपू ने लिखा—

"इस ख़ुदादाद सरकार में एक क़ौम व्यापारियों की है, जो ख़ुश्की पर और समुद्र पर तिजारत करती है। इनके गुमाश्तों ने एक दो मस्तूल वाला जहाज़ ख़रीदा और उसमें चावल भर कर तिजारत के लिए निकले। अकस्मात् यह जहाज़ मारीशस टापू जा पहुँचा। वहाँ से चालीस आदमी फ़्रान्सीसी और काले रङ्ग के, जिनमें से १० या १२ दस्तकार थे और बाक़ी नौकर थे, जहाज़ का किराया देकर जीविका की तलाश में यहाँ आ गए। उनमें से जिन्होंने नौकरी करना पसन्द किया वे रख लिए गए, बाक़ी इस ख़ुदादाद सरकार की सीमा से बाहर चले गए। शायद फ़्रान्सीसियों

ने, जिनमें बुराई और छल भरा हुआ है, इस जहाज़ के जाने से फ़ायदा उठाकर इन दोनों सरकारों के दिलों में मैल पैदा कर देने के उद्देश से ये अफ़वाहें उड़ा दी हैं।

"मेरी यह दिली ख़्वाहिश है और मैं सदा इसी प्रयत्न में लगा रहता हूँ कि सुलहनामे की शर्तें पूरी हों और कम्पनी बहादुर की सरकार के साथ दोस्ती और मेल की बुनियाद स्थायी और मज़बूत रहे। XXXXX इस परिस्थिति में आपके मैत्री-सूचक पत्र में युद्ध का सङ्केत XXX पढ़कर मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ।"

वेल्सली की धमकी के जवाब में टीपू ने लिखा—

"यह समझा गया है कि ख़ुदा के फ़ज़ल से सुलह के वक्त चारों सरकारों के बीच शपथ-पूर्वक जो प्रतिज्ञाएँ की गई हैं, वे इतनी दृढ़ और सर्वस्वीकृत हैं कि हमेशा क़ायम रहेंगी XXX मैं नहीं समझ सकता कि दोस्ती और मेल की बुनियादों को स्थायी बनाने के लिए, सल्तनतों को सुरक्षित रखने के लिए और सब के लाभ और भले के लिए इससे ज़्यादा कारगर और कौन से उपाय किए जा सकते हैं।"*

३१ दिसम्बर सन् १७९८ को वेल्सली को टीपू का यह पत्र मिला। ९ जनवरी सन् १७९९ को वेल्सली ने टीपू को एक और लम्बा पत्र लिखा, जिसमें उसने टीपू को यह स्पष्ट लिख दिया कि आप अपने समुद्रतट के समस्त नगर और बन्दरगाह अङ्गरेज़ों के हवाले कर दीजे। पत्र मिलने के २४ घण्टे के अन्दर टीपू से जवाब माँगा गया। वास्तव में यह पत्र टीपू को केवल युद्ध की सूचना थी।

* *Wellesley's Dispatches*, vol. i. p. 382, 383.

टीपू अब अच्छी तरह समझ गया कि जिन विदेशियों को हैदर ने पूरी तरह परास्त करके उनके साथ दया और उदारता का व्यवहार किया, जिन्हें स्वयं टीपू ने एक बार अपनी मुट्ठी में लाकर उनके वादों पर विश्वास करके छोड़ दिया, जिन्होंने अभी छै वर्ष पूर्व उसके साथ मित्रता की सन्धि की थी वे अब उस पर झूठे दोष लगाकर उसे मिटा देने पर कटिबद्ध थे। पराजित शत्रु की ओर उदारता दिखलाना एशियाई नरेशों का सदा से एक विशेष गुण रहा है, किन्तु अनेक बार उन्हें इस उदारता का गहरा मूल्य चुकाना पड़ा है।

टीपू पर हमला

३ फ़रवरी सन् १७९९ को कम्पनी की सेना टीपू के राज्य की ओर बढ़ी। टीपू इस युद्ध के लिए तैयार न था। १३ फ़रवरी को उसने वेल्सली को पत्र लिखा कि मामले को शान्ति से तय करने के लिए मेजर डवटन को मेरे दरबार में भेज दिया जावे। इसके बाद भी कई बार टीपू ने प्रार्थना की कि पहले बातचीत से मामले को तय करने की कोशिश कर ली जावे। किन्तु वेल्सली ने इन प्रार्थनाओं की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। २२ फ़रवरी को टीपू के साथ युद्ध का एलान कर दिया गया। कम्पनी की सेनाएँ जनरल हैरिस के अधीन थीं। जल और स्थल दोनों ओर से टीपू को घेर लिया गया। विवश होकर टीपू ने भी वीरता के साथ मुक़ाबले का निश्चय किया।

विश्वासघात का जाल

वेल्सली जानता था कि बावजूद इतनी तैयारी के कम्पनी की सेना का टीपू को परास्त कर सकना इतना सरल न था। इसलिए उसने कम्पनी की प्राचीन प्रथा के अनुसार टीपू के अफ़सरों और उसकी प्रजा के साथ पहले ही से गुप्त साज़िशें शुरू कर दी थीं। वेल्सली ने मद्रास के गवरनर हैरिस को लिखा—

"मेरे पास यह मानने के लिए काफ़ी वजह है कि टीपू सुलतान के बहुत से सामन्त सरदार, मुख्य मुख्य अफ़सर और प्रजा के अन्य लोग अपने नरेश के विरुद्ध विद्रोह करके कम्पनी और उसके साथियों की शरण में आने के लिए तैयार हैं। सुलतान की दग़ाबाज़ी और ज़्यादती के कारण जिस युद्ध में हमें फिर से पड़ना पड़ा है उसमें सुलतान के आदमियों के असन्तोष और विद्रोह से जहाँ तक सम्भव हो सके, लाभ उठाना हमारे लिए उचित और उपयुक्त है।"*

'दग़ाबाज़ी और ज़्यादती' वास्तव में किस ओर थी, यह इतिहास के पन्ने पन्ने से ज़ाहिर है। रहा विपक्षी के 'आदमियों

* I have reason to believe that many of the tributaries, principal officers, and other subjects of Tipoo Sultan, are inclined to throw off the authority of that prince, and to place themselves under the protection of the Company and of our allies. The war in which we are again involved by the treachery and violence of the Sultan, renders it both just and expedient that we should avai lourselves, as much as possible, of the discontent and disaffection of his people."—Marquess Wellesley's letter to General Harris. *Wellesley's Dispatches*, p. 442.

के असन्तोष और बग़ावत से जहाँ तक सम्भव हो सके लाभ उठाना', नहीं बल्कि उनमें असन्तोष और बग़ावत पैदा करके उन्हें अपनी ओर फोड़ना—सो यह काम सदा ही कम्पनी के लिए 'जायज़ और मुनासिब' समझा गया। इस काम के लिए अर्थात् पहले से जा जाकर टीपू के आदमियों से मिलने और उन्हें फोड़ने के लिए वेल्सली ने अपने भाई करनल वेल्सली, करनल क्लोज़, करनल एगन्यु, कप्तान मैलकम और कप्तान मैकॉले, पाँच आदमियों का एक बाज़ाब्ता कमीशन नियुक्त किया। इस समय के पत्रों से स्पष्ट है कि टीपू के विरुद्ध इससे पहले के युद्ध में भी कॉर्नवालिस इसी तरह के उपायों को काम में ला चुका था।

मीर हुसेनअली ख़ाँ किरमानी ने अपनी फ़ारसी पुस्तक "निशान-ए-हैदरी" में ख़ासे विस्तार के साथ बयान किया है कि किस प्रकार कम्पनी की सेनाओं ने एकाएक चारों ओर से टीपू को जा घेरा, किस प्रकार वीरता और आन के साथ टीपू ने मरते दम तक शत्रुओं का मुक़ाबला किया और किस प्रकार टीपू के दरबार और उसकी समस्त सेना को विश्वासघातकों से छलनी छलनी करके अन्त में अङ्गरेज़ों ने विजय प्राप्त की।

इस पुस्तक से पता चलता है कि इस युद्ध में निज़ाम और उसके वज़ीर मीर आलम ने अङ्गरेज़ों को फिर ख़ूब सहायता दी। चार हज़ार सेना मद्रास से जनरल हैरिस के अधीन थी। चार हज़ार सबसीडीयरी सेना हैदराबाद से आकर मिली। दो हज़ार सेना बङ्गाल की थी। आठ हज़ार सवार मीर आलम के अधीन थे और

हैदराबाद ही के छै हज़ार सवार रोशनराव के अधीन थे। कुछ सेना बम्बई से आई। इस प्रकार कुल मिलाकर लगभग ३० हज़ार सेना ने चारों ओर से टीपू पर एक साथ चढ़ाई की।

इस युद्ध के विविध संग्रामों को वर्णन करने के बजाय हम केवल युद्ध के उस पहलू को संक्षेप में बयान करेंगे, जो वास्तव में टीपू के नाश और अङ्गरेज़ों की सफलता का कारण हुआ। सब से पहला धोखा जो टीपू के कुछ नमकहराम सलाहकारों और जासूसों ने उसे दिया वह यह था कि उन्होंने टीपू को विश्वास दिलाया कि कम्पनी की समस्त सेना चार या पाँच हज़ार से अधिक नहीं है।

टीपू ने खबर पाते ही अपने विश्वस्त ब्राह्मण मन्त्री और सेनापति पूर्निया के अधीन कुछ सवार शत्रु के मुक़ाबले के लिए भेजे। रायकोट नामक स्थान से लगभग दो कोस पर इस सेना की कम्पनी की सेना से मुठभेड़ हुई। किन्तु पूर्निया भीतर से अङ्गरेज़ों से मिला हुआ था। उसने बजाय मुक़ाबला करने के कम्पनी की सेना के दाएँ बाएँ चक्कर लगाने शुरू किए। कम्पनी की सेना आगे बढ़ती रही। पूर्निया की सेना के एक दल ने आगे बढ़कर वीरता के साथ शत्रु को रोका और एक बहुत बड़ी संख्या को तलवार के घाट उतारा। पूर्निया ने यह देख कर अपने वीर सवारों को शाबाशी देने के स्थान पर उन्हें अत्यन्त कड़े शब्दों में लानत मलामत की। सवार समझ गए कि पूर्निया लड़ना नहीं चाहता। इसके बाद कम्पनी की बढ़ती हुई सेना को रोकने वा उनसे लड़ने के

बजाय विश्वासघातक पूर्निया की सेना शत्रु के आगे पीछे बतौर उनके संरक्षकों के चलती रही।

यह ख़बर सुन कर कि कम्पनी की सेना बढ़ी चली आ रही है, सुलतान टीपू ने स्वयं सेना सहित आगे बढ़ने का विचार किया। उसके सलाहकारों ने फिर उसे धोखा दिया। जनरल हैरिस की सेना एक विशेष मार्ग से श्रीरङ्गपट्टन की ओर बढ़ रही थी। टीपू के सलाहकारों ने उसे दूसरा मार्ग बतला दिया और टीपू ने एक ग़लत सड़क पर जाकर डेरे डाल दिए। ज्योंही टीपू को इस विश्वासघात का पता चला, उसने फ़ौरन् तेज़ी के साथ आगे बढ़ कर गुलशनाबाद के पास सामने से हैरिस की सेना को रोका। कुछ देर तक ख़ूब घमासान युद्ध हुआ, जिसमें सुलतान के अनेक सिपाहियों और सेनानियों ने वीरता के हाथ दिखाए। कम्पनी की सेना और विशेष कर उनके तोपख़ाने को ज़बरदस्त हानि सहनी पड़ी। ठीक अवसर पर सुलतान ने अपने एक सेनापति कमरुद्दीन ख़ाँ को सवारों सहित आगे बढ़कर शत्रु को समाप्त कर देने की आज्ञा दी। किन्तु कमरुद्दीन ख़ाँ भी अपने आपको अङ्गरेज़ों के हाथ बेच चुका था; मौक़ा मिलते ही शत्रु पर हमला करने के बजाय वह थोड़ा आगे बढ़कर उलटा लौटा और एकाएक अपने सवारों सहित सुलतान की सेना के एक भाग पर टूट पड़ा। टीपू के अनेक जाँबाज़ सिपाही इस समय काम आए, अनेक हैरान होकर पीछे हट गए और कमरुद्दीन ख़ाँ के विश्वासघात के प्रताप मैदान अङ्गरेज़ों के हाथ रहा।

इतने में टीप को पता चला कि एक दूसरी सेना जनरल

स्टूअर्ट के अधीन बम्बई से श्रीरङ्गपट्टन की ओर बढ़ी चली आ रही है, फ़ौरन कुछ सरदारों को जनरल हैरिस के मुक़ाबले के लिए छोड़कर टीपू अपनी समस्त सेना और तोपख़ाने सहित जनरल स्टूअर्ट का मार्ग रोकने के लिए बढ़ा।

दो रात और एक दिन के लगातार कूच के बाद टीपू ने बम्बई की सेना को जा पकड़ा और पहुँचते ही हमले की आज्ञा दी। टीपू की सेना ने इस समय भी पूरी वीरता दिखलाई। कम्पनी की सेना को भारी शिकस्त खानी पड़ी। अनेक मैदान में काम आए और अनेक माल असबाब छोड़कर जान बचाकर आस पास के जङ्गल में जा छिपे। टीपू के जासूसों ने आकर उसे ख़बर दी कि बम्बई की सेना युद्ध का इरादा छोड़कर जङ्गल के रास्ते पीछे लौट गई। टीपू अपनी विजयी सेना सहित श्रीरङ्गपट्टन की ओर मुड़ आया।

मालूम होता है पूर्निया और कमरुद्दीन जैसे विश्वासघातकों ने टीपू के चारों ओर नमकहराम मुख़बिर और सलाहकार पैदा कर रक्खे थे।

टीपू के श्रीरङ्गपट्टन पहुँचते ही जनरल हैरिस की सेना नगर के सम्मुख आ पहुँची। सामने की ओर श्रीरङ्गपट्टन का क़िला था और पीछे नगर। अङ्गरेज़ी सेना ने क़िले और नगर के अन्दर आग बरसानी शुरू की। टीपू के कुछ सलाहकारों ने उसे राय दी कि आप नगर छोड़ कर भाग जाइए अथवा सुलह की बातचीत शुरू कीजिए। वीर टीपू ने उस स्थिति में दोनों

...ओं से इनकार कर दिया। उसने अन्त समय तक लड़ने का निश्चय कर लिया था। मालूम होता है, पूर्निया और कमरुद्दीन ख़ाँ के विश्वासघात का उसे अभी तक पता न चला था। फिर इन्हीं दोनों सेनापतियों के अधीन सेना नियुक्त करके क़िले से बाहर भेजी गई। मीर हुसेनअली ख़ाँ लिखता है कि यह सेना बार बार अंगरेज़ी सेना के दाएँ बाएँ चक्कर लगाती थी, बार बार टीपू के सवार शत्रु पर हमला करने की इजाज़त माँगते थे और बार बार उनके सेनापति उन्हें इजाज़त देने से इनकार करते थे, और सिपाही दुख और निराशा से हाथ मलते रह जाते थे; यहाँ तक कि बम्बई की सेना भी हैरिस की मदद के लिए आ पहुँची।

अन्त में एक घमासान संग्राम हुआ। इस संग्राम में महताब बाग़ का मोरचा श्रीरङ्गपट्टन के क़िले की कुञ्जी था। टीपू का एक विश्वस्त अनुचर सय्यद ग़फ़्फ़ार, जिसका ज़िक्र दूसरे मैसूर युद्ध के वृत्तान्त में आ चुका है, महताब बाग़ का संरक्षक था। सय्यद ग़फ़्फ़ार देर तक बड़ी वीरता के साथ शत्रु के हमलों से महताब बाग़ की रक्षा करता रहा। दुशमन ने देख लिया कि सय्यद ग़फ़्फ़ार के रहते महताब बाग़ को जीत सकना असम्भव है। सय्यद ग़फ़्फ़ार को धन का लोभ दिया गया। उस पर उसका कोई असर न हुआ। अन्त में साज़िश होकर टीपू के पास के नमकहरामों ने टीपू को कुछ समझा बुझाकर सय्यद ग़फ़्फ़ार को महताब बाग़ से हटवाकर क़िले के अन्दर बुलवा लिया। जिस मनुष्य ने सय्यद ग़फ़्फ़ार की जगह ली, वह

अङ्गरेज़ों का धनक्रीत था । सय्यद ग़फ़्फ़ार के जाते ही उसने महताब बाग़ अङ्गरेज़ी सेना के हाथों में दे दिया और एक प्रकार से श्रीरङ्गपट्टन के क़िले का दरवाज़ा शत्रु के लिए खोल दिया।

टीपू का मुख्य सलाहकार इस समय उसका एक दीवान मीर सादिक़ था। भोले टीपू को बहुत देर तक इसका पता न चल सका कि यह मीर सादिक़ भी उसके दुशमनों से मिला हुआ था। यहाँ तक कि मीर सादिक़ ने टीपू के एक विश्वस्त अफ़सर ग़ाज़ी ख़ाँ को क़त्ल करवा दिया और क़िले की दीवारों के टूट जाने पर भी टीपू से इस ख़बर को छिपाए रक्खा। अन्त में जब टीपू को अपने कुछ विश्वस्त आदमियों द्वारा इन सब बातों का और मीर सादिक़ और उसके अन्य साथियों के विश्वासघात का पता चला, टीपू ने एक दिन सुबह को अपने हाथ से विश्वासघातकों की एक लम्बी सूची तैयार करके मीर मुईनुद्दीन के हाथ में दी और उसे आज्ञा दी कि आज ही रात को इन समस्त नमकहरामों का, जिस तरह हो, काम तमाम कर देना।

अकस्मात् जिस समय मीर मुईनुद्दीन ने इस सूची को खोल कर पढ़ना चाहा, महल का एक फ़र्राश, जो पढ़ना जानता था और मीर सादिक़ से मिला हुआ था, मीर मुईनुद्दीन के पीछे खड़ा हुआ था। इस फ़र्राश ने मीर सादिक़ का नाम सूची में सबसे ऊपर पढ़कर फ़ौरन् जाकर मीर सादिक़ को इसकी ख़बर दे दी। मीर सादिक़ सावधान हो गया।

उसी दिन सुलतान टीपू ने घोड़े पर चढ़कर क़िले की चहार-

दीवारों का निरीक्षण किया। टूटी हुई दीवारों की मरम्मत का हुक्म दिया और ऐन एक दीवार के ऊपर अपना ख़ेमा लगवाया। कहते हैं कि कुछ ज्योतिषियों ने टीपू से आकर अर्ज़ की कि आज का दिन दोपहर से सात घड़ी बाद तक आपके लिए शुभ नहीं है। इन हिन्दू ज्योतिषियों की सलाह के अनुसार टीपू ने अपने महल में जाकर स्नान किया, हिन्दू क़ायदे से हवन और जाप आदिक कराए और दो हाथी, जिन पर काली झूलें पड़ी हुई थीं और जिनकी झूलों के चारों कोनों में सोना, चाँदी, मोती और जवाहरात बँधे हुए थे, एक ब्राह्मण को दान दिए। इसके बाद उसने अनेक ग़रीबों और मोहताजों में भोजन, वस्त्र और धन बँटवाया।

दोपहर के समय टीपू अभी भोजन करने के लिए बैठा ही था और अभी पहला ही कौर उसके मुँह में जाने पाया था कि किसी ने बाहर से आकर सूचना दी कि विश्वासघातकों ने सुलतान के विश्वस्त अनुचर सय्यद ग़फ़्फ़ार को, जो उस समय क़िले का प्रधान संरक्षक था, क़त्ल कर डाला। टीपू के लिए दूसरा कौर हराम हो गया। ख़बर सुनते ही वह फ़ौरन् दस्तरख़ान छोड़ कर उठ खड़ा हुआ और घोड़े पर सवार होकर स्वयं सय्यद ग़फ़्फ़ार की जगह लेने के लिए अपने कुछ ख़ास ख़ास सरदारों सहित पीछे की ओर से क़िले के अन्दर घुस गया।

उधर विश्वासघातकों ने सय्यद ग़फ़्फ़ार को ख़तम करते ही फ़ौरन् दीवार पर चढ़ कर सफ़ेद रूमाल दिखा कर बाहर की अङ्गरेज़ी सेना को इशारा किया और पेश्तर इसके कि टीपू मौक़े पर

पहुँच कर फिर से अपने आदमियों को जमा कर सके, शत्रु के सिपाही दीवार के टूटे हुए हिस्से से श्रीरङ्गपट्टन के क़िले के अन्दर घुस आए।

जब दीवान मीर सादिक़ को पता चला कि सुलतान ख़ुद सेना जमा करके क़िले के अन्दर गया है, उसने घोड़े पर चढ़ कर सुलतान का पीछा किया और जिस दरवाज़े से टीपू क़िले के अन्दर गया था, उसे मज़बूती से बन्द करवा कर, ताकि टीपू किसी तरह बच कर न निकल सके, बाहर से सहायता पहुँचाने के बहाने एक दूसरे दरवाज़े से ख़ुद बाहर निकलना चाहा। इस दूसरे दरवाज़े पर पहुँचते ही उसने वहाँ के पहरेदारों को आज्ञा दी कि जब मैं बाहर चला जाऊँ तो तुम दरवाज़े को मज़बूती से बन्द कर लेना और फिर किसी के भी कहने पर न खोलना। किन्तु अभी वह इन पहरेदारों से बात कर ही रहा था कि टीपू के एक वीर सिपाही ने सामने से आकर ललकार कर कहा—"ऐ कम्बख़्त मलऊन! अपने ख़ुदातर्स सुलतान को दुशमनों के हवाले करके अब तू जान बचा कर भागना चाहता है? ले यह तेरे गुनाह की सज़ा है!" यह कह कर उसने अपनी तलवार के एक वार से नमकहराम मीर सादिक़ के दो टुकड़े कर डाले। मीर सादिक़ की लोथ घोड़े से ज़मीन पर जा गिरी।

किन्तु टीपू और उसके देश को अब इससे क्या लाभ हो सकता था! टीपू ने जब अच्छी तरह देख लिया कि मेरे आदमियों ने मेरे साथ दग़ा की और क़िला शत्रु के हाथों में चला गया, तो उसने

एक बार उसी दरवाज़े से फिर बाहर जाना चाहा; किन्तु एक साधारण क़िलेदार ने, जिसे मीर सादिक़ ने पहले से समझा रक्खा था, इस समय अपने स्वामी और नरेश टीपू सुलतान की आज्ञा पर क़िले का दरवाज़ा खोलने से इनकार कर दिया।

टीपू का अन्त

अङ्गरेज़ी सेना दीवार के टूटे हुए हिस्से पर से क़िले के अन्दर प्रवेश कर चुकी थी। टीपू अब फिर लौट कर अपने मुट्ठी भर आदमियों सहित बढ़ते हुए शत्रु की ओर लपका। उसने अपनी शक्ति भर अपने इन रहे सहे सिपाहियों को जोश दिलाया। उसने चिल्ला कर कहा—"आख़ीर वक्त तक क़िले की रक्षा करना हमारा फ़र्ज़ है"—"इन्सान को मौत सिर्फ़ एक मरतबा आ सकती है, फिर क्या परवा है कि ज़िन्दगी कब ख़त्म हो!"* यह कह कर उसने अपनी बन्दूक़ से शत्र की ओर गोलियाँ चलानी शुरू कीं। कई यूरोपियन अफ़सर उसकी गोलियों का शिकार होकर गिर पड़े। किन्तु शत्रु की संख्या बहुत अधिक थी। अन्त में एक गोली टीपू की छाती में बाईं ओर आकर लगी। टीपू ज़ख्मी हो गया, तथापि उसने बन्दूक़ हाथ से न छोड़ी और न वह पीछे मुड़ा। इस ज़ख्मी हालत में भी वह बराबर अपनी बन्दूक़ से शत्रु पर गोलियाँ बरसाता रहा। थोड़ी देर बाद एक दूसरी गोली टीपू की छाती में दाहिनी ओर आकर लगी। टीपू का घोड़ा

* "*History of Hyder Shah and Tippoo Sultan*" by Prince Gholam Mohammad

अब ज़ख़्मों से छलनी छलनी होकर गिर पड़ा। टीपू की पगड़ी ज़मीन पर जा गिरी। शत्रु अधिक निकट आ पहुँचे। प्यादा पा और नङ्गे सर टीपू ने अब बन्दूक़ फेंक कर दाहिने हाथ में अपनी तलवार सँभाली। टीपू की छाती से अब दो दो धारें ख़ून की बह रही थीं। उसके कुछ वफ़ादार साथियों ने उसकी यह अवस्था देख कर सहारा देकर उसे एक पालकी में बैठा दिया। पालकी एक मेहराब के नीचे रख दी गई। इस हालत में टीपू के एक मुलाज़िम ने उसे सलाह दी कि अब आप अपने आपको अङ्गरेज़ों के हवाले कर दीजे और उनकी उदारता पर छोड़ दीजे, किन्तु वीर टीपू ने बड़े तिरस्कार के साथ इस सलाह को अस्वीकार किया। इतने में कुछ अङ्गरेज़ सिपाही पालकी के पास तक आ पहुँचे। इनमें से एक ने टीपू को ज़ख़्मी देखकर उसकी कमर से जड़ाऊ पेटी उतारना चाहा। टीपू ने अभी तक तलवार हाथ से न छोड़ी थी। उसने इस तलवार से गोरे सिपाही पर वार किया और एक वार में उसका घुटना उड़ा दिया। फ़ौरन् एक तीसरी गोली टीपू की दाहिनी कनपटी में आकर लगी जिसने एक क्षण के अन्दर उसके ऐहिक जीवन का अन्त कर दिया। उस दिन रात को जिस समय टीपू का मृत शरीर लाशों के ढेर में से ढूँढ कर निकाला गया तो उस समय तक तलवार उसके हाथ से न छूटी थी। दाहने हाथ का पूरा पञ्जा तलवार के क़ब्ज़े पर कसा हुआ था। टीपू प्रायः कहा करता था—"दो दिन शेर की तरह जीना ज्यादा अच्छा है बजाय दो सौ वर्ष भेड़ की तरह जीने के।"
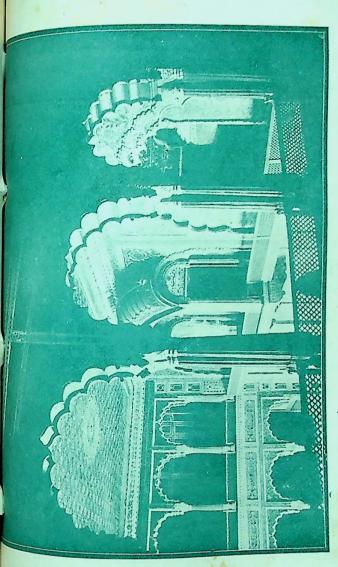
दरिया दौलत, श्रीरङ्गपट्टन में टीपू के महल का भीतरी दृश्य

[रजिस्ट्रार, मैसूर विश्वविद्यालय, की कृपा द्वारा]

निस्सन्देह टीपू का जीवन और उसकी मृत्यु दोनों इस कथन के अनुरूप थीं।

टीपू की मृत्यु के बाद

टीपू की आयु उस समय ५० वर्ष की थी। १७ वर्ष वह अपने पिता के तख़्त पर बैठ चुका था। उसका सब से बड़ा बेटा फ़तहहैदर सुलतान इस समय क़िले से बाहर कारीघाट पहाड़ी के निकट शत्रु से लड़ रहा था। पिता की मृत्यु का समाचार सुनते ही वह क़िले की ओर लपका। सलाह के लिए उसने तुरन्त अपने वज़ीरों और अमीरों को जमा किया। इनमें एक ओर मलिक जहान ख़ाँ और उसके साथी लड़ाई जारी रखने के पक्ष में थे और दूसरी ओर पूर्निया और उसके साथी फ़ौरन् सुलह कर लेने पर ज़ोर दे रहे थे। इतने में जनरल हैरिस ने सुलह की बातचीत करने के बहाने अपने कुछ अफ़सरों सहित आकर फ़तहहैदर सुलतान से भेंट की और अत्यन्त आदर और प्रेम के साथ सब के सामने उससे वादा किया कि यदि आप लड़ाई बन्द कर दें तो अङ्गरेज़ सरकार आपको फिर से आपके पिता के तख़्त पर बैठा देगी। इस साफ़ वादे पर और पूर्निया जैसों के ज़ोर देने पर फ़तहहैदर सुलतान ने शस्त्र रख दिए। जनरल हैरिस ने वहाँ से लौटते ही अपने इस वादे को साफ़ तोड़ डाला। निस्सन्देह उसका यह वादा केवल एक चाल थी। श्रीरङ्गपट्टन के क़िले पर अङ्गरेज़ी सेना का क़ब्ज़ा जारी रहा।

श्रीरङ्गपट्टन के क़िले के बाद अङ्गरेज़ी सेना के लिए नगर में प्रवेश करना बाक़ी था। मार्किस वेल्सली के नाम से एक एलान प्रकाशित किया गया कि अङ्गरेज़ी सेना नगर-निवासियों के जान और माल दोनों की रक्षा करेगी और किसी पर किसी तरह का अन्याय न होगा। किन्तु विजयी अङ्गरेज़ी सेना के नगर में घुसते ही "श्रीरङ्गपट्टन की गलियों में एक एक दीवार और एक एक दरवाज़े से ख़ून बहने लगा।" इतना ही नहीं, श्रीरङ्गपट्टन के पतन के बाद कई दिन तक कम्पनी के सिपाहियों और विशेषकर गोरे सिपाहियों ने जो अकथनीय अत्याचार नगर-निवासियों पर जारी रक्खे और जिन्हें स्वयं अङ्गरेज़ अफ़सरों ने अपने पत्रों में स्वीकार किया है, उनके सामने किसी भी भारतीय नरेश के काले से काले पाप फीके मालूम होते हैं। मीर हुसेनअली ख़ाँ लिखता है कि क़त्ल, लूट और नगर की स्त्रियों के ऊपर बलात्कार इस ज़ोरों से बढ़ा कि वर्णन करना असम्भव है!

इसके बाद अङ्गरेज़ी सेना शाही महल के अन्दर घुसी। टीपू को अपने बाप के समान शेर पालने का शौक़ था। उसके महल के बाहरी सहन में अगणित शेर खुले फिरते रहते थे। अङ्गरेज़ों को भीतर घुसने से पहले इन शेरों को गोली से उड़ा देना पड़ा। महल के भीतर टीपू का ख़ज़ाना धन और जवाहरात से लबालब था। वह माल, हाथी, ऊँट और तरह तरह का असबाब कम्पनी और उसके अङ्गरेज़ सिपाहियों के हाथों में आया। टीपू के सुन्दर तख़्त को, जो सोने का बना हुआ था, तोड़ डाला गया और हीरे, जवाहरात,

मोतियों की मालाएँ और ज़ेवरों के पिटारे नीलाम किए गए। यहाँ तक कि केवल महल के जवाहरात की लूट का अन्दाज़ा उस समय १,११,४३, २१६ पाउण्ड अर्थात् लगभग १२ करोड़ रुपए का किया गया। टीपू का विशाल पुस्तकालय और अनेक अन्य बहुमूल्य पदार्थ श्रीरङ्गपट्टन से उठाकर विलायत भेज दिए गए।

४ मई सन् १७९९ को टीपू की मृत्यु हुई। उसी दिन अङ्गरेज़ी सेना ने श्रीरङ्गपट्टन में प्रवेश किया। ५ मई को टीपू की लाश हैदरअली के मक़बरे के पास लाल बाग़ में दफ़न कर दी गई। इसके बाद फ़तहहैदर सुलतान के साथ जनरल हैरिस के वादे को मिट्टी में मिला कर अङ्गरेज़ों ने टीपू के भाई करीमसाहब, टीपू के १२ बेटों और उसकी बेगमों सब को क़ैद करके रायवेलोर के क़िले में भेज दिया।

टीपू की सल्तनत के टुकड़े कर दिए गए। अधिकांश भाग कम्पनी को मिला। एक फाँक निज़ाम के हिस्से में आई। शेष भाग पर मैसूर के पुराने हिन्दू राजकुल का शासन रहने दिया गया, और उस कुल का एक पाँच वर्ष का बालक राजा बनाकर बैठा दिया गया, क्योंकि इस कुल के कुछ लोगों ने भी टीपू के विरुद्ध अङ्गरेज़ों को मदद दी थी। मैसूर के "दैव" का पद भविष्य के लिए उड़ा दिया गया; और विश्वासघातक पूर्निया बालक राजा का वज़ीर और रक्षक नियुक्त हुआ।

८ जुलाई सन् १७९९ को मैसूर के नए महाराजा और अङ्गरेज़ कम्पनी के बीच सोलह शर्तों का एक नया सन्धिपत्र लिखा गया।

इन शर्तों का सार यह था कि कम्पनी की सबसीडीयरी सेना मैसूर में रहा करेगी, मैसूर के राजा को इस सेना के ख़र्च के लिए सात लाख पैगोदा अर्थात् लगभग पच्चीस लाख रुपए सालाना देने होंगे, रियासत के समस्त क़िले और तमाम फ़ौजी शासन अङ्गरेज़ों के हाथों में रहेगा, राज्य के हर महकमे में दख़ल देने का गवरनर-जनरल को पूरा अधिकार रहेगा, गवरनर-जनरल की आज्ञा हर समय और हर हालत में राजा के लिए मान्य होगी, और राजा का एक मात्र अधिकार यह होगा कि रियासत की आमदनी में से फ़ौजी तथा अन्य सब ख़र्च निकाल कर उसे कम से कम एक लाख पैगोदा सालाना अपने निजी ख़र्च के लिए मिलता रहे।

टीपू के जिन सरदारों और अन्य नौकरों ने अपने मालिक के साथ विश्वासघात किया था उनमें से कुछ को इनाम में जागीरें और पेनशनें दी गईं। इङ्गलिस्तान की सरकार ने उन सब अङ्गरेज़ों को इनाम दिए जिन्होंने इस युद्ध में भाग लिया था। गवरनर-जनरल का नाम पहले 'अर्ल' मॉरनिङ्गटन था, अब रुतबा बढ़कर उसका नाम 'मार्किस' वेल्सली होगया। जनरल हैरिस आयन्दा के लिए जनरल 'लॉर्ड हेरिस ऑफ़ श्रीरङ्गपट्टन' हो गया।

टीपू के सरदारों में से एक वीर मलिक जहान ख़ाँ ने, जिसे धूँडिया वाघ भी कहा जाता है, अन्त तक विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की। केवल एक घोड़ा साथ लेकर श्रीरङ्गपट्टन के पतन के समय वह नगर से निकल गया और थोड़े ही दिनों में उसने लगभग तीस हज़ार सवार और पैदल अपने साथ जमा कर लिए।
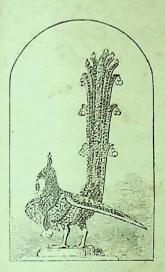
टीपू सुलतान के सिंहासन के शिखर का रत्न-जटित मोर

टीपू सुलतान का सिंहासन सोने का बना हुआ था। यह मोर उस सिंहासन की छतरी के ऊपर की कलगी था। इतिहास-लेखक बेवरिज इसके सौन्दर्य और कारीगरी की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करता है। इसकी गर्दन ज़मुर्रदों की बनी हुई थी। और हीरों का बना हुआ था जिसके बीच-बीच में तीन पंक्तियाँ लालों की थीं। चोंच की जगह एक बड़ा ज़मुर्रद था जिसके सिरे पर सोना मँढा था और जिससे एक लाल और दो मोती लटक रहे थे। मोर के सिर के ऊपर कलगी की जगह एक ज़मुर्रद और उस पर एक मोती था। पङ्ख और पर लाल-हीरों और ज़मुर्रदों की पंक्तियों के बने हुए थे जिनसे दोनों ओर छोटे-छोटे मोती लटके रहे थे। टीपू सुलतान की मृत्यु और श्रीरंगपट्टन की लूट के समय से यह मोर इंगलिस्तान के राजमहल विण्डसर कैसेल में रक्खा हुआ है।

[हेनरी बेवरिज को 'ए काम्प्रिहेन्सिव हिस्टरी ऑफ़ इण्डिया' जिल्द २, से]

दो वर्ष तक कृष्णा और तुङ्गभद्रा नदियों के बीच के इलाक़े में वह अङ्गरेज़ों और उनके साथियों को दिक़ करता रहा। अनेक लड़ाइयों में उसने विजय प्राप्त की। उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गई। किन्तु इस अरसे में वह कोई बाज़ाब्ता क़िला अथवा केन्द्र अपने लिए न बना सका। अन्त में दो वर्ष तक इस प्रकार मुक़ाबला करने के बाद एक स्थान पर करनल आरथर वेल्सली की सेना के साथ उसका अन्तिम संग्राम हुआ जिसमें कड़प्पा और करनूल के अफ़ग़ानों ने उसके साथ विश्वासघात करके उसे करनल वेल्सली के हवाले कर दिया। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक स्वाधीनता के इस सच्चे प्रेमी को, जिसने लगातार दो वर्ष तक अनन्त कष्ट सहन करते हुए भी विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की, प्रायः उसी प्रकार डाकू बतलाते हैं जिस प्रकार छत्रपति शिवाजी को।

इस प्रकार वीर हैदरअली की नसल में राजसत्ता का अन्त कर दिया गया और निस्सन्देह भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य के मार्ग से एक बहुत ज़बरदस्त बाधा दूर हो गई।

टीपू की मृत्यु का समाचार जब कलकत्ते पहुँचा तो वहाँ के अङ्गरेज़ों ने बड़े बड़े जलसे किए और खुशियाँ मनाईं, बाक़ायदा जलूस निकाले गए और गवरनर-जनरल तथा शेष समस्त अफ़सरों ने एक विशेष दिन नियत करके बड़े ठाट बाट के साथ कलकत्ते के नए गिरजे में जाकर खुदा का शुक्रिया अदा किया; क्योंकि उस समय के बङ्गाल के अङ्गरेज़ चीफ़ जस्टिस सर जॉन ऐन्सट्रथर के शब्दों में टीपू की ताक़त ही—"उस समय एक मात्र ताक़त थी जो

हमारी सेनाओं का मुँह मोड़ने का अपने में बल रखती थी।" और "भारत में हमारा (अङ्गरेज़ी) साम्राज्य अब से स्थायी और सुरक्षित हो गया।"*

टीपू का चरित्र

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक जेम्स मिल के अतिरिक्त बहुत कम अङ्गरेज़ लेखक ऐसे हैं जिन्होंने टीपू के चरित्र के साथ न्याय करने का प्रयत्न किया हो। इनमें से अधिकांश लेखकों ने टीपू को बदनाम करने के भरसक प्रयत्न किए हैं, यहाँ तक कि मुसलमान लेखकों को धन देकर उनसे फ़ारसी में सुलतान टीपू की कल्पित जीवनियाँ लिखा डाली गई हैं। इन अङ्गरेज़ों तथा अङ्गरेज़ों के धनक्रीत भारतीय लेखकों की पुस्तकों में टीपू के अत्याचारों के अनेक कल्पित क़िस्से भरे हुए हैं। वास्तव में संसार के इतिहास में शायद बहुत कम लोगों के चरित्रों पर इतने अधिक झूठे कलङ्क लगाए गए होंगे जितने कि उन भारतीय वीरों के चरित्र पर, जिन्होंने समय समय पर इस देश के अन्दर अङ्गरेज़ी राज्य के विस्तार को रोकने का प्रयत्न किया। प्रसिद्ध और प्रामाणिक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक सर जॉन के, जो सन् ५७ के विप्लव के पश्चात् इङ्गलिस्तान के भारतमन्त्री के दफ़्तर में 'राजनैतिक और गुप्त विभाग' का सेक्रेटरी रहा, लिखता है—

* Sir John Anstruther to the Governor-General, 17th May, 1799.

टीपू सुलतान की पताकाएँ और सिंहासन का चरणासन

टीपू के साम्राज्य का चिन्ह 'सिंह' था। जिस अद्भुत सिंहासन की कलग़ी मोर का उसका चरणासन सोने का बना सिंह का मुँह था। दोनों आँखें और दाँत बिल्लौर के थे। सिर के ऊपर की धारियाँ चमकते हुए सोने की थीं।

टीपू की पताकाओं पर सूर्य का चिन्ह होता था। इधर उधर की दोनों पताकाएँ लाल रेशम की थीं, जिनके बीच में स्वर्ण-रश्मियों के सूर्य बने थे। बीच की पताका हरे रंग की थी, जिसपर सुनहरा सूर्य कढ़ा था। पताकाओं के सिरे ठोस सोने के थे, जिनमें लाल, हीरे और ज़मुर्रद जड़े थे। ये तीनों बहुमूल्य पताकाएँ और चरणासन इस समय इंगलिस्तान के राजमहल में रक्खे हैं।

[From "A Comprehensive History of India" by Henry Beveridge. vol. II.]

"हम लोगों में यह एक प्रथा है कि पहले किसी देशी नरेश का राज्य छीनते हैं और फिर उस पर अथवा उसका उत्तराधिकारी बनने वाले पर झूठे कलङ्क लगा कर उन्हें बदनाम करते हैं।"*

दो तरह के इलज़ाम टीपू सुलतान पर लगाए जाते हैं। एक यह कि अपने अङ्गरेज़ क़ैदियों के साथ उसका व्यवहार अत्यन्त क्रूर था और दूसरा यह कि टीपू एक धर्मान्ध मुसलमान था।

पहले इलज़ाम के विषय में हम केवल इतना कहेंगे कि सिवाय कप्तान बेयर्ड जैसे अङ्गरेज़ क़ैदियों के बयानों के और कोई गवाही इस 'क्रूर व्यवहार' की नहीं मिलती, और यह अङ्गरेज़ क़ैदी न निष्पक्ष माने जा सकते हैं और न सर्वथा सत्यवादी। इसके अतिरिक्त यदि बेयर्ड और उसके साथियों के सारे बयान सच मान लिए जावें तो भी वे समस्त अत्याचार, जो टीपू ने बेयर्ड और उसके साथी अङ्गरेज़ों पर किए, उन अत्याचारों के मुक़ाबले में सर्वथा फीके मालूम होते हैं जो अङ्गरेज़ों ने इन्हीं मैसूर के युद्धों में अपने हिन्दोस्तानी क़ैदियों और मैसूर की प्रजा के साथ किए।

दूसरा इलज़ाम इस देश में हिन्दू मुसलिम वैमनस्य को बढ़ाने का अङ्गरेज़ लेखकों के हाथों में सदा से एक विशेष साधन रहा है। सबसे पहले हम टीपू पर इस कलङ्क के विषय में इतिहास-लेखक जेम्स मिल की सम्मति उद्धृत करते हैं। जेम्स मिल लिखता है—

* ". . . . it is a custom among us *odisse quern ceseres*—to take a Native Ruler's Kingdom and then to revile the deposed ruler or his would be successor."—*History of the Sepoy War* by Sir John Kaye, vol. iii, pp. 361, 362.

"टीपू के चरित्र की एक और विशेषता उसकी धार्मिकता थी। इसके मन पर इस धार्मिक भाव का अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा हुआ था। दिन का अधिकांश समय वह ईश्वर-प्रार्थना में ख़र्च किया करता था। अपनी सल्तनत को वह 'ख़ुदादाद' अर्थात् 'ईश्वर-प्रदत्त' कहा करता था। ईश्वर के अस्तित्व और उसकी पालकता में उसे इतना गहरा विश्वास था कि इस विश्वास का प्रभाव उसके जीवन के समस्त कार्यों पर पड़ता था। वास्तव में जिन चीज़ों ने उसे फँसाने के लिए जाल का काम दिया उनमें से एक उसका ईश्वर की सहायता पर विश्वास था ; क्योंकि वह इस ईश्वरीय सहायता पर इतना अधिक भरोसा करता था कि उसके कारण वह अपनी रक्षा के दूसरे उपायों की अवहेलना कर जाता था।"*

यह बयान एक विद्वान और प्रामाणिक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक का है। निस्सन्देह इस विषय में हैदरअली और टीपू सुलतान में अन्तर था। हैदरअली सम्राट अकबर के समान सर्वथा स्वतन्त्र विचार का मनुष्य था। टीपू ईश्वर में विश्वासी और धार्मिक विचार का था। हैदरअली किसी धर्म को भी

---

* "Another feature in the character of Tipu was his religion, with a sense of which his mind was most deeply impressed. He spent a considerable part of every day in prayer. He gave to his Kingdom, or state, a particular religious title, '*Khudadad*' or God-given ; and he lived under a peculiarly strong and operative conviction of the Superintendence of a Divine Providence. His confidence in the protection of God was, indeed, one of his snares; for he relied upon it to the neglect of other means of safety."—*History of India*, By James Mill.

पूर्ण वा निर्भ्रान्त न समझता था। टीपू इसलाम धर्म को मानता था। किन्तु जिस प्रकार का ईश्वरभक्त और विश्वासी मनुष्य टीपू था उस प्रकार की धार्मिकता एक चीज़ है और धर्मान्धता बिलकुल दूसरी चीज़ है।

तथापि अङ्गरेज़ों और अङ्गरेज़ों के धनक्रीत भारतीय लेखकों की पुस्तकों में टीपू की धर्मान्धता और ग़ैर-मुसलमानों के प्रति उसके अनुचित व्यवहार की इतनी कहानियाँ दर्ज हैं कि हमने इस विषय में अपनी अन्तिम राय क़ायम करने से पहले और अधिक खोज की आवश्यकता अनुभव की। हम वर्त्तमान मैसूर राज्य के पुरातत्व विभाग के विद्वान डाइरेक्टर डॉक्टर शामशास्त्री और मैसूर विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार श्रीयुत श्रीकान्तिया तथा वहाँ के उन अन्य सज्जनों के अनुग्रहीत हैं जिन्होंने इस खोज में हमें हर तरह सहायता दी।

इस समस्त छानबीन में हमें केवल दो लेख इस प्रकार के मिल सके जिन्हें किसी प्रकार भी प्रामाणिक कहा जा सके और जिनसे टीपू में धार्मिक सङ्कीर्णता का आभास हो सके। पहला लेख टीपू का उस समय का एक एलान है जब कि अङ्गरेज़ों और नवाब करनाटक के साथ टीपू का युद्ध जारी था। इस एलान में टीपू ने क़ुरान की आयतों और महाकवि हाफ़िज़ की कुछ पंक्तियों को उद्धृत करते हुए शत्रु के इलाक़े में रहने वाले मुसलमानों से प्रार्थना की है कि आप लोग विदेशियों को सहायता न दें और शत्रु के इलाक़े को छोड़कर मैसूर राज्य में आ बसें।

एलान में दर्शाया गया है कि किसी मुसलमान के लिए हिन्दोस्तान के हित के विरुद्ध विदेशियों की सहायता करना पाप है। टीपू ने इस एलान में करनाटक और बङ्गाल के अन्दर अङ्गरेज़ों के अत्याचारों की ओर सङ्केत करते हुए लिखा है—"हिन्द के नरेशों की निर्बलता के कारण वह मदोद्धत जाति (यानी अङ्गरेज़) व्यर्थ यह समझ बैठी है कि सच्चे दीनदार लोग निर्बल, तुच्छ और निकृष्ट हो गए हैं।" एलान में यह भी लिखा है कि हमने अपनी सल्तनत भर में प्रजा और राजकर्मचारियों को यह आज्ञा भेज दी है कि जो लोग शत्रु के इलाक़े से आकर मैसूर राज्य में बसना चाहें उनके जान माल की पूरी रक्षा की जाय और उनकी जीविका इत्यादि का उचित प्रबन्ध करा दिया जाय, इत्यादि।*

दूसरा लेख मैसूर राज्य में रहने वाले हिन्दोस्तानी ईसाइयों से सम्बन्ध रखता है। इस पुस्तक में एक दूसरे स्थान पर वर्णन किया जा चुका है कि हैदरअली ने उदारतावश अपने राज्य में यूरोप के ईसाई पादरियों को अपने मत-प्रचार की इजाज़त दे दी थी और उनकी इच्छानुसार कई तरह की सुविधाएँ कर दी थीं, जिसके कारण विशेषकर समुद्र तट के कुछ लोगों ने ईसाई मत स्वीकार कर लिया था। किन्तु कम्पनी और हैदरअली के संग्रामों में इन्हीं यूरोपियन तथा भारतीय ईसाइयों ने हैदरअली के विरुद्ध

* *Select Letters of Tipu Sultan to various public functionaries*, arranged and translated by William Kirkpatrick, pp 293-97.

अङ्गरेजों का साथ दिया। अपनी ईसाई प्रजा की ओर से इसी प्रकार का कटु अनुभव कई बार टीपू सुलतान को भी प्राप्त हुआ। वास्तव में ये भारतीय ईसाई अपने यूरोपियन धर्माचार्यों के हाथों में खेल रहे थे। विवश होकर टीपू को उनके विरुद्ध उपाय करने पड़े। जिस लेख की ओर हम सङ्केत कर रहे हैं, उसमें लिखा है कि एक बार समुद्र-तट के कुछ ईसाइयों की "ज्यादती को सुनकर" टीपू ने आज्ञा दी कि तुम लोग अब या तो मैसूर राज्य छोड़कर चले जाओ और या मुसलमान हो जाओ। एक इतिहास-लेखक लिखता है कि साठ हज़ार ईसाई मर्द, औरत और बच्चे गिरफ़्तार करके सुलतान के सामने पेश किए गए, उन्हें इसलाम धर्म में ले लिया गया और जीविका के लिए उन्हें राज्य की सेना में भरती कर लिया गया। एक दूसरा अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है कि इन लोगों की संख्या लगभग तीस हज़ार थी।* सम्भव है कि इस दूसरे अनुमान में भी अत्युक्ति की काफ़ी मात्रा मौजूद हो।

जो हो, टीपू की इन दोनों आज्ञाओं के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं।

पहला एलान साफ़ युद्ध से सम्बन्ध रखता था, उससे धार्मिक सङ्कीर्णता का कोई सम्बन्ध नहीं।

दूसरे लेख के विषय में, अपने तथा अपने राज्य के साथ ईसाइयों के विश्वासघात का हैदरअली और टीपू दोनों को काफ़ी कटु

* *Historical Sketches of the South India etc.*, by Colonel Mark Wilks, vol. ii, pp. 529, 530.

अनुभव प्राप्त हो चुका था। यही ईसाई बहुत दिनों तक टीपू के राज्य में सुख और स्वतन्त्रता के साथ रह चुके थे, और जब तक उनके दुष्कृत्य अधिक नहीं बढ़े, उनके साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की गई। टीपू की इस दूसरी आज्ञा के सम्बन्ध में ठीक ठीक संख्या का अथवा उसमें 'ज़बरदस्ती' की मात्रा का अनुमान कर सकना भी कठिन है।

इसके अतिरिक्त ईसाइयों को छोड़कर मैसूर की शेष समस्त हिन्दू तथा अन्य ग़ैर-मुसलिम प्रजा के साथ टीपू के अनुचित व्यवहार का इसमें कहीं ज़िक्र नहीं।

मैसूर की अधिकांश जन-संख्या हिन्दू थी और हिन्दुओं के साथ टीपू के किसी प्रकार के अनुचित व्यवहार का हमें एक भी प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। इसके विपरीत अपनी हिन्दू प्रजा के साथ टीपू के उदार तथा प्रेम-पूर्ण व्यवहार के असंख्य उदाहरण उस समय के इतिहास में भरे पड़े हैं।

अन्त समय तक टीपू के दरबार में ऊँची से ऊँची पदवियाँ हिन्दुओं को मिली हुई थीं। उसके दो मुख्य मन्त्री पूर्निया और कृष्णराव ब्राह्मण थे, जिनमें पूर्निया उसका प्रधान मन्त्री था। इन दोनों मन्त्रियों का प्रभाव उस समय अत्यन्त बढ़ा हुआ था। इनके अतिरिक्त असंख्य ब्राह्मण टीपू के दरबार में विशेषकर राज-दूतों का काम करने और दरबार में लोगों का परिचय कराने पर नियुक्त थे।

एक बार मलबार तट की नय्यर जाति के कुछ लोगों ने अपने

ईसाई मत स्वीकार करने या न करने के विषय में टीपू सुलतान से सलाह माँगी। टीपू ने उत्तर दिया —

"नरेश प्रजा का पिता होता है। इस हैसियत से मेरी आपको यह सलाह है कि आप लोग अपने पूर्व-पुरुषों के मज़हब (अर्थात् हिन्दू मज़हब) पर क़ायम रहें; और यदि आपको अपना मज़हब बदलने की इच्छा है ही तो आप (ईसाई होने के स्थान पर) अपने पिता तुल्य नरेश का मज़हब स्वीकार करें।"

जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य का शृङ्गेरी मठ मैसूर के राज्य में था। टीपू उस समय के शृङ्गेरी स्वामी जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री सच्चिदानन्द भारती का असाधारण आदर करता था। जगद्गुरु के नाम टीपू सुलतान के समय समय पर भेजे हुए तीस से ऊपर पत्र इस समय मौजूद हैं, जो अत्यन्त मान-सूचक शब्दों में लिखे हुए हैं।

मैसूर राज्य के पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर ने दो मूल पत्रों के फ़ोटो हमारे पास भेजे हैं, जिनमें से एक को नमूने के तौर पर हम इस पुस्तक में प्रकाशित कर रहे हैं। पत्र कनाड़ी भाषा में है। पत्र का हिन्दी भाषान्तर इस प्रकार है —

मोहर टीपू सुलतान

श्रीमत् परमहंसादि यथोक्त विरुदांकित श्रंगेरी श्री स्वामी सच्चिदानन्द भारती जी महाराज की सेवा में टीपू सुलतान बादशाह का सलाम।

श्री महाराज के लिखकर भेजे हुए पत्र से सकल अभिप्राय

विदित हुआ। आप जगद्गुरु हैं, सर्वलोक के क्षेम और सबकी स्वस्थता के हित आप तपस्या करते रहते हैं। ऐसे ही दया कर इस सरकार के क्षेम और उसकी उत्तरोत्तर अभिवृद्धि के लिए तीनों काल में तपस्या करते हुए ईश्वर से प्रार्थना करने की कृपा कीजिए। आप जैसे महापुरुष जिस देश में निवास करते हैं, उस देश में वर्षा अच्छी होती है, कृषि फूलती फलती है और सदा सुभिक्ष रहता है। आप इतने अधिक दिनों तक परदेश में क्यों रह रहे हैं! जिस उद्देश से श्री महाराज वहाँ गए हैं उसे शीघ्र अपने अनुकूल सिद्ध करके अपने स्थान को वापस आने की कृपा कीजिए।

तारीख़ २९, महीना राजी साल सहर सन् १२२० महम्मदी, तदनुसार परीधावी सम्वतसर माघ कृष्णा चतुर्दशी, लिखा हुआ सुब्राऊ मुन्शी हुजूर।

(हस्ताक्षर टीपू सुलतान)

यह पत्र सन् १७९३ ईसवी का उस समय का लिखा हुआ है जब कि जगद्गुरु किसी कार्यवश कुछ समय के लिए शृङ्गेरी मठ से बाहर पूना की ओर गए हुए थे। पत्र जगद्गुरु के एक पत्र के उत्तर में है। इस पत्र-व्यवहार से स्पष्ट है कि उस समय के जगद्गुरु शङ्कराचार्य में और टीपू सुलतान में किस प्रकार का सम्बन्ध था।

टीपू के महल के अन्दर अनेक हिन्दू पुरोहित और ज्योतिषी रहा करते थे, और वे टीपू की ओर से यज्ञ, हवन, जप

इत्यादि करते रहते थे। मरते दम तक टीपू ने ब्राह्मणों को दान दिए और हिन्दू ज्योतिषियों के आदेशानुसार यज्ञ हवन करवाए। भाद्रपद शुक्ला द्वितीया विरोधीकृत सम्वत्सर अर्थात् सन् १७९१ का लिखा हुआ जगद्गुरु के नाम टीपू का एक और पत्र हमारे पास मौजूद है, जिसमें टीपू ने अपने खर्च पर जगद्गुरु से 'शतचण्डी सहस्र पाठ' की व्यवस्था कर देने की प्रार्थना की है।

नञ्जुनगुड, श्रीरङ्गपट्टन और मेलकोट इत्यादि के अनेक हिन्दू मन्दिरों को टीपू ने अनेक बार नज़रें और जागीरें प्रदान कीं। इनमें से बङ्गलोर में टीपू के ज़नाने महल के ठीक सामने श्रीवेङ्कटरामन्न स्वामी का मन्दिर, महल से मिला हुआ श्रीनिवास का मन्दिर, श्रीरङ्गपट्टन के महल के पास श्रीरङ्गनाथ स्वामी का मन्दिर तथा श्रीरङ्गपट्टन के अन्य अनेक मन्दिर उस समय से लेकर आज तक टीपू की धार्मिक उदारता के साक्षी मौजूद हैं।

टीपू की धार्मिक उदारता के विषय में इससे अधिक सुबूत देने की आवश्यकता नहीं है। निस्सन्देह इस तरह के नरेश पर अपने तुच्छ स्वार्थ की दृष्टि से झूठे कलङ्क लगाना उसके, उसके देश और उसकी जाति के साथ घोर अन्याय करना है।

टीपू के शेष चरित्र के विषय में, उस समय के समस्त ऐतिहासिक उल्लेखों से साबित है कि टीपू एक अत्यन्त योग्य शासक और अपनी प्रजा का सच्चा हितचिन्तक था। उसकी समस्त प्रजा उससे अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट थी। किसानों का वह विशेष

मित्र था। उसने अपने राज्य भर में इस बात की कड़ी आज्ञा दे रक्खी थी कि कोई पटेल, आमिलदार वा अन्य सरकारी कर्मचारी प्रजा के किसी मनुष्य से किसी तरह की 'बेगार' न ले, अर्थात् उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य न करावे। लगान की वसूली में किसी प्रकार की भी सख़्ती की इजाज़त न थी।

टीपू का कोई बड़े से बड़ा कर्मचारी भी यदि प्रजा पर किसी तरह का अत्याचार करता था तो टीपू इस तरह के अपराधी को सख़्त से सख़्त सज़ा देता था।

हर गाँव के लोगों को अपने यहाँ के रस्म-रिवाज सम्बन्धी अथवा अन्य इसी प्रकार के आपसी झगड़े स्वयं पञ्चायत द्वारा तय करने का अधिकार था और किसी राजकर्मचारी को उनमें हस्तक्षेप करने की इजाज़त न थी।*

किसानों की बहबूदी के अन्य उपायों की ओर से भी टीपू बेखबर न था। हाल में मैसूर राज्य के अन्दर खेतों की आबपाशी और अन्य उपयोग के लिए कावेरी नदी के ऊपर एक बहुत बड़ा जलाशय तैयार हुआ है, जो भारत में इस प्रकार का सब से बड़ा जलाशय बताया जाता है। इस जलाशय के लिए खुदाई होते समय एक पुराना पक्का बाँध दिखाई दिया, जिसकी नींव में से टीपू सुलतान के समय का फ़ारसी अक्षरों में खुदा हुआ एक शिलालेख मिला। इस शिलालेख का फ़ोटो हम इस पुस्तक के साथ दे रहे हैं। शिला-

* Tippu Sultan 1749—1799, A. D. by V. Raghevendra Rao, M. A. *The Mysore Scout,* for July 1927.
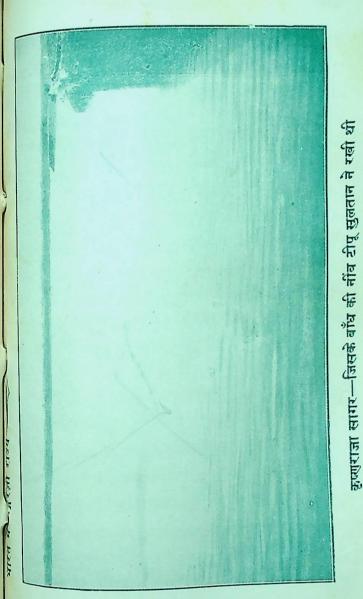
कृष्णराजा सागर—जिसके बाँध की नींव टीपू सुलतान ने रखी थी

[रजिस्ट्रार, मैसूर विश्वविद्यालय, की कृपा द्वारा]

लेख से मालूम होता है कि सब से पहले सन् १७९७ ई० में टीपू सुलतान ने अपने हाथ से इस विशाल जलाशय की नींव रक्खी थी। यह शिलालेख टीपू सुलतान ही के हाथ का रक्खा हुआ बाँध का बुनियादी पत्थर है। सब से विचित्र बात इस शिलालेख से यह मालूम होती है कि जब कि आजकल आबपाशी के हर नए प्रबन्ध के साथ साथ भूमि का लगान बढ़ा दिया जाता है, टीपू सुलतान ने जो 'लखूखा' रुपए इस शुभ कार्य में ख़र्च किए वे केवल 'अल्लाह की राह पर' ख़र्च किए गए; यह आज्ञा दे दी गई कि जो किसान इस जलाशय की सहायता से नई ज़मीन में खेती बाड़ी करेंगे, उन्हें औरों की अपेक्षा अधिक लगान देने के स्थान पर अन्य किसानों से एक चौथाई कम लगान देना होगा, और ये ज़मीनें उन किसानों के कुलों में सदा के लिए पैतृक रहेंगी। इसी लेख में टीपू ने अपने उत्तराधिकारियों तथा भावी शासकों को कड़ी से कड़ी क़समें दी हैं कि कोई इस 'अनन्त धर्मकार्य' में बाधा न डाले, अर्थात् न उन किसानों की सन्तति से कभी ज़मीनें छीनी जावें और न कभी उनका लगान बढ़ाया जावे। किन्तु दुर्भाग्यवश बाँध की बुनियाद रक्खे जाने के दो वर्ष के अन्दर ही टीपू की इस आज्ञा का मूल्य केवल एक ऐतिहासिक लेख से अधिक न रह गया!

फ़ारसी शिलालेख का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

या फ़त्ताह (ऐ खोलने वाले)!

उस अल्लाह के नाम से जो रहमान और रहीम है!

सन् १२२१ शादाब (सौर), जो मोहम्मद साहब—ईश्वर

उनकी आत्मा को शान्ति दे—के जन्म से शुरू हुआ, उसके तक़ी (ज्येष्ठ) महीने की २९ तारीख़ को, तदनुसार शब २७ ज़िलहिज्ज सन् १२१२ हिजरी (चान्द्र), सोमवार के दिन, बहुत सवेरे, सूर्योदय से पहले, वृषभ लग्न और शुक्र घड़ी के प्रारम्भ में, ईश्वर की कृपा और रसूल की सहायता से, ज़मीन और ज़माने के ख़लीफ़ा, चक्रवर्ती शहनशाह, जनाब हज़रत टीपू सुलतान ने,—जो साया हैं उस अल्लाह का जो सब का मालिक और सब का दाता है, ईश्वर सदा उनके राज्य और उनकी ख़िलाफ़त को बनाए रक्खे—, कावेरी नदी के ऊपर राजधानी के पश्चिम में 'मुहीं' (अर्थात् जान डालने वाला) नामक बाँध की नींव रक्खी। शुरू करना हमारा काम है, पूरा करना अल्लाह के हाथ में है।

जिस शुभ दिन नींव रक्खी गई उस दिन सूर्य, चन्द्रमा, शुक्र और बृहस्पति, चारों का मेष राशि में एक घर के अन्दर शुभ योग था। अल्लाह ताला की मदद से यह बाँध क़यामत के दिन तक क़ायम और स्थिर तारों के समान अटल रहे।

इस बाँध की तैयारी में जो लखूखा रुपए सरकार ख़ुदादाद ने ख़र्च किए, वे केवल अल्लाह की राह में ख़र्च किए गए हैं। सिवाय इस समय की पुरानी या नई खेती बाड़ी के, जो कोई मनुष्य कि पड़ती ज़मीन में (इस नए जलाशय के जल की सहायता से) खेती बाड़ी करेगा, अपनी ज़मीन के फलों या नाज की पैदावार का जो भाग आम तौर पर नियम के अनुसार दूसरी

जगद्गुरु शङ्कराचार्य के नाम टीपू सुलतान के एक मूल कनाड़ी पत्र का फ़ोटो—सन् १७९३

[मैसूर राज्य के पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर की कृपा द्वारा]

मूल कनाड़ी पत्र, नागरी लिपि में

श्रीमत् परमहंसादि यथोक्त बिरुदांकितरादन्था श्रंगेरी श्री सच्चिदानन्द भारती स्वामी गलवरिये। टिप्पू सुलतान बादशाह रवरु सलाम।

ता उ बरसि कलुहिसिद पत्रिकेइन्द सकल अभिप्रायऊ तिलियलायितु। ता उ जगद्गुरु गलु, सर्वलोकक्कु क्षेम आग-बेकु,-जनरु स्वस्थदल्लि, इरबेकिम्बदागि तपस्सु माड्डुत्तले इद्दीरी। सरकारद क्षेमवु उत्तरोत्तर अभिवर्धमान आगुवन्ते, त्रिकाल तपस्सु माडुवल्लियु ईश्वरप्रार्थने माडुत्ता बरुउदु, तम्मन्था दोड्डवर, यावदेश दल्ली इधारयो, आदेशिक्के मले बिले सकलवु. आगि सुभिक्षवागि इरतक्कदाद्दरिन्द, परस्थल दल्लि, बहल दिवस ता उ यातक्के इरबेकु, होदकेलसवन्नु क्षिप्रदल्लि अनुकूलपड़िसिकोन्डु, स्थलक्के सागिबरुवन्ते माड़िसूवदु।

तारीक २९ माहे राजीसाल सहर सन् १२२० महम्मद परीधावी सम्वतसरद माघ बहुल १४ लु खत्त सुन्नाऊ मुनशी हजूर।

कृष्णराजा सागर की नींव में, टीपू सुलतान के फ़ारसी शिलालेख का फ़ोटो

[रजिस्ट्रार, मैसूर विश्वविद्यालय, की कृपा द्वारा]

टीपू सुलतान का फ़ारसी शिलालेख, नागरी अक्षरों में

या फ़त्ताहो

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

बतारीख़ बिस्तोनहुम माहे तक़ी साल शादाब सन् १२२१ यक हज़ार दो सद बिस्तोयक वक़्श मौलूदे मोहम्मद सल्लल्लाहो अलैहेवसल्लम बमुताबिक़ बिस्तोहफ़्तुम शबेज़ीहिज्जा सन् १२१२ यक हज़ार दो सद दो वाज़दह रोज़ दोशम्बा हिजरीये नबवी अलस्सबाह पेशज़तुलूए आफ़ताब दर तालए सौर व साअते ज़ोहरा शुरू शुद मुही के जेहते मग़रिब दारुस्सल्तनत वाक़े अस्त बफ़ज़्ले इलाही व एआनत-ए-रेसालत पनाही ख़लीफ़-ए-ज़मीनो-ज़माँ शहन्शाहे दौरे दौराँ जनाब ज़िल्लुल्लाहे मलेकिल्मन्नान हज़रत टीपू सुलतान ख़ल्लदल्लाहो मुल्कोहू व ख़िलाफ़तोहू दर दरिया-ए-कावेरी बिना फ़रमूदन्द, अश्शुरूओ मिन्ना वल इतमामो अलल्लाहे। दर रोज़े-बिना सम्शो क़मर व ज़ोहरओ मुश्तरी दर बुर्जे हमल क़रनुस्सादैन मी दाश्तन्द। बेऔनेही तआला सद्दे मज़्कूर ता यौमुत्तनाद क़ाएम व मानिन्दे बुर्जे सवाबित ख़्वाहद बूद। बिना बर तय्यारीये सद्दे मरक़ूम उन्चे के ज़र अज़ सरकारे ख़ुदादाद लखूखहा ख़र्च शुदा महज़ फ़ी सबीलिल्लाह नमूदा शुद, सिवाए ज़राअते क़दीमो जदीद हर के दर ज़मीने ग़ैर मज़रू मज़रू कुनद दरो हासिल अज़ क़िस्मे अस्मारो ग़ल्ला सरकारे ख़ुदादाद मिस्ले रेआयाए दीगर उन्चे के बाशद दराँ चहारुम हिस्सा फ़ी सबीलिल्ला मआफ़ अस्त, मे हिस्सा ब सरकारे ख़ुदादाद बेदेहद व ज़मीन ज़राअते-नौ हर के मी कुनद ता क़यामे अरज़ो समा बर औलादो अख़फ़ादे साहबे ज़राअत क़ायम व बहाल बाशद। अगर कसे तख़ल्लुल वरज़द मानए ईं ख़ैरात जारिया गरदद आं नाकस मिस्ले शैताने लईन व दुश्मने बनीनौए बशर व नुत्फ़ए मज़ारेईन बल्के नुत्फ़ए तमामीए मख़लूक़ीनस्त।

ब ख़त्ते सय्यद जाफ़र।

प्रजा सरकार को देती है, उस भाग का वह केवल तीन चौथाई खुदादाद सरकार को दे और शेष एक चौथाई अल्लाह की राह में माफ़ है। और जो कोई मनुष्य कि नई ज़मीन में खेती बाड़ी करेगा उसकी औलाद और उसके वारिसों के पास वह ज़मीन पीढ़ी दर पीढ़ी उस समय तक क़ायम व बहाल रहेगी जिस समय तक कि ज़मीन और आसमान क़ायम हैं। अगर कोई शख़्स इसमें रुकावट डाले या इस अनन्त ख़ैरात में बाधक हो तो वह कमीना, शैतान-ए-मलऊन के समान, मनुष्य जाति का दुशमन और किसानों की नसल का बल्कि समस्त प्राणियों की नसल का दुशमन समझा जायगा।

लिखा सय्यद जाफ़र

निस्सन्देह इस राजकीय लेख के भावों का आजकल के राजकीय लेखों में मिल सकना असम्भव है।

अपने राज्य के उद्योग धन्धों और व्यापार को टीपू ने अपूर्व उन्नति दी। विशेषकर मैसूर के अन्दर सूती, ऊनी और रेशमी वस्त्रों के उद्योग ने जितनी उन्नति टीपू के समय में की, उतनी उस से पूर्व अथवा उसके बाद अर्वाचीन समय में कभी नहीं की। उसके लोहे इत्यादि के कारख़ानों में अन्य चीज़ों के अतिरिक्त बढ़िया से बढ़िया तोपें और दोनली तथा तीननली बन्दूकें ढलती थीं।

टीपू स्वयं विद्वान था और विद्या और विद्वानों से उसे बड़ा प्रेम था। विद्वान पण्डितों तथा मौलवियों दोनों का उसके दरबार

में जमघट रहा करता था। उसका विशाल पुस्तकालय असंख्य, अमूल्य और अलभ्य पुस्तकों से भरा हुआ था। उसकी समस्त प्रजा सशस्त्र और सन्नद्ध थी, और उसके राज्य में चारों ओर वह खुशहाली नज़र आती थी जो आस पास के अङ्गरेज़ी इलाक़े में कहीं देखने को भी न मिलती थी।

टीपू का व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त सरल, शुद्ध और संयमी था। उसका आहार अधिकतर दूध, बादाम और फल थे। शराब तथा अन्य मादक द्रव्यों से उसे सख़्त परहेज़ था। यहाँ तक कि उसने अपने राज्य भर में हर प्रकार की मदिरा तथा मादक द्रव्यों का बनना वा बिकना क़तई बन्द कर रक्खा था। स्त्री जाति के सतीत्व की रक्षा का उसे असाधारण ख़याल रहता था। अपनी लड़ाइयों में वह इसका विशेष विचार रखता था कि उसके सिपाही इस विषय में कोई ग़लती न कर बैठें। यदि कभी किसी से इसके विपरीत आचरण हो जाता था तो टीपू अपराधी को कड़े से कड़ा दण्ड देता था। मराठों के साथ उसके संग्रामों में कम से कम दो बार अनेक मराठा स्त्रियाँ, जिनमें कुछ सरदारों की पत्नियाँ भी थीं, उसकी सेना के हाथों में आ गईं। दोनों बार टीपू ने उन स्त्रियों को बड़े आदर के साथ अलग ख़ेमों में रक्खा और फिर जब कि अभी युद्ध जारी ही था, उन्हें पालकियों में बैठाकर अपनी सेना के संरक्षण में मराठों के ख़ेमों तक पहुँचवा दिया।*

* *Tipu Sultan*, By Colonal Miles pp. 75, 81, 95, 96, 201 and 202,

इस सब के अतिरिक्त टीपू अपने बाप के समान वीर योद्धा और उत्कृष्ट सेनापति था। १७ वर्ष की अल्प आयु से ही उसने संग्राम विजय करने शुरू कर दिए थे। पिता ही के समान वह स्वाधीनता का सच्चा प्रेमी और इस देश के अन्दर विदेशियों की साम्राज्य-पिपासा का पक्का दुशमन था। अपने समय का वही एकमात्र भारतीय नरेश था, जिसके पास विदेशियों के मुक़ाबले के लिए सुसन्नद्ध और प्रबल जलसेना थी, क्योंकि मराठों की जलसेना उस समय तक काफ़ी घट चुकी थी। वास्तव में हैदर और टीपू से बढ़कर शत्रु अङ्गरेज़ों को भारत में कोई नहीं मिला। टीपू के विरुद्ध अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों के विष उगलने का यही एक मात्र कारण है।

किन्तु टीपू अपने समस्त सामन्तों तथा अनुयायियों को उस तरह की सत्यता और निष्ठा के पाश में बाँध कर न रख सका, जिस तरह के पाश में हैदरअली ने उन्हें बाँध रक्खा था। इसके कई कारण हो सकते हैं। एक इतिहास-लेखक लिखता है कि हैदर अपने जिन विद्रोही मुलाज़िमों को एक बार बरख़ास्त कर देता था उन्हें दोबारा अपने यहाँ न रखता था। किन्तु टीपू का व्यवहार इसके विपरीत था। वह इस तरह के आदमियों को एक बार सज़ा देकर उन्हें फिर बहाल कर देता था। इस इतिहास-लेखक का अनुमान है कि यह एक त्रुटि ही टीपू के नाश का कारण हुई।

असलीयत यह है कि विश्वासघात का जो पौधा हैदरअली के रहते हुए मैसूर की भूमि में न फल सका, वह धीरे धीरे टीपू के

शत्रुओं के लगातार परिश्रम और सिञ्चन द्वारा टीपू के समय में आकर फल देने लगा। सम्भव है कि देशघातकता के उस महान पाप से भारतीय आत्मा को मुक्त करने के लिए—जिसने कि वास्तव में वीर टीपू की शक्ति को चारों ओर से घेर कर चकनाचूर कर दिया—भारत का एक बार विदेशी शासन के कठिन अनुभवों में से निकलना आवश्यक था। जो कुछ हो, टीपू वीर, योग्य और अपनी प्रजा का सच्चा हितैषी था। उसके शत्रु भी इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि उसने अपने रुधिर के अन्तिम बिन्दु से अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा का प्रयत्न किया। उसने कभी किसी के साथ दग़ा नहीं की। उसकी मृत्यु एक आदर्श वीर की मृत्यु थी। भारत की स्वाधीनता के रक्षकों में उसका पद अत्यन्त ऊँचा था। और संसार के स्वतन्त्रता के 'शहीदों' में उसका नाम सदा के लिए स्मरणीय रहेगा।

हमें दुःख और लज्जा के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि औरङ्गज़ेब की मृत्यु के समय से सन् ५७ के विप्लव तक अङ्गरेज़ों और भारत के सम्बन्ध के डेड़ सौ वर्ष के राजनैतिक इतिहास में हमें हैदर और टीपू दो, और केवल दो, व्यक्ति ही ऐसे नज़र आते हैं जिन्होंने कभी किसी अवसर पर भी अपने किसी देश-वासी के विरुद्ध विदेशियों के साथ 'समझौता' करना अङ्गीकार नहीं किया। विशेष कर टीपू यदि चाहता तो इस उपाय द्वारा आसानी से अपनी सत्ता के कुछ न कुछ अवशेष और सौ दो सौ वर्ष के लिए छोड़ सकता था। वह मर मिटा, किन्तु मरते मरते

उसने अपने दामन पर यह दाग़ लगने नहीं दिया। ध्यानपूर्वक खोज करने पर भी इन डेढ़ सौ वर्ष के अन्दर हमें कोई और हिन्दू अथवा मुसलमान, नरेश अथवा नीतिज्ञ ऐसा नहीं मिलता जिसका चरित्र इस विषय में सर्वथा निष्कलङ्क रहा हो।

टीपू की मृत्यु के बाद उसकी समाधि के ऊपर एक कवि ने मृत्यु की तारीख़ लिखते हुए कहा है—

चुँ आँ मर्द मैदाँ निहाँ शुद ज़ दुनिया,
यके गुफ़्त तारीख़ शमशीर गुम शुद।

अर्थात्—जिस समय वह वीर संसार की दृष्टि से अतीत हुआ, किसी ने तारीख़ के लिए ये शब्द कहे—'शमशीर गुम शुद',*— अर्थात् तलवार गुम हो गई।

मृत्यु के २४ वर्ष बाद उसकी याद में उसके किसी देशवासी ने एक मरसीया लिखा। इस मर्मस्पर्शी मरसीये के प्रत्येक खण्ड के अन्त में एक अनुपद आता है, जिसका अक्षरशः अनुवाद यह है—

"अल्लाह! इस तरह मर जाना अच्छा है,
"जब कि युद्ध के बादल हमारे सरों पर ख़ून बरसा रहे हों,
"बजाय इसके कि कलङ्क की ज़िन्दगी बसर की जावे,
"और सन्ताप और लज्जा के साथ उम्र काटी जावे।"

---

* इन फ़ारसी शब्दों से टीपू की मृत्यु का सन् निकलता है।

सोलहवाँ अध्याय

अवध और फ़र्रुख़ाबाद

अवध राज्य के दो टुकड़े

अवध की धनसम्पन्न भूमि उन दिनों 'हिन्दोस्तान का बाग़' कहलाती थी। अवध का लोभ विदेशी कम्पनी के प्रतिनिधियों के लिए कोई साधारण लोभ न था। अवध के नवाब के साथ कम्पनी की सब से पहली सन्धि बक्सर की लड़ाई के बाद सन् १७६५ में हो चुकी थी। उस समय से ही कम्पनी का एक अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट अवध के नवाब के दरबार में रहा करता था।

भारत के समस्त राजदरबारों में उस समय के अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट हिन्दोस्तानी ढङ्ग से रहते थे, हिन्दोस्तानी पोशाक पहनते थे और अपने यहाँ हिन्दोस्तानी मुन्शी नौकर रखकर उनसे हिन्दोस्तानी भाषाएँ और हिन्दोस्तानी रहन सहन के तरीक़े सीखते थे।

इन रेज़िडेण्टों का मुख्य कार्य प्रत्येक भारतीय दरबार के

अन्दर वहाँ के नरेश के विरुद्ध साज़िश करना और दरबार में आपसी फूट डलवाना होता था। धीरे धीरे अवध के अन्दर भी रेज़िडेण्ट की साज़िशें और उनका प्रभाव बढ़ता चला गया। इसके बाद अवध के नवाब के साथ लॉर्ड कॉर्नवालिस और सर जॉन शोर की ज़्यादतियों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। टीपू और उसकी सल्तनत का अन्त कर देने के बाद मार्क्विस वेल्सली की दृष्टि भी अवध की ओर गई।

सन् १७९८ में सर जॉन शोर ने नवाब वज़ीरअली को क़ैद करके बनारस भेज दिया था और सआदतअली को उसकी जगह नवाब बनाकर उसके साथ एक नई सन्धि की थी, जिसे "चिरस्थायी मित्रता" (Perpetual friendship) की सन्धि लिखा गया था। इस सन्धि की १७ वीं धारा में दर्ज है—"कम्पनी की सरकार और नवाब की सरकार दोनों के बीच समस्त व्यवहार अत्यन्त प्रेम और मित्रता के साथ हुआ करेगा; और अपने घरेलू मामलों, अपनी पैतृक सल्तनत, अपनी सेना और अपनी प्रजा पर नवाब का अनन्य अधिकार रहेगा।" सआदतअली ने सन्धि की शर्तों का पूरी ईमानदारी के साथ पालन किया। तथापि इस सन्धि को अभी दो वर्ष भी न हुए थे कि वेल्सली ने उसे तोड़ने के बहाने ढूँढना शुरू किया।

वज़ीरअली इस समय बनारस में क़ैद था। चेरी नामक एक अङ्गरेज़ उसकी देख रेख करता था। कहा गया कि वज़ीरअली अवध के कुछ सरदारों के साथ गुप्त साज़िश कर रहा है। इस पर

वज़ीरअली को बनारस से कलकत्ते भेजने का हुकुम हुआ। इसी पर वज़ीरअली और चेरी में कुछ कहा सुनी हो गई। यहाँ तक कि किसी बात पर वज़ीरअली ने अपनी तलवार खेंच ली और चेरी और उसके साथ के दो और अङ्गरेज़ों को वहीं ख़तम कर दिया। वज़ीरअली बनारस से भाग कर अवध पहुँचा। कुछ और अवधनिवासी जो ज़ाहिर है इस बात को महसूस कर रहे थे कि अङ्गरेज़ों ने वज़ीरअली के साथ अन्याय किया है, अब उसके साथ मिल गए। इन लोगों ने अवध के कुछ इलाक़ों को अपने अधीन कर लिया।

नवाब सआदतअली ने कम्पनी की उस सबसीडीयरी सेना की सहायता से, जिसके ख़र्च के लिए सन् १७९८ की सन्धि के अनुसार सआदतअली को ७६ लाख रु० सालाना देने पड़ते थे, इस विद्रोह को शान्त कर दिया। किन्तु वेल्सली को अपनी इच्छा-पूर्त्ति के लिए यह ख़ासा अच्छा अवसर मिल गया।

इस घटना के आधार पर ५ नवम्बर सन् १७९९ को वेल्सली ने नवाब सआदतअली को एक पत्र लिखा, जिसमें सआदतअली को यह सलाह दी कि आप अपने यहाँ की सेना में अमुक अमुक 'सुधार' कीजे। इन सुधारों का मतलब केवल यह था कि नवाब के पास अभी तक जो कुछ अपनी सेना रहा करती थी, उसमें से केवल थोड़ी सी रखकर जितनी कि मालगुज़ारी वसूल करने या शाही जलसों आदिक के लिए आवश्यक हो, बाक़ी तमाम तोड़ दी जाय और उसकी जगह कम्पनी की कुछ पैदल और कुछ सवार

पलटनें और बढ़ा दी जावें, जिनका ख़र्च ७६ लाख की रक़म के अलावा नवाब अदा किया करे ।*

नवाब सआदतअली इस नई तजवीज़ को सुनकर चकित रह गया । उसने अपने एतराज़ लिखकर उन्हें गवरनर-जनरल के पास भेजना चाहा । किन्तु वेल्सली ने, बिना नवाब को जवाब का समय दिए, एक नई पलटन नवाब के इलाक़े में रवाना कर दी, और नवाब को उसके ख़र्च के लिए जिम्मेदार क़रार दिया । इसके बाद एक दूसरी पलटन तैयार कर ली गई और यह आज्ञा दी गई कि पहली के अवध पहुँचते ही यह दूसरी पलटन भी अवध के लिए रवाना हो जावे ।

इस पर नवाब सआदतअली ने ११ जनवरी सन् १८०० को एक विस्तृत, स्पष्ट, तर्कयुक्त और नम्रतापूर्ण पत्र उस समय के रेज़िडेण्ट स्कॉट की मार्फ़त वेल्सली के पास भेजा । इस पत्र में नवाब सआदतअली ने अङ्गरेज़ों और अवध के नवाबों के पुराने सम्बन्ध का ज़िक्र करते हुए यह दिखलाया कि अवध की सेना को तोड़ देने का नतीजा सल्तनत के हज़ारों पुराने वफ़ादार नौकरों को बेरोज़गार कर देना होगा, जिसका असर प्रजा के ऊपर अत्यन्त अहितकर होगा । सआदतअली ने लिखा कि—"सब से ज़्यादा मुझे इस बात का ख़याल है कि इस काम से कम्पनी के एतबार और उसकी इज़्ज़त में फ़रक़ आ जायगा और स्वयं मेरी न फिर अपने मुल्क में कोई इज़्ज़त रह जायगी और न बाहर । ×××

* *Dacoitee in Excelsis* by Major Bird.

यदि ऐसा हुआ तो इन प्रान्तों में मेरी हुकूमत का अन्त हो जायगा।" नवाब ने वेलसली को विश्वास दिलाया कि—"अपने मसनद पर बैठने के समय मैंने कम्पनी के साथ जो सन्धि की है उससे मैं कभी बाल भर भी इधर उधर न हूँगा; और XXX मुझे विश्वास है कि कम्पनी का इरादा भी उस सन्धि से फिरने का नहीं है।" सन् १७९८ की सन्धि को उद्धृत करते हुए नवाब सआदत-अली ने दिखाया कि कम्पनी की मौजूदा माँग अनावश्यक, अनुचित और सन् १७९८ की सन्धि के साफ़ विरुद्ध है। उस सन्धि की १७ वीं धारा में लिखा था कि—"अपने घरेलू मामलों, अपने पैतृक राज्य, अपनी सेना और अपनी प्रजा पर नवाब का अनन्य अधिकार रहेगा।" सआदतअली ने पूछा कि—"यदि अपनी सेना का इन्तज़ाम तक मेरे हाथों से छीन लिया गया तो मैं पूछता हूँ कि अपने घरेलू मामलों, अपने पैतृक राज्य, अपनी सेना और अपनी प्रजा पर मेरा अधिकार कहाँ रहा?"

अन्त में नवाब सआदतअली ने लिखा कि—"ऊपर लिखे कारणों से और कम्पनी सरकार की उदारता तथा आपकी इनायत से मुझे यह आशा है कि आप मेरी मित्रता और वफ़ादारी पर हर मौक़े के लिए पूरा एतबार करते हुए उस सन्धि के अनुसार मेरे राज्य, मेरी सेना और मेरी प्रजा के ऊपर मेरा पूर्ण अधिकार क़ायम रहने देंगे।"

इस लम्बे पत्र के और अधिक वाक्य उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है। लखनऊ ही के असिस्टेण्ट रेज़िडेण्ट मेजर बर्ड का

बयान है कि नवाब सआदतअली के एतराज़ "जैसे उचित और तर्कपूर्ण थे वैसे ही न्यायपूर्ण भी थे,"* किन्तु मेजर वर्ड ही के शब्दों में वेलसली का उत्तर "अहङ्कारयुक्त"* था।

वेलसली के उत्तर का सारांश यह था कि सआदतअली का पत्र इतने गुस्ताख़ी के शब्दों में लिखा हुआ है कि गवरनर-जनरल को उसे लेने से इनकार है, पत्र नवाब को वापस कर दिया जाय, और यदि नवाब ने फिर इसी तरह अङ्गरेज़ सरकार की न्याय-प्रियता और ईमानदारी पर शक ज़ाहिर किया तो उसे उचित दण्ड दिया जायगा।

नवाब सआदतअली और वेलसली के इस पत्र-व्यवहार के सम्बन्ध में इतिहास-लेखक जेम्स मिल लिखता है—

"दो पक्षों में एक सन्धि होती है। एक पक्ष अपनी ओर से सन्धि की सब शर्तों को इतने ठीक समय पर पूरा कर देता है कि जो उसकी स्थिति के मनुष्य के लिए सर्वथा अपूर्व है। दूसरा पक्ष सन्धि का घोर उल्लङ्घन करना चाहता है, या कम से कम पहले पक्ष को उसका कार्य सन्धि का घोर उल्लङ्घन मालूम होता है। पहले पक्ष को दूसरे पक्ष के व्यवहार में और सन्धि में साफ़ विरोध दिखाई देता है। उस विरोध को वह स्पष्ट किन्तु अत्यन्त विनीत शब्दों में दर्शाता है। उन शब्दों से दूसरे की ओर अनादर के स्थान पर पहले पक्ष ही के गिड़गिड़ाने की कहीं अधिक बू आती है। इस पर दूसरा पक्ष कहता है कि यह मेरी न्यायप्रियता और ईमान-

* "To this remonstrance, as reasonably stated as it was justly founded, the following haughty reply was made by the Governor-General . . . ."—*Dacoitee in Excelsis* by Major Bird.

दारी पर शक करना है। पहला पक्ष जब दूसरे की इच्छा पूरी करने से इनकार करता है तो उसे दण्ड देने का इरादा किया जाता है, और इस दण्ड के लिए यदि पहले कोई दोष उस पक्ष का न भी दिखाया जा सकता था तो अब यह शक करना एक ऐसा अपराध उसमे हो गया जो शायद किसी भी सज़ा से नहीं कट सकता। ज़ाहिर है कि इस ढङ्ग से कभी भी और किसी भी सन्धि को तोड़ने के लिए बहाना निकाला जा सकता है। जिस पक्ष को हानि सहनी पड़ती है, यदि वह बिना एतराज़ किए सर झुका दे तो कहा जाता है कि उसकी रज़ामन्दी है, और यदि वह शिकायत करे तो उस पर यह इलज़ाम लगाया जाता है कि तुम सबल पक्ष की न्यायप्रियता और ईमानदारी पर शक ज़ाहिर करते हो; और यह एक इतना ज़बरदस्त अपराध गिना जाता है कि इसके बाद ऐसे निर्बल मनुष्य की ओर सबल पक्ष की कोई ज़िम्मेदारी रह ही नहीं जाती।"*

---

* "A party to a treaty fulfils all its conditions with a punctuality, which, in his place, was altogether unexampled; a gross infringement of that treaty, or at least, what appears to him a gross infringement, is about to be committed on the other side; he points out clearly, but in the most humble language, savouring of abjectness much more than disrespect, the inconsistancy which appears to him to exist between the treaty and the conduct; this is represented by the other party as an impeachment of their honor and justice; and if no guilt existed before to form a ground for punishing the party who declines compliance with their will, a guilt is now contracted which hardly any punishment can expiate. This, it is evident, is a course by which no infringement of a treaty can ever be destitute of a justification. If the party injured submits without a word, his consent is alleged

इसके बाद २२ जनवरी सन् १८०१ को लॉर्ड वेल्सली ने नवाब सआदतअली को एक दूसरा पत्र लिखा कि—"या तो कुछ सालाना पेनशन लेकर सल्तनत से अलग हो जाओ और या जो दो नई अङ्गरेज़ी पलटनें अवध भेजी जा चुकी हैं उनके बदले में अपना आधा राज्य कम्पनी के हवाले कर दो।" इस दूसरे मज़मून की सन्धि का एक मसौदा तक तैयार करके गवरनर-जनरल ने पहले से रेज़िडेण्ट के पास भेज दिया।

नवाब ने बार बार एतराज़ किया, किन्तु वेल्सली ने २८ अप्रेल सन् १८०१ को रेज़िडेण्ट को लिख दिया कि यदि नवाब रज़ामन्दी से अपना आधा राज्य हवाले न कर दे तो "सेना द्वारा उस पर क़ब्ज़ा कर लिया जाय।" इन पत्रों में वेल्सली ने यह भी स्पष्ट लिख दिया कि मेरी आन्तरिक इच्छा यह है कि—"नवाब की सैनिक शक्ति को ख़तम कर दिया जाय" और "अवध की सारी सल्तनत पर दीवानी और फ़ौजदारी शासन का अनन्य अधिकार कम्पनी के हाथों में ले लिया जाय।"

अङ्गरेज़ कम्पनी के ऊपर अवध के नवाबों के अहसान असंख्य थे। किन्तु इस समय सआदतअली चारों ओर कम्पनी की सेनाओं से घिरा हुआ था। अपने और अपने कुल के चिर मित्रों की ओर

If he complains, he is treated as impeaching the honor and justice of his superior; a crime of so prodigious a magnitude, as to set the superior above all obligation to such a worthless connection."—*History of British India*, by James Mill, vol. vi, p. 191.

से इस अचानक व्यवहार को देखकर नवाब सआदतअली एक दिन बातचीत में चिल्ला पड़ा—"हक़ीक़त में यही हाल रहा तो बाक़ी का मुल्क मुझसे छिन जाने में भी ज़्यादा देर न लगेगी।" रेज़िडेण्ट स्कॉट ने तथा गवरनर-जनरल के प्राइवेट सेक्रेटरी और सगे भाई हेनरी वेल्सली ने बड़े ज़ोरों के साथ नवाब को विश्वास दिलाया कि बाक़ी राज्य पर आपके अनन्य अधिकार में कभी कोई हस्तक्षेप न किया जायगा। सआदतअली ने बेज़ार होकर मसनद से बिलकुल दस्तबरदार होने की इच्छा प्रगट की और कहा कि—"मुझे फ़ौरन् इजाज़त दी जाय कि मैं सफ़र और हज के लिए परदेस को निकल जाऊँ, क्योंकि अब यहाँ की रिआया को मुँह दिखाना मेरे लिए ज़िल्लत है।"

किन्तु नवाब सआदतअली का यह निश्चय केवल क्षणिक नैराश्य का परिणाम था, अन्त में कोई चारा न देख १४ नवम्बर सन् १८०१ को नवाब सआदतअली ने गवरनर-जनरल वेल्सली के भेजे हुए सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। इस नई सन्धि द्वारा नवाब सआदतअली ने अपनी सल्तनत का आधा, किन्तु अधिक उपजाऊ हिस्सा, जिसकी सालाना आमदनी उस समय एक करोड़ ३५ लाख रुपए थी और जिससे आजकल के 'संयुक्त प्रान्त' की बुनियाद पड़ी, सदा के लिए कम्पनी के हवाले कर दिया। मार्किस वेल्सली ने अपने भाई हेनरी वेल्सली को इस नए ब्रिटिश प्रान्त का पहला लेफ़्टेनेण्ट गवरनर नियुक्त किया।

९ मार्च सन् १८०८ को इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के अन्दर

वक्तृता देते हुए लॉर्ड फ़ौकस्टोन ने इस घटना के सम्बन्ध में नवाब सआदतअली की ईमानदारी, उसके धैर्य और उसकी परवशता तथा मार्किस वेलसली की बेईमानी और उसके खुले अन्याय को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया और विस्तार के साथ हवाले देकर साबित किया।

एक दूसरे सदस्य आर० थॉर्नटन ने पार्लिमेण्ट के अन्दर इस सन्धि के विषय में कहा—

"यदि यह 'सन्धि' थी, तो फिर खुले मैदान से जाते हुए किसी मुसाफ़िर के ऊपर किसी डाकू के टूट पड़ने और उसे लूट लेने को भी 'सन्धि' का नाम दिया जा सकता है।"*

जिस प्रकार वारन हेस्टिंग्स के अत्याचारों के लिए पार्लिमेण्ट में मुक़दमा चलाया गया था उसी प्रकार इस बार वेलसली के इस अन्याय के लिए वेलसली पर मुक़दमा चलाया गया। कुछ उदार अङ्गरेज़ों ने पूरी तरह सारे मामले की पोल खोली और बड़ी बड़ी धुँआधार वक्तृताएँ हुईं। ३ साल तक मुक़दमा चला, अन्त में पार्लिमेण्ट ने वेलसली को दण्ड देने के स्थान पर ब्रिटिश साम्राज्य की इस सच्ची सेवा के बदले में उसे "धन्यवाद" देने का एक प्रस्ताव पास किया।

---

* ". . . one might as well call a robbery committed by a footpad on a traveller on Hanslow-Heath, a treaty!" —R. Thornton before the British Parliament.

फ़र्रुख़ाबाद की रियासत का अन्त

इसके छै महीने के अन्दर वेलसली ने एक दूसरी छोटी सी रियासत फ़र्रुख़ाबाद पर क़ब्ज़ा किया।

फ़र्रुख़ाबाद अवध की एक सामन्त रियासत थी। वहाँ के नवाब चार लाख रुपए सालाना बतौर ख़िराज अवध के नवाब को दिया करते थे। एक अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट भी फ़र्रुख़ाबाद के दरबार में रहा करता था। इस अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट ने रियासत के प्रबन्ध में इस तरह हस्तक्षेप करना शुरू किया और कुछ इस तरह की ज्यादतियाँ कीं कि जिन पर फ़र्रुख़ाबाद के नवाब और अवध के नवाब दोनों को एतराज़ हुआ। मजबूर होकर सन् १७८७ में लॉर्ड कॉर्नवालिस ने रेज़िडेण्ट को वापस बुला लिया और यह वादा किया कि आयन्दा न कोई रेज़िडेण्ट फ़र्रुख़ाबाद भेजा जायगा और न रियासत के मामलों में किसी तरह का दख़ल दिया जायगा।

नवम्बर सन् १८०१ में लॉर्ड वेल्सली ने इस वादे के विरुद्ध अपने भाई हेनरी वेल्सली को फ़र्रुख़ाबाद भेजा और उसे हिदायत की कि तुम किसी तरह वहाँ के नवाब इमदादहुसेन ख़ाँ को इस बात पर राज़ी कर लो कि वह एक लाख रुपए सालाना पेनशन लेकर अपनी तमाम रियासत सदा के लिए कम्पनी के हवाले कर दे और उससे लिखवा कर हस्ताक्षर करा लो। नवाब इमदादहुसेन ख़ाँ अभी हाल ही में बालिग़ हुआ था। गवरनर-जनरल ने हेनरी वेल्सली को आदेश दिया कि इमदादहुसेन ख़ाँ के रिश्तेदारों,

सलाहकारों और दोस्तों में से जो इस काम में अङ्गरेज़ों की मदद करने को तैयार हों, उन्हें काफ़ी इनाम देने के वादे कर लेना और जो राज़ी न हों उन्हें ख़ूब डर दिखलाना।

इस पर भी नवाब इमदादहुसेन ख़ाँ का इस तरह के पत्र पर हस्ताक्षर कर देना इतना आसान न था। गवरनर-जनरल के हुकुम से इमदादहुसेन ख़ाँ को लखनऊ बुलाया गया। इसके बाद मालूम नहीं किस तरह की साज़िश, चोरी और जालसाज़ी से काम लिया गया। लखनऊ पहुँचते ही इमदादहुसेन ख़ाँ ने देखा कि उसके दस्तख़त की मोहर किसी प्रकार उसके बक्स से उड़कर ख़ुद बख़ुद लखनऊ के अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट के मकान में पहुँच गई। जो कुछ हो, कहा जाता है कि ४ जून सन् १८०२ को बरेली पहुँच कर नवाब इमदादहुसेन ख़ाँ ने अपने और अपनी औलाद के लिए १ लाख हज़ार रुपए सालाना पेनशन लेकर अपनी तमाम रियासत अपने हस्ताक्षर से सदा के लिए अङ्गरेज़ कम्पनी के सुपुर्द कर दी।

हेनरी वेल्सली ही फ़र्रुख़ाबाद रियासत का पहला अङ्गरेज शासक नियुक्त हुआ।

सत्रहवाँ अध्याय

तञ्जोर राज्य का अन्त

भारत के दक्षिण में तञ्जोर एक छोटी सी मराठा रियासत थी, जिसे १७ वीं सदी के मध्य में छत्रपति शिवाजी के पिता शाहजी ने क़ायम किया था। शाहजी के बाद तञ्जोर का राज्य शिवाजी के एक सौतेले भाई वेङ्कोजी को मिला।

इतिहास-लेखक विलियम हिके लिखता है—

"अपने समस्त और हर प्रकार के कार बार में तञ्जोर के राजा इस तरह की ईमानदारी का व्यवहार करते थे, जोकि केवल सचाई के असूल से उत्पन्न हो सकती थी, इससे ज़ाहिर है कि उन्होंने सचाई ही को अपना असूल बना रक्खा था। जब अङ्गरेज़ दक्षिणी भारत में पहुँचे और उन्होंने इस देश में बसना चाहा तो उनके सब से पक्के और सब से सच्चे दोस्त तञ्जोर ही के राजा थे।"*

इतिहास-लेखक टॉरेन्स लिखता है—

* *The Tanjore Marhatta Principality in Southern India*
—by William Hickey. p. 2.

"करमण्डल तट पर अङ्गरेज़ों के सब से पहले सहायकों में तञ्जोर का राजा था।"*

दक्षिणी विद्वान् महादेव गोविन्द रनाडे लिखता है—

"करनाटक की समस्त लड़ाइयों में तञ्जोर की सेना ने फ्रान्सीसियों के विरुद्ध अङ्गरेज़ों के पक्ष में महत्वपूर्ण भाग लिया।"†

टॉरेन्स लिखता है कि सन् १७४२ में तञ्जोर का राजा साहूजी किसी आपसी झगड़े के कारण गद्दी से उतार दिया गया और राजा प्रतापसिंह उसकी जगह बैठा। अङ्गरेज़ों ने प्रतापसिंह को राजा स्वीकार कर लिया। सात वर्ष से ऊपर तक अङ्गरेज़ों और प्रतापसिंह में परस्पर मित्रता रही, यहाँ तक कि इस बीच प्रतापसिंह ने फ़्रान्सीसियों के विरुद्ध अङ्गरेज़ों को सहायता दी।

इसके बाद अङ्गरेज़ों ने अकारण प्रतापसिंह के विरुद्ध पिछले राजा साहूजी के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार शुरू किया। दोनों में सौदा हो गया। अङ्गरेज़ों ने प्रतापसिंह को गद्दी से उतार कर साहूजी को फिर से गद्दी पर बैठा देने का वादा किया, और इसके बदले में साहूजी ने अङ्गरेज़ों का सारा ख़र्च और उसके अतिरिक्त देवीकोटा का क़िला और उसके आस पास की कुछ जागीर कम्पनी को देने का वादा किया।

प्रतापसिंह कम्पनी का मित्र था। टॉरेन्स लिखता है कि प्रतापसिंह के विरुद्ध कोई भी बहाना अङ्गरेज़ों के पास न था, तथापि

* *Empire in Asia etc.*—by Torrens.

† *The R se of the Marhatta Power.*—by Ranade p, 250.

कुछ नक़द धन और जागीर के लालच में प्रतापसिंह को गद्दी से उतारने के लिए कम्पनी की सेना भेज दी गई। इस सेना को प्रतापसिंह से हार खाकर लौट आना पड़ा। फिर एक दूसरी सेना भेजी गई। इस दूसरी सेना ने साहूजी का साथ छोड़कर सब से पहले देवीकोटा के क़िले को घेरा और उस पर क़ब्ज़ा कर लिया।

किन्तु प्रतापसिंह का बल बढ़ा हुआ था। देवीकोटा पर क़ब्ज़ा करते ही अङ्गरेज़ों ने प्रतापसिंह के साथ सुलह की बातचीत शुरू की। सुलह हो गई। अङ्गरेज़ों ने साहूजी का पक्ष छोड़ दिया और वादा किया कि हम अब कभी राजा प्रतापसिंह का विरोध न करेंगे। प्रतापसिंह ने इसके बदले में देवीकोटा और उसके पास की जागीर पर कम्पनी का क़ब्ज़ा रहने दिया। जिस साहूजी का पक्ष लेकर अङ्गरेज़ों ने यह लड़ाई छेड़ी थी उसे अब उन्होंने स्वयं क़ैद कर लिया और राजा प्रतापसिंह के ख़र्च पर उसे अपने यहाँ नज़रबन्द रखने का वादा किया। टॉरेन्स लिखता है कि "हिन्दोस्तान की विजय का इस तरह प्रारम्भ हुआ।"*

प्रतापसिंह से अब फिर अङ्गरेज़ों की मित्रता क़ायम हो गई। किन्तु तञ्जोर का राज्य करनाटक से मिला हुआ था और अपने धन वैभव के लिए दूर दूर तक मशहूर था। करनाटक और अवध के नवाब कई पीढ़ियों तक अङ्गरेज़ों के लिए कामधेनु का काम करते रहे। इन दोनों नवाबों से धन चूसने के लिए आवश्यक था कि अङ्गरेज़

* "This was the begining of the conquest of Hindostan."
—*Empire in Asia*, by Torrens. pp. 20, 21.

के पास के इलाक़ों को लूटने में उन्हें मदद दें। इसी लिए रुहेल-खण्ड, फ़र्रुख़ाबाद इत्यादि के लूटने में कम्पनी ने अवध के नवाबों को समय समय पर मदद दी। इसी नीति के अनुसार सन् १७६२ में अङ्गरेज़ों ने करनाटक के नवाब मोहम्मदअली को तञ्जोर के राजा पर हमला करने में सहायता दी। हमले के बाद अङ्गरेज़ ही मध्यस्थ बने। तय हुआ कि भविष्य में तञ्जोर करनाटक की एक सामन्त रियासत समझी जावे, तञ्जोर के राजा करनाटक के नवाब को चार लाख रुपए सालाना ख़िराज दिया करें और अङ्गरेज़ कम्पनी इस बात के लिए ज़ामिन रहे कि भविष्य में करनाटक का नवाब कभी तञ्जोर पर हमला न करेगा।

प्रतापसिंह के बाद उसका बेटा तुलजाजी तञ्जोर का राजा हुआ। सन् १७७१ में तुलजाजी के समय में करनाटक के नवाब ने फिर तञ्जोर पर चढ़ाई की और मद्रास के गवरनर ने सन् १७६२ के वादों को तोड़कर कम्पनी की सेना नवाब की मदद के लिए भेजी। राजा तुलजाजी ने एक बहुत बड़ी रक़म अङ्गरेज़ों और करनाटक के नवाब को देकर अपनी जान बचाई। इसके बाद सन् १७७३ में नवाब ने तीसरी बार अङ्गरेज़ों की मदद से तञ्जोर पर चढ़ाई की और ख़ूब लूट मार मचाई। तञ्जोर के राजा इस सारे समय में अपना नियत ख़िराज बराबर करनाटक के नवाब को देते रहते थे, किन्तु हर बार के हमले में इस ख़िराज की रक़म को और अधिक बढ़ा दिया जाता था। वास्तव में नवाब करनाटक के पास अपने अङ्गरेज़ ऋणदाताओं और कम्पनी के अफ़सरों की आए

दिन की नाजायज़ माँगों को पूरा करने का और कोई उपाय ही न था।

होते होते सन् १७८७ में अङ्गरेज़ कम्पनी और तञ्जोर के राजा तुलजाजी के बीच पहली बाज़ाब्ता सन्धि हुई जिसमें कम्पनी और राजा के बीच अब सदा के लिए 'स्थायी मित्रता' (Perpetual Friendship) क़ायम हो गई। छै वर्ष के अन्दर राजा तुलजाजी की मृत्यु होगई। तुलजाजी के कोई पुत्र न था। किन्तु मरने से कुछ दिन पहले वह सार्बोजी को गोद ले चुका था। अङ्गरेज़ों को फिर एक बहुत अच्छा मौक़ा हाथ आया। कुछ पण्डितों से व्यवस्था दिला दी गई कि सार्बोजी का गोद लिया जाना शास्त्रानुकूल नहीं है। प्रत्येक भारतवासी जानता है कि काशी और नदिया तक के धुरन्धर पण्डितों से इस तरह की व्यवस्थाएँ दिला देना कितना आसान है। सार्बोजी को हटाकर तुलजाजी के एक सौतेले भाई अमरसिंह को कम्पनी की सेना की सहायता से अब ज़बरदस्ती तञ्जोर की गद्दी पर बैठा दिया गया।

इसी समय यह भी महसूस किया गया कि सन् १७८७ की स्थायी मित्रता की सन्धि में भी कुछ दोष रह गए थे। इसी लिए सन् १७९३ में फिर एक नई सन्धि राजा अमरसिंह के साथ की गई। इस बार की सन्धि में अब कम्पनी ने सदा के लिए तञ्जोर राज्य की रक्षा करने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और उसके बदले में राजा अमरसिंह ने एक बहुत बड़ी सलाना रक़म सेना के खर्च के लिए कम्पनी को अदा करते रहने का वादा किया। इस प्रकार तञ्जोर

की रियासत भी 'सब्सीडीयरी सन्धि' के जाल में फँस गई।

राजा अमरसिंह के चरित्र के विषय में एक अङ्गरेज़ लेखक लिखता है कि—"तञ्जोर का राजा अमरसिंह एक निहायत ही अच्छे चरित्र का और उच्च सिद्धान्तों का आदमी था, और ब्रिटिश गवरमेण्ट का निहायत ही सच्चा शुभचिन्तक था।"*

किन्तु अङ्गरेज़ों की इच्छा अभी पूरी न हुई थी। वे जितनी जल्दी हो सके, तञ्जोर राज्य को ख़त्म कर देने का इरादा कर चुके थे। सबसीडीयरी सन्धि उनके लिए केवल एक बीच का साधन थी। उनकी दुरङ्गी चालें बराबर जारी रहीं। एक ओर उन्होंने अमरसिंह को गद्दी पर बैठा दिया और दूसरी ओर एक मशहूर ईसाई पादरी रेवरेण्ड पूवार्ट्ज़ को सार्बोजी का शिक्षक नियुक्त करके भेज दिया। एक दूसरा अङ्गरेज़ मैक्लाउड तञ्जोर के दरबार में रेज़िडेण्ट नियुक्त करके भेजा गया। पादरी पूवार्ट्ज़ और रेज़िडेण्ट मैक्लाउड ने मिलकर अब राजा अमरसिंह और तञ्जोर राज्य के ख़िलाफ़ नए सिरे से साज़िशें शुरू कीं।

थोड़े दिनों में राजा अमरसिंह के साथ रेज़िडेण्ट मैक्लाउड का व्यवहार इतना उद्दण्ड हो गया कि राजा अमरसिंह ने इसकी शिकायत की। जिस अङ्गरेज़ को हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं, वह

* "The Raja of Tanjore (Amar Singh) was a man of extremely good character and high principle and exceedingly well disposed towards the British Government."—Life of General, the Right Honorable, Sir David Baird, Bart, vol. i, p. 119.

लिखता है कि—"धीरे धीरे इस तरह के भेद खुले जिनसे राजा अमरसिंह को××× विश्वास हो गया कि कम्पनी ने अपने इस मुलाजिम मैकलाउड को तञ्जोर के दरबार में केवल मात्र इस लिए नियुक्त करके भेजा था, ताकि मैकलाउड द्वारा अभागे राजा को समझा कर, या यदि ज़रूरत हो तो किसी तरह मजबूर करके उससे राज्य छीन लिया जावे और उसे अपने शेष सांसारिक जीवन के लिए कम्पनी का एक पेनशनर बनाकर रक्खा जावे।" और—

"×××माननीय ईस्ट इण्डिया कम्पनी जिन उपायों से दूसरों के राज्य प्राप्त करती थी, उनमें ईमानदारी और बेईमानी का बहुत अधिक विचार न किया जाता था।"*

राजा अमरसिंह के दिल में केवल डर बैठाने के लिए रेज़िडेण्ट ने कई बार बिना किसी मौक़े के कम्पनी की सेना को राजमहल के फाटक तक बुलवा कर उसका प्रदर्शन करवाकर वापस कर दिया। यह वही अङ्गरेज़ी सेना थी जो पिछली सन्धि के अनुसार राजा की

* ". . . circumstances gradually transpired which convinced . . . the Rajah . . . that this civil servant of the Honorable East India Company had been placed at the Court of Tanjore for no other purpose than that of inducing, or even (if necessary) compelling the unfortunate Rajah to give up his territory and become a pensioner of the said Honorable East India Company for the remaining term of the natural life,

". . . The Honorable East India Company was not exceedingly scrupulous as to the means by which territory was to be acquired; . . . ."—*Life of General, the Right Honorable Sir David Baird* pp. 119 et sep.

रक्षा के लिए और राज्य के ख़र्च पर तञ्जोर में रक्खी गई थी। २३ जनवरी सन् १७९६ को रेज़िडेण्ट ने इस सेना के अङ्गरेज़ अफ़सर करनल बेयर्ड को हुकुम दिया कि—"राजा अमरसिंह का वकील शिवराव और राजा के दो भाई त्रिम्बाजी और शङ्कर-राव, तीनों में से कोई क़िले से बाहर न निकलने पावे।"

अगले दिन २४ जनवरी को रेज़िडेण्ट ने सेना लेकर अचानक राजा अमरसिंह को घेर लिया और उसे डर दिखाकर उससे एक काग़ज़ पर हस्ताक्षर करा लिए, जिसमें राजा अमरसिंह ने अपना तमाम राज्य कम्पनी के हवाले कर दिया।

किन्तु इसके अगले ही दिन राजा अमरसिंह ने गवरनर-जनरल सर जॉन शोर को लिखा कि—"मुझे घेर कर, डर दिखा कर और तरह तरह के झूठ बोलकर रेज़िडेण्ट ने मुझसे उस काग़ज़ पर हस्ताक्षर करा लिए हैं, इसलिए मेरा राज्य मेरे पास रहने दिया जावे" राजा अमरसिंह ठीक समय पर पिछली सन्धि की सब शर्तें पूरी करता रहा था। कोई बहाना उससे राज्य छीनने का उस समय कम्पनी के पास न था। अङ्गरेज़ संसार को यह दिखाना चाहते थे कि अमरसिंह ख़ुशी से अपना राज्य कम्पनी को दे रहा है, किन्तु यह चाल न चल सकी। रेज़िडेण्ट का ज़ुल्म साफ़ साबित था। राज्य के अन्दर साज़िश भी अभी पूरी तरह पक्की न थी। लाचार होकर गवरनर-जनरल ने रेज़िडेण्ट को हुकुम दिया कि राजा अमरसिंह का सम्पूर्ण राज्य उसके हाथों में रहने दिया जाय। तथापि साज़िश को पक्का करने की कोशिशें जारी रहीं।

दो वर्ष बाद मार्क्विस वेल्सली का समय आया। वेल्सली को इङ्गलिस्तान ही में आदेश मिल चुका था कि जिस तरह हो सके, तञ्जोर के राज्य पर कम्पनी का क़ब्ज़ा जमाया जावे। इङ्गलिस्तान के शासकों से वह बादशाहतों पर बादशाहतें लाद देने का वादा कर चुका था। जिस लेखक के कई वाक्य हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं, वह लिखता है—

"जब कभी माननीय ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति अथवा उसके स्वार्थ के लिए इस बात की ज़रूरत मालूम होती थी कि किसी भारतीय नरेश को गद्दी से अलग किया जावे, तो बहाने की कभी कमी न होती थी।"*

सार्बोजी को अब राजा अमरसिंह के विरुद्ध साज़िशों का केन्द्र बनाया गया। पादरी प्वार्ट्ज़ इस काम के लिए अरसे से सार्बोजी के पास मौजूद था ही। उसने इस बार रेज़िडेण्ट मैकाल-उड का खूब साथ दिया। सब से पहले राजा अमरसिंह पर यह इलज़ाम लगाया गया कि तुम तुलजाजी की विधवा रानियों के साथ और उसके दत्तक पुत्र सार्बोजी के साथ यथोचित व्यवहार नहीं करते, जिससे उन लोगों को बहुत कष्ट है। इन इलज़ामों का केवल मात्र आधार पादरी प्वार्ट्ज़ की शिकायतों पर है, जो किसी तरह भी विश्वास के योग्य नहीं समझी जा सकतीं। इस बदसलूकी

* ". . . whenever policy or aggrandisement seemed to warrant the measure, a pretext was never wanting to the Honorable East India Company, to remove a native prince."
—Ibid p. 138.

के बहाने से ज़बरदस्ती सार्बोजी को और तुलजाजी की विधवाओं को मद्रास बुला लिया गया। सार्बोजी को बहका कर तैयार करने का काम पादरी श्वार्ट्ज़ के सुपुर्द था।

सन् १७९८ में एकाएक अङ्गरेज़ों पर यह रहस्य खुला कि वह अमरसिंह, जिसे स्वयं अङ्गरेज़ों ने गद्दी पर बैठाया था और जिसे वे लगभग दस वर्ष तक तञ्जोर का राजा स्वीकार कर चुके थे, गद्दी का अधिकारी न था, वरन् वास्तविक अधिकारी तुलजाजी का दत्तक पुत्र सार्बोजी था, जिसके गोद लिए जाने को दस वर्ष पहले पण्डितों से 'शास्त्र-विरुद्ध' कहला दिया गया था। इस समय कुछ विद्वान पण्डितों ने पिछली व्यवस्था के विरुद्ध फिर सार्बोजी के पक्ष में व्यवस्था दे दी। राजा अमरसिंह से किसी तरह की पूछताछ तक नहीं की गई, और कम्पनी की उस सेना ने जिसे १० वर्ष तक राजा अमरसिंह अपने ख़र्च से पाल चुका था, तुरन्त उसे तञ्जोर की गद्दी से उतार कर सार्बोजी को उसकी जगह बैठा दिया।

इतिहास-लेखक मिल अङ्गरेज़ों के इस निर्णय की स्वार्थपरता और अन्याय्यता को स्वीकार करता है। जिस अङ्गरेज़ को हम ऊपर उद्धृत करते चले आए हैं वह लिखता है कि—"न्याय राजा अमरसिंह की ओर था। वही गद्दी का वास्तविक अधिकारी, न्याय्य नरेश, और राज्य का उस समय मालिक था; किन्तु स्वार्थ तञ्जोर पर क़ब्ज़ा करने में था।"*

---

* "Interest declared for the possession of Tanjore—justice upheld the claims of the Rajah, the undoubted heir, the legally

किन्तु वास्तव में कम्पनी के लिए अमरसिंह और साबोंजी में कोई अन्तर न था, उसका असली उद्देश कुछ और ही था, जो साबोंजी को गद्दी मिलने के साथ ही साथ प्रगट हो गया। तुरन्त साबोंजी ने एक नए सन्धिपत्र पर दस्तख़त कर दिए, जिसमें उसने अपना सारा राज्य कम्पनी के हवाले कर दिया और स्वयं जीवन भर कम्पनी का एक पेनशनर होकर तञ्जोर के क़िले के अन्दर रहना स्वीकार कर लिया।

acknowledged prince, the actual possessor of the territories."
—Ibid pp. 161, 162.

अठारहवाँ अध्याय

करनाटक की नवाबी का अन्त

पिछले अध्यायों में करनाटक के नवाब के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यवहार का ज़िक्र किया जा चुका है, और यह दिखलाया जा चुका है कि किस प्रकार छोटे से बड़े तक कम्पनी के तमाम अङ्गरेज़ ज़बरदस्ती करनाटक के नवाब से आए दिन मनमानी रक़में वसूल करते रहते थे, किस प्रकार वे नवाब को मदद देकर उसके ज़रिए आस पास की रियासतों को लुटवाते रहते थे, और किस प्रकार अनेक अङ्गरेज़ व्यापारियों ने नवाब को अपने भयङ्कर क़र्ज़ों के नीचे दबा रक्खा था, जिनमें से अधिकतर क़र्ज़े झूठे थे। जब करनाटक से काफ़ी धन खींचा जा चुका और नवाब का ख़ज़ाना ख़ाली हो गया तो मार्क्विस वेल्सली ने अपनी निश्चित नीति के अनुसार उस रियासत पर क़ब्ज़ा कर लेने की तजवीज़ें शुरू कीं।

करनाटक के नवाब मोहम्मदअली को वालाजाह भी कहते थे। मोहम्मदअली अङ्गरेज़ों का बहुत बड़ा दोस्त था। मोहम्मदअली और कम्पनी के बीच 'चिरस्थायी मित्रता' की

सन्धि हो चुकी थी, जिसमें अङ्गरेज़ों ने मोहम्मदअली और उसके राज्य की रक्षा के लिए अपनी एक सेना करनाटक में रखने का ज़िम्मा लिया था और उस सेना के ख़र्च के लिए नवाब ने ९ लाख पैगोदा अर्थात् लगभग ३० लाख रुपए सालाना अदा करने का वादा किया था। यह रक़म माहवारी क़िस्तों में अदा की जाती थी। नवाब मोहम्मदअली हर महीने ठीक समय पर कम्पनी की रक़म अदा करता रहा, यहाँ तक कि उसने अपने कुछ ज़िलों की मालगुज़ारी बतौर ज़मानत इस अदायगी के लिए अलग कर रक्खी थी। मोहम्मदअली के बाद उसका बेटा उमदतुलउमरा करनाटक का नवाब हुआ। उमदतुलउमरा अपने बाप की तरह हर महीने ठीक समय पर कम्पनी की रक़म अदा करता रहा और सन्धि की तमाम शर्तों का ठीक ठीक पालन करता रहा। इसलिए करनाटक पर क़ब्ज़ा करने का बहाना भी इतनी आसानी से न मिल सकता था।

वेल्सली का दिमाग़ इन बातों में ख़ूब चलता था। २४ अप्रेल सन् १७९९ को, टीपू के साथ दोबारा युद्ध छेड़ते समय, उसने नवाब उमदतुलउमरा को एक लम्बा पत्र लिखा। इस पत्र में उमदतुल-उमरा पर यह इलज़ाम लगाया गया कि आपने करनाटक के वे ज़िले जिनकी आमदनी कम्पनी को देने के लिए अलग कर दी गई थी, अपने कुछ क़र्ज़दारों के पास रहन रख दिए हैं, आपकी आर्थिक स्थिति ख़राब है, और भविष्य में कम्पनी की रक़म की अदायगी में कठिनाई की सम्भावना है। इसी पत्र में वेल्सली ने स्वीकार किया

कि उमदतुलउमरा हर महीने ठीक समय कम्पनी की रक़म अदा करता रहता था। तथापि इस भावी 'कठिनाई की सम्भावना' की बिना पर नवाब को यह सलाह दी गई कि आप कम से कम अस्थायी तौर पर उस समय तक के लिए, जिस समय तक कि कम्पनी और टीपू में युद्ध रहे, अपनी सल्तनत और उसकी माल-गुज़ारी का तमाम इन्तज़ाम कम्पनी के सुपुर्द कर दीजे।

नवाब मोहम्मदअली ने हैदरअली और टीपू के साथ अङ्गरेज़ों के युद्धों में सदा अङ्गरेज़ों का साथ दिया था। सन् १७९२ के मैसूर युद्ध के बाद की किसी सन्धि में कहीं एक वाक्य यह भी रख लिया गया था कि भविष्य में यदि करनाटक या उसके आस पास कोई युद्ध होगा तो कम्पनी को उस युद्ध की सफलता के लिए इस बात का अधिकार होगा कि वह करनाटक के जितने भाग पर आवश्यक समझे, अस्थायी क़ब्ज़ा करले। नवाब मोहम्मदअली के उस सन्धि पर दस्तख़त न थे। बल्कि वेल्सली ने अपने पत्र में साफ़ लिखा है कि मोहम्मदअली और उसका बेटा उमदतुलउमरा दोनों इस धारा के ख़िलाफ़ थे। तथापि अपनी इस समय की माँग को न्याय्य साबित करने के लिए वेल्सली ने अपने पत्र में अब उस धारा का हवाला दिया।

नवाब उमदतुलउमरा समझ गया कि वेल्सली इस बहाने करनाटक के एक बहुत बड़े भाग को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेना चाहता है। वेल्सली के पत्र में धमकियाँ भी भरी हुई थीं। तथापि उमदतुलउमरा इतनी आसानी से अपना पैतृक राज्य छोड़

देने के लिए राज़ी न हो सका। इस बीच सुलतान टीपू की मृत्यु हो गई और श्रीरङ्गपट्टन अङ्गरेज़ों के हाथों में आ गया। जिस सेना ने श्रीरङ्गपट्टन विजय किया, उसमें वे तमाम पलटनें भी शामिल थीं जिनके ख़र्च के लिए उमदतुलउमरा कम्पनी को ९ लाख पैगोदा सालाना दिया करता था। श्रीरङ्गपट्टन की विजय के बाद १३ मई सन् १७९९ को नवाब ने वेल्सली के पत्र के उत्तर में हिम्मत के साथ एक अत्यन्त विनीत, किन्तु उचित और गम्भीर पत्र लिखा।

इस पत्र में नवाब उमदतुलउमरा ने वेल्सली को लिखा—

"मैं नहीं समझ सकता कि आपने किन बातों की बिना पर यह राय क़ायम की है कि मेरी स्थिति ख़राब या कमज़ोर है, न मुझे उन बातों को जानने की आवश्यकता है। मेरे लिए यह जानना काफ़ी है कि मेरा कारबार कम से कम इतना अच्छा ज़रूर चल रहा है कि मैं बख़ूबी ठीक समय पर अपने वादों को पूरा कर सकता हूँ। XXX

"मैं आपको निहायत साफ़ शब्दों में, एक नरेश के वचन और ईमान पर विश्वास दिलाता हूँ कि जो ज़िले सन् १७९२ की सन्धि के अनुसार (आपकी रक़म की अदायगी के लिए) अलग कर दिए गए हैं, उनमें से एक फ़ुट ज़मीन भी किसी तरह पर, किसी ज़रिए से, ख़ुद अथवा दूसरों की मार्फ़त किसी भी शख़्स के नाम न मैंने रहन वग़ैरह की है और न मेरे इल्म में किसी दूसरे ने की है; इस तरह सञ्जीदगी के साथ और साफ़ साफ़ शब्दों में यह एलान करने के बाद मैं उम्मीद करता हूँ कि मुझे और कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है।"

अपने पिता की मरते समय की आज्ञा का हवाला देते हुए

नवाब उमदतुलउमरा ने वेल्सली को लिख दिया कि पिछली सन्धि को तोड़कर अब मैं कोई नई सन्धि हरगिज़ मञ्ज़ूर नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसा करना "हर तरह के दीन और ईमान के ख़िलाफ़" है।

इसके बाद अङ्गरेज़ों की हाल की विजय पर वेल्सली को बधाई देते हुए नवाब ने लिखा कि करनाटक का कुछ इलाक़ा, जो हैदरअली ने छीनकर अपने राज्य में मिला लिया था और जिसे अब अङ्गरेज़ों ने टीपू से फ़तह कर लिया है, करनाटक को वापस मिल जाना चाहिए। यह वही इलाक़ा था जो हैदर-अली से सुलह करते समय अङ्गरेज़ों ही ने अपने मित्र करनाटक के नवाब से लेकर हैदरअली को दे दिया था। पत्र के अन्त में नवाब ने वेल्सली से प्रार्थना की कि चूँकि करनाटक की सब्सी-डीयरी सेना ने भी इस युद्ध में भाग लिया है, इसलिए न्याय के अनुसार टीपू से जीते हुए मुल्क में से अपनी सेना के ख़र्च के औसत से करनाटक को भी कुछ हिस्सा मिलना चाहिए।

निस्सन्देह नवाब उमदतुलउमरा का उत्तर और उसकी माँगें सब न्यायानुकूल थीं; किन्तु उनकी न्याय्यता को स्वीकार करना उस समय कम्पनी के लिए लाभदायक न था। वेल्सली समझ गया कि इस ढङ्ग से करनाटक पर क़ब्ज़ा करना असम्भव है। उसने नवाब के इस पत्र का उत्तर तक न दिया।

उधर इङ्गलिस्तान के शासक भी करनाटक की स्वाधीनता का ख़ात्मा करने के लिए अधीर हो रहे थे। २१ मार्च सन् १७९९ को

भारत-मन्त्री डण्डास ने वेल्सली के नाम एक पत्र लिखा, जो ५ अगस्त सन् १७९९ को कलकत्ते पहुँचा। इस पत्र में डण्डास ने वेल्सली को लिखा कि—करनाटक के नवाब के साथ हमारी जो सन्धियाँ हो चुकी हैं उनसे इस समय हम मजबूर हैं, फिर भी "आप मुनासिब मौक़ों की ताक में रहिए और नवाब को ख़ुश करने इत्यादि के ऐसे उपाय काम में लाइए जिनसे हमारी दिली इच्छा पूरी होने की अधिक सम्भावना हो।"*

इस पत्र के उत्तर में वेल्सली ने लिख भेजा कि—"मौजूदा नवाब के जीते जी इस तरह के मौक़े की आशा करना बिल्कुल व्यर्थ है।" आगे चलकर इसी पत्र में वेल्सली ने लिखा—

"मुझे पूरा विश्वास है कि उस देश की मुसीबतों का कभी कोई पक्का इलाज नहीं हो सकता, जब तक कि हम नवाब से कम से कम उसी तरह के विस्तृत अधिकार प्राप्त न कर लें जिस तरह के कि कम्पनी को हाल में तञ्जोर की सन्धि द्वारा प्राप्त हुए हैं। मौजूदा नवाब के मरने के बाद मुमकिन है कि उसके उत्तराधिकारी के साथ इस तरह की सन्धि आसानी से की जा सके, (बशर्ते कि इस नवाब के बाद भी यह मुनासिब समझा जावे कि कम्पनी के अलावा करनाटक का नाम मात्र का नरेश कोई दूसरा बना रहे)।××× मौजूदा नवाब के मरने पर उत्तराधिकारी नियुक्त करने का सारा सवाल पूरी तरह कम्पनी के फ़ैसले के लिए खुला होगा। मेरी इस समय राय यह है कि सबसे मुनासिब यह होगा कि उस शख़्स

* Right Honorable Henry Dundas to Earl of Mornington, 21st March, 1799.

जो नवाब उमदतुलउमरा का बेटा माना जाता है, मसनद पर बैठा दिया जावे, और उसके साथ उसी तरह की सन्धि कर ली जावे जिस तरह की हाल में तञ्जोर के राजा के साथ की गई है। तो भी मुनासिब है कि आप श्रीमान् यह सोच रक्खें कि क्या अधिक पक्का प्रबन्ध यह न होगा कि हम वालाजाह और उमदतुलउमरा के वंश की हर शाख के लिए गुज़ारे का काफ़ी प्रबन्ध कर दें और नाम तथा काम दोनों की दृष्टि से करनाटक देश का राजा कम्पनी ही को बना लें।"*

किन्तु संसार को दिखाने के लिए भी कोई बहाना लेना ज़रूरी था। इसलिए वेलसली ने इस पत्र में लिखा—

"श्रीरङ्गपट्टन पर क़ब्ज़ा करने के बाद परलोकवासी टीपू सुलतान के जो पत्र आदिक हमारे हाथ आए हैं, उनसे मुझे अत्यन्त प्रामाणिक और अकाट्य शहादत इस बात की मिल गई है कि पिछले नवाब वालाजाह ने अपने जीवन के अन्त के दिनों में मौजूदा नवाब उमदतुलउमरा द्वारा टीपू सुलतान के साथ इस तरह का गुप्त पत्र-व्यवहार शुरू किया था, जिससे ब्रिटिश सत्ता की ओर उनकी गहरी शत्रुता साबित होती है।"*

---

* "I am thoroughly convinced, that no effectual remedy can ever be applied to the evils which afflict that country, without obtaining from the Nabob powers at least as extensive as those vested in the Company by the late treaty of Tanjore. At the death of the present Nabob, such a treaty might easily be obtained from his successor, (if after that event it should be thought advisable to admit any nominal sovereign of the Carnatic, excepting the Company) . . . the whole question of the succession will therefore be completely open to the decision of the Company, upon the decease of the present Nabob. The inclination of

आगे की घटनाओं को बयान करने से पहले यह देख लेना आवश्यक है कि नवाब मोहम्मदअली और टीपू सुलतान के बीच का यह 'गुप्त पत्र-व्यवहार' क्या था। कहा यह गया कि यह पत्र व्यवहार टीपू के उन नौकरों द्वारा हुआ जो उसके दोनों नाबालिग़ बन्धक बच्चों के साथ मद्रास भेजे गए थे। अङ्गरेज़ों ही के एक जाँच कमीशन ने इस इलज़ाम के सुबूत में कुछ गवाहियाँ भी जमा कर लीं।

कम से कम दो योग्य अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने मोहम्मदअली और उमदतुलउमरा के चरित्र, टीपू के साथ उनके ३० वर्ष के सम्बन्ध, उस समय की तमाम स्थिति और जाँच कमीशन की

---

my opinion is, that the most advisable settlement, would be, to place Omdatul Omra's supposed son on the Musnad, under a treaty similar to that which was lately concluded with the Rajah of Tanjore. It will however, be expedient that you should immediately consider whether it might not be a more effectual arrangement to provide liberally for every branch of the decendents of Wallajah and Omdutul Omrah, and to vest even the nominal sovereignty of the Carnatic in the Company."

". . . . the records of the late Tippu Sultan which fell into our hands, after the capture of Seringapatam, have furnished me with the most authentic and indisputable evidence that the secret correspondence of a nature the most hostile to the British power, was opened with Tippu Sultan by the late Nabob Wallajah towards the close of his life, through the agency of Omdatul Omra the present Nabob."—Lord Mornington's letter to Right Hon'ble Henry Dundas, *Wellesley's Despatches*, vol. ii, pp. 244-246.

वाहियों की पूरी तरह पड़ताल करके यह साफ़ राय ज़ाहिर की है कि मोहम्मदअली और टीपू के "गुप्त पत्र-व्यवहार" का यह सारा क़िस्सा बनावटी और झूठा है। इनमें इतिहास-लेखक मेजर इवन्स बेल का कथन है—

"हमसे आशा की जाती है कि हम इस बात पर विश्वास कर लें कि जो नवाब वालाजाह पचास साल तक अङ्गरेज़ों का वफ़ादार दोस्त और मददगार रह चुका था, जो तीस साल तक हैदरअली और टीपू सुलतान के साथ लगभग लगातार युद्ध कर चुका था, और जिसे नुक़सान पहुँचाने और नीचा दिखाने का कोई मौक़ा इन दोनों ने और ख़ासकर टीपू ने हाथ से जाने नहीं दिया था—उस वालाजाह को एकाएक बुढ़ापे में जाकर अपने तीस वर्ष के पुराने शत्रुओं से मिलकर अपने आधी शताब्दी के दोस्तों के विरुद्ध साज़िश करने की सूझी। और हमसे इस बात पर भी विश्वास कर लेने के लिए कहा जाता है कि बूढ़े नवाब ने अपने इस प्रकार अचानक रुख़ बदलने के लिए ठीक वही समय चुना जब कि उसके दोस्तों की ताक़त इतनी पक्की जम चुकी थी कि ज़ाहिरा कोई उनका मुक़ाबला करने वाला न रहा था, और जब कि उसके पुराने दुशमन का बल यहाँ तक चूर हो चुका था कि उसके उभरने की कोई आशा न थी। वालाजाह और उमदतुलउमरा पर इलज़ाम यह है कि उन्होंने टीपू के साथ ये साज़िशें लॉर्ड कॉर्नवालिस के युद्ध के बाद सन् १७९२ में शुरू कीं, जब कि टीपू विवश होकर अपना आधा राज्य दे चुका था, जब कि उसे तीन करोड़ तीस लाख रुपए युद्ध-दण्ड देना पड़ गया था, और अपने दो बेटों को बतौर बन्धकों के मद्रास भेजने की ज़िल्लत सहनी पड़ी थी। और कहा जाता है कि अपने विजयी दोस्तों और मददगारों के विरुद्ध अपने पराजित शत्रु के साथ मिलकर

नवाबों ने यह जी तोड़ साज़िश टीपू के उन दो नौकरों द्वारा की जो इन दोनों शहज़ादों की हमराही में मद्रास भेजे गए थे।

"इस तरह की साज़िश की कहानी निस्सन्देह अत्यन्त असङ्गत मालूम होती है। तथापि यदि उसके लिए काफ़ी सुबूत होता तो हमें उस पर विश्वास करना पड़ता। किन्तु कोई भी विश्वास योग्य गवाही पेश नहीं की गई। इतना ही नहीं, बल्कि टीपू सुलतान के दोनों वकीलों गुलामअली और अलीरज़ा ने अपनी मद्रास से लिखी हुई रिपोर्टों में जो श्रीरङ्गपट्टन के काग़ज़ों में पाई गईं और जाँच कमीशन के सामने अपने बयानों में जितनी बातें कही हैं वे सब की सब यदि सच मान ली जावें तो भी उनसे किसी तरह की साज़िश साबित नहीं होती। जाँच कमीशन ने वालाजाह और उसके सब से बड़े बेटे के ख़िलाफ़ गुप्त साज़िशों और दुशमनी के इरादों के अनेक सुबूत जमा किए; इन सब सुबूतों को यदि सच मान भी लिया जाय तो भी वास्तव में वे इतने तुच्छ हैं कि यदि लॉर्ड वेलसली के दिल में करनाटक के शासन को हाथ में लेने का कोई न कोई बहाना ढूँढ निकालने की प्रबल उत्कण्ठा न होती —और हम लॉर्ड वेलसली के पहले प्रयत्नों से जानते हैं कि उसमें यह प्रबल उत्कण्ठा मौजूद थी—तो हमें इस बात पर आश्चर्य होता कि उसने गप्पों और अन्दाज़िया बातों के इस तमाम ढेर को अपने रद्दी के टोकरे में क्यों नहीं फेंक दिया।"*

* "We are called upon to believe that the Nawab Wallajah in his old age, after fifty years of faithful alliance and friendship with the English, and thirty years of almost incessant warfare with Hyder Ali and Tipoo Sultan—both of whom, and especially the latter, had seized every oppertunity of injuring him and of loading him with insults,—suddenly took it into his head to

इतिहास-लेखक जेम्स मिल ने इससे भी अधिक योग्यता, निष्पक्षता और परिश्रम के साथ इस तमाम मामले की विवेचना की

---

conspire against his friends of half a Century, and to league with his enemies of thirty years. And we are called upon to believe that the time chosen for this sudden change of policy was just when the power of his friends was apparently established without a competitor, and when the power of his old enemy had fallen to nothing, beneath all hope of recovery. Wallajah and Umdatul Omrah are accused of having begun their hostile intrigues with Tipoo in 1792, after Lord Cornwallis' campaign, when he had been compelled to cede half his dominions, to pay three crores and thirty lacs of rupees as a war indemnity, and to submit to the humiliating condition of sending two of his sons as hostages to Madras. And it is with two of Tippu's officials who were sent to Madras in attendance on these young Princes, that the Nawabs are accused of having concerted and carried on this desperate conspiracy with their discomfited foe against their triumphant friends and allies.

"Extravagantly improbable as such a tale of conspiracy must appear, we should of course be bound to believe it if a sufficiency of evidence were produced. But not only is there no trustworthy evidence brought forward, but if every statement made by Ghulam Ali and Ali Raza, Tipu Sultan's Vakils, both in their written reports from Madras found among the rocords at Seringapatam, and in their depositions before the Commission of enquiry, were to be accepted as truth, it would amount to nothing. The proofs of dark designs and hostile intentions on the part of Wallajah and his eldest son, which were collected by the Commission of enquiry, are really so frivolous, even if

है और अन्त में साबित किया है कि करनाटक के नवाबों के विरुद्ध यह तमाम इलज़ाम झूठा था।*

जब तक नवाब उमदतुलउमरा ज़िन्दा रहा, वेल्सली ने कभी उसके सामने इस 'गुप्त पत्र व्यवहार' के क़िस्से को पेश नहीं किया और न उसे इसकी कोई ख़बर होने दी। वेल्सली अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए अब उमदतुलउमरा के मरने के इन्तज़ार में रहा।

जुलाई सन् १८०१ के शुरू में ख़बर मिली कि नवाब करनाटक की मृत्यु होने वाली है। बूढ़ा नवाब उस समय चिपौक के महल में था। ५ जुलाई सन् १८०१ को करनल मैकूनील कम्पनी की सेना सहित महल की ओर बढ़ा, और यह कहकर कि नवाब की मृत्यु के बाद लड़ाई झगड़े का डर है और अमन क़ायम रखने की ज़रूरत है, उसने चारों ओर से महल को घेर लिया। यह वही सेना थी जो नवाब के ख़र्च पर नवाब के इलाक़े में रक्खी गई थी। जिस समय इस सेना ने महल के भीतर घुसना चाहा और मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए नवाब के कानों तक ख़बर पहुँची, तो नवाब

considered as true, that but for the strong bias towards any conclusion affording a pretext for assuming the administration of the Carnatic, which we know from his previous endeavours in that direction actuated Lord Wellesley, we should be surprised that he did not throw the whole mass of gossip and guess-work into his waste-paper basket."—*The Empire of India* by Major Evans Bell, pp. 107, 108.

* Mill's *History of British India* vol. vi. pp. 217-244.

चौंक पड़ा और पास के एक अङ्गरेज़ अफ़सर से गिड़गिड़ा कर कहने लगा—"महल के अन्दर घुसकर मुझे मेरी रिआया की नज़रों में न गिराइए !" ५ जुलाई से १५ जुलाई तक कम्पनी की सेना ने महल को घेरे रक्खा। १५ जुलाई को नवाब उमदतुलउमरा की मृत्यु हुई। अन्त समय तक अङ्गरेज़ अफ़सर बूढ़े नवाब के पास रहे और उसे अपनी मित्रता का विश्वास दिलाते रहे। उमदतुलउमरा का बेटा शहज़ादा अलीहुसेन भी उसी महल में था। जिस दिन उमदतुल-उमरा का शरीर छूटा उसी दिन करनाटक की मसनद के उत्तराधिकारी शहज़ादे अलीहुसेन को ज़बरदस्ती कमरे से बाहर निकाल कर अङ्गरेज़ों ने अचानक उसे यह सूचना दी कि तुम्हारे बाप और तुम्हारे दादा ने अङ्गरेज़ों के ख़िलाफ़ हैदर और टीपू के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार किया था, इसलिए यद्यपि तुम्हें उसका कोई पता नहीं, तथापि गवरनर-जनरल का फ़ैसला है कि बजाय अपने बाप की मसनद पर बैठने के तुम एक साधारण प्रजा की हैसियत से अपनी ज़िन्दगी के बाक़ी दिन व्यतीत करो। शहज़ादे को डराकर उससे यह कहा गया कि तुम तञ्जोर की सन्धि के समान एक सन्धि पर हस्ताक्षर कर दो। जिन ख़ेमों के अन्दर शहज़ादे अली-हुसेन और अङ्गरेज़ अफ़सरों के बीच बातचीत हो रही थी उनके बाहर कम्पनी के सिपाही नङ्गी तलवारें लिए फिर रहे थे। किन्तु इतने पर भी शहज़ादे अलीहुसेन ने स्वीकार न किया। तब अलीहुसेन को अलग करके और बीच के कई हक़दारों को छोड़ कर अलीहुसेन के एक दूर के सम्बन्धी आज़मुद्दौला से अङ्गरेज़ों ने वहीं पर बात-

चीत शुरू की। आज़मुद्दौला ने अङ्गरेज़ों की बात मान ली। २८ जुलाई सन् १८०१ को आज़मुद्दौला करनाटक की मसनद पर बैठा दिया गया। जिस तरह की सन्धि अङ्गरेज़ों ने चाही उसी तरह की सन्धि पर आज़मुद्दौला ने दस्तख़त कर दिए। इस सन्धि के अनुसार करनाटक का समस्त राज्य कम्पनी के हाथों में आगया और आज़मुद्दौला केवल राजधानी अरकाट और चिपौक के महल का नवाब रह गया।

नए नवाब को चिपौक के महल में रक्खा गया। उसी महल में शहज़ादे अलीहुसेन और उसकी विधवा माँ को क़ैद कर दिया गया। शहज़ादे ने कई बार अङ्गरेज़ों से प्रार्थना की कि मुझे किसी दूसरी जगह भेज दिया जावे, नहीं तो डर है कि नया नवाब किसी रोज़ मुझे ख़त्म कर देगा। किन्तु सुनाई न हो सकी। चन्द रोज़ के बाद ही एक दिन कहा जाता है कि पेचिश से शहज़ादे अली-हुसेन की मृत्यु हो गई। मालूम होता है यह वही पेचिश थी जिससे ३६ साल पहले लॉर्ड क्लाइव के ज़माने में मुर्शिदाबाद के नवाब नजमुद्दौला की मृत्यु हुई थी। १७ मई सन् १८०८ को इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने शहज़ादे अलीहुसेन की मृत्यु के सम्बन्ध में वक्तृता देते हुए सर टॉमस टरटन ने कहा था—"मुझे विश्वास है कि इस मामले में कुछ न कुछ दग़ा अवश्य थी।"*

* ". . . something unfair in this transaction . . . I believed there was."—Sir Thomas Turton before British Parliament 17th May, 1808.

पूर्ववत् पार्लिमेण्ट के सामने करनाटक का सारा मामला पेश किया गया। काफ़ी भेद खोले गए। वेल्सली के विरुद्ध और नवाब के पक्ष में ज़ोरदार भाषण हुए। एक सदस्य ने टीपू और मोहम्मदअली की साज़िश की ओर सङ्केत करते हुए कहा कि—"सहज विश्वासी जनता को धोखा देने का इससे अधिक बीभत्स प्रयत्न मैंने कभी नहीं सुना।" तथापि अन्त में इस खुली राजनैतिक डकैती के लिए वेल्सली की सराहना का एक प्रस्ताव पास हुआ।

विण्डैम नामक एक सदस्य ने उस अवसर पर बिल्कुल सच कहा—

"XXX भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति को देख कर मुझे उस गीत की अन्तिम पंक्ति याद आ जाती है, जो डॉक्टर स्विफ़्ट ने एक डाकू के लिए लिखा था। उस पंक्ति का अर्थ यह है—'जिस मनुष्य का जी चाहे वह अपने पास वाले को लूट सकता है।' XXX हमारे सामने मार्गप्रदर्शन के लिए साफ़ असूल यह है कि भारतवासियों के कोई हक़ नहीं, हमारे कोई फ़र्ज़ नहीं, हम सब उनके बादशाह हैं और जो हम फ़ैसला कर दें सो ठीक।"*

* ". . . the policy of the East India Company in India, reminded him of the last line of a song, written by Dr. Swift for a high-way man, 'every man round may rob if he pleases,' . . the principle by which we were to be guided, was that the natives of India had no right, that we had no duties, and that all was to depend upon the decision of our Majesties."—Mr. Windham before the British Parliament.

उन्नीसवाँ अध्याय

सूरत की नवाबी का ख़ातमा

हिन्दोस्तान में अङ्गरेज़ों की सब से पहली कोठी सूरत में क़ायम हुई। पादरी ऐण्डरसन ने अपनी पुस्तक "दी इङ्गलिश इन वेस्टर्न इण्डिया" में विस्तार के साथ बयान किया है कि किस प्रकार आरम्भ के दिनों में अङ्गरेज़ व्यापारी सूरत-निवासियों को छलते और उन्हें धोखा देकर लूटते थे।

सूरत प्रान्त पर उन दिनों एक मुसलमान नवाब का शासन था, जो दिल्ली सम्राट के अधीन था। अङ्गरेज़ों का राजनैतिक प्रभाव वहाँ सन् १७५९ से शुरू हुआ, जब कि नवाब से कुछ झगड़ा हो जाने के कारण उन्होंने सूरत के क़िले पर हमला कर दिया। स्टैवौरिनस नामक डच यात्री लिखता है कि अङ्गरेज़ों ने क़िले के एक हिन्दोस्तानी अफ़सर को इस बात का प्रबन्ध करने के लिए धन दिया कि जब अङ्गरेज़ क़िले पर हमला करें तो दूसरी ओर से उनका कोई मुक़ाबला न करे। डच कोठी के अफ़सर को भी अङ्गरेज़ों ने इस ग़रज़ से रिशवत दी कि वह अङ्गरेज़ों के विरुद्ध

नवाब को मदद न दे।* अन्त में नवाब और अङ्गरेज़ों में सन्धि हो गई। अङ्गरेज़ व्यापारियों को कुछ विशेष रिआयतें मिल गईं और आयन्दा के लिए उन्होंने वादा किया कि हम कभी सूरत के शासन इत्यादि में किसी तरह का हस्तक्षेप न करेंगे। किन्तु वास्तव में उसी समय से सूरत के नवाब पर अङ्गरेज़ों का प्रभाव बढ़ने लगा और नवाब धीरे धीरे अङ्गरेज़ों के हाथों की एक कठपुतली बनता चला गया। यह दो-अमली चालीस वर्ष तक जारी रही। सन् १७७७ में इस दो-अमली को बयान करते हुए पारसन्स नामक एक इतिहास-लेखक लिखता है—

"यदि फ़्रान्सीसी, पुर्तगाल-निवासी अथवा डच लोग महसूल में कोई कमीबेशी कराना चाहते हैं या कोई नई रिआयत चाहते हैं; और यदि अङ्गरेज़ मुखिया उनकी इच्छा पूरी करना नहीं चाहता तो वह उन्हें नवाब के पास भेज देता है और साथ ही नवाब से कहला भेजता है कि उनकी प्रार्थना का अमुक उत्तर दिया जावे××× वे सब इस तमाशे को समझते हैं।"

स्टैवोरिनस लिखता है—

"सब के लिए क़ानून बनाने वाले अङ्गरेज़ हैं; उनकी ख़ास रज़ामन्दी के बिना न यूरोपियन कुछ कर सकते हैं और न हिन्दोस्तानी। इस विषय में शहर के नवाब में और छोटे से छोटे नगरनिवासी में कोई अन्तर नहीं। यद्यपि अङ्गरेज़ ऊपर से नवाब के प्रति कुछ आदर दिखलाते हैं और खुले तौर पर कभी न मानेंगे कि नवाब उनके अधीन है, तथापि नवाब को अङ्गरेज़ों की आज्ञाएँ माननी पड़ती हैं।"

* *Bombay Gazetteer, Surat* vol. p. 127 foot-note.

सन् १७५९ से १७९९ तक चार नवाबों के शासन-काल में यही द्वो-अमली जारी रही। मार्किस वेल्सली ने आकर इसे ख़त्म करने का इरादा किया।

नवाब को लिखा गया कि अपने यहाँ के "शासन-प्रबन्ध में सुधार" करो। इस "शासन-सुधार" का मतलब यह था कि अपनी सेना को बरख़ास्त कर दो, तीन पलटन कम्पनी की सेना अपने यहाँ रक्खो और उनके ख़र्च के लिए कम्पनी को सालाना धन दिया करो। नवाब ने वेल्सली की बात मानने से इनकार कर दिया। उसका एक एतराज़ यह भी था कि कम्पनी की यह माँग सन् १७५९ की सन्धि के विरुद्ध है। किन्तु जब नवाब को अधिक दबाया गया तो उसने समझौता कर लिया और कम्पनी को एक लाख रुपए वार्षिक देना और उसके अलावा ३०,००० रु० सालाना से ऊपर की और रिआयतें उनके साथ कर देना स्वीकार कर लिया। अभी इस नए मज़मून के सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर न होने पाए थे कि ८ जनवरी सन् १७९९ को नवाब की मृत्यु हो गई। नवाब के एक दुधमुहा पुत्र था, किन्तु अपने पिता के एक महीने बाद यह पुत्र भी मर गया। इस बच्चे का चचा नसीरुद्दीन सूरत की मसनद पर बैठा।

नसीरुद्दीन पर अब यह ज़ोर दिया गया कि तुम एक लाख रुपए सालाना की रक़म को, जिसे हाल में दोनों पक्ष मञ्जूर कर चुके थे, और बढ़ा दो। नसीरुद्दीन ने अपनी आर्थिक कठिनाई दर्शाते हुए माफ़ी चाही, किन्तु एक लाख सालाना देने का वादा

दिया। वेल्सली ने फिर ज़ोर दिया। इस पर १८ अगस्त सन् १७९९ को सूरत की अङ्गरेज़ी कोठी के मुखिया सिटॉन ने बम्बई के गवरनर को लिखा—

"मैंने कोई कसर उठा नहीं रक्खी ; नवाब पर हद दर्जे का दबाव डाल चुका हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि नवाब के पास गुन्जाइश नहीं है, नहीं तो मुझे यक़ीन है कि वह वास्तव में अधिक दे देता।"

वेल्सली को इसकी सूचना दे दी गई। इसके जवाब में १८ फ़रवरी सन् १८०० को गवरनर-जनरल वेल्सली ने बम्बई के गवरनर को एक गुप्त पत्र लिखा—

"XXX मैं पक्का निश्चय कर चुका हूँ कि नसीरुद्दीन को उस समय तक नवाब स्वीकार नहीं करूँगा, जब तक कि वह अपने और अपने कुटुम्ब के गुज़ारे के क़ाबिल सालाना पेनशन लेकर, जो कि कम्पनी उसे सूरत की सालाना आमदनी में से दिया करेगी, सूरत की दीवानी और फ़ौजदारी के समस्त अधिकार और तमाम मालगुज़ारी कम्पनी के हाथों में दे देने के लिए राज़ी न हो जावे।" *

इसके बीस दिन बाद इसी मज़मून की सन्धि का एक मसौदा लिखाकर वेल्सली ने बम्बई के गवरनर के पास भेज दिया। साथ ही गवरनर को आज्ञा दी कि तुम हिन्दोस्तानी पैदल सिपाहियों की दो नई रेजिमेण्ट अपने यहाँ बढ़ा लो, नई सन्धि पर नवाब नसीरुद्दीन के हस्ताक्षर कराने के लिए स्वयं सूरत जाओ और अपने पहुँचने से पहले एक कम्पनी गोरे तोपख़ाने की, दो

* *Wellesley's Despatches*, vol. ii, pp. 222, 223.

कम्पनियाँ गोरे पैदलों की और एक पूरी रेजिमेण्ट हिन्दोस्तानी पैदलों की सूरत भेज दो।

अन्त में नवाब नसीरुद्दीन को वेल्सली की इच्छा पूरी करनी पड़ी। १३ मई सन् १८०० को नवाब ने नए सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिए और अपनी पैतृक रियासत से सदा के लिए हाथ धो लिए। दिल्ली के दूरवर्ती मुग़ल दरबार में उस समय इतना बल न रह गया था कि अपने अधीन नवाब की रक्षा कर सके। नवाब का राजपाट छीन कर भी उसे बेमुल्क नवाब बनाए रखना ज़रूरी समझा गया। जिस दिन नसीरुद्दीन ने सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर किए उससे अगले दिन उसे बड़ी शान शौकत के साथ नवाबी की मसनद पर बैठाया गया। अङ्गरेज़ सरकार ने अब उसका नवाब होना स्वीकार कर लिया। सन्धिपत्र के शुरू में लिखा गया—"माननीय अङ्गरेज़ कम्पनी और नवाब नसीरुद्दीन ख़ाँ इत्यादि इत्यादि के दरमियान जो दोस्ती मौजूद थी, उसे इस सन्धि द्वारा अधिक मज़बूत और पक्का किया जाता है।"

इतिहास-लेखक मिल ने सूरत के निर्बल नवाब के साथ कम्पनी के इस अन्याय को और वेल्सली के झूठ और बेईमानी को निष्पक्षता के साथ स्वीकार किया है।*

* *History of British India*, by Mill, vol. vi, pp. 208-211.

बीसवाँ अध्याय

पेशवा को फँसाने के प्रयत्न

मराठा मण्डल की स्थिति

द्यपि ऊपर से देखने में मराठों और कम्पनी के बीच मित्रता की सन्धि क़ायम थी, तथापि वास्तव में कम्पनी को उस समय भारत में हैदरअली और टीपू से उतर कर अपने दूसरे प्रतिस्पर्धी मराठे ही नज़र आते थे। टीपू के बाद दूसरी भारतीय शक्ति, जिसका नाश करने की अङ्गरेज़ों को सब से अधिक चिन्ता थी, मराठा मण्डल और विशेषकर पेशवा दरबार की शक्ति थी। टीपू और अङ्गरेज़ों के पहले युद्ध के समय ही इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के अन्दर भारतीय स्थिति पर बहस करते हुए पार्लिमेण्ट के कई सदस्यों ने यह विचार प्रकट किया था कि—"हिन्दोस्तान के अन्दर इङ्गलिस्तान के हितों को सब से भारी ख़तरा मराठों से है।" नॉँचे मैकफ़रसन के समय से लेकर वेलसली के समय तक प्रत्येक गवरनर-जनरल के समय में मराठों के बल को तोड़ने के लिए बराबर साज़िशें जारी रहीं।

इस सम्बन्ध में यह बता देना आवश्यक है कि इतिहास में एक भी उदाहरण ऐसा नहीं मिलता जिसमें कि मराठों ने अङ्गरेज़ों के साथ विश्वासघात किया हो, किन्तु इसके विपरीत मराठों के साथ अङ्गरेज़ों के व्यवहार को वर्णन करते हुए एक अङ्गरेज़ विद्वान लिखता है—

"अब हम मराठा राज्य का ज़िक्र करते हैं, जिसका अङ्गरेज़ों के शुरू ज़माने के साथ गहरा सम्बन्ध है। उस ज़माने की हालत को हम चाहे कितनी भी सफ़ाई के साथ क्यों न बयान करें, उसमें अनेक बातें ऐसी हैं जिन पर अङ्गरेज़ों को शर्म आनी चाहिए।"*

इसी प्रकार वारन हेस्टिंग्स ने पार्लिमेण्ट के सामने अपने जुर्मों की जवाबदेही करते हुए, और नाना फ़ड़नवीस, हैदरअली तथा निज़ाम के उस मेल की ओर इशारा करते हुए, जिसे हम एक पिछले अध्याय में वर्णन कर चुके हैं, बड़े अभिमान के साथ कहा था—

"महान भारतीय सङ्घ के एक सदस्य (निज़ाम) को मैंने ठीक मौक़े पर उसका कुछ इलाक़ा वापस करके उस सङ्घ से फोड़ा; दूसरे (मूदाजी भोंसले) के साथ मैंने गुप्त पत्र-व्यवहार जारी रक्खा और उसे अपना मित्र बना लिया; तीसरे (माधोजी सींधिया) को दूसरे कामों में लगाकर और

* "We now arrived at the Marhatta Raj, which is closely coupled with the earlier days of the British. However fairly told, there is much for the English to be ashamed of in this period."—Sir Frederick Lely in his *History as Taught in Indian Schools.*

व्यवहार करके मैंने भुलाए रक्खा और सुलह के लिए बतौर अपने यन्त्र के उसका उपयोग किया ।"*

मराठों की सत्ता के नाश करने में सबसे अधिक भाग मार्क्विस वेल्सली और उसके भाई करनल आरथर वेल्सली ने लिया, जो बाद में ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के नाम से मशहूर हुआ । इन दोनों भाइयों के "सरकारी" और "प्राइवेट" पत्रों में मराठों के नाश के अनेक गुप्त प्रयत्न भरे पड़े हैं ।

मार्क्विस वेल्सली के भारत आने के समय राघोबा का पुत्र बाजीराव पेशवा की मसनद पर था । नाना फ़ड़नवीस क़ैद में था । करनल पामर पूना के दरबार में रेज़िडेण्ट था । और माधोजी सींधिया की जगह उसका पौत्र दौलतराव सींधिया ग्वालियर की गद्दी पर था ।

होलकर कुल में १५ अगस्त सन् १७९७ को तुकाजी की मृत्यु हुई । तुकाजी के दो बेटे थे काशीराव और मलहरराव, और दो दासी-पुत्र थे जसवन्तराव और विट्ठूजी । बड़ा बेटा काशीराव गद्दी का वास्तविक अधिकारी था । जसवन्तराव और विट्ठूजी ने मलहरराव का पक्ष लिया । दौलतराव सींधिया ने काशीराव को

* "I won one member (the Nizam) of the Great Indian Confederacy from it by an act of seasonable restitution ; with another (Moodaji Bhonsle) I maintained a secret intercourse, and converted him into a friend ; a third (Madhoji Scindhia) I drew off by diversion and negotiation, and employed him as the intrument of peace."—Warren Hastings before the British Parliameat.

सहायता दी। अन्त में सींधिया की सेना की सहायता से मलहर-राव मारा गया, काशीराव गद्दी पर बैठा, जसवन्तराव भाग कर नागपुर चला गया और विट्ठूजी कोल्हापुर गया। इस प्रकार होल-कर कुल के ऊपर दौलतराव सींधिया का प्रभाव जम गया।

महाराजा दौलतराव सींधिया योग्य, वीर और समझदार था। उसके पितामह माधोजी सींधिया के साथ अङ्गरेज़ों ने जो विश्वास-घात किया था उससे वह अच्छी तरह परिचित था। वह यह भी समझता था कि इस सङ्कट के समय में नाना फ़ड़नवीस की सेवाएँ मराठा मण्डल के अस्तित्व के लिए कितनी मूल्यवान हो सकती हैं, और अकेले बाजीराव के हाथों में मराठा साम्राज्य की वाग रहने से इस साम्राज्य को कितना ख़तरा है। नाना फ़ड़नवीस और दौलत-राव सींधिया में पत्र-व्यवहार हुआ। और सब से पहला काम दौलतराव ने यह किया कि पूना पहुँच कर नाना फ़ड़नवीस को क़ैद से निकाल कर उसे फिर से पेशवा का प्रधानमन्त्री बनवाया। नाना और दौलतराव में अब मित्रता बढ़ने लगी, बाजीराव भी इन्हीं के कहने में था, और मराठा साम्राज्य की नीति का सञ्चालन इन्हीं दोनों योग्य व्यक्तियों के हाथों में आ गया।

टीपू और अङ्गरेज़ों के पहले युद्ध में अङ्गरेज़ों की विजय का मुख्य कारण मराठों की सहायता थी। मद्रास गवरमेण्ट के सेक्रेटरी जोसाया वेब ने ६ जुलाई सन् १७९८ के पत्र में साफ़ लिखा है कि यदि ठीक समय पर मराठों की सेना मदद के लिए न पहुँचती तो अङ्गरेज़ों को उस युद्ध में सफलता न मिल सकती। किन्तु टीपू

के साथ दूसरे युद्ध में टीपू की निर्दोषता और अङ्गरेज़ों का अन्याय दोनों इतने स्पष्ट थे कि इस बार वेल्सली और उसके साथियों को मराठों से सहायता की आशा न थी।

इसके विपरीत दौलतराव सींधिया के पास एक विशाल और सन्नद्ध सेना थी। दौलतराव एक योग्य सेनापति था। वह अपनी सेना सहित इस समय पूना में था, और वेल्सली को डर था कि कहीं टीपू पर अङ्गरेज़ों के हमला करने के समय दौलतराव अपनी सेना सहित टीपू की मदद के लिए न पहुँच जावे। इसलिए टीपू पर दूसरी बार हमला करने के पूर्व मराठों की ओर वेल्सली की नीति के दो मुख्य अङ्ग थे। एक यह कि जिस तरह हो सके पेशवा बाजीराव को निज़ाम की तरह सबसीडीयरी सन्धि के जाल में फँसा कर पङ्गुल कर दिया जाय और दूसरा यह कि दौलतराव सींधिया और उसकी सेना को किसी न किसी तरह पूना से हटाकर उत्तर की ओर भेज दिया जाय। बिना पेशवा को सबसीडीयरी सन्धि के जाल में फँसाए मराठों की सत्ता का नाश कर सकना सर्वथा असम्भव था और बिना दौलतराव के पूना से टले पेशवा को इस जाल में फँसा सकना अथवा टीपू पर निःशङ्क हो हमला कर सकना दोनों असम्भव मालूम होते थे।

सींधिया को पूना से हटाने की चालें

वेल्सली अच्छी तरह समझता था कि जब तक बाजीराव के ऊपर दौलतराव सींधिया और नाना फ़ड़नवीस का प्रभाव है, तब

तक बाजीराव अङ्गरेज़ों की किसी चाल में नहीं आ सकता। इस लिए सब से पहले वेल्सली ने सींधिया और उसकी सेना को पूना से हटा देने की चालें चलनी शुरू कीं। ८ जुलाई सन् १७९८ को वेल्सली ने रेज़िडेण्ट पामर को लिखा कि—"सींधिया के पूना रहने से टीपू को पूरी तरह सहायता मिलने की सम्भावना है, इसलिए किसी प्रकार सींधिया को वहाँ से हटाकर उत्तरीय भारत भेज देना आवश्यक है।"

इसके लिए सब से पहले वेल्सली और उसके साथियों ने यह अफ़वाह उड़ाई कि अहमदशाह अब्दाली का पौत्र काबुल का बादशाह ज़मानशाह उत्तरीय भारत पर हमला करने वाला है। इतिहास-लेखक ग्राण्ट डफ़ लिखता है—

"अङ्गरेज़ों के एजण्टों ने ज़मानशाह के हमला करने के इरादों की अफ़वाहें इसलिए ख़ूब ज़ोर दे दे कर उड़ानी शुरू कीं ताकि इन बातों में आकर सींधिया अपने राज्य की रक्षा के लिए उत्तरीय हिन्दोस्तान लौट जावे।"*

इतिहास-लेखक मिल लिखता है कि ज़मानशाह के हमले की इन ख़बरों की कोई बुनियाद इन अफ़वाहों के अतिरिक्त और थी ही नहीं, और जान बूझ कर सन् १७९८ में यह ख़बरें उड़ाई गईं।

* "The reported designs of Zaman Shah, . . . were strongly set forth, by the British agents, in order to induce Scindhia to return for the protection of his dominions in Hindustan."
—Grant Duff, p. 540.

मिल लिखता है कि इससे पहले भी अङ्गरेज़ अपने मतलब के लिए काबुल के बादशाह के हमलों की झूठी खबरें उड़ा चुके थे ।*

किन्तु दौलतराव सींधिया अङ्गरेज़ों को समझता था। वह उनकी इस चाल में न आ सका। मिल लिखता है—

"यद्यपि इस तरह के हमले से किसी दूसरे को इतनी अधिक हानि न पहुंच सकती थी जितनी महाराजा सींधिया को, तथापि उसने पूना ही में और रहना पसन्द किया। असलीयत यह मालूम होती है कि सींधिया जानता था कि शाह का भारत पर हमला करना असम्भव है।"*

वेल्सली के लिए अब कोई दूसरी चाल चलना ज़रूरी हो गया। लॉर्ड कॉर्नवालिस के समय से कोई रेज़िडेण्ट सींधिया के दरबार में न भेजा गया था। वेल्सली ने अब करनल कॉलिन्स नामक एक अङ्गरेज़ को वहाँ रेज़िडेण्ट नियुक्त करके भेजा। सींधिया स्वयं पूना में था, तथापि करनल कॉलिन्स को सीधा उत्तरीय भारत की ओर सींधिया की राजधानी में भेजा गया। कहा गया कि कॉलिन्स को भेजने का उद्देश सींधिया और अङ्गरेज़ों की मित्रता को पक्का करना है; किन्तु वास्तविक उद्देश था महाराजा दौलतराव की अनुपस्थिति में सींधिया राज्य के अन्दर फूट डलवाना, जगह जगह विद्रोह खड़े करना और इस प्रकार की स्थिति पैदा कर देना जिससे दौलतराव को मजबूर होकर अपनी सेना सहित पूना से उत्तर की ओर लौट आना पड़े। भारत की स्वाधीन रियासतों के अन्दर कम्पनी के रेज़िडेण्टों का मुख्य

* Mill, vol. vi, pp. 125, 128-130.

कार्य उन रियासतों के बल और उनकी आन्तरिक कमज़ोरियों को भाँपना और उनमें अन्दर ही अन्दर फूट डलवा कर उनका नाश करना ही होता था। वेल्सली ने अपने खुले सरकारी पत्रों में बार बार रेज़िडेण्टों को यह आदेश दिया कि तुम लोग देशी राज्यों के अन्दर "आपसी द्वेष और असन्तोष से लाभ उठाओ।" जिसका साफ़ शब्दों में मतलब यह था कि उन रियासतों में आपसी द्वेष और असन्तोष पैदा करो। इस समय जब कि वेल्सली की इच्छा के अनुसार कॉलिन्स सींधिया के राज्य में जगह जगह झगड़े खड़े कर रहा था, रेज़िडेण्ट पामर पूना दरबार में उसी प्रकार फूट के बीज बो रहा था, और विशेष कर दौलतराव के विरुद्ध बाजीराव और उसके सलाहकारों के कान भरा करता था।

करनल कॉलिन्स ने अब अपनी पूरी कोशिश से सींधिया की स्थानीय सेना और उसकी प्रजा के अन्दर असन्तोष पैदा करना और लोगों को सींधिया के विरुद्ध भड़काकर झगड़े तथा विद्रोह खड़े करना शुरू किया। किन्तु यह चाल भी दौलतराव के विरुद्ध अधिक सफल न हो सकी। वह योग्य नरेश पूना में बैठे हुए वहीं से अपने राज्य के इन सब झगड़ों को सुन्दरता के साथ तय करता रहा।

मार्क्विस वेल्सली को इस समय ख़ासी कठिनाई का सामना करना पड़ा। टीपू पर हमला करने और उसका नाश करने की उसे बेहद जल्दी थी। देर होने से टीपू के अधिक सावधान हो

के अथवा उसके मददगार खड़े हो जाने का डर था। उधर वेल्सली सींधिया और उसकी सेना का एतबार कर सकता था, न सींधिया किसी प्रकार पूना से हटता था। और बिना सींधिया के पूना से हटे पेशवा बाजीराव को 'सबसीडीयरी सन्धि' अथवा अन्य किसी जाल में फँसा सकना भी असम्भव था। वेल्सली समझ गया कि जब तक दौलतराव सींधिया को कोई वास्तविक आपत्ति अपने सिर पर खड़ी हुई दिखाई न देगी, दौलतराव पूना से न टलेगा और पूना से उसे हटाना आवश्यक था। एक नया षड्यन्त्र रचा गया। दौलतराव पर यह इलज़ाम लगाया गया कि वह अङ्गरेज़ों के विरुद्ध बनारस के क़ैदी नवाब वज़ीरअली के साथ साज़िश कर रहा है। ३ मार्च सन् १७९९ को मद्रास से बैठे हुए वेल्सली ने करनल पामर के नाम एक "प्राइवेट" पत्र लिखा। इस पत्र में पामर को सूचना दी गई—

"माधोदास के बाग़ पर हमला करते समय वज़ीरअली के जो पत्र पकड़े गए हैं, उनमें उत्तरीय हिन्दोस्तान में रहने वाले सींधिया के मुख्य सेनापति अम्बाजी का एक पत्र मिला है। इस पत्र से मालूम होता है कि अम्बाजी ने दौलतराव सींधिया की ओर से वज़ीरअली के साथ एक गुप्त सन्धि की है।

"वह सन्धि गवरमेण्ट के पास नहीं है, किन्तु अम्बाजी के पत्र से, कामगार ख़ाँ और नामदार ख़ाँ के पत्रों से, और वज़ीरअली के दूसरे पत्रों से इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि इस सन्धि के मुख्य उद्देश कम्पनी के लिए अत्यन्त अहितकर हैं; और इन उद्देशों को पूरा करने के लिए यह तजवीज़ हो

रही है कि सींधिया की मदद से वज़ीरअली को अवध की मसनद पर बैठाया जाय और सींधिया और वज़ीरअली में इस तरह का सम्बन्ध क़ायम कर दिया जाय जिससे एक के हित में दूसरे का हित हो।"

वेल्सली ने इस पत्र में आगे चल कर करनल पामर को आज्ञा दी कि तुम इस सम्बन्ध में और बातें पता लगाने का प्रयत्न करो और मुझे उनकी सूचना दो।

उस समय के अन्य सरकारी तथा ग़ैर सरकारी पत्रों की छान-बीन करने से साफ़ पता चलता है कि यह तमाम साज़िश केवल वेल्सली के दिमाग़ की कल्पना थी और दौलतराव पर चढ़ाई करने का कोई बहाना पैदा करने और उसे पूना से हटाने के लिए गढ़ी गई थी। पामर के नाम पत्र में 'और बातें पता लगाने' का अर्थ यह था कि पामर 'और बातें गढ़े' और मौक़े की झूठी गवाहियाँ तैयार करके वेल्सली की कल्पना को सच्चाई का रूप दे।

इसी पत्र में वेल्सली ने पामर को लिखा—

"जो विशाल सेना इस समय सर जेम्स क्रेग के अधीन है वह अवध की सरहद पर जमा रहेगी, और मैं आशा करता हूँ कि जब सींधिया और अम्बाजी को इस बात का पता चलेगा तो वे कम्पनी के हित के विरुद्ध कोई भी कार्रवाई करने से रुके रहेंगे।"

इसका मतलब यह था कि जब और कोई चाल न चल सकी तो इस ग़रज़ से, ताकि दौलतराव सींधिया डर कर अपने राज्य में वापस आजावे, इस बहाने वेल्सली ने उसके राज्य की उत्तर-पूर्वीय सरहद पर अवध की समस्त अङ्गरेज़ी सेना लाकर खड़ी कर दी।

सींधिया के नाश की तजवीज़ें

इतना ही नहीं, बल्कि वेल्सली ने इस समय तक पूरा इरादा कर लिया कि टीपू से निबटने के बाद दौलतराव सींधिया के साथ युद्ध शुरू कर दिया जाय, क्योंकि दौलतराव सींधिया ही उस समय मराठा साम्राज्य के अन्दर सब से ज़बरदस्त नरेश था। इस कार्य के लिए वेल्सली ने भारत के अन्य नरेशों को सींधिया के विरुद्ध भिड़ने के प्रयत्न शुरू कर दिए थे। करनल पामर के नाम पूर्वोक्त पत्र लिखने से बहुत पहले, अर्थात् नवाब वज़ीरअली के पत्रों (!) में वज़ीरअली और अम्बाजी की साज़िश का पता लगने से भी पहले वेल्सली ने कोलब्रुक नामक एक अङ्गरेज़ को बरार के राजा के दरबार में अपना दूत नियुक्त करके भेजा। कोलब्रुक को भेजने का उद्देश बरार के सैन्यबल का पता लगाना और टीपू और सींधिया दोनों के विरुद्ध बरार के राजा के साथ गुप्त साज़िश करना था।

३ मार्च सन् १७९९ से पहले वेल्सली ने कोलब्रुक को एक पत्र में लिखा—

"बरार के राजा का इलाक़ा ऐसे मौक़े पर है कि दौलतराव सींधिया के विरुद्ध उसकी मदद हमारे लिए विशेष उपयोगी साबित होगी।"*

इसी पत्र में वेल्सली ने कोलब्रुक को लिखा कि तुम्हें जिस बात की ओर लक्ष्य रखना चाहिए वह यह है कि बरार के राजा,

* "The local position of the Raja's territories appears to render him a peculiarly serviceable ally against Daulat Rao Sindhia."—Governor-General's letter to Colebrooke.

निज़ाम और कम्पनी तीनों के बीच सींधिया और टीपू के विरुद्ध एक इस तरह की सन्धि हो जावे कि जिसमें बाजीराव पेशवा भी जब चाहे शामिल हो सके। किन्तु इसी पत्र में वेल्सली ने यह भी लिखा—

"XXX बरार के राजा अथवा पेशवा अथवा निज़ाम से सींधिया के विरुद्ध एक ऐसी सन्धि का प्रस्ताव करना जिसमें सींधिया का नाम आता हो, बुद्धिमत्ता नहीं है। इस विषय में पहले बरार के राजा के भाव जानने के लिए जो कुछ आप शुरू में कारवाई करें वह भी बहुत सावधानी से करनी चाहिए। हमें दिखाना चाहिए कि हमें डर टीपू सुलतान से है, और यद्यपि सन्धि में आम तौर पर 'सन्धि करने वाली शक्तियों का कोई और शत्रु' ये शब्द ले आने चाहिएँ, तथापि अभी कोई ऐसी बात सुझानी तक नहीं चाहिए, जिससे सींधिया का नाम सामने आ सके XXX।

"इस लिए राजा के सामने आपको एक ऐसी सन्धि पेश करनी चाहिए जिसका वर्तमान और प्रकट उद्देश केवल टीपू सुलतान के हमला करने की सूरत में कम्पनी और राजा के परस्पर सहायता के वादे को स्पष्ट और मज़बूत कर लेना हो, किन्तु सन्धि के शब्द ऐसे रक्खे जायँ कि यदि हस्ताक्षर होने से पहले आवश्यकता पड़ जाय तो सींधिया का नाम बीच में जोड़ा जा सके।"*

* ". . . it is not prudent to propose to the Raja of Berar, or even to the Peshwa or to the Nizam, a treaty of defence nominally against Scindhia. Even the preliminary measures for ascertaining the disposition of the Raja of Berar on this subject, must be taken with the greatest caution. The object of our apprehension should appear to be Tippu Sultan;

वास्तव में टीपू बरार के राजा पर या अङ्गरेज़ों पर दोनों में से किसी पर भी हमला करने वाला न था, और न दौलतराव सींधिया उस समय तक किसी तरह का इरादा अङ्गरेज़ों के विरुद्ध कर रहा था। हमें स्मरण रखना चाहिए कि 'वज़ीरअली के पत्रों' की गप्प भी इसके बाद की गढ़ी हुई थी। किन्तु अङ्गरेज़ टीपू और दौलतराव दोनों के नाश का इरादा कर चुके थे। वेल्सली यह भी जानता था कि नागपुर के राजा को खुले तौर पर निर्दोष दौलतराव के विरुद्ध फोड़ सकना इतना आसान नहीं है। ऊपर से अभी तक दौलतराव के साथ भी वेल्सली मित्रता दर्शा रहा था। इस लिए वह इस धोखे से दौलतराव के विरुद्ध दूसरों की सहायता को पक्का कर लेना चाहता था।

३ मार्च सन् १७९९ को वेल्सली ने एक "प्राइवेट" पत्र हैदराबाद

---

and although 'any other enemy of the contracting powers' may by named in general terms, no suggestion should yet be given by which the name of Scindhia could be brought into question . . .

"A treaty might, therefore, be proposed to the Raja, the immediate and ostensible object of which should be to strengthen and define his defensive engagements against Tippu Sultan but the terms of which should be such as to admit the insertion of Scindhia's name, if such a measure should become necessary previously to the conclusion of the treaty."—Governor-General's letter to Colebrooke enclosed in the Governor-General's letter to Captain Kirkpatrick, dated 3rd March, 1799.

के रेज़िडेण्ट कप्तान कर्कपैट्रिक को लिखा, जिसके साथ उसने पामर तथा कोलब्रुक दोनों के नाम के अपने पत्रों की नक़लें नत्थी कर दीं।

कोलब्रुक को नागपुर भेजने का ज़िक्र करते हुए वेल्सली ने कर्कपैट्रिक को लिखा—

"अच्छा यह होगा कि बरार के राजा और कम्पनी के बीच यह सम्बन्ध हैदराबाद दरबार को बीच में लेकर पक्का किया जाय ; और अन्त में शायद सींधिया और टीपू दोनों के विरुद्ध एक परस्पर सहायता की सन्धि कर ली जाय ××× जब तक मैसूर युद्ध समाप्त न हो तब तक सींधिया के साथ लड़ाई छेड़ना ठीक नहीं।"

वास्तव में निज़ाम पूरी तरह कम्पनी के हाथों में था। कम्पनी की सेनाओं का प्रधान सेनापति सर एल्यूरेड क्लॉर्क इस समय कलकत्ते में था। ८ मार्च सन् १७९९ को मद्रास से वेल्सली ने सर एल्यूरेड क्लॉर्क के नाम एक "प्राइवेट और गुप्त" पत्र लिखा जिसके कुछ वाक्य इस प्रकार हैं—

"मैंने जितने प्राइवेट पत्र आपको लिखे हैं उन सब में ××× मैंने बराबर यह इच्छा प्रकट की है कि (सींधिया की) उस ओर की सरहद पर ख़ासी सेना रक्खी जाय, ताकि यदि दौलतराव कभी कोई चाल चले तो उसे रोका जा सके।

× × ×

"मेरी इच्छा यह है कि आप फ़ौरन् फिर से अवध में इतनी सेना जमा कर लें जितनी ××× यदि सींधिया हिन्दोस्तान लौट आए तो उसकी

सेना के मुक़ाबले के लिए काफ़ी हो। आप इसका भी ध्यान रक्खें कि सम्भव है हमें स्वयम् जल्दी ही सींधिया के राज्य पर हमला करना है।

"बहुत मुमकिन है कि इस सेना के जमा होने से अम्बाजी और सींधिया को सन्देह हो जाय और वे आप से इस कार्रवाई का कारण पूछें। यदि ऐसा हो तो आप उनसे कह दीजेगा कि वज़ीरअली बनारस से भाग गया है, डर है कि वह ज़मानशाह से मिल जाने का प्रयत्न न कर रहा हो, इसलिए उस आपत्ति का मुक़ाबला करने के लिए यह सब किया जा रहा है।"

और आगे चलकर—

"यदि लड़ाई शुरू होने लगे××× तो आप राजपूतों को और सींधिया के दूसरे सामन्तों को उसके विरुद्ध भड़काने की हर तरह कोशिश कीजेगा और जयनगर और जोधपुर के राजाओं को इस बात के लिए राज़ी कर लीजेगा कि वे पूरे दिल के साथ इस युद्ध में भाग लें; साथ ही बाइयों (माधोजी सींधिया की विधवा रानियों) और लकवाजी दादा के तरफ़वालों को तथा सींधिया कुल के उन लोगों और नौकरों को, जो दौलतराव के शासन से बैर रखते हों—इन सब को भड़काने और उनके प्रयत्नों में स्वयं सहायता देने के उचित उपाय कीजेगा।"

अन्त में—

"मुझे यह नीति बिलकुल ठीक मालूम होती है कि ज्योंही हमें अपने मतलब का मौक़ा दिखाई दे, हम तुरन्त सींधिया के बल को नष्ट कर डालें, किन्तु जब तक सींधिया दक्षिण में है, और हमारी सेनाएँ टीपू सुलतान से लड़ रही हैं, तब तक दक्षिण में हमें दिक़ करने का सींधिया के पास काफ़ी

सामान रहेगा; इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि जब तक या तो सींधिया हिन्दोस्तान लौट न जाय और या टीपू सुलतान के साथ सन्धि होकर हमारी हालत ऐसी न हो जाय कि हम अधिक सफलता के साथ सींधिया की दग़ा के लिए उसे दण्ड दे सकें, तब तक सींधिया से लड़ाई न छेड़ी जाय।"

'दग़ा' सींधिया की ओर थी अथवा वेल्सली की ओर, यह बात इतिहास के एक एक पन्ने से साफ़ ज़ाहिर है। किन्तु अब यह भी स्पष्ट था कि वेल्सली सींधिया के नाश पर कटिबद्ध था, उसके उपाय सोच रहा था, अन्य भारतीय नरेशों को सींधिया के विरुद्ध भड़का रहा था, सींधिया राज्य के अन्दर जगह जगह विद्रोह खड़े करवा रहा था, स्वयं सींधिया कुल के अन्दर दौलत-राव के विरुद्ध गुप्त साज़िशें कर रहा था और ऊपर से साफ़ झूठ बोलकर ऐन मौक़े तक निर्दोष सींधिया को धोखे में रखना चाहता था।

सींधिया का पूना से रवाना होना

दौलतराव ने जब यह सब समाचार सुने और उसे मालूम हुआ कि कम्पनी की सेना मेरी सरहद पर जमा हो रही है तो उसे विश्वास हो गया कि अङ्गरेज़ मेरे राज्य पर हमला करने वाले हैं। मजबूर होकर अब वह पूना छोड़ कर अपने राज्य की रक्षा के लिए उत्तर की ओर चला आया। वेल्सली की एक बहुत बड़ी इच्छा पूरी हो गई। उसके लिए अब टीपू को कुचल डालना और

बाजीराव को जाल में फँसा सकना दोनों काम पहले से कहीं आसान हो गए।

मराठों पर दोषारोपण

८ अप्रेल सन् १७९९ को रेज़िडेण्ट पामर ने वेलसली को पूना से लिखा—

"(सींधिया के) वकील रूबाह गाँवर ने मुन्शी फ़क़ीरुद्दीन से कहा है XXX कि जब मैंने जाधो बौशार से सींधिया के दरबार के हालात पूछे तो बौशार ने मुझसे कहा कि पेशवा और सींधिया मिलकर निज़ाम पर हमला करने और अन्त में टीपू सुलतान के साथ सन्धि करने की तजवीज़ कर रहे हैं।"

अब हमें यह देखना होगा कि निज़ाम और अङ्गरेज़ों के विरुद्ध मराठों की जिस साज़िश की ओर ऊपर के पत्र में सङ्केत किया गया है वह कहाँ तक सच हो सकती थी और दौलतराव सींधिया अथवा पेशवा दरबार का उसमें कहाँ तक दोष पाया जाता है। निस्सन्देह इतिहास से पता चलता है कि नाना फ़ड़नवीस और दौलतराव सींधिया उन दिनों टीपू की ख़ासी क़द्र करते थे और अङ्गरेज़ों द्वारा टीपू के सर्वनाश को देश के लिए हितकर न समझते थे। यही कारण है कि अङ्गरेज़ भी पूना में दौलतराव की उपस्थिति से डरते थे। नाना और दौलतराव जैसे नीतिज्ञ इस बात को भी अच्छी तरह समझ रहे थे कि देशघातक निज़ाम से अङ्गरेज़ों को कितना लाभ और देश को कितनी हानि पहुँच रही थी। कुर्दला में निज़ाम और मराठों के बीच सन्धि हो चुकी थी।

कुर्दला के संग्राम में कम्पनी की सबसीडीयरी सेना तक ने निज़ाम को सहायता देने से इनकार कर दिया था। तथापि अदूरदर्शी निज़ाम अब फिर अङ्गरेज़ों ही के बहकाए में आकर कुर्दला की शर्तों को पूरा करने से इनकार कर रहा था। दिल्ली सम्राट की आज्ञानुसार निज़ाम के यहाँ से मराठों को 'चौथ' मिला करती थी। कुर्दला में निज़ाम ने नए सिरे से इस 'चौथ' को अदा करते रहने का वादा किया था। किन्तु अब वह फिर मराठों को 'चौथ' देने से इनकार कर रहा था। टीपू के विरुद्ध अङ्गरेज़ों के दोनों युद्धों में अङ्गरेज़ों को सब से अधिक सहायता निज़ाम से मिली। इस तमाम परिस्थिति में कोई आश्चर्य नहीं कि नाना और दौलतराव सींधिया निज़ाम पर हमला करके अपनी 'चौथ' वसूल करने और कुर्दला की शर्तों पर अमल कराने का विचार कर रहे हों। इसमें कोई आश्चर्य नहीं, यदि पेशवा दरबार उस समय टीपू सुलतान के साथ अधिक घनिष्ट सम्बन्ध पैदा करने के फ़िक्र में हो। बहुत सम्भव है कि दौलतराव सींधिया के सेना सहित पूना में पड़े रहने का एक उद्देश यह भी रहा हो कि यदि अङ्गरेज़ निरपराध टीपू पर हमला करें तो दौलतराव टीपू की मदद के लिए पहुँच जाय। वेल्सली का बयान है कि टीपू के वकील इस तमाम समय में बराबर पूना में ठहरे हुए थे और टीपू ने इस काम के लिए १३ लाख रुपए पेशवा दरबार के पास भेजे थे, ताकि पेशवा दरबार टीपू की मदद के लिए सेना तैयार कर सके। यदि ये सब बातें सच भी हों तो मराठों का अधिक से अधिक अपराध यह था कि

निज़ाम से अपना हक़ वसूल करने और टीपू की कम्पनी के अन्याय से रक्षा करने का विचार कर रहे थे।

दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि अङ्गरेज़ रेज़िडेण्टों की प्रथा के अनुसार पामर ने केवल दौलतराव सींधिया के विरुद्ध वेल्सली के हाथों को अधिक मज़बूत कर देने के लिए यह तमाम गप गढ़ी हो और झूठी गवाहियों से उसे पुष्ट करने का प्रयत्न किया हो। करनल पामर ने स्वयं पूर्वोक्त पत्र में वेल्सली को यह भी लिखा कि "इस ख़बर की सच्चाई अथवा विश्वास्यता के विषय में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।" करनल पामर की दी हुई ख़बर सच्ची हो वा न हो, इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि वेल्सली और पामर की नीयत बुरी थी। नाना और सींधिया के इरादों में कोई बात न्याय-विरुद्ध न थी और ये दोनों जागरूक मराठा नीतिज्ञ भी कूटनीति में अपने अङ्गरेज़ विपक्षियों को न पा सके।

पेशवा दरबार के साथ चालें

दौलतराव सींधिया के पूना से हटते ही अङ्गरेज़ों ने पेशवा बाजीराव पर इस बात के लिए ज़ोर देना शुरू किया कि तुम कम्पनी के साथ सब्सीडीयरी सन्धि कर लो। इस सन्धि की आवश्यकता दर्शाते हुए वेल्सली ने यह लिखा कि कम्पनी को टीपू के साथ युद्ध छेड़ने की सम्भावना है, इसलिए अङ्गरेज़ अपने सब मित्रों की सहायता को पक्का कर लेना चाहते हैं। नाना अभी पूना में मौजूद था। उसकी सलाह से पेशवा बाजीराव ने सब्सीडीयरी सन्धि

स्वीकार करने से इनकार कर दिया। किन्तु वेलसली ने फिर ज़ोर दिया। इस पर पेशवा दरबार ने बजाय कम्पनी के साथ 'सबसीडीयरी' सन्धि करने के कम्पनी को टीपू के विरुद्ध सैनिक सहायता देने का वादा कर लिया। फ़ौरन् परशुराम भाऊ के अधीन एक सेना टीपू के विरुद्ध अङ्गरेज़ों की मदद के लिए तैयार कर दी गई।

इस सेना की तैयारी में पेशवा दरबार ने काफ़ी ख़र्च किया। किन्तु वेलसली जानता था कि टीपू पर अङ्गरेज़ों का हमला न्याय-विरुद्ध है। वेलसली के दिल में चोर था। वह उस समय के हालात को भी देख रहा था। उसे भीतर से पेशवा दरबार पर विश्वास न हो सका। उसने पहले पेशवा को यह लिख दिया कि परशुराम भाऊ की सेना पूना के पास हर दम कूच के लिए तैयार रहे और मौक़े पर उसे मदद के लिए बुला लिया जायगा। उधर टीपू और अङ्गरेज़ों में लड़ाई छिड़ चुकी थी। पेशवा की सेना तैयार थी और बुलाने के इन्तज़ार में रही।

३ अप्रेल सन् १७९९ को वेलसली ने पामर को लिखा कि कम्पनी और उसके बाक़ी मददगारों अर्थात् निज़ाम, करनाटक आदि की सेनाएँ टीपू सुलतान को परास्त करने के लिए काफ़ी हैं और पेशवा की सेना अब न बुलाई जायगी। पेशवा दरबार का सारा ख़र्च और परिश्रम व्यर्थ गया। वेलसली के इस इनकार का कारण ग्राण्ट डफ़ ने इस प्रकार बयान किया है—

"टीपू के साथ अङ्गरेज़ों की लड़ाई छिड़ जाने के बाद, बावजूद ब्रिटिश रेज़िडेण्ट के बार बार एतराज़ करने के टीपू के वकीलों को खुले पूना दरबार

जाने दिया गया। १६ मार्च को करनल पामर को बाज़ाब्ता सूचना दी गई कि उन वकीलों को दरबार से अलग कर दिया गया है, किन्तु उसके बाद भी ये वकील पूना से केवल २५ मील नीचे एक ग्राम कड़वी में ठहरे रहे। ××× ब्रिटिश रेज़िडेण्ट को यह भी मालूम हुआ कि बाजीराव को टीपू से १३ लाख रुपए मिले हैं, सोंधिया की भी इसमें सलाह थी, किन्तु नाना फ़ड़नवीस को उस समय इसका हाल मालूम न था ×××"

ग्राण्ट डफ़ के कहने का मतलब यह है कि पेशवा दरबार ने ऊपर से अङ्गरेज़ों की मदद करने का वादा कर लिया था और भीतर से वह टीपू से मिला हुआ था। सम्भव है कि नाना फ़ड़नवीस और दौलतराव सींधिया की नीति इस प्रकार की रही हो। कोई आश्चर्य नहीं कि मराठे अपने कूटनीति के गुरु अङ्गरेज़ों से इस समय तक ये सब चालें सीख गए हों। निस्सन्देह वेल्सली और पामर जैसों के साथ इस तरह की चाल चलना उस समय मराठों के लिए इतना अधिक लज्जाजनक न था, जितना निरपराध टीपू के विरुद्ध अङ्गरेज़ों को मदद देना। तथापि हम ऊपर लिख चुके हैं कि मराठों के समस्त इतिहास में एक भी घटना ऐसी नहीं मिलती जब कि उन्होंने अङ्गरेज़ों के साथ अपना वचन भङ्ग किया हो। इसके अतिरिक्त ३ अप्रेल सन् १७९९ के जिस पत्र में वेल्सली ने पामर को लिखा कि पेशवा की सेना अब न बुलाई जायगी उसमें इन १३ लाख का कहीं ज़िक्र नहीं और न टीपू के साथ पेशवा की साज़िश का कहीं ज़िक्र है। इसके अतिरिक्त वेल्सली को मराठों और टीपू

की साज़िश का पता सब से पहले रेज़िडेण्ट पामर के उस पत्र से लगा, जो ८ अप्रेल सन् १७९९ को पूना से रवाना हुआ और वेलसली का वह पत्र, जिसमें उसने पेशवा की मदद लेने से इनकार किया, इससे पाँच दिन पहले अर्थात् ३ अप्रेल सन् १७९९ को मद्रास से चल चुका था।

वेलसली ने अपने लम्बे पत्र में पेशवा की सहायता से इनकार करने के दो कारण बताए हैं। एक यह कि पेशवा ने अपनी सेना के लिए आवश्यक खर्च और सामान देने में कुछ देर की। यह एक ग़लत और व्यर्थ की बात थी। दूसरे यह कि पेशवा ने टीपू सुलतान के वकीलों को पूना में रहने दिया। इस दूसरे एतराज़ के जवाब में नाना ने पामर को याद दिलाया कि पहले मैसूर युद्ध के समय भी, जिसमें मराठा सेना ने अङ्गरेज़ों को ज़बरदस्त और निर्णायक मदद दी थी टीपू के वकील बराबर पूना में रहते रहे, और हिन्दोस्तान के नरेशों में यह एक साधारण प्रथा थी। बल्कि इस बार वेलसली के कहने पर पेशवा ने टीपू के वकीलों को पूना से अलग भी कर दिया था। तथापि वेलसली को विश्वास न हो सका, और न हो सकता था। ग्राण्ट डफ़ का यह कहना भी कि सींधिया और पेशवा ने मिलकर कोई ऐसी बात की हो, जिसका जागरूक नाना को पता न हो, बुद्धिसङ्गत नहीं है। इसके अतिरिक्त वेलसली यह भी जानता था कि यदि वह मराठा सेना को बुला लेता और वह सेना टीपू के विरुद्ध अङ्गरेज़ों का साथ दे जाती तो टीपू से जो इलाक़ा लिया जाना उसका एक भाग मराठों को देना पड़ता, जिससे

राठों का बल और बढ़ जाता। वेल्सली इसे किसी तरह सहन न कर सकता था। इसके विपरीत वह मराठों के सर्वनाश की तदबीरें सोच रहा था। सींधिया की सेना पूना से हट चुकी थी, टीपू को कुचलने के लिए निज़ाम, करनाटक इत्यादि की सेनाएँ काफ़ी थीं; इसी लिए वेल्सली ने पेशवा दरबार को अन्त समय तक झूठी आशा में लटकाए रक्खा और अन्त में अपनी स्थिति को काफ़ी मज़बूत देख कर पेशवा की सहायता लेने से इनकार कर दिया।

दूसरी ओर यदि नाना और पेशवा दरबार की नीयत कुछ और भी रही हो तो दो बातें स्पष्ट हैं। एक यह कि सत्य और न्याय की दृष्टि से वेल्सली की अपेक्षा टीपू और मराठों का पल्ला कहीं भारी था। दूसरी यह कि पेशवा दरबार अपनी नीति के अनुसार कार्य करने में अत्यन्त ढीला रहा। यदि उनका इरादा टीपू की मदद करना था तो केवल वेल्सली के बुलाने के इन्तज़ार में परशुराम भाऊ की सेना का पूना में रोके रखना एक घातक भूल थी।

किन्तु अभी तक न श्रीरङ्गपट्टन का पतन हुआ था और न टीपू अङ्गरेज़ों के क़ाबू में आया था। अभी तक परशुराम भाऊ की सेना से अङ्गरेज़ों को नुक़सान पहुँच जाने को सम्भावना थी। इसलिए ३ अप्रेल ही के पत्र में वेल्सली ने एक और चाल चली। उसने पामर को लिखा—

"XXX मैं इसमें न चूकूँगा कि टीपू सुलतान से जो कुछ इलाक़े लिए जायँगे उनमें कम्पनी के अन्य मददगारों के साथ साथ पेशवा को भी बराबर का हिस्सा दिया जायगा। मैं आपको अधिकार देता हूँ कि आप

अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में पेशवा और नाना दोनों को इस बात की सूचना दें XXX मुझे विश्वास है कि इससे कम से कम अपने दोनों मित्रों (निज़ाम और पेशवा) की ओर ब्रिटिश सरकार का निस्स्वार्थ प्रेम साबित हो जायगा।"

यह "निस्स्वार्थ प्रेम" का प्रदर्शन और उसके साथ यह वादा "अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में" किया गया। उसके साथ कोई किसी तरह की शर्त न थी। किन्तु इस वादे का उद्देश भी पेशवा दरबार को केवल झूठी आशाओं में फँसाए रखना था।

श्रीरङ्गपट्टन के पतन का समाचार पाने से पहले पेशवा ने फिर एक बार वेल्सली को लिखा कि पेशवा दरबार की सेना को मदद के लिए बुला लिया जाय, किन्तु व्यर्थ।

४ मई को श्रीरङ्गपट्टन का पतन हुआ। उसी दिन टीपू की मृत्यु हुई। मैसूर राज्य अङ्गरेज़ों के हाथों में आगया। २३ मई सन् १७९९ को वेल्सली ने पूना के रेज़िडेण्ट के नाम एक और पत्र लिखा, जिसमें उसने एक दम अपना रुख़ बदल दिया और लिखा—

"जो इलाक़ा हमने जीता है उसका कोई हिस्सा पेशवा को देने से पहले मैं उस तमाम प्रबन्ध (अर्थात् सबसीडीयरी सन्धि) को पूरा करने का प्रयत्न करना चाहता हूँ, जो कि मैंने ८ जुलाई सन् १७९८ की हिदायतों में आपको लिख भेजा है। और मैं आपसे बहुत जल्दी यह जानना चाहता हूँ कि यदि इस समय की स्थिति में वे सब प्रस्ताव फिर से पूना दरबार के सामने पेश किए जायँ तो पूना दरबार को वे मञ्ज़ूर होंगे या नहीं।"

इसका सीधा मतलब यह कि अब काम निकल चुका था। [पेश]वा के साथ वादा पूरा करने के लिए अब यह शर्त रक्खी गई [कि] पहले पेशवा निज़ाम की तरह अपनी तमाम सेना बरख़ास्त कर [दे] और उसकी जगह कम्पनी की सेना अपने ख़र्च पर अपनी [रा]जधानी के अन्दर रखना स्वीकार कर ले।

नाना के अन्तिम प्रयत्न और उसकी मृत्यु

नाना फ़ड़नवीस अपने समय के अङ्गरेज़ों को पहचानता था। [बी]स साल पहले दिल्ली सम्राट के नाम अपने पत्र में वह कह चुका [थ]ा कि—"इन टोपी वालों का व्यवहार बेईमानी और चालबाज़ी का [है]।" इन बीस वर्ष के अन्दर उसका यह विश्वास और भी अधिक [म]ज़बूत हो चुका था। किन्तु शायद नाना को भी यह आशा न [थ]ी कि वेल्सली इस प्रकार अपने वादे से फिर जायगा।

बीस वर्ष पहले नाना ने दिल्ली के मुग़ल सम्राट की छत्र-छाया [में] भारत के समस्त स्वाधीन नरेशों को इन विदेशियों के विरुद्ध [मि]ला लेने का प्रयत्न किया था, और उस समय के अङ्गरेज़ [ग]वरनर-जनरल को मराठों के साथ नाना की बताई हुई शर्तों पर [स]न्धि करनी पड़ी थी। किन्तु इस बीस वर्ष के अन्दर हिन्दोस्तान [क]ी हालत और गिर चुकी थी। निज़ाम इस समय पूरी तरह [अ]ङ्गरेज़ों के हाथों में था। नाना के उस समय के सब से ज़बरदस्त [स]ाथी और अङ्गरेज़ों के कट्टर शत्रु हैदरअली तथा उसके वीर पुत्र [टी]पू सुलतान दोनों की मृत्यु हो चुकी थी। जो विशाल राज्य हैदर-

अली ने अपने बाहुबल से विजय किया था, वह अब विदेशियों के हाथों में था। तथापि नाना ने हिम्मत न हारी। उसने कम्पनी के साथ सबसीडीयरी सन्धि करने से फिर साफ़ इनकार कर दिया और वेलसली पर ज़ोर दिया कि जो इलाक़ा अङ्गरेज़ों ने टीपू से विजय किया है, उसका एक भाग वेल्सली के वादे के अनुसार पेशवा दरबार को दिया जाय। इसके अतिरिक्त मुग़ल सम्राट की आज्ञा के अनुसार पेशवा दरबार को सूरत के नवाब, हैदराबाद के निज़ाम और मैसूर दरबार से सालाना चौथ मिला करती थी। जब तक यह इलाक़े अङ्गरेज़ों के प्रभाव में न आए थे, तब तक मराठों को उनसे यह चौथ बराबर मिलती रही। अब सूरत और मैसूर दोनों कम्पनी के हाथों मे थे और निज़ाम कम्पनी का एक बन्दी था। इसलिए नाना ने पेशवा दरबार की ओर से इन तीनों राज्यों की चौथ वेल्सली से तलब की और आयन्दा के लिए इसका फ़ैसला कराना चाहा। किन्तु नाना ने देख लिया कि वेल्सली इनमें से कोई एक बात भी पूरी करने को तैयार न था, बरन इसके विपरीत वह अब और ज़ोरों के साथ समस्त मराठा सत्ता को नष्ट करने के उपायों में लगा हुआ था। मजबूर होकर नाना ने फिर एक बार परशुराम भाऊ की नई सेना को केन्द्र बनाकर उसके साथ समस्त मराठा नरेशों और सरदारों को निज़ाम और अङ्गरेज़ों के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार किया।

किन्तु दुर्भाग्य से इस बार भी नाना को सफलता न मिल सकी। ठीक उस मौक़े पर, जब कि परशुराम भाऊ की सेना निज़ाम

और अङ्गरेज़ों दोनों से निबटने के लिए तैयार हुई, अचानक पेशवा के अनेक दक्षिणी जागीरदारों ने पेशवा के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह का झगडा खड़ा कर दिया।

टीपू से युद्ध छेड़ते समय वेल्सली ने टीपू के सामन्तों और सरदारों को अपनी ओर फोड़ने के लिए पाँच अङ्गरेज़ों का एक कमीशन नियुक्त किया था। श्रीरङ्गपट्टन के पतन के बाद इन पाँच में से तीन अर्थात् करनल आरथर वेल्सली, करनल बेरी क्लोज़ और कप्तान मैलकम का एक नया कमीशन नियुक्त हुआ, जिसका कहने के लिए उद्देश था मैसूर राज्य का नया बन्दोबस्त करना, किन्तु जिसका असली काम था टीपू के रहे सहे अनुयायियों को डराकर अथवा लोभ देकर वश में करना। मैसूर की सरहद पेशवा राज्य की दक्षिणी सरहद से मिली हुई थी और मराठों की ओर वेल्सली के प्रकट इरादों को देखते हुए कोई आश्चर्य नहीं यदि पेशवा के दक्षिणी जागीरदारों के अचानक विद्रोह में, जो ठीक उस समय हुआ जिस समय कि यह कमीशन सरहद पर अपना कार्य कर रहा था, इस कमीशन का हाथ रहा हो।

नाना फ़ड़नवीस को अङ्गरेज़ों पर अथवा निज़ाम पर हमला करने से पहले अपने दक्षिणी इलाक़े की ओर ध्यान देना पड़ा। परशुराम भाऊ की सेना इन विद्रोही जागीरदारों को परास्त करने के लिए भेजी गई। किन्तु अभी दक्षिण के ये विद्रोह पूरी तरह शान्त भी न हो पाए थे कि १३ फ़रवरी सन् १८०० ई० को नाना फ़ड़नवीस की मृत्यु हो गई। समस्त पूना दरबार में नाना फ़ड़नवीस

ही एक जागरूक और दूरदर्शी नीतिज्ञ था, जो अङ्गरेज़ों की चालों को थोड़ा बहुत समझता था। निस्सन्देह उसने अपने जीवन भर मराठा मण्डल के बल को बनाए रखने और भारत की स्वाधीनता की रक्षा करने के अनेक प्रयत्न किए। किन्तु उसके मार्ग में कई रुकावटें थीं। एक तो वह स्वयं न पेशवा था और न सेनापति। दूसरे मराठा मण्डल के अन्दर आए दिन के परस्पर झगड़ों और अङ्गरेज़ रेज़िडेण्टों की साज़िशों ने उसे सफल न होने दिया। नाना की मृत्यु के साथ साथ मराठा मण्डल के पुनरुज्जीवन की रही सही आशा समाप्त हो गई और अङ्गरेज़ों का मार्ग भारत के अन्दर कहीं अधिक सरल हो गया।

बाजीराव को फाँसने की चेष्टा

ऊपर लिखा जा चुका है कि पेशवा बाजीराव स्वयं निर्बल और अदूरदर्शी था। जब तक दौलतराव सींधिया और नाना फड़नवीस जैसे प्रौढ़ नीतिज्ञों का पूना के दरबार में प्रभाव रहा तब तक अङ्गरेज़ बाजीराव को अपने जाल में न फँसा सके। बाजीराव को नाना और दौलतराव सींधिया से लड़ाने के भी अङ्गरेज़ों ने अनेक प्रयत्न किए। अब, जब कि नाना मर चुका था और सींधिया उत्तर में था, बाजीराव को फाँसने की वेल्सली ने फिर चेष्टा की। किन्तु दौलतराव सींधिया की अनुपस्थिति में भी दौलतराव का प्रभाव पूना के अन्दर बहुत काफ़ी था। २० अगस्त सन् १८०० को करनल वेल्सली ने मेजर मनरो (सर टॉमस मनरो) के नाम एक पत्र

में लिखा कि—"पूना में सींधिया का प्रभाव इतना ज़बरदस्त है कि हमारी चाल नहीं चल सकती।" इस लिए वेल्सली की मुख्यतम चाल इस समय यह थी कि दौलतराव के विरुद्ध बाजीराव के खूब कान भरे जायँ और किसी प्रकार बाजीराव को पूना से भगा कर एक बार अङ्गरेज़ी इलाक़े में लाया जाय और वहाँ पर उससे सबसीडीयरी सन्धि पर दस्तख़त करा लिए जायँ।

श्रीरङ्गपट्टन के पतन के बाद टीपू के एक सरदार मलिक जहान ख़ाँ ने, जिसका दूसरा नाम धूँडाजी वाघ या धूँडिया वाघ भी था, कुछ सेना जमा करके मैसूर के इलाक़े में इधर उधर घूम कर अङ्गरेज़ों को दिक़ करना शुरू कर दिया था। करनल वेल्सली के अधीन एक काफ़ी बड़ी सेना मलिक जहान ख़ाँ को दमन करने के लिए भेजी गई। किन्तु बाद में मालूम हुआ कि इस सेना को भेजने का गुप्त उद्देश कुछ और भी था।

मैसूर की सरहद बराबर मराठों की सरहद से मिली हुई थी। गवरनर-जनरल वेल्सली ने मित्रता के नाते पेशवा बाजीराव से प्रार्थना की कि इस सेना को, जो धूँडिया के नाश के लिए निकली थी, जहाँ जहाँ ज़रूरत हो पेशवा राज्य से होकर आने जाने की इजाज़त दे दी जाय। बाजीराव ने सब से पहली ग़लती यह की कि इतने महत्वपूर्ण मामले में बिना दौलतराव सींधिया से सलाह किए वेल्सली की प्रार्थना स्वीकार कर ली। करनल वेल्सली ने अब सैनिक आवश्यकता के बहाने नीचे से पेशवा के राज्य में घुसकर अनेक मारके के स्थानों पर चुपके से क़ब्ज़ा

कर लिया। धीरे धीरे साबित हो गया कि इस सेना का गुप्त उद्देश पूना पर अचानक चढ़ाई करके ठीक उसी प्रकार पेशवा दरबार को फाँसना था, जिस प्रकार कुछ वर्ष पहले मद्रास से एक सेना हैदराबाद भेजकर निज़ाम को फाँसा गया था। वेल्सली इस समय तक कलकत्ते लौट आया था। वहाँ से २३ अगस्त सन् १८०० को उसने मद्रास के गवरनर लॉर्ड क्लाइव के नाम, जो प्रसिद्ध क्लाइव का पुत्र था, एक पत्र में लिखा—

"XXX सम्भव है कि करनल वेलसली की अधिकांश सेना, निज़ाम की सेना और बम्बई से एक सेना को मिलकर हाल में पूना पर चढ़ाई करनी पड़े। इस लिए करनल वेलसली इस बीच जहाँ कहीं आए जाए सदा इस सम्भावना को अपनी नज़र के सामने रक्खे।

"XXX उचित यह है कि करनल वेलसली मराठा इलाक़े पर अपना क़ब्ज़ा बनाए रक्खे, XXX नीचे लिखी दोनों बातों में से कोई सी एक हो सकती है—पहली यह कि बाजीराव पूना छोड़कर भाग आए और दूसरी यह कि दौलतराव सींधिया बाजीराव को रोके रक्खे। इन दोनों सूरतों में, यदि करनल वेलसली ने अभी से मराठा सरहद के अन्दर अपने तईं पक्की तरह जमाए रक्खा, तो उसे पूना पर चढ़ाई करने में आसानी होगी। XXX

"इस लिए आप फ़ौरन् करनल वेलसली को सूचना दे दें कि अङ्गरेज़ी सेना को आज्ञा दी जाती है और अधिकार दिया जाता है कि ज्योंही उसे बाजीराव के भाग आने या क़ैद कर लिए जाने की पक्की ख़बर मिल जाय फ़ौरन् XXX अङ्गरेज़ी सेना पेशवा का नाम लेकर और पेशवा की ओर से

कृष्णा नदी के किनारे तक तमाम देश पर क़ब्ज़ा कर ले। इस सीमा के अन्दर जिन जिन क़िलों या मज़बूत स्थानों को करनल वेल्सली अङ्गरेज़ी सेना के हाथों में रखना उचित समझे, उन पर भी पेशवा के नाम से क़ब्ज़ा जमा लिया जाय।

"××× करनल वेल्सली को सावधानी रखनी होगी कि देश के रहने वालों को यह सान्त्वना देता रहे कि इन कार्रवाइयों से ब्रिटिश सरकार का केवल मात्र उद्देश यह है कि पेशवा को फिर से उसके न्याय्य अधिकार दिलवा दिए जायँ।"*

---

* ". . . it may be become necessary for a large proportion of the troops under the command of Colonel Wellesley to proceed (in concert with those of the Nizam, and with a detachment from Bombay) towards Poona. The intermediate motions of Colonel Wellesley must be guided with a view to this probable contingency.

". . . it is advisable that Colonel Wellesley should continue to occupy the Maratha territory, ... In either of two possible events, . . . first, the flight of Baji Rao from Poona ; second the seizure of his Highness' person by Doulat Rao Sindhia, in either of these cases Colonel Wellesley's secure establishment, within the Maratha frontier, would facilitate his advance towards Poona . . .

"I, therefore, request your Lordship to inform Colonel Wellesley, without delay, that on his receiving authentic and unquestionable intelligence either of the flight or imprisonment of Baji Rao . . . the British army is directed and authorized to take immediate possession, in the name, and on the behalf, of the Peshwa, of all the country as far as the bank of the Krishna.

इस पत्र-व्यवहार से ज़ाहिर है कि वेल्सली का इस समय मुख्य उद्देश यह था कि बाजीराव को किसी तरह दौलतराव सींधिया से फोड़कर और उसे पूना से भगाकर उससे सबसीडीयरी सन्धि पर हस्ताक्षर करा लिए जायँ। इसी पत्र से यह भी ज़ाहिर है कि जो सेना करनल वेल्सली के अधीन धूँडिया वाघ को वश में करने के बहाने भेजी गई थी, उसका मुख्य उद्देश पूना पर चढ़ाई करना था।

करनल पामर ने पूना में बहुतेरी कोशिश की कि बाजीराव या तो पूना छोड़ कर भाग जाय और या अङ्गरेज़ी सेना को स्वयं पूना बुला ले। दौलतराव सींधिया से उसे लड़ाने की भी तरह तरह से कोशिश की गई। किन्तु अभी तक सींधिया का प्रभाव काफ़ी था। पामर की न चल सकी और दोनों वेल्सली भाइयों को फिर निराश होना पड़ा। ज़ाहिर था कि बिना युद्ध के मराठों से निबटारा न हो सकता था।

तथापि बाजीराव की ग़लती के कारण दो ज़बरदस्त लाभ

Colonel Wellesley will also summon in the name of the Peshwa, such forts and strong places within the limits described as it shall be judged expedient for the British troops to occupy. . .

". . . Colonel Wellesley . . . will take care to satisfy the inhabitants of the country that the British Government entertain no other view in them than the restoration of the Peshwa's lawful authority."—Marquis Wellesley's letter to Lord Clive, dated 23rd August, 1800.

अङ्गरेज़ों को पहुँचे। एक यह कि उन्हें धूँडिया को पकड़ कर मार डालने का मौक़ा मिल गया, और दूसरे यह कि इस बहाने भावी मराठा युद्ध के लिए उन्हें पूना से नीचे के मार्गों, नदियों, क़िलों और ऊँच नीच का पूरा पता चल गया। इस विषय पर करनल वेल्सली ने इसी समय के अनुभवों से अपने देश बन्धुओं की जानकारी के लिए एक पत्रिका लिखी, जिसमें उस इलाक़े का सैनिक दृष्टि से पूरा वर्णन दिया। इस पत्रिका का पहला वाक्य है—"आशा है कि हमें जल्दी ही मराठों से युद्ध करना पड़े, इस लिए उसके उपाय जान लेना उचित है × × ×।"

मराठों को तजरुबा था कि लगभग २५ साल पहले राघोबा के पूना से भागने का नतीजा कितना बुरा हुआ था; इसलिए इस बार दौलतराव सींधया ने इस बात की पूरी सावधानी की कि बाजीराव अपने पिता का अनुसरण करने न पावे।

वेल्सली करनल पामर की मार्फ़त बाजीराव पर 'सबसीडीयरी' सन्धि के लिए बराबर ज़ोर देता रहा। होते होते बाजीराव किसी तरह राज़ी भी हो गया। इतिहास-लेखक मिल लिखता है कि बाजीराव ने स्थायी तौर पर कम्पनी की छै पलटन पैदल सेना और उसी के अनुसार तोपख़ाने का ख़र्च देना स्वीकार कर लिया। इतना ही वेल्सली चाहता था। इस ख़र्च के लिए बाजीराव ने उत्तर हिन्दोस्तान में २५ लाख रुपए सालाना का इलाक़ा भी अलग कर देने का वादा किया। अब वेल्सली की माँग और बाजीराव के कहने में अन्तर केवल इतना रह गया कि वेल्सली चाहता था कि

यह सेना पेशवा के इलाक़े में रहा करे और बाजीराव कहता था कि सेना सदा कम्पनी के इलाक़े में रक्खी जाय और केवल उस समय पेशवा के इलाक़े में आए जब पेशवा को उसकी ज़रूरत हो। बाजीराव इस पर डट गया। जिस पत्र में पामर ने गवरनर-जनरल को बाजीराव के इस प्रस्ताव की सूचना दी उसी में पामर ने लिखा—"मुझे डर है कि जब तक असन्दिग्ध नाश सामने खड़ा हुआ दिखाई न देगा तब तक बाजीराव इससे अधिक के लिए राज़ी न होगा।"* इतिहास-लेखक मिल ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में दिखाया है कि किस प्रकार पेशवा की भलाई दिखा कर अङ्गरेज़ इस समय उसकी स्वाधीनता पूरी तरह हर लेने के प्रयत्न कर रहे थे, और यही प्रयत्न अन्य मराठा राज्यों में भी जारी थे, अर्थात् अन्य मराठा नरेशों को भी इसी तरह की सबसीडीयरी सन्धियों में फाँसने के प्रयत्न किए जा रहे थे।

बाजीराव के वेल्सली की पूरी बात न मानने का कारण स्पष्ट था। निज़ाम की मिसाल उसकी आँखों के सामने थी। वह जानता था कि निज़ाम को अङ्गरेज़ों की दोस्ती के मूल्य में सन् १७९८ में अपने राज्य का एक भाग कम्पनी को दे देना पड़ा था। सन् १८०० में सन् १७९८ की सन्धि को तोड़कर निज़ाम का और अधिक, और पहले से कहीं बड़ा इलाक़ा उससे ले लिया गया। टीपू के साथ

* "I apprehend, that nothing short of imminent and certain destruction will induce him (the Peshwa) to make concession . . . etc."—Colonel Palmer's letter to Governor-General.

दोनों युद्धों में अर्थात् सन् १७९२ में और सन् १७९९ में निज़ाम ने धन से और सेना से दोनों तरह अङ्गरेज़ों को मदद दी । विजित इलाक़े में से निज़ाम को एक हिस्सा दिया गया । किन्तु दोस्ती के बदले में फिर वह तमाम इलाक़ा निज़ाम से छीन लिया गया । नतीजा यह हुआ कि सन् १७९० में निज़ाम के पास जितना इलाक़ा था, सन् १८०० में उससे कहीं कम रह गया । इसके अतिरिक्त निज़ाम की स्वाधीनता का इस अरसे में अन्त हो गया और क्रियात्मक दृष्टि से वह कम्पनी के हाथों का केवल एक क़ैदी रह गया । ये सब बातें बाजीराव को मालूम थीं और यही कारण था कि वह कम्पनी की दोस्ती आधे दिल से स्वीकार कर रहा था और कम्पनी की सबसीडीयरी सेना को अपने राज्य से बाहर रखना चाहता था ।

मालूम होता है वेल्सली भी बाजीराव की बात मान लेने के लिए कुछ कुछ राज़ी था और अधिक के लिए प्रयत्न भी कर रहा था । इस बीच पामर को पूना दरबार से हटाकर करनल क्लोज़ को उसकी जगह रेज़िडेण्ट नियुक्त किया गया । यह वही करनल क्लोज़ था, जो कमीशन के एक मेम्बर की हैसियत से टीपू के आदमियों को अपनी ओर फोड़ने में काफ़ी तजरुबा हासिल कर चुका था और उसके बाद कुछ दिनों नए मैसूर राज्य में रज़िडेण्ट का काम भी कर चुका था । २३ जून सन् १८०२ को वेल्सली के सेक्रेटरी एडमॉन्स्टन ने करनल क्लोज़ के नाम एक 'गुप्त' पत्र में लिखा—

"एक ब्रिटिश सेना का ख़र्च बरदाश्त करने की तजवीज़ के साथ पेशवा

ने जो शर्तें लगा दी हैं, उन्हें यदि हम मान लें तो भी इस तजवीज़ द्वारा तुरन्त कुछ न कुछ दर्जे तक पेशवा अवश्य अङ्गरेज़ों की ताक़त के अधीन हो जायगा। ××× जब कोई राज्य किसी अंश में एक बार दूसरे की शक्ति के अधीन हो जाता है, तो फिर स्वाभावतः उसकी पराधीनता बढ़ती जाती है। जब वह एक बार किसी विदेशी ताक़त की मदद के सहारे अपने तईं सुरक्षित समझने लगता है तो फिर उसकी सावधानी और जागरूकता में ढीलापन आने लगता है। जिस तरह की सन्धि का प्रस्ताव किया जा रहा है, उसका एक परिणाम यह भी होगा कि पूना का दरबार मराठा साम्राज्य के दूसरे सदस्यों से फट जायगा, जिससे ब्रिटिश सत्ता के ऊपर पेशवा की पराधीनता और भी अधिक वेग के साथ बढ़ती जायगी।"

और आगे चलकर इस पत्र में लिखा है—

"यदि हमने पेशवा के साथ इस तरह की सन्धि कर ली तो फिर समस्त मराठा राज्यों के आपस में मिल जाने की सम्भावना जाती रहेगी, ××× मराठा साम्राज्य की किसी एक शाखा के साथ इस तरह का पृथक सम्बन्ध क़ायम कर लेने से न केवल हमारी स्थिति ही अधिक मज़बूत हो जायगी, बल्कि इससे धीरे धीरे एक ऐसी विकट परिस्थिति पैदा हो जायगी जिससे मजबूर होकर उस साम्राज्य के अन्तर्गत दूसरे राज्यों को भी हमारे साथ इसी तरह की सन्धि स्वीकार करनी पड़ेगी।"*

* "The measure of subsidizing a British force, even under the limitations which the Peshwa has annexed to that proposal, must immediately place him in some degree in a state of dependence upon the British power, . . . *The dependence of a state of any degree upon the power of another naturally tends to*

एक दूसरे पत्र में मार्क्विस वेल्सली ने लिखा है कि यदि किसी एक भी मराठा नरेश ने कम्पनी के साथ इस तरह की सन्धि स्वीकार करली तो परिणाम यह होगा कि—"तमाम मराठा रियासतें अङ्गरेज़ सरकार के अधीन हो जायँगी; जो इस सन्धि को स्वीकार कर लेंगी वे सन्धि द्वारा हमारे अधीन हो जायँगी और जो स्वीकार न करेंगी वे सन्धि से वञ्चित रहने के कारण हमारे अधीन हो जायँगी।"*

---

increase. A sense of security derived from the support of a foreign power, produces a relaxation of vigilance and caution. Augmenting the dependence of the Peshwa on the British power under the operation of the proposed engagements, would be accelerated by the effect which those engagements would produce of detaching the state of Poona from the other members of the Maratha Empire."

"The conclusion of such engagements with the Peshwa would preclude the practicability of general confederacy among the Maratha states. . . . This separate connection with one of the branches of the Maratha Empire would not only contribute to our security, but would tend to produce a crisis of affairs which may compel the remaining states of the Empire to accede to the alliance."—Secret letter dated 23rd June, 1802, from N. B. Edmonstone, Secretary to Government, to Lt.. Colonel Close Resident at Poona.

* "Every one of the Maratha states would become dependent upon the English Government; those who accepted the alliance, by the alliance; those who did not accept it, by being

निस्सन्देह ऊपर के "गुप्त" पत्रों की भाषा निष्कपट है और उनसे देशी रियासतों की ओर अङ्गरेज़ों की नीयत साफ़ ज़ाहिर है; 'सब्सीडीयरी' सन्धियों का एक मात्र उद्देश यह था कि हिन्दोस्तान के राज्यों की स्वाधीनता छीनकर और उन्हें एक दूसरे से फाड़ कर विदेशी सत्ता के आश्रित बना लिया जाय; तथापि जिन नरेशों के साथ ये सन्धियाँ की जाती थीं उन्हें बड़े विस्तार के साथ बताया जाता था कि ये सब निस्स्वार्थ प्रयत्न केवल तुम्हारे भले और तुम्हारे कल्याण के लिए किए जा रहे हैं।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि वेल्सली का लक्ष्य इस समय मराठों के समस्त बल को तोड़ना था। इसी लिए वह इस प्रयत्न में था कि पहले किसी भी एक मराठा नरेश के साथ सब्सीडीयरी सन्धि कर ली जाय। इतिहास-लेखक मिल ने बड़ी अच्छी तरह दिखलाया है कि किस प्रकार वेल्सली "एक एक कर तमाम मराठा रियासतों की स्वाधीनता हर लेने की आशा करता था।"

दक्षिण में करनल क्लोज़ बाजीराव को समझा बुझा रहा था और उत्तर में करनल कॉलिन्स सींधिया को 'सब्सीडीयरी' सन्धि के जाल में फाँसने की कोशिशें कर रहा था।

किन्तु सींधिया काफ़ी समझदार और दूरदर्शी था। कॉलिन्स के अनेक तरह समझाने बुझाने पर भी उसने न केवल स्वयं वेल्सली और कॉलिन्स की चालों में आने से इनकार किया, वरन्

deprived of it."—Marquis Wellesley as quoted by Mill. vol. vi, p. 271.

[इ]स बात पर भी ज़ोर दिया कि मराठा मण्डल के सदस्य की [है]सियत से पेशवा के मामलों में दखल देने का भी मुझे अधिकार [है]। उसने इस बात की पूरी कोशिश की कि पेशवा भी इस नई [स]न्धि की चाल में न आने पावे। वेल्सली को अपनी असफलता [क]ी सूचना देते हुए कॉलिन्स ने लिखा—

"सींधिया और अङ्गरेज़ सरकार के बीच इस समय जो मित्रता क़ायम [है उ]से बनाए रखने के लिए सींधिया उत्सुक है। साथ ही आपको यह [सू]चित कर देना मैं अपना आवश्यक कर्तव्य समझता हूँ कि मुझे पक्का [वि]श्वास है कि इस सम्बन्ध को बढ़ाने के लिए वह क़तई राज़ी नहीं हो [स]कता।"*

इतिहास-लेखक मिल ने करनल कॉलिन्स के इन वाक्यों का [भ]ाषान्तर इस प्रकार किया है—

"दूसरे शब्दों में सींधिया अभी तक इतना नीच न हो पाया था कि [स्व]यं जान बूझ कर उस स्थिति में चला आता जिसमें वेलसली की 'परस्पर—[सै]निक—सहायता—सन्धि' की प्रणाली में एक बार शामिल होकर वह [अ]वश्य गिर जाता।"†

* "Sindhia was anxiously desirous to preserve the relations of friendship at that time subsisting between him and the English Government. At the same time, I consider it my indispensable duty to apprise your excellency that I am firmly persuaded he feels no inclination whatever to improve these relations."—Resident Collins' letter to the Governor-General Mill. vol, vi. p. 272.

† "In other words, he (Sindhia) was not yet brought so low, as willingly to descend into that situation in which a participation

कॉलिन्स ने अब वेल्सली पर ज़ोर दिया कि पहले पेशवा ही को वश में करने का प्रयत्न किया जाय। उधर करनल क्लोज़ वेल्सली को लिख चुका था कि—"जब तक असन्दिग्ध नाश सामने खड़ा हुआ दिखाई न देगा तब तक बाजीराव इससे अधिक के लिए राज़ी न होगा।" इस लिए अब किसी न किसी प्रकार 'असन्दिग्ध नाश' बाजीराव के सामने खड़ा कर देना आवश्यक था।

उधर दौलतराव सींधिया को भी इस बात की चिन्ता थी कि बाजीराव कहीं अङ्गरेज़ों की चालों में न आ जाय। वह समझता था कि पेशवा के सबसीडीयरी सन्धि स्वीकार करने का परिणाम मराठा मण्डल के लिए घातक होगा। इस बीच वह फिर एक बार मौक़ा पाकर पूना लौट आया। वेल्सली और उसके साथियों को अब एक और नया और अधिक प्रबल कुचक्र रचना पड़ा।

ऊपर आ चुका है कि जसवन्तराव होलकर इस समय नागपुर में था और विट्ठूजी होलकर कोल्हापुर में था। वेल्सली ने इन दोनों को अपनी ओर फोड़ा। अङ्गरेज़ दूत कोलब्रुक बरार के राजा को सींधिया के विरुद्ध फोड़ने के लिए नागपुर पहुँच चुका था। कोलब्रुक को अब तक काफ़ी सफलता प्राप्त हो चुकी थी। उधर दौलतराव सींधिया के राजपूत सामन्तों और माधोजी सींधिया की विधवाओं को अपनी ओर फोड़ने में भी वेल्सली को चुपचाप बहुत अंशों में सफलता प्राप्त हो चुकी थी। अङ्गरेज़ों ने अब जस-

in the 'system of defensive alliance and mutual guarantee' would of necessity place him."—Mill. vol, vi. p. 272.

...राव होलकर को दौलतराव सींधिया के विरुद्ध तैयार किया ...र अङ्गरेज़ों की मदद से जसवन्तराव ने नागपुर से भाग कर ...ना जमा करके सींधिया के राज्य पर हमला कर दिया और ...धिया के इलाक़े को लूटना और बरबाद करना शुरू किया।

दौलतराव को इस अकस्मात् हमले का समाचार सुनते ही ...र पूना छोड़ कर मालवा की ओर लौट आना पड़ा। किन्तु इस ...र वह अपनी विशाल सेना में से पाँच पलटन पैदल और दस ...ज़ार सवार पूना में छोड़ गया। शेष सेना लेकर वह मालवा ...हुँचा। कई स्थानों पर होलकर और सींधिया की सेनाओं में ...ग्राम हुए, जिनमें विजय कभी एक ओर रही और कभी दूसरी ...ओर। दौलतराव ने जसवन्तराव के साथ सुलह करना चाहा। ...जसवन्तराव एक बार राज़ी भी हो गया। किन्तु जसवन्तराव इस ...समय विदेशियों के हाथों का केवल एक शस्त्र था। एक बार राज़ी ...होकर उसने फिर सींधिया के साथ विश्वासघात किया।

उधर सींधिया के दक्षिण से चलते ही पूना में फिर उपद्रव खड़े ...हो गए। विट्ठोजी होलकर ने कोल्हापुर में पेशवा के विरुद्ध विद्रोह ...का झगडा खड़ा कर दिया। पेशवा की सेना ने विद्रोही विट्ठोजी ...को गिरफ़्तार करके ख़त्म कर दिया। जसवन्तराव होलकर अब ...विट्ठोजी की मृत्यु का बदला लेने के बहाने अपनी सेना सहित ...मालवा से पूना की ओर बढ़ा। पेशवा और सींधिया दोनों ...कम्पनी के दोस्त थे। तथापि मार्किस वेल्सली के पत्रों से ...साफ़ ज़ाहिर है कि अङ्गरेज़ इस समय जसवन्तराव को हर

तरह मदद दे रहे थे। करनल वेल्सली के अधीन अङ्गरेज़ी सेना भी पूना के पास तक आ पहुँची थी। इस हालत में जसवन्तराव को बढ़ते हुए देख कर ११ अक्तूबर सन् १८०२ को पेशवा बाजीराव ने घबराकर वेल्सली की सारी शर्तें स्वीकार कर लीं। उसने रेज़िडेण्ट को लिख भेजा कि कम्पनी की जिस सबसीडीयरी सेना का ख़र्च देना मैंने स्वीकार कर लिया है, उसके स्थायी तौर पर रहने के लिए मैं अपने राज्य के अन्दर तुङ्गभद्रा नदी के पास एक ज़िला दे दूँगा और उसके ख़र्च के लिए भी गुजरात अथवा करनाटक में २५ लाख रु० सालाना आमदनी का इलाक़ा अलग कर दूँगा। वेल्सली की इच्छा अब १६ आने पूरी हो गई। बाजीराव का पत्र पाते ही उसने उस तजवीज़ पर अपनी स्वीकृति के हस्ताक्षर कर दिए। इतने ही में होलकर की सेना पूना तक पहुँच गई।

२५ अक्तूबर सन् १८०२ को पूना में एक ज़बरदस्त संग्राम हुआ। मालूम होता है कि दौलतराव स्वयं इस संग्राम में न पहुँच सका, किन्तु पूना से चलते समय वह पाँच पलटन पैदल और दस हज़ार सवार अपनी सेना के पूना में छोड़ गया था। होलकर की सेना एक ओर और पेशवा और सींधिया की सेनाएँ दूसरी ओर। सींधिया की सेनाएँ अभ्यस्त और शिक्षित थीं। उनके मुक़ाबले में होलकर की सेनाएँ अनभ्यस्त थीं। एक बार मालूम होता था कि विजय पेशवा की ओर रहेगी। किन्तु ऐन मौक़े पर सींधिया की सेना का यूरोपियन सेनापति कप्तान फ़ाइलोस निस्सन्देह वेल्सली के इशारे पर अपने मालिक के साथ विश्वासघात करके होलकर

से मिल गया और सींधिया और पेशवा की संयुक्त सेनाओं को हार खानी पड़ी।

अदूरदर्शी बाजीराव को अन्त समय तक आशा थी कि अङ्गरेज़ी सेना, जिसे अपने ख़र्च पर अपने राज्य में रखना तक वह स्वीकार कर चुका था और जो इस समय पूना पहुँच चुकी थी, विद्रोही होलकर के विरुद्ध मेरी मदद करेगी। किन्तु अङ्गरेज़ होलकर ही की मदद करते रहे और होलकर तथा बाजीराव दोनों को अपने हाथों में खिलाकर और दोनों को एक दूसरे से लड़ाकर अपना काम निकालते रहे। गवरनर-जनरल वेल्सली और रेज़िडेण्ट क्लोज़ की इच्छा अब पूरी हो गई। "असन्दिग्ध नाश" अब पराजित पेशवा बाजीराव की आँखों के सामने दिखाई देने लगा।

इतिहास-लेखक मिल लिखता है कि इस समय एक बार बाजीराव ने इस बात की भी इच्छा प्रकट की कि बाजीराव और जसवन्तराव में सुलह हो जाय। मिल यह भी स्पष्ट लिखता है कि जसवन्तराव होलकर तक इस सुलह के लिए तैयार था, वह बाजीराव से मिलना चाहता था और चाहता था कि बाजीराव पेशवा बना रहे और पेशवा के साथ मेरा सम्बन्ध वैसा ही रहे जैसा सींधिया तथा मराठा मण्डल के अन्य सदस्यों का।* ग्राण्ट डफ़ लिखता है कि बाजीराव के पूना से चले जाने के बाद भी जसवन्तराव ने फिर एक बार उसे पूना बुला लेने का प्रयत्न किया।

---

* Mill, book vi, Chapter ii.

बाजीराव का पूना छोड़ना

किन्तु बाजीराव और जसवन्तराव में मेल कम्पनी के लिए हितकर न था। गवरनर-जनरल वेल्सली के पत्रों में साफ़ लिखा है कि वेल्सली को उस समय मुख्य चिन्ता किसी प्रकार बाजीराव को पूना से भगाकर अपने चङ्गुल में करने की थी। असहाय बाजीराव जसवन्तराव से हार खाते ही अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट की सलाह से पूना से भागकर सिंहगढ़, सिंहगढ़ से रायगढ़, रायगढ़ से म्हाड़, और फिर स्वर्णदुर्ग इत्यादि होता हुआ, कम्पनी के एक जहाज़ में बैठकर, जो ख़ास तौर पर इस काम के लिए भेजा गया था, १६ दिसम्बर सन् १८०२ को बसईं पहुँच गया।

२४ दिसम्बर सन् १८०२ को वेल्सली ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक पत्र में लिखा—

"मराठा साम्राज्य के अन्दर हाल में जो झगड़े खड़े हो गए हैं उनसे एक ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई है जो ब्रिटिश सत्ता के स्थायित्व के लिए अत्यन्त महत्व की है।XXX मालूम होता है कि देश के इस भाग में अङ्गरेज़ क़ौम के हितों को ठोस और चिरस्थायी नींवों पर उन्नति देने का इस संयोग से बढ़कर अत्यन्त लाभदायक अवसर पहले कभी न आया था।"

और आगे चलकर—

"ब्रिटिश साम्राज्य के हितों को पूरी तरह पक्का कर लेने का इससे बढ़कर मौक़ा मुझे कोई नज़र न आ सकता था।XXX"* इत्यादि।

* "The recent distractions in the Maratha Empire have

पेशवा अमृतराव

अङ्गरेज़ अब इस सफ़ाई के साथ जसवन्तराव होलकर और पेशवा बाजीराव दोनों को एक साथ खिला रहे थे कि एक ओर वे बाजीराव को अपने साथ भगा कर बसई ले गए, और दूसरी ओर रेज़िडेण्ट क्लोज़ विजयी होलकर के साथ पूना में रहा। राघोबा के दो पुत्र थे, जिनमें बड़ा बाजीराव था। इन दोनों के अतिरिक्त राघोबा ने एक तीसरे बालक अमृतराव को गोद ले रक्खा था। जसवन्तराव होलकर को जब बाजीराव के साथ सुलह करने में सफलता न हो सकी तो मजबूर होकर उसने और उसके सलाहकारों ने बाजीराव के पूना से भाग जाने का अर्थ पदत्याग लिया, और उसकी जगह अमृतराव को पेशवा की मसनद पर बैठा दिया। निस्सन्देह यह सब कार्य रेज़िडेण्ट क्लोज़ की मौजूदगी में और उसकी अनुमति से किया गया।

बसई की सन्धि

दूसरी ओर बसई में अङ्गरेज़ों ने बाजीराव से यह वादा किया

---

occasioned a combination of the utmost importance to the stability of the British power . . . a conjuncture of affairs which appeared to present the utmost advantageous opportunity that has ever occurred, of improving the British interests in that quarter on solid and durable foundations. . . .

"This crisis of affairs appeared to me to afford the most favourable opportunity for the complete establishment of the interests of the British Empire, ..."—Lord Wellesly to the Court of Directors. dated 24th December, 1802.

कि तुम्हें फिर से पूना ले जाकर पेशवा की मसनद पर बैठा दिया जायगा। ३१ दिसम्बर सन् १८०२ को बाजीराव से एक नए सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करा लिए गए। इस सन्धि द्वारा बाजीराव ने सबसीडीयरी सेना का जुआ अपने कन्धे पर रख लिया, सबसीडीयरी सेना को अपने राज्य में रहने की इजाज़त दे दी, उसके ख़र्च के लिए अपना एक इलाक़ा कम्पनी के नाम कर दिया, आयन्दा के लिए वादा किया कि बिना अङ्गरेज़ों की सलाह के पेशवा दरबार किसी दूसरे भारतीय नरेश के साथ किसी तरह का सम्बन्ध क़ायम न करेगा, तथा अन्य अनेक ऐसी शर्तें स्वीकार कर लीं, जिन्हें पूना में रहते हुए वह कदापि स्वीकार न करता। पेशवा बाजीराव अब सर्वथा अङ्गरेज़ों की इच्छा के अधीन होगया। लगभग पचास वर्ष से अङ्गरेज़ नीतिज्ञ मराठा मण्डल को फोड़ने के लिए अनेक जोड़ तोड़ लगा रहे थे। लगातार चार वर्ष से गवरनर-जनरल वेल्सली इन्हीं प्रयत्नों में लगा हुआ था। अब वेल्सली के प्रयत्न सफल हुए। और जिस बात को रोकने का दौलतराव सींधिया अपनी शक्ति भर प्रयत्न कर रहा था वह अन्त में होगई।

जिस प्रकार विवश होकर पेशवा बाजीराव ने बसई की सन्धि पर हस्ताक्षर किए उसके विषय में एक अङ्गरेज़ लेखक लिखता है—

"×××बाजीराव जानता था कि विदेशियों के साथ इस सन्धि को स्वीकार करने का परिणाम यह होगा कि मेरी राजनैतिक स्वाधीनता का सर्वथा अन्त हो जायगा। यह बात सदा उसकी आँखों के सामने रहती थी अथवा उसके आस पास के लोग उसे सुनाते रहते थे कि टीपू का अन्त

…ना हुआ, तथा कम्पनी की सबसीडीयरी सेना को अपने राज्य में रखने के कारण निज़ाम की दशा कितनी अपमानजनक और पराधीन होगई ; इससे हम यह नतीजा निकाल सकते हैं कि बाजीराव ने अपनी इच्छा के विरुद्ध अत्यन्त विवश होकर बसईं की सन्धि को स्वीकार किया ।"*

बसईं की सन्धि से मराठा मण्डल की सत्ता और स्वाधीनता दोनों समाप्त होगईं, और "अङ्गरेज़ों तथा राघोबा के परस्पर सम्बन्ध के कारण" राघोबा के अदूरदर्शी और निर्बल पुत्र के पेशवा की मसनद पर बैठाए जाने से नाना फ़ड़नवीस ने जो आशङ्काएँ वर्षों पहले प्रकट की थीं वे सच्ची साबित हुईं ।

---

* ". . . accepting the terms of a foreign alliance, which he was aware would lead to a total annihilation of his political independence. The fate of Tipu, and the state of humiliating dependence to which the Nizam had been reduced by the acceptance of our subsidiary force were always present to his imagination or sounded in his ears, by those who were near him; and we may conclude that it was not without great reluctance that he consented to the treaty of Bassein."—*Origin of the Pindaries etc.*, by an Officer in the service of the Honourable East India Company 1818.

इक्कीसवाँ अध्याय

बाजीराव का पुनरभिषेक

बसई की सन्धि भारत के अन्दर अङ्गरेज़ी साम्राज्य के संस्थापन में एक विशेष सीमा-चिन्ह थी। इस सन्धि की ख़बर पाते ही सींधिया तथा अन्य स्वाधीन मराठा नरेशों का घबरा उठना स्वाभाविक था। पूना में अब कोई समझदार नीतिज्ञ इस बात के पक्ष में न था कि निर्बल बाजीराव बसई की सन्धि अपने ऊपर लादे हुए पूना वापस आवे और विदेशी सङ्गीनों के बल फिर से पेशवा की मसनद पर बैठे।

किन्तु कम्पनी का जसवन्तराव होलकर तथा अमृतराव दोनों से काम निकल चुका था। मिल लिखता है—

"इस समय ब्रिटिश गवरमेण्ट का ध्यान दो महान उद्देशों की ओर लगा हुआ था। पहला यह कि बाजीराव को फिर से पेशवा बनाया जाय, और उसे सत्ता की उस शिखर तक पहुँचा दिया जाय जो नाम मात्र को उसके किन्तु वास्तव में ब्रिटिश गवरमेण्ट के हाथों में रहे, और जिस पर से अङ्गरेज़ शेष मराठा राज्यों को भी अपने वश में रख सकें। दूसरा

यह कि इस घटना से लाभ उठाकर बाक़ी के अधिक शक्तिशाली मराठा नरेशों पर भी इसी तरह की सन्धियाँ लाद दी जायँ।"*

बहुत सम्भव है कि यदि होलकर ने पूना की विजय के बाद फ़ौरन् बाजीराव का पीछा करके उसे गिरफ़्तार कर लिया होता, अथवा यदि बाजीराव ही बजाय बम्बई की ओर भागने के सींधिया के पास चला गया होता, तो कम से कम कुछ समय के लिए मराठों का साम्राज्य इस देश में और जीवित रह गया होता। किन्तु बाजीराव और होलकर दोनों अङ्गरेज़ों के हाथों में खेल रहे थे।

बाजीराव को पूना वापस लाने में गवरनर-जनरल ने जान बूझ कर कुछ देर की। इसके दो कारण थे। पहला कारण मिल के अनुसार यह था कि बावजूद ३१ दिसम्बर की सन्धि के वेल्सली बराबर इस बात के प्रयत्न कर रहा था कि बाजीराव को दबा कर जहाँ तक हो सके कम्पनी के लिए और अधिक रिआयतें उससे प्राप्त कर ली जायँ और दूसरे वेल्सली समझता था कि बाजीराव को फिर से पेशवा बनाने के बाद ही सींधिया तथा मराठा मण्डल के अन्य सदस्यों के साथ अङ्गरेज़ों को युद्ध करना पड़ेगा और

* "Two grand objects now solicited the attention of the British Government. The first was the restoration of the Peshwa, and his elevation to that height of power, which, nominally his, actually that of the British Government, might suffice to control the rest of the Marhatta states. The next was, to improve this event for imposing a similar treaty upon others of the more powerful Marhatta princes; . . . "—Mill. vol, vi. Chap. 2. p. 278.

बाजीराव को पूना लाने से पहले वह इस युद्ध की पूरी तैयारी कर लेना चाहता था।

इसी बीच ताकि जसवन्तराव के पैर पूना में अधिक मज़बूती से जमने न पावें, जसवन्तराव और पेशवा अमृतराव में कुछ अन-बन पैदा करवा दी गई। इतिहास-लेखक ग्राण्ट डफ़ लिखता है कि यद्यपि शुरू में जसवन्तराव का व्यवहार अत्यन्त विनम्र था तथापि बाद में उसे पूना-निवासियों से धन वसूल करना पड़ा। पूना के नगर-निवासियों की इस लूट के समय भी करनल क्लोज़ जसवन्तराव के साथ मौजूद था।

इस सब के बाद केवल बाजीराव को पूना लाने और उसके साथ साथ कम्पनी की 'सबसीडीयरी' सेना को पूना में क़ायम करने का काम बाक़ी था। करनल क्लोज़ अब चुपके से पूना छोड़कर बाजीराव से जा मिला।

दक्षिण में अब एक विशाल सेना पूना पर चढ़ाई करने और वहाँ की स्थिति ठीक करने के लिए जमा की गई। इस काम के लिए कम्पनी को किसी अपनी पृथक सेना की आवश्यकता न थी। मैसूर तथा हैदराबाद दोनों राज्यों में उन राज्यों के ख़र्च पर कम्पनी की बड़ी बड़ी सबसीडीयरी सेनाएँ मौजूद थीं। इनके अलावा त्रिवानकुर, करनाटक इत्यादि की सेनाएँ भी थीं।

मैसूर इत्यादि की सेनाओं ने करनल वेल्सली के अधीन और निज़ाम की सेनाओं ने करनल स्टीवेन्सन के अधीन जमा होकर पूना की ओर कूच किया। करनल वेल्सली के अधीन ११ हज़ार

और करनल स्टीवेन्सन के अधीन ७ हज़ार सैनिक थे। करनल वेल्सली इन दोनों सेनाओं का प्रधान सेनापति था। इस तमाम सेना का मुख्य कार्य दक्षिण के जागीरदारों और सरदारों को डरा कर अथवा लोभ देकर उन्हें बाजीराव के पक्ष में करना और पहले से पूना पहुँचकर वहाँ इस तरह के सामान पैदा कर देना था, जिनसे बाद में बाजीराव को लाकर आसानी से मसनद पर बैठाया जा सके। यह वही दक्षिण के जागीरदार थे, जिन्हें कुछ ही दिनों पहले अङ्गरेज़ों ने बाजीराव के विरुद्ध भड़का कर उनसे विद्रोह करवाया था। मैसूर की सेनाओं के साथ कम्पनी की वह नई सेना भी थी, जो बसईं की सन्धि के अनुसार पेशवा के राज्य के अन्दर बतौर सबसीडीयरी सेना के रक्खी जाने वाली थी।

शुरू मार्च सन् १८०३ में यह तमाम सेना हरिहर नामक स्थान पर आकर जमा हो गई। मार्क्विस वेल्सली स्वयं पूना के निकट आ पहुँचा। वेल्सली के पत्रों में लिखा है कि यहाँ तक मामला बढ़ जाने के बाद भी वेल्सली इस बात के लिए तैयार था कि यदि पूना में कोई मनुष्य बसईं की सन्धि से अधिक लाभदायक सन्धि कम्पनी के साथ कर लेने को राज़ी हो तो वेल्सली उस समय भी बाजी-राव को फिर अलग कर दे, किन्तु उस समय की परिस्थिति में उसे बाजीराव से बढ़कर उपयोगी यन्त्र मराठा साम्राज्य के अन्दर मिल सकना कठिन था। बाजीराव के एक पुराने सेनापति बापूजी गणेश गोखले ने जो दक्षिणी सरहद पर नियुक्त था, वेल्सली से मिल कर दक्षिणी जागीरदारों को वश में करने में अङ्गरेज़ों को पर्याप्त

सहायता दी। करनल वेल्सली के पत्रों में गोखले और अङ्गरेज़ों की साज़िश का ज़िक्र आता है। उधर बाजीराव अङ्गरेज़ों की एक एक बात मान चुका था और बसई में बैठा हुआ अधीर हो रहा था।

९ मार्च सन् १८०३ को करनल वेल्सली की विशाल सेना ने हरिहर से प्रस्थान किया और १२ मार्च को तुङ्गभद्रा नदी पार की। धूँडिया वाघ का पीछा करने के बहाने करनल वेल्सली ने इस तमाम प्रदेश का जो अनुभव प्राप्त कर लिया था वह इस अवसर पर उसके बहुत काम आया। भयभीत अथवा धनक्रीत जागीरदारों ने उसका किसी तरह का मुक़ाबला नहीं किया।

पूना के अन्दर जसवन्तराव और अमृतराव में झगड़ा हो ही चुका था। जसवन्तराव बराबर अभी तक अङ्गरेज़ों के हाथों में खेल रहा था और अब ठीक इस मौक़े पर असहाय अमृतराव को पूना में छोड़कर स्वयं अपनी सेना सहित इन्दौर की ओर चल दिया। अमृतराव के पास उस समय केवल १५०० सिपाही बाक़ी थे। मार्ग में जसवन्तराव ने न केवल पेशवा के इलाक़े में लूट खसोट की, वरन् कम्पनी के परम मित्र निज़ाम के राज्य में घुसकर निज़ाम के कुछ इलाक़े और ख़ास कर औरङ्गाबाद के नगर को भी ख़ूब लूटा। निज़ाम ने अङ्गरेज़ों से इसकी शिकायत की, किन्तु जनरल वेल्सली के एक पत्र से प्रकट है कि औरङ्गाबाद की लूट में स्वयं वेल्सली का साफ़ इशारा था। करनल वेल्सली की विशाल सेना के पूना पहुँचने से पहले रेज़िडेण्ट क्लोज़ ने यह अफ़वाह उड़ा दी थी कि अमृतराव

पूना के नगर को आग लगा देना चाहता है। उस समय के इतिहास से पूरी तरह साबित है कि यह अफ़वाह बिलकुल झूठी थी और केवल अमृतराव को बदनाम करने के लिए गढ़ी गई थी। २० अप्रैल सन् १८०३ को करनल वेल्सली ने अपनी सेना सहित पूना में प्रवेश किया। अमृतराव नगर छोड़कर भाग गया। कहा गया कि केवल वेल्सली की सेना के ऐन मौक़े पर पहुँच जाने के कारण पूना का नगर जलने से बच गया (!)

२१ अप्रेल को करनल वेल्सली ने अपने भाई गवरनर-जनरल वेल्सली को पूना से पत्र लिखा कि—"आमतौर पर हालात अच्छे दिखाई देते हैं। मैं समझता हूँ, अन्त में जो आप चाहते हैं वही होगा। जिन सरदारों के हमारे विरुद्ध मिल जाने की बाबत हम इतना कुछ सुन चुके हैं××× उन्होंने हमें रोकने के लिए कुछ भी नहीं किया××× मिलकर हम पर हमला करना तो दूर रहा, अभी तक वे अपने आपस के झगड़े भी तय नहीं कर पाए×××।"*

निस्सन्देह वेल्सली इन 'आपस के झगड़ों' को पैदा करा देने में चिर अभ्यस्त था।

* "Matters in general have a good appearance. I think they will end as you wish. The combined chiefs of whom we have heard so much. . . . have taken no one step to impede our march, . . . they have not yet made peace among themselves, much less they have agreed to attack, or in any particular plan of attack."—Colonel Wellesley's letter to the Governor-General, dated 25th April, 1803.

बाजीराव को फिर से मसनद पर बैठाने के लिए अब पूना में तमाम तैयारी हो चुकी थी। २७ अप्रेल सन् १८०३ को गवरनर-जनरल की आज्ञा पाकर करनल मरे के अधीन कम्पनी के लगभग २३०० सैनिक, जिनमें से क़रीब आधे हिन्दोस्तानी और आधे अङ्गरेज़ थे, और करनल क्लोज़ सबको साथ लेकर बाजीराव ने बसई से कूच किया, और १३ मई को पूना में प्रवेश कर उसी दिन अपने विदेशी मित्रों की सहायता से फिर एक बार पेशवा की मसनद पर बैठकर अपने मुख्य मुख्य नौकरों और सरदारों से नज़रें स्वीकार कीं। अङ्गरेज़ कम्पनी ने जो कुछ ख़र्च बाजीराव के लिए किया था उसके एवज़ में पेशवा के राज्य का कुछ और इलाक़ा इस समय कम्पनी को मिल गया और कम्पनी की सबसीडीयरी सेना मराठा साम्राज्य की राजधानी पूना में क़ायम हो गई।

गवरनर-जनरल और उसके साथियों की इच्छा पूरी हुई; किन्तु महाराष्ट्र में अथवा पूना में बहुत कम ऐसे थे जिन्होंने इस तमाम कार्रवाई में वास्तविक उत्साह अनुभव किया हो अथवा उसे मराठा साम्राज्य के लिए अपमानजनक और भविष्य के लिए अशुभ-सूचक न समझा हो।

पेशवा बाजीराव के पुनरभिषेक के सम्बन्ध में इतिहास-लेखक मिल लिखता है—

"×××शायद मानव प्रकृति के साथ इससे अधिक घोरतम पाप दूसरा कोई नहीं हो सकता कि विदेशी सेनाओं के बल और विदेशी शासकों

ख़ुशी अथवा उनके फ़ायदे के लिए किसी क़ौम के ऊपर ज़बरदस्ती ऐसी गवरमेण्ट लाद दी जाय, जिसमें इस तरह के आदमी हों, अथवा जो इस तरह के सिद्धान्तों पर क़ायम हो, जिन्हें वह जाति अपने अनुभव से बुरा समझ कर त्याग चुकी है, अथवा जिन्हें वह इस लिए पसन्द न करती हो क्योंकि उसे उनसे अच्छे मनुष्यों वा सिद्धान्तों का अनुभव मिल चुका है वा उनकी आशा है।"*

२४ दिसम्बर सन् १८०२ को वेल्सली इङ्गलिस्तान के शासकों को लिख चुका था—

"जिस तरह की सैनिक सन्धियाँ मैं मराठा नरेशों के साथ करना चाहता हूँ, वे भारत के अन्दर ब्रिटिश साम्राज्य को पूरी तरह पक्का करने के लिए, और भारत की भावी शान्ति के लिए आवश्यक हैं।"†

---

* ". . . the most flagitious perhaps of all the crimes which can be committed against human nature, the imposing upon a nation, by force of foreign armies, and for the pleasure or interest of foreign rulers, a Government, composed of men, and involving principles, which the people for whom it is destined have either rejected from experience of their *badness*, or repel from their experience or expectation of better."—Mill, vol. vi, Chapter 2, pp. 286, 87.

† "In his address to the home authorities, dated the 24th of December, 1802, he declared his conviction, that 'those defensive engagements which he was desirous of concluding with the Maratha states, were essential to the complete consolidation of the British Empire India, and to the future tranquility of Hindostan.' "—Mill. vol. vi, Chap. 2, pp 286, 87.

इस पर मिल लिखता है—

"किन्तु भारत के अन्दर ब्रिटिश साम्राज्य को पूरी तरह पक्का कर सकना और भावी शान्ति स्थापन कर सकना—दोनों उस समय तक असम्भव थे, जिस समय तक कि मराठों की ताक़त के मुँह में काफ़ी लगाम न दे दी जाय।"*

क्लाइव के समय से लेकर अनेक मिसालें इस बात की मिलती हैं, जब कि कम्पनी ने केवल अपने फ़ायदे के लिए न्याय अन्याय अथवा प्रजा के फ़ायदे नुक़सान वा उनकी इच्छाओं की खाक परवा न करते हुए एक अयोग्य, अनधिकारी अथवा दुराचारी मनुष्य को अपनी चालों अथवा सङ्गीनों के बल किसी रियासत की गद्दी पर बैठाने का प्रयत्न किया।

* "Yet the complete consolidation of the British Empire in India, and the future tranquility of Hindustan, . . . could never exist till a sufficient bridle was put in the mouth of the Maratha power,"—Mill. vol, vi. pp. 286, 287.
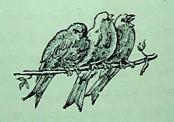
बाईसवाँ अध्याय

दूसरे मराठा युद्ध का प्रारम्भ

मराठों की आशङ्काएँ

पेशवा बाजीराव अब अपनी राजधानी के अन्दर अङ्गरेज़ी सेना के हाथों में उसी प्रकार बन्दी था जिस प्रकार हैदराबाद का निज़ाम वा लखनऊ का नवाब-वज़ीर।*

किन्तु बाजीराव अपनी तथा मराठा साम्राज्य की स्थिति पर बसईं की सन्धि के प्रभाव को थोड़ा बहुत समझता था। इससे पूर्व यदि समय समय पर उसने सबसीडीयरी सन्धि के लिए अपनी रज़ामन्दी प्रकट की थी अथवा यदि बसईं में हाल की सन्धि पर हस्ताक्षर किए थे तो केवल घिर कर तथा विवश हो कर। बसईं पहुँचते ही वह अपनी असहाय स्थिति को अनुभव करने लगा था। पेशवा

* "The present Peshwa . . . is himself so completely under our dominion, that he pays a subsidy to maintain the three thousand troops which surround his capital and keep him a prisoner."—*Journal of a Residence in India*, by Maria Graham, 1813, pp. 84, 85.

के अतिरिक्त मराठा मण्डल के चार मुख्य स्तम्भों में से गायकवाड़ प्रथम मराठा युद्ध के समय से ही मण्डल से फूट चुका था। होल-कर कुल में फूट पड़ी हुई थी। अङ्गरेज़ कभी काशीराव को जसवन्तराव से और कभी जसवन्तराव को काशीराव से लड़ा रहे थे। केवल दो बलवान मराठा नरेश और बाक़ी थे, सींधिया और भोंसले। बाजीराव ने अपनी असहाय स्थिति को अनुभव कर, बसई से बरार के राजा और दौलतराव सींधिया दोनों के पास अपने गुप्त दूत भेजे। उन से यह प्रार्थना की कि आप मुझे फिर से पूना की मसनद पर बैठने में मदद दीजे और साथ ही यह इच्छा प्रकट की कि किसी प्रकार इन दोनों की मदद से दौलतराव सींधिया, जसवन्तराव होलकर और बाजीराव तीनों के आपसी झगड़े तय हो जायँ और इन तीनों के प्रयत्नों से मराठा साम्राज्य में फिर से ऐक्य, बल और जीवन नज़र आने लगे।

मराठा मण्डल के पाँचों मुख्य सदस्यों में आरम्भ से यह परस्पर प्रतिज्ञाएँ हो चुकी थीं कि आपत्ति के समय वे सदा एक दूसरे की मदद करेंगे और बिना पाँचों में सलाह हुए किसी अन्य शक्ति के साथ किसी तरह की सन्धि वा समझौता न करेंगे। विशेषकर दौलतराव सींधिया और पेशवा बाजीराव इन दो में अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध रह चुका था। बाजीराव के लिए यह आवश्यक था कि वह सींधिया और भोंसले दोनों से सलाह किए बिना बसई की सन्धि पर हस्ताक्षर न करता। इसके अतिरिक्त पहले मराठा युद्ध के बाद सालबाई में अङ्गरेज़ों और पेशवा दरबार

बीच जो सन्धि हुई थी वह दौलतराव सींधिया के पूर्वाधिकारी माधोजी सींधिया की ही मध्यस्थता में हुई थी। उस सन्धि के अनुसार आवश्यक था कि बसई में पेशवा के साथ नई और इतनी क्रान्तिकारी सन्धि करने से पूर्व अङ्गरेज़ और पेशवा दोनों दौलतराव से सलाह कर लेते। इतना ही नहीं, वरन् बसई की सन्धि के पक्का होने के लिए उस पर सींधिया और भोंसले दोनों के हस्ताक्षर क़तई ज़रूरी थे। बाजीराव सब समझता था, किन्तु अपनी अदूरदर्शिता के कारण पूना छोड़ने के समय से ही वह सर्वथा दूसरों के वश में था।

उधर दौलतराव सींधिया और बरार का राजा दोनों इस बात को समझते थे कि पेशवा का इस प्रकार विदेशियों के फन्दे में फँस जाना भविष्य में अन्य मराठा नरेशों की स्वाधीनता के लिए शुभ-सूचक नहीं हो सकता और न इसके बाद मराठा साम्राज्य ही अधिक देर तक क़ायम रह सकता है।

गवरनर-जनरल तथा अन्य अङ्गरेज़ों के पत्रों से साबित है कि मराठा नरेशों की ये आशङ्काएँ बिलकुल सच्ची थीं। वेल्सली की कौन्सिल के प्रमुख सदस्य बारलो ने, जिसके विषय में इङ्गलिस्तान के डाइरेक्टर यह आज्ञा दे चुके थे कि यदि वेल्सली की मृत्यु इत्यादि के कारण अकस्मात् गवरनर-जनरल का पद ख़ाली हो तो बारलो को तुरन्त गवरनर-जनरल बना दिया जाय, १२ जुलाई सन् १८०३ को एक लम्बा पत्र लिख कर गवरनर-जनरल के सामने पेश किया, जिसमें ये स्पष्ट वाक्य आते हैं—

"××× हिन्दोस्तान के अन्दर कोई भी देशी राज्य ऐसा बाक़ी नहीं रहने देना चाहिए, जो कि या तो अङ्गरेज़ों की ताक़त के सहारे क़ायम न हो, और या जिसका समस्त राजनैतिक व्यवहार पूरी तरह से अङ्गरेज़ों के हाथों में न हो। वास्तव में मराठा साम्राज्य के प्रधान अर्थात् पेशवा को अङ्गरेज़ी सत्ता के बल फिर से मसनद पर बैठाने के कारण हिन्दोस्तान की शेष समस्त रियासतें भी अङ्गरेज़ सरकार के अधीन हो गई हैं। यदि पेशवा के साथ हमारी सन्धि क़ायम रही तो उसका स्वाभाविक और आवश्यक परिणाम यह होगा कि धीरे धीरे सींधिया ××× और बरार का राजा दोनों पहले पेशवा के आश्रित हो जायँगे, और फिर नई सन्धि के कारण (पेशवा द्वारा) अङ्गरेज़ों की सत्ता के अधीन हो जायँगे। यदि वे लोग बसईं की सन्धि में सहमत हो जाते तब भी नतीजा उनके लिए यही होता ×××।"*

वेल्सली जानता था कि बसईं की सन्धि को पक्का करने के

* ". . . no native state should be left to exist in India, which is not upheld by the British power, or the political conduct of which is not under its absolute control. The restoration of the head of the Maratha Empire to his Government through the influence of the British power, in fact, has placed all the remaining states of India in this dependent relation to the British Government. If the alliance with the Peshwa is maintained, its natural and necessary operations would in the course of time reduce Scindhia . . . and the Raja of Berar, to a state of dependence upon the Peshwa, and consequently upon the British power even if they had acquiesced in the treaty of Bassein."—Sir George Barlow's Memorandum to the Governor General, dated 12th July, 1803.

लिए उस पर सींधिया और भोंसले दोनों की रज़ामन्दी ज़रूरी है। वह यह भी जानता था कि यदि वसई की सन्धि की सब शर्तें मराठा नरेशों को ठीक ठीक मालूम हो गईं तो कम से कम सींधिया की उन पर स्वीकृति मिलना असम्भव है। बसई की सन्धि की कुल १९ धाराएँ थीं, जिनमें विशेषकर तीसरी और सत्रहवीं धाराओं पर सींधिया जैसे समझदार नरेशों को एतराज़ होना ज़रूरी था। तीसरी धारा वह थी जिसके अनुसार पेशवा ने अपने राज्य में कम्पनी की सबसीडीयरी सेना रखना स्वीकार कर लिया था। सत्रहवीं धारा यह थी कि भविष्य में पेशवा बिना कम्पनी सरकार से सलाह किए न किसी दूसरे नरेश के साथ किसी तरह का पत्र-व्यवहार कर सकता है और न किसी से कोई सम्बन्ध रख सकता है। निस्सन्देह इस धारा का स्पष्ट अभिप्राय मराठा मण्डल को तोड़ देना है और सींधिया तथा भोंसले इसके लिए कदापि राज़ी न हो सकते थे। वेल्सली इन सब बातों को अच्छी तरह समझता था। उसने इसके दो उपाय किए। एक उसने सींधिया और भोंसले दोनों को धोखा देकर, बिना उन्हें वसई की सन्धि की नक़ल दिए, उन्हें ज़बानी यह बहका कर कि वसई की सन्धि का प्रभाव पेशवा के साथ सींधिया और भोंसले के सम्बन्ध पर बिलकुल न पड़ेगा, उस सन्धि पर उनकी स्वीकृति प्राप्त कर लेना चाहा; और दूसरे उसने मराठा सत्ता का सर्वनाश करने के लिए तमाम मराठा साम्राज्य की सरहद के बराबर बराबर फ़ौजें जमा करना और युद्ध की तैयारी करना शुरू कर दिया।

निस्सन्देह सींधिया और भोंसले दोनों के ज़रख़ेज़ इलाक़ों पर वेल्सली के बहुत दिनों से दाँत थे और अब वह अपनी इच्छा को पूरा कर लेना चाहता था।

१९ अप्रेल को गवरनर-जनरल वेल्सली ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक पत्र भेजा जिसमें लिखा है—"सींधिया ने बाजीराव के फिर से पेशवा बनाए जाने को स्वीकार कर लिया है, किन्तु बसई की सन्धि के विषय में उसने करनल कॉलिन्स से स्पष्ट कह दिया है कि जब तक सन्धि की तमाम शर्तें और स्वयं बाजीराव के विचार मुझे ठीक ठीक मालूम न होंगे, मैं उस सन्धि के लिए अपनी अनुमति न दूँगा। बरार के राजा राघोजी भोंसले ने भी बसई की सन्धि पर अपनी अनुमति देना स्वीकार नहीं किया।"

इङ्गलिस्तान के शासक भी इस समय भारत में अपना राज्य बढ़ाने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे। इस काम में गवरनर-जनरल वेल्सली की सहायता के लिए जनरल लेक को कम्पनी की सेनाओं का कमाण्डर-इन-चीफ़ नियुक्त करके भारत भेजा गया। दूसरे मराठा युद्ध के साथ जनरल लेक का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि आगे बढ़ने से पूर्व उसके चरित्र पर भी एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक है।

भारत की अङ्गरेज़ी सेनाओं का कमाण्डर-इन-चीफ़ नियुक्त होने से पहले जनरल लेक आयरलैण्ड के अन्दर कमाण्डर-इन-चीफ़ रह चुका था। लेक ही की सहायता द्वारा उस समय के इङ्गलिस्तान के शासकों को आयरलैण्ड की स्वतन्त्रता का नाश करने में सफलता प्राप्त हुई। जिन उपायों द्वारा जनरल लेक ने

आयरलैण्ड को इङ्गलिस्तान के अधीन किया उनमें मुख्य उपाय, लॉर्ड कॉर्नवालिस के बयान के अनुसार, उसी के शब्दों में, ये थे—"आयरलैण्ड निवासियों को धन का लोभ देना, उनके घरों को जला देना, नगर निवासियों का क़त्ल-ए-आम, लोगों को कोड़े लगा लगा कर उनसे ज़बरदस्ती जो चाहे स्वीकार करा लेना, समस्त देश भर में आयरिश स्त्रियों के साथ बलात्कार और लूट खसोट××× ।"* जनरल लेक के इन्हीं कृत्यों के आधार पर लन्दन की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'रिव्यू ऑफ़ रिव्यूज़' के सुयोग्य सम्पादक डब्ल्यू० टी० स्टेड ने जनरल लेक को "ज़ालिम और बदमाश"* लिखा है ।

जनरल लेक के इन करतूतों से इङ्गलिस्तान के शासक इतने प्रसन्न हुए कि इसके बाद उसे भारत में कमाण्डर-इन-चीफ़ नियुक्त कर के भेजा गया ।

७ जनवरी सन् १८०३ को मार्किस वेलसली ने बैरेकपुर से जनरल लेक के नाम, जो उस समय उत्तरीय भारत में था, एक

---

* " . . . bribe it (The Irish Parliament) with gold"—W. O' Brien, 'Contemporary Review' for January 1898. " . . . the burning of houses and murder of the inhabitants . . . the flogging for the purpose of extorting confession ; . . . universal rape and robbery thoughout the whole country."—Lord Cornwallis' letter as Lord Lieutenant of Ireland. " General Lake, a truculent ruffian . . . "—W. T. Stead in his 'Review of Reviews' July 1898.

'अत्यन्त गुप्त और गूढ़' (Most secret and confidential) पत्र लिखा। इस पत्र में वेल्सली ने लिखा—

"कुछ दिनों से मैं मराठा साम्राज्य की मनोरञ्जक अवस्था पर आपको पत्र लिखने की इच्छा कर रहा हूँ और यह भी लिखना चाहता हूँ कि मराठों के इस अपूर्व सङ्कट से जितना भी लाभ उठाया जा सकता है, उतना उठाने के लिए मैं किस नीति का पालन कर रहा हूँ।

"निस्सन्देह जिस शक्ति का हमें सब से अधिक डर हो सकता है और जिसे रोक कर रखना हमारे लिए सब से अधिक आवश्यक है, वह सींधिया है। अन्य किसी ओर से गहरे अथवा ख़तरनाक मुक़ाबले का हमें डर नहीं है, × × × हमारे लिए सबसे अधिक अमोघ उपाय सींधिया को वश में करने का निस्सन्देह यह होगा कि हम अवध के उस प्रान्त से, जो हमें हाल में मिला है, सींधिया के हिन्दोस्तान के इलाक़े पर एकाएक टूट पड़ें; ऐसी सूरत में हमें मुख्य और सब से अधिक महत्वपूर्ण प्रयत्न उस स्थान से करना चाहिए, जहाँ पर कि इस समय आप हैं।

"× × × यदि कोई गहरी लड़ाई हुई तो × × × हमारी सबसे अधिक महत्व की काररवाई सींधिया राज्य के विरुद्ध होगी ताकि हिन्दोस्तान में सींधिया की शक्ति को नाश कर दिया जाय; दक्षिण में हमारे साथ किसी महान् संग्राम की सम्भावना नहीं है।

"× × × मेरी योजना यह है कि × × × मराठा साम्राज्य की सरहद के हर हिस्से पर सेनाएँ जमा करके इस तरह के प्रबन्ध किए जायँ कि जिनसे मराठा साम्राज्य के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य हमारे इस बल को देख कर ही डर जाय।"*

---

* "I have been desirous for some time past to communicate

महाराजा दौलतराव सींधिया

[श्रीयुत वासुदेवराव सूबेदार, सागर, की कृपा द्वारा]

सब से अधिक भय अङ्गरेज़ों को वास्तव में दौलतराव सींधिया से था। दौलतराव सींधिया को कुचलने का वेल्सली वर्षों पहले से अवसर ढूँढ़ रहा था। ८ मार्च सन् १७९९ को वह कमाण्डर-इन-चीफ़ को साफ़ लिख चुका था—

"मैं इस नीति को बिलकुल ठीक समझता हूँ कि ज्योंही हमें अपने

---

to you the interesting state of affairs in the Maratha Empire, and the course of policy which I have adopted, with a view to derive every attainable advantage from this singular crisis.

"The power, whose views might be most apprehended, and whom it is most important to hold in check, is certainly Scindhia. No serious or alarming opposition is to be feared from any other quarter, . . . our most effectual mode of controlling Scindhia must be an irruption into his dominions in Hindostan, from the ceded provinces of Oudh, and in that case, the main and most critical effort must be made from the quarter where you are now present.

". . . if any serious contest should arise, . . . the most important operations will be directed against Scindhia's possessions to the destruction of his power in Hindostan; and that no probability exists of any important contest in the Deccan.

". . . And my plan is, therefore, rather to form such arrangements as may present the most powerful and menacing aspect to every branch of the Maratha Empire, on every point on their frontier. . . ."—Marquess Wellesly's 'Most secret and confidential' letter to General Lake, dated Barrackpur, January 7th 1803.

फ़ायदे का कोई मौक़ा दिखाई दे, तुरन्त सींधिया की ताक़त को नष्ट कर दिया जाय।"*

उस समय से ही वेल्सली ने करनल कॉलिन्स द्वारा महाराजा सींधिया के आदमियों को अपनी ओर फोड़ना और सींधिया के विरुद्ध उसके राज्य में जगह जगह साज़िशें करना शुरू कर दिया था।

मराठों के उपाय

समस्त मराठा नरेश कम वा अधिक इस आने वाली आपत्ति को देख रहे थे और यथाशक्ति उसके निवारण के उपाय कर रहे थे।

बाजीराव पूना पहुँचने के बाद अपनी शोचनीय पराधीनता को और अधिक ज़ोरों से अनुभव करने लगा। पूना पहुँचते ही उसने फिर सींधिया और भोंसले दोनों के पास अपने विशेष दूत और पत्र भेजे और उन्हें सलाह के लिए शीघ्र पूना बुलाया। अमृतराव पूना छोड़ चुका था। बाजीराव ही उस समय मराठा साम्राज्य का न्याय्य अधिपति था। बाजीराव की आज्ञानुसार सींधिया और भोंसले के पूना आने पर किसी को एतराज़ न हो सकता था। अङ्गरेज़ों को सूचना दे दी गई थी कि दौलतराव और भोंसले को पूना बुलाया गया है। सब जानते थे कि बसई की

---

* "I am equally satisfied of the policy of reducing the power of Scindhia, whenever the opportunity shall appear advantageous."—Governor-General's letter to Sir Alured Clarke, dated 8th March, 1799.

सन्धि पर जब तक सींधिया और भोंसले के हस्ताक्षर न होंगे तब तक वह पक्की नहीं समझी जा सकती। इसी लिए बाजीराव ने उनके आने तक के लिए सन्धि की कारवाई को स्थगित कर रक्खा था।

किन्तु अङ्गरेज़ सींधिया और बाजीराव के मिलने से डरते थे।

१३ मई सन् १८०३ को बाजीराव पूना पहुँचा। ४ जून को गवरनर-जनरल वेल्सली के भाई मेजर-जनरल वेल्सली ने मद्रास के सेनापति जनरल स्टुअर्ट को पूना से लिखा—

"इस देश में हमारी स्थिति ज़रा नाज़ुक है। अभी तक पेशवा ने अपने उन सरदारों के लिए कुछ नहीं किया जो यहाँ मेरे साथ आए थे, और उनमें से कोई पूना से नहीं गया। सन्धि की यह एक शर्त थी कि बाजीराव अपनी सेना मेरे सुपुर्द कर देगा। बाजीराव ने मुझसे वादा भी किया था; किन्तु इस वादे और सन्धि दोनों के विरुद्ध उसने अभी तक अपनी सेना मेरे हवाले नहीं की। × × × मुझे डर है कि सन्धि की शर्तों पर हमारी उसकी मित्रता न चल सकेगी। × × ×"

१९ जून को जनरल वेल्सली ने जनरल स्टुअर्ट को एक दूसरे पत्र में लिखा—

"पेशवा के नौकर वादे करने में बड़े तेज़ हैं, किन्तु पूरा करने में बड़े सुस्त; और यद्यपि अपने देश की चीज़ें हमें ला लाकर देने में देशवासियों का ही साफ़ फ़ायदा है, तथापि यहाँ की चीज़ों से हम इतना कम लाभ उठा पाए हैं कि मुझे क़रीब क़रीब सन्देह होने लगता है कि यह सरकार सन्धि से पीछे हटना चाहती है। × × ×"

दौलतराव सींधिया वीर और समझदार था। वह इस समस्त

स्थिति और उसकी गम्भीरता को देख रहा था। सब से पहले उसे मराठा मण्डल में फिर से ऐक्य पैदा करने की आवश्यकता नज़र आई। इसलिए पूना जाने से पहले वह बाजीराव की इच्छा के अनुसार जसवन्तराव होलकर और बरार के राघोजी भोंसले दोनों के साथ मिल कर सलाह कर लेना चाहता था। उस समय के पत्रों से साबित है कि स्वयं जसवन्तराव भी काशीराव होलकर, बाजीराव पेशवा और दौलतराव सींधिया तीनों के साथ फिर से मेल कर लेने के लिए उत्सुक था। बरहानपुर से पचास कोस पश्चिम में बदौली नामक स्थान पर दौलतराव सींधिया, जसवन्तराव होलकर और राघोजी भोंसले तीनों नरेशों का मिलना निश्चित होगया। दौलतराव ने अपनी राजधानी से चलकर नर्बदा को पारकर बरहानपुर की ओर प्रस्थान किया और बहुत दिनों तक बरहानपुर में ठहर कर ४ मई सन् १८०३ को बरहानपुर से बदौली के लिए कूच किया। सींधिया का अन्तिम लक्ष्य इस समय पूना था और उसके समस्त पत्रों से साबित है कि बसई की सन्धि के विषय में वह केवल यह साफ़ साफ़ तय कर लेना चाहता था कि उस सन्धि का प्रभाव मराठा मण्डल की संहति अर्थात् पेशवा तथा अन्य मराठा नरेशों के परस्पर सम्बन्ध पर बिलकुल न पड़ेगा। अङ्गरेज़ भी उसे ज़बानी यही विश्वास दिला रहे थे और यही बात वह पूना पहुँच कर सब की मौजूदगी में पक्की कर लेना चाहता था।

अङ्गरेज़ों के अनेक पत्रों से मालूम होता है कि सींधिया

का उद्देश कदापि अङ्गरेज़ों के साथ युद्ध छेड़ने वा किसी पर हमला करने का न था।

१९ अप्रेल सन् १८०३ को मार्किस वेलसली ने इङ्गलिस्तान के डाइरेक्टरों को लिखा—

"मैं समझता हूँ कि × × × सींधिया का अधिक से अधिक उद्देश यह हो सकता है कि × × × आत्मरक्षा के लिए सींधिया, होलकर और बरार के राजा को आपस में मिला लिया जाय, किन्तु अङ्गरेज़ी सत्ता के साथ युद्ध छेड़ने का हरगिज़ उसका कोई इरादा नहीं हो सकता। × × ×"

१५ मई सन् १८०३ को करनल क्लोज़ ने पूना से डाइरेक्टरों को लिखा—

"निस्सन्देह यह असम्भव है कि सींधिया (अङ्गरेज़ों के साथ) युद्ध छेड़ने के इरादे से इस सङ्घ में शामिल हो रहा हो।"

यही बात उस समय के और अनेक पत्रों से भी साबित है, किन्तु जिन लोगों ने वर्षों के प्रयत्नों के बाद इतनी मेहनत से मराठा साम्राज्य के अन्दर फूट डाल कर उसके सदस्यों को एक दूसरे से फोड़ पाया था और जिनका एक मात्र लक्ष्य इस समय समस्त मराठा साम्राज्य को धीरे धीरे अङ्गरेज़ी साम्राज्य में मिला लेना था, वे दौलतराव सींधिया के इन मेल के प्रयत्नों को कब गवारा कर सकते थे? इसलिए अङ्गरेज़ों ने अब सब से पहले सींधिया को पूना आने से रोकने की हर तरह कोशिश की।

सींधिया को पूना जाने से रोकना

करनल कॉलिन्स ने सींधिया पर खुले ज़ोर देना शुरू किया

कि आप पूना न जाइए और उधर करनल क्लोज़ और जनरल वेल्सली ने बाजीराव पर दबाव डालना शुरू किया कि आप दौलतराव को लिख दीजे कि तुम पूना न आओ। १० मई सन् १८०३ को जनरल वेल्सली ने जनरल स्टुअर्ट को लिखा—

"करनल कॉलिन्स का इरादा है कि पेशवा पर इस बात के लिए ज़ोर दिया जाय कि पेशवा सींधिया को लिख भेजे कि तुम पूना न आओ; और मैं सोचता हूँ, मुझे भी कॉलिन्स को इस आशय का एक पत्र लिख देना चाहिए कि पेशवा की इच्छा है कि सींधिया पूना न आये और उचित यह है कि पेशवा की इस इच्छा के अनुसार कार्य हो।"*

१० मई तक बाजीराव पूना पहुँचा भी न था। और पूना पहुँचने के बाद भी उसने दौलतराव को पूना बुलाने के लिए कई बार पत्र लिखे, किन्तु अपने मतलब के लिए साफ़ झूठ बोलना जनरल वेल्सली तथा उस समय के अन्य अङ्गरेज़ों के लिए एक साधारण बात थी। दूसरी ओर नए युद्ध के लिए अङ्गरेज़ों की तैयारी जारी थी। करनल कॉलिन्स सींधिया दरबार में अपनी साज़िशों का जाल इतनी अच्छी तरह फैला चुका था कि अब वह युद्ध के छिड़ने के लिए अधीर हो रहा था। किन्तु मार्किस वेल्सली और जनरल वेल्सली अभी तक अपनी तैयारी पूरी न कर पाए थे।

---

* "Colonel Collins intends to press the Peshwa to desire Scindhia not to advance to Poona; and I think that, I ought to write him a letter to say that such is the Peshwa's wish, and that it is proper it should be complied with,"—Major General Wellesely's letter to Lt.-General Stuart, dated 10th May, 1803.

नरल वेल्सली को यह भी अनुभव हो चुका था कि मराठों के
थ लड़ाई छेड़ने का सब से अच्छा समय बरसात है। इसलिए
सने कॉलिन्स को लिखा कि अभी आप बरसात शुरू होने तक
धिया के साथ बने रहिए और सींधिया को धोखे में रखने के
ए बराबर उस से मित्रता का दम भरते रहिए।

जैसे जैसे अङ्गरेज़ों की तैयारी बढ़ती गई वैसे वैसे ही उनका
ख भी बदलता चला गया। ३० मई सन् १८०३ को गवरनर-
नरल वेल्सली ने महाराजा सींधिया को लिखा—'आप शान्ति
ायम रखने के लिए तुरन्त आगे बढ़ने का इरादा छोड़कर नर्बदा
ार कर अपनी राजधानी को लौट जाइए', बरार के राजा राघोजी
ोंसले को लिखा कि—'आप लौट कर नागपुर चले आइए' और
सी दिन पूना के रेज़िडेण्ट करनल क्लोज़ को लिखा कि यदि
ींधिया नर्बदा पार कर उत्तर की ओर चला जाय तो भी कम्पनी
ी सेना बराबर दक्षिण के मैदान में तैयार रहे और यदि जसवन्त-
ाव होलकर अपनी सेना सहित पूना आना चाहे तो उसे भी रोक
िया जाय। साथ ही वेल्सली ने भोंसला के कटक प्रान्त की सरहद
र मेदिनीपुर की छावनी में कम्पनी की सेना बढ़ाए जाने की
आज्ञा दे दी।

इस सब का मतलब यह है कि जब कि अङ्गरेज़ "शान्ति और
मित्रता" के नाम पर होलकर, सींधिया और भोंसले इन तीनों
के मिलने अथवा पेशवा की आज्ञा पर इन में से किसी के पूना
जाने तक को रोक रहे थे, वे स्वयं इन मराठा नरेशों का नाश करने

के लिए कम्पनी की सन्नद्ध सेनाएँ जगह जगह तमाम सरहद पर जमा कर रहे थे और मार्क्विस वेल्सली के शब्दों में केवल अपनी तैयारी के पूरा होने तथा मौसम के इन्तज़ार में थे।

चार दिन बाद ३ जून सन् १८०३ को वेल्सली ने कलकत्ते से कॉलिन्स को यह स्पष्ट आज्ञा दी—

"सींधिया को यह बता देना मुनासिब है कि सिवाय उस हालत के जब कि पेशवा ने साफ़ शब्दों में इजाज़त दे दी हो और ब्रिटिश सरकार ने उसे मन्ज़ूर कर लिया हो यदि दूसरी किसी हालत में किसी भी बहाने से सींधिया पूना जायगा तो अवश्यमेव उसे ब्रिटिश सत्ता के साथ लड़ना पड़ जायगा।"

बरार का राजा भी पेशवा के निमन्त्रण पर पूना जा रहा था। इसलिए जिस तरह का पत्र सींधिया को लिखा गया उसी तरह का पत्र वेल्सली ने बरार के राजा को लिखा, और उसे भी यह साफ़ धमकी दी कि यदि आप पूना की ओर रुख़ करेंगे तो आपके राज्य पर हमला किया जाना सम्भव है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि अङ्गरेज़ स्वयं सींधिया, भोंसले और पेशवा तीनों को अभी तक अपना 'मित्र' कहते थे और इन तीनों में से किसी की ओर से कोई कारवाई अभी तक इस 'मित्रता' के विरुद्ध न हुई थी। उन्हें पूना आने से रोकने का कोई बहाना भी होना चाहिए था। इसलिए सींधिया पर अब एक नया और अनोखा इलज़ाम यह लगाया गया कि तुम पेशवा और निज़ाम के राज्यों पर हमला करने और उन्हें लूटने का विचार कर रहे हो। २८ मई, सन् १८०३

करनल कॉलिन्स ने महाराजा सींधिया से मुलाक़ात की। तीन घंटे बातचीत होती रही, जिसका हाल कॉलिन्स ने २९ मई सन् १८०३ को एक लम्बे पत्र में गवरनर-जनरल को लिख कर भेजा।

इस पत्र में लिखा है कि—महाराजा सींधिया ने कॉलिन्स के प्रश्न के उत्तर में उसे विश्वास दिलाया कि महाराजा का क़तई कोई इरादा पेशवा वा निज़ाम किसी के राज्य पर हमला करने आदि का नहीं है। कॉलिन्स ने इस पर सन्तोष प्रकट किया और फिर पूछा कि महाराजा सींधिया, बरार के राजा और होलकर के बीच जो पत्र-व्यवहार हो रहा है उसका उद्देश किसी तरह से बसईं की सन्धि की काररवाई में कोई बाधा डालना तो नहीं है? महाराजा सींधिया ने इस पर कॉलिन्स को स्पष्ट उत्तर दिया कि बिना बरार के राजा से बातचीत हुए इस विषय में कोई बात नहीं कही जा सकती। कॉलिन्स ने फिर बार बार ज़ोर देकर और डर दिखा कर इस सम्बन्ध में महाराजा सींधिया की अन्तिम राय जानना चाहा। महाराजा सींधिया ने फिर उत्तर दिया कि राजा राघोजी से बिना बातचीत किए मेरा कुछ कहना उनके साथ विश्वासघात करना होगा, राजा राघोजी इस समय इस स्थान से केवल पचास कोस की दूरी पर हैं और दो चार दिन के अन्दर ही मेरी और उनकी मुलाक़ात होने वाली है और उस मुलाक़ात के बाद फ़ौरन् ही तुम्हें (करनल कॉलिन्स को) बता दिया जायगा कि इन सब बातों का "निबटारा शान्ति से हो सकेगा अथवा युद्ध से।"

इसी पत्र में कालिन्स ने गवरनर-जनरल से फिर तक़ाज़ा किया

कि जितनी जल्दी हो सके बाजीराव पर ज़ोर देकर उसकी ओर से सींधिया के नाम यह पत्र लिखवा दिया जाय कि आप पूना न आइए।

निस्सन्देह कॉलिन्स सच और झूठ की अधिक परवा करने वाला आदमी न था। तथापि यदि इस पत्र की सब बातें सच हैं तब भी पत्र से ज़ाहिर है कि कॉलिन्स का व्यवहार महाराजा सींधिया के साथ धृष्टतापूर्ण था और महाराजा के सब जवाब उचित और न्यायानुकूल थे।

तारीफ़ यह है कि अभी तक भी बसई की सन्धि की नक़ल अङ्गरेज़ों ने न महाराजा सींधिया के पास भेजी थी और न राजा राघोजी भोंसले के पास।

इसके कुछ दिनों बाद ही राजा राघोजी भोंसले का खेमा महाराजा सींधिया के निकट आ पहुँचा। दोनों नरेशों में बातचीत हुई। दोनों को कॉलिन्स ने समझाया कि पेशवा ही आप लोगों के पूना जाने के विरुद्ध है। दोनों को कॉलिन्स ने विश्वास दिलाया कि बसई की सन्धि का प्रभाव पेशवा तथा अन्य मराठा नरेशों के परस्पर सम्बन्ध पर बिलकुल न पड़ेगा। दोनों से कॉलिन्स ने "शान्ति और मित्रता" के नाम पर पूना जाना स्थगित करके अपनी अपनी राजधानी लौट जाने की प्रार्थना की। दोनों को उसने कम्पनी की 'मित्रता' का विश्वास दिलाया, और साथ ही यह भी धमकी दी कि यदि आप लोग पूना जाने पर ज़िद करेंगे तो कम्पनी की सेनाएँ तमाम मराठा साम्राज्य की सरहद पर पड़ी हुई हैं। अन्त में दोनों

मराठा नरेश अदूरदर्शिता के कारण अथवा कायरता के कारण अथवा सम्भव है युद्ध से यथाशक्ति बचने की इच्छा से फिर एक बार अङ्गरेज़ों की चालों में आगए। दोनों ने कॉलिन्स की बातों पर विश्वास करके अपना पूना जाना स्थगित कर दिया; और यह तय किया कि बसई की सन्धि के विषय में जो विश्वास हमें अङ्गरेज़ों ने दिलाया है वही बाजीराव से पक्का कर लेने के लिए हमारे दोनों के विश्वस्त दूत तुरन्त पूना भेजे जायँ, और बाजीराव से इस विषय में सन्तोषप्रद उत्तर मिलने के बाद हम लोग अपनी अपनी राजधानी लौट जायँ।

अङ्गरेज़ों को इस पर कोई एतराज़ न हो सकता था और न उनके पास अब कोई किसी तरह का बहाना युद्ध का बाक़ी रह गया था। तथापि अङ्गरेज़ों की ओर से युद्ध की तैयारियाँ बराबर बढ़ती चली गईं।

युद्ध का निश्चय

२६ जून को गवरनर-जनरल वेल्सली ने अपने भाई जनरल वेल्सली को एक 'गुप्त' पत्र द्वारा इस बात का सम्पूर्ण अधिकार दे दिया कि—'आप बिना मुझसे पूछे जब चाहें महाराजा सींधिया अथवा बरार के राजा के साथ युद्ध शुरू कर दें और निज़ाम, पेशवा अथवा अन्य मराठा नरेशों के राज्यों में जब जो राजनैतिक अथवा सैनिक काररवाई करना चाहें, कर डालें।'*

* ". . . full powers to conclude upon the spot whatever

२७ जून को गवरनर-जनरल ने अपने भाई के नाम एक दूसरा 'अत्यन्त गुप्त' पत्र लिखा जिसके नीचे लिखे वाक्य उद्धृत करने के योग्य हैं,—

"इस पत्र के पाते ही आप करनल कॉलिन्स को लिख दीजे कि सींधिया और बरार के राजा दोनों से उनके साफ़ साफ़ विचार दरियाफ़्त किए जायँ और उन्हें उत्तर के लिए इतनी मियाद दी जाय जितनी कि आपको मौसम × × × और अपनी संग्राम सम्बन्धी सुविधाओं का पूरा विचार करते हुए ठीक मालूम हो।

*　　　*　　　*

"ऐसी स्थिति में अथवा दूसरी किसी भी स्थिति में जब आपको युद्ध करने की आवश्यकता अनुभव हो तब × × × मैं आपको आदेश देता हूँ कि आप सींधिया और बरार के राजा इन दोनों की × × × सैनिक शक्ति का सर्वनाश कर डालने में अपनी पूरी ताक़त लगा दें। × × × विशेष आवश्यक यह है कि आप सींधिया के तोपख़ाने का और साथ ही उसके

---

arrangements may become necessary either for the final settlement of peace, or for the active prosecution of war, . . .

". . . . to vest these important and arduous powers in your hands. . . .

"I further empower and direct you to assume and exercise the general direction and control of all the political and military affairs of the British Government in the territories of the Nizam, of the Peshwa, and o the Maratha States and Chiefs."—Governor-General's 'secret' despatch to Major-General Wellesley, dated 26th June, 1803.

तमाम यूरोपियन अस्त्र शस्त्रों और तमाम फ़ौजी सामान का नाश कर ×××बहुत ही अच्छा हो, यदि सींधिया अथवा राघोजी भोंसले को किसी तरह गिरिफ़्तार कर लिया जाय×××युद्ध छिड़ते ही आप सींधिया, होलकर और×××प्रत्येक अन्य मराठा नरेश की नौकरी से तमाम यूरोपियन अफ़सरों को अपनी ओर बुला लेने के लिए जो उपाय उचित समझें, कीजेगा।

"आपको आज़ादी दी जाती है कि इस कार्य के लिए आप जो ख़र्च ज़रूरी समझें करें और जैसे दूत अधिक उपयोगी समझें भेजें×××मैं सोच रहा हूँ कि गोहद के राना के पास और राजपूत राजाओं के पास मैं स्वयं यथोचित दूत भेजूँ। आप भी इन रियासतों को सींधिया के विरुद्ध भड़काने की हर तरह से कोशिश कीजे।×××यह भी सोचिएगा कि काशीराव होलकर को जसवन्तराव होलकर के विरुद्ध भड़काने के लिए क्या क्या किया जा सकता है।×××"

किन्तु इस समस्त राजनैतिक बलात्कार के लिए इङ्गलिस्तान के थोड़े से उदार लोगों अथवा भावी इतिहास-लेखकों के सामने कुछ बहाना रख देना भी आवश्यक था। इसलिए इस पत्र में पहली बार मार्क्विस वेल्सली ने अपने पुराने बहाने, भारत पर 'फ़्रान्स के इरादों' का ज़िक्र किया और पत्र के अन्त में लिखा—

"सींधिया का शीघ्र नाश कर देना×××फ़्रान्स के इरादों के लिए सर्वथा घातक सिद्ध होगा।"*

---

* "On the receipt of this despatch you will desire Colonel Collins to demand an explicit declaration of the views of Scindhia and of the Raja of Berar, within such a number of

अङ्गरेज़ों का वास्तविक उद्देश

इसके बाद सींधिया को नाश करने के इस नए बहाने को रूप मिलता चला गया । धीरे धीरे यहाँ तक कहा जाने लगा कि

---

days as shall appear to you to be reasonable, consistently with a due attention to the period of the season, and to the facility of moving your army, and of prosecuting hostilities with the advantages which you now possess.

* * *

"In this event, or in other state of circumstances which may appear to you to require hostilities, . . . I direct you to use your utmost efforts to destroy the military power of either or of both chiefs (Scindhia and Raja of Berar) . . . It is particularly desirable that you should destory Scindhia's artillery, and all arms of European construction, and all military stores which he may possess . . . the actual seizure of the person of Scindhia, or of Raghoji Bhonsla, would be highly desirable, . . . In the event of hostilities, you will take proper measures for withdrawing the European officers from the service of Scindhia, Holkar, and of every other chief opposed to you.

"You are at liberty to incur any expense requisite for this service, and to employ such emissaries as may appear most serviceable . . . I propose to dispatch proper emissaries to Gohud, and to the Rajput chiefs. You will also employ every endeavour to excite those powers against Scindhia . . . You will consider what steps may be taken to excite Kashi Rao Holkar against Jaswant Rao, . . . the early reduction of Scindhia . . . is certain, and would prove a fatal blow to the views of France." —Governor-General's letter marked 'Most secret' dated 27th June 1803, to his brother Major-General Wellesley.

सींधिया के राज्य में जमना के तट पर फ़्रान्सीसियों की एक बाज़ाब्ता बस्ती है जिसमें कप्तान पैरौं के अधीन चौदह हज़ार सशस्त्र फ़्रान्सीसी सेना रहती है। पूर्वोक्त पत्र के एक महीना बाद गवरनर-जनरल ने जनरल लेक को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ख़त लिखा जिसका और अधिक ज़िक्र किसी दूसरे स्थान पर किया जायगा। इस पत्र में मार्क्विस वेलसली ने लिखा—

"इन सब बातों पर फिर से नज़र डालते हुए आपको मालूम होगा कि हिन्दोस्तान की उत्तर-पश्चिमी सरहद पर सींधिया और बरार के राजा के साथ युद्ध करने के सब से अधिक लाभदायक फल मेरी राय में ये होंगे—

"(१) जमना के किनारे जो फ़्रान्सीसियों की बस्ती है उसका और उसके तमाम फ़ौजी सामान का नाश हो जायगा।

"(२) जमना तक कम्पनी का इलाक़ा बढ़ा लिया जायगा और उसके साथ जमना के पश्चिमी और दक्खिणी तटों पर आगरा, देहली तथा अन्य छावनियों के एक काफ़ी लम्बे सिलसिले पर क़ब्ज़ा कर लिया जायगा।

"(३) मुग़ल सम्राट की नाम मात्र की सत्ता को अपने हाथों में ले लिया जायगा।

"(४) जमना के दक्खिण और पश्चिम में जयनगर से लेकर बुन्देलखण्ड तक तमाम छोटी छोटी रियासतों के साथ एक समान ढङ्ग की उपयोगी सन्धियाँ कर ली जायँगी। और

"(५) बुन्देलखण्ड को कम्पनी के राज्य में मिला लिया जायगा।"*

* "Reviewing those statements your excellency will observe that the most prosperous issue of a war against Scindhia and the

इस "जमना किनारे की फ़्रान्सीसी बस्ती" के विषय में सब से पहली बात यह ध्यान देने योग्य है कि इस समय तक अङ्गरेज़ों का जो कुछ पत्र-व्यवहार या जो कुछ बातचीत सींधिया के साथ हो रही थी उसमें इस "फ़्रान्सीसी बस्ती" वा "फ़्रान्सीसी ख़तरे" का कहीं नाम तक नहीं लिया गया। इसके अतिरिक्त इस "फ़्रान्सीसी बस्ती" की असत्यता के विषय में सर फ़िलिप फ्रैन्सिस ने इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने कहा था—

"× × × मुझे मालूम है कि मराठों के ख़िलाफ़ एक बड़ी दलील यह दी जाती है कि वे हमारे प्रभुत्व को नुक़सान पहुँचाने के स्पष्ट विचार से अपने यहाँ फ़्रान्सीसी अफ़सर रखते हैं। यहाँ तक कहा जाता है कि कप्तान पैरौं के अधीन चौदह हज़ार फ़्रान्सीसी सेना मौजूद है। इस सेना के

Raja of Berar on the North-Western frontier of Hindostan would in my judgment comprize.

"1st. The destruction of the French State now formed on the banks of the Jumna together with all its military resources;

"2nd. The extension of the Company's frontier to the Jumna, with the possession of Agra, Delhi and a sufficient chain of posts on the Western and Southern banks of the Jumna;

"3rd. The possession of the nominal authority of the Moghul;

"4th. The establishment of an efficient system of alliance with all the petty states to the Southward and the Westward of the Jumna from Jayanagar to Bundel Khund;

"5th. The annexation of Bundel Khund to the Company's dominions."—Governor-General's letter to General Lake dated 27th July, 1803.

अस्तित्व का हमारे सामने अणुमात्र भी सुबूत नहीं है। ××× वास्तव में अत्यन्त बारीकी के साथ खोज करने के बाद पता लगा है कि तमाम मराठा सेना में बारह से ज़्यादा फ्रान्सीसी अफ़सर नहीं हैं। ××× सींधिया की ज़रा भी यह इच्छा नहीं है कि अपने राज्य के अन्दर किसी फ्रान्सीसी सेना को आने तक दे। सब जानते हैं कि अपने राज्य के किसी भाग में भी सींधिया किसी विदेशी सेना को रहने देने के विचार तक से घृणा करता है ××× ।"*

इसी बीच इङ्गलिस्तान के भारत मन्त्री लॉर्ड कासल री के दो पत्र मार्किस वेल्सली के पास आए, जिनमें साफ़ लिखा है कि अङ्गरेज़ों को उस समय भारत में फ्रान्स से क़तई किसी तरह का भी भय न था और न आइन्दा किसी फ्रान्सीसी हमले की सम्भावना थी। इतिहास-लेखक जेम्स मिल ने भी अपने इतिहास

* "He was aware that the great argument against the Marathas was their harbouring French officers among them, with views evidently hostile to our superiority. It was even asserted that there was an army of 14,000 French troops, under Captain Perron. Of the existence of such a body of troops there was not a single tittle of evidence before the house . . . Indeed, after the minutest investigation, he found that there were not in the whole Maratha army more than twelve French officers; . . . as to any wish of Scindhia to admit French troops into his dominions, he denied its existence. It was notorious that Scindhia abhorred the idea of foreign troops in any part of his states . . ."—Sir Philip Francis on the Maratha War, before the House of Commons, on the 14th March, 1804.

में इस 'फ़्रान्सीसी ख़तरे' के झूठ और बनावटीपन को बड़ी योग्यता और विस्तार के साथ दर्शाया है। ठीक इसी बहाने का मार्किस वेलसली ने टीपू सुलतान को कुचलने के लिए उपयोग किया था। वास्तव में इस तरह के झूठ अधिकतर ब्रिटिश भारतीय इतिहास को भावी अध्येताओं की दृष्टि में कलङ्करहित दिखाने के लिए गढ़े जाते थे।

किन्तु इस दूसरे मराठा युद्ध का वास्तविक उद्देश ऊपर के पत्र की दूसरी से लेकर पाँचवीं तक चार बातों के अन्दर साफ़ नज़र आता है। उद्देश केवल ब्रिटिश साम्राज्य-पिपासा को शान्त करना था। वेलसली इस समय सींधिया और बरार के अत्यन्त उप-जाऊ और मालामाल इलाक़ों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने के लिए लालायित था और ये सब बहाने एक दूसरे के बाद इसी उद्देश की पूर्ति के लिए गढ़े जा रहे थे।

२८ जून को गवरनर-जनरल ने फिर जनरल लेक को एक "अत्यन्त गुप्त और गूढ़" पत्र लिखा कि—"आप सींधिया से लड़ने के उद्देश से उसकी सरहद पर जगह जगह फ़ौज जमा करने का उचित प्रबन्ध कर लें, × × × किन्तु यह सब कार्य इस तरह किया जाय कि शत्रु सावधान होने न पावे।"*

* "To commence the measures for, assembling a force, with a view to active operations against Scindhia, . . .

"You will be able . . . to collect forces at the necessary points . . . without occasioning any alarm for war."—Marquess Wellesley's letter to General Lake marked 'Most secret and confidential,' dated 28th June, 1803.

इस पत्र के साथ ही वेल्सली ने लेक को एक दूसरा पृथक् पत्र भेजा जिसमें विस्तार के साथ उसने जनरल लेक को आदेश दिया कि सींधिया के आदमियों को किस प्रकार अपनी ओर फोड़ा जाय। यह पृथक् पत्र वेल्सली के छपे हुए पत्रों में मौजूद है और पाश्चात्य कूटनीति का एक सुन्दर नमूना है।

कॉलिन्स की माँगें

जो माँगें इस समय करनल कॉलिन्स सींधिया के सामने पेश कर रहा था उनके विषय में दो तीन बातें ध्यान में रखने योग्य हैं। एक यह कि कॉलिन्स सींधिया से अपनी राजधानी लौट जाने के लिए कह रहा था, किन्तु इस लौटने के लिए एक बार भी कोई मियाद नियत नहीं की गई थी और महाराजा सींधिया का अपने अनुयायियों तथा सामान आदिक सहित तुरन्त राजधानी लौट जाना इतना सरल न था; दूसरे यह कि कॉलिन्स की एक मात्र माँग सींधिया से लौट जाने की ही न थी, कॉलिन्स के पत्रों से पता चलता है कि उसकी माँगें प्रतिदिन बढ़ती और बदलती चली गईं; यहाँ तक कि इन दोनों नरेशों से उसी समय लौटने के लिए कहा जा रहा था और उसी समय उन पर यह भी जोर दिया जा रहा था कि आप दोनों कम्पनी के साथ सबसीडीयरी सन्धि कर लें। तीसरी और सब से विशेष बात यह कि ये दोनों मराठा नरेश उस समय अपने ही इलाक़े के अन्दर थे। कॉलिन्स का व्यवहार महाराजा दौलतराव के साथ अधिकाधिक अशिष्ट होता चला गया, और दौलतराव बराबर उसे धैर्य और शान्ति की

सलाह देता रहा। असलियत यह थी कि अङ्गरेज़ किसी न किसी तरह सींधिया को भड़का कर युद्ध छेड़ना चाहते थे और सींधिया अभी तक शान्ति के स्वप्न देख रहा था।

४ जुलाई सन् १८०३ को दौलतराव सींधिया, राघोजी भोंसले और करनल कालिन्स तीनों की भेंट हुई। इस समय जो बातचीत हुई उससे प्रकट है कि अभी तक भी इन दोनों मराठा नरेशों को बसई की सन्धि की शर्तों का पूरी तरह पता न था। दोनों भोले भारतीय नरेशों ने इस भेंट के समय सच्चे जी से कम्पनी के साथ मित्रता और शान्ति क़ायम रखने की इच्छा प्रकट की। इसी बातचीत के अनुसार ६ जुलाई को गवरनर-जनरल के नाम तीन पत्र लिखे गए। एक करनल कॉलिन्स की ओर से और एक एक महाराजा सींधिया और राजा राघोजी भोंसले की ओर से।

दौलतराव सींधिया और बरार के राजा दोनों ने अपने पत्रों में साफ़ लिख दिया कि हम न पूना जाने वाले हैं, न अजन्ती घाट के उस पार जायँगे, न हमारा यह इरादा है कि अङ्गरेज़ों और पेशवा के बीच बसई में जो सन्धि हुई है, उसमें हम किसी तरह का दख़ल दें।

सींधिया के पत्र के उत्तर में वेल्सली ने सींधिया को फिर लिखा कि—'आप शीघ्र अपनी राजधानी वापस लौट जाइए अन्यथा मित्रता नहीं रह सकती।' इस पत्र में भी वेल्सली ने जान बूझ कर सींधिया के लौटने के लिए कोई मियाद नियत न की। इसका

रण वेल्सली ने स्वयं अपने १७ जुलाई के पत्र में करनल क्लोज़ को इस प्रकार लिखा—

"मैंने दौलतराव सींधिया के लौटने के लिए मियाद इसलिए नियत हीं की × × × क्योंकि लड़ाई शुरू करने का समय मैं अपने ही दिल के न्दर रखना चाहता हूँ। जिससे लाभ यह है कि मुझे पहले वार करने का मौक़ा मिलने की अधिक सम्भावना है × × ×।"*

११ जुलाई को गवरनर-जनरल ने अपनी कौन्सिल की एक विशेष बैठक की। इसी के अगले दिन बारलो ने वह ख़ास पत्र लिखकर गवरनर-जनरल के सामने पेश किया जिसमें लिखा है—

"हमें हिन्दोस्तान में एक भी देशी रियासत ऐसी बाक़ी नहीं रहने देनी चाहिए, जो कि या तो अङ्गरेज़ों की ताक़त के सहारे खड़ी न हो, और या जिसका समस्त राजनैतिक व्यवहार पूरी तरह से अङ्गरेज़ों के हाथों में न हो।"†

१८ जुलाई को गवरनर-जनरल ने एक "गुप्त और गूढ़" पत्र

---

* "I have not fixed when he (Doulat Rao Scindhia) should withdraw . . . because I wish to keep in my own breast the period at which hostilities will be commenced; by which advantage it becomes more probable that I shall strike the first blow . . ."—General Wellesley's letter to Colonel Close dated 17th July, 1803.

† ". . . no native state should be left to exist in India, which is not upheld by the British power, or the political conduct of which is not under its absolute control."—Memorandum of Sir George Barlow to the Governor-General dated 12th July, 1803

में जनरल लेक को फिर लिखा कि आप सींधिया और भोंसले दोनों पर वार करने को तैयार रहिए और—

"पूर्ण विश्वास के साथ काम कीजिएगा और आपने युद्ध की जो अत्यन्त योग्यता-पूर्ण योजना तैयार की है उस पर जल्दी से अमल करने की हर तरह कोशिश कीजिएगा ।"*

२१ जुलाई की रात को जनरल वेल्सली के पत्र का उत्तर तय करने के लिए महाराजा सींधिया और बरार के राजा के बीच फिर बातचीत हुई। २२ जुलाई को कॉलिन्स ने महाराजा सींधिया को लिखा—

"चूँकि करनल कॉलिन्स को मालूम हुआ है कि कल रात महाराजा दौलतराव सींधिया और राजा राघोजी भोंसले के बीच महाराजा के नाम जनरल वेल्सली के पत्र का उत्तर तय करने के लिए बातचीत हुई है, इसलिए मेरी प्रार्थना है कि महाराजा दौलतराव सींधिया उस बातचीत के नतीजे की मुझे इत्तला दें × × ×।"

मराठों का उत्तर

२४ जुलाई सन् १८०३ को दोनों मराठा नरेशों ने कॉलिन्स के पत्र का जवाब भेज दिया। सींधिया ने लिखा—

"ज्योंही मेरी और सेना साहब सूबा राजा राघोजी भोंसले की मुलाकात

---

* ". . . you will therefore act confidently, and you will use every effort to prepare for the early execution of the very able plan of operations which you have framed."—Marquess Wellesley's 'Secret and confidential' letter to General Lake dated 18th July, 1803.

…और हम एक जगह बैठेंगे, आप से भी आने की प्रार्थना की जायगी, और जो कुछ कहना है उस समय आमने सामने बातचीत की जायगी। भी इस मौक़े पर मेरी और राजा की मुलाक़ात आवश्यक है। यदि आप मिलने का इरादा करते हैं तो कल दो घड़ी दिन रहे आइएगा, …रा घर आपका घर है।"

इसी तरह का जवाब राजा राघोजी भोंसले ने दिया।

अगले ही दिन २५ जुलाई को करनल कॉलिन्स और महाराजा सींधिया की मुलाक़ात हुई। कॉलिन्स ने वार वार महाराजा सींधिया पर अपनी राजधानी लौट जाने के लिए ज़ोर दिया। इसके उत्तर में सींधिया के वज़ीर ने कॉलिन्स से कहा—

"महाराजा दौलतराव और बरार के राजा दोनों की सेनाएँ उनके अपने अपने इलाक़ों के अन्दर हैं। इन नरेशों ने सञ्जीदगी के साथ वादा किया है कि हम न अजन्ती घाट पर चढ़ेंगे और न पूना की ओर जायँगे। वे लिखकर और अपनी अपनी मोहरें लगाकर गवरनर-जनरल को विश्वास दिला चुके हैं कि हम कभी बसई की सन्धि को उलटने की कोशिश न करेंगे, और ये तहरीरें उनकी मित्रता के इरादों का असन्दिग्ध प्रमाण हैं। अब हम अपने अपने वकील पूना भेजने की तजवीज़ कर रहे हैं ताकि जिस तरह का विश्वास हमें हाल में जनरल वेल्सली की ओर से दिलाया गया है उसी तरह का विश्वास पेशवा की ओर से भी हमें मिल जाय। [अर्थात् यह कि बसई की सन्धि का प्रभाव पेशवा तथा अन्य मराठा नरेशों के परस्पर सम्बन्ध पर बिलकुल न पड़ेगा।] × × × सींधिया और होलकर के बीच इस समय जिस सन्धि की बातचीत हो रही है वह

अभी पूरी तरह तय नहीं हुई और जब तक वह तय न हो जाय महाराजा सींधिया राजधानी वापस नहीं जा सकते।"

बसई की सन्धि को हुए सात महीने हो चुके थे, किन्तु अभी तक भी उस सन्धि की कोई प्रति अङ्गरेज़ों ने सींधिया अथवा बरार के राजा को न दी थी। इस बीच दोनों वेल्सली भाई अपने पत्रों में सींधिया और भोंसले दोनों को बराबर यह धोखा देते रहे कि बसई की सन्धि का सींधिया और भोंसले की स्वाधीनता पर अथवा पेशवा के साथ उन दोनों के सम्बन्ध पर अर्थात् मराठा मण्डल की आन्तरिक व्यवस्था पर किसी तरह का प्रभाव न पड़ेगा। इस विश्वास पर ही इन दोनों नरेशों ने बसई की सन्धि का विरोध न करना तक स्वीकार कर लिया था। किन्तु इसी बात को वे अपने वकील भेजकर बाजीराव से भी पक्का कर लेना चाहते थे। जुलाई के अन्त में अङ्गरेज़ों ने उन्हें बसई की सन्धि की नक़ल दी। इस पर दौलतराव सींधिया ने तुरन्त मार्क्विस वेल्सली को लिखा—

"आपका मित्रता-सूचक पत्र, जिसमें आपने पेशवा और अङ्गरेज़ कम्पनी के बीच बसई में नई सन्धि होने की मुझे सूचना दी है और साथ में उस सन्धि की एक नक़ल भेजी है, मिला; और मुझे उस सन्धि की शर्तों की पूरी पूरी इत्तला हुई × × ×।

"पेशवा के और मेरे बीच जो परस्पर प्रतिज्ञाएँ हो चुकी हैं वे इस तरह की हैं कि तमाम बातों का और पेशवा की सल्तनत और उसके शासन के सब मामलों का फ़ैसला मेरी सलाह और मशवरे से होना चाहिए

××× किन्तु इसके विरुद्ध अङ्गरेज़ों और पेशवा के बीच हाल में जो शर्तें हुई हैं, उनकी अब मुझे सूचना दी गई है। ××× इसलिए अब करनल कॉलिन्स की उपस्थिति में राजा राघोजी भोंसले के साथ यह तय हुआ है कि पूर्वोक्त सन्धि के सब हालात का पता लगाने के लिए मेरी और राजा की ओर से विश्वस्त दूत पेशवा के पास भेजे जायँ। साथ ही अङ्गरेज़ों और पेशवा के बीच की बसई की उस १९ धाराओं वाली सन्धि की शर्तों को उलटने का मेरा बिलकुल भी इरादा नहीं है, इस शर्त पर कि अङ्गरेज़ कम्पनी अथवा पेशवा का भी ज़रा भी इरादा उस सम्बन्ध को उलटने का न हो जो कि बहुत काल से पेशवा की सरकार के, मेरे और राजा राघोजी भोंसले तथा अन्य मराठा नरेशों के बीच क़ायम है।"*

---

* "I have received your Lordship's friendly letter notifying the conclusion of new engagements between His Highness the Peshwa and the English Company at Bassein, together with a copy of the treaty; and I have been fully apprized of its contents, . . .

"Whereas the engagements subsisting between the Peshwa and me are such, that the adjustment of all affairs and of the concerns of his state and Government should be arranged and completed with my advice and participation, . . . Not withstanding this, the engagements which have lately been concluded between that quarter (British Government) and the Peshwa have only now been communicated . . . . Therefore, it has now been determined with Raja Raghoji Bhonsla, in presence of Colonel Collins, that confidential persons on my part and the Raja's, be despatched to the Peshwa, for the purpose of ascertaining the circumstances of the (said) engagements. At the same time no intention whatever is

ज़ाहिर है कि ये दोनों मराठा नरेश केवल मराठा साम्राज्य के स्वाधीन अस्तित्व और उसकी व्यवस्था को बनाए रखने के लिए चिन्तित थे और इसीलिए अपने दूत पूना भेजकर पेशवा से सब बात तय कर लेना चाहते थे। बैठे बैठाए अङ्गरेज़ों से या किसी से युद्ध करने का उनका कदापि इरादा न था। किन्तु अङ्गरेज़ भी इसी 'मराठा साम्राज्य के स्वाधीन अस्तित्व और उसकी व्यवस्था' को अन्त करने की धुन में थे। ३१ जुलाई सन् १८०३ को जनरल वेल्सली ने करनल कॉलिन्स को लिखा कि—'चूँकि सींधिया और जसवन्तराव होलकर के बीच अभी तक कोई सन्धि नहीं होने पाई, इसलिए यही मौक़ा है कि हमें जल्दी से दो टूक करके युद्ध शुरू कर देना चाहिए।'

अगले दिन पहली अगस्त सन् १८०३ को सींधिया और भोंसले दोनों ने जनरल वेल्सली के नाम एक अत्यन्त मित्रता-सूचक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने वेल्सली से फिर प्रार्थना की कि बाजीराव के पास तक हमारे दूतों के पहुँचने और लौटने का इन्तज़ार

---

entertained on my part to subvert the stipulations of the treaty consisting of 19 articles, which has been concluded at Bassein, between the British Government and the Peshwa, *on condition that there be no design whatever on the part of the English Company and the Peshwa to subvert the stipulations of the treaty, which, since a long period of time, has been concluded between the Peshwa's Sircar, me, and the said Raja and the Maratha chiefs.*"—Maharaja Doulat Rao Scindhia's letter to Marquess Wellesley, received on the 31st July, 1803.

किया जाय और धैर्य और शान्ति से सब मामले का निबटारा कर लिया जाय।

युद्ध का एलान

किन्तु अङ्गरेज़ों की तैयारी पूरी हो चुकी थी। पहली अगस्त सन् १८०३ को बिना महाराजा से पूछे अथवा बिना दरबार को बाक़ायदा सूचना दिए करनल कॉलिन्स सींधिया के दरबार से चल दिया और ६ अगस्त सन् १८०३ को जनरल वेल्सली ने कम्पनी की ओर से मराठों के साथ युद्ध का बाज़ाब्ता एलान कर दिया।

लीस्टर का पत्र

मार्किस वेल्सली के तमाम सरकारी और ग़ैरसरकारी पत्रों की पूरी छानबीन करने से मालूम होता है कि अन्त समय तक सींधिया और भोंसले दोनों इस बात के लिए उत्सुक थे कि शान्ति से सब मामलों का निबटारा होजाय।

मार्क्विस वेल्सली के तमाम पत्रों में दौलतराव के इरादे में सन्देह उत्पन्न करने वाला केवल एक पत्र मिलता है, जो २६ जुलाई सन् १८०३ को मुरादाबाद के कलेक्टर लीस्टर ने वेल्सली को लिखा। इस पत्र के साथ दो फ़ारसी पत्रों की नक़लें थीं, जिनके विषय में कहा जाता है कि सींधिया ने सहारनपुर के पदच्युत नवाब बम्बूख़ाँ और रामपुर के पदच्युत नवाब ग़ुलाम मोहम्मद ख़ाँ के नाम भेजे थे, जिनमें सींधिया ने उनसे अङ्गरेज़ों के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की थी, और जिनकी नक़लें लीस्टर को

बम्बूख़ाँ से मिलीं। मूल पत्र न बम्बूख़ाँ ने लीस्टर को दिए, न लीस्टर ने वेल्सली को; और न कहीं मौजूद हैं। जो नक़लें इधर से उधर तक भेजी गईं, उन पर तारीख़ तक नदारद। बम्बूख़ाँ अङ्गरेज़ों का धनक्रीत था, जिसका अधिक वृत्तान्त आगे चल कर दिया जायगा। इसके अतिरिक्त युद्ध का एलान मार्क्विस वेल्सली ने ६ अगस्त को किया और लीस्टर का पत्र वेल्सली को १५ अगस्त को मिला। इस सब के अतिरिक्त बम्बूख़ाँ का सारा चरित्र इतना नीच तथा अविश्वसनीय था, इन पत्रों की भाषा इतनी लचर है और स्वयं लीस्टर के पत्र में लीस्टर का जाल-साज़ होना इतना साफ़ ज़ाहिर है कि इन पत्रों की सच्चाई पर विश्वास करना अथवा उन्हें युद्ध के कारणों में कोई स्थान देना सर्वथा असम्भव है।

माधोजी सींधिया और मूदाजी भोंसले दोनों ने ऐसे सङ्कट के समय, जब कि अङ्गरेज़ कम्पनी के पैर भारत से उखड़ते हुए नज़र आते थे, इन विदेशियों की सहायता की थी; आज उन दोनों के वंशजों और उत्तराधिकारियों को अपने पूर्वजों की अदूरदर्शिता का दण्ड भोगना पड़ा।

पार्लिमेण्ट में दूसरे मराठा युद्ध का प्रश्न

मार्च सन् १८०४ में इस दूसरे मराठा युद्ध की न्याय्यता अथवा अन्याय्यता का प्रश्न इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने पेश हुआ। सर फ़िलिप फ़्रैन्सिस ने अपनी वक्तृता में मार्किस वेल्सली और उसके साथियों के छल कपट, बसईं की सन्धि की अन्याय्यता, मराठा

नरेशों की आद्योपान्त निर्दोषता, फ़्रान्सीसियों के भय की निर्मूलता और युद्ध के छेड़ने में कम्पनी की गर्हणीय स्वार्थपरायणता को बड़ी योग्यता और विस्तार के साथ साबित किया। भारत के साथ अङ्गरेजों के सम्पर्क को दर्शाते हुए सर फ़िलिप फ़्रैन्सिस ने कहा—

"भारत के साथ हमारा सम्बन्ध कैसे शुरू हुआ, इसकी बाबत मुझे आपको यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं है कि शुरू में हमारा सम्बन्ध केवल तिजारत का था, किन्तु देशी नरेशों ने कभी हम पर सन्देह नहीं किया, बल्कि हर तरह हमारे साथ अनुग्रह का व्यवहार किया। उन्होंने न केवल तिजारत करने और उससे ख़ूब फ़ायदा उठाने के लिए हमें हर तरह की सुविधा प्रदान की, बल्कि यहाँ तक कि ऐसी ऐसी रिआयतें और माफ़ियाँ हमें दे दीं जो उनकी अधिकांश प्रजा को भी प्राप्त न थीं। व्यापार की दृष्टि से, विदेशी क़ौमों के साथ अपनी तिजारत को बढ़ने का मौक़ा देना देशी नरेशों के लिए बुद्धिमत्ता थी, किन्तु जब कि उनकी तिजारती आँख खुली हुई थी, उनकी राजनैतिक आँख बन्द थी। उन्होंने उन असूलों पर काम नहीं किया, जिन असूलों पर कि चीन वालों ने काम किया और जिनके कारण कि यूरोपियन क़ौमें चीन पर अपनी सत्ता जमाने में सफल न हो सकीं।"*

---

* "With regard to the origin of our connection with India, it was hardly necessary for him to remind the house, that it was originally purely commercial, but it was marked on the part of the native princes with every appearance of good understanding, and even kindness. They not only afforded us every facility for carrying on an advantageous trade, but actually conferred on us immunities and exemptions which many of their own

सर फ़िलिप फ़्रैन्सिस ने यह भी दिखलाया कि किस प्रकार अङ्गरेज़ शासक भारतीय नरेशों के और ख़ास कर उस समय सींधिया के चरित्र पर बिलकुल झूठे दोष लगा कर उसे बदनाम करते थे और किस प्रकार के छलों द्वारा उन नरेशों की स्वाधीनता हरते थे। फ़्रैन्सिस ने ज़ोर देकर कहा—

"पहले हमने तिजारत शुरू की, तिजारत से कोठियाँ हुईं, कोठियों से क़िलेबन्दी, क़िलेबन्दी से सेनाएँ, सेनाओं से देश-विजय, और विजयों से हमारी आजकल की हालत।"

इस ज़बरदस्त वक्तृता के बाद सर फ़िलिप फ़्रैन्सिस का प्रस्ताव केवल यह था कि—'भारत में इलाक़े विजय करने और अपना राज्य बढ़ाने की योजनाएँ करना अङ्गरेज़ क़ौम की इच्छा के विरुद्ध है।'

अङ्गरेज़ क़ौम के चुने हुए प्रतिनिधियों ने ज़बरदस्त बहुमत से इस प्रस्ताव को नामञ्ज़ूर किया।

---

subjects did not enjoy. It was, in a mercantile point of view, wise in the native princes to encourage trade with foreign nations. But while their commercial eye was open, their political eye was closed. They did not act on those principles which had so effectually excluded European nations from the dominion of China . . .

" . . . he said, with great emphasis, we first had commerce, commerce produced factories, factories produced garrisons, garrisons produced armies, armies produced conquests, and conquest had brought us into our present situation."—Sir Philip Francis, in the House of Commons 14th March, 1804. *Hansard's Reports*,

तेईसवाँ अध्याय

साज़िशों का जाल

स समय से अङ्गरेज़ों ने मराठों के साथ दोबारा युद्ध छेड़ने का निश्चय किया उस समय से ही वेल्सली और उसके साथियों के सामने सबसे मुख्य कार्य गुप्त षड्यन्त्रों द्वारा मराठों के बल को तोड़ना था।

पेशवा अपनी राजधानी के अन्दर अङ्गरेज़ी सेना द्वारा क़ैद था और जब तक सींधिया या कोई दूसरा नरेश बाहर से सेना लेकर पूना न पहुँचता, तब तक पेशवा के लिए अङ्गरेज़ों के विरुद्ध हाथ पाँव हिला सकना असम्भव था। महाराजा सींधिया और राजा राघोजी भोंसले दोनों के साथ युद्ध अनिवार्य नज़र आता था। जसवन्तराव होलकर और सींधिया के बीच उस समय मेल की कोशिशें हो रही थीं। जसवन्तराव पूना से उत्तर की ओर अपने राज्य में गया हुआ था। उसके पास एक ज़बरदस्त, सन्नद्ध और विजयी सेना थी। इसलिए अङ्गरेज़ों को इस समय सबसे अधिक चिन्ता इस बात की थी कि कहीं जसवन्तराव होलकर सींधिया और भोंसले के साथ न मिल जाय।

जसवन्तराव को सींधिया से फोड़ने के प्रयत्न

इसीलिए जसवन्तराव के पूना से लौटते हुए अङ्गरेज़ों ने उसे पेशवा और निज़ाम दोनों के इलाक़ों में लूट मार करने का खुला मौक़ा दिया। हम ऊपर दिखा चुके हैं कि पूना की लूट के समय करनल क्लोज़ जसवन्तराव के साथ था और औरङ्गाबाद की लूट में अङ्गरेज़ों का साफ़ हाथ था। इस तमाम समय में जब कि अङ्गरेज़ सींधिया और भोंसले दोनों को बराबर तङ्ग करते रहे, जसवन्तराव को वे बराबर ख़ुश रखने के प्रयत्न करते रहे। अङ्गरेज़ों की ही मदद और उकसाने से पूना से लौटने के बाद जसवन्तराव तूकाजी होलकर के ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी काशीराव होलकर को इन्दौर की गद्दी से उतार कर स्वयं होलकर राज्य का स्वामी बन गया। मार्क्विस वेल्सली के अनेक पत्र अत्यन्त ख़ुशामद से भरे हुए इन दिनों महाराजा जसवन्तराव होलकर के पास पहुँचे। १६ जुलाई सन् १८०३ को जनरल वेल्सली ने क़ादिर नवाज़ ख़ाँ नामक अपने एक गुप्त दूत को पत्र सहित जसवन्तराव के पास भेजा और लिखा कि क़ादिर नवाज़ ख़ाँ 'मेरा पक्का विश्वस्त आदमी है' और 'शेष सब बातें आप से ज़बानी कहेगा।' इस क़ादिर नवाज़ ख़ाँ की मार्फ़त अङ्गरेज़ों ने जसवन्तराव से बड़े बड़े झूठे वादे किए। अदूरदर्शी जसवन्तराव फिर अङ्गरेज़ों की इन चालों में आ गया। जसवन्तराव और सींधिया में मेल न हो सका। युद्ध के अन्त में जब सींधिया और भोंसले दोनों के साथ अङ्गरेज़ों की सुलह हो गई और जसवन्तराव को पता चला कि मेरे साथ अङ्गरेज़ों के सब वादे बिलकुल

चुके थे तब मजबूर होकर जसवन्तराव को स्वयं अङ्गरेज़ों से लड़ना पड़ा, किन्तु उस समय जब कि मराठों की सत्ता को काफ़ी हानि पहुँच चुकी थी।

किन्तु जसवन्तराव पर भी अङ्गरेज़ों को विश्वास न था। केवल उसे बहकाए रखना ही उन्होंने अपने लिए काफ़ी नहीं समझा, जसवन्तराव की सेना के सरदारों को भी उन्होंने जसवन्तराव के विरुद्ध अपनी ओर फोड़ कर रखना आवश्यक समझा। जसवन्तराव के साथ नागपुर से एक सरदार अमीर ख़ाँ नामक आया था, जिसके अधीन लिखा है कि पच्चीस हज़ार सवार थे और जिस पर होलकर को सब से अधिक भरोसा था। निज़ाम के आदमियों की मार्फ़त अङ्गरेज़ों ने अमीर ख़ाँ को अपनी ओर फोड़ा। २८ अप्रेल को अर्थात् बाजीराव के पूना पहुँचने से पहले, जबकि जसवन्तराव अभी पूना ही में मौजूद था, जनरल वेल्सली ने जनरल स्टुअर्ट को लिखा—

"होलकर के सरदार अमीर ख़ाँ का, जिसके अधीन कि होलकर की सेना का सब से बड़ा दल है, निज़ाम दरबार के साथ निज़ाम की नौकरी करने के लिए पत्र व्यवहार हो रहा है। इसलिए २ मई को पूना में हमारी शक्ति पहले से अधिक बढ़ी हुई होगी, और हमारे वहाँ सेना ले जाने का एक बड़ा उद्देश पूरा हो जायगा। और यदि अमीर ख़ाँ के विद्रोह के कारण होलकर कमज़ोर न भी हो सका तो भी कम से कम अमीर ख़ाँ पर से होलकर का विश्वास कम अवश्य हो जायगा।"*

* "Meer Khan (Amir Khan?), Holkar's Sirdar, in command

करनल स्टीवेन्सन द्वारा इस सम्बन्ध में अङ्गरेज़ों और निज़ाम दरबार के बीच बातचीत हो रही थी। दबाव पड़ने पर निज़ाम ने अमीर ख़ाँ को ३००० सवारों सहित अपने यहाँ नौकर रखना स्वीकार कर लिया। किन्तु अमीर ख़ाँ के सवारों की संख्या बहुत अधिक थी। ३ मई सन् १८०३ को जनरल वेल्सली ने हैदराबाद के रेज़िडेण्ट मेजर कर्कपैट्रिक को लिखा कि—"××× मैं यह सिफ़ारिश किए बिना नहीं रह सकता कि अमीर ख़ाँ के साथ चाहे कितने भी सवार हों, निज़ाम को उन्हें ज़रूर अपने यहाँ नौकर रख लेना चाहिए। ×××"* इसी पत्र के इससे ऊपर के वाक्य में जनरल वेल्सली ने यह साफ़ धमकी भी दी कि यदि निज़ाम ने स्वीकार न किया तो मुमकिन है कि होलकर के उत्तर

---

of his largest detachment, still keeps open his negotiation with the Nizam to enter His Highness' service, on the 2nd of May, therefore, we shall be in greater strength than ever at Poona, and have attained one great object of our expedition; and, if Holkar should not be weakened by the defection of Meer Khan, at least his confidence in that chief must be shaken."—Major-General Wellesley's letter to Lieut.-General Stuart dated 28th April, 1803.

* ". . . when I am considering the means of defending His Highness' long line of frontier from the plunder of a light body of horse, I can not refrain from recommending that, whatever may be Meer Khan's numbers, His Highness should take them into pay."—General Wellesley's letter to Major Kirkpatric, Resident at Hyderabad, dated 3rd May, 1803.

और लौटते समय निज़ाम का सरहदी इलाक़ा लुट जाय। औरङ्गाबाद और उसके आस पास के इलाक़े लुटने का हाल ऊपर आ चुका है। इसके बाद किसी को अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि औरङ्गाबाद के लुटने में अङ्गरेज़ों का हाथ था। यहाँ तक कि लूट के बाद जब निज़ाम ने अङ्गरेज़ों से शिकायत की और चाहा कि औरङ्गाबाद की लूट का माल होलकर से निज़ाम को वापस दिला दिया जाय तो वेल्सली ने साफ़ होलकर का पक्ष लिया। किन्तु इस अवसर पर जनरल वेल्सली के पत्रों से मालूम होता है कि करनल स्टीवेन्सन ने निज़ाम के वज़ीर राजा महीपतराम से यह वादा तक कर लिया कि अमीर ख़ाँ जब होलकर को छोड़ कर आ जाय तो उसकी सेना का आधा ख़र्च निज़ाम दे और आधा कम्पनी दे। बाद में काम निकल जाने पर अङ्गरेज़ इस वादे से साफ़ फिर गए; और उलटा राजा महीपतराम पर झूठ का इलज़ाम लगाने लगे। ये तमाम पत्र वेल्सली के पत्रों में मौजूद हैं और इस स्थान पर उनसे लम्बे उद्धरण देना व्यर्थ है। अन्त को जो कुछ कारण रहा हो, अमीर ख़ाँ निज़ाम के यहाँ नौकर नहीं रक्खा गया। तथापि इस पत्र-व्यवहार के कारण अमीर ख़ाँ भीतर ही भीतर होलकर से फटा रहा। इसमें भी सन्देह नहीं कि होलकर की नौकरी करते हुए भी अमीर ख़ाँ को अङ्गरेज़ों से गुप्त धन मिलता था और यदि होलकर सींधिया या भोंसले का साथ दे बैठता तो डर था कि ऐन मौक़े पर अमीर ख़ाँ उसे दग़ा देता। इस समय से ही धनक्रीत अमीर ख़ाँ ने अङ्गरेज़ों का इतना पक्का साथ दिया कि इन सेवाओं

के बदले में सन् १८१८ में उसे टोंक का नवाब बना दिया गया। टोंक के वर्त्तमान नवाब अमीर ख़ाँ के ही वंशज हैं।

सींधिया के विरुद्ध अन्य षड्यन्त्र

जसवन्तराव होलकर को इस प्रकार निकम्मा कर देने के अतिरिक्त दौलतराव सींधिया के राज्य के अन्दर भी दौलतराव के विरुद्ध अङ्गरेज़ों की गुप्त साज़िशें लगभग पाँच वर्ष से जारी थीं। २८ जून सन् १८०३ को मार्किस वेल्सली ने जनरल लेक को एक लम्बा पत्र लिखा, जिसके ऊपर "अत्यन्त गुप्त और गूढ़"* ये शब्द लिखे हुए हैं और जिसमें इस तरह की साज़िशों के लिए लेक को विस्तृत हिदायतें दी गई हैं। वास्तव में इस तरह की साज़िशों पर ही भारत के अन्दर ब्रिटिश सत्ता की बुनियादें रक्खी गई हैं। जनरल लेक को इस काम में मदद देने के लिए ग्रीम मरसर नामक एक अभ्यस्त कूटनीतिज्ञ उसका सहायक नियुक्त करके भेजा गया। २२ जुलाई सन् १८०३ को गवरनर-जनरल की ओर से उसके सेक्रेटरी एडमॉन्सटन ने ग्रीम मरसर को एक "अत्यन्त गुप्त" पत्र लिखा, जिसमें मरसर को महाराजा सींधिया के मुख्य मुख्य कर्मचारियों, सरदारों और सामन्तों के साथ साज़िशें करके उन्हें अपनी ओर फोड़ने की हिदायत की गई। मरसर को आज्ञा दी गई कि तुम उन लोगों से यह वादा कर लो कि—

"यदि आप लोग अपनी अपनी शक्ति के अनुसार हिन्दोस्तान के उस

* "Most Secret and Confidential."

न्त से दौलतराव सींधिया की सेना को निकालने में, और यदि भविष्य सींधिया या कोई दूसरी बाहरी शक्ति उन प्रान्तों में अपनी सत्ता जमाने प्रयत्न करे तो उन प्रयत्नों को निष्फल कर देने में, उत्साह और तत्परता साथ अङ्गरेज़ सरकार की मदद करेंगे, तो आपकी पैतृक जागीरों पर पका बे रोक टोक क़ब्ज़ा रहने दिया जायगा । इत्यादि ।"*

इस कठिन कार्य को पूरा करने के लिए कई योग्य अफ़सर रसर के अधीन नियुक्त किए गए और इलाहाबाद, कानपुर तथा टावा के कलेक्टरों को इस बात की हिदायत की गई कि मरसर अपने गुप्तचरों इत्यादि के ख़र्च के लिए जितने भी रुपयों की ज़रूरत हो और जितना रुपया मरसर माँगे, तुरन्त बिना पूछे भेज दें और उसे गवरनर-जनरल के नाम लिख लें ।

२७ जुलाई सन् १८०३ को मार्क्विस वेल्सली ने जनरल लेक के नाम एक अत्यन्त लम्बा और महत्वपूर्ण 'गुप्त' पत्र लिखा, जिसमें ब्योरेवार भारत के उन तमाम नरेशों और सरदारों के नाम दिए, जिन्हें लोभ और रिशवतें देकर सींधिया के विरुद्ध फोड़ने

---

* ". . . the undisturbed possession of their hereditary tenures on the condition of their zealous and ready co-operation with the British Government, to the extent of their respective means, in expelling the troops of Daulat Rao Scindhia from that quarter of Hindostan, and preventing any future attempts on the part of that chieftain, or of any other foreign power, to establish an authority in those provinces."—Letter dated 22nd July, 1803 from Mr. Edmonstone, Secretary to Government, addressed to Mr. G. Mercer, Marked 'Most Secret.'

की गवरनर-जनरल ने लेक को हिदायत की। हमें स्मरण रखना चाहिए कि उस समय तक अङ्गरेज़ों और सींधियामें ज़ाहिरा सम्बन्ध मित्रता का था और मित्रता की ही बातचीत बराबर जारी थी।

सम्राट शाहआलम को सींधिया से फोड़ना

दौलतराव सींधिया के विरुद्ध जिन भारतीय नरेशों के साथ मार्क्विस वेल्सली ने गुप्त साज़िशें शुरू कीं, उनमें सबसे ऊपर नाम दिल्ली के मुग़ल सम्राट शाहआलम का था। अपने २७ जुलाई के उस पत्र में, जिसका ज़िक्र ऊपर आ चुका है, मार्क्विस वेल्सली ने युद्ध के उद्देशों में से एक यह बताया था कि "दिल्ली सम्राट की नाम मात्र की सत्ता को अपने हाथों में ले लिया जायगा।" किन्तु इस पत्र के साथ ही गवरनर-जनरल ने जनरल लेक के पास सम्राट शाहआलम के नाम एक दूसरा पत्र भेजा, जिसमें उसने लिखा—

"सम्राट को पूरी तरह मालूम है कि ब्रिटिश सरकार के दिल में सम्राट और सम्राट के कुल की ओर सदैव किस तरह का मान और भक्ति रही है।

"जिस समय से सम्राट ने दुर्भाग्यवश अपनी रक्षा का कार्य मराठों की सत्ता को सौंप दिया है, तब से अब तक सम्राट और सम्राट के उच्च कुल को जो जो हानि पहुँची है और जो जो अपमान सहने पड़े हैं, उन सब से माननीय कम्पनी को और भारत की ब्रिटिश सरकार को सदा दुख होता रहा है; और मुझे इस बात का गहरा रञ्ज है कि अभी तक समय की परिस्थिति ने इस बात का मौक़ा नहीं दिया कि अङ्गरेज़ बीच में पड़कर अन्याय,

अनुपिकता और लूट खसोट के इस कष्टकर बन्धन से सफलता-पूर्वक सम्राट की रक्षा कर सकें। × × ×"

हमें स्मरण रखना चाहिए कि स्वयं वारन् हेस्टिंग्स ने धोखा देकर मुग़ल सम्राट को माधोजी सींधिया के हवाले किया था और उस समय से अब तक सम्राट ने अपने साथ महाराजा सींधिया के सलूक की किसी से कोई शिकायत न की थी। सम्राट शाहआलम सानी की एक फ़ारसी कविता आज दिन तक प्रसिद्ध है, जिसमें सम्राट ने अपने अनेक दुखों का रोना रोते हुए दिल्ली के अनेक मुसलमान वज़ीरों और अमीरों के विश्वासघात की शिकायत की है। इसी कविता में सम्राट ने एक स्थान पर लिखा है—

"माधोजी सींधिया फ़र्ज़न्द जिगर बन्देमन,
हस्त मसरूफ़ तलाफ़ीए सितमगारिए मा।"

अर्थात्—"माधोजी सींधिया, जो मेरे जिगर का टुकड़ा और मेरा बेटा है, मेरे दुखों को दूर करने में लगा हुआ है।"

इससे मालूम होता है कि दिल्ली सम्राट सींधिया कुल के व्यवहार से कितना सन्तुष्ट था। किन्तु मार्किस वेल्सली का सारा पत्र ही साफ़ छल और झूठ से भरा हुआ है।

इस पत्र के सम्बन्ध में मार्क्विस वेल्सली ने लेक को लिखा—

"मुनासिब यह होगा कि सम्राट के नाम का मेरा पत्र जितने छिपाकर और सावधानी से हो सकता है, उतने छिपाकर और सावधानी से भेजा जाय। × × × सय्यद रज़ाख़ाँ बहुत दिनों से सम्राट के दरबार में रहता है और दौलतराव सींधिया के यहाँ जो रेज़िडेण्ट रहता है उसके एजण्ट

के तौर पर काम करता है। मैं समझता हूँ, इस मौक़े पर उसका पूरा एत-बार किया जा सकता है। ××× पत्र के साथ सय्यद रज़ाख़ाँ को आप इस तरह की हिदायतें कर दें जिस तरह की कि इस मौक़े के लिए आपको उचित मालूम हों। ××× उस एजण्ट को हिदायत कर दें कि देहली में जिस कारवाई का भी उसे पता चले, उसकी ठीक ठीक और ऐन समय पर वह आपको इत्तला भेजता रहे। ×××"

सय्यद रज़ाख़ाँ की मार्फ़त अनेक झूठे वादे इस समय अङ्गरेज़ों ने शाहआलम से कर लिए। भोले शाहआलम से वादा किया गया कि जो सत्ता मराठों ने उसके हाथों से छीनी थी वह अङ्गरेज़ उसे फिर से दिलवा देंगे और वह फिर एक बार भारतीय साम्राज्य का क्रियात्मक अधिराज बना दिया जायगा। जिस प्रकार कि कुछ वर्ष पहले मार्किस वेल्सली ने टीपू सुलतान के विरुद्ध मैसूर के प्राचीन राजकुल के साथ साज़िश की थी, उसी प्रकार अब उसने महाराजा सींधिया के विरुद्ध दिल्ली सम्राट के साथ साज़िश की। थोड़े दिनों बाद गवरनर-जनरल की आज्ञा से २ दिसम्बर सन् १८०३ को जनरल लेक ने कम्पनी की ओर से इन सब बातों का एक प्रतिज्ञा पत्र—"तहरीरी इक़रारनामा"—लिखकर सम्राट शाहआलम की सेवा में पेश कर दिया।

सम्राट से छल

सम्राट शाहआलम झूठी आशाओं के सहारे दौलतराव सींधिया तथा मराठों से फटा रहा। मार्किस वेल्सली का काम निकल गया। किन्तु मैसूर के पुराने राजकुल और सम्राट शाह-

आलम के भाग्यों में अन्तर यह रहा कि जब कि मैसूर के राजकुल को टीपू के साथ विश्वासघात करने के बदले में अपने पैतृक राज्य की थोड़ी सी फाँक किसी शर्त पर मिल गई, दिल्ली सम्राट को दौलतराव सींधिया के साथ विश्वासघात करने के बदले में अङ्गरेज़ों की ओर से भी केवल विश्वासघात ही प्राप्त हुआ। यह वही शाहआलम दूसरा था जिसने बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी के अधिकार कम्पनी को प्रदान किए थे। कुछ वर्ष बाद जब इस "तहरीरी इक़रारनामे" की शर्तों को पूरा कराने के लिए शाहआलम के उत्तराधिकारी सम्राट अकबरशाह ने राजा राममोहन राय को अपना वकील बना कर और 'इक़रारनामा' देकर इङ्गलिस्तान भेजा तो वहाँ के शासकों ने उत्तर दिया कि—"इक़रारनामा कम्पनी के काग़ज़ों में कहीं नहीं मिलता।"* उस समय तक भारत के मुग़ल सम्राट की प्रायः समस्त भूमि और उसके सदियों के अधिकार अङ्गरेज़ कम्पनी के हाथों में पहुँच चुके थे। इस विचित्र उत्तर को सुनकर पार्लिमेण्ट के सदस्य सलीवन रोज़ ने उठ कर कहा—

"××× क्या यह शाहआलम का क़सूर है कि 'इक़रारनामा'

---

* "The Court would be surprised to hear that the document . . . called an *Ikrarnama* was nowhere to be found on the records of the Court, or in those of the Supreme Government of India ; . . . ."—Speech of the Chairman of Directors at the East India House, 18th December, 1848.

कम्पनी के काग़ज़ों में नहीं मिलता ? × × × इस मामले में मुग़ल सम्राट के साथ अत्यन्त गहरा विश्वासघात किया गया है। × × ×"*

सींधिया के सामन्तों के साथ साज़िशें

२८ जुलाई सन् १८०३ को एक 'सरकारी और गुप्त' पत्र में मार्क्विस वेल्सली ने जनरल लेक को मेरठ के निकट सरधने की प्रसिद्ध ज़ेबुन्निसा बेगम को अपनी ओर फोड़ने की हिदायत की। ज़ेबुन्निसा बेगम को आम तौर पर बेगम समरू कहते हैं। बेगम समरू सींधिया की एक सामन्त थी। उसने सरधने के आस पास एक ख़ासी ज़बरदस्त जागीर पैदा कर ली थी। मार्क्विस वेल्सली ने जनरल लेक को लिखा —

"× × × बेगम की जागीर ऐसे मौक़े पर है कि अच्छा यह होगा कि अङ्गरेज़ सरकार की ओर से बेगम के साथ जो कुछ वादे और प्रतिज्ञाएँ की जायँ उनमें ऐसी शर्तें डाल दी जायँ जिनसे उसकी जागीर भर के अन्दर कम्पनी के क़ायदे क़ानून आसानी से जारी किए जा सकें। मेरी प्रार्थना है कि बेगम के साथ पत्र-व्यवहार करने में आप इस लक्ष्य की ओर ध्यान रखिएगा × × ×

"× × × बेगम से कहा जाय कि दौलतराव सींधिया की सेना में इस समय बेगम की जो चार पलटनें हैं, उन्हें वह वापस बुला ले, और

* "Was it the fault of Shah Alam that this document was not upon record ?. . . In my judgment, a gross breach of faith has been committed in this case of the Mogul, ..."— Sullivan, at the East India House, 18th December, 1848.

दोआब के ज़मींदारों और सरदारों पर जितना कुछ उसका प्रभाव है, उससे उन पर ज़ोर दे कि वे सब अपने आपको अङ्गरेज़ सरकार के अधीन कर दें और अङ्गरेज़ी सेना को हर तरह मदद देने में अपनी शक्ति लगा दें।"*

इस प्रकार अङ्गरेज़ों ने बेगम समरू की मार्फ़त सींधिया के उत्तर की ओर तमाम सामन्तों और ज़मींदारों को अपनी ओर फोड़ने के लिए एक विस्तृत जाल फैलाया, जिसके तमाम फन्दों को सुलझा सकना इस समय असम्भव है।

३० जुलाई, सन् १८०३ को मार्क्विस वेल्सली ने जनरल लेक को एक और 'गुप्त' पत्र लिखा, जिसमें यह हिदायत की कि—"दौलतराव सींधिया के जिन सामन्तों, मुख्य कर्मचारियों अथवा अन्य प्रजा" के नाम अभी तक मैंने आपको लिखे हैं, उनके

---

* ". . . the local situation of the Begum's *Jageer* renders it desirable that in any engagement concluded with her on the part of the British Government, such conditions should be inserted as may facilitate the introduction of the British regulations into the *Jageer* and I request that Your Excellency's negotiations with the Begum may be directed to the accomplishment of this object.

". . . . she should be required to recall her battalions now serving in the army of Daulat Rao Scindhia, and to employ whatever influence she may possess over the *Zemindars* and Chieftains in the *Doab*, to induce them to place themselves under the authority of the British Government and to employ their resources in assisting the operations of the British arms."—Marquess Wellesley's letter to Lieut.-General Lake dated 28th July, 1803, marked 'Official and Secret.'

अलावा और जो जो सींधिया के विरुद्ध भड़काए जा सकें, उन्हें भड़काया जाय। "न्याय और लाभ दोनों इसी में हैं कि हम सींधिया की प्रजा और उसके कर्मचारियों के असन्तोष और विद्रोह से जितना लाभ उठा सकें, उठाएँ।"* जनरल लेक को अधिकार दिया गया कि आप इन लोगों को अपनी ओर फोड़ने के लिए जिस जिस तरह के वादे उनसे करना उचित समझें, कर दें। गवरनर-जनरल ने लिखा कि—"मेरा अन्तिम इरादा यह है कि जमना और गङ्गा और कुमायूँ के पहाड़ों के बीच के तमाम देश में अङ्गरेज़ सरकार का क़ानून जारी कर दिया जाय।"* इस पत्र में ही गवरनर-जनरल ने लेक को यह भी लिखा कि सहारनपुर के पास की गूजर क़ौम को, जो उस समय सींधिया की प्रजा थी, "निहायत कामयाब तरीक़ों से ख़ुश करके राज़ी किया जाय कि वे दोआब के अन्दर सींधिया की ताक़त को उलटने में अङ्गरेज़ सरकार के साथ मिल जायँ।"* इत्यादि।

अभी तक युद्ध का एलान न हुआ था और अङ्गरेज़ तथा मराठा नरेश कहने के लिए एक दूसरे के मित्र समझे जाते थे।

* ". . . the tributaries, principal officers, or other subjects of Doulat Rao Scindhia exclusively of those described in my general instructions to Your Excellency and in my instructions to Mr. Mercer, may be inclined to place themselves under the protection of the Company, . . . it both just and expedient, that we should avail ourselves as much as possible, of the discontent and disaffection of his subjects or officers, and I accordingly desire, . . . you will be pleased to decide on the

उत्तर-पश्चिम में पञ्जाब तक सींधिया का राज्य था। पञ्जाब में उस समय सिक्खों की कई नई रियासतें पैदा हो रही थीं और लाहौर में महाराजा रणजीतसिंह का सूर्य उदय हो रहा था। रणजीतसिंह, हैदरअली और शिवाजी के समान अशिक्षित वीर और युद्ध विद्या में अत्यन्त निपुण था, किन्तु उसमें न शिवाजी जैसी दूरदर्शिता अथवा राजनीतिज्ञता थी और न हैदरअली जैसा प्रचण्ड साहस और देश-प्रेम। मार्क्विस वेल्सली को डर था कि कहीं सिक्खों की शक्ति इस युद्ध में मराठों के साथ न मिल जाय; और इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि वीर सिक्ख यदि उस

---

degree and nature of the encouragement, proper to be given . . .

"I also authorize Your Excellency to give to all tributaries or others renouncing their allegiance to Scindhia, and acting sincerely in our favour, the most positive assurances of effectual protection in the name of the Company. . . .

" . . . it is my ultimate intention to extend the regulations of the British Government through out the whole of the country, bounded by the rivers Ganges and Jumna, and by the mountains of Kumaon. A part of this territory is possessed by . . . Goojers, . . . in the vicinity of Saharanpore.

"Your Excellency's prudence will dictate the expediency of employing the most efficacious measures for the purpose of conciliating the Goojers, and of inducing them to unite with the British Government for the overthrow of Scindhia's power in the *Doab*, . . ."—Marquess Wellesley's 'Secret' letter to General Lake, dated 30th July, 1803.

समय मराठों का साथ दे जाते तो १९वीं शताब्दी के ऐन शुरू में ही अङ्गरेज़ कम्पनी के पाँव भारत से उखड़ गए होते। किन्तु सिक्खों में नीतिज्ञता का प्रायः सदा ही अभाव रहा है। वेलसली ने कोशिश की कि सिक्ख यदि इस समय अङ्गरेज़ों का साथ न दें तो कम से कम तटस्थ रहें। २ अगस्त सन् १८०३ को मार्किस वेलसली ने एक गुप्त और सरकारी पत्र में जनरल लेक को लिखा—

"जिन मुख्य मुख्य सिक्ख सरदारों के प्रभाव और प्रयत्नों से हम सब से अधिक फ़ायदा उठा सकते हैं, वे पटियाले का राजा और वे सब छोटे छोटे सरदार हैं जिनके इलाक़े पटियाला और जमना के बीच में हैं। तथापि मैं समझता हूँ कि लाहौर का राजा रणजीतसिंह सिक्खों में सब से प्रधान गिना जाता है और तमाम सिक्ख सरदारों के ऊपर उसका ख़ासा प्रभाव है।

* * *

"सींधिया दरबार के रेज़िडेण्ट के एजेण्ट ने जिन सिक्ख सरदारों के साथ पहले (सन् १८०० में) पत्र-व्यवहार किया था, उनके नाम पत्र मैं आपके पास भेजता हूँ ताकि आप जिस समय और जिस तरह अत्यन्त उचित समझें, ये पत्र उनके पास भिजवा दें।

* * *

"चूँकि जिस युद्ध का हम इरादा कर रहे हैं उसके मैदानों से लाहौर बहुत दूर है, इसलिए राजा रणजीतसिंह से केवल इस सहायता की आशा की जा सकती है कि वह दूसरे सिक्ख सरदारों पर अपना प्रभाव डाल कर उन्हें अङ्गरेज़ सरकार के पक्ष में कर दे।"

पञ्जाब का कुछ भाग उस समय दौलतराव सींधिया के अधीन था और वहाँ के सिक्ख सरदार दौलतराव को ख़िराज देते थे। इसलिए इस पत्र में आगे चलकर गवरनर-जनरल ने लिखा—

"इनमें से जो सरदार मराठों के अधीन हैं और उन्हें ख़िराज देते हैं, उनसे शायद यह वादा करके कि अङ्गरेज़ सरकार आपकी रक्षा करेगी और भविष्य में आपका ख़िराज बिलकुल माफ़ कर दिया जायगा, उन्हें मराठों से फोड़ा जा सके।

* * *

"यदि उन सरदारों से सहायता मिलना असम्भव प्रतीत हो तो कम से कम उन्हें तटस्थ रख सकना भी बड़े महत्व की बात होगी।

"सिक्ख सरदारों के साथ पत्र-व्यवहार करने में मुनासिब होगा कि आप उन्हें यह भी सुझा दें कि यदि उन्होंने अङ्गरेज़ सरकार का किसी तरह से विरोध किया तो आइन्दा उन्हें कितना ख़तरा है, और इतनी बलवान सरकार के साथ सम्बन्ध रखने में उन्हें क्या क्या लाभ हो सकते हैं।"

पत्र के अन्त में गवरनर-जनरल ने जनरल लेक को हिदायत की कि—'सिक्ख सरदारों के साथ पत्र-व्यवहार करने में आप इस पत्र-व्यवहार को गुप्त रखने का विचार रक्खें और पूरी सावधानी से काम लें।'*

सत्रहवीं सदी के अन्त और अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में सिक्खों की ताक़त बिलकुल शुरू हो रही थी। उनका राजनैतिक महत्व और साम्राज्य-सङ्गठन अभी बहुत कम सामने दिखाई देता

* "The chiefs from whose influence or exertions the greatest

था। सन् १८०१ में एक स्वतन्त्र अङ्गरेज़ आततायी जॉर्ज टॉमस कुछ रुहेला पठान सवारों की सेना जमा करके प्रायः सिक्खों के इलाक़ों में लूट मार किया करता था। तथापि जब कि मार्किस वेलसली भारत के अन्य नरेशों को सबसीडीयरी सन्धियों के जाल में फँसाने की पूरी कोशिश कर रहा था, उसी समय सिक्खों को उसने जान बूझ कर ख़ासा आज़ाद छोड़ रक्खा था। इसी में उस समय अङ्गरेज़ों का हित था। मार्किस वेलसली की चाल ठीक और

---

benefit is to be derived, are the Raja of Patiala, and those petty chieftains who occupy the territory between Patiala and the Jumna. I understand, however, that Raja Ranjit Singh, the Raja of Lahore, is considered to be the principal among the chiefs of the tribe of Sikhs, and to possess considerable influence over the whole body of the Sikh chiefs.

* * *

" I transmit to Your Excellency, for the purpose of being forwarded, at such time and in such manner as may appear to Your Excellency to be most proper, letters to those among the Sikh chiefs with whom the agent of the Resident with Doulat Rao Scindhia communicated (in the year 1800).

* * *

" Adverting to the great distance of Lahore from the scene of intended operations, the only support to be expected from Raja Ranjit Singh, is the exertion of his influence with the other Sikh chieftains, to induce them to favour the cause of the British Government.

* * *

सफल साबित हुई। मराठों के साथ इस दूसरे युद्ध के समय सिक्ख सरदारों और राजाओं ने अङ्गरेज़ों का यथेच्छ साथ दिया, और बहुत दर्जे तक उस सङ्कट में मराठों के विरुद्ध अङ्गरेज़ों का साथ देने के कारण ही सिक्खों और ख़ास कर महाराजा रणजीतसिंह की सत्ता ने बाद में इतनी अधिक उन्नति की।

रामपुर का पदच्युत रुहेला नवाब ग़ुलाम मोहम्मद ख़ाँ इस समय सींधिया के पक्ष में था। इसलिए २२ अगस्त सन् १८०३ को

"Such of those chieftains as are subject to the control and exactions of the Maratha power, may perhaps be detached from the interests of that nation by promises of protection from the British Government, and of exemption from the payment of tribute in future.

* * *

"If it should appear impracticable to obtain the co-operation of those chieftains, it would still be an object of importance to secure their neutrality.

"In your communications to the Sikh chieftains it may be proper that Your Excellency should suggest to their consideration the danger to which they will hereafter be exposed by any opposition to the interests of the British Government, and the advantages which they may derive from a connection with so powerful a state.

* * *

". . . . require the observance of secrecy and caution in Your Excellency's communications with those chieftains."—'Secret and official' letter of Marquess Wellesley to General Lake, dated 2nd August, 1803.

गवरनर-जनरल ने जनरल लेक को एक गुप्त पत्र लिखा कि बम्बू ख़ाँ को बढ़ाकर उसकी मदद से गुलाम मोहम्मद ख़ाँ को गिरफ़्तार करने की कोशिश की जाय और लिखा—

"यदि आपकी यह राय हो कि × × × नक़द रुपए मिलने की आशा से बम्बू ख़ाँ इस काम में अधिक जोश के साथ प्रयत्न करेगा तो आपको अधिकार है कि जितनी बड़ी रक़म का भी आप उचित समझें, वादा कर लें और उससे कहला भेजें।"*

मालूम नहीं कि इस बम्बू ख़ाँ ने अङ्गरेज़ों की क्या क्या सेवाएँ कीं और अन्त में उसे क्या इनाम मिला।

भरतपुर का राजा रणजीतसिंह भी सींधिया के ख़ास सामन्तों में से था। मार्किस वेल्सली के नाम जनरल लेक के १३ अगस्त सन् १८०४ के एक पत्र में लिखा है कि अङ्गरेज़ों ने भरतपुर के राजा से यह वादा किया कि यदि आप सींधिया के विरुद्ध अङ्गरेज़ों को मदद देंगे तो हमेशा के लिए आपका ख़िराज माफ़ कर दिया जायगा और चार लाख सालाना का एक नया इलाक़ा आपको दिया जायगा। इस नए इलाक़े के लिए अङ्गरेज़ों ने राजा रणजीतसिंह को सनद भी लिख कर दे दी।

---

* ". . . . If Your Excellency should be of opinion that the offer of a pecuniary reward is calculated to stimulate the exertions of Bamboo Khan . . . . Your Excellency is at liberty to convey to him the offer of such a reward to any extent which Your Excellency may deem proper."—Marquess Wellesley's 'Secret' letter dated 22nd August, 1803 to General Lake.

किन्तु इन सब साज़िशों के बाद भी दौलतराव सींधिया की विशाल सेना को जीत सकना मार्किस वेल्सली के लिए आसान काम न था। इन सब के अतिरिक्त वेल्सली ने सींधिया की सेना के अन्दर विश्वासघातक पैदा किए।

सींधिया की सेना में विश्वासघातक

माधोजी सींधिया ने वारन् हेस्टिंग्स के कहने में आकर कुछ यूरोपियन अफ़सरों को, जिनमें से अधिकतर फ़ान्सीसी थे, अपनी सेना में उच्च पदों पर नियुक्त कर रक्खा था। अपने राज्य और विशेषकर अपनी सेना के अन्दर यूरोपनिवासियों को नौकर रखने से बढ़ कर घातक भूल कभी भी किसी भारतीय नरेश ने नहीं की। माधोजी सींधिया के उत्तराधिकारी को अब अपने पितामह की ग़लती का फल भोगना पड़ा।

सींधिया की सेना का एक मुख्य सेनापति कप्तान पैरों नामक एक फ़ान्सीसी था, जिसके अधीन ख़ास ख़ास पदों पर और भी कई यूरोपनिवासी थे। ये सब लोग केवल धन के उपासक थे। मार्किस वेल्सली ने एक एलान प्रकाशित किया जिसमें उसने दौलतराव सींधिया के तमाम यूरोपियन मुलाज़िमों को अपने मालिक के साथ विश्वासघात करने के बदले में बड़ी बड़ी रक़में इनाम में देने का वादा किया। मार्किस वेल्सली को इस काम में यथेच्छ सफलता हुई। इन यूरोपियन मुलाज़िमों की कुसमय की विश्वासघातकता ने दौलतराव सींधिया को सब से अधिक धक्का पहुँचाया।

मराठों के विरुद्ध मार्किस वेल्सली की और उसके साथियों की साज़िशों की यह समस्त कहानी केवल अङ्गरेज़ों ही की तहरीरों के अनुसार है। किन्तु मराठों के पक्ष का लिखा हुआ कोई वृत्तान्त इस समय हमारे सामने नहीं है, जिसके कारण इस घृणित कूट-जाल के पूरे और विस्तृत रूप पर काल ने अब सदा के लिए परदा डाल दिया है।

चौबीसवाँ अध्याय

साम्राज्य-विस्तार

युद्ध का प्रारम्भ

ओर से छै बड़ी बड़ी सेनाएँ महाराजा दौलत-राव सींधिया और राजा राघोजी भोंसले के इलाक़ों पर हमला करने के लिए तैयार की गईं। सब से नीचे दक्षिण में जहाँ पर कि मैसूर की सरहद पेशवा और निज़ाम की सरहदों से मिलती थी, एक विशाल सेना जनरल स्टुअर्ट के अधीन, जिसमें मैसूर की सबसीडीयरी सेना भी शामिल थी। उससे कुछ ऊपर पूना के पास एक दूसरी विशाल सेना गवरनर-जनरल के छोटे भाई जनरल वेल्सली के अधीन, जिसमें पेशवा की नई सबसीडीयरी सेना मुख्य थी। तीसरी सेना पूना से उत्तर-पूरब के कोने में औरङ्गाबाद के निकट करनल स्टीवेन्सन के अधीन, जिसमें निज़ाम की ज़बरदस्त सबसीडीयरी सेना मुख्य थी। चौथी इन सब से बड़ी सेना उत्तर में जनरल लेक के अधीन, जिसमें अवध की सबसीडीयरी सेना शामिल थी। पाँचवीं

सेना राजा राघोजी भोंसले के कटक प्रान्त की सरहद पर गञ्जम नामक स्थान में करनल कैम्पबेल के अधीन, जिसमें बङ्गाल की सेना शामिल थी। और छठवीं सेना गुजरात में करनल मरे के अधीन, जिसमें गायकवाड़ की सबसीडीयरी सेना शामिल थी। इनमें से केवल गञ्जम की सेना को छोड़ कर शेष पाँचों सेनाएँ महाराजा सींधिया के विशाल राज्य की सरहद पर इधर से उधर तक फैली हुई थीं। इसके अतिरिक्त इन विशाल सेनाओं के सम्बन्ध में दो बातें और ध्यान में रखने योग्य हैं। एक यह कि अफ़सरों को छोड़ कर शेष सेनाओं भर में बहुत थोड़ा भाग विदेशी सिपाहियों का और अधिकांश भाग भारतीय सिपाहियों का था। दूसरे यह कि लगभग यह समस्त विशाल सैन्य दल विविध भारतीय नरेशों की नौकरी में था और इन भारतीय नरेशों ही के ख़ज़ानों से उसका तमाम ख़र्च दिया जाता था।

अहमदनगर

पूना और औरङ्गाबाद के बीच में अहमदनगर में सींधिया का एक अत्यन्त मज़बूत क़िला था। यह क़िला इतना मज़बूत था और इस ढङ्ग से बना हुआ था कि मानो वह अनन्त समय तक मुहासरा बरदाश्त कर सकता था। अङ्गरेज़ जानते थे कि अहमदनगर और वहाँ के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लेने का प्रभाव सींधिया की दक्षिणी प्रजा पर बहुत ज़बरदस्त पड़ेगा। छै अगस्त को गवरनर-जनरल ने युद्ध का एलान किया, किन्तु उससे पहले ही जनरल वेलसली अपनी सेना सहित अहमदनगर की ओर रवाना

चुका था। उधर गवरनर-जनरल इससे भी पहले से सींधिया
उन कर्मचारियों के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार कर रहा था, जोकि
हमदनगर के क़िले और नगर की रक्षा के लिए नियुक्त थे।
अगस्त को जनरल वेल्सली की सेना अहमदनगर के निकट
च गई। पेशवा की सबसीडीयरी सेना उसके साथ थी ही। उसी
न वेल्सली की ओर से एक एलान नगर में प्रकाशित किया गया,
सके शुरू ही में यह साफ़ झूठ लिखा था—

"चूँकि दौलतराव सींधिया और बरार के राजा ने अङ्गरेज़ सरकार और
पण्डित प्रधान (अर्थात् पेशवा) और नवाब निज़ामअली तीनों को
द्ध की धमकी दी है × × × इत्यादि।"

इस एलान में आगे चलकर वेल्सली ने नगरनिवासियों और
मिलदारों की ओर अपनी मित्रता दर्शाते हुए कम्पनी और
शवा दोनों के नाम पर उन्हें आज्ञा दी कि आप लोग नगर पेशवा
ी सेना (?) के सुपुर्द कर दें। दूसरी ओर से अभी तक महाराजा
धिया की कोई विशेष सूचना अथवा आज्ञा अहमदनगर के
मिलदारों के पास न पहुँची थी। नगरनिवासियों पर वेल्सली
इस एलान का यथेच्छ प्रभाव पड़ा। प्रजा ने अङ्गरेज़ों को
पना शत्रु नहीं, वरन् मित्र समझा। ८ अगस्त को वेल्सली
हमदनगर पहुँचा, नगर तुरन्त अङ्गरेज़ों के हाथों में आगया।
न्तु अहमदनगर के क़िले पर इतनी आसानी से अङ्गरेज़ों का
ब्ज़ा न हो सका। वेल्सली ने क़िलेदार को बुला भेजा और उसे
हला भेजा कि क़िला अङ्गरेज़ों के हवाले कर दो। क़िलेदार ने कुछ

सङ्कोच दिखलाया। क़िले पर गोलेबारी करने की आवश्यकता हुई। सर जेम्स कैम्पबेल ने "अहमदनगर गैज़ेटीयर" पृष्ठ ६९५ पर लिखा है—

"जब नगर पर क़ब्ज़ा करने के बाद ९ अगस्त को जनरल वेल्सली ने क़िले का चक्कर लगाया तो मालूम हुआ कि चारों ओर के पुश्तों (ढालू ज़मीन) ने क़िले की दीवार को इतनी पूरी तरह बचा रक्खा था कि कोई जगह गोलाबारी करने की नज़र न आती थी। तब भिङ्गार के देशमुख रघुराव बाबा को चार हज़ार रुपए रिशवत दी गई और उसने पूरब की ओर से हमला करने का एक स्थान अङ्गरेज़ों को बता दिया।"*

न जाने कितने रघुराव बाबाओं को इस प्रकार रिशवतें दी गई होंगी! दो दिन तक नाम-मात्र को कुछ लड़ाई हुई। अन्त में ११ अगस्त को क़िलेदार ने क़िला अङ्गरेज़ों के लिए ख़ाली कर दिया। लिखा है—"इस शर्त पर कि क़िलेदार और उसकी सेना को सही सलामत बाहर निकल जाने दिया जाय और उसकी निजी जायदाद उसके क़ब्ज़े में रहने दी जाय।" जनरल वेल्सली लिखता है कि जब अङ्गरेज़ क़िले में घुसे "तब क़िला निहायत ही अच्छी हालत में था।" स्पष्ट है कि अहमदनगर के क़िले की दीवारें

* "When after capturing the town General Wellesley reconnoitred the fort on the 9th August the complete protection which the glacis afforded to the wall made it difficult to fix on a spot for bombardment. Raghu Rao Baba, the *Deshmukh* of Bhingar, received a bribe of four hundred pounds (Rs. 4,000) and advised an attack on the East face."—"*Ahmednagar Gazetteer*," edited by Sir James Campbell, page 695.

चाँदी अथवा सोने की गोलियों से तोड़ी गईं, लोहे की गोलियों से नहीं।

१३ अगस्त को वेल्सली ने उसी तरह का एक दूसरा एलान प्रकाशित किया जिसमें "कम्पनी और पेशवा की ओर से" कप्तान ग्रैहेम को अहमदनगर और उसके पास के तमाम इलाक़े का प्रबन्ध करने के लिए नियुक्त किया। वेल्सली स्वयं ग्रैहेम की सहायता के लिए कुछ दिन अहमदनगर में रहकर १८ अगस्त को अपनी सेना सहित औरङ्गाबाद की ओर बढ़ा।

पेशवा से दग़ा

अहमदनगर के इलाक़े के ऊपर वेल्सली ने "कम्पनी और पेशवा" के नाम पर क़ब्ज़ा किया। पेशवा ही मराठा साम्राज्य का प्रधान और सींधिया राज्य का न्याय्य अधिराज था। न्याय और क़ायदे के अनुसार यह इलाक़ा तुरन्त पेशवा के सुपुर्द हो जाना चाहिए था और पेशवा ही की इच्छा के अनुसार उसका प्रबन्ध होना चाहिए था। पेशवा भीतर से अङ्गरेज़ों की इस समस्त काररवाई से असन्तुष्ट था, किन्तु लाचार था। इसलिए अहमदनगर पर क़ब्ज़ा करते ही वेल्सली को एक कठिनाई का सामना करना पड़ा। एक ओर वह इस इलाक़े पर अङ्गरेज़ों का पूरा अधिकार चाहता था और दूसरी ओर किसी तरह झूठे सच्चे वादों से पेशवा को भी सन्तुष्ट रखना ज़रूरी था। १३ अगस्त को वेल्सली ने पूना के रेज़िडेण्ट करनल क्लोज़ को लिखा—

"मुझे इस बात की बड़ी चिन्ता है कि अहमदनगर के विषय में पेशवा

के चित्त में कोई शङ्का पैदा होने न पाए। × × × मैं चाहता हूँ कि आप इस विषय में पेशवा बाजीराव से बातचीत करके उसे समझावें कि यह स्थान हमारे लिए कितना ज़रूरी है। × × × आप पेशवा को यह भी विश्वास दिला दें कि तमाम लगान का ठीक ठीक हिसाब रक्खा जायगा और पेशवा का हिस्सा पेशवा को दिया जायगा।"*

इसके बाद एक ही दिन के अन्दर वेलसली ने और रुख बदला और १४ अगस्त सन् १८०३ को करनल क्लोज़ को लिखा—

"कल आपको पत्र लिखने के बाद मुझे यह ख़याल आया कि यह अधिक अच्छा होगा कि हम अहमदनगर का आधा लगान देने का पेशवा से वादा न करें अथवा इसकी आशा अभी उसे न दिलाएँ, बल्कि आम तौर पर उससे यह कह दें कि इस इलाक़े का लगान युद्ध का ख़र्च पूरा करने के काम में लाया जायगा और हिसाब पेशवा के पास भेज दिया जायगा। किन्तु एक बड़ा काम यह है कि जिस तरह भी होसके पेशवा को इस बात के लिए रज़ामन्द कर लिया जाय कि इलाक़े पर क़ब्ज़ा हमारा ही रहे, क्योंकि पूना के साथ हमारा सम्बन्ध रहने के लिए यह स्थान अत्यन्त आवश्यक है; और यदि पेशवा इस बात के लिए रज़ामन्द होसके तो उसे

* "I am very anxious that the Peshwa should feel no jealousy about this place (Ahmadnagar) . . . I wish that you would speak to Raghunath Rao (i. e., the Peshwa Baji Rao son of Raghunath Rao) upon this subject, point out to him how necessary the place is for us, . . . you may also assure him that a faithful account shall be kept of the revenues, and credit given to the Peshwa for his portion of them."—General Wellesley's letter to Colonel Close, dated 13th August, 1803.

आधा लगान देने या न देने को मैं इतने अधिक महत्त्व की बात नहीं समझता।

"मेरी प्रार्थना है कि आप इस विषय पर हर पहलू से सोच लें। × × × जब तक आपका जवाब न आएगा मैं आपको इस विषय में खुला पत्र न लिखूँगा।"*

वास्तव में वेल्सली पेशवा को साफ़ धोखा दे रहा था, वह निश्चय कर चुका था कि पेशवा को एक कौड़ी भी अहमदनगर की मालगुज़ारी में से न दी जायगी। किन्तु उसे इस बात का डर था कि कहीं पेशवा मौक़ा पाकर पूना से न निकल जाय अथवा अङ्गरेज़ों के साथ युद्ध का एलान न कर दे तथा दक्षिण के जागीरदार अङ्गरेज़ों के विरुद्ध पेशवा की मदद के लिए खड़े न हो जायँ,

---

* "Since writing to you yesterday, it has occured to me that it would be better not to hold out to the Peshwa any promise or prospect of having half the revenue of Ahmadnagar, but to tell him generally that the revenues shall be applied to pay the expenses of the war, and that the accounts of them shall be communicated to him. One great object, however, is to reconcile his mind to our keeping possession of the country, which is absolutetly necessary for our communications with Poona; and provided that is effected, I think it immaterial whether he has half the revenues or not.

* * *

"I beg you to turn this subject over in your mind, . . . I will delay to write you a public letter upon it till I shall receive your answer."—General Wellesley's letter to Colonel Close, dated 14th August, 1803.

क्योंकि इन जागीरदारों को भी अङ्गरेज़ अनेक बार धोखा दे चुके थे। इसी लिए पेशवा को ख़ुश रखना ज़रूरी था। मैसूर की सरहद पर जनरल स्टुअर्ट के अधीन जो सेना रक्खी गई थी, उसका उद्देश भी यह था कि "दक्षिण के मराठा जागीरदारों पर दबदबा क़ायम रक्खा जाय।"*

१७ अगस्त को जनरल वेलसली ने करनल क्लोज़ को लिखा—

"यदि पेशवा बाजीराव इस गोल मोल वादे से सन्तुष्ट हो जाय कि जो इलाक़ा हमने जीता है उसका उपयोग दोनों मित्र सरकारों के फ़ायदे के लिए किया जायगा, तो बहुत ही सुविधा रहेगी × × ×

"किन्तु मैं इस बात को अत्यन्त महत्वपूर्ण समझता हूँ कि जहाँ तक हो सके पेशवा के चित्त को सन्तुष्ट रखना ज़रूरी है, ताकि अङ्गरेज़ों के साथ जो सन्धि उसने की है उस पर वह क़ायम रहे और अपने इरादे में बिलकुल डाँवाडोल होने न पाए, नहीं तो डर है कि दक्षिण के जागीरदार कम्पनी के विरुद्ध युद्ध छेड़ देंगे।"†

* "Overawing the Southern Maratha Jagirdars" G. Stuart's Despatch to the Governor-General 8th August, 1803.

† "If the Peshwa Baji Rao should be satisfied with a general assurance that the conquered territory is to be applied to the benifit of the allies, it will be most convenient, . . .

"But I consider it to be an object of the utmost importance that the Peshwa's mind should be satisfied as for as possible, in order that there may appear no wavering in his intention to adhere to the alliance on which the southern *Jagirdars* might found acts of hostility against the Company."—General Wellesley's letter to Colonel Close, dated 17th August, 1803.

पूना के अन्दर पेशवा के सब इरादों की ख़बर रखने के लिए और इस काम के लिए कि पेशवा पूना से बाहर न निकलने पाए, अंगरेज़ों ने पेशवा के मन्त्रियों को ख़ूब रिशवतें दीं। २४ अगस्त को जनरल वेल्सली ने मेजर शा को लिखा—

"मैं नहीं समझता कि पेशवा पूना से भागने की कोशिश करेगा; अथवा यदि पेशवा चाहे भी तो वह बिना उसके मन्त्रियों को ख़बर हुए भाग सकता है। आपने करनल क्लोज़ के नाम मेरे पत्रों से देखा होगा कि मैंने क्लोज़ पर ज़ोर दिया है कि सब बातों की ठीक-ठीक ख़बर रखने के लिए मन्त्रियों को धन दिया जाय।

"जब तक युद्ध ख़तम न हो जाय हम पूना की गवरमेण्ट को ठीक करने की तदबीर नहीं कर सकते। वहाँ की गवरमेण्ट की हालत ख़राब अवश्य है, तथापि उसे अभी ऐसी ही रहने देना होगा। यदि हम इस समय उसे बदलने की कोशिश करेंगे, तो हमें अपने पीछे की ओर भी लड़ाई लड़नी पड़ जायगी जिससे हमारा सर्वनाश हो जायगा।"*

* "I have no idea that the Peshwa will attempt to fly from Poona; or that if he should be so inclined he could carry hi plan into execution without the knowledge of his ministers. You will have observed from my letters to Colonel Close, that I have urged him to pay the ministers, in order to have accurate infor mation of what passes."

"We can not contrive to settle the Government at Poona till the conclusion of the War. Bad as the situation of the Government is, it must be allowed to continue. If we were to attempt to alter it now, we should have a contest in our rear, which would be ruinous."—General Wellesley's letter to Major Shawe, dated 24th August, 1803.

करनल क्लोज़ के नाम के जिन पत्रों का ऊपर ज़िक्र किया गया है वे वेल्सली के छपे हुए पत्रों में कहीं नहीं मिलते, जिससे ज़ाहिर है कि मराठों की सत्ता का सर्वनाश करने के लिए अङ्गरेज़ों ने जो जो कारखाइयाँ कीं उनमें से अनेक पर अब सदा के लिए परदा पड़ चुका है। सम्भव है कि बेछपे पत्रों में कहीं कुछ और भेद खुल सकें। यह भी ज़ाहिर है कि अङ्गरेज़ जिस प्रकार सींधिया और भोंसले के नाश के प्रयत्न कर रहे थे उसी तरह अपने 'मित्र' और 'साथी' पेशवा बाजीराव के नाश का भी पूरा इरादा कर चुके थे, और उसके साथ इस समय हर तरह के छल से काम ले रहे थे। पेशवा के मन्त्रियों को रिशवतें देने के विषय में जनरल वेल्सली ने २८ सितम्बर को करनल क्लोज़ के नाम एक और पत्र में लिखा—

"लार्ड वेल्सली (गवरनर-जनरल) ने पेशवा के मन्त्रियों को बड़ी बड़ी रक़में देने का निश्चय कर लिया है। किन्तु × × ×

"पेशवा का कोई मन्त्री है ही नहीं। पेशवा अकेला है, और अकेला क्या चीज़ है! इसलिए मेरी राय में हमें उन लोगों को रुपए देने चाहिए जो पेशवा के मन्त्री समझे जाते हैं और मन्त्री कहलाते हैं, इसलिए नहीं कि सन्धि के उद्देशों के अनुसार वहाँ के शासन का काम चलाया जाय, जिस उद्देश से कि हम हैदराबाद में रुपए ख़र्च करते हैं, बल्कि इसलिए कि पेशवा की गुप्त सलाहों की सब ख़बर हमें मिलती रहे, ताकि जब ज़रूरत हो हम पेशवा को समय पर रोक सकें।"*

* "Lord Wellesley has taken up the question of paying the Peshwa's ministers upon a great scale.

* * *

निस्सन्देह भारतीय नरेशों के मन्त्रियों को रिशवतें देकर उनसे अपने स्वामियों के साथ विश्वासघात कराना उन दिनों अङ्गरेज़ कम्पनी की एक सामान्य नीति थी। हैदराबाद और पूना दोनों दरबारों की इस समय यही हालत थी।

युद्ध के समाप्त होते ही अहमदनगर के विषय में ११ नवम्बर सन् १८०३ को जनरल वेलसली ने गवरनर-जनरल को साफ़ लिख दिया कि जो इलाक़ा हमने जीता है, उसका कोई भाग पेशवा को न दिया जाय, "अहमदनगर का क़िला अङ्गरेज़ सरकार ही के क़ब्ज़े में रहे।" और 'सूरत अट्टवेसी' जो पेशवा ही का इलाक़ा था, पेशवा को लौटा दिया जाय, इस शर्त पर "कि पेशवा वसई की सन्धि में कुछ और परिवर्त्तन करना और नई शर्तें जोड़ना स्वीकार कर ले।"*

"The Peshwa has no ministers. He is everything himself and everything is little. In my opinion, therefore, we ought to pay those who are supposed to be and are called his ministers, *not to keep the machine of Government in motion, in consistence with the objects of the alliance as we do at Hyderabad,* but to have intelligence of what passes in the Peshwa's Secret councils in order that we may check him in time when it may be necessary."—General Wellesley's letter to Colonel Close, dated 28th September, 1803.

* ". . . before this territory (Surat Attavesy) should be ceded to His Highness the Peshwa, he ought to be required to consent to the improvements of the defensive alliance . . ." —letter from General Wellesley to the Governor-General, dated 11th November, 1803.

असाई

अब हम फिर जनरल वेल्सली और उसकी सेना की ओर आते हैं। १८ अगस्त को जनरल वेल्सली ने अहमदनगर छोड़ा और करनल स्टीवेन्सन की सेना के साथ मिलने के उद्देश से २४ अगस्त को गोदावरी पार की। उधर सींधिया और बरार के राजा ने भी अहमदनगर के पतन का समाचार सुनते ही जितनी शीघ्रता से हो सका, थोड़ी बहुत तैयारी करके निज़ाम के इलाक़े की ओर चढ़ाई की। दौलतराव सींधिया की आयु उस समय केवल २३ वर्ष की थी, तथापि जिस अपूर्व योग्यता के साथ इस थोड़े से समय में उसने अपने रहे सहे अनुयायियों को जमा करके अङ्गरेजों के मुक़ाबले की तैयारी की उस योग्यता की उसके शत्रुओं ने भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

जनरल वेल्सली के एक पत्र में लिखा है कि वेल्सली ने जगह जगह अपने गुप्तचर नियुक्त कर रक्खे थे जो उसे मराठा सेनाओं की स्थिति, कूच इत्यादि की सूचना देते रहते थे। ये तमाम गुप्तचर सींधिया और भोंसले ही की प्रजा थे और उन्हीं की मदद से सींधिया की सेना के अनेक लोगों को वेल्सली ने अपनी ओर फोड़ रक्खा था। अङ्गरेज़ों का इस सरलता के साथ अनेक भारतीयों को अपने देश और राजा के विरुद्ध विदेशियों की ओर फोड़ सकना प्रकट करता है कि भारतवासियों में उस समय भी देश और राष्ट्रीयता के भावों की भयङ्कर न्यूनता थी। इन गुप्तचरों के कारण वेल्सली के लिए

अपनी सुविधा के अनुसार युद्ध का स्थान तथा समय नियत करना आसान होगया ।

२३ सितम्बर सन् १८०३ को निज़ाम की उत्तरी सरहद पर बरार की सरहद से मिले हुए असाई नामक ग्राम में मराठों और कम्पनी की सेनाओं के बीच एक प्रसिद्ध संग्राम हुआ, जो भारत के 'निर्णायक' संग्रामों में गिना जाता है और जिसका निस्सन्देह इस देश के अन्दर ब्रिटिश सत्ता के विस्तार पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा ।

दौलतराव सींधिया के साथ उस समय, लगभग पचास हज़ार पैदल, बहुत से सवार और एक ज़बरदस्त तोपख़ाना था । दौलतराव इस भ्रम में कि अङ्गरेज़ों की मुख्य सेना हैदराबाद में है, अपने सवारों सहित तेज़ी के साथ हैदराबाद की ओर बढ़ा चला गया । उसकी पैदल और तोपख़ाने की सेना कुछ पीछे रह गई । कहते हैं कि उसी समय दशहरे का त्योहार पड़ा । दशहरा मनाने के लिए इस पीछे वाली सेना ने असाई में कुछ देर कर दी । यहाँ तक कि आस पास चारे की कमी होगई । ठीक २३ तारीख़ को तोपख़ाने के तमाम बैल खोल कर चरने के लिए दूर भेज दिए गए ।

वेलसली को इन सब बातों का पता था अथवा ये सब बातें पहले से तय थीं । क्योंकि सींधिया की सवार सेना के तमाम अफ़सर मराठे थे, किन्तु पैदल और तोपख़ाने की सेना में अनेक अफ़सर यूरोपियन थे, जिन्हें अङ्गरेज़ पहले ही से लोभ देकर अपनी ओर फोड़ चुके थे । इन्हीं यूरोपियनों द्वारा उस सेना के अनेक हिन्दोस्तानी अफ़सरों को भी अङ्गरेज़ों ने अपनी ओर कर लिया था ।

इन विश्वासघातकों में से कुछ लोग शुरू ही में सींधिया को छोड़ कर अङ्गरेज़ों की ओर चले गए थे, किन्तु कुछ ऐन मौक़े पर काम आने के लिए सींधिया की फ़ौज के साथ रह गए थे। निस्सन्देह असाई के संग्राम की सम्पूर्ण परिस्थिति को रचने में अङ्गरेज़ों को इन लोगों से बहुत बड़ी मदद मिली होगी।

जनरल वेल्सली के अनुसार उस दिन केवल ८,००० पैदल, १,६०० सवार और १७ तोपें वेल्सली के अधीन थीं और लगभग ५०,००० पैदल और १२८ तोपें सींधिया की ओर थीं। किन्तु जनरल वेल्सली के २६ अक्तूबर के एक पत्र में लिखा है कि मराठों की सेना में कम से कम एक ब्रिगेड चार पलटनों की बेगम समरू की थी और एक ब्रिगेड उतनी ही बड़ी दूपौं नामक एक यूरोपियन के अधीन थी। बेगम समरू के साथ अङ्गरेज़ों की साज़िश का ज़िक्र पिछले अध्याय में आ चुका है। १८ जुलाई को जनरल लेक ने गवरनर-जनरल को लिखा था—

"बेगम समरू के हमारे साथ मिल जाने से हमें कई अत्यन्त आवश्यक लाभ हो सकते हैं।

* * *

"उसकी चार पलटनें इस समय सींधिया के पास हैं। × × × इस बात की तरकीबें की जा सकती हैं कि वे चारों पलटनें जनरल वेल्सली से जा मिलें।"*

---

* "The most essential advantages may be derived from an union with Begum Sumroo, . . .

* * *

इसके उत्तर में गवरनर-जनरल ने लिखा—

"यह सलाह निहायत मुनासिब है, और फ़ौरन् करनल स्कॉट को हुकुम [illegible] दिया जायगा, मिस्टर मरसर के नाम जो हिदायतें गई हैं उनमें भी [illegible] बात लिख दी गई है।"*

दूपौं के विषय में गवरनर-जनरल के नाम जनरल वेलसली के [illegible] अक्तूबर के एक पत्र में लिखा है—

"सींधिया की सेना के १६ अफ़सर और सारजण्ट आपके २६ अगस्त के एलान के अनुसार आकर करनल स्टीवेन्सन के साथ मिल गए हैं। उनके नामों की सूची और हरेक को जो जो तनख़्वाह मिलनी चाहिए, सब लिख कर मैं बाद में भेजूँगा।"†

इन १६ अफ़सरों में से एक दूपौं भी था। स्पष्ट है कि बेगम समरू की चारों पलटनों ने और दूपौं की चारों पलटनों ने असाई के निर्णायक मैदान में सींधिया की अनुपस्थिति में सींधिया के साथ विश्वासघात किया।

कप्तान ग्राण्ट डफ़ ने अपने "मराठों के इतिहास" में लिखा है—

"Four of her battalions are now with Scindhia, . . . means *might be contrived to enable those battalions to join* General *Wellesley*."—General Lake's Memorandum to the Governor-General dated 18th July, 1803.

* "This suggestion is extremely proper, and orders will be immediately sent to Colonel Scot; Mr. Mercer's instructions include this point."—Governor-General's reply to General Lake's Memorandum.

† 'Sixteen officers and sergeants belonging to the Campoos..

"असाई में सींधिया की अधिकतर पलटनों को एक नुक़सान यह था कि उनके यूरोपियन अफ़सरों में से अङ्गरेज़ अफ़सर शत्रु की ओर चले गए थे × × ×"*

ग्राण्ट डफ़ लिखता है कि गवरनर-जनरल के जिस एलान पर इन लोगों ने अपने मालिक सींधिया के साथ विश्वासघात किया वह अङ्गरेज़ों के अलावा तमाम यूरोपियन अफ़सरों और यहाँ तक कि सींधिया के हिन्दोस्तानी अफ़सरों के नाम भी जारी किया गया था। ऊपर लिखा जा चुका है कि इन लोगों में से कुछ युद्ध छिड़ते ही अङ्गरेज़ों की ओर आगए और शेष ठीक मौक़े पर काम देने के लिए दौलतराव की सेना में बने रहे।

रहा सींधिया का ज़बरदस्त तोपख़ाना, सो उसकी अधिकांश तोपें बैलों के न होने के कारण मोरचे पर लाई भी न जा सकीं।

इस पर भी यदि दौलतराव सींधिया २३ सितम्बर को स्वयं असाई के मैदान में मौजूद होता तो सम्भव है कि भारत का उसके बाद का इतिहास किसी दूसरे ही ढङ्ग से लिखा जाता। सींधिया

(*i. e.*, Scindhia's camp) have joined Colonel Stevenson under Your Excellency's proclamation of the 29th August. I will here after send a list of their names, and an account of the pay each is to receive."—General Wellesley's letter to the Governor-General, dated 24th October, 1803.

* "Most of Scindhia's battalions (at Assye) laboured under disadvantages by the cessation of the British part of their European officers, ..."—"*History of the Marathas*" by Grant Duff. page 574.

की अनुपस्थिति में भी उसके कुछ नमकहलाल सैनिकों ने बड़ी वीरता के साथ शत्रु का मुक़ाबला किया। अङ्गरेज़ों ही के अनुसार अङ्गरेज़ों के हताहतों की संख्या ५७५ गोरे और १,४५६ हिन्दोस्तानी थी और उनके २६ आदमी लापता रहे। सींधिया के हताहतों की संख्या अङ्गरेज़ों के अनुसार १,२०० थी।

सींधिया के तोपख़ाने के लगभग समस्त अफ़सर यूरोपियन थे। इन लोगों ने सींधिया की तमाम भारी तोपें मय गोले बारूद और तमाम सामान के जूँ की तूँ अङ्गरेज़ों के हवाले कर दीं। पैदल सेना में से भी कम से कम आठ पूरी पलटनें पूर्वोक्त बयान के अनुसार शत्रु के साथ मिल गई थीं। शेष सेना भी विश्वासघातकों से छलनी छलनी थी। ऐसी सूरत में बाक़ी की पैदल सेना बिना सरदार और बिना सामान कब तक शत्रु का मुक़ाबला कर सकती। परिणाम यह हुआ कि शेष पैदल सेना में से अधिकांश मैदान छोड़ कर पीछे हट गई, और असाई का मैदान अङ्गरेज़ों के हाथ रहा।

नाना फ़ड़नवीस की सलाह के विरुद्ध वारन् हेस्टिंग्स के कहने में आकर यूरोपियनों को अपने यहाँ नौकर रखने में माधोजी सींधिया ने जो ज़बरदस्त भूल की थी उसका दण्ड आज दौलतराव सींधिया को भोगना पड़ा।

सींधिया की तोपों और उनके साथ के सामान की जनरल वेल्सली ने बड़े ज़ोरों के साथ प्रशंसा की है।

तथापि सींधिया की पैदल सेना की संख्या पर असाई के संग्राम का बहुत कम असर पड़ा। लड़ाई के अगले दिन २४

सितम्बर सन् १८०३ को जनरल वेल्सली ने करनल स्टीवेन्सन को आज्ञा दी कि तुम परास्त मराठा सेना का पीछा करो। किन्तु इतिहास-लेखक मिल लिखता है—

"इस हार से शत्रु की व्यवस्था इतनी कम टूटने पाई थी, अर्थात् वे इतने कम तितर बितर हुए थे कि करनल स्टीवेन्सन के पीछा करने से उन्हें ज़रा भी डर न था।"*

करनल स्टीवेन्सन सींधिया को इस सेना से डरता था, इसलिए वह उसके पीछा करने का साहस न कर सका।

सुलह की कोशिश

उधर असाई के संग्राम में अपने कुछ आदमियों के विश्वासघात और अपने समस्त तोपख़ाने के शत्रुओं के हाथों चले जाने का समाचार सुन कर दौलतराव को बड़ा दुख हुआ।

दौलतराव के साथ इस समय पेशवा बाजीराव का एक अत्यन्त विश्वस्त दूत बालाजी कुञ्जर नाम का था, जिसने अनेक बार बड़ी वफ़ादारी और त्याग के साथ अपने स्वामी और देश दोनों की सेवा की थी, जिसे अङ्गरेज़ों ने कई बार धन इत्यादि का लोभ दिया, किन्तु जिसे वे किसी प्रकार भी अपनी ओर न फोड़ सके। बालाजी कुञ्जर बसईं की सन्धि पर बातचीत करने के लिए और यदि हो सके तो दौलतराव सींधिया को पूना ले जाने के लिए पेशवा

* "The enemy had been so little broken or dispersed by their defeat that they had little to dread, from the pursuit of Colonel Stevenson."—Mill. vol. vi, page 358.

की ओर से सींधिया के दरबार में भेजा गया था और सींधिया तथा अङ्गरेज़ों के बीच युद्ध छिड़ जाने पर भी इस समय तक बराबर सींधिया के साथ मौजूद था। असाई के संग्राम के लगभग एक सप्ताह के अन्दर बालाजी कुञ्जर ने सींधिया की सलाह से और सींधिया की ओर से जनरल वेलसली को एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें उसने वेलसली से प्रार्थना की कि इस अकारण युद्ध को बन्द करके सुलह की शर्तें तय कर ली जायँ।

दुर्भाग्यवश बालाजी कुञ्जर का यह महत्वपूर्ण पत्र वेलसली के छपे हुए पत्र-व्यवहार में कहीं नहीं है। तथापि ५ अक्तूबर सन् १८०३ को वेलसली ने इस पत्र के उत्तर में बालाजी को जो पत्र लिखा उससे मालूम होता है कि बालाजी ने अपने पत्र में निम्नलिखित बातें दर्शाई थीं। यह कि दौलतराव सींधिया का इरादा अङ्गरेज़ों के या किसी के साथ भी लड़ने का न था; दौलतराव ने अन्त समय तक शान्ति और समझौते द्वारा सब बातें तय कर लेने की पूरी कोशिश की, किन्तु अङ्गरेज़ सदा गोल मोल बात करते रहे। उन्होंने एक बार भी अपनी तमाम माँगों और शिकायतों को साफ़ साफ़ नहीं बताया, यहाँ तक कि युद्ध की कोई बाज़ाब्ता अन्तिम सूचना भी सींधिया को नहीं दी गई और सींधिया के इलाक़े पर हमला कर दिया गया। इन सब बातों के अतिरिक्त बालाजी ने अपने पत्र में महाराजा सींधिया की ओर कॉलिन्स के अनुचित व्यवहार को भी पूरी तरह दर्शाया, और अन्त में प्रार्थना की कि वृथा रक्तपात को बन्द करके सुलह की बातचीत की जाय।

किन्तु जनरल वेलसली उस समय अपनी विजय के नशे में था। उसे अभी तक अपनी कूटनीति से भी बहुत कुछ आशा थी। दूपौं और उसके साथ के १५ और यूरोपियन विश्वासघातक अभी तक सींधिया की विशाल पैदल सेना के साथ थे। इस सेना में से कुछ आदमी अब उत्तर की ओर सींधिया के बरहानपुर और असीरगढ़ के क़िलों की रक्षा के लिए पहुँच गए। वेलसली को विश्वास था कि दूपौं और उसके साथियों की सहायता से अङ्गरेज़ आसानी से उन दोनों क़िलों पर क़ब्ज़ा कर लेंगे। वेलसली का विश्वास पक्का था। इसी लिए उसने बालाजी के पत्र की ओर उस समय कोई ध्यान न दिया। वेलसली ने जब देखा कि स्टीवेन्सन को मराठा सेना का पीछा और मुक़ाबला करने में सफलता न हो सकी, तो यह कार्य उसने अपने ऊपर लिया और स्टीवेन्सन को उत्तर की ओर बढ़ कर बरहानपुर और असीरगढ़ के क़िलों पर क़ब्ज़ा करने और बरहानपुर के अत्यन्त धन सम्पन्न नगर को लूटने की आज्ञा दी।

महाराजा सींधिया और बरार के राजा की सेनाएँ असाई की लड़ाई के बाद निज़ाम के इलाक़े से हट कर पहले ख़ानदेश की ओर बढ़ती हुई मालूम हुईं और फिर तापती नदी पार करके पश्चिम और फिर दक्षिण की ओर जाती नज़र आईं।

बरहानपुर और असीरगढ़

स्टीवेन्सन बरहानपुर पर जा टूटा। १५ अक्तूबर को स्टीवेन्सन ने बड़ी आसानी से बरहानपुर पर क़ब्ज़ा कर लिया और नगर को

लूटा । इसके बाद १७ को वह असीरगढ़ की ओर बढ़ा । सींधिया की वह सेना जो दूपौं के अधीन बरहानपुर और असीरगढ़ की रक्षा के लिए नियत थी बजाय स्टीवेन्सन का सामना करने या असीरगढ़ की ओर जाने के रास्ता छोड़ कर नर्वदा की ओर चली गई । १९ को स्टीवेन्सन ने असीरगढ़ पर हमला किया और २१ अक्तूबर को असीरगढ़ का क़िला अङ्गरेज़ों के हाथों में आगया । इसके बाद ही दूपौं और उसके १५ यूरोपियन साथी अपना काम पूरा करके सींधिया को छोड़, स्टीवेन्सन की ओर चले आए । जनरल वेल्सली के पत्रों से साबित है कि बरहानपुर और असीरगढ़ दोनों स्थानों पर सींधिया के इन नमकहराम यूरोपियन नौकरों ने ही अपने सहधर्मियों का काम इतना सरल कर दिया ।

दक्षिण में अभी तक सींधिया और भोंसले की सेनाएँ, जिनमें अधिकतर सवार थे, एक साथ थीं । इस सवार सेना में अङ्गरेज़ों की भेदनीति भी अधिक चलने न पाई थी । इसलिए वेल्सली अथवा स्टीवेन्सन किसी को भी इस संयुक्त मराठा सेना का सामना करने का साहस न हो सका । वेल्सली बराबर इस सेना के दाएँ बाएँ चक्कर लगाता रहा, किन्तु लड़ने से बचता रहा । उधर मराठा सेना ने भी न जाने किस निर्बलता या सङ्कोच के कारण वेल्सली की सेना पर स्वयं हमला न किया । वेल्सली ने अपने पत्रों में साफ़ लिखा है कि यदि संयुक्त मराठा सेना उस समय कहीं अङ्गरेज़ी सेना पर हमला कर देती तो अङ्गरेज़ी सेना के लिए बचना

असम्भव था। अङ्गरेज़ इस समय चाह रहे थे कि किसी तरह भोंसले और सींधिया की सेनाएँ अलग अलग हो जायँ। जिस तरह हुआ हो, इसी समय के निकट सींधिया और भोंसले की सेनाएँ अलग अलग हो गईं। वेल्सली ने अब स्टीवेन्सन को सींधिया के पीछे भेजा और स्वयं बरार के राजा के मुक़ाबले के लिए बढ़ा। किन्तु मराठा सेना के दो टुकड़े हो जाने पर भी और वेल्सली के कई दिन तक पूरी कोशिश करने पर भी स्टीवेन्सन अथवा वेल्सली दोनों में से किसी को मराठा नरेशों के मुक़ाबले का ज़रा सा भी साहस न हो सका।

वेल्सली ने इस समय यह सोचा कि गुजरात पहुँच कर सींधिया के गुजरात के इलाक़े पर हमला किया जाय और बरार के उत्तर में गाविलगढ़ के क़िले पर चढ़ाई की जाय। किन्तु वेल्सली को डर था कि कहीं सींधिया और भोंसले दोनों एक पश्चिम और दूसरा पूरब की ओर बढ़कर मेरी इन दोनों योजनाओं को असफल न कर दें। सम्भव है कि सींधिया और भोंसले को भी इसका ख़याल हो और उन दोनों के अलग अलग होने का यही उद्देश रहा हो।

सींधिया के साथ छल

जो हो, वेल्सली ने फिर छल से काम लेने का निश्चय किया। उसने सुलह की बातचीत शुरू करके सींधिया और भोंसले दोनों को धोखे में रखने का इरादा किया। सींधिया की ओर से बालाजी कुञ्जर का पत्र आ ही चुका था। बरार का राजा भी अमृतराव

द्वारा सुलह की कोशिश कर रहा था। वेल्सली ने अब रुख़ बदला और ३० अक्तूबर सन् १८०३ को बालाजी कुञ्जर के नाम निम्नलिखित पत्र लिखा—

"आपका पत्र मिला × × × और करनल स्टीवेन्सन ने मेरे पास एक फ़ारसी का पत्र भेजा है जिसमें आपने उसे इत्तला दी है कि आप मोहम्मद मीर ख़ाँ को मेरे पास सुलह की बातचीत के लिए भेजने वाले हैं। मैं मोहम्मद मीर ख़ाँ से मिलकर बहुत ख़ुश हूँगा। मोहम्मद मीर ख़ाँ की पदवी के अनुरूप उचित ढङ्ग से मैं उनका स्वागत करूँगा और जो कुछ उन्हें कहना होगा उस पर पूरा ध्यान दूँगा।"*

साथ ही इसी तरह का एक पत्र उसने मोहम्मद मीर ख़ाँ के पास भेजा जिसमें लिखा—

"× × × मैं आप से मिल कर बड़ा ख़ुश हूँगा और आपकी पदवी और चरित्र के अनुरूप आदर सत्कार के साथ आपका स्वागत करूँगा और जो कुछ आपको कहना होगा, उस पर पूरा पूरा ध्यान दूँगा।"†

* "I have received your letter . . . and Colonel Stevenson has transmitted to me a Persian letter, in which you have informed him that Mohammed Mir Khan was about to be sent on a mission to me. I shall be happy to see Mir Khan. I will receive him in a manner suitable to his rank, and I will pay every attention to what he may have to communicate."—General Wellesley's letter to Balaji Kunjer, dated 30th October, 1803.

† ". . . I shall be happy to see you, and will receive you with the honours due to your rank and character, and I shall pay every attention to what you may have to communicate."—General Wellesley's letter to Mohammed Mir Khan.

किसी कारण वश मोहम्मद मीर खाँ के बजाय, समय पर जसवन्तराव घोरपड़े सींधिया की ओर से सुलह की बातचीत के लिए भेजा गया। २३ नवम्बर सन् १८०३ को अङ्गरेज़ों और दौलतराव सींधिया के बीच युद्ध स्थगित कर देने के लिए एक अनस्थायी सुलहनामा लिखा गया, ताकि इसके बाद स्थायी सुलह की शर्तें तय की जा सकें। इस अनस्थायी सुलहनामे में लिखा गया कि दक्षिण में, गुजरात में तथा प्रत्येक अन्य स्थान पर युद्ध तुरन्त बन्द कर दिया जाय। वेल्सली और सींधिया के वकीलों के इस अनस्थायी सुलहनामे पर हस्ताक्षर हो गए। सुलहनामे की अन्तिम धारा यह थी—

"इस सुलहनामे पर महाराजा दौलतराव सींधिया के हस्ताक्षर होने चाहिएँ, और उनके हस्ताक्षर होकर आज से दस दिन के अन्दर मेजर जनरल वेल्सली के पास आ जाने चाहिएँ।"

दौलतराव सींधिया के वकीलों ने ज़ोर दिया कि सुलहनामे में सींधिया और भोंसले दोनों मराठा नरेशों का नाम होना चाहिए और दोनों के साथ अङ्गरेज़ों का युद्ध बन्द हो जाना चाहिए। किन्तु वेल्सली ने यह बहाना लेकर कि भोंसले की ओर से कोई पृथक वकील नहीं आया, भोंसले का नाम सुलहनामे में देने से इनकार किया। भोंसले का नाम इस अनस्थायी सुलहनामे में न रखने का असली कारण जनरल वेल्सली ने गवरनर-जनरल के प्राइवेट सेक्रेटरी मेजर शा के नाम अपने २३ नवम्बर सन् १८०३ के पत्र में इस प्रकार वर्णन किया—

"बरार के राजा की सेनाएँ इसमें शामिल नहीं की गईं, और इसी से इन दोनों नरेशों में फूट पड़ जायगी। यदि सींधिया के ऊपर कोई एतबार भोंसले को अभी तक था भी तो अब वह सब ख़त्म हो जायगा, और ख़ुद बख़ुद इन दोनों मराठा नरेशों की मित्रता टूट जायगी।"*

निस्सन्देह जनरल वेल्सली बल्कि दोनों वेल्सली भाई पाश्चात्य कूटनीति के बड़े पक्के खिलाड़ी थे। इसी पत्र में आगे चल कर जनरल वेल्सली ने लिखा—

"मैं गवरनर-जनरल को सूचित कर चुका हूँ कि दौलतराव सींधिया को और अधिक नुक़सान पहुँचा सकना मेरी शक्ति से बाहर है। × × ×

"मैदान में सींधिया की तमाम सेना सवारों की है। इस सेना पर हम किसी तरह का असर डालने की कदापि कोई आशा नहीं कर सकते जब तक कि बहुत दिनों तक और बहुत दूर तक उसका पीछा न करते रहें। यदि हम ऐसा करें तो हमारी सेनाएँ, जो इस समय भी रसद मिलने के स्थानों से दूर हो गई हैं, और भी अधिक दूर हो जायँगी, और बरार के राजा के विरुद्ध फिर हम कुछ न कर सकेंगे। × × ×"†

निस्सन्देह इस अनस्थायी सुलह द्वारा वेल्सली सींधिया को

---

* "The Raja of Berar's troops are not included in it, and consequently there becomes a division of interest between these two chiefs. All confidence in Scindhia, if it ever existed, must be at an end, and the confederacy is, *Ipso facto*, dissolved."—General Wellesley's letter to Major Shawe, Private Secretary to the Governor-General, dated 23rd November, 1803.

† "I have already apprized the Governor-General that it

केवल धोखा देकर, अपनी तैयारी करके उस पर अचानक हमला करना चाहता था।

२४ नवम्बर को वेल्सली ने करनल क्लोज़ को लिखा—

"लड़ाई बन्द करने को मैं इसलिए राज़ी हो गया क्योंकि जैसा मैं २४ अक्तूबर को गवरनर-जनरल को लिख चुका हूँ, मैं सींधिया को और हानि पहुँचाने में असमर्थ हूँ; क्योंकि सींधिया की सवार सेना को नुक़सान पहुँचा सकना मेरे लिए असम्भव है; और क्योंकि गुजरात के लिए तथा गाविलगढ़ के क़िले के लिए मैं जो कुछ योजनाएँ कर रहा हूँ, उनमें सींधिया मुझे नुक़सान पहुँचा सकता है। बापूजी सींधिया को उसने गुजरात की ओर भेज भी दिया है; और मेरा राजनैतिक लक्ष्य यह है कि बरार के राजा और सींधिया में फूट डलवा दूँ और इस प्रकार वास्तव में मराठा मण्डल को तोड़ दूँ।"*

was not in my power to do anything more against Doulat Rao Scindhia. . . .

"Scindhia has with him in the field an army of horse only. It is impossible to expect to make any impression upon this army, unless by following it for a great length of time and distance, to do this would remove our troops still farther than they are already from all the sources of supply, and would prevent the operations against the Raja of Berar, ..."—General Wellesley's letter to Major Shawe quoted above.

* "I have agreed to the cessation of hostilities on the ground of my incapability to do Scindhia further injury, as stated in my dispatch to the Governor-General on the 24th of October; on that of it being impossible to injure his army of horse; on that of the injury he may do me in the operations against

उसी दिन वेल्सली ने जो पत्र गवरनर-जनरल को लिखा, उसके निम्नलिखित वाक्य वेल्सली के इरादे को और भी स्पष्ट कर देते हैं—

"यदि लड़ाई बन्द कर देने के इस अवसर से लाभ उठा कर हम सन्धि की बातचीत में देर लगा दें तो आप देख सकते हैं कि जब मैं चाहूँ तब इस अनस्थायी सुलह का अन्त कर देना मेरे हाथों में है; और यदि जिस दिन यह सुलहनामा हस्ताक्षर होकर मेरे पास आ जाय उसके अगले ही दिन मुझे इस सुलह का अन्त कर देना पड़े, तो भी कम से कम मुझे हर ओर अपनी कारवाइयों के लिए काफ़ी समय मिल जायगा और दोनों शत्रुओं को एक दूसरे से बिलकुल फाड़ देने में मैं सफल हो चुका हूँगा।"*

वास्तव में पाश्चात्य राजनीति में ईमानदारी के लिए कोई स्थान नहीं। शीघ्र ही जनरल वेल्सली का छल प्रकट हो गया।

Gawilgurh and in Gujrat, to which quarter he has sent Bapuji Scindhia; and on the political ground of dividing his interests from those of the Raja of Berar, and thereby, infact, dissolving the Confederacy."—General Wellesley's letter to Colonel Close, dated 24th November, 1803.

* "If advantage should be taken of the cessation of hostilities to delay the negotiations for peace, Your Excellency will observe that *I have the power of putting an end to it when I please; and that, supposing I am obliged to put an end to it, on the day after I shall receive its ratification, I shall at least have gained so much time every where for my operations, and shall have succeeded in dividing the enemy entirely.*"—General Wellesley's letter to the Governor-General dated 24th November, 1803.

अरगाँव

२३ तारीख़ को सुलहनामा लिखा गया। १० दिन सुलहनामे पर महाराजा दौलतराव के दस्तख़त होकर लौटने के लिए नियत कर दिए गए। उधर दो दिन के अन्दर ही स्टीवेन्सन बरहानपुर की ओर से लौट कर वेलसली से आ मिला, और २९ नवम्बर को अर्थात् सुलहनामा लिखे जाने के केवल छै दिन के अन्दर वेलसली ने विश्वासघात करके अचानक सींधिया के अरगाँव के क़िले पर हमला कर दिया। सींधिया के उन वकीलों ने, जो सुलह के लिए वेलसली के पास आए हुए थे और अभी तक वेलसली के साथ मौजूद थे, ख़बर पाकर बहुत कुछ कहा सुना और वेलसली को सुलहनामे की याद दिलाई, किन्तु सब व्यर्थ। जनरल वेलसली ने अपने सरकारी पत्रों में इस विश्वासघात के लिए दो कारण बतलाए हैं। एक यह कि अभी तक सींधिया ने सुलहनामे पर हस्ताक्षर करके न भेजे थे। किन्तु सींधिया के वकीलों के हस्ताक्षर सुलहनामे पर हो चुके थे और सुलहनामे के जाने और सींधिया के हस्ताक्षर होकर लौटने के लिए सुलहनामे ही के अन्दर साफ़ दस दिन नियत कर दिए गए थे। दूसरा कारण वेलसली ने यह बताया है कि सुलहनामे की शर्तों में से एक यह भी थी कि दोनों सेनाओं में कम से कम २० कोस का फ़ासला रहे, जिसे सींधिया की ओर से पूरा नहीं किया गया। वास्तव में तमाशा यह था कि एक तो स्वयं दौलतराव को इसके प्रबन्ध के लिए अभी समय न मिल पाया था और दूसरे वेलसली के पत्रों से साबित है कि इन

दिन के अन्दर जितना जितना सींधिया की सेना पीछे हटती उतना उतना ही अङ्गरेज़ी सेना जान बूझ कर आगे बढ़ती । सारांश यह कि वेल्सली के दोनों बहाने झूठे थे ।

वेल्सली का अपने इस छल से जो मतलब था वह पूरा हो गया । सींधिया की सेना समय पर पहुँच भी न पाई और अरगाँव का क़िला अङ्गरेज़ों के हाथों में आ गया । अरगाँव की विजय की ख़बर पाते ही गवरनर-जनरल ने प्रसन्न होकर जनरल वेल्सली को लिखा—

"× × × यद्यपि सुलह करने के मामले में मैं आप से बिलकुल सहमत था, मैं उसे बड़ी होशियारी की बात समझता था, किन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि आपकी सुलह की अपेक्षा आपकी विजय को मैं अधिक पसन्द करता हूँ ।"*

इसके बाद गवरनर-जनरल ने लिखा कि—"मुझे अभी तक पता नहीं चला कि लड़ाई का कारण क्या हुआ । क्या सींधिया ने अपनी ओर से सुलह तोड़ दी ? अथवा××× सुलह के शुरू होने से पहले ही अकस्मात् कहीं पर दोनों फ़ौजें भिड़ गईं ? अथवा सींधिया और बरार के राजा फिर दग़ा करके एक दूसरे से मिल गए ? किन्तु कहीं पर भी और किसी तरह से भी क्यों न हुआ हो, इन देशी राजाओं से लड़ने में सदा ही फ़ायदा है ।"*

* " . . . Although I entirely approved of your armistice, and thought it a most judicious measure, I confess that I prefer your victory to your armistice ; . . .

" I have not yet discovered whether the battle was occasioned

गाविलगढ़

अरगाँव के बाद उसी तरह के छल से वेल्सली ने बरार के राज्य में गाविलगढ़ के क़िले पर हमला किया और तीन दिन की लड़ाई के बाद १४ दिसम्बर सन् १८०३ को गाविलगढ़ का क़िला भी अङ्गरेज़ों के हाथों में आ गया। गाविलगढ़ के वीर क़िलेदार ने अपने स्वामी के साथ विश्वासघात न कर लड़ते हुए अपने प्राण दिए।

दक्षिण में अब वेल्सली के लिए अधिक काम करने को न रहा। इसके बाद अङ्गरेज़ों की दृष्टि सींधिया के गुजरात के इलाक़े पर थी।

गुजरात

गुजरात के उपजाऊ प्रान्त को सम्राट अकबर ने मुग़ल साम्राज्य में शामिल किया था। दो शताब्दी तक यह प्रान्त मुग़ल साम्राज्य का एक अङ्ग रहा। उसके बाद निज़ामुलमुल्क ने मराठों को भड़का कर और मदद देकर उनसे गुजरात पर आक्रमण करवाया और उस प्रान्त के एक भाग पर गायकवाड़ कुल का राज्य क़ायम हुआ। अङ्गरेज़ों ने गायकवाड़ को मराठा मण्डल से फोड़ कर अपनी ओर किया और माधोजी सींधिया को मराठा मण्डल के

by a rupture of the truce on the part of Scindhia; . . . or by an accidental encounter of the armies before the truce had commenced; or by a treacherous junction between Scindhia and the Raja of Berar. But, *Qua cunque via*, a battle is a profit with the Native Powers."—Governor-General's letter to General Wellesley, dated 23rd December, 1803.

साथ विश्वासघात करने के इनाम में भड़ोच का क़िला और उसके आस पास ग्यारह लाख रुपए सालाना का इलाक़ा गायकवाड़ को दिलवा दिया। अब फिर गवरनर-जनरल वेल्सली ने माधोजी सींधिया के उत्तराधिकारी दौलतराव सींधिया से यह तमाम इलाक़ा छीन कर उसे ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने का इरादा किया।

९ जुलाई सन् १८०३ को अर्थात् सींधिया के साथ युद्ध का एलान होने से २८ दिन पहले गवरनर-जनरल ने बम्बई के गवरनर को लिख दिया था—"भड़ोच के क़िले पर हमला करने की तैयारी शुरू कर दीजे।" सींधिया के गुजराती इलाक़े में अधिकांश आबादी भीलों की थी, जिनके अपने कई छोटे छोटे राजा थे। ये सब राजा सींधिया को ख़िराज देते थे। कम्पनी की सेना को भड़ोच के क़िले पर हमला करने के लिए इन राजाओं के पहाड़ी इलाक़ों में से निकलना पड़ता। २ अगस्त सन् १८०३ को जनरल वेल्सली ने बम्बई के गवरनर को लिखा कि—"यदि ये भील राजा हमारे विरुद्ध खड़े हो गए तो जितनी सेना कम्पनी की ओर से भेजी जा सकती है, वह इनमें से एक राजा को वश में करने के लिए भी काफ़ी नहीं हो सकती। इसलिए इन समस्त भील राजाओं को अपनी ओर फोड़ा जाय। उन्हें इस बात का लोभ दिया जाय कि तुम्हारा ख़िराज सदा के लिए माफ़ कर दिया जायगा।"* सूरत

* ". . . you will urge the gentleman at Surat to keep on terms with the Bheels. . . . The number of troops I have above detailed . . . *they will not be sufficient for the subjection even of one of their Rajas*; . . . it would be better to

के कुछ अङ्गरेज़ों की मार्फ़त इन भील राजाओं को अपनी ओर किया गया।

इसके बाद ६ अगस्त सन् १८०३ को जनरल वेल्सली ने गायकवाड़ की सबसीडीयरी सेना को आज्ञा दी कि वह फ़ौरन भड़ोच के क़िले पर हमला कर दे। महाराजा आनन्दराव गायकवाड़ बड़ोदा की गद्दी पर था। उसमें और महाराजा दौलतराव सींधिया में "गहरी मित्रता" थी। सबसीडीयरी सेना का सारा ख़र्च गायकवाड़ देता था और सन्धि के अनुसार यह सेना गायकवाड़ ही की सेवा और सहायता के लिए नियुक्त थी। इस लिए महाराजा आनन्दराव गायकवाड़ ने इस बात पर सख़्त एतराज़ किया कि यह सेना दौलतराव सींधिया के राज्य पर हमला करने के लिए भेजी जाय और गायकवाड़ की राजधानी बड़ोदा से सींधिया के राज्य पर हमला किया जाय। किन्तु सेना कम्पनी की आज्ञा के अधीन थी। जनरल वेल्सली ने अपने २२ अगस्त के एक पत्र में साफ़ लिख दिया कि—'कम्पनी के साथ सबसीडीयरी सन्धि का मतलब ही यह है कि कम्पनी जहाँ चाहे अपने शत्रुओं के विरुद्ध इस सेना का उपयोग कर सकती है।' सन्धि की शर्तों में यह बात कहीं न थी,* तथापि महाराजा आनन्दराव गायकवाड़ की बात नहीं सुनी गई।

---

give up all claims of tribute . . . ."—General Wellesley's letter to the Governor of Bombay, dated 2nd August, 1803.

* "Although it is not immediately specified, . . . the

करनल वुडिङ्गटन के अधीन गायकवाड़ की इस सेना ने, जिसमें एक कम्पनी तोपख़ाने की और दो पलटनें हिन्दोस्तानी पैदलों की थीं, २१ अगस्त को बड़ोदा से कूच किया। २३ को यह सेना भड़ोच के क़िले से दो कोस के अन्दर पहुँच गई। दौलतराव सींधिया अभी तक उस क़िले की रक्षा का कोई विशेष प्रबन्ध न कर पाया था। २५ अगस्त से मुहासरा शुरू हुआ और २९ को क़िला अङ्गरेज़ों के हाथों में आगया। उसी दिन करनल वुडिङ्गटन ने जनरल वेल्सली को सूचना दी कि क़िले के अन्दर की "अरब सेना ने बहुत ज़ोरों के साथ मुक़ाबला किया।" वास्तव में अरब सैनिक उन दिनों प्रायः समस्त भारतीय नरेशों के यहाँ रहते थे और सदा बड़ी वफ़ादारी और जाँनिसारी के साथ अपने स्वामी की सेवा करते थे। अगले दिन वुडिङ्गटन ने फिर लिखा—

"इञ्जीनियर ने ११ बजे सुबह को मुझ से आकर कहा कि क़िले में जाने के लिए काफ़ी रास्ता बन गया है, मैंने प्रवेश करने का इरादा कर लिया; किन्तु मैं तीन बजे शाम तक रुका रहा × × × क्योंकि मैं समझता था कि बहुत करके उस समय ही शत्रु अचेत और असावधान होंगे।"

आस पास के सींधिया के सारे इलाक़े पर अङ्गरेज़ों का क़ब्ज़ा होगया। यद्यपि यह समस्त विजय गायकवाड़ के ख़र्च पर और

Gaikwad should also assist the Company with his forces against the enemies of the British Government."—General Wellesley's letter to Bombay Government, dated 22nd August, 1803.

उसी की सेना द्वारा की गई, तथापि जो इलाक़ा इस सेना ने जीता उसका गायकवाड़ से कोई सम्बन्ध नहीं रक्खा गया।

भड़ोच के अतिरिक्त गुजरात में सींधिया का एक और क़िला पवनगढ़ था। चम्पानेर का सारा ज़िला इस क़िले के अधीन था। भड़ोच के बाद करनल वुडिङ्गटन ने पवनगढ़ की राह ली। १७ सितम्बर की शाम तक यह क़िला भी अङ्गरेज़ों के हाथों में आगया। इस क़िले के विषय में वुडिङ्गटन ने अपने एक पत्र में लिखा कि—"यदि इस क़िले के अन्दर की सेना 'बाला क़िले' अर्थात् पहाड़ की चोटी पर के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लेती, तो मैं समझता हूँ, हम उस क़िले को कदापि न तोड़ सकते।" * वुडिङ्गटन के इसी पत्र में यह भी लिखा है कि इस क़िले के अन्दर की सेना सींधिया की अधिक वफ़ादार साबित नहीं हुई और क़िले के दरवाज़े खोलने में सोने की चाबी ने अङ्गरेज़ों को ख़ासी मदद दी।

गुजरात में अब दौलतराव सींधिया का कोई इलाक़ा न रहा अथवा जितना इलाक़ा अङ्गरेज़ों ने माधोजी सींधिया को उसकी देशघातकता के इनाम में दिया था, वह सब अब दौलतराव सींधिया से सदा के लिए छिन गया।

---

* ". . . . the garrison offered to capitulate . . . To these terms I agreed, . . . they however tacked other stipulations to the capitulation, *viz.*, that I should agree to pay them the arrears due from Scindhia, ... they agreed to the original terms, . . .

'Could they have obtained possession of the uper fort, or

उड़ीसा प्रान्त

उड़ीसा का अधिकांश भाग उस समय मराठों के अधीन था। नागपुर के भोंसले राजाओं का उस भाग पर आधिपत्य था। प्रान्त के अनेक स्थानीय राजा भोंसले को ख़िराज दिया करते थे। कम्पनी की बालेश्वर की कोठी मराठों ही के इलाक़े में थी और उस कोठी के अङ्गरेज़ मराठों की प्रजा थे। जिस समय मुग़ल सम्राट ने उड़ीसा प्रान्त की दीवानी कम्पनी को प्रदान की थी, उस समय केवल उत्तर की ओर के उस थोड़े से भाग की दीवानी कम्पनी को दी गई थी, जो मुर्शिदाबाद के सूबेदार के अधीन था, शेष समस्त उड़ीसा पर दीवानी और फ़ौजदारी दोनों के सम्पूर्ण अधिकार मराठों के हाथों में थे। किन्तु मराठों की सत्ता उस समय इतनी ज़बरदस्त थी और अङ्गरेज़ों का बल अभी इतना कम था कि उड़ीसा में रहने वाले अङ्गरेज़ मराठों की आज्ञाकारी और नम्र प्रजा की तरह उस प्रान्त में व्यापार करते रहे। लिखा है कि सन् १७६७ में जब मराठों ने कम्पनी से 'चौथ' की पिछली बक़ाया तलब की तो कम्पनी के डाइरेक्टर पिछली बक़ाया के १३ लाख रुपए देने के लिए राज़ी हो गए और साथ ही यह भी चाहा कि मराठे समस्त उड़ीसा प्रान्त की दीवानी का अधिकार कम्पनी को दे दें; किन्तु पत्र व्यवहार होने पर मराठों ने इस दूसरी बात को

Bala Killa, at the top of the mountain, I am inclined his think it utterly impregnable."—Colonel Woodingtion's letter to Colonel Murray, dated 21st September, 1803.

स्वीकार न किया। मालूम होता है कि उस समय से ही उड़ीसा के अन्दर मराठों के विरुद्ध अङ्गरेज़ों की साज़िशें शुरू हो गईं। उड़ीसा में मराठों के अत्याचारों की अनेक झूठी कथाएँ भी उसी समय से गढ़ गढ़ कर फैलाई जाने लगीं।

३ अगस्त सन् १८०३ को मार्किस वेलसली ने करनल कैम्पबेल को एक लम्बा पत्र लिखा जिसमें उसे कटक प्रान्त पर चढ़ाई करने और वहाँ पर राजा राघोजी भोंसले की सामान्य प्रजा, जगन्नाथ पुरी के पण्डों और प्रान्त तथा आस पास के सरदारों, ज़मींदारों तथा सामन्तों को राजा राघोजी भोंसले के विरुद्ध भड़काने और उनके साथ तरह तरह से साज़िशें करने की विस्तृत हिदायतें दी गईं। ये विस्तृत हिदायतें वेलसली की कूटनीति को बड़ी सुन्दरता से चित्रित करती हैं; किन्तु उन्हें यहाँ पर उद्धृत करना व्यर्थ है। करनल कैम्पबेल ने गञ्जम नामक स्थान पर अपनी फ़ौज जमा की। जिस तरह का एलान मैसूर की राजधानी में प्रवेश करते समय मैसूर की प्रजा के नाम जनरल हैरिस ने प्रकाशित किया था, उसी तरह का एलान अब उड़ीसा की प्रजा के नाम प्रकाशित किया गया। सरकारी पत्रों में लिखा है कि "जगन्नाथ के पण्डों के धार्मिक भावों, उनके पूजा पाठ और उनकी धार्मिक प्रतिष्ठा" की ओर विशेष आदर दिखलाया गया, और आस पास के सामन्तों, ज़मींदारों इत्यादि में से किसी को लोभ देकर और किसी को डरा कर जिस तरह हुआ, अपनी ओर फोड़ा गया।

इन कूट प्रयत्नों का और उड़ीसा की भारतीय प्रजा में राज-
तिक अथवा राष्ट्रीय भावों के अभाव का परिणाम यह हुआ
के इतिहास-लेखक जे० बीम्स के शब्दों में जिस समय अङ्गरेज़—

"सामने दिखाई दिए, मराठों को अपनी लड़ाइयाँ अकेले लड़नी पड़ीं,
गों ने उनकी बिलकुल मदद नहीं की।"

यही विद्वान लिखता है कि यदि उड़िया लोग मराठों की मदद
करते तो—"पहाड़ियों और समुद्रतट के योधा राजा हमें बहुत
बड़ी आपत्तियों में डाल सकते थे।"*

किन्तु एक तो कूटनीति में मराठे अङ्गरेज़ों का मुक़ाबला न
कर सकते थे। दूसरे इस युद्ध के लिए अङ्गरेज़ों की तैयारी वर्षों
पहले से हो रही थी और मराठों की कोई तैयारी न थी। करनल
कैम्पबेल के नाम गवरनर-जनरल के जिस पत्र का ऊपर ज़िक्र
किया गया है, वह तक युद्ध के एलान से तीन दिन पहले का लिखा
हुआ था। परिणाम यह हुआ कि उड़ीसा में अङ्गरेज़ों को लगभग
कुछ भी लड़ाई लड़नी नहीं पड़ी। गन्जम की सेना ने बिना
रक्तपात १४ सितम्बर को मानिकपत्तन पर और १८ को जगन्नाथ
पुरी पर क़ब्ज़ा कर लिया।

* ". . . when the English appeared on the scene, the Marathas were left to fight their own battles, quite unsupported by the people. . . . Had they done so, the turbulent Rajas of the hills and the sea coast might have given us a great deal of trouble . . ."—Mr. J. Beams, in his "Note on the History of Orrissa," published in the *Journal of the Asiatic Society of Bengal* for 1883.

उत्तर की ओर कप्तान मॉरगन के अधीन एक दूसरी सेना ने कलकत्ते से जल के रास्ते आकर बालेश्वर पर चढ़ाई की। बालेश्वर के क़िले की मराठा सेना ने अङ्गरेज़ों का मुक़ाबला किया, किन्तु लिखा है कि बालेश्वर की पुरानी बस्ती के ज़मींदार प्रह्लाद नायक ने मराठों के विरुद्ध अङ्गरेज़ों को मदद दी और २१ सितम्बर सन् १८०३ को बालेश्वर अङ्गरेज़ों के हाथों में आगया। तमाम बाज़ारों में ढोल पिटवा दिया गया कि प्रान्त पर अङ्गरेज कम्पनी का क़ब्ज़ा होगया।

गञ्जम वाली सेना अब जगन्नाथ पुरी पर क़ब्ज़ा करने के बाद करनल हारकोर्ट के अधीन कटक की ओर बढ़ी। कटक का क़िला जिसे बाराबट्टी भी कहते थे, अत्यन्त मज़बूत था। क़िले के चारों ओर ३५ फ़ुट से लेकर १३५ फ़ुट तक चौड़ी खाई थी, जिसमें २० फ़ुट गहरा पानी था। क़िले में जाने के लिए केवल एक तङ्ग पुल था। करनल हारकोर्ट २४ सितम्बर को पुरी से चल कर १० अक्तूबर को कटक पहुँचा। कटक का नगर बिना किसी मुक़ाबले के फ़ौरन अङ्गरेज़ों के हाथों में आगया। चार दिन के बाद १४ अक्तूबर को बाराबट्टी का मज़बूत क़िला भी अङ्गरेज़ों के क़ब्ज़े में आगया। निस्सन्देह इस क़िले की संरक्षक सेना में से भी कुछ ने अपने स्वामी राघोजी भोंसले के साथ विश्वासघात किया।

इसके कुछ समय बाद उत्तर और दक्षिण की अङ्गरेज़ी सेनाएँ दोनों आपस में मिल गईं। बालेश्वर और कटक के बीच में मयूरभञ्ज और नीलगिरि नाम की दो रियासतें थीं। मयूरभञ्ज

की रानी और नीलगिरि के राजा के साथ अङ्गरेज़ों की साज़िशें पहले से जारी थीं। जे० बीम्स लिखता है कि एक पृथक सैन्यदल ख़ास इस काम के लिए पहले से भेजा गया कि वह—

"मयूरभञ्ज और नीलगिरि पहाड़ियों का भूगोल सीख ले, ख़ासकर इन पहाड़ों में आने जाने के रास्ते जान ले और दोनों रियासतों के राजाओं से पत्र व्यवहार शुरू कर दे। इन दोनों राजाओं की सब कारर-वाइयों का पता रखने के लिए उनकी रियासतों में गुप्तचर भेजे गए। और यदि उनके कोई वकील या प्रतिनिधि कटक आना चाहें तो उन्हें पासपोर्ट देने की आज्ञा दी गई।"*

इसी पत्र में लिखा है कि मयूरभञ्ज की रानी पहले अङ्गरेज़ों के साथ मिलने के विरुद्ध थी और लड़ने के लिए तैयार हो गई। हारकोर्ट ने उसे पहले कई ख़ुशामद के पत्र लिखे। इस पर भी वह राज़ी न हुई। तब रानी के दत्तक पुत्र युवराज के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार करके, युवराज को रानी से फोड़ा गया। इस प्रकार करनल हारकोर्ट ने रानी को ज्यों त्यों कर राज़ी कर लिया और मयूरभञ्ज की रियासत का कुछ भाग भी कम्पनी के अधीन कर लिया।

---

* ". . . to learn the geography of the Moharbhanj and Nilgiri Hills, especially the passe and to open communications with the Rajas of those two states. Spies were sent into Moharbhanj and Nilgiri to keep a watch on the chiefs, and passports were to be granted to their vakils or representatives, should they desire to visit Cuttack."—J. Beams in the above Notes.

होते होते १२ जनवरी सन् १८०४ को सम्बलपुर पर अङ्गरेज़ों ने क़ब्ज़ा किया। और उड़ीसा का वह सारा भाग जो मराठा साम्राज्य में शामिल था अङ्गरेज़ कम्पनी के शासन में आ गया।

मराठों के शासन में उड़ीसा की प्रजा अत्यन्त ख़ुशहाल थी। जे० बीम्स लिखता है कि चावल उस समय उस प्रान्त में १५ गण्डे का एक सेर अर्थात् एक रुपए का सत्तर सेर (पौने दो मन) बिकता था। प्रान्त भर में कोई यह जानता ही न था कि दुष्काल किसे कहते हैं। इसी लिए जे० बीम्स लिखता है कि जिस समय अपना राज्य जमाने के लिए अङ्गरेज़ी सेना ने उड़ीसा प्रान्त में प्रवेश किया तो—

"वहाँ के लोगों ने यह अच्छी तरह जानते हुए कि हम उस देश से अपरिचित थे, सब ने आपस में एका कर लिया और किसी ने हमें किसी तरह की भी सहायता न दी, किसी ने हमारा खुले मुक़ाबला करने का साहस नहीं किया, किन्तु वे सब के सब जड़वत् अलग बैठे रहे। उन्होंने अपने काग़ज़ात छिपा दिए, और किसी तरह की सूचना हमें न दी। उन्होंने हर जगह किश्तियाँ, बैल और गाड़ियाँ हमारे मार्ग से हटा कर दूर भेज दीं। जिन ज़मींदारों को हमने यह हुकुम दिया कि आप लोग कटक आकर अपनी अपनी जायदादों के विषय में सब तय कर लें, वे नहीं आए, और जब उनके घरों पर उन्हें तलाश किया गया तो नहीं मिले। कहा गया कि कहीं बाहर यात्रा को गए हैं, यह कोई नहीं बताता था कि कहाँ गए हैं। किन्तु यदि अज्ञानवश अङ्गरेज़ अफ़सरों से कोई ग़लती हो जाती थी, तो इसी जड़ निर्जीव जन-समूह में एकाएक

जान आ जाती थी, और ज़ोरों के साथ तथा बार बार शिकायतें होने लगती थीं।"*

निस्सन्देह उड़ीसा की प्रजा अपने मराठा तथा अन्य देशी शासकों के स्थान पर विदेशीय कम्पनी के शासन में आना पसन्द न करती थी। शीघ्र ही साबित हो गया कि उनकी आशङ्काएँ सर्वथा सच्ची थीं। जे० बीम्स लिखता है कि—अङ्गरेज़ों के पहुँचते ही प्रान्त भर में अन्न की भारी कमी पड़ने लगी। लगभग हर पाँचवें वर्ष भयङ्कर दुष्काल पड़ने लगा और सदैव दुष्काल का डर रहने लगा। प्रान्त पर क़ब्ज़ा करने के अगले ही वर्ष कप्तान मॉरगन ने भारत भर के अन्य प्रान्तों से पुरी जाने वाले यात्रियों को सावधान कर दिया कि कटक प्रान्त में चावल की कमी है, इसलिए यात्री अपने अपने प्रान्तों से भोजन की सामग्री साथ लेकर आवें।†

---

* "Well aware of our ignorance of the country, they all with one accord abstained from helping us in any way, no open resistance was ventured upon, but all stolidly sat aloof—papers were hidden, information with held, boats, bullocks and carts sent out of the way, the Zemindars who were ordered to go into Cuttack to settle for their estates did not go, and on searching for them at their homes could not be found, were reported as absent, on a journey, no one knew where. But if from ignorance the English officers Committed any mistake, then life suddenly returned to the dull inert mass, and complaints were loud and incessant."—J. Beams in the above Notes.

† "Cuttack now begins to be noticeable as it is *at frequent*

बुन्देलखण्ड

बुन्देलखण्ड का प्रदेश अङ्गरेज़ों को और भी अधिक सुगमता से मिल गया। यह प्रदेश पेशवा के अधीन था। यहाँ का राजा शमशेर बहादुर पेशवा को ख़िराज देता था। बसईं की सन्धि में पूना के दक्षिण का कुछ इलाक़ा और कुछ सूरत के पास का इलाक़ा पेशवा ने कम्पनी के नाम कर दिया था। अब पेशवा पर ज़ोर देकर उन दोनों छोटे छोटे इलाक़ों के बदले में बुन्देलखण्ड का समृद्ध प्रान्त अङ्गरेज़ों ने पेशवा से माँग लिया।

किन्तु राजा शमशेर बहादुर ने अङ्गरेज़ों की अधीनता में रहना स्वीकार न किया। इसलिए करनल पॉवेल के अधीन एक सेना इलाहाबाद से बुन्देलखण्ड भेजी गई। ६ सितम्बर सन् १८०३ को इस सेना ने जमना पार कर बुन्देलखण्ड में प्रवेश किया। राजा शमशेर बहादुर अपनी सेना लेकर मुक़ाबले के लिए बढ़ा। किन्तु लिखा है कि १६ सितम्बर को गोसाईं हिम्मत बहादुर अपनी विशाल सेना सहित अपने स्वामी से विश्वासघात कर अङ्गरेज़ों से

---

intervals throughout the early years of British rule as a place in constant want of supplies and always on the verge of famine. On first December, 1803 an urgent call is made for fifteen thousand maunds of rice from Balasore. Again on first June, 1804 Captain Morgan is ordered to warn all pilgrims of the great scarcity of rice and cowries at Cuttack and to endeavour to induce them to supply themselves with provisions before entering the province."—J. Beams, in the Notes above quoted.

आ मिला। १३ अक्तूबर को केन नदी के पास अङ्गरेज़ों और हिम्मत बहादुर की संयुक्त सेनाओं का राजा शमशेर बहादुर की सेना के साथ एक संग्राम हुआ। अन्त में हार खाकर शमशेर बहादुर को बेतवा पार कर अपना राज्य छोड़ भाग जाना पड़ा।

१६ दिसम्बर सन् १८०३ को बसई की सन्धि में आवश्यक परिवर्तन करके उस पर पेशवा बाजीराव के दस्तख़त करा लिए गए। इन शर्तों के अनुसार बुन्देलखण्ड का प्रान्त बाज़ाब्ता अङ्गरेज़ कम्पनी के शासन में आ गया।

अलीगढ़, देहली और आगरा

अलीगढ़, देहली, आगरा और इनके आस पास के इलाक़े पर उन दिनों मुग़ल सम्राट का आधिपत्य केवल नाम मात्र का रह गया था। इस तमाम इलाक़े का क्रियात्मक शासन सींधिया कुल के हाथों में था, और वहाँ की रक्षा के लिए माधोजी सींधिया ने दी बॉइन नामक एक फ़्रान्सीसी को नियुक्त कर दिया था। दी बॉइन के बाद एक दूसरा फ़्रान्सीसी कप्तान पैरौं सींधिया के इस इलाक़े की सेनाओं का सेनापति नियुक्त हुआ। यह एक अत्यन्त मनोरञ्जक बात है कि जब कि सींधिया पर एक ख़ास दोष यह मढ़ा जाता था कि उसने अपने यहाँ कप्तान पैरौं के अधीन एक फ़्रान्सीसी सेना नियुक्त कर रक्खी थी, वास्तव में इन दोनों फ़्रान्सीसियों में से दी बॉइन वारन् हेस्टिंग्स का एक ख़ास आदमी था और वारन् हेस्टिंग्स ही की सिफ़ारिश पर माधोजी सींधिया ने उसे अपने यहाँ नौकर रक्खा था, और इसी युद्ध में साबित होगया

कि दी बॉइन का उत्तराधिकारी कप्तान पैरौं भी अङ्गरेज़ों से मिला हुआ था और अङ्गरेज़ कम्पनी के हिसाब में उसके नाम से एक भारी रक़म तक जमा थी।*

७ अगस्त सन् १८०३ को जनरल लेक ने पूर्वोक्त इलाक़े को विजय करने के लिए कानपुर से सेना सहित प्रस्थान किया। २८ अगस्त को वह सींधिया की सरहद पर पहुँचा। २९ को उसने बड़ी आसानी से सींधिया के सरहदी क़िले कोएल को विजय कर लिया। उसी दिन जनरल लेक ने मार्किस वेल्सली के नाम एक 'प्राइवेट' पत्र में इस सरल विजय का कारण यह बताया कि—"कप्तान पैरौं के कुछ साथी, विशेषकर जाट और सिक्ख अङ्गरेज़ों के पहुँचने से पहले ही क़िला छोड़ कर चले गए××× और मराठा सेना के छै यूरोपियन अफ़सर सींधिया की नौकरी छोड़ कर अङ्गरेज़ी सेना की ओर आ मिले।"†

कोएल पर क़ब्ज़ा करने के बाद जनरल लेक ने अलीगढ़ पर चढ़ाई करने का इरादा किया। कोएल से उसने १ सितम्बर सन् १८०३ को मार्क्विस वेल्सली के नाम एक और "प्राइवेट" पत्र लिखा, जिसमें ये स्पष्ट वाक्य आते हैं—

* "Pioneer" 4th September, 1903.

† ". . . Some of his (M. Perron's) confederates left him the moment they heard of our approach, particularly the Jauts, and few Sikhs . . . Six officers of Perron's second brigade are just come in, having resigned the service . . . ."—General Lake's "Private" letter to Marquess Wellesley, dated 29th August, 1803.

"मैं अभी तक इस जगह से नहीं हिला, और न अभी अलीगढ़ का क़िला मेरे हाथों में आया है; मेरा लक्ष्य यह है कि रिशवत पहुँचा कर उस क़िले के अन्दर की सेना को क़िले से बाहर निकाल लूँ, और मुझे विश्वास है, मैं इसमें सफल हूँगा। ××× यह क़िला अत्यन्त ही मज़बूत है, और यदि इसका विधिवत् मुहासरा किया गया तो कम से कम एक महीना लग जायगा। ××× इसलिए यदि थोड़ा सा धन ख़र्च करके मैं अपने क़ीमती आदमियों की जानें बचा सकूँ, तो आप मुझे अपराधी या फ़ज़ूलख़र्च न समझेंगे।"*

तथापि अलीगढ़ के क़िले की हिन्दोस्तानी सेना नमकहलाल साबित हुई। ४ सितम्बर को लेक ने गवरनर-जनरल को फिर लिखा—

"जैसा मैंने आपको पहली तारीख़ के पत्र में लिखा था, उसके अनुसार मैंने हर तरह से समझा कर प्रयत्न किया कि ये लोग क़िला छोड़ दें, और उन्हें एक बहुत बड़ी रक़म धन की देने का वादा किया, किन्तु वे मुक़ाबला करने का दृढ़ निश्चय किए बैठे थे, और उन्होंने बहुत जम कर और, मैं कहूँगा, अत्यन्त वीरता के साथ हमारा मुक़ाबला किया।"†

---

* "I have not yet moved from hence, nor am I in possession of the fort of Allygurh; *my object is to get the troops out of the fort by bribery, which I flatter myself will be done. . . .* The place is extremely strong, and if regularly besieged, will take a month at least. . . . Therefore, if by a little money, I can save the lives of these valuable men, Your Lordship will not think I have acted wrong, or been too lavish of cash."—General Lake's letter to Marquess Wellesley, marked "Private" dated Coel. September 1st, 1803.

† "As I told Your Lordship in my letter of the 1st instt, I had

तथापि क़िले के कुछ हिन्दोस्तानी और अधिकांश यूरोपियन अफ़सरों और सिपाहियों पर लेक का जादू चल गया। ४ सितम्बर को सवेरे जनरल लेक ने क़िले पर हमला किया। सींधिया के उन यूरोपियन अफ़सरों में, जो शत्रु से आ मिले, एक अङ्गरेज़ लूकन था। लूकन ही ने क़िले के गुप्त रास्ते का अङ्गरेज़ों को भेद दिया। जनरल लेक ने अपने पत्र में गवरनर-जनरल से सिफ़ारिश की है कि "लूकन को ख़ूब इनाम दिया जाय। क्योंकि वह सींधिया की नौकरी छोड़ कर इसलिए चला आया था ताकि उससे अपने देश के विरुद्ध कोई काम न हो जाय।"* और क्योंकि अलीगढ़ के क़िले को जीतने में "हमें उसकी सेवाओं से असीम लाभ हुआ है।"*

---

tried every method to prevail upon these people to give up the fort, and offered a very large sum of money, but they were determined to hold out, which they did most obstinately, and I may say most gallantly."—General Lake to the Governor-General dated 4th September, 1803.

* "I feel I shall be wanting in justice to the merits of Mr. Lucan, an officer, a native of Great Britain, who lately quitted the service of Scindhia, to avoid serving against his country, were I not to recommend him to Your Lordship's particular attention. He gallantly undertook to . . . point out the road through the fort, . . . received infinite benefit from his service, . . . it will afford me great satisfaction, if his services are rewarded by Government."—General Lake's letter to Marquess Wellesley dated 4th September, 1803, from Aligarh.

लूकन और उस जैसे अन्य अनेक विश्वासघातकों की सहायता से ४ सितम्बर को ही अलीगढ़ का "अत्यन्त मज़बूत" क़िला अङ्गरेज़ों के हाथों में आ गया। तथापि कहा जाता है कि लेक की सेना के बहुत से आदमी अलीगढ़ की लड़ाई में काम आए।

इस तमाम मामले में सींधिया की सेना के फ़्रान्सीसी सेनापति पैरौं की नियत भी अत्यन्त सन्दिग्ध मालूम होती है। जनरल लेक के कानपुर से चलते समय पैरौं अपनी सेना के साथ अलीगढ़ में मौजूद था। लिखा है कि पैरौं के पास बड़ी ज़बरदस्त सेना थी और हिन्दोस्तान भर में अलीगढ़ का क़िला सर्वथा अजय्य और अलंध्य प्रसिद्ध था। स्वयं जनरल लेक ने मार्क्विस वेलसली को अपनी विजय का समाचार देते हुए लिखा कि—"इस क़िले की असाधारण मज़बूती को देखते हुए, मेरी राय में, अङ्गरेज़ों की वीरता इससे अधिक ज़ोरों में कभी न चमकी होगी।"

पैरौं ने एक बार अपनी सेनाएँ जमा करके क़िले की रक्षा का इरादा ज़ाहिर किया। उसके बाद जनरल लेक के पहुँचने से पहले क़िले को अपने एक फ़्रान्सीसी मातहत पैद्रौं के ऊपर छोड़ कर पैरौं एकाएक हाथरस चला गया। इतिहास-लेखक मिल ने यह कह कर पैरौं के चरित्र की प्रशंसा की है कि—"यदि वह अङ्गरेज़ों के साथ सौदा करके अपना युद्ध का भारी सामान अङ्गरेज़ों के हवाले कर देता तो उसे अङ्गरेज़ों से एक बहुत बड़ी रक़म मिल जाती, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया।" दूसरी ओर यह भी कहा जाता है कि स्वयं सींधिया का विश्वास पैरौं पर से हट गया था और

इसी समय के निकट पैरौं की जगह सींधिया ने एक दूसरा सेनापति नियुक्त करके भेज दिया था। यह भी लिखा है कि पैरौं के अधिकांश अङ्गरेज़ तथा फ़्रान्सीसी मातहत अफ़सर अङ्गरेज़ों से मिल गए थे। मार्क्विस वेल्सली के पत्र में लिखा है—

"मौ० पैरौं ने यह भी कहा कि अपने अधीन यूरोपियन अफ़सरों की विश्वासघातकता और कृतघ्नता से मुझे विश्वास होगया कि अब अङ्गरेज़ी सेना का मुक़ाबला करना व्यर्थ है।"*

ये सब बातें केवल सन्देहजनक हैं, किन्तु अलीगढ़ की विजय की शताब्दी के अवसर पर ४ सितम्बर सन् १९०३ को "पायोनियर" के एक लेखक ने लिखा—

"बयान किया जाता है कि पैरों ने एक बहुत बड़ी 'रक़म अपनी बचत से' ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कारबार में लगा रक्खी थी।"†

निस्सन्देह यह 'बचत की रक़म' इसे अङ्गरेज़ों ही से मिली थी। इसके बाद कोई सन्देह नहीं रह जाता कि कप्तान पैरौं भी कम्पनी का धनक्रीत था।

अलीगढ़ के पतन के बाद पैरौं ने सींधिया की नौकरी छोड़ दी।

जनरल लेक के लिए अब सींधिया के शेष उत्तरीय इलाक़े पर

* ". . . M. Perron also observed that the treachery and ingratitude of his European officers convinced him that further resistance to the British arms was useless."

† "It is asserted that he had 'Savings' to a considerable amount invested in the funds of the East India Company."—"Pioneer" 4th September, 1903.

सेना करना और भी सरल हो गया। गवरनर-जनरल ने लेक को लिखा कि आप अलीगढ़ के बाद सींधिया की राजधानी ग्वालियर पर हमला करें। ग्वालियर में सींधिया के नायब अम्बाजी के साथ लेक का गुप्त पत्र-व्यवहार जारी था, किन्तु अम्बाजी अभी तक सींधिया के साथ विश्वासघात के लिए राज़ी न हुआ था। इसलिए लेक को ग्वालियर की ओर बढ़ने की हिम्मत न हो सकी। उधर दिल्ली में सम्राट शाह आलम के साथ गवरनर-जनरल का पत्र-व्यवहार जारी था। २९ अगस्त को कोएल में जनरल लेक को मुग़ल सम्राट की ओर से एक पत्र मिला। तुरन्त जनरल लेक ने अलीगढ़ लेने के बाद दिल्ली की ओर बढ़ने का निश्चय कर लिया। मार्ग में कौङ्गा का क़िला था। ८ सितम्बर को जनरल लेक ने कौङ्गा के क़िले पर क़ब्ज़ा किया। उसी दिन कौङ्गा से जनरल लेक ने गवरनर-जनरल को एक 'प्राइवेट' पत्र में लिखा—

"हम लोग आज सुबह यहाँ पहुँचे और हमें एक अत्यन्त मज़बूत छोटा सा क़िला मिला। यदि अलीगढ़ के पतन के अगले ही दिन यहाँ की सेना स्वयं क़िला छोड़ कर न चली गई होती तो हमें देर लगती और मुसीबत होती।

"मैं सोचता हूँ कि जब आप सुनेंगे कि किस 'गुप्त उपाय' से यह सब काम किया जा रहा है तो आप बहुत प्रसन्न होंगे। सेना के इतिहास में यह बिलकुल एक नई तरह का काम है, और अभी तक इसमें ख़ूब आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है। मैं समझता हूँ, तीन और पड़ाव में हम दिल्ली के बहुत नज़दीक पहुँच जायँगे।"*

---

* "We arrived here (Kaunga) this morning; and found a

निस्सन्देह संसार के सैनिक इतिहास में जनरल लेक की ये सब विजय "बिलकुल एक नई ही तरह की" विजय थीं। सींधिया के आदमियों के ऊपर इस युद्ध भर में लोहे की गोलियों के स्थान पर जनरल लेक ख़ूब जी खोल कर चाँदी और सोने की गोलियाँ चला रहा था, और सींधिया के विदेशीय नौकरों की दग़ा तथा भारतवासियों में राष्ट्रीय भाव के शोकजनक अभाव दोनों के कारण लेक को "ख़ूब आश्चर्यजनक सफलता" प्राप्त हो रही थी। यही लेक का "गुप्त उपाय" था।

देहली में लुई बौरगुइन नामक एक फ्रान्सीसी के अधीन सींधिया की एक ज़बरदस्त सेना रहती थी, जिसके साथ एक बहुत बड़ा तोपख़ाना था। मालूम होता है, इस लुई बौरगुइन ने सींधिया के साथ विश्वासघात नहीं किया। ११ सितम्बर सन् १८०३ को जमना के इस पार लुई बौरगुइन की सेना और जनरल लेक की सेना में एक घमासान संग्राम हुआ। लेक के अनेक अफ़सर और सिपाही इस संग्राम में काम आए। किन्तु स्वयं सम्राट शाह

very strong little fort, which would have caused delay and trouble had not the troops evacuated it the day after the fall of Aligarh, . . .

"*I think when you hear the SECRET manner in which things have been conducted you will be much pleased, it is quite a new work in the army, and has succeeded hither too wonderfully well.* I think to be very near Delhi in three more marches."—General Lake's letter, marked 'Private' dated September 8th, 1803, to the Governor-General.

आलम के आदमियों के द्वारा लुई बौरगुइन की सेना के भीतर लेक की चाँदी की गोलियाँ चल चुकी थीं। विजय अन्त में जनरल लेक की ओर रही और सींधिया की ज़बरदस्त तोपें अङ्गरेज़ों के हाथ आईं।

१२ सितम्बर को लेक ने गवरनर-जनरल के नाम एक विस्तृत पत्र लिखा कि किन किन कारणों से मैं ग्वालियर का इरादा छोड़ कर दिल्ली की ओर बढ़ आया।

दिल्ली में १६ सितम्बर सन् १८०३ को विजयी लेक ने सम्राट शाहआलम से भेंट की। एक पिछले अध्याय में दिया जा चुका है कि किस तरह के झूठे वादों में फँस कर भोले और अभागे मुग़ल सम्राट ने इस समय अपने देशवासी सींधिया के विरुद्ध विदेशियों का साथ दिया। बहुत सम्भव है कि बिना शाहआलम की सहायता और सहानुभूति के दिल्ली विजय करना अङ्गरेज़ों के लिए इतना सरल न होता। शाहआलम को शुरू से अङ्गरेज़ों पर थोड़ा बहुत सन्देह भी अवश्य था। एक बार उसने कहा था कि—"ऐसा न हो कि मुल्क पर क़ब्ज़ा कर लेने के बाद अङ्गरेज़ मुझे भूल जायँ।" किन्तु सम्राट के दरबार के अन्दर भी अङ्गरेज़ों के छिपे हुए हित-साधक मौजूद थे, उन्हीं के समझाने बुझाने पर शाहआलम ने अङ्गरेज़ों का साथ दिया। अन्त में शाहआलम का डर सच्चा निकला।

१६ सितम्बर सन् १८०३ ही को जनरल लेक ने दिल्ली का समस्त शासन-प्रबन्ध अपने हाथों में ले लिया। कहने के लिए इसके

बाद भी कम्पनी के तमाम अफ़सर तथा अङ्गरेज़ शासक दिल्ली के सम्राट को हिन्दोस्तान का सम्राट मानते रहे, और स्वयं कम्पनी सरकार का उसे अधिराज स्वीकार करते रहे, किन्तु वास्तव में इस समय से ही इन उपाधियों में सिवाय उपचार के और कुछ बाक़ी न रह गया। लेक ने दिल्ली की आमदनी में से बारह लाख रुपए सालाना सम्राट के ख़र्च के लिए नियत कर दिया और भारत सम्राट एक प्रकार से विदेशी कम्पनी का पेन्शनर रह गया।

दिल्ली सम्राट के साथ जनरल लेक के इस सलूक को वर्णन करते हुए इतिहास-लेखक मेजर आर्चर लिखता है—

"इसमें सन्देह नहीं कि सम्राट हम अङ्गरेज़ों को सब से कम पसन्द करता है, क्योंकि उसकी सल्तनत हमारे चङ्गुल से निकल कर फिर कभी भी उसके हाथों में नहीं जा सकती; × × × अङ्गरेज़ों ने बहुत दिनों से सम्राट के अधिकार को नहीं माना, किन्तु जब तक उन्हें इससे फ़ायदा रहा वे कपटनीति द्वारा सम्राट की ओर ऊपर से आदर दिखलाते रहे, और जब उन्हें सम्राट के नाम की सहायता की भी ज़रूरत न रही तो उन्होंने × × × अपनी समस्त कृतज्ञता को एक पेन्शन के अन्दर बन्द कर दिया। × × × सम्राट से उसके राजत्व के लक्षण अलग कर दिए गए, सल्तनत की वार्षिक आय उससे छीन कर विदेशियों के काम में लाई गई, सिवाय अपने ख़ास कुटुम्ब के और हर तरफ़ से उसके अधिकार परिमित कर दिए गए, सारांश यह कि सिवाय हिन्दोस्तान के बादशाह की उपाधि के और सब स्वत्व, सत्ता और अधिकार सम्राट से छीन लिए गए, और यह सब बारह लाख सालाना की शानदार (?) पेन्शन के बदले में।"*

* "That he likes us (the English) the least, there is no

जनरल लेक ने करनल ऑक्टरलोनी को दिल्ली में कम्पनी का ज़िडेण्ट और वहाँ की सेनाओं का प्रधान सेनापति नियुक्त किया, और उसके अधीन एक पलटन और चार कम्पनियाँ शी पैदल और एक पलटन मेवातियों की दिल्ली की रक्षा के लिए छोड़ दीं। इस ऑक्टरलोनी की एक विशेषता यह थी के वह दिल्ली में मुसलमानी ढङ्ग से रहता था, मुसलमानी पोशाक पहनता था, अनेक मुसलमान रण्डियाँ रक्खे हुए था, और दिल्ली भर की रण्डियों और महल के खोजों के ज़रिए शहर और दरबार की तमाम ख़बरें रखता था। सींधिया के उन यूरोपियन अफ़सरों में से अनेक जो अङ्गरेज़ों से मिल गए थे, अब फिर दिल्ली की नई संरक्षक सेना के विविध पदों पर नियुक्त कर दिए गए।

---

doubt, for from our gripe his Kingdom can never be wrested to return again into his own keeping . . . . His authority they (the British) have long since refused but it was stealthy duplicity, honouring him as long as it was found convenient; and, when no longer requiring the aid of the King's name, . . . they summed up their acknowledgement within the compass of a pension. . . . The King has been shorn of his beams of royalty, his revenues have been seized and converted to the use of strangers, his authority every where abrogated but in his own immediate family; in short, he has lost all the rights, powers, and privileges, every thing but the name of King, and King, too, of Hindostan, for the munificent exchange of twelve lacs annually!"—*Tours in Upper India*, By Major Archer, vol. i, p. 126, 27.

२४ सितम्बर को जनरल लेक ने देहली से आगरे की ओर कूच किया। आगरे पहुँच कर कई दिन तक अव्यवस्थित लड़ाई होती रही। क़िले के अन्दर से सींधिया की सेना ने पहले शत्रु का मुक़ाबला किया, फिर जनरल लेक के "गुप्त उपाय" के प्रताप से सींधिया के लगभग ढाई हज़ार सिपाही आगरे के क़िले से निकल कर लेक की सेना में आ मिले। १७ अक्तूबर की शाम को क़िले के अन्दर की बाक़ी सेना ने इस शर्त पर कि उनकी जान और उनके वैयक्तिक माल की रक्षा की जायगी, क़िला अङ्गरेज़ों के सुपुर्द कर दिया।

लसवाड़ी

उत्तर में जनरल लेक के लिए अब केवल एक और लड़ाई लड़नी बाक़ी थी। आगरे और ग्वालियर के बीच में इस समय एक और ज़बरदस्त मराठा सेना थी, जिसमें कुछ दक्षिण से आई हुई थी और कुछ देहली की परास्त सेना शामिल थी। इस सेना के पास अनेक भारी तोपें भी थीं। पता चला कि यह सेना आगरे की ओर बढ़ रही है। २७ अक्तूबर को जनरल लेक इस सेना के मुक़ाबले के लिए आगरे से निकला। १ नवम्बर सन् १८०३ को आगरे के पास लसवाड़ी नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं में मुठभेड़ हुई। सींधिया के इन वफ़ादार सैनिकों ने निस्सन्देह बड़ी वीरता के साथ शत्रु का मुक़ाबला किया। २ नवम्बर को जनरल लेक ने एक 'गुप्त' पत्र में मार्किस वेलसली को लिखा—

"ये लोग शैतानों की तरह लड़े, बल्कि कहना चाहिए वीरों की तरह और यदि हमने ऐसे ढङ्ग से हमला करने का प्रबन्ध न किया होता कि हमें ज़बरदस्त से ज़बरदस्त सेना के लिए, जो कि हमारे मुक़ाबले आ सकती थी, करना चाहिए था, तो मुझे पूरा विश्वास है कि जो ति शत्रु की थी, उससे हम हार जाते।"

किन्तु यहाँ पर भी लेक के न हारने का कारण उसके "हमले कोई ढङ्ग" विशेष न था। इसी पत्र में और आगे चल कर साफ़ लिखता है—

"यदि फ़्रान्सीसी अफ़सर उनके नेता बने रहते तो मुझे डर है कि रिणाम अत्यन्त ही सन्दिग्ध होता। अपने जीवन भर में मैं इतनी बड़ी पत्ति में अथवा उससे मिलती जुलती आपत्ति में कभी नहीं पड़ा। र मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि फिर कभी ऐसी हालत में न हूँ।"*

---

* "These fellows fought like Devils, or rather heroes, and d we not made a disposition for attack in a style that we ould have done against the most formidable army we could ve been opposed to, I verily believe, from the position they ad taken, we might have failel.

* * *

". . . if they had been commanded by French officers, he event would have been, I fear, extremely doubtful. I never was in so severe a business in mylife or any thing like it, and pray to God I never may be in such a situation again."—General Lake's letter marked "Secret" dated 2nd November, 1803, to the Marquess Wellesley.

ऐन उस समय जब कि जनरल लेक को पराजय अपने सामने खड़ी दिखाई दे रही थी, मराठा सेना के नेता अङ्गरेज़ों की ओर आ मिले। जनरल लेक को फिर से आशा बँधी और अन्त में यद्यपि लेक के अनेक अफ़सर और अधिकांश सिपाही लसवाड़ी के मैदान में काम आए, तथापि विजय जनरल लेक ही की ओर रही। लेक के २८ अक्तूबर के एक पत्र से साबित है कि कई दिन पहले से लेक ने अपने "गुप्त उपाय" इस सेना में शुरू कर दिए थे। इस मराठा सेना की तोपें भी अङ्गरेज़ों के हाथ आईं। लसवाड़ी की लड़ाई भी भारत की निर्णायक लड़ाइयों में गिनी जाती है, क्योंकि लसवाड़ी की सेना उत्तरीय भारत में मराठों की अन्तिम सेना थी। मराठों की जो तोपें इन अनेक संग्रामों में अङ्गरेज़ों के हाथ आईं, उनके विषय में अनेक अङ्गरेज़ अफ़सर मुक्त-कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि वे अङ्गरेज़ों की उस समय की तोपों से हर बात में बढ़िया और कहीं अधिक उपयोगी थीं।

दौलतराव सींधिया की सत्ता को समाप्त करने के लिए अब केवल दो बातें बाक़ी थीं। एक राजधानी ग्वालियर पर क़ब्ज़ा करना और दूसरे सींधिया और उसके साथ की सवार सेना को परास्त करना।

ग्वालियर की रक्षा अम्बाजी के सुपुर्द थी। अम्बाजी को सींधिया से फोड़ने के प्रयत्न जारी थे। लसवाड़ी की विजय के बाद जनरल लेक ने मार्क्विस वेल्सली को लिखा—

"मैं बड़ा ख़ुश हूँ कि सिवाय ग्वालियर के आपकी और सब इच्छाएँ

पूरी कर दी हैं। मुझे विश्वास है कि ग्वालियर हमें अम्बाजी के
सन्धि करके मिल जायगा। इन सेनाओं के हार जाने के कारण
ाजी फ़ौरन सन्धि के लिए राज़ी हो जायगा।"*

अगले दिन लेक ने गवरनर-जनरल को लसवाड़ी ही से फिर
पत्र लिखा—

"ज्योंही मैं अपने घायलों को यहाँ से हटा सका, मैं उस सन्दिग्ध
त्र के मनुष्य अम्बाजी की ओर कूच करूँगा। किन्तु पहले मैं धीरे धीरे
गा, क्योंकि जयपुर के राजा के ऊपर मैं यह असर डालना चाहता हूँ
यदि वह शीघ्र राज़ी न हो गया तो मैं जयपुर की ओर बढ़ने वाला
। मेरा उद्देश केवल यह है कि वह डर कर जल्दी से फ़ैसला कर डाले।
समय मालूम होता है वह बहुत सन्दिग्ध खेल खेल रहा है।" †

निस्सन्देह जनरल लेक का "उद्देश केवल डर दिखाना" था।

---

*"I feel happy in having accomplished all your wishes, except
walior, which I trust we shall get possession of by treaty with
mbajee, the fall of these brigades will bring him to terms
mediately."—Lake's Letter to Marquess Wellesley 2nd
ovember, 1803.

† "I shall as soon as I can move my wounded men, begin my
arch towards that doubtful character, Ambajee, but I shall in
e first instance proceed but slowly, as I wish to impress the
Raja of Jeypore with an idea, that, if he does not come to
erms shortly, I may pay him a visit. All I mean by this is to
larm him into some decisive measure; he seems at preseht to
e playing a very suspicious game."—Lake's letter to Governor-
General, marked "Private," dated November 3rd, 1803.

उसे अभी तक जयपुर अथवा ग्वालियर दोनों में से किसी पर भी हमला करने की हिम्मत न थी। राजपूताने के राजाओं के साथ बहुत दिनों से साज़िशें जारी थीं। किन्तु बिना अम्बाजी के फूटे अथवा महाराजा जयपुर की सहायता मिले न वह ग्वालियर पर हमला करने का साहस कर सकता था और न उस हालत में जयपुर पर हमला करने का ही उसे साहस हो सकता था। जनरल लेक ने अथवा उसके साथियों ने हिन्दोस्तान में एक भी लड़ाई अपने सैन्यबल अथवा वीरता के सहारे नहीं जीती और न अङ्गरेज़ों की साज़िशों का जादू अभी तक भी अम्बाजी पर चल पाया था।

किन्तु मालूम होता है कि महाराजा जयपुर लेक की चाल में आ गया। १४ नवम्बर को एक "अत्यन्त गुप्त और प्राइवेट" पत्र में लेक ने गवरनर-जनरल को लिखा—

"लसवाड़ी की विजय से जयपुर के राजा और उसके समस्त बदमाश और दग़ाबाज़ सलाहकारों को अक़ल आ गई है, अब वे लोग मेरे कैम्प की ओर आ रहे हैं।"*

इन सुन्दर (!) शब्दों में जनरल लेक ने भारतीय देशघातकों की क़द्र की। तथापि जो कुछ हुआ हो, इसके बाद भी लेक को ग्वालियर पर हमला करने की हिम्मत न हो सकी।

---

* "It (the victory at Laswari) has brought the Raja of Jeypore and all his wicked and traitorous advisers to reason, they are now upon their march to my camp."—"Private and most secret" Letter from Lake to Governor-General 14th November, 1803

उधर दक्षिण में जनरल वेल्सली अपने भाई गवरनर-जनरल को साफ़ लिख चुका था कि दौलतराव सींधिया को और अधिक हानि पहुँचाने अथवा उसकी सवार सेना से लड़ने की मुझमें अब हिम्मत नहीं है। मार्क्विस वेल्सली महाराजा दौलतराव सींधिया और राजा राघोजी भोंसले दोनों का पूरा सर्वनाश करना चाहता था। किन्तु यह असम्भव साबित हुआ। अङ्गरेज़ों का ख़र्च भी ख़ासकर रिशवतों में बेहद हो चुका था। दोनों पक्ष थक गए थे, और दोनों इस समय सन्धि के लिए उत्सुक थे।

सींधिया और भोंसले के साथ सन्धि

पत्र-व्यवहार शुरू हुआ और दिसम्बर सन् १८०३ में बरार के राजा राघोजी भोंसले और ग्वालियर के महाराजा दौलतराव सींधिया दोनों के साथ अङ्गरेज़ों की सन्धि हो गई, जिसमें दोनों के वे अत्यन्त उपजाऊ प्रान्त, जो अङ्गरेज़ जीत चुके थे, कम्पनी के राज्य में मिला लिए गए।

जसवन्तराव होलकर को अङ्गरेज़ अभी तक अपनी ओर मिलाए हुए थे। असहाय दौलतराव को इस समय सबसे अधिक डर उसके पुराने शत्रु जसवन्तराव होलकर का दिलाया गया। लाचार होकर फ़रवरी सन् १८०४ में दौलतराव सींधिया ने बरहानपुर में कम्पनी के साथ उसी तरह की सबसीडीयरी सन्धि स्वीकार कर ली, जिस तरह की सन्धि पेशवा के स्वीकार करने के विरुद्ध उसने कुछ समय पहले इतने प्रबल प्रयत्न किए थे। कम्पनी की

सेना अब सींधिया के खर्च पर सींधिया के राज्य में, किन्तु कम्पनी के अङ्गरेज़ अफ़सरों के अधीन रहने लगी।

कम्पनी का भारतीय साम्राज्य जितना इस युद्ध से बढ़ा उतना शायद किसी भी दूसरे युद्ध से नहीं बढ़ा। वास्तव में यदि देखा जाय तो मार्क्विस वेल्सली को अब तक अपनी आशाओं से कहीं बढ़ कर सफलता प्राप्त हुई। किन्तु यह सब दूसरे मराठा युद्ध का केवल पूर्वार्ध था। इस युद्ध के उत्तरार्ध का वर्णन आगे के अध्यायों में किया जायगा। उसी वर्ष भारत में अपूर्व सूखा पड़ा, जिसके बाद चारों ओर भयङ्कर अकाल दिखाई देने लगा।

पच्चीसवाँ अध्याय

जसवन्तराव होलकर

होलकर से झूठे वादे

सवन्तराव होलकर आरम्भ में अपनी अदूरदर्शिता के कारण पेशवा तथा अन्य मराठा नरेशों के विरुद्ध अङ्गरेज़ों के हाथों में खेलता रहा। जिस समय कि अङ्गरेज़ सींधिया और भोंसले दोनों के साथ युद्ध की तैयारी कर रहे थे, उसी समय वे जसवन्तराव की ख़ुशामद करने और उसे बढ़ाने में लगे हुए थे। जुलाई सन् १८०३ में जनरल वेल्सली ने क़ादिर नवाज़ ख़ाँ को एक गुप्त पत्र सहित जसवन्तराव के पास भेजा और क़ादिर नवाज़ ख़ाँ द्वारा जसवन्तराव से यह वादा किया कि यदि आप अङ्गरेज़ों के विरुद्ध महाराजा सींधिया और राजा राघोजी भोंसले को सहायता न देंगे तो अङ्गरेज़ सींधिया से लेकर अमुक अमुक इलाक़े आपके हवाले कर देंगे और सदा आपके सहायक रहेंगे। इसके बाद जनरल वेल्सली ने गवरनर-जनरल के कहने से जसवन्त-

राव को कई पत्र लिखे, जिनमें उसने जसवन्तराव से वादा किया कि युद्ध समाप्त होने के बाद गङ्गा और जमना के बीच के बारह ज़िले, दक्षिण के कुछ ज़िले और बुन्देलखण्ड तथा उत्तरीय भारत का कुछ और इलाक़ा, जो पहले होलकर राज्य में रह चुका था, सब आपको दे दिया जायगा। दोनों वेल्सली भाइयों ने अपने छपे हुए पत्रों में जनरल वेल्सली के इन पत्रों के लिखने को स्वीकार किया है। इन झूठे वादों से अङ्गरेज़ों का अभिप्राय उस समय केवल यह था कि जसवन्तराव अङ्गरेज़ों के विरुद्ध सींधिया और भोंसले की सहायता न करे। जनरल वेल्सली और जनरल लेक ने अपने पत्रों में यह भी स्वीकार किया है कि यदि जसवन्तराव होलकर सींधिया की मदद के लिए पहुँच जाता, तो वेल्सली के लिए असाई और अरगाँव के मैदान जीत सकना अथवा लेक के लिए आगरा और लसवाड़ी में विजय प्राप्त कर सकना सर्वथा असम्भव होता।

किन्तु सींधिया और भोंसले दोनों पर विजय प्राप्त करते ही अङ्गरेज़ों ने एकाएक जसवन्तराव की ओर अपना रुख बदल दिया। वास्तव में इस युद्ध के समाप्त होने से पहले ही अङ्गरेज़ों ने जसवन्तराव को भी कुचलने का इरादा कर लिया था। १२ दिसम्बर सन् १८०३ को जनरल वेल्सली ने मार्किस वेल्सली के प्राइवेट सेक्रेटरी मेजर शा को एक पत्र में लिखा—

"जब तक हम होलकर पर हमला न करेंगे और पेशवा के सब इलाक़े पेशवा से न छीन लेंगे, तब तक हम इन देशों से मराठों को क़तई बाहर

निकाल देने में सफल न होंगे, चाहे सींधिया हमें अपने अधिकार दे भी क्यों न दे।"*

यह पत्र उस समय का है, जब कि अङ्गरेज़ जसवन्तराव की ओर ऊपर से गहरी मित्रता दिखा रहे थे।

मार्किस वेलसली के पत्रों से स्पष्ट है कि वह भी होलकर का नाश करने के लिए शुरू से उत्सुक था। किन्तु जब तक सींधिया के साथ सन्धि की लिखा पढ़ी न हो जाय, तब तक होलकर को छेड़ना ठीक न था।

जसवन्तराव होलकर ने भी इस झूठी आशा में कि सींधिया के साथ युद्ध समाप्त होने के बाद अङ्गरेज़ मेरे साथ अपने वादों को पूरा करेंगे, उनके साथ मित्रता क़ायम रक्खी और सींधिया तथा भोंसले की आपत्तियों में उन दोनों को किसी तरह की सहायता न दी। सींधिया और भोंसले के साथ युद्ध समाप्त होते ही जसवन्तराव ने जनरल वेल्सली के पत्रों की नक़लें जनरल लेक के पास भेजीं और वेल्सली के वादों की पूर्ति चाही। लेक ने जसवन्तराव होलकर का पत्र और उसके साथ की सब नक़लें गवरनर-जनरल के पास भेज दीं और उनके साथ अपने २८ दिसम्बर के "प्राइवेट" पत्र में गवरनर-जनरल को लिखा—

* ". . . unless we make war upon Holkar, and deprive the Peshwa of his territories, we shall not succeed in driving the Marhatas entirely from these countries, although Scindhia should cede his rights."—Camp before Gauregarh, 12th December, 1803, General Wellesley's letter to Major Shawe.

"इस पत्र के साथ आपको होलकर का एक पत्र मिलेगा; और मैं यह जान कर प्रसन्न हूँ कि होलकर हमारे साथ मित्रता क़ायम रखना चाहता है। × × ×

"मैं जल्दी में लिख रहा हूँ, × × × होलकर के विषय में मैं आपकी राय और आपका आदेश जानना चाहता हूँ।"

जनरल लेक को अपने "गुप्त उपाय" पर पूर्ण विश्वास था, सींधिया के विरुद्ध वह उन्हें परख चुका था और अब वह होलकर से युद्ध छेड़ने के लिए लालायित था।

मार्क्विस वेल्सली ने जनरल लेक के उत्तर में १७ जनवरी सन् १८०४ को एक "गुप्त" पत्र लिखा, जिसके कुछ वाक्य ये हैं—

"आपके १६,२८ और २६ दिसम्बर सन् १८०३ के पत्र पहुँचे। × × ×

"जिन पत्रों की नक़लें जसवन्तराव होलकर ने आपके पास भेजी हैं वे मेजर जनरल वेल्सली ने अवश्य अपने नाम से ही होलकर के पास भेजे होंगे। मैंने जसवन्तराव होलकर को कोई पत्र नहीं लिखा, किन्तु मैंने अपनी २६ जून की हिदायतों में मेजर जनरल वेल्सली को यह अधिकार दिया था कि आप जसवन्तराव के साथ मित्रता का पत्र-व्यवहार शुरू करें।

* * *

"अब यह उचित है कि जसवन्तराव होलकर की ओर हम अपना व्यवहार निश्चित कर लें।

"माननीय मेजर-जनरल वेल्सली का स्थान जसवन्तराव होलकर के ख़ेमे से इतनी अधिक दूर है कि वहाँ से पत्र-व्यवहार करना कठिन होगा; और चूँकि इस काम के लिए आपकी जगह अधिक सुविधा की होगी,

इसलिए मेरा विचार है कि आप तुरन्त जसवन्तराव होलकर के साथ पत्र व्यवहार शुरू कर दें।"

इतना ही नहीं, वरन् जिस जसवन्तराव ने अङ्गरेज़ों का इतना उपकार किया था और जिसे नागपुर की जलावतनी से निकाल कर अङ्गरेज़ों ही ने पेशवा और सींधिया दोनों से लड़ा कर होलकर कुल की गद्दी तक पहुँचाया था, और जिसे सींधिया से फाड़े रखने के लिए हाल ही में उन्होंने नए इलाक़े देने का वादा किया था, उस जसवन्तराव के विषय में अब इस पत्र में मार्किस वेल्सली ने लिखा—

"होलकर कुल के राज्य के ऊपर खण्डेराव के नाम पर जसवन्तराव होलकर ने जो अपना अधिकार जमा रक्खा है, वह साफ़ तौर पर तुकाजी होलकर के न्याय्य उत्तराधिकारी काशीराव होलकर के अधिकारों का बलात् अपहरण है। इसलिए न्याय के सिद्धान्तों का विचार रखते हुए अङ्गरेज़ सरकार और जसवन्तराव होलकर के बीच कोई ऐसा समझौता नहीं हो सकता, जिसका मतलब यह हो जाय कि हम काशीराव होलकर को उसके पैतृक राज्य से वञ्चित रखने पर सहमत हैं।"

और आगे चल कर—

"अङ्गरेज़ सरकार को इस बात का न्याय्य अधिकार है कि पेशवा से इजाज़त लेकर और पेशवा की ओर से, समझौते द्वारा अथवा बल प्रयोग द्वारा इस तरह की काररवाई करे, जिससे जसवन्तराव होलकर का बल कम हो और काशीराव होलकर को अपने अधिकार फिर से प्राप्त हो जायँ। × × × सम्भव है कि पेशवा इस समय जसवन्तराव की सत्ता को कम करने

अथवा काशीराव को फिर से उसका पैतृक राज्य दिलवाने के लिए उत्सुक न हो। किन्तु यह आशा की जा सकती है कि काशीराव को फिर से गद्दी पर बैठाने और जसवन्तराव को दण्ड देने की इस योजना पर पेशवा को सुगमता से राज़ी किया जा सकेगा। × × ×

"जसवन्तराव होलकर की पराक्रमशीलता, उसके युद्ध-कौशल और उसकी महत्त्वाकांक्षाओं को देखते हुए हिन्दोस्तान में पूरी तरह शान्ति क़ायम करने के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उसकी शक्ति को कमज़ोर कर दिया जाय।"

वास्तव में अङ्गरेज़ों को उस समय भारत में अपना साम्राज्य मज़बूत करना था; स्वभावतः वे भारत के अन्दर और विशेषकर मराठा साम्राज्य के अन्दर किसी भी वीर और पराक्रमी नरेश को न रहने दे सकते थे।

दूसरी ओर मार्किस वेल्सली इतनी जल्दी जसवन्तराव से लड़ने के लिए भी तैयार न था। वह जसवन्तराव को अभी कुछ समय और धोखे में रखना चाहता था। इसी पत्र में उसने आगे चल कर लिखा—

"यदि हम इसी समय काशीराव होलकर को उसकी पैतृक गद्दी पर फिर से बैठाने का प्रयत्न करेंगे तो हमें बहुत अधिक कठिनाई और आपत्ति का सामना करना पड़ेगा। किन्तु यदि हम अभी उतने देश के ऊपर जितने पर कि जसवन्तराव होलकर का इस समय राज्य है, उसका राज्य बना रहने दें तो हमें इतनी कठिनाई या आपत्ति नहीं है। और यदि इस समय हम जसवन्तराव होलकर के साथ प्रेम का व्यवहार बनाए रक्खेंगे तो इसका

यह मतलब नहीं है कि हम आइन्दा भी कभी काशीराव होलकर को उसकी पैतृक गद्दी पर फिर से न बैठा सकेंगे। × × ×

"तथापि यह आवश्यक है कि जसवन्तराव होलकर की ओर हम अपना व्यवहार इस ढङ्ग का रक्खें कि जिससे हमें यह मानना न पड़ जाय अथवा हमें इसकी स्वीकृति देनी न पड़ जाय कि जसवन्तराव राज्य का न्याय्य अधिकारी है × × ×।"

और आगे चल कर गवरनर-जनरल ने इस छल से भरे हुए पत्र में जनरल लेक को आदेश किया कि अभी "आप जसवन्तराव होलकर के साथ मित्रता क़ायम रक्खें और सुलह सफ़ाई का पत्र-व्यवहार जारी रक्खें," साथ ही यह भी आदेश दिया कि आप "युद्ध के लिए जिस तरह आवश्यक समझें, तैयारी भी करते रहें।"*

---

* "I have the honour to acknowledge the receipt of Your Excellency's despatches under date the 19th, 28th and 29th December, 1803. . . .

"*The letters of which Jaswant Rao Holkar has transmitted copies to Your Excellency must have been forwarded to Holkar by Major-General Wellesley in his own name.* I have not addressed any letter to Jaswant Rao Holkar, but Major-General Wellesley was authorized by my instructions of the 26th June, to open an amicable negotiation with that chieftain.

* * *

"It is now expedient to decide the course to be pursued with respect to Jaswant Rao Holkar.

"The great distance of the Honourable Major-General

भारतीय प्रजा में अङ्गरेज़ों की अप्रियता

एक और कठिनाई इस समय कम्पनी के सामने यह थी कि सींधिया और भोंसले के साथ युद्ध के दिनों में कम्पनी के अफ़सरों ने विविध भारतीय नरेशों और प्रजा के साथ जिस तरह का व्यवहार किया था, जिस प्रकार उन्होंने भारतीय नरेशों के साथ पद पद पर अपने वादों का उल्लङ्घन किया था, जगह जगह प्रजा पर अत्याचार किए थे, और विशेषकर उन इलाक़ों में जो कम्पनी के अधीन आ गए थे, वे भीषण अत्याचार शुरू कर दिए थे, जिनमें से कुछ का ज़िक्र इसी अध्याय में आगे चल कर किया जायगा; इन सब बातों के कारण देश भर में चारों ओर उस समय प्रजा

Wellesley's position from the camp of Jaswant Rao Holkar, must render the intercourse difficult from that quarter; and as Your Excellency's situation is more likely to be convenient for that purpose, it is my intention that Your Excellency should immediately open a negotiation with Jaswant Rao Holkar.

* * *

"The authority exercised by Jaswant Rao Holkar, in the name of Khande Rao, over the possessions of Holkar family, is manifestly a usurpation of the rights of Kashi Rao Holkar, the legitimate heir and successor of Tukoji Holkar. Consistently therefore with the principles of justice, no arrangement can be proposed between the British Government and Jaswant Rao Holkar, involving a sanction of the exclusion of Kashi Rao Holkar from his hereditary dominions.

"Under the sanction of His Highness the Peshwa's authority,

से असन्तुष्ट थी, और उनके अनेक शत्रु पैदा हो गए थे। भावी द्ध में उन्हें यह आशा न हो सकती थी कि भारतीय प्रजा और के नेता उसी तरह विदेशियों की मदद करेंगे, जिस तरह उन्होंने छले युद्ध में की थी। इसके विपरीत उन्हें डर था कि नए युद्ध कहीं ये समस्त शक्तियाँ हमारे विरुद्ध न मिल जायँ।

---

e British Government would be justified in adopting measures r the limitation of Jaswant Rao Holkar's power, and for the storation of Kashi Rao Holkar's rights; either by force or mpromise; . . . The Peshwa may not now be anxious r the reduction of Holkar's power, or for the restoration of Kashi Rao Holkar to his hereditary rights. But it may be pected that His Highness would readily concur in a proposition r the restoration of Kashi Rao, and for the punishment of Jaswant Rao Holkar, . . .

"The enterprising spirit, military character, an ambitious views of Jaswant Rao Holkar render the reduction of his power a desirable object with reference to the complete establishment of tranquility in India.

* * *

"An immediate attempt, therefore, to restore Kashi Rao Holkar to his hereditary rights, would involve more positive and certain difficulty and danger than could be justly apprehended from the continuance of Jaswant Rao Holkar in the possession of the territories actually under his authority. A pacific conduct towards Jaswant Rao Holkar in the present moment, will not preclude the future restoration of Kashi Rao Holkar to the possession of his hereditary rights. . . .

दौलतराव सींधिया का नायब अम्बाजी भी अपने स्वामी के साथ विश्वासघात करने को राज़ी न हुआ था। जसवन्तराव के समान वह भी उस समय अङ्गरेज़ों की आँखों में खटक रहा था। ४ फ़रवरी सन् १८०४ को जनरल लेक ने मार्क्विस वेल्सली को लिखा—

"यदि हो सका तो मैं अम्बाजी के साथ लड़ने से बचने का प्रयत्न करूँगा। क्योंकि मुझे यह मालूम होता है कि यदि हम अम्बाजी और होलकर के साथ लड़ाई आरम्भ कर दें, और यदि होलकर हमारे साथ लड़ने का फ़ैसला कर ले, तो सम्भव है कि और बहुत सी शक्तियों के साथ भी हमें लड़ना पड़ जाय, और एक बहुत लम्बे और शायद सर्वव्यापी युद्ध में हमें प्रवेश करना पड़े, इससे निस्सन्देह हमें जहाँ तक हो सके, बचना चाहिए; साथ ही मुझे बड़ा डर है कि जब तक अम्बाजी और होलकर को

"It will be necessary, however, to regulate our proceedings with respect to Jaswant Rao Holkar in such a manner as to avoid any acknowledgment and confirmation of the legitimacy of his dominion, or that of Khande Rao Holkar.

". . . leave Jaswant Rao Holkar in the excercise of his present authority, . . . Your Excellency is authorized to enter into a negotiation with Jaswant Rao Holkar, . . . if peace with Scindhia should be obtained . . . the army under Your Excellency's command should speedily be formed in such a manner . . .

". . . Jaswant Rao Holkar, . . . will anxiously solicit the countenance and favour of our Government."—Marquess Wellesley's letter to General Lake, marked 'Secret,' dated 17th January, 1804

जा न दिया जायगा, तब तक स्थायी शान्ति की आशा नहीं की जा सकती।"*

होलकर की दूरदर्शिता

इसी समय के निकट जसवन्तराव होलकर को पता चला कि जनरल लेक उसकी सेना के तीन यूरोपियन अफ़सरों के साथ, जिनके नाम कप्तान विकर्स, कप्तान टॉड और कप्तान रॉयन थे, साज़िश कर रहा था। इतिहास-लेखक ग्राण्ट डफ़ ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ५८६ पर साफ़ लिखा है कि ये तीनों अङ्गरेज़ अपने स्वामी को छोड़ कर अङ्गरेज़ों की ओर चले जाना चाहते थे। जसवन्तराव को इस विषय में अङ्गरेज़ों और सींधिया के युद्ध से काफ़ी सबक़ मिल चुका था। उसने तुरन्त इन तीनों विश्वासघातकों को सैनिक नियम के अनुसार मौत की सज़ा दी। लेक अब समझ गया कि जसवन्तराव के साथ उसके गुप्त उपायों का चल सकना इतना सुगम न था, जितना सींधिया के साथ।

---

* "I shall endeavour to avoid hostilities with Ambajee, if possible, as it appears to me if we commence a war with him and Holkar, should he choose to be inimical to us, it might bring on a war with many other powers, and lead us into a very long and perhaps a general war, which of course shall if possible be avoided; at the same time *I much fear till Ambajee and Holkar are annihilated that permanent peace can not be expected.*"
—General Lake to Marquess Wellesley, dated 4th February, 1804.

होलकर की माँगें

जसवन्तराव होलकर की माँग अङ्गरेज़ों से इस समय केवल यह थी कि जनरल वेल्सली ने मुझसे जो वादे किए थे, उन्हें पूरा किया जाय। जनवरी सन् १८०४ के अन्त में सींधिया और अङ्गरेज़ों के बीच सुलह हो चुकने के बाद जसवन्तराव ने एक पत्र जनरल वेल्सली को लिखा, जिसमें उसने दक्षिण के कुछ ज़िले अङ्गरेज़ों से माँगे। इसके पाँच या छै सप्ताह बाद जनरल लेक की इच्छा के अनुसार जसवन्तराव ने अपने कुछ वकील जनरल लेक के पास भेजे। १८ मार्च सन् १८०४ को इन वकीलों ने जसवन्तराव की निम्नलिखित माँगें जनरल लेक के सामने पेश कीं—

"१, होलकर को अपने पूर्वजों के रिवाज के अनुसार 'चौथ' जमा करने की इजाज़त होनी चाहिए।

"२, होलकर राज्य के पुराने इलाक़े जैसे इटावा, इत्यादि, गङ्गा और जमना के बीच के १२ ज़िले, और एक ज़िला बुन्देलखण्ड का, होलकर को मिल जाने चाहिएँ।

"३, हरियाना का इलाक़ा जो पहले होलकर कुल के राज्य में था, फिर उसे मिल जाना चाहिए।

"४, जो देश इस समय होलकर के राज्य में है उसकी भविष्य के लिए ज़िम्मेदारी होनी चाहिए, और जिस तरह की सन्धि अङ्गरेज़ों ने सींधिया के साथ की है उसी तरह की होलकर के साथ होनी चाहिए।"

जो इलाक़े होलकर ने अङ्गरेज़ों से माँगे, उनमें से बहुत से ऐसे थे जो पहले होलकर राज्य में शामिल रह चुके थे और

ठों की आपसी लड़ाइयों अथवा मराठों और अङ्गरेज़ों की ड़ाइयों में होलकर कुल से छिन गए थे। इसके अतिरिक्त ये स्त इलाक़े वे थे जिन्हें वेल्सली ने होलकर को देने का वादा कर खा था। इस बात से भी गवरनर-जनरल या उसके भाई दोनों में किसी को इनकार न था कि जिन पत्रों में ये वादे दर्ज थे वे रल वेल्सली ही के लिखे हुए थे।

होलकर से युद्ध

किन्तु अङ्गरेज़ जसवन्तराव से अपना काम निकाल चुके । समस्त मराठा मण्डल में अब वही एक पराक्रमी और बलवान रेश रह गया था, जिसे अब कुचलना आवश्यक था। जनरल क होलकर से युद्ध छेड़ने के लिए अत्यन्त उत्सुक था। गवरनर-नरल के नाम ११ फ़रवरी सन् १८०४ के एक पत्र में लेक ने ीकार किया है कि सबसे पहले उसने अपनी कुछ सेना सहित रवरी सन् १८०४ में होलकर की उत्तरी सीमा की ओर चढ़ाई ी। होलकर के अपने राज्य से निकलने का उस ओर केवल क ही मार्ग था। लेक ने इस मार्ग को जाकर अपनी सेना से क लिया। उसके बाद अप्रेल के शुरू में लेक ने तीन पलटन दल जयपुर की ओर रवाना कर दी, जिनका उद्देश जयपुर के ाजा पर दबदबा जमाकर उसे होलकर के विरुद्ध अपनी ओर रना था। जसवन्तराव इस सब से समझ गया कि अङ्गरेज़ ोखे से मुझ पर हमला करना चाहते हैं। जनरल लेक ने भी

मार्क्विस वेल्सली पर ज़ोर देना शुरू किया कि होलकर के साथ जल्दी से युद्ध शुरू कर दिया जाय। जो अनेक "प्राइवेट" पत्र इस समय लेक ने गवरनर-जनरल को लिखे हैं, उनमें अङ्गरेज़ों के पुराने मित्र और हितसाधक जसवन्तराव के लिए "शैतान" (Devil), "डाकू" (Robber) जैसे शब्द उपयोग किए गए हैं और जसवन्तराव की माँगों को "धृष्टता" (Insulting) बतलाया गया है। कहा जाता है कि इसी समय जसवन्तराव होलकर के कुछ पत्र जनरल लेक के हाथों में पड़े, जिनमें जसवन्तराव भारत के कुछ हिन्दू और मुसलमान नरेशों को अङ्गरेज़ों के विरुद्ध अपने साथ मिलाने के लिए साज़िश कर रहा था।

निस्सन्देह जसवन्तराव अङ्गरेज़ों के बदले हुए रुख़ को इस समय आँखों से देख रहा था। वह देख रहा था कि अङ्गरेज़ ऊपर से उससे मित्रता की बातें कर रहे थे, साथ ही अपने वादों को टाल रहे थे, उसकी सेना के अफ़सरों को अपनी ओर फोड़ रहे थे और उसकी सरहद पर फ़ौजें जमा कर रहे थे। वह अब इस बात को समझने लगा था कि केवल स्वार्थ की दृष्टि से भी यदि उसने अपने जीवन में कोई सबसे बड़ी भूल की थी तो वह यह कि उसने इन विदेशियों के वादों और उनकी मित्रता पर विश्वास किया। ऐसी सूरत में उसका भारत के अन्य हिन्दू और मुसलमान नरेशों की सहानुभूति अपनी ओर करने का प्रयत्न करना कोई विचित्र बात न थी। तथापि यह एक विचित्र बात अवश्य है कि ब्रिटिश भारत के इतिहास में जब कभी भी अङ्गरेज़ों के चित्त में

किसी भारतीय नरेश के साथ युद्ध करने की इच्छा उत्पन्न हुई है तब ही इस प्रकार के पत्र उन्हें कहीं न कहीं से हाथ आगए हैं। कई सूरतों में इस तरह के पत्र पूरी तरह जाली साबित भी हो चुके हैं। इसलिए जनरल लेक के आयरलैण्ड तथा भारत के शेष चरित्र को देखते हुए जसवन्तराव होलकर के इन पत्रों या उनके उत्तरों का जाली होना कोई आश्चर्य की बात नहीं हो सकती। निस्सन्देह उस समय के शेष हालात को देखते हुए बहुत अधिक सम्भावना यही है कि यह समस्त पत्र-व्यवहार जाली था।

जो हो, ४ अप्रेल सन् १८०४ को लेक ने यह पत्र-व्यवहार गवरनर-जनरल के पास भेजा और उसके साथ ही गवरनर-जनरल को यह सूचना दी कि मैं उत्तर की ओर विशेष स्थानों पर सेनाएँ जमा करने वाला हूँ। वास्तव में यह एक प्रकार से होलकर के साथ युद्ध की प्रस्तावना थी।

इस पर भी जसवन्तराव होलकर ने कोशिश की कि किसी तरह शान्ति द्वारा सब मामले का निबटारा हो जाय। उसकी माँगों में कोई भी बात न्याय के विरुद्ध न थी। वह अङ्गरेज़ों से केवल उनके वादों की पूर्ति चाहता था। २७ मार्च सन् १८०४ को उसने जनरल लेक को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने जनरल लेक का ध्यान फिर जनरल वेल्सली के वादों की ओर दिलाया। उन वादों की पूर्त्ति चाही और लिखा—

"× × × निस्सन्देह मित्रता का सम्बन्ध पत्रों के आने जाने अथवा एक

दूसरे की ओर रिवाजी आदर सत्कार दिखलाने पर निर्भर नहीं है। उचित यह है कि परिणाम को अच्छी तरह सोच समझ कर आप पहले मुझे यह सूचना दीजे कि आप समस्त झगड़ों को तय करने, प्रजा की सुख शान्ति में बाधा न पड़ने देने और मित्रता क़ायम रखने के लिए किन किन उपायों की तजवीज़ करते हैं, ताकि उसके बाद मैं आपके पास एक ऐसा विश्वस्त आदमी भेज सकूँ जिसे दोनों पक्ष वाले मन्ज़ूर कर लें; आपके प्रेम पर हर तरह विचार करते हुए, कम्पनी अथवा उसके सम्बन्धियों की ओर मेरे दिल में किसी तरह की शत्रुता के विचार नहीं हैं; हमारी इस मित्रता को बढ़ाने के लिए आप भी अपनी ओर से प्रेम-पत्र भेजने की मुझ पर कृपा करते रहिए।"

निस्सन्देह जसवन्तराव का पत्र अत्यन्त विनम्र और उचित था, तथापि जनरल लेक ने इसके उत्तर में ४ अप्रेल सन् १८०४ को होलकर को लिखा—

"× × × आपकी माँगें बे बुनियाद हैं, और आपको यह मालूम होना चाहिए कि अङ्गरेज़ सरकार ने हिन्दोस्तान अथवा दक्षिण की किसी भी रियासत के साथ अपने राजनैतिक सम्बन्ध में इस तरह की माँगें आज तक कभी मन्ज़ूर नहीं कीं, और इस तरह की माँगें सुनना भी अङ्गरेज़ सरकार की ताक़त और शान के ख़िलाफ़ है।"

इसका साफ़ अर्थ यह था कि सिवाय युद्ध के और कोई उपाय इन मामलों को तय करने का न था।

उधर जनरल लेक के ४ अप्रेल के पत्र के उत्तर में मार्क्विस वेल्सली ने १६ अप्रेल को एक "गुप्त" पत्र द्वारा जनरल लेक को सूचना दी—

"× × × मैं निश्चय कर चुका हूँ कि जितनी जल्दी हो सके, जसवन्त-राव होलकर के साथ युद्ध शुरू कर दिया जाय।"

उसी दिन मार्किस वेल्सली ने जनरल वेल्सली को लिखा कि आप दक्षिण की ओर से होलकर के चान्दोर के इलाक़े पर हमला कर दें, और एक पत्र सींधिया दरबार के रेज़िडेण्ट को लिखा कि आप सींधिया को इस बात के लिए तैयार करें कि सींधिया अङ्गरेज़ों के साथ मिल कर अपनी सेना होलकर के राज्य पर हमला करने के लिए भेजे।

स्मरण रखना चाहिए कि अभी तक अङ्गरेज़ों की ओर से युद्ध का कोई बाज़ाब्ता एलान न हुआ था और न जसवन्तराव को कोई सूचना दी गई थी।

जनरल लेक को पूरा विश्वास था कि जिस सरलता से मैं सींधिया को परास्त कर सका उससे अधिक आसानी से अब होलकर का नाश कर सकूँगा। जनरल लेक की आशा के दो मुख्य आधार थे। एक अपने "गुप्त उपायों" से होलकर के आदमियों को अपनी ओर फोड़ सकना और दूसरे दक्षिण से जनरल वेल्सली का हमला, किन्तु दुर्भाग्यवश इस अवसर पर दोनों बातों में लेक को धोखा हुआ। जब से जसवन्तराव ने अपनी सेना के तीन विश्वास-घातक यूरोपियन अफ़सरों को मरवा डाला था, तब से उसकी सेना में और विश्वासघातक पैदा कर सकना लेक के लिए लगभग असम्भव हो गया था। दूसरे जनरल वेल्सली की ओर से भी लेक की आशा पूरी न हो सकी।

जनरल वेल्सली की असफलता के कई कारण थे, जिनमें मुख्य कारण यह था कि अङ्गरेज़ों के दुर्व्यवहारों के कारण वेल्सली को इस बार भारतीय प्रजा से रसद इत्यादि की सहायता की बिलकुल आशा न थी। जनरल वेल्सली की कठिनाइयों को बयान करते हुए मिल लिखता है—

"××× किन्तु ऐसे देश से सेना का लाना और ले जाना जिसमें रसद और चारा बिलकुल न मिल सकता था, जनरल वेल्सली को इतना ख़तरनाक मालूम हुआ कि उसने लिख दिया कि (होलकर के दक्षिणी इलाक़े) चान्दोर पर हमला करना वर्षा शुरू होने से पहले मेरे लिए लगभग असम्भव है।"*

जनरल वेल्सली ने, जो इस बात को अच्छी तरह जानता था कि पिछले संग्रामों में उसके अत्याचारों और प्रतिज्ञा-भङ्ग का भारतवासियों पर कितना बुरा असर पड़ा है, १७ मार्च सन् १८०४ को जनरल स्टुअर्ट को लिखा—

"दक्षिण से हिन्दोस्तान को सेना ले जाना ठीक न होगा। यदि हमारी सेनाएँ चान्दोर से उत्तर में चली गईं तो पेशवा और दक्षिण के सूबेदार (निज़ाम) दोनों के तमाम इलाक़ों भर में पचास होलकर खड़े हो जायँगे; और नर्बदा और तापती के बीच की पहाड़ियों से निकल सकना हमारे लिए अत्यन्त दुष्कर हो जायगा ×××"

२० अप्रेल सन् १८०४ को जनरल वेल्सली ने मेजर मैलकम को लिखा—

* Mill. vol. vi p. 401.

"××× मैं दक्षिण से सेना हटाने की हिम्मत नहीं कर सकता।"

जनरल वेल्सली ने अब जनरल लेक पर ज़ोर देना शुरू किया कि पहले आप उत्तर से जसवन्तराव पर हमला करें, किन्तु ठीक यही कठिनाई, जो दक्षिण में वेल्सली को थी, उत्तर में लेक को भी थी।

सींधिया के साथ छल

जसवन्तराव होलकर के विरुद्ध अङ्गरेज़ इस समय सबसे अधिक दौलतराव सींधिया और उसकी सबसीडीयरी सेना की सहायता पर निर्भर थे। जसवन्तराव और दौलतराव में अङ्गरेज़ों ही के सबब शुरू से अनबन और एक दूसरे पर अविश्वास चला आता था। अङ्गरेज़ों ने इस अविश्वास को बनाए रखने और उससे लाभ उठाने का सदा भरसक प्रयत्न किया। किन्तु इस समय उनके सामने एक भारी कठिनाई यह थी कि दौलतराव सींधिया भी उनसे सर्वथा सन्तुष्ट न था। इस असन्तोष का मुख्य कारण यह था कि जो सन्धि हाल में कम्पनी और दौलतराव के बीच हो चुकी थी, अङ्गरेज़ पद पद पर उसका उल्लङ्घन कर रहे थे। सबसे पहली बात यह कि उस सन्धि के अनुसार ग्वालियर का क़िला और गोहद का इलाक़ा दौलतराव को मिलना चाहिए था। किन्तु मार्क्विस वेल्सली के इस इलाक़े पर बहुत पहले से दाँत थे। उसने खुली सीनाज़ोरी द्वारा इस इलाक़े को कम्पनी के अधिकार में रखना चाहा। जनरल वेल्सली ने जनवरी सन् १८०४ से अप्रेल

सन् १८०४ तक के कई पत्रों में कम्पनी के इस विश्वासघात को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। मेजर मैलकम के नाम १७ मार्च के एक पत्र में जनरल वेल्सली ने लिखा—

"इस विषय पर यदि न्याय के साथ विचार किया जाय तो जिस सन्धि को तोड़ दिया जाय वह ऐसी ही है जैसे कभी की ही नहीं गई। इस मामले में यदि पूर्वोक्त सिद्धान्त का उपयोग किया जाय तो मालूम होगा कि ये इलाक़े सन्धि से पहले सींधिया ही के क़ब्ज़े में थे, सींधिया ने इस सन्धि द्वारा अथवा किसी भी दूसरे पत्र या समझौते द्वारा ये इलाक़े हमारे नाम नहीं किए, इसलिए ये इलाक़े सींधिया ही को मिलने चाहिएँ।

"राजनैतिक दृष्टि से × × × पिछले युद्ध में और सुलह की बातचीत करने में मैं अनेक कठिनाइयों को केवल इसलिए पार सका, क्योंकि लोगों को अङ्गरेज़ों के वादों पर एतबार था।"*

वास्तव में गोहद का राजा शुरू से सींधिया का सामन्त था। अङ्गरेज़ अब इस राजा को सींधिया से फोड़ कर अपनी ओर रखना

---

* "The fair way of considering this question is, that a treaty broken is in the same state as one never made; and when that principle is applied to this case, it will be found that Scindhia, to whom the possessions belonged, before the treaty was made, and by whom they have not been ceded by the treaty of peace, or by any other instrument, ought to have them.

"In respect to the policy of the question, . . . What brought me through many difficulties in the war and the negotiations for peace? The British good faith, and nothing else."—General Wellesley to Major Malcolm, 17th March, 1804.

चाहते थे। इसीलिए गवरनर-जनरल ने सन्धि की शर्तों की ज़रा भी परवा न कर जनरल लेक को लिख कर ज़बरदस्ती गोहद का इलाक़ा और ग्वालियर का क़िला, गोहद के राजा के नाम पर कम्पनी के अधीन कर लिया। इस पर १३ अप्रेल को जनरल वेलसली ने मैलकम को लिखा —

"मुझे इस तमाम मामले में हद से ज़्यादा घृणा हो गई है; × × × उस समय सन्धि से सब ख़ुश थे, अब मालूम होता है सब पर लालच का भूत सवार हो गया है × × ×।"*

जनरल वेलसली के विरोध का केवल एक कारण था। उसे डर था कि ऐसा करने से आयन्दा किसी भी भारतीय नरेश और विशेषकर सींधिया को कभी भी अङ्गरेज़ों के वादों पर विश्वास न होगा। जनरल वेलसली को अपनी आयन्दा की कठिनाई का ख़याल था; किन्तु मार्किस वेलसली इस बात के सहारे फूल रहा था कि उसने सींधिया के दरबार और सेना के अनेक लोगों को रिशवतें दे देकर अपनी ओर फोड़ रक्खा था। स्वयं जनरल वेलसली ने २६ फ़रवरी सन् १८०४ को गवरनर-जनरल को सूचना दी—

"× × × सींधिया के दरबार के ऊपर हमारा क़ाबू इतना अधिक हो

---

* "I am disgusted beyond measure with the whole concern; . . . All parties were delighted with the peace, but the demon of ambition appears now to have pervaded all; . . . ."
—General Wellesley to Major Malcolm, 13th April, 1804.

गया है कि यदि कभी सींधिया कम्पनी के साथ लड़ाई करेगा, तो उसके आधे सरदार और उसकी आधी सेना हमारी ओर आ जायगी।"*

दौलतराव सींधिया भी अपनी असहाय स्थिति को थोड़ा बहुत समझता था; तथापि वह बराबर ग्वालियर के क़िले और गोहद के इलाक़े दोनों के विषय में अपने न्याय्य अधिकार पर ज़ोर देता रहा।

इसके अतिरिक्त सींधिया को अङ्गरेज़ों के विरुद्ध इस समय एक और ज़बरदस्त शिकायत थी। अहमदनगर का क़िला पिछली सन्धि के अनुसार अङ्गरेज़ों को मिल गया था। किन्तु अहमदनगर से मिले हुए कुमारकुण्डा, जामगाँव इत्यादि सींधिया के कई परगने थे। सन्धि में यह तय हो गया था कि इन परगनों में सींधिया को नियत संख्या से अधिक सेना रखने की इजाज़त न होगी; किन्तु यदि उन परगनों के लोग या वहाँ का कोई ज़मींदार सींधिया के बिरुद्ध उपद्रव करेगा अथवा यदि सींधिया को वहाँ की मालगुज़ारी वसूल करने में किसी तरह की कठिनाई होगी तो सींधिया के तहसीलदार अहमदनगर क़िले के अङ्गरेज़ क़िलेदार से इस बात की शिकायत करेंगे और अङ्गरेज़ी सेना फ़ौरन मौक़े पर पहुँच कर

---

* ". . . we have got such a hold in his Durbar, . . . that if ever he goes to war with the Company, one half of his chiefs and of his army will be on our side."—General Wellesley to Major Shawe (Private Secretary to the Governor-General), dated 26th February, 1804.

उपद्रवों को शान्त करेगी और मालगुज़ारी वसूल करने में सींधिया के आदमियों को मदद देगी। किन्तु इसके विपरीत सन्धि के होते ही आस पास के भीलों और अन्य लोगों ने—निस्सन्देह अङ्गरेज़ अफ़सरों के उकसाने पर—महाराजा सींधिया के इन परगनों पर धावे मारना, और लूट मार करना शुरू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों के अन्दर सींधिया का वह तमाम इलाक़ा वीरान दिखाई देने लगा, यहाँ तक कि दूर दूर तक आबादी अथवा खेती का निशान तक न मिलता था। सींधिया के तहसीलदारों ने बार बार अङ्गरेज़ अफ़सरों का ध्यान इस ओर दिलाया और सन्धि की शर्तों के अनुसार उनसे मदद चाही, किन्तु किसी ने उनकी प्रार्थनाओं पर ध्यान न दिया। मजबूर होकर महाराजा दौलतराव ने स्वयं अपनी सेना इन उपद्रवों को शान्त करने के लिए भेजनी चाही, किन्तु अङ्गरेज़ों ने सन्धि की शर्तें सामने लाकर एतराज़ किया। दौलतराव दोनों तरह से लाचार हो गया। उसने बार बार इन तमाम बातों की सूचना गवरनर-जनरल और जनरल लेक दोनों को दी। किन्तु दोनों ही लगातार इस विषय में टालमटोल करते रहे।

इस सब स्थिति में होलकर के विरुद्ध सींधिया से सहायता ले लेना इतना आसान न था। मार्क्विस वेल्सली ने अब दौलतराव सींधिया को धोखा देने और होलकर के विरुद्ध उससे सहायता प्राप्त करने का एक और उपाय निकाला।

उसने आगामी युद्ध के विषय में बड़े ज़ोर के साथ अङ्गरेज़ों

की निस्स्वार्थता और परोपकारिता का एलान किया और लिखा कि—

"होलकर की शक्ति को परास्त कर देने के बाद मेरा इरादा यह नहीं है कि होलकर कुल का कोई भी इलाक़ा कम्पनी के क़ब्ज़े में किया जाय। चान्दोर और उसके मातहत और आस पास का इलाक़ा सम्भवतः पेशवा को दे दिया जायगा; गोदावरी के दक्खिण के होलकर के दूसरे इलाक़े दक्खिण के सूबेदार (निज़ाम) को दिए जायँगे ; और होलकर के बाक़ी तमाम इलाक़े सींधिया को दे दिए जायंगे, बशर्ते कि सींधिया जसवन्तराव होलकर को परास्त करने में मदद दे।"*

इतिहास-लेखक मिल ने बड़ी सुन्दरता के साथ दिखलाया है कि मार्किस वेल्सली का यह एलान केवल एक छल था, जिसका उद्देश यह था कि जसवन्तराव के विरुद्ध सींधिया अङ्गरेज़ों को मदद दे। कुछ ही दिन पहले मार्किस वेल्सली ने अपने इस नए युद्ध का उद्देश "काशीराव होलकर का पैतृक राज्य राज्यापहारी

* " . . . it is not his intention, in the event of the reduction of Holkar's power, to take any share of the possessions of the Holkar family for the Company. Chandore, and its dependencies and vicinity, will probably be given to the Peshwa; and the other possessions of Holkar situated to the south-ward of the Godawari, to the Subhedar of the Deccan; all the remainder of the possessions of Holkar will accrue to Scindhia, provided he shall exert himself in the reduction of Jaswant Rao Holkar." —Governor-General's instructions to the British Resident with Scindhia, dated 16th April, 1804, (Mill, vol. vi, chapter xiii).

जसवन्तराव होलकर से वापस लेकर काशीराव को दिलवा देना" बतलाया था ; किन्तु अब इस नए बटवारे में काशीराव का कहीं नाम भी नहीं लिया गया।

ख़ुशी से अथवा लाचारी से अथवा लोभ में आकर अङ्गरेज़ों के कहने पर सींधिया ने अपनी सेना जसवन्तराव होलकर के मालवा प्रदेश पर हमला करने के लिए भेज दी। बापूराव सींधिया और जीन बैप्टिस्टे फ़िलौसे इस सेना के सेनापति थे। फ़िलौसे की सेना ने होलकर के आष्टा, सिहोरे, भिलसा इत्यादि कुछ स्थानों पर क़ब्ज़ा भी कर लिया। होलकर से युद्ध शुरू हो गया।

अङ्गरेज़ी सेना की असफलता

करनल मरे उस समय गुजरात में था। जनरल वेल्सली ने करनल मरे को लिखा कि आप अपनी सेना और गायकवाड़ की सेना सहित गुजरात की ओर से होलकर की राजधानी इन्दौर पर हमला कर दीजे।

जनरल वेल्सली स्वयं चान्दोर का मोहासरा करने के लिए बम्बई से बढ़ा, किन्तु मार्ग की कठिनाइयों के कारण उसे फिर पीछे लौट आना पड़ा।

गुजरात की सेना को भी होलकर के विरुद्ध कोई सफलता न हुई। लेक अपनी पुरानी आदत के अनुसार होलकर की सेना के अन्दर गुप्त साज़िशों की कोशिश में लगा हुआ था। होलकर के पिण्डारी सरदार अमीर ख़ाँ का ऊपर ज़िक्र किया जा चुका है।

इस बार फिर जनरल वेल्सली ने २ मार्च सन् १८०४ को पूना से मेजर मैलकम को लिखा—

"मरसर अमीर ख़ाँ को अपनी ओर मिला रहा है; और यदि उसने अमीर ख़ाँ को होलकर से फोड़ लिया तो होलकर का ख़ात्मा हो जायगा।"*

किन्तु जसवन्तराव की शुरू की एक अहतियात के कारण एक अमीर ख़ाँ को छोड़कर जसवन्तराव के विरुद्ध इस तरह की साज़िशों में अङ्गरेज़ों को और अधिक सफलता न हो सकी। अमीर ख़ाँ भी एक दर्जे तक सन्दिग्ध खेल ही खेलता रहा। इसलिए एक ओर करनल मरे और जनरल वेल्सली दोनों की असफलता, और दूसरी ओर जनरल लेक के "गुप्त उपायों" का न चल सकना, इन सब बातों से जनरल लेक का दिल अब बिलकुल टूट गया। १२ मई को एक "प्राइवेट" पत्र में उसने गवरनर-जनरल को सलाह दी कि होलकर के साथ युद्ध बन्द कर देना चाहिए। इस पर २५ मई सन् १८०४ को विवश होकर गवरनर-जनरल ने जनरल लेक, जनरल वेल्सली और मद्रास तथा बम्बई के गवरनरों सब को लिख दिया कि जसवन्तराव होलकर के साथ युद्ध बन्द कर दिया जाय और तुरन्त समस्त सेनाएँ युद्धक्षेत्र से वापिस बुला ली जायँ।

---

* "Mercer is in treaty with Meerkhan; and if he should draw him off from Holkar, there is an end of the latter."—General Wellesley's letter to Major Malcolm, dated 2nd March, 1804.

३० मई को गवरनर-जनरल ने जनरल वेल्सली को दक्षिण से कलकत्ते बुला लिया और दक्षिण की सेनाओं का सेनापतित्व उसकी जगह करनल वैलेस को सौंप दिया।

बुन्देलखण्ड में अङ्गरेज़ों की हार

किन्तु इससे कुछ ही पहले लेक ने एक अत्यन्त गर्व-पूर्ण पत्र में जसवन्तराव को लिख दिया था कि अङ्गरेज़ सरकार और उसके साथी आपकी "शक्ति को नाश करने का निश्चय कर चुके हैं।"

इसके बाद जसवन्तराव के लिए चुप बैठना असम्भव था। उसने अपनी सेना को अङ्गरेज़ी सेना पर हमला करने की आज्ञा दे दी। अङ्गरेज़ों की एक सेना उस समय करनल फ़ॉसेट के अधीन बुन्देलखण्ड में मौजूद थी। २१ मई की रात को होलकर के लगभग पाँच हज़ार पिण्डारी सवारों ने इस सेना पर हमला किया। करनल फ़ॉसेट लिखता है कि अङ्गरेज़ों को अपने गुप्तचरों द्वारा इस हमले का पहले से पता लग गया था, और मुक़ाबले के लिए अङ्गरेज़ी सेना कूच नामक स्थान के निकट तैयार कर ली गई थी। तथापि अङ्गरेज़ी सेना ने बड़ी बुरी तरह हार खाई और होलकर के पिण्डारी सवार अङ्गरेज़ों की अनेक तोपें, बन्दूक़ें, गोला बारूद, गाड़ियाँ इत्यादि उठा कर ले गए और कम्पनी के एक एक अङ्गरेज़ तथा देशी अफ़सर और सिपाही को मैदान में काट कर ख़त्म कर गए।*

---

* ". . . the detachment in the village, consiting of two

निस्सन्देह जान और माल की हानि के अतिरिक्त यह हार अङ्गरेज़ों के लिए बड़ी ज़िल्लत की हार थी। लेक ने इसके विषय में २८ मई को गवरनर-जनरल के नाम एक अत्यन्त दुखभरा पत्र लिखा, और करनल फ़ॉसेट को, जो मैदान से कुछ ही दूर चार पलटन देशी सिपाही और ४५० गोरे सिपाहियों सहित मौजूद था, किन्तु सम्भवतः पिण्डारियों के मुक़ाबले का साहस न कर सका, इस कर्त्तव्य-विमुखता के लिए बरख़ास्त कर दिया।

२५ मई को गवरनर-जनरल ने लेक को युद्ध बन्द कर देने के लिए लिखा। उस पत्र को पाने से पहले ही २८ मई को लेक ने गवरनर-जनरल को इस दुर्घटना की सूचना दी। अङ्गरेज़ों के लिए अब अपनी इस ज़िल्लत को धोना आवश्यक हो गया।

८ जून सन् १८०४ को गवरनर-जनरल ने लेक को उत्तर दिया—

"× × × इस घटना से अङ्गरेज़ी सेना की ज़िल्लत हुई है और अङ्गरेज़ सरकार के हित ख़तरे में पड़ गए हैं।

"इस अपूर्व दुर्घटना से जो जो बुरे परिणाम पैदा हो सकते हैं उनके विस्तार का अनुमान कर सकना कठिन है × × ×

"बुन्देलखण्ड की इस स्थिति के कारण मैं आपको अपनी इस राय की सूचना देना आवश्यक समझता हूँ कि जो जो प्रबन्ध मैंने अपने २१ मई

---

companies of Sepoys, fifty European artillery, fifty gun luscurs, with two 12-pounders, two howitzers, one 6-pounder, and twelve tumbrils, were entirely taken by the enemy, and the men and officers all cut to pieces . . . ." (Wellesley's Despatches, iv 72 73)

सन् १८०४ के पत्र में लिखे थे, वे अब मुलतवी कर दिए जायँ, और जसवन्तराव होलकर और उसके साथ के लुटेरे सरदारों को परास्त करने के लिए जिस तरह सम्भव हो सके, प्रयत्न और परिश्रम किया जाय × × ×"*

जसवन्तराव पर भयङ्कर हमला

जसवन्तराव होलकर के साथ अङ्गरेज़ों का युद्ध अब फिर गम्भीरता के साथ शुरू हो गया। तीन ओर से तीन सेनाएँ होलकर पर हमला करने के लिए तैयार की गईं। सब से मुख्य एक विशाल सेना उत्तर में जनरल लेक के अधीन, दूसरी सेना दक्खिण में करनल वैलेस के अधीन, और तीसरी गुजरात में करनल मरे के अधीन।

जनरल मॉनसन के अधीन अङ्गरेज़ी सेना की लज्जाजनक पराजय

जसवन्तराव होलकर के साथ अङ्गरेज़ों का जिस प्रकार अब

* " . . . the honour of the British arms has been disgraced, and the interests of the British Government hazarded, . . .

" It is difficult to calculate the extent of the evil consequences which may result from this unparalleled accident. . . .

" In consequence of the state of affairs in Bundelkhand, it appears to be necessary to apprize Your Excellency of my opinion that the arrangements stated in my instructions of the 25th May, 1804, must be postponed, and every possible effort and exertion must be made to reduce Jaswant Rao Holkar, and the predatory chiefs connected with him, . . "—Governor-General's letter to General Lake, dated 8th June, 1804.

युद्ध हुआ उसके मुक़ाबले में मालूम होता है कि दौलतराव सींधिया और राघोजी भोंसले के साथ उनका युद्ध केवल बच्चों का खेल था। पिछले युद्ध में सींधिया के अहमदनगर, अलीगढ़ और कोएल जैसे सुदृढ़ क़िले केवल रिशवतों द्वारा बिना रक्तपात अङ्गरेज़ों ने अपने अधीन कर लिए थे। किन्तु जसवन्तराव होलकर ने शुरू ही में दूरदर्शिता के साथ अपनी सेना के तीन विश्वासघातक यूरोपियन अफ़सरों को मरवा कर उस सेना के अन्दर अङ्गरेज़ों के इन "गुप्त उपायों" का चल सकना असम्भव कर दिया था।

सब से पहला काम होलकर के विरुद्ध जनरल लेक ने यह किया कि एक सेना करनल डॉन के अधीन भेज कर १६ मई सन् १८०४ को टोंक रामपुरा का क़िला अपने अधीन कर लिया। बहुत सम्भव है कि इस क़िले की सरल विजय में विश्वासघातक अमीर ख़ाँ की मदद रही हो, क्योंकि बाद में अमीर ख़ाँ की सेवाओं के बदले में यही टोंक की रियासत अङ्गरेज़ों ने अमीर ख़ाँ और उसके वंशजों को प्रदान कर दी।

बुन्देलखण्ड में अङ्गरेज़ों की अपमान-जनक पराजय के बाद गवरनर-जनरल की आज्ञानुसार जनरल लेक ने पाँच पलटन देशी सिपाहियों की, क़रीब तीन हज़ार सवार और काफ़ी तोपख़ाना, जनरल मॉनसन के अधीन जसवन्तराव होलकर के राज्य पर हमला करने के लिए भेजा। लेक की योजना यह थी कि पश्चिम में गुजरात की ओर से करनल मरे फिर होलकर के इलाक़े उज्जैन पर आक्रमण करे और उत्तर की ओर से जनरल मॉनसन होलकर

राज्य में प्रवेश करे, और इसके बाद ये दोनों सेनाएँ मिलकर जसवन्तराव की शक्ति का ख़ात्मा कर दें। गायकवाड़ की सबसीडीयरी सेना मरे के साथ और सींधिया की सबसीडीयरी सेना मॉनसन के साथ थी।

मार्क्विस वेल्सली ने होलकर के विरुद्ध सींधिया की सबसीडीयरी सेना के अतिरिक्त महाराजा दौलतराव से और अधिक सेना की सहायता माँगी। सींधिया की शिकायतों का ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त सींधिया को एक बहुत बड़ी कठिनाई धन की थी। पिछले युद्ध से उसकी आर्थिक अवस्था अत्यन्त बिगड़ गई थी। उसने नई सेना की तैयारी के लिए अङ्गरेज़ों से धन की सहायता माँगी, किन्तु अङ्गरेज़ों ने इनकार कर दिया। सींधिया ने यहाँ तक प्रार्थना की कि यह सहायता मुझे क़र्ज़ के तौर पर दी जाय। पिछली सन्धि के अनुसार सींधिया ने धौलपुर, बारी इत्यादि के परगने बतौर ज़मानत कम्पनी को दे दिए थे और यह तय हो गया था कि इन परगनों की मालगुज़ारी में से साढ़े बीस लाख रुपए सालाना कम्पनी महाराजा सींधिया को दिया करेगी। दौलतराव सींधिया ने अब यह कहा कि जो रक़म फ़ौज के ख़र्च के लिए अङ्गरेज़ इस समय मुझे क़र्ज़ दें वह आयन्दा इस साढ़े बीस लाख सालाना में से काट ली जाय।

निस्सन्देह सींधिया की प्रार्थना अत्यन्त उचित थी, किन्तु मार्क्विस वेल्सली और रेज़िडेण्ट वेब ने इसे भी स्वीकार न किया। इतने पर भी दलतराव सींधिया या तो अपनी उस समय की स्थिति

से विवश था, अथवा जसवन्तराव के विरुद्ध उसके हृदय में काफ़ी द्वेष था, अथवा वह मार्क्विस वेल्सली के नए वादों के लोभ में आ गया। जिस तरह हो, उसने बापूजी सींधिया और सदाशिव-राव के अधीन छै या सात पलटन पैदल और दस हज़ार सवार जमा करके ठीक समय पर जनरल मॉनसन की सहायता के लिए भेज दिए। सींधिया को पूरी आशा थी कि जब यह सेना मॉनसन की सेना के साथ मिल जायगी तो अङ्गरेज़ उसके ख़र्च, रसद इत्यादि का समस्त प्रबन्ध कर देंगे। किन्तु जनरल लेक अथवा जनरल मॉनसन ने सींधिया की इस सेना की आवश्यकताओं की ओर ज़रा भी ध्यान न दिया। बापूजी सींधिया जब किसी तरह अपनी सेना की रसद का प्रबन्ध न कर सका और अङ्गरेज़ भी उसे बिलकुल मदद देने को तैयार न हुए तो विवश होकर उसने अपनी सेना का एक भाग, कुछ सवार और कुछ पैदल, सदाशिवराव के अधीन रसद की तलाश में दूसरी ओर रवाना कर दिया, और स्वयं अपनी शेष सेना सहित जनरल मॉनसन की सहायता के लिए उसके साथ रहा।

पहली जुलाई सन् १८०४ को जनरल मॉनसन ने अपनी इस विशाल सेना सहित मुकन्दरा के पहाड़ी दर्रे से होकर होलकर के इलाक़े में प्रवेश किया। २ जुलाई को इस सेना ने हिङ्गलासगढ़ के क़िले पर क़ब्ज़ा किया। इसके बाद यह सेना चम्बल नदी की ओर बढ़ी। ७ जुलाई को जब यह सेना मुकन्दरा से क़रीब पचास मील आगे बढ़ आई थी, जनरल मॉनसन को सूचना मिली कि

जसवन्तराव होलकर अपनी सेना सहित चम्बल पार कर इस ओर बढ़ा चला आ रहा है।

इसी बीच करनल मरे ने गुजरात की ओर से दूसरी बार उज्जैन पर चढ़ाई की। इस बार फिर मार्ग में उसे रसद की सख्त कठिनाई हो गई। यहाँ तक कि मरे की सेना के पास केवल दो दिन का सामान बाक़ी रह गया। विवश होकर और कोई चारा न देख पहली जुलाई सन् १८०४ को मरे दूसरी बार अपनी सेना सहित गुजरात की ओर लौट गया।

जनरल मॉनसन को जब मरे के लौट जाने और जसवन्तराव के बढ़ने का समाचार मिला, तो वह भी स्वयं आगे बढ़ने का साहस न कर सका। मॉनसन ने देख लिया कि जिस प्रदेश से होकर वह निकल रहा था वहाँ की प्रायः समस्त प्रजा अङ्गरेज़ों से असन्तुष्ट और जसवन्तराव के पक्ष में थी।

८ जुलाई को सवेरे जनरल मॉनसन तथा होलकर की सेनाओं का आमना सामना हुआ। मॉनसन ने लेफ़्टेनेण्ट ल्यूकन को आज्ञा दी कि तुम सवारों सहित होलकर के मुक़ाबले के लिए आगे रहो। बापूजी सींधिया को मॉनसन ने कहला भेजा कि आप अपने सवारों सहित ल्यूकन की सहायता के लिए उसके साथ रहिए। मॉनसन स्वयं पैदल पलटनों के साथ पीछे की ओर रहा। बापूजी सींधिया के सवारों ने ल्यूकन के सवारों के साथ आगे बढ़ कर होलकर की सेना का मुक़ाबला किया। कहते हैं कि

ल्यूकन की ओर के कुछ भारतीय सवार इस लड़ाई में अङ्गरेज़ों का साथ छोड़ कर होलकर की ओर जा मिले।

थोड़ी देर के संग्राम के बाद होलकर की सेना ने ल्यूकन के शेष समस्त सवारों को उसी मैदान में खेत कर दिया और ल्यूकन को क़ैद कर लिया। यह वही ल्यूकन था जो दौलतराव सींधिया की नौकरी में रह चुका था और जिसने सींधिया के साथ विश्वासघात करके अलीगढ़ का मज़बूत क़िला अङ्गरेज़ों के हवाले कर दिया था। इसके बाद कोटा पहुँच कर ल्यूकन होलकर ही की क़ैद में पेट के दर्द से मर गया। बापूजी सींधिया को भी इस संग्राम में भारी हानि सहनी पड़ी। उसके सात सौ सवार मर गए अथवा घायल होकर बेकार हो गए और उसका बहुत सा सामान होलकर के सिपाहियों ने छीन लिया। बापूजी स्वयं अपने शेष थके माँदे सवारों सहित पीछे हट कर मॉनसन से जा मिला।

मॉनसन के पास इस समय पर्याप्त पैदल सेना थी। तथापि होलकर के बढ़ते ही आगे बढ़ कर होलकर से मोरचा लेने के स्थान पर मॉनसन ने घबरा कर अब पीछे की ओर भागना शुरू किया और ९ जुलाई के दोपहर को होलकर राज्य की सरहद पर पहुँच कर दम लिया। मैदान सर्वथा होलकर के हाथों में रहा।

इतनी विशाल अङ्गरेज़ी सेना की इस लज्जाजनक पराजय का मुख्य कारण निस्सन्देह यह था कि जनरल लेक के "गुप्त उपाय" जसवन्तराव होलकर की सेना में न चल पाए थे।

जसवन्तराव होलकर मॉनसन का बराबर पीछा करता रहा।

११ जुलाई को उसने सरहद पर पहुँच कर मॉनसन और उसकी बाक़ी सेना पर फिर हमला किया। दूसरी बार मैदान गरम हुआ, जिसके अन्त में अपने असंख्य मुर्दों और घायलों को मैदान में छोड़ कर रातोरात जनरल मॉनसन को कोटा राज्य की ओर भाग जाना पड़ा। १२ जुलाई को मॉनसन कोटा पहुँचा।

कोटा के राजा ज़ालिमसिंह से मॉनसन को सहायता की आशा थी, किन्तु उसने भी साफ़ इनकार कर दिया। उसी दिन मॉनसन ने बूँदी की रियासत से होकर चम्बल नदी को पार कर रामपुरा पहुँचने का इरादा किया। ज़ोर की बारिश के कारण चम्बल को पार करना अत्यन्त कठिन हो गया था। इसलिए १४ जुलाई को आस पास के ग्रामों से रसद जमा करने के लिए मॉनसन को चम्बल के इस पार ठहरना पड़ा। इतिहास-लेखक ग्राण्ट डफ़ ने मॉनसन की सेना की इस भगदड़ और उसके कष्टों को विस्तार के साथ बयान किया है। १५ जुलाई को मॉनसन की तोपें इतनी बुरी तरह कीचड़ में फँस गईं कि उन्हें निकालना लगभग असम्भव हो गया। उधर पास के ग्रामों में नाज का पता न था। जीवित रहने के लिए आगे बढ़ना आवश्यक था। मजबूर होकर मॉनसन ने अपने साथ के गोले बारूद को वहीं आग लगा दी, और तोपों को यथासम्भव बेकार करके बूँदी के राजा के हवाले छोड़ दिया। लिखा है कि यद्यपि बूँदी का राजा तोपों के निकालने में अङ्गरेज़ों को मदद न दे सका, तथापि उसका व्यवहार उनके साथ मित्रता का था।

किन्तु चम्बल नदी के ऊपर ही बापूजी सींधिया ने मॉनसन का साथ छोड़ दिया। कारण यह था कि मॉनसन का व्यवहार इस तमाम समय में बापूजी सींधिया के साथ अत्यन्त रूखा रहा। बापूजी सींधिया को सदा शत्रु के सामने करके मॉनसन स्वयं पीछे रहता था। बापूजी की काफ़ी हानि भी हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त बापूजी की सेना को भारी आर्थिक कष्ट था, उनकी तनख़ाहें चढ़ी हुई थीं और बापूजी के अनेक बार कहने पर भी मॉनसन ने उन्हें धन या रसद की सहायता देने से इनकार किया। इस सबसे बढ़कर मॉनसन के चम्बल पार करने के समय बापूजी की सेना अभी इस ओर ही थी, नदी चढ़ी हुई थी, बापूजी ने मॉनसन से प्रार्थना की कि आप पार पहुँच कर किश्तियों को वापिस कर दें, ताकि हम लोग पार जा सकें। किन्तु मॉनसन ने न जाने किस विचार से किश्तियों को वापस तक न किया। सम्भवतः मॉनसन के चित्त में बापूजी सींधिया की ओर से शुरू से अविश्वास था। बापूजी के लिए नदी को पैदल पार कर सकना असम्भव था। मजबूर होकर वह अपनी सेना सहित कोटा के निकट लौट आया। इतने में होलकर की सेना ने पीछे से आकर कोटा को घेर लिया। बापूजी अब अच्छी तरह समझ गया कि होलकर के विरुद्ध अङ्गरेज़ों का साथ देना सींधिया अथवा उसके देश किसी के लिए भी हितकर नहीं हो सकता। बापूजी और उसकी सेना की जान इस समय बिलकुल होलकर के हाथों में थी। लाचार होकर राजा ज़ालिमसिंह के समझाने पर और स्वयं अपने सिपाहियों के ज़ोर

देने पर बापूजी सींधिया अपनी सेना सहित अब होलकर के साथ मिल गया।

मॉनसन १७ जुलाई को चम्बेली नदी पर पहुँचा। यह नदी भी ख़ूब चढ़ी हुई थी। मॉनसन ने सब से पहले अपने तोपख़ाने को हाथियों पर पार किया। उसके बाद धीरे धीरे कुछ को हाथियों पर, कुछ को लकड़ियों के बेड़ों पर, और कुछ को कहीं से रास्ता निकाल कर पैदल, इस प्रकार उसने दस दिन के अन्दर समस्त सेना सहित चम्बेली को पार किया। होलकर के कुछ सवार बराबर कोटा से बढ़ कर मॉनसन की सेना को दिक़ करते रहे। इस तमाम भगदड़ में मॉनसन के सैकड़ों सिपाही शत्रु के हाथों मार डाले गए, सैकड़ों अनेक बीमारियों से मरे, और सैकड़ों ही नदी में डूब गए अथवा कीचड़ में फँस कर रह गए। ग्राण्ट डफ़ लिखता है कि आख़ीर में अनेक हिन्दोस्तानी सिपाहियों की स्त्रियाँ और उनके बच्चे चम्बेली के इस पार रह गए, और आस पास की पहाड़ियों से भीलों ने आकर उन असहाय स्त्रियों और बच्चों को क़त्ल कर डाला। उनके पति और सेना के अफ़सर दूसरे किनारे से खड़े उनकी चिल्लाहट सुनते रहे और सब देखते रहे, किन्तु कुछ न कर सके।

निस्सन्देह यदि जसवन्तराव अपनी मुख्य सेना सहित इस स्थान पर पहुँच जाता तो चम्बेली नदी के ऊपर ही मॉनसन और उसकी सेना को निर्मूल कर सकता था। किन्तु सम्भवतः लगातार वर्षा के कारण वह समय पर न पहुँच पाया; और २९ जुलाई को

मॉनसन अपनी रही सही थकी हुई सेना और कुछ सामान लेकर रामपुरा पहुँच गया।

जनरल लेक के २१ जुलाई के एक पत्र में लिखा है कि जसवन्तराव की सेना और मॉनसन की सेना की संख्या में अधिक अन्तर न था। उसी पत्र में यह भी लिखा है कि जनरल लेक अभी तक बराबर जसवन्तराव के आदमियों को अपनी ओर फोड़ने के प्रयत्नों में लगा हुआ था। गवरनर-जनरल और जनरल लेक दोनों मॉनसन की इस अपमान-जनक पराजय का हाल सुन कर बेहद घबरा गए।

२८ जुलाई को गवरनर-जनरल ने जनरल लेक के नाम "एक अत्यन्त गूढ़ और गुप्त" पत्र में लिखा—

"अभी (साढ़े चार बजे शाम को) आपका २० जुलाई का एक पत्र कप्तान आर्मस्ट्रॉङ्ग के नाम मिला, उससे मालूम होता है कि करनल मॉनसन की सेना होलकर के सामने पीछे हटती चली जा रही है और मुकन्दरा दर्रे को छोड़ कर चली आई है।

"यह स्थिति बहुत ही दुखदायी है। बिना अत्यन्त ज़ोरदार प्रयत्न किए हमारी इज़्ज़त किसी तरह फिर से क़ायम नहीं हो सकती। मुझे डर है कि जितनी हानि हमारी हो चुकी है, अब हम कितनी भी कोशिश क्यों न करें, उसे पूरा करने का समय निकल चुका।"

इसके बाद गवरनर-जनरल ने जनरल लेक को सलाह दी—

"जो पत्र आज मिले हैं उनसे मालूम होता है कि जब तक फिर आप

यं सेना सहित जाकर होलकर पर ज़ोरों से हमला न करेंगे, सफलता की कोई आशा नहीं रही ; × × ×"*

१७ अगस्त सन् १८०४ को मार्किस वेल्सली ने जनरल लेक को फिर एक "प्राइवेट" पत्र में लिखा—

"पिछला पत्र लिखने के बाद, मालूम हुआ है कि करनल मॉनसन की सेना अपनी तोपें, सामान इत्यादि सब खोकर, बड़ी मुसीबत की हालत में मालवा प्रदेश को बिलकुल छोड़ कर चली आई।"†

इसी पत्र में गवरनर-जनरल ने लेक को आज्ञा दी कि होलकर की सेना के सब लोगों को आम तौर पर और "पठानों और मुसलमानों" को ख़ास तौर पर लोभ देकर अपनी ओर फोड़ा जाय।

---

* "By a letter just received (half past 4 O'clock. p. m.) from Lieut-Colonel Lake to Captain Armstrong, dated 20th July, it appears that Colonel Monson's detachment was retreating before Holkar, and had quitted the Mucundra Pass.

"This is a most painful state of affairs. Nothing can retrieve our character but the most vigorous effort. I fear that all our exertions will now be too late to recover all we have lost.

"The despatches received today seem to leave no hope of success unless the Commander-in-Chief can again take the field in person, and attack Holkar with vigour ; . . ."—Governor-General's "Most Secret and Confidential" "Notes" to General Lake, dated 28th July, 1804.

† "Since the date of my last notes, it appears that Colonel Monson's detachment has retired altogether from Malwah with loss of guns, camp equipage, etc., and in great distress."—

२९ जुलाई को मॉनसन रामपुरा पहुँचा। जनरल लेक ने समाचार पाते ही आगरे से दो पलटन देशी सिपाहियों की, कुछ सवार, छै तोपें और बहुत सा रसद का सामान मॉनसन के पास भेजा और उसे रामपुरा से निकल कर होलकर पर हमला करने को लिखा। तथापि २२ अगस्त सन् १८०४ तक मॉनसन को रामपुरा से बाहर निकलने का साहस न हो सका, और २२ अगस्त को रामपुरा से निकलने पर भी होलकर पर हमला करने के स्थान पर उसने फिर कुशलगढ़ की ओर भागना शुरू किया। इसका कारण यह था कि कुशलगढ़ में सदाशिव भाऊ भास्कर के अधीन सींधिया की छै पलटन और २१ तोपें मौजूद थीं, जो शुरू में बापूजी सींधिया के साथ से अलग हो गई थीं। मॉनसन को आशा थी कि यह समस्त सेना होलकर के विरुद्ध मेरा साथ देगी और कुशलगढ़ ही में अपनी सेना के लिए मुझे काफ़ी रसद भी मिल सकेगी।

उधर जसवन्तराव ने अभी तक मॉनसन का पीछा न छोड़ा था। मॉनसन के रामपुरा से निकलते ही २३ अगस्त की शाम को बन्नास नदी के किनारे होलकर अपनी सवार सेना सहित फिर एक बार मॉनसन से चार मील की दूरी पर आ पहुँचा। २४ अगस्त को सवेरे मॉनसन के दाहिने हाथ पर एक बड़े गाँव में होलकर ने डेरे डाले। मॉनसन ने अब अपनी कुछ सेना को सामान के साथ बन्नास के पार कर दिया और शेष सेना लेकर एक बार

Marquess Wellesley's 'Private' letter to General Lake, dated 17th August, 1804

म्मत करके होलकर की सेना पर हमला किया। शुरू में एक लमहे के
ए मॉनसन का पल्ला कुछ भारी मालूम होता था, किन्तु अन्त में यहाँ
भी होलकर की सेना ने इस पार की अङ्गरेज़ी सेना को क़रीब क़रीब
त्म कर दिया। होलकर के कुछ सवार नदी पार करके मॉनसन के
मान के पीछे लपके। लाचार होकर मॉनसन को अपने तमाम
मान, मुर्दों, ज़ख्मियों, यहाँ तक कि थके माँदे लोगों को भी पीछे
ड़ कर जान बचा बन्नास पार कर कुशलगढ़ की ओर भाग जाना
ड़ा। २५ अगस्त की रात को मॉनसन कुशलगढ़ पहुँच गया।

कुशलगढ़ जयपुर के राज्य में था। सदाशिव भाऊ भास्कर के
धीन सींधिया की सेना यहाँ पर मौजूद थी। मॉनसन को पूरी
ाशा थी कि यह सेना अङ्गरेज़ों का साथ देगी। मार्क्विस वेल्सली
पत्रों से पता चलता है कि वह भी इस बात के लिए हर तरह
ार लगा रहा था। किन्तु सींधिया और उसके आदमियों के
त्तों में अङ्गरेज़ों के इस समय तक के तमाम व्यवहार को देखते
काफ़ी घृणा उत्पन्न हो चुकी थी। सदाशिव भाऊ भास्कर और
सकी सेना ने मॉनसन को किसी तरह की सहायता न दी। अन्त
मजबूर कुशलगढ़ को भी अपने लिए कुशल का स्थान न पा,
अगस्त की रात को मॉनसन वहाँ से आगरे की ओर भागा।
ार्ग में फिर होलकर के कुछ सवारों के साथ मॉनसन की कई
ोटी छोटी लड़ाइयाँ हुईं जिनमें बहुत कुछ हानि सहते हुए भागते
ागते अन्त में ३१ अगस्त सन् १८०४ को अपने रहे सहे आदमियों
हित मॉनसन आगरे पहुँच गया।

मुकन्दरा दर्रे से लेकर आगरे तक की इस तमाम भगदड़ और लगातार हारों में अङ्गरेज़ कम्पनी का केवल जानों का जो नुक़सान हुआ उसे जनरल लेक ने गवरनर-जनरल के नाम २ सितम्बर के एक "प्राइवेट" पत्र में इस प्रकार वर्णन किया है—

"इस लज्जाजनक और घातक घटना के विषय में इस समय मैं और कुछ न कहूँगा, क्योंकि अनेक कारणों से मेरा चित्त इतना उद्विग्न है कि मैं इस दुर्घटना की हानियों और उसके कारणों को बयान नहीं कर सकता। इससे अधिक सुन्दर सेना ने कभी कूच न किया होगा, और मुझे यह कहते हुए दुख होता है कि यदि लैफ़्टेनेण्ट ऐण्डरसन का बयान ठीक है, तो मेरी सेना का सर्वश्रेष्ठ भाग अर्थात् पाँच पूरी पलटनें और छै कम्पनियाँ बिलकुल मिट गईं, और केवल परमात्मा ही जानता है कि अब उनकी जगह किस प्रकार पूरी हो सकेगी, साथ ही (अफ़सरों में) मुझे आज सेना के कुछ सबसे अच्छे और सबसे अधिक होनहार नौजवानों की मृत्यु पर शोक मनाना पड़ रहा है।"*

भारत के अन्दर अङ्गरेज़ी सेना की इतनी भारी ज़िल्लत की

* "I will not at present say anything more upon this disgraceful and disastrous event, as my feelings are for many reasons too much agitated to enter into the misfortunes and causes of it. A finer detachment never marched, and sorry I am to say, that if this account of Lieutenant Anderson is correct, I have lost five battalions and six companies, the flower of the army, and how they are to be replaced at this day, God only knows. I have to lament also the loss of some of the finest young men and most promising in the army"

सरी मिसाल ढूँढने के लिए हमें पहले मराठा युद्ध की ओर जाना ड़ता है। इसका मुख्य कारण केवल एक था। होलकर के विरुद्ध ारतवासियों का अङ्गरेज़ों के साथ सहयोग न करना। भारत के न्दर अङ्गरेज़ों ने जितनी भी लड़ाइयाँ विजय कीं, सब प्रायः एक उपाय से कीं। वही "उपाय" सींधिया और भोंसले के विरुद्ध नरल लेक और उसके साथियों का एक मात्र अमोघ शस्त्र था। कन्तु होलकर के विरुद्ध अभी तक यह शस्त्र न चल सका था। वीरता थवा युद्ध-कौशल में उस समय के अङ्गरेज़ भारतवासियों के ामने किसी तरह तुलना में न ठहर सकते थे।

अङ्गरेज़ों का अपयश इस समय तमाम भारत में फैल गया। जसवन्तराव होलकर के नाम से अङ्गरेज़ वैसे ही चौंकने लगे जैसे कुछ समय पहले हैदरअली अथवा टीपू के नामों से चौंका करते थे। गवरनर-जनरल और जनरल लेक दोनों इसके बाद अपने पत्रों में जसवन्तराव का नाम लिखने के स्थान पर उसे "लुटेरा" (The Plunderer), "राक्षस" (The Monster), "हत्यारा" (the Murderer) इत्यादि सुन्दर शब्दों में बयान करने लगे। जनरल वेलसली को जब कलकत्ते में इस दुर्घटना का समाचार मिला तो उसने एक पत्र में लिखा—"मैं इस घटना के राजनैतिक परिणामों को सोच कर काँप उठता हूँ।"* ११ सितम्बर सन् १८०४ को मार्क्विस वेलसली ने जनरल लेक को लिखा—

* "I tremble at the political consequences of that event."—General Wellesley referring to the retreat of General Monson.

"हमें अब पिछला रोना रोने के बजाय, आगे के इलाज की कुछ कोशिश करनी चाहिए, और आपके होते हुए मुझे सफलता में कोई सन्देह नहीं। किन्तु मुख्य बात समय है। जितनी देर तक कि इस लुटेरे को जीवित रहने दिया जायगा, हर घण्टे में कुछ न कुछ नई आपत्ति हम पर अवश्य आएगी; यदि हम होलकर की मुख्य सेना पर फ़ौरन् हमला करके निश्चित सफलता प्राप्त नहीं कर सकते तो हमें इसके लिए तैयार रहना चाहिए कि तमाम भारतीय नरेश हमारा साथ छोड़ देंगे और स्वयं हमारे इलाक़े के अन्दर उपद्रव खड़े हो जायँगे ××× मैं आप से बिलकुल सहमत हूँ कि हमारा सबसे पहला काम यह होना चाहिए कि हम मैदान में होलकर की पैदल सेना को परास्त कर उसकी तोपें छीन लें ××× यदि हमने होलकर को हरा दिया तो फ़ौरन् तमाम आपत्ति और भय जाता रहेगा। ×××

* * *

"साथ ही आप अपने मददगारों को पक्का रखने और पिछले साल के एलानों को दोहरा कर अथवा दूसरे लोभ देकर होलकर की सेना के आदमियों को अपनी ओर फोड़ने के लिए हर तरह प्रयत्न करें।"*

---

* "We must endeavour rather to retrieve than to blame what is past, and under your auspices I entertain no doubt of success. Time, however, is the main consideration. Every hour that shall be left to this plunderer will be marked by some calamity; we must expect a general defection of the allies, and even confusion in our own territories, unless we attack Holkar's main force immediately with decisive success. . . . I perfectly agree with you, that the first object must be the defeat of Holkar's

होलकर के विरुद्ध नई साज़िशें

जसवन्तराव के विरुद्ध उसके आदमियों तथा अन्य नरेशों को अपनी ओर फोड़ने के लिए अब जी तोड़ कोशिशें की जाने लगीं। इन कोशिशों द्वारा जसवन्तराव की सेना में अङ्गरेज़ों को कहाँ तक सफलता प्राप्त हो रही थी, इसका कुछ अनुमान गवरनर-जनरल के नाम लेक के २२ सितम्बर सन् १८०४ के पत्र से लग सकता है। इस पत्र में लेक ने लिखा—

"होलकर की सेनाओं की अजीब हालत है, उनमें से कुछ फिर हमारी ओर चले आने के लिए कह रहे हैं। यदि वे आएँगे तो उन्हें ले लिया जायगा, किन्तु जो कुछ वे कहते हैं उस पर मुझे बहुत कम विश्वास है; तथापि उनमें किसी तरह का भी असन्तोष होना अपना असर रखता है और हमारे काम आ सकता है, इसलिए उन्हें भड़का कर उनमें असन्तोष पैदा किया जायगा।"

रहा भारतीय नरेशों को अपनी ओर फोड़ सकना, उनमें सींधिया के अतिरिक्त अन्य नरेशों का भी विश्वास अङ्गरेज़ों के ऊपर से उठ गया था। अपने अनुचित व्यवहारों के कारण जिनका

---

infantry in the field, and to take his guns; . . . Holkar defeated, all alarm and danger will instantly vanish; . . .

* * *

"You will also take every step for confirming our allies, and for encouraging desertion from Holkar by renewing the proclamations of last year; or by other encouragements."—Governor-General's letter to General Lake, 11th September, 1804.

ज़िक्र आगे चल कर किया जायगा, अङ्गरेज़ों को बरार के राजा पर भी विश्वास न हो सकता था। भरतपुर का राजा महाराजा सींधिया का सामन्त था। तथापि सन् १८०३ में अङ्गरेज़ों ने महाराजा सींधिया और राजा राघोजी भोंसले के विरुद्ध भरतपुर के राजा रणजीतसिंह के साथ इस शर्त पर सन्धि कर ली थी कि जो सालाना ख़िराज तुम सींधिया को दिया करते थे, वह आयन्दा के लिए बिलकुल माफ़ कर दिया जायगा। इसी सन्धि के कारण राजा रणजीतसिंह अङ्गरेज़ों के विरुद्ध सींधिया और भोंसले को सहायता देने से भी रुका रहा। इस बार फिर गवरनर-ज़नरल ने होलकर के विरुद्ध भरतपुर के राजा से सहायता प्राप्त करने की कोशिश की। २२ अगस्त सन् १८०४ को मार्क्विस वेल्सली ने जनरल लेक को लिखा—

"× × × मैं इस पत्र द्वारा आपको अधिकार देता हूँ और हिदायत करता हूँ कि आप अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में भरतपुर के राजा को विश्वास दिला दीजे कि अङ्गरेज़ सरकार इस बात का निश्चय कर चुकी है कि भरतपुर के साथ मौजूदा सन्धि की तमाम शर्तों को ठीक ठीक और समय पर पूरा करे। आप राजा को यह भी बता दीजे कि अङ्गरेज़ सरकार के ऊपर जो ये आक्षेप लगाए जा रहे हैं कि वह भरतपुर के आन्तरिक शासन में किसी तरह का दख़ल देकर अथवा राजा के इलाक़ों, उसके क़िलों, अथवा सेनाओं को कम्पनी की दीवानी अथवा फ़ौजदारी अदालतों के अधीन करने की किसी तरह की कोशिश करके उस सन्धि को तोड़ने का विचार कर रही है, अथवा राजा के दीवानी अथवा फ़ौजदारी शासन में किसी तरह से भी

अपना अधिकार बीच में लाना चाहती है, अथवा अन्य किसी तरह से भी मौजूदा सन्धि की शर्तों से फिरना चाहती है, ये सब आक्षेप झूठे हैं और बदमाशों के फैलाए हुए हैं।"

किन्तु इस बार राजा भरतपुर को फोड़ सकना दुष्कर था। एक तो ऊपर के पत्र से ही साबित है कि अङ्गरेज़ों के इरादों के सम्बन्ध में राजा भरतपुर के चित्त में कुछ काफ़ी गहरे सन्देह पैदा हो गए थे, और इतिहास लेखक मिल के बयान से मालूम होता है कि ये सन्देह सर्वथा निर्मूल भी न थे। मिल लिखता है कि मथुरा के अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट ने नमक के व्यापारियों के कई व्यापार सम्बन्धी मामले ज़बरदस्ती भरतपुर की प्रजा के विरुद्ध तय कर डाले, जिनसे प्रजा को हानि और राजा को दुख और हैरानी हुई। मिल यह भी लिखता है कि यह ख़बर उन दिनों फैली हुई थी कि अङ्गरेज़ सरकार भरतपुर के राज्य के अन्दर कम्पनी की अदालतें क़ायम करना चाहती है। राजा तक यह ख़बर भी पहुँच चुकी थी।* निस्सन्देह भरतपुर का राजा इस समय समझ रहा था कि अङ्गरेज़ ऊपर से मुझे बहका कर होलकर के विरुद्ध मुझसे मदद लेना चाहते हैं और भीतर ही भीतर मेरे राज्य और मेरी प्रजा पर पूरी तरह अपना अधिकार जमा लेने की तरकीबें कर रहे हैं।

इस सबके अतिरिक्त भरतपुर के आस पास गङ्गा और जमुना के बीच दोआब का जो इलाक़ा पिछले युद्ध में अङ्गरेज़ों ने महाराजा सींधिया से छीन कर अपने शासन में कर लिया था, उस

* Mill, vol, vi, p. 420.

समस्त इलाक़े में केवल एक ही वर्ष के ब्रिटिश शासन के कारण इस समय त्राहि त्राहि मची हुई थी।

दोआब में कम्पनी के अत्याचार

गवरनर-जनरल ने यह तमाम इलाक़ा जनरल लेक के अधीन कर दिया था और वहाँ का 'बन्दोबस्त' लेक को सौंप दिया था। लेक ने जिस तरह से भी हो सकता था, दोआब की प्रजा और वहाँ के ज़मींदारों को सता सता कर उनसे धन वसूल करना शुरू किया। भूमि का लगान इतना बढ़ा दिया गया कि जिसे देख कर प्रान्त के बूढ़े से बूढ़े निवासी भी चकित रह गए। मुग़ल साम्राज्य के अन्तिम चरित्रहीन सम्राटों के निर्बल शासन में भी प्रजा से कभी इतना अधिक लगान न लिया गया था। इससे पूर्व के असभ्य आक्रमक भी देश के लोगों के साधारण निर्वाह के लिए जितना सामान छोड़ जाते थे, नए अङ्गरेज़ी बन्दोबस्त के बाद उनके पास उससे कहीं कम बच सकता था।

इसके अतिरिक्त दोआब के अङ्गरेज़ अफ़सरों ने लेक की आज्ञानुसार दोआब की भारतीय प्रजा पर और भी तरह तरह के अत्याचार शुरू कर दिए। इनमें मुख्य बात जिसने एकदम दोआब की प्रजा के चित्तों को अङ्गरेज़ों की ओर से फेर दिया, वह नए अङ्गरेज़ी इलाक़े के अन्दर गोबध का शुरू हो जाना था।

सम्राट बाबर ने, जो अपनी भारतीय प्रजा का सच्चा हितचिन्तक था और समस्त हिन्दू, मुसलमानों तथा अन्य धर्मावलम्बियों को

समान दृष्टि से देखता था, अपने साम्राज्य में गाय का बध बन्द कर दिया था। हुमायूँ, अकबर तथा उनके महान उत्तराधिकारियों ने अपने अधिक विशाल साम्राज्यों में इस आज्ञा का पालन कड़ाई के साथ जारी रखा। अन्त के दिनों के अदूरदर्शी मुग़ल सम्राटों ने भी, जिन्होंने कि अपनी ग़लतियों द्वारा हिन्दुओं के ऊपर फिर से जज़िए का घृणित कर लगा कर मुग़ल साम्राज्य के नाश के बीज बोए, गोबध के सम्बन्ध में इस उदार और हितकर नीति को नहीं बदला। इतिहास लेखक विलसन के अनुसार लगभग ३०० वर्ष से हिन्दोस्तान में किसी मनुष्य का पेट भरने के लिए एक भी गाय अथवा बैल की हत्या न हुई थी। किन्तु अब मथुरा जैसे पवित्र तीर्थस्थान के अन्दर अङ्गरेज़ सिपाहियों का पेट भरने के लिए गौएँ कटने लगीं। मथुरा तथा दोआब के बाशिन्दों में इससे अपने नए विदेशी शासकों के विरुद्ध घृणा और असन्तोष का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। इतिहास लेखक मिल लिखता है कि भरतपुर का राजा अपने पास के इलाक़े में इस प्रकार गोहत्या की ख़बरें सुन कर और भी दुखित हुआ। दोआब की प्रजा ने भरतपुर के हिन्दू जाट राजा को अपना नेता और रक्षक नियुक्त किया। स्वभावतः इन सब लोगों की हार्दिक सहानुभूति इस समय होलकर के साथ थी और दोआब को अङ्गरेज़ों के पञ्जे से छुड़ाने के लिए दोआब की प्रजा, भरतपुर दरबार और जसवन्तराव होलकर, तीनों के बीच पत्र-व्यवहार होने लगा।

जनरल लेक इस बात को जानता था। उसके अनेक पत्रों से

प्रकट है कि वह होलकर को मिटाने के साथ साथ इस समय भरतपुर की स्वाधीन रियासत को भी मिटा देने के लिए उत्सुक था, मुख्यकर इसलिए ताकि दोआब की भारतीय प्रजा को अपने विदेशी शासकों के विरुद्ध कोई सच्चा नेता और होलकर को दोआब में कोई मददगार न मिल सके।

होलकर को फँसाने की चेष्टा

जसवन्तराव होलकर अपने राज्य से कम्पनी की आक्रमक सेना को निकाल कर बाहर कर चुका था। अङ्गरेज़ों को इस बात का भय था कि कहीं वह उत्तर की ओर बढ़कर कम्पनी के इलाक़े दोआब पर हमला न करे। अपने भारतीय इलाक़ों की रक्षा करने और जसवन्तराव को फँसाने के लिए बड़ी बड़ी तैयारियाँ की गईं। गवरनर-जनरल ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम २४ मार्च सन् १८०५ को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने इन तैयारियों को विस्तार के साथ बयान किया है। दिल्ली, आगरा और मथुरा में सेनाएँ बढ़ाई गईं और इन स्थानों तक पहुँचने के मार्गों की रक्षा का विशेष प्रबन्ध किया गया। इसके अतिरिक्त पाँच सेनाएँ पाँच ओर से होलकर को घेरने के लिए नियुक्त की गईं। सब से ऊपर एक विशाल सेना जनरल लेक के अधीन, दूसरी सेना दिल्ली और आगरे के बीच की पहाड़ियों के निकट, तीसरी सेना बुन्देलखण्ड में, चौथी सींधिया की सबसीडीयरी सेना उज्जैन में, और पाँचवीं सेना करनल मरे के अधीन गुजरात की सरहद पर।

इस समस्त सैन्य-प्रबन्ध का स्पष्ट उद्देश यह था कि इनसे ...ल कर होलकर उत्तर की ओर अङ्गरेज़ी इलाक़े पर हमला न सके। मार्किस वेल्सली को अपने इस प्रबन्ध की सफलता पर ... विश्वास था। उसने २४ मार्च सन् १८०५ को डाइरेक्टरों को ...खा—

"यह बात अत्यन्त ही असम्भव मालूम होती थी कि होलकर इन ... सेनाओं के हमले से बच कर निकल सके।"

मार्किस वेल्सली को अपने इस प्रबन्ध द्वारा युद्ध के जल्दी ...माप्त होने की भी आशा थी।

किन्तु गवरनर-जनरल और उसके साथियों की सब आशाएँ ...ठी साबित हुईं। जसवन्तराव ने इस समय पूरी तरह साबित ...र दिया कि वीरता अथवा युद्ध-कौशल दोनों में से किसी बात में ...ी जनरल लेक अथवा जनरल मॉनसन कोई उसे न पा सकता था।

होलकर का मथुरा पर क़ब्ज़ा

जनरल मॉनसन के आगरे की ओर भागते ही जसवन्तराव ...ोलकर ने आगे बढ़कर अङ्गरेज़ों की पाँच पाँच सेनाओं से बच कर और अपनी सरहद को पार कर कम्पनी के इलाक़े मथुरा पर हमला किया। अङ्गरेज़ों ने एक बहुत बड़ी सेना मथुरा की रक्षा के लिए नियुक्त कर रक्खी थी। किन्तु इस सेना को हार खाकर मथुरा से भाग जाना पड़ा; और विजयी जसवन्तराव होलकर ने मथुरा पर क़ब्ज़ा कर लिया। वेल्सली के सब प्रयत्न निष्फल गए। मथुरा

से आगे बढ़ कर तुरन्त दिल्ली पर क़ब्ज़ा कर लेना उस समय जसवन्तराव के लिए कुछ भी कठिन न था। यह भी सम्भव है कि एक बार दिल्ली पर क़ब्ज़ा करके जसवन्तराव के पक्ष को आश्चर्य-जनक बल प्राप्त हो जाता। किन्तु शायद जसवन्तराव की आकांक्षा उस समय इससे अधिक न थी। इसके अतिरिक्त मथुरा पहुँच कर उसे कई नई कठिनाइयों ने आ घेरा।

होलकर की विपत्तियों का प्रारम्भ

जसवन्तराव जब उत्तर की ओर बढ़ रहा था, उसी समय करनल मरे जसवन्तराव के मालवा के इलाक़े पर और करनल वैलेस उसके दक्षिण के इलाक़ों पर हमला कर रहे थे। ऊपर आ चुका है कि करनल मरे ने रसद की कमी के कारण पहली जुलाई को गुजरात की ओर लौटना शुरू कर दिया था। किन्तु फिर होलकर के उत्तर की ओर बढ़ जाने की ख़बर पाते ही मरे ने तीसरी बार लौट कर होलकर के आदमियों के साथ साज़िशें करना शुरू किया।

डाइरेक्टरों के नाम गवरनर-जनरल के २४ मार्च सन् १८०५ के पत्र में लिखा है कि करनल मरे ने गवरनर-जनरल से बाज़ाब्ता दरियाफ़्त किया कि किस हद तक होलकर के नौकरों और दूसरे अनुयायियों को लोभ दिया जाय, और कहाँ तक उनसे वादे कर लिए जायँ, इत्यादि।* इस बार करनल मरे को इतनी अच्छी

* "Colonel Murray having submitted to the Governor-General several questions relative to the extent to which he might be permitted to encourage desertion among the adherents

लता प्राप्त हुई कि ५ जुलाई सन् १८०४ को करनल मरे फिर
न की ओर बढ़ा। बिना किसी विरोध के ८ जुलाई को वह
न पहुँच गया और धीरे धीरे उज्जैन से बैठ कर उसने "बिना
ी तरह की लड़ाई के"* आस पास के समस्त इलाक़े और
कर की राजधानी इन्दौर तक पर एक बार क़ब्ज़ा कर लिया।
सन्देह इस अद्भुत कार्य में जसवन्तराव की अनुपस्थिति से
नल मरे को बहुत बड़ी सहायता मिली।

उधर दक्षिण में जनरल वेल्सली के चले जाने के बाद कम्पनी
सेनाओं का नेतृत्व करनल वैलेस को मिला। २२ अगस्त को
नल वैलेस पूना से चला। १८ सितम्बर तक उसकी सेना ने
दावरी को पार किया। २७ और ३० सितम्बर को और अधिक
ना वैलेस से आकर मिल गई। अक्तूबर के शुरू में पेशवा की
जी सेना भी वैलेस से आ मिली। उसी महीने में वैलेस ने चान्दौर
र तथा तापती नदी के दक्षिण में होलकर के अन्य कई दक्षिणी
लों पर क़ब्ज़ा कर लिया। निस्सन्देह जिन उपायों ने मरे को
फलता प्रदान की उन्हीं से वैलेस ने भी पूरी तरह काम लिया।

मथुरा पहुँचते पहुँचते जसवन्तराव को अपने मालवा तथा

---

of Jaswant Rao Holkar, and to offer to them employment in the service of the allies, . . . the Governor-General in Council deemed it to be advisable to furnish Colonel Murray with instructions. . . ."—Despatch of the Governor-General in Council to the Secret Committee, dated 24th March, 1805.

* "Without any resistance."—Above despatch.

दक्षिण के इलाक़ों के इस प्रकार छिन जाने का समाचार मिल उसने दुख के साथ अनुभव किया कि अन्त में उसके आ भी अनन्त काल तक अङ्गरेज़ों के "गुप्त उपायों" के लिए अ न रह सके। मथुरा में बैठ कर अब वह अपने इन इलाक़ों को फि से विजय करने के उपाय सोचने लगा।

जसवन्तराव ने अब महाराजा सींधिया, बरार के राजा अ भरतपुर के राजा को अपनी ओर करना चाहा। उधर जसवन्तरा के देर तक मथुरा में ठहर जाने से अङ्गरेज़ों को मौक़ा मिल गया उन्होंने एक ओर उसके राज्य में उसके विरुद्ध तरह तरह की झूठी ख़बरें फैलानी शुरू कर दीं, और दूसरी ओर दिल्ली को ठीक कर लिया, और साथ ही जनरल लेक ने होलकर पर हमला करने की तैयारियाँ कर लीं।

३ सितम्बर को जनरल लेक ने कानपुर से कूच किया। २ सितम्बर को वह आगरे पहुँचा, और सिकन्दरे में अपनी सेना जमा करके पहली अक्तूबर को मथुरा की ओर रवाना हुआ। जिस समय जनरल लेक मथुरा की ओर बढ़ रहा था उसी समय जसवन्तराव होलकर निस्सन्देह दिल्ली पर क़ब्ज़ा करने और दिल्ली सम्राट को अपने पक्ष में करने के उद्देश से सेना सहित दिल्ली की ओर बढ़ा। किन्तु इस बीच अङ्गरेज़ों ने दिल्ली की रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर लिया था। करनल ऑक्टरलोनी दिल्ली की सेनाओं का सेनापति था। अभी तक अङ्गरेज़ों ने सम्राट के साथ प्रतिज्ञाओं को पूरा न किया था और न सम्राट और

भारत में अङ्गरेज़ी राज्य

हिन्दोस्तान का नक़्शा

सनवार अङ्गरेज़ी सत्ता का विस्तार